

GOVERNMENT OF INDIA  
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY  
CENTRAL ARCHÆOLOGICAL  
LIBRARY

CALL No.

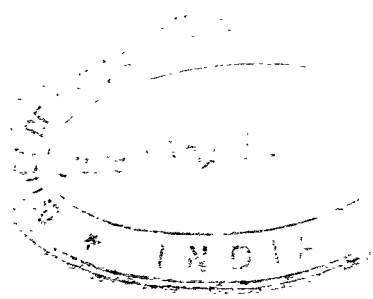
Sa 3S / Hem / Bhā

Acc. No.

37248

**D.G.A. 79.**

GIPN—S4—2D. G. Arch. N. D /57.—25-9 58—1,00,000.



A 334

V: 66

BIBLIOTHECA INDICA:  
A  
COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY

THE ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

NEW SERIES, Nos. 228, 237, 242, 245, 257, 262, 267, 274, 278, 281 & 290.

37248

Ghaturvarga Ghintāmani.

BY

HEMĀDRI.

EDITED BY

PANDITA BHARATACHANDRA ŚĪROMANI.

VOL. I.

DĀNAKHANDA.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE GANESHA PRESS.

1878.

A33

117/09

V. 66.



37248

24-7-63

Sa 35

Hem | Bha.

२१२१६

चतुर्वर्गचिन्तामणि-  
दानखण्डम् ।



त्रयोदशाध्यायात्मकम् ।

श्रीहेमाद्रिणा विरचितम् ।

आसियाटिक्-सीसायिटिनामक समाजानुमत्या-साहाय्येन च  
प्रचारितम् ।

श्रीभरतचन्द्रशिरोमणिना

परिशोधितम् ।

कलिकाता

गणेशयन्त्रे मुद्रितम् ।

सम्बत् १९३० ।



## विज्ञापनम् ।

महामहोपाध्यायश्रीहेमाद्रिविरचितश्चतुर्वर्गचिन्तामणिर्नाम  
ग्रन्थोऽयं, यश्च व्रतखण्ड-दानखण्ड-कालखण्ड आश्वखण्ड-परिशेष-  
खण्डैः पञ्चभिर्विभक्तस्तेषां दानखण्डात्मकचिन्तामणिः, आसिया-  
टिकसोमाइटी सभाध्यक्षमहोदयानामनुमत्या संस्कृतविद्यामन्दि-  
रस्य स्मृतिशास्त्राध्यापकचरेण मयाधुना मुद्रितः, परिशोधि-  
तश्च, चतुर्वर्गचिन्तामणो स्मृतिनिबन्धे महाशास्त्रे ब्राह्मणादीनां  
वर्णानां ब्रह्मचर्यादीनामाश्रमाणामनुलोम-प्रतिलोमज-सङ्गर-  
जातीनाञ्च षड्विधधर्मा अशेषेण निर्णीताः सन्ति, ग्रन्थोऽयमतीव  
विस्तरः, सर्वसाधारणैर्वहुवित्तव्यायायाससाध्यतया संग्रहीतुं  
बहुलतया च स्वयं लेखितुमशक्यस्तेनास्य विरलप्रचारतया  
सर्वधर्माः समाचार-व्यवहारसंश्रयाः साधारणैर्निःसन्देहमव-  
गन्तुमशक्यन्तेऽतः कृत्वा सार्वजनगोचरार्थं समुत्थं सुद्रादि-  
करणव्ययोपयुक्तं न तु लाभार्थं कृत्वा मुद्रितः, अस्य तु सुद्रा-  
ङ्गनेन हिन्दुजातीनां महापकारः सम्भाव्यतेऽत्राणुरपि संग्रयोना-  
स्तीति, साम्प्रतं विज्ञाप्यते हेमाद्रिस्तु, देवगिरिस्थ-यादववंशम-  
हाराजाधिराजमहादेवचक्रवर्त्तिनी राज्ञो धर्माधिकरणपण्डित  
आसीत्, हेमाद्रिरपि स्वयं नृपतिः, यस्य सभापण्डितो महामहो-  
पाध्यायः श्रीवीपदेव आसीत्, अनुमौयते पक्षवसुधरेन्दुमिते शक-  
सम्बत्सरे द्विचादिवत्सरन्यूनाधिक्येन समजनिष्ट । हेमाद्रिरपि  
तदैव समुदयं लेभे च, अत्रेयं किंवदन्ती, एतद्गन्धर्वकर्त्ता श्रीवीपदेव

इति, वोपदेवकृतपदार्थादर्शाभिधानग्रन्थकारिकाम् अनेकस्थाने  
 उत्थाप्य यथातत्त्वं कारिकाव्याख्यानङ्गत्वा प्रामाण्यसम्पादनार्थं  
 मूलं हेमाद्रौ चिन्त्यमित्यादिनिर्णयसिन्धुप्रभृतिसन्दर्भेणैवं प्रती-  
 तम् यद्यपि क्रमप्राप्तं व्रतखण्डमेवादौ मुद्रयितुं मुचितमासीत् तत्  
 पश्चात् व्युत्क्रमेण दानखण्डमुद्राङ्गने सन्दिहानस्य जिज्ञासो-  
 र्जिज्ञासाविनिवारणबीजमिदं । व्रतखण्डस्यादर्शभूतमेकमात्रं  
 पुस्तकं लब्धं दानखण्डस्य चत्वारि पुस्तकानि परिप्राप्तानि  
 अतो हेतोः क्रमप्राप्तमपि तत्र मुद्रितम् एकमात्रपुस्तकदर्शन-  
 विश्वासेन मुद्राङ्गनस्थानैचित्यं चतुर्णां पुस्तकानां हेतु संस्कृत-  
 विद्यामन्दिरपुस्तकागारस्थिते एकन्तु शोभावाजारस्थ श्रीराजेन्द्र-  
 नारायण वाहादूरसदनस्थं अन्यत्तु आसियाटिकसोसायिटी-  
 पुस्तकसदनस्थम् एतेषामपेक्षाकृतं उत्तराजवाटीस्थं पुस्तकं समी-  
 चीनं प्रतिभाति, चतुर्णां पुस्तकानां केनचित् केनचिदंशेन  
 विरोधोऽस्ति कुत्रचित् कतिचित् श्लोका अधिकाः कचिच्च न्यूनाः  
 कस्मिंश्चिदंशे अक्षराणि विलुप्तानीदृग्दशायां सत्यामपि बहुतर-  
 परिश्रमेण परस्परपाठं विचार्य मन्वादिसंहिताः स्मार्त्तादि-  
 स्मृतिनिबन्धान् सामञ्जस्यार्थं समालोच्य स्थिरीकृत्य मुद्रितो  
 यद्यपि तथापि ।

महारण्यच्छेदात् परमपि कियच्छिष्टमपरं

ततश्चेत्तुर्दीपो नहि भवति भाव्येहि विषये ।

वनन्यायादत्र कचिदपि भवेद्दृष्टमपरं

वचः क्षम्यं याचे विनतिततिपूर्व्वं हि कृतिनः ॥

इदमपि द्रष्टव्यम् ।

यद्यपि शिरोभागे चतुर्वर्गचिन्तामणिनामलिखनस्यौचित्ये-  
ऽपि सर्वत्र ग्रन्थेषु हेमाद्रौ चिन्त्यं, हेमाद्रावभिहितमित्यादि  
भूरि-भूरि प्रयोगदर्शनेन प्रसिद्धमेतन्नामेति बद्धावाकलय्य पुरु-  
षस्य व्यावहारिकनामराश्याश्रितनाम्नो व्यावहारिकनाम्नः प्रसि-  
द्धत्वमिव चतुर्वर्गचिन्तामणिसमाख्यां विहाय हेमाद्रिनामोल्लि-  
खितमिति न किञ्चिदनुचितम् ।

श्रीभरतचन्द्रशर्मा ।



## सूचीपत्रम् ।

— ३३३३३३ —

|                            |        |              |                     |     |
|----------------------------|--------|--------------|---------------------|-----|
| अ                          | पृष्ठा | अश्वदानविधिः | ...                 | ५८२ |
| अप्राप्तमन्त्रे            | ...    | ५७           | अश्वदानानापरविधिः   | ... |
| अग्निष्टिकादानम्           | ...    | ८३७          | अश्विनीकुमारलक्षणम् | ... |
| अजादानम्                   | ...    | ७१७          | अश्विनोर्दानम्      | ... |
| अतिथिदानानि                | ...    | ८४६          | अश्विनोर्लक्षणम्    | ... |
| अतिदानलक्षणम्              | ...    | ६६७          | अष्टधातवः           | ... |
| अतिदानविधानम्              | ...    | ६६७          | अष्टाङ्गाद्यम्      | ... |
| अतिदानं विद्यादानाद्यम्... | ...    | ५११          | अष्टविवाहलक्षणम्    | ... |
| अतिदानं भूमिदानाद्यम्...   | ...    | ४६४          | अष्टादशधान्यानि     | ... |
| अदेयनिरूपणम्               | ...    | ४६           | अस्वाणि             | ... |
| अनन्तफलदानानि              | ...    | ८६१          | अष्टङ्कारदानविधिः   | ... |
| अन्नदानम्                  | ...    | ८७३          | आ                   |     |
| अनिरुद्धरूपम्              | ...    | २३७          | आचार्यलक्षणम्       | ... |
| अपाकदानम्                  | ...    | ८९१          | आत्मप्रतिकृतिदानम्  | ... |
| अपात्रनिरूपणम्             | ...    | ३५           | आनन्दनिधिदानविधिः   | ... |
| अभयदानम्                   | ...    | ८४६          | आद्यतुष्टदानम्      | ... |
| अभ्यङ्गदानम्               | ...    | ८५४          | आमाश्वदानम्         | ... |
| अलङ्कारदानम्               | ...    | ८०२          | आयुर्वेदाङ्गानि     | ... |
| अवमलक्षणम्                 | ...    | ७७           | आयुष्करदानम्        | ... |
| अश्वत्थदानम्               | ...    | १०३६         | आरामरोपणम्          | ... |
| अश्वत्थसेवनम्              | ...    | ८६३          | आरोग्यदानम्         | ... |



|                                | पृष्ठा |                                      | पृष्ठा |
|--------------------------------|--------|--------------------------------------|--------|
| आश्रयदानम् ...                 | ६३५    | लक्षणानि ...                         | १८     |
| आशालक्षणम् ..                  | ८५६    | कन्यादानम् ...                       | ६७७    |
| आसनदानम् ...                   | ८१६    | कपिलादानविधिः ...                    | ४६१    |
| इ                              |        | कर्षटादिस्वरूपम् ...                 | ९२८    |
| इन्द्रपुर्व्वसमानकाः ...       | ७७     | करणदानानि ...                        | ८८९    |
| इष्टकमलक्षणम् ...              | ९०     | कर्पूरादिघेतुदानम् ...               | ४३४    |
| उ                              |        | कवकदानम् ...                         | ८४६    |
| उदकदानम् ...                   | ८८८    | कल्पपादपसंज्ञं चतुर्थं महादानम् २४५  |        |
| उदकुम्भदानम् ...               | ७६६    | कल्पलताभिधानं वयोदश्महादानम् ३३४     |        |
| उपचारषोडशकम् ...               | १११    | कांस्यदानविधिः ..                    | ६०२    |
| उपरागकालः ...                  | ७१     | कामदेवलक्षणम् ...                    | २४६    |
| उभयतोमुखीदानम् ...             | ४७६    | कामघेतुदानविधिः वल्लिपुराणोक्तः २६८  |        |
| उभयधर्माः ...                  | ८९     | कामघेतुदानं नानाशास्त्रीयम् २७२      |        |
| उभयमहेशदानम् ...               | ७४५    | कामलक्षणम् ...                       | ३५२    |
| उभयलक्षणम् ..                  | २३५    | कार्पासघेतुदानम् ..                  | ४९१    |
| उभाशङ्कररूपम् ...              | ७१३    | कार्पासपुष्पदानविधिः ...             | ३७६    |
| उष्णीषदानम् ...                | ८०९    | कालचक्रदानम् ..                      | ३६४    |
| ऊ                              |        | कालपुरुषदानम् ..                     | ७६१    |
| ऊर्णपटदानम् ...                | ८१०    | कालविशेषेण दानविशेषाः ८४८            |        |
| ऋ                              |        | कालाख्यदानाङ्गमभिधीयते ६१            |        |
| ऋतुदानानि ...                  | ८८८    | कुण्डनिर्माणप्रकारः ...              | १२१    |
| ए                              |        | कुण्डस्याङ्गादिवैकल्येऽनिष्टफलम् १२३ |        |
| एकादशधरादानसंज्ञं महादानम् ९८४ |        | कुण्डस्य कण्टमानम् ...               | १३५    |
| क                              |        | कुण्डस्य मेखलालक्षणम् ...            | १३५    |
| कदलीदानम् ...                  | १०३५   | कुण्डस्य धोनिलक्षणम् ...             | १३६    |
| कमकशृङ्गीदानविधिः ...          | ४५६    | कुमारलक्षणम् ...                     | ८५४    |
| काविक-वाचिक-मानसिक दान-        |        | कूपनिर्माणम् ...                     | १००१   |
|                                |        | छाया रूपम् ...                       | ८७०    |

|                                       | पृष्ठा |   | पृष्ठा |
|---------------------------------------|--------|---|--------|
| कृष्णाजिनदानं (सधर्मं) ...            | ७०३    | गुडपर्वतदानविधिर्त्रिंशत्पुत्राणोक्तः २६२           |        |
| कृष्णाजिनदानवाक्यम् ...               | ६९८    | गृहदानम् ..   | ६५६    |
| कृष्णाजिनदानविधिः (अपरः) ...          | ७०१    | गोश्रदानम् ..                                       | ६६४    |
| कृष्णाजिनदानानि ...                   | ६९३    | गोदानं देवताभ्यः ...                                | ४६६    |
| क्षीरधेनुदानम् ...                    | ४९३    | गोदानं देवतोद्देशेन ...                             | ४६३    |
| ग                                     |        | गोदानं स्वरूपतः ...                                 | ४४४    |
| गजदानम् ...                           | ६३२    | गोदानविधिः ...                                      | ४५१    |
| गजदानं देवताभ्यः ...                  | ६३०    | गोदानविधिसिद्धिरात्रः ...                           | ४६८    |
| गजदानविधिरपरः ...                     | ६३३    | गोदानविधिर्नानाप्रकारः ...                          | ४५७    |
| गजदानविधिर्मुखरोगघ्नः ...             | ६३५    | गोदानमन्त्रः सर्वसाधारणः ...                        | ४५२    |
| गजदानविधिर्त्रिंशद्घ्नः ...           | ६३६    | गोपरिचर्यानिरूपणम् ...                              | ८६१    |
| गणेशरूपम् ...                         | ९२     | गोपालमूर्तिदानम् ..                                 | ७३३    |
| गणेशदानम् ...                         | ८२२    | गोमती अन्यथापि ...                                  | ४५२    |
| गन्धदानम् ...                         | ८२०    | गोमतीविद्या ...                                     | ४०५    |
| गन्धमादनस्यावाहनमन्त्रः ...           | २५४    | गोसहस्रदानविधिः ...                                 | २६३    |
| गन्धर्वरूपम् ...                      | ११०    | गोसहस्रदानविधिः लिङ्गपुराणोक्तः २५३                 |        |
| गरुडदानम् ..                          | ७४१    | गोसहस्रदानविधिः विप्रकारः कालिकापु-<br>राणोक्तः ... | २५८    |
| गरुडदानविधिरपरः ..                    | ७४२    | गोसहस्रदानविधिः स्कन्धपुराणोक्तः २६१                |        |
| गरुडमूर्तिदानविधिः अक्षिवेदनाघ्नः ७४४ |        | गोसहस्रदायं पञ्चमं महादानम् २५२                     |        |
| गरुडगतौ रूपम् ...                     | ८५७    | ग्रहदानम् ..  | ८००    |
| गरुडलक्षणम् ..                        | २८४    | ग्राह्यमुच्यते ...                                  | ५४     |
| गल्लिकादानम् ..                       | ८९४    | घ   |        |
| गीतादिदानम् ...                       | ८०३    | घण्टादानम् ...                                      | ७२८    |
| गुडधेनुदानविधिः ...                   | ३८८    | घृतधेनुदानविधिः आदित्यपुराणोक्तः ४१२                |        |
| गुडधेनोरामन्त्रमन्त्रः ..             | ३८९    | घृतादितुलापुरुषदानविधिः २११                         |        |
| गुडपर्वतदानविधिः ..                   | ३९१    |   |        |

| च                                  | पृष्ठा | पृष्ठा                                    |
|------------------------------------|--------|---|
| घृताचलदानविधिः ..                  | ३७८    | तिलधेनुदानविधिः ... ४०४                   |
| चतुष्मुखरूपम् ..                   | २३४    | तिलधेनुदानविधिः देवीपुराणोक्तः ४०७        |
| चतुष्मूर्तिदानम् ...               | ७८५    | तिलधेनुदानविधिः लिङ्गपुराणोक्तः ४०८       |
| चन्द्रसूर्यदानम् ...               | ७७६    | तिलपद्मदानम् ... ११०                      |
| चामरदानम् ...                      | ६१६    | तिलपद्मदानविधिः ... ६०७                   |
| छ                                  |        | तिलपद्मदानविधिरपरः .. ६१०                 |
| क्षत्रोपानहदानम् ...               | ६२४    | तिलपद्मदानविधिः क्षत्रोपानहः ६११          |
| ज                                  |        | तिलपद्मदानविधिः क्षत्रोपानहः ६१२          |
| जम्बुद्वीपप्रदानाख्यं महादानम् ३०४ |        | तिलपद्मदानविधिः क्षत्रोपानहः ६१५          |
| जम्बुद्वीपोपवर्णनम् ... २६५        |        | तिलपद्मदानं रक्तशूलद्रुमम् ... ६१४        |
| जलधेनुदानम् ... ४१८                |        | तिलपद्मदानविधिः सूक्तवहः ६१८              |
| जलधेनुदानविधिः .. ४२१              |        | तिलपद्मपञ्चकदानविधिः ... ६१९              |
| जलधेनुदानविधिः आदित्य पु० ३० ४२१   |        | तिलपात्रदानविधिः ... ६००                  |
| त                                  |        | तिलपीठदानविधिः ... ६२२                    |
| तडागादिप्रतिष्ठा ... १०१४          |        | तिलमृगदानविधिः ... ६००                    |
| तरुपुत्रदानविधिः ... १०४९          |        | तिलारञ्जकदानविधिः ... ६२१                 |
| ताम्रदानम् .. ६२१                  |        | तिलराशिदानविधिः .. ६०६                    |
| तिथिदानानि ... ८४९                 |        | तिलशूलदानविधिः ... ३६६                    |
| तिथिकालः प्रथमसूच्यते ... ६१       |        | तिलशूलदानविधिः प्रश्नोत्तरतन्त्रोक्तः ३६३ |
| तिलकरकदानविधिः ... ६२५             |        | तुलादण्डस्य मानम् ... १६१                 |
| तिलकुम्भदानविधिः ... ६२४           |        | तुलादर्शदानविधिः ... ६२३                  |
| तिलगर्भदानविधिः ... ६३०            |        | तुलादिरोहणाद्यानि .. १८८                  |
| तिलदानम् ... ५६३                   |        | तुलापुरुषदानविधिना नारोगघ्नः २१५          |
| तिलधेनुदानम् ... २०४               |        | तुलापुरुषयागः लिङ्गपुराणोक्तः १६८         |
| तिलधेनुदानमन्त्रः .. ४०३           |        | वीण्यतिदानानि ... १९                      |
|                                    |        | विष्णुपञ्चकदानविधिः ... ६१९               |
|                                    |        | त्रिपुरुषदानविधिः .. ७८४                  |

| प्रश्न                    | प्रश्न                                   |
|---------------------------|--|
| चिसूक्तिदानम् ...         | ७८१ दिनचर्यचरमयोभेद. ... ७१              |
| द                         | दिनचिह्नलक्षणम् ... ७६                   |
| दक्षिणसूक्तिदानम् ...     | ७४६ दीपदानम् ... ८६८                     |
| दक्षिणादिनिर्णयः ...      | १११ देवगणशदानम् ... ८१६                  |
| दधिधेनुदानम् ...          | ४२१ देवतादानानि ... ७२०                  |
| दर्पणदानम् ...            | ८१७ देयनिरूपणम् ... ४०                   |
| दशमहर्षयः ...             | २४२ द्वादशमेरुदानानि, शैवानि ... ६८४     |
| दशमहादानानि ...           | ५६५ द्वादशदित्यदानम् ... ८१४             |
| दशमज्यौषधः ...            | ११० द्वासीवस्त्रः ... १०७                |
| दशावतारदानम् ...          | ८०६ द्विजस्थापनम् ... ६८०                |
| दशावताराणां लक्षणम् ...   | ३२७ द्रव्यदानम् ... ११४                  |
| दशावताराः ...             | ३२७ द्रव्यनिरूपणम् ... ५८                |
| दानपावननिरूपणम् ...       | २१ द्रव्याणां व्यवहार्यपरिमाणनिर्णयः ११४ |
| दानप्रतिपादनम् ...        | १६६ ध                                    |
| दानप्रशंसा ...            | ४ धनसूक्तिदानम् ... ७६८                  |
| दानफलानि ...              | १५० धर्मघटदानम् ... ८८२                  |
| दानलक्षणानि ...           | १७ धर्मशास्त्रप्रणेतृकथनम् ... ५२७       |
| दानविशेषः पादामन्निधाने   | ८२ ध्वजपाशदानम् ... ७७८                  |
| दानसामान्यविधिः । ...     | ८७ ध्वजपाशदानविधिः ... ७७८               |
| दानस्वरूपोपवर्णनम् ...    | १३ धान्यमानम् ... ११८                    |
| दानाङ्कं देशाख्यम् ...    | ८२ धान्यपर्वतदानम् ... ३४६               |
| दानाङ्कं श्रद्धाख्यम् ... | ८४ धान्यपर्वतदानविधिः ... ३५७            |
| दासीदानविधिः ...          | ६३८ धान्यपर्वतस्य मन्त्रः ... ३५६        |
| दासीदानविधिः (शिवाय)...   | ६४१ धुरन्धरमन्त्रः ... २८०               |
| दिग्गजप्रभृतीनां लक्षणानि | २३३ धेनुदानविधिर्ग्रहणीहरः ... ४७१       |
| दिग्दानम् ...             | ७८२ धेनुदानविधिः अमृकद्वयशनम् ४७३        |
| दिनचर्यः ...              | ७८ धेनोरामन्त्रणमन्त्रः ... ३८८          |

|                                     |     |        |                                       |     |     |
|-------------------------------------|-----|--------|---------------------------------------|-----|-----|
| न                                   |     | पृष्ठा | पञ्चभूतलक्षणम्                        | ... | २३० |
| नक्षत्रदानानि                       | ... | ८७५    | पञ्चभूतिदानम्                         | ... | ७८८ |
| नन्दिकेश्वरलक्षणम्                  | ..  | २५३    | पञ्चलाङ्गलाख्यं दशमं महादानं          | ... | २८१ |
| नवकङ्कणौषधः                         | ..  | ११०    | पञ्चामृतम्                            | ..  | १०८ |
| नवग्रहाणां लक्षणम्                  | ... | ८७३    | पद्मकयोगः                             | ..  | ७८  |
| नवनारायणदानविधिः                    | ... | ३६०    | पर्वतदानविधिः                         | ... | ३४६ |
| नरसिंहदानम्                         | ... | ७३८    | परशुदानम्                             | ... | ७५१ |
| नागदानम्                            | ..  | ७७०    | परिणयकन्यालक्षणानि                    | ... | ६८१ |
| नागदानमन्त्रः                       | ... | ७७१    | पद्मिभाषाः                            | ... | १०३ |
| नारायणदानम्                         | ... | ७७२    | पापविशेषेण देयनिरूपणम्                | ... | ५३  |
| नारायणादिलक्षणम्                    | ..  | २८२    | पात्रदानम्                            | ..  | ८२३ |
| निम्नाभदानम्                        | ... | ८२०    | पान्यशुश्रूषा                         | ... | १५१ |
| नित्यसुवर्णदानविधिः                 | ... | ५७३    | पादाभ्यङ्गदानम्                       | ... | ८५६ |
| निमित्तादुरोधेन सदापुण्यकालाः       | ... | ८१     | पुण्याहवाचनम्                         | ..  | १४५ |
| निषिद्धकालाः                        | ... | ७८     | पुराणदानम्                            | ..  | ५२८ |
| निषिद्धस्यापि धर्मविशेषेण पुण्यकाल- | ... | ...    | पुराणश्रवणदानम्                       | ... | ५४० |
| खं                                  | ..  | ८१     | पुष्पदानम्                            | ..  | ८२२ |
| नृसिंहरूपम्                         | ... | ७३८    | पृक्तलक्षणम्                          | ... | २०  |
| न्यग्रीधदानम्                       | ..  | १३५    | पृथिवीदानविधिः पाण्डुरोगहरः           | ... | ३२४ |
| प                                   |     |        | पृथिवीपद्मदानम्                       | ... | ३१८ |
| पञ्चधेनुदानविधिः                    | ... | ४०६    | प्रकीर्णकालाः                         | ... | ७६  |
| पञ्चपर्वतदानविधिः                   | ... | ३८२    | प्रतिग्रहोदधन्माः                     | ..  | ८४  |
| पञ्चगव्यम्                          | ... | १०८    | प्रतिग्रहदानम्                        | ..  | ६७३ |
| पञ्चगव्यपूरणम्                      | ... | २२८    | प्रयुक्तलक्षणम्                       | ... | २७७ |
| पञ्चदैव्यदानम्                      | ... | ७८३    | प्रपादानम्                            | ..  | ८८७ |
| पञ्चवर्णानि                         | ... | १०८    | फ                                     |     |     |
| पञ्चभङ्गाः                          | ... | १०८    | फलानि श्रयप्रतिपादनार्थं पात्रविशेषेण | ... | ४७  |
|                                     |     |        | देयविशेषाः                            | ... | ४७  |

| व   | पृष्ठा | पृष्ठा                               | पृष्ठा |
|---|--------|--------------------------------------|--------|
| बलिदानमन्त्रः ...                         | ८२२    | मणिकदानम् ..                         | ८८५    |
| विष्णु गजदानविधिः ...                     | ६१८    | मण्डपादिलक्षणम् ..                   | १२२    |
| विष्णु धर्मोत्तरोक्ततुलापुरुषदानविधिः ११२ |        | मन्दरस्यावाहनमन्त्रः ...             | ३५४    |
| विष्णु लक्षणम् ..                         | १७७    | मधुघृतदानम् ..                       | ४२६    |
| विष्णु ब्रह्म मन्त्रौ ...                 | ७८०    | मधुपर्कः ..                          | १४२    |
| ब्रह्मविष्णु सहस्ररदानम् ...              | ७७८    | मरुतामासनम् ...                      | ८३८    |
| ब्राह्मणप्रशंसा (हिरण्यगर्भाङ्कविधौ) २२४  |        | मरुदानम् ..                          | ८३६    |
| ब्रह्माण्डदानविधिः पद्म पुं ७०            | २४०    | मरुन्नामानि ...                      | ८३८    |
| ब्रह्माण्डाभिधानं तृतीयं महादानम् २३२     |        | महर्षिलक्षणम् ...                    | ८८५    |
| ब्रह्मादिविवाहलक्षणम् ...                 | ६८४    | महाभूतषष्ठशब्दितं शोडशं महादानम् ३४२ |        |
| भ   |        | महाकृष्णाजिनदानम् ..                 | ७०५    |
| भगन्दरहरदानं ...                          | ८८८    | महातिलपाचदानविधिः ...                | ६०१    |
| भद्रनिधिदानविधिः ...                      | ५७८    | महिषीदानम् ...                       | ७०८    |
| भद्र तडागनिर्माणम् ...                    | १०५    | मासदानानि ...                        | ८८४    |
| भवाद्यष्टसूक्तयः ..                       | ४११    | मित्रसूक्तिः ..                      | १७६    |
| भाण्डदानम् ..                             | ८३०    | मित्रधर्माः ..                       | १०२    |
| भातुभूमिदानम् ...                         | ५१०    | मृगदानप्रसङ्गतः ..                   | ७०७    |
| भुवनप्रतिष्ठाविधिः ...                    | ८४०    | मृगदानविधिरपरः ...                   | ७०७    |
| भूमानम् ...                               | १२०    | मेघदानविधिः ...                      | ३८१    |
| भूमिदानं विष्णवे ..                       | ५०८    | मेरोरतुमन्त्रणमन्त्राः ..            | ३८६    |
| भोगदानानि ..                              | ८८८    | मेरोरवाहनमन्त्रः ...                 | ३५३    |
| म   |        | मेघदानम् ..                          | ७१५    |
| मकरदानम् ...                              | ७६७    | मेघौदानम् ..                         | ७१२    |
| मङ्गलाचरणम् ...                           | १      | य                                    |        |
| मणिकदानम् ...                             | ८८५    | यक्षकर्मः ..                         | १०८    |
| मङ्गलद्वयार्ण ...                         | ३३१    | यक्षपतिरूपम् ..                      | ३५२    |
|   |        | यज्ञोपवीतदानम् ...                   | ८५     |

|                                | पृष्ठा |                                 | पृष्ठा |
|--------------------------------|--------|---------------------------------|--------|
| यज्ञोपवीतदानं गर्भश्रावणम्     | ८५८    | रूपाचलदानविधिः ...              | ३८१    |
| यज्ञोपवीतदानं शिरोरोगघ्नम्     | ८५८    | रूपादि तुलापुरुषदानविधिः        | २१४    |
| यत्यादिवपनम्                   | ८६१    | रोगहरदानानि                     | ८८५    |
| यमरूपम्                        | ८६५    | रौप्यवृषदानविधिः                | ४८     |
| यष्टिदानम्                     | ८६०    | रौप्यवृषभदानविधिरपरः            | ४८२    |
| योगदानानि                      | ८८१    | रौप्यवृषभदानविधिसूतीयः          | ४८३    |
| युगादितिथिदानम्                | ८८८    | रौप्यवृषभदानविधिस्तुर्थः        | ४८८    |
| योनिमन्त्रः                    | ६२८    | ल                               |        |
| र                              |        | लवणाचलदानविधिः                  | ४६१    |
| रजतदानविधिः                    | ५८८    | लक्ष्मीदानम्                    | ७३०    |
| रत्नदानम्                      | ८८८    | लक्ष्मीनारायणदानम्              | ७३८    |
| रत्नदानं गल्लगण्डवम्           | ८०१    | लक्ष्मीनारायणदानमन्त्रः         | ७४०    |
| रत्नदानं त्र्यम्बकम्           | ८०१    | लक्ष्मीनारायणरूपम्              | ७४०    |
| रत्नधेनुसमाख्यं पञ्चदशमहादानम् | ३४०    | लक्ष्मीलक्षणम्                  | २३५    |
| रत्नाचलदानविधिः                | ३७८    | लवणधेनुदानम्                    | ४६२    |
| रथदानम्                        | ६४२    | लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानविधिः | १८८    |
| रसधेनुदानम्                    | ४२८    | लोकपालदानविधिः                  | ७८६    |
| रसट्कम्                        | ११     | लोकपालरूपाणि                    | २३३    |
| रसाः                           | ११०    | लोकपालाष्टकदानम्                | ७८४    |
| राजस्थापनम्                    | ६८१    | लौहतुलापुरुषदानविधिः            | २१७    |
| राज्ञीरूपम्                    | ८१६    | व                               |        |
| रक्षादिपावदानम्                | ८२८    | वर्जनीयकन्यानिरूपणम्            | ६८१    |
| रुद्रगायत्री                   | ७४६    | वराहदानम्                       | ७३५    |
| रुद्रमूर्तिदानम्               | ७४७    | वक्त्रिमूर्तिदानम्              | ७६०    |
| रुद्रलक्षणम्                   | ३३०    | वस्त्रदानम्                     | ८०४    |
| रुद्राष्टकदानम्                | ७८८    | वस्त्रदानं देवताभ्यः            | ८०७    |
| रुद्रैकादशलिखदानविधिः          | ६२७    | वस्त्रदानं श्लोकहरम्            | ८०८    |
| रूपवृषदानम्                    | ४८१    | वस्त्रदानानि रुद्रैकादशानि      | ८०६    |

|                                   |      |                            |     |
|-----------------------------------|------|----------------------------|-----|
|                                   | ४४   |                            | ४४  |
| वराहदानम् ...                     | ७३३  | वृषभदानम् ...              | ४८१ |
| वर्षापवर्णनम् ..                  | २६३  | वृषभाधिकगोशतदानम् ...      | ७७३ |
| वस्त्रादिरूपाणि ...               | २३५  | वृषभैकादशीदानम् ...        | ४६७ |
| वापौनिर्माणम् ...                 | १००३ | वेददानम् ...               | ५१७ |
| वारदानानि ..                      | ८७२  | वेदाङ्गानि ...             | ६३७ |
| वाराहरूपम् ...                    | २४२  | वैतरणीगोशतदानम् ...        | ४७३ |
| वासुदेवरूपम् ...                  | २३८  | व्यजनदानम् ...             | ६१८ |
| विघ्नेशदानविधिः ...               | ७२४  |                            |     |
| वितानदानम् ..                     | ६१६  | श                          |     |
| विद्यादानफलम् ...                 | ५५६  | शक्तिलक्षणम् ...           | ३२७ |
| विनायकदानविधिः ..                 | ७२०  | शतमानदानम् ...             | ५७६ |
| विनायकस्य लक्षणम् ...             | २८५  | शतमानदानविधिः प्रापरोगहरः  | ५७८ |
| विपुलपर्वतस्यावाहनमन्त्रः         | २५४  | शय्यादानम् ...             | ६११ |
| विवाह कालनिरूपणम् ...             | ६८२  | शर्कराधेतुदानम् ...        | ४३० |
| विवाहाधिकारिणानिरूपणम्            | ६८०  | शर्कराचक्षुधेतुदानविधिः .. | ३८२ |
| विश्वकर्म्मरूपनिर्माणम् ...       | १७५  | शस्त्रदानम् ..             | ५२६ |
| विश्वचक्रशब्दितं द्वादशं महादानम् | ३२६  | शिखरदानविधिः ...           | ६६४ |
| विश्वदेवानां नामानि ...           | ८११  | शिवभूमिदानविधिः ...        | ५०८ |
| विश्वामरदानम् ...                 | ८०६  | शिवलक्षणम् ...             | २३४ |
| विष्णुगजदानविधिः ...              | ६३८  | शिवशय्यादानम् ..           | ६११ |
| वृक्षदानम् ...                    | १०३३ | शिवसुवर्णदानविधिः ..       | ५७५ |
| वृक्षप्रतिष्ठा ...                | १०४७ | शिवस्य महापूजा ..          | ६८५ |
| वृक्षरोपणम् ...                   | १०२६ | शिवस्य महास्थानम् ...      | ३८५ |
| वृद्धिआद्वम् ...                  | १४०  | शिवाश्वदानविधिः ...        | ५६३ |
| वृद्धिआद्वदानविधिः ...            | १४१  | शिविकादानम् ...            | ६४४ |
| वृद्धिआद्वविधिः ...               | ४०१  | शूलदानम् ..                | ७१३ |
| वृषगायत्री ...                    | ४८६  | शूलदानविधिः ...            | ७६४ |

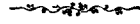


|                                | पृष्ठा |                                     | पृष्ठा |
|--------------------------------|--------|-------------------------------------|--------|
| शेषशायिमूर्तिलक्षणम् ..        | २३६    | सर्वादिलक्षणम् ...                  | ३७२    |
| शेषकल्पतरुदायविधिः ...         | २४८    | साध्यदानम् ..                       | ८१३    |
| श्वेताश्वदानविधिः ..           | ५८०    | सावित्रीलक्षणम् ..                  | २४३    |
| ष                              |        | सुपार्श्वस्थाहनन्त्रः ...           | २४५    |
| षटरसाः ...                     | ११०    | सुरभीलक्षणम् ...                    | २४६    |
| षोडशोपचाराः ...                | १११    | सुवर्णदानविधिः ..                   | ४८८    |
| षोडशसंस्काराः ..               | २३१    | सुवर्णधरादानविधिः ...               | ३०१    |
| स                              |        | सुवर्णधेनुदानम् ..                  | ४३६    |
| संक्रान्तिदानानि ...           | ८८३    | सुवर्णधेनुदानविधिः ...              | ४३८    |
| संवत्सरदानानि ...              | ८८०    | सुवर्णधेनुदानविधिः अर्शोघ्नः        | ४३८    |
| सङ्कर्षणरूपम् ..               | २३७    | सुवर्णधेनुदानविधिः पादप्रक्षेदघ्नः  | ४४२    |
| सद्योजातादिलक्षणम् ..          | २७१    | सुवर्णधेनुदानविधिः प्रमेहघ्नः       | ४३८    |
| सप्तद्वीपाक्षयदानम् ...        | ३१३    | सुवर्णधेनुदानविधिर्विष्वक्त्वह्नः   | ४४०    |
| सप्तधान्यानि ..                | ११८    | सुवर्णशयनदानविधिः ...               | ३६४    |
| सप्तमर्हर्षयः ..               | २४१    | सुवर्णशृङ्गदानविधिः ...             | ४५६    |
| सप्तर्षिलक्षणम् ...            | १४२    | सूर्य्यगजदानविधिः ...               | ६२८    |
| सप्तत्रौहीधेनुदानविधिः ..      | ४१२    | सूर्य्यगृहदानविधिर्भविष्यपुराणोक्तः | ६६४    |
| सप्तमानृणां लक्षणम् ...        | ६२८    | सूर्य्यगृहदानम् ...                 | ७५७    |
| सप्तसागरसंज्ञं चतुर्दशमहादानम् | ३२७    | सूर्य्यगृहदानम् ...                 | ८१५    |
| समानवत्सगोदानविधिः ...         | ४५८    | सूर्य्यगृहलक्षणम् ..                | २३५    |
| समिल्लक्षणम् ...               | १२८    | स्थालीदानम् ..                      | ८३५    |
| सम्पत्करदानम् ..               | ८०४    | ह                                   |        |
| सरस्तीदानम् ...                | ७२५    | हलपङ्क्तिदानविधिः ..                | २८१    |
| सरस्तीदानविधिः ..              | ७२६    | हस्तिदानविधिः ..                    | ६२३    |
| सर्वगन्धः ...                  | १०८    | हिरण्यकामवेनुसंज्ञं अष्टमं महादानम् | २६५    |
| सर्वशास्त्रसाधारणदानविधिः      | ५४३    | हिरण्यगर्भदानविधिः ...              | २२२    |
|                                |        | हिरण्यगर्भदानविधिर्विष्णुपुराणोक्तः | २२३    |

| पृष्ठा                                  | पृष्ठा                              |
|---|-------------------------------------|
| हिरण्यगर्भदानविधिर्लिङ्गपुराणोक्तः २२७  | हेमदानविधिः ... ५७४                 |
| हिरण्यगर्भदाने फलश्रुतिः ... २२५        | हेमघेतुदानविधिर्देवीपुराणोक्तः ४३७  |
| हिरण्यगर्भाख्यं द्वितीयं महादानम् २१८   | हेमवृषभदानविधिः ... ४८५             |
| हिरण्यदानम् ... ५६३                     | हेमविशेषे कुण्डपरिमाणम् १२५         |
| हिरण्याश्वदानविधिः ... २७७              | हेमशृङ्गीदानविधिः ... ४५४           |
| हिरण्याश्वरथनामघेयं अष्टमं महादानम् २७९ | हेमशृङ्गीदानविधिरपरः ... ४५६        |
| हिरण्याश्वभिधानं सप्तमं महादानम् २७४    | हेमहस्तिरथाभिधानं नवमं महादानम् २८७ |



## ग्रन्थानां वचनसंख्या ।



गृष्टा

वृष्टा

अ

अगस्त्यः ८, २६१, ७, २, ४३७,  
६६७ ८८२ ।

अगस्तिः ११६ ।

अग्निपुराणम् ५२७, ८७१ ।

अङ्गिराः ५२, ५६, ४५०, ५२८, ६८२ ।

अन्विः १५४, ६००, ६७८, ८२७, ८५७,  
८८६ ।

अथर्वणगोपथब्राह्मणं २८२, २८६ ।

अम्बरीषः ४८७ ।

आ

आत्रेयः ४५१, ६२२ ।

आदित्यपुराणम् ३२, ६२, ६७, ८५, ११०,  
११८, १२०, १५५, १५५, १५६, २२३,  
२४१, २६३, ४०५, ४१७, ४२१, ४५७,  
४६१, ४८२, ५१०, ५१०, ५७३, ५८०,  
५८४, ६२८, ६८१, ७००, ८८७, ८०४,  
८०७, ८१६, ८२४, ८५८, ८६०, ८६२,  
८८२, १००२ ।

आपस्तम्बः ८७, ८३, ८४, १०७ ।

आम्नायरहस्यम् १२५ ।

आश्वलायनः ६३ ।

इ

इन्द्रः ४८८, ५८० ।

ई

ईश्वरः ३०४ ।

उ

उग्रना ५ ।

ऊ

ऊर्ध्वदेः १५० ।

ऊषिः १०२, ६०१ ।

ऊषष्टङ्गः ७१, ६८६ ।

औ

औपकायनः ५२ ।

क

कश्यपः १४६, ६७८, ६८२ ७१२ ।

कात्यायनः ३८, ४४, ४५, ४७, ५१, ५२,  
१०१, १०४, १०६, १०७, १०८, १०८,  
११६, १२८, १४१ १५४, ४१८, ४५५,  
५०५, ६८४, ८२६, ८३८ ८५६ ।

कात्यायनसूत्रम् १४२ ।

प्रष्टा

पृष्ठा

कानिकः १२५, १२५, १८०, १८१, २२८,  
२५८, २७८, ४११, ६१३, ६११, ७२१,  
७४०, ७७८, ७७८, ७८६, ८२३, ८२४ ।  
कालिकापुराणम् ५३१, ५५६, ५७५,  
५८८, ६६४, ६८०, ६८८, ७६८, ८२८ ।  
कालोत्तरम् १३४, २५१, २७४, ६४१ ।  
कालोत्तरशैवशास्त्रम् ८८४ ।  
काश्यपः ६८२, ८१० ।

कूकदः ६८८ ।

कर्मपुराणम् ६, ६, ८, १७, २४, ३८,  
४६१, ५०२, ५०४, ५४०, ५६४, ५७८,  
५८८, ५८८, ६००, ६११, ६३२, ६४१,  
६४२, ६४८, ६७८, ८५८, ८६२, ८६८ ।

कृष्णः २१४, ७७२ ।

ग

गर्गः १०३

गरुडः ५८७ ।

गरुडपुराणम् ५५, ६४, १०८, १४०, २०४,  
२३१, ४२८, ५११, ५१८, ५२३, ५८०,  
६३८, ६४८, ६४८, ६८१, ८८० ।

गाथा ६८५ ।

गरुडपुराणम् १८, ८८, ८५, ८८, २१५ ।

गालवः ७२, ७७, ७४ ।

गृह्यपरिशिष्टम् १०६, १०६, ।

गोपथब्राह्मणम् १२०, १८५

गोभिलः २८१ ।

गौतमः ४१, ४७, ८२, ६१५, ६७८ ।

ग्रन्थकारः १ ।

च

च्यवनः ७८ ।

छ

छन्दोगपरिशिष्टम् १०१, १०५, ११०,  
१२२, १२८, १२८ ।

चागलेषः २४

ज

जातुकर्णः १०१ ।

जामदग्निः ६२७ ।

जावालिः ७१, १४१, १४२, ४५०, ८६३,  
८८८ ।

ज्ञानरत्नावली १२५ ।

ज्योतिःपराशरः ७८ ।

ज्योतिःशास्त्रम् ६५, ६८, ७५, ८० ।

त

तैत्तिरीयश्रुतिः २१ ।

तैलक्यसारः १७७ ।

द

दत्तः २७, ५१, ६१, ८८, ६७४, ६७६, ६८० ।

देवलः ८, १६, २६, ४८, ५२, ५८, ७२,  
८१, ८५, १५४, ११६, ४४७, ४५५, ४७७,  
४८३, ५०१, ६७८, ८०८, ८२७, ८४१,  
८७८, ८८६, ८८१, ८८५ ।

देवीपुराणम् ४१, ६१, ६३, ७८, ८२, ८८,  
१५६, २३५, ४१६, ४२८, ४८०, ४८०,

पृष्ठा

पङ्खा

५१३, ५१८, ५४४, ५५८. ५६१, ५६८,  
६६७, ६७३, ८८६, ८८८, ८८८, ८६३,  
१००४, १०४४ ।

घ

घौम्यः १६, ८२, ८३ ।

न

नन्दिपुराणम् ५, ४८, १०२, ४५०, ४५६,  
४७७, ५०७, ५११, ५१३, ५२६, ५२६,  
५४७, ५४८, ५५६, ५७१, ८८२, ८०४,  
८०७, ८०८, ८२२, ८२३, ८४१, ८४६,  
८५६, ८५७, ८६०, ८८४, ८८८, १००२,  
१००४, १०३३, १०४१, १०५० ।

नारदः २०, ४१, ४३, ४६, ७८, ११६,  
१७४, २४१, २४६, ६२३, ६७८, ८७६,  
८७४ ।

नारदीयम् १२५, १३६, २३५, २३७, २३८,  
२८४, ५२८, ६०६ ।

नारदीयपुराणम् १०२, ६७८, ८१०, ८५६ ।

नारसिंहपुराणम् १६४, १६५ ।

प

पञ्चरात्रम् १०८, ११२, २३५, २३७, २८४,  
३२७ ।

पद्मपुराणम् २४, ३१, ३५, ४३, ५७, ५८,  
६२, ६५, ६७, ७१, ८३, १६४, १८१,  
३६६, ३७६, ४०७, ८१८, ८२०, ८२१  
८४८, ८५५, ८६२, ८८२, ८८८, १०३० ।

पराशरः ८०, ८१, ३३१ ।

परिशिष्टः ८८, १४३ ।

पिङ्गलामतम् १३४ ।

पितरः ५८४ ।

पितामहः ५८४, ६५२ ।

पिप्पलादः ८३२ ।

पुस्तकः ३१८, ३४६, ३६०, ३६१, ३६४,  
३७८, ३७८, ३८०, ३८२, ४१६, ७०२ ।

पैठोनसिः ८७, १४०, ५२७, ६८०, ६८० ।

प्रचेताः ५७, ७८, ८७, ८४, ६८२, ६८४,  
८८८ ।

प्रतिष्ठासारसंग्रहः १३४ ।

ब

बौधायणः २३, ३०, ८३, १०४, ११३,  
६१३, ६५५, ७१५, ७२०, ७३८, ७४५,  
७५५, ७७०, ७६७, ७७८, ८५७, १०३५, ।

ब्रह्मपुराणम् ८, ३४, ६७, ११४, १०८,  
४४८, ४५६, ४८१, ५४०, ५८०, ६००,  
७७४, ८७३, ८८२, ८१७, ८३१, ८६१,  
८६३, ८६४ ।

ब्रह्मवैवर्तम् ५५, ११३, ४८४, ६५६, ६५८,  
६६२, ६६६, ८६०, ८८२, १०५२ ।

ब्रह्मवैवर्तपुराणम् ७०८, ८०२ ।

ब्रह्मा ४३, ७७, ८४, ८८, ११७, ४४५,  
५१८, ५६७, ५७८, ५८०, ६५७, ६७३,  
७३२, ८०० ।

ब्रह्माण्डपुराणम् ५४, ८५, १०७, १०८,

पृष्ठा

१६०, २३२, २४०, २६६, २८७, ३२८,  
३५६, ५६६, ५७६, ६१८, ६२०, ६३८,  
६४८, ६८१, ७०७, ७४१, ७८१, ७८५,  
७८८ ७८८, ७८३, ७८६, ७८८, ८००,  
८०४, ८०८, ८१३, ८१४, ८१६, ८२०, ८२१,  
८३८, ८२१, ८५५, ८८३ ।  
ब्राह्मणः ५८८ ।

भ

भगवद्गीता १० ।  
भगवतीपुराणम् ६६७, ८८२ ।  
भगवान् ३७६ ।  
भगवान्कृष्णः १५० ।  
भरद्वाजः ७०, ७१, ७४ ।  
भविष्यत्पुराणम् ४३४, ४४५, ४६६, ४६७,  
४६७, ६०४, ५२५, ५२८, ६६३, ६७१, ६७३,  
६८०, ८५२, ८८१, ८०४, ८०८, ८१५, ८१८,  
८२१, ८७१, ८८८, १०३१ ।  
भविष्यपुराणम् १८, २१, २४, ३२, ३७, ४०,  
४७, ६२, ६३, ८३, ८४, ८७, १२०, १११,  
११२, ११८, १२६, १२६, १३८ ।  
भविष्योत्तरम् ८८, ११३, ३३२, ३६८, ४१७,  
७१०, ७१८, ८४१, ८५०, ८५३, ८६०, ८६७,  
८६८, ८६८, ८१७, ८८३, ८८५, ८८८ ।  
भानुः ४३०, ५८२, ५८४ ।  
भीष्मः ३४६, ५८५, ५८६, ८७४, ८८०, ८७४,  
८७७ ।  
भृगुः ७०, ७६

पृष्ठा

म

मत्स्यः २२, १६८, २१८, २४५, २५१, २६५,  
२७४, २८८, ३००, ३३४, ३३७, ३४८, ३८८,  
५३३, ६८६, १०१४ ।  
मत्स्यपुराणम् ८, १८, २४, ६८, ८२, ८४,  
१२२, १६६, १७२, १७७, १८२, १८७,  
२३२, २५६, २७८, २८२, २८३, २८७, ३२६,  
३३२, ३४०, ३८७, ४५६, ४६१, ४७८, ५०५,  
५०६, ५३०, ५३४, ५८८, ५८०, ५८६, ६४८,  
६५०, ६५३, ६६०, ६६३, ६८५, ६८८, ८४६,  
१०४७, १०४८ ।  
मनुः १७, २३, ३०, ३५, ३७, ४१, ४४, ५१,  
५६, ५६, ५८, ६०, ६७, ८६, ८८, ८०, ८१,  
१०८, ११५, १५१, १६७, २४२, ५१८, ५२८,  
५६७, ६७७, ६८०, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५,  
८८८ ।  
मनुविष्णु ३८ ।  
मनु-विष्णु-श्रुतपाः ६७५ ।  
मरीचिः १०६, १३८, ६८४ ।  
महाभारतः ६, १०, २५, २८, ३१, ३३, ३६,  
४०, ४१, ४५, ४६, ५३, ६३, ६६, ८१, ८५,  
८५, १५४, १६३, २५४, ४३५, ४४८, ४५०,  
४५८, ४६८, ४७७, ४८३, ५०७, ५१७, ५४०,  
५८८, ५८८, ५८६, ६३४, ६४४, ६४६, ६६४,  
६७८, ७१८, ८६४, ८७५, ८८८, ८०८, ८०४,  
८१२, ८१८, ८१८, ८२२, ८२४, ८३८, ८३८,  
८४७, ८६३, ८७३, ८८८, ८८१, ८८७, १००५,  
१००८, १०३४ ।

माण्डव्यः ८०, ४६४, ५०६

मार्कण्डेयः ८३ ।

मार्कण्डेयपुराणम् ८, १२१, २३४, २८८,  
८१७, ८४६ ।

मृत्युञ्जयः ७६४, ७६५, ७८४ ।

मोक्षचूडोत्तरशालम् १३४, १३५ ।

मैत्रायनीयपरिशिष्टं ११२, १४०, ।

### य

यमः ६, १०, २३, २४, २५, २८, ३१, ३६, ३७,  
३८, ४६, ५०, ५३, ५८, ८०, १०१, १०२,  
१४६, १४७, १७७, २४२, ४५२, ४७३, ५८५,  
५२८, ५८८, ६०६, ६७४, ६७६, ६८४, ७०२,  
८६०, ८६२, ८७४, ८८१, ८८८, ८८८, ८९३,  
८९७, ८९८, ८४१, ८६१, ८८२, ८८७, १००५,  
१०२६

यमशातातपौ २३,

याज्ञवल्क्यः ८, १२, २४, २६, ४४, ४६, ५१,  
५५, ५६, ५८, ६०, ६१, ६८, ८३, ८६, ८७,  
८१, १०४, १०७, ११५, १५२, ४३२, ४५०,  
४६१, ४७७, ५१०, ६७८, ६८० ।

युधिष्ठिरः ४३२, ४७४, ७६१ ।

योगियाज्ञवल्क्यः ८८ ।

### र

राजा २४० ।

रामः ३८४ ।

रामायणम् ८८, ८४७ ।

### ल

लक्षणसंग्रहः ३२८ ।

लक्षणसमुच्चयः ८८४ ।

लघुहारीतः ८१, १०६, ८८५ ।

लिङ्गपुराणम् १०१, ११३, १५३, २४८,  
३०१, ४१२, ४४४, ४६३, ६१०, ६३३, ६७७,  
६८७, ७३०, ७४६, ७५४, ७७८, ७८४, ८२२,  
८१६, ८२२, ८२६, ८३०, ८५४, ८८२, ८८८ ।

लोकोत्तरम् ४६१ ।

### व

वराहः ४३१ ।

वशिष्ठः २३, २५, २८, ३५, ३६, ५२, ५८,  
५८, ७१, ७३, ७६, ८०, ४५२, ४५३, ४६४,  
४८७, ५५६, ५६८, ५८२, ६७८, ८३० ।

वल्किपुराणम् ६, ८, २२, ४८, ५८, ८५, ८८,  
१५७, १८४, १८८, ४०१, ४३३, ४३८, ४६५,  
५२५, ५४०, ५५६, ५६२, ५६४, ५७८, ६८८,  
६४४, ६५८, ६६२, ६७२, ६७८, ६८१, ६८५,  
६८८, ७०१, ८५२, ८२६, ८३८, ८४८,  
१०१४, १०२५ ।

वक्रचपरिशिष्टं १२४, १२८, १४६, १०२८ ।

वातुलः २२८, २३१, २५८, २७८, ४८७,  
६३४, ७३२, ७८१ ।

वामनः ८८५ ।

वायुः ७५२, ७५४, ८५८ ।

वायुपुराणम् १००, १२८, १५४, २३४, ६११,  
६१८, ६१८, ६२२, ६२५, ६२६, ७०७, ७२५,



| पृष्ठा  |  |
|---|--|
| ७४७, ७४८, ७४९, ७५३, ७६८, ८११, ८१२, ८३८, ८१८, ८३१, १०३६।   |  |
| वाराहपरायणम् ३८, ६८, ८२, १००, १०२, १२०, ४०४, ४०८, ५१८, ५१६, ५५७, ५६१, ८०७, ८७२।   |  |
| विज्ञानखलितः ... १०८  |  |
| विनीताशुः ४२८, ४२८, ४३०।  |  |
| विश्वकर्मा १२६, १३३, १३४, १६८, १७४, १७६, १७७, २३३, २४२, ३३०, ३२६, ८१६।  |  |
| विश्वम्भरवासुशालम् ... १२३  |  |
| विश्वामित्रः ८१, २१४, ४१४, ४२३, ४३८, ४४८, ४५१, ५०७, ५६७, ७०८, ८०६, ८८३, ८८१, ८८८, ८२३, ८६१।   |  |
| विष्णुः ३३, ३५, ३८, ५५, ५८, ७६, ७७, ८२, ११६, १५१, ४५०, ४७७, ५६७, ६०१, ६७४, ६८४, ६८५, ८५२, ८६०, ८६४, ८८१, ८८८, ८१७, ८३८, ८४५, ८६२, ८८२, १००२, १०३०।                                |  |
| विष्णुगुप्तः ... ११७  |  |
| विष्णुधर्मः ७, ८, ४०, ३८२, ३८४, ४०२, ४२०, ४३६, ४७७, ४६४, ५८८।   |  |
| विष्णुधर्मोत्तरम् १८, २१, २८, ३३, ३४, ४७, ५३, ५४, ५७, ६१, ६४, ६५, ८१, ८२, ८६, १०१, १०२, १११, ११८, १०२, १३८, १५७, १६५, १७६, २३४, २३६, २३७, २४२, २४६, ३३०, ३८६, ४६८, ५०२, ५१७, ५१३, |  |

| पृष्ठा   |  |
|--|--|
| ५१८, ५५८, ६८२, ७०४, ७०५, ७१२, ७१८, ७७५, ७७६, ७८२, ८५८, ८६०, ८६२, ८६४, ८७०, ८७५, ८८०, ८८१, ८८२, ८८४, ८८८, ८८८, ८८०, ८८३, ८०५, ८१०, ८१८, ८२०, ८२२, ८२३, ८२८, ८४२, ८४८, ८५२, ८६६, ८८१, ८८६, ८८७, ८८८, १००१, १००३, १००६, १०४१। |  |
| वृद्धगौतमः ४३८, ४७२, ६३६, ७४२, ७५४, ८८८, १०३७, १०२८।   |  |
| वृद्धबोधायनः ७७०, ८०८  |  |
| वृद्धश्रिष्ठः ७२, ८१, ८३, १२२, ५०५।  |  |
| वृद्धशतातपः ... ५०   |  |
| बौधायनः १८८, ११०, ४३८, ५७८, ६१४।   |  |
| वृद्धस्यति १६, २५, ३८, ५२, ५५, ५७, ८६, ८८, १२२, ४८२, ४८८, ५०५, ५०७, ५१२, ५६७, ५६७, ६४६, ६५८, ६७५, ६७७, ८२४, ८७८।   |  |
| वेदव्यासः ५, ८५, १२५, ४४७, ५६७, ६४६, ८८८, ८११, ८४१, ८८८।   |  |
| बौधायनः १०८, ११०, ४३८, ५७८, ६१४।   |  |
| व्यासः ४, ७, ८, २०, २५, ३१, ३३, ३७, ४५, ५२, ५४, ६६, ८०, ८२, ८३, ८८, १०१, ११२, ४६१, ४७३, ५८६, ६४७, ६८४, ८८५, १।   |  |
| व्यासवशिष्टादिः ... ३३   |  |
| व्यासशतातपौ .. ३६  |  |
| श  |  |
| शङ्करः .. ३८४  |  |

|  | पृष्ठा |
|--|--------|
| शङ्खः २५, ५७, ६६ ।   |        |
| शङ्खलिखितौ ५२, ७८ ।  |        |
| शतपथयुतिः ६, १०७, १११, ११२ ।                                       |        |
| शतातपः १०, २८, ३१, ३८, ५०, ६६, ७१, ७२, ७८, ८८, ८९, १०१, १०२, १४० । |        |
| शतातपपराशरी २२, १ ।  |        |
| शाठ्यायनः ... ८०   |        |
| शिवधर्मोत्तरम् ... ४६७   |        |
| शिविः ... ८४८  |        |
| शुभावती ... ८३३  |        |
| शौनकः ... २२४  |        |
| शौनकीयम् ... ७६६   |        |
| शौचकीय ... ८०६   |        |
| शौरपुराणम् ... ६६८   |        |
| श्लोकगौतमः ... ८१  |        |
| श्लोकाः २२४, २५६, २८२ ।  |        |
| श्रीलक्ष्मः २१२, ४३३, ४८४, ७६२, ७७२, ८४१, ८३७, ८८५, ८८८ ।          |        |
| श्रीप्रश्नः ... ३५२  |        |
| श्रीभगवान् २१५, २८१, ३६२, ४३६, ८६८, ८३१, ८३३ ।                     |        |
| श्रीमार्कण्डेयः ... ६७७  |        |
| श्रीमार्कण्डेयपुराणम् ८१, ११८, १४२ ।                               |        |

ष

षट्तिंशत्तमम् ८२, ८४ १०३, ११८ ।

स

संग्रहः ... १२४

पृष्ठा

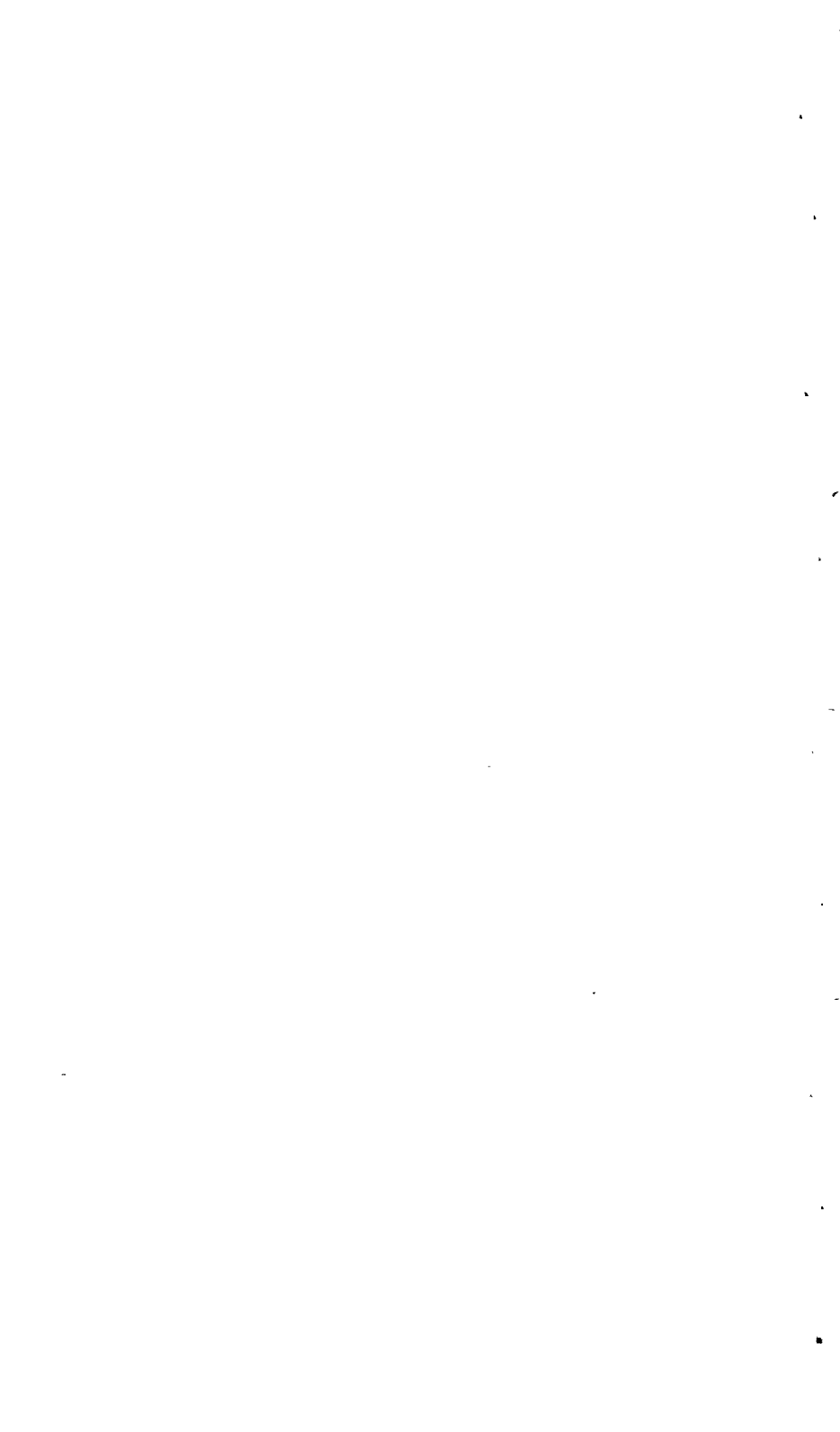
|   |  |
|---|--|
| संवर्तः २४, ३५, ५५, ५८, ४५५, ६४६, ६७८, ६८२, ८८२, ८८८, ८९०, ८३८, ८४२, ८४६ ।  |  |
| सनत्कुमारः १८८, २१५, २२७, २६७, २७२, २७७, २७८, ३६८, ४०८, ४८५, ४८८ ।  |  |
| सामवेदोपनिषत् १८, १५० ।   |  |
| सारसमुच्चयः ... १३५   |  |
| सुमन्तुः ... ६६४  |  |
| सूतः २०२, ३३४, ५३४, ७६६, ८०३, १०४८ ।  |  |
| सूर्यः ... ८२५  |  |
| सौरपुराणम् ५, ५३१, ५३८, ६८३, ८८२, ८८८ ।   |  |
| स्कन्दपुराणम् ८, २१, ५०, ५३, ५४, ५८, ५८, ६२, ६५, ६७, ६८, ७८, ७८, ८२, ८३, ८४, ८६, १०१, १०८, ११०, ११२, ११८, १२०, १५७, ३३३, ४१४, ४२२, ४२५, ४२८, ४२८, ४३४, ४४६, ४५४, ४६५, ४७६, ४८१, ४८२, ४८४, ५२८, ५५८, ५७२-५८८, ५८८, ६००, ६४३, ६६४, ६६८, ६८०, ८१४, ८६८, ८७२, ८८४, ८८४, ८८८, ८९६, ८९७, ८९८, ९००, ९४०, ९५४, ९६०, ९८०, ९८१, ९८२, १००२, १०३३, १०५० । |  |
| सायम्भुवः ... १३६   |  |

ह

हंसः ३८१, ८०५ ।

हारीतः १८, ८०, ८१, ४४७, ६८५, ८६३ ।

होता ... ४०४



गणेशाय नमः ।

हेमाद्रिः ।

तत्र दानखण्डं ।

प्रथमोऽध्यायः ।

कल्याणानि ददातु वो गणपतिर्यस्मिन्ननुष्टे सति  
क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्मायते ।  
जाते तच्चरणप्रणामसुलभे सौभाग्यभाग्योदये  
रङ्गस्याङ्गमनङ्कुशा निविशते देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥ १ ॥  
शश्वत्पुण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी  
सेयं वागधिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि वः ।  
यत्पादामलकोमलाङ्गुलिनखज्योत्स्नाभिरुहेलितः  
शब्दब्रह्मसुधाम्बुधिर्वृधमनस्यच्छृङ्खलं खेलति ॥ २ ॥  
रागः कृष्ण नवस्तवश्रुतिरियं चेतश्चमत्कारिणी  
मुग्धबेद्य यथा मया शुभरते वैदग्ध्यामाविष्कृतं ।  
जानीते दयितैव सा शुभरते यद्यद्विधत्ते भवान्  
इत्युक्ती मधुजिन्निरुत्तरमुखः श्लिथन् प्रियां पातु वः ॥ ३ ॥  
संसक्तो धरणीधरेश्वरभुवि क्रीडन्मृगाङ्गानन-  
श्रेणीमाकलयन् गुणान्वयमिलत्पञ्चाननस्यातिमान् ।  
कान्तारागविनोदिनान्निजपदं मुक्तामयं दर्शयन्  
भूयान्नित्यमनेकपापहतये श्रीकण्ठकण्ठीरवः ॥ ४ ॥  
ते देवस्य गभस्तयो दिनपतेरापन्नखेदच्छिदो  
निष्कृन्तन्तु कृतान्तपत्तनपथप्रस्थानदौस्थानानि वः ।

(१)

यैः सौवर्णमिवाखिलं करुणया निर्मातुमभ्युद्यतैः  
कीर्णस्वर्णपरागरागघटितं दिक्चक्र मालक्ष्यते ॥ ५ ॥

अस्ति शस्तगुणस्तीमः सीमवंशविभूषणं ।

महादेव इति ख्यातो राजराजिव भूतले ॥ ६ ॥

संग्रामेष्वधमर्णता सुपगता वीराः पराःकोटयः  
सर्वस्वप्रतिपादनेन विविधानाधीन्निरस्य क्षणात् ।  
स्वस्मादाददते निरत्ययसुखं तत्रैतदीयंशो  
दिक्कालानिव साध्यतां गमयितुंदिङ्मण्डलीं मुञ्चति ॥७॥

मैत्रीमर्ज्य गुर्जरव्रजपरां नेपालपालक्षमा-

माज्ञां पालय मालवेश्वर भयं नीरन्ध्रमन्ध्र स्मर ।

सप्तद्वीपमहौपतीनिति हितामध्यापयन्ती धियं

यत्कीर्तिः सुखदायिनी रिपुकुले मानुषदा मन्यते ॥८॥

हेलासादितलक्षमार्गणगणं श्रुत्वैतदीयंगुणं

येषां अणि रनुस्मरन्त्यहरहस्तुष्टाव दानाद्भुतं ।

तेषामेव महाहवेषु मिलतां प्रत्यर्थिनामर्थिना-

मप्यस्याथ भुजं व्रजन्ति विलयं सैन्यानि दैन्यानि च ॥ ९ ॥

अस्योच्चैर्भीमभूमोरुहगहनगुहागर्भगर्जन्मृगेन्द्र-

वासव्यासप्रसङ्गोच्चलनकुलकुलव्याकुलव्यालमालां ।

वारं वारं स्मृतैतद्भुजभुजगयुगस्फीतिभीतिज्वरौघां

मूर्च्छामृच्छन्ति हन्त क्षितिधरधरणीं लङ्घयन्तो द्विषन्तः ॥१०॥

घोडशक्रतवो तेन चक्रिरे चक्रवर्तिना ।

अपूर्णपञ्चयज्ञानां नृपाणां तेन का तुला ॥ ११ ॥

अनेन चिन्तामणि कामधेनु

कल्पद्रुमानर्थिजनाय दत्तान् ।

विलोक्य शङ्के किममुष्य सर्वं

गौर्वाणनाथोऽपि करप्रदोऽभूत् ॥ १२ ॥

तस्यास्ति नाम हेमाद्रिः सर्वश्रीकरणप्रभुः ।

निजोदारतया यश्च सर्वश्रीकरणप्रभुः ॥ १३ ॥

तस्य श्रीकरणेशस्य कापि लेखनचातुरी ।

यशःप्रशस्तिभिस्तूर्णं येन दिग्भित्तयो भृताः ॥ १४ ॥

लिपिं विधात्रा लिखितां जनस्य भाले विभूत्यापरिमृज्य दुष्टां ।

कल्याणिनीमेष लिखत्यथैनां चित्रां प्रमाणो कुरुते विधिश्च ॥ १५ ॥

संचिन्त्य संचिन्त्य तदेतदीयं धत्ते मनो विस्मय मस्मदीयं ।

प्राग्जन्मविद्यास्मरणक्षमोऽयं क्षणेन तद्विस्मृतिमेति दत्त्वा ॥ १६ ॥

मन्ये तत्कृतदानवारिलहरोपूर्णाऽयमर्णोनिधिः

कल्पान्तेऽपि न शोषदोषविषमां धत्तां कदाचिद्दृशां ।

किञ्चित् जलधिस्थितिप्रतिभुवं निश्चित्य दैत्यारिणा-

निश्चिन्तेन भुजङ्गपुङ्गवतनूतल्ये सुखं सुप्यताम् ॥ १७ ॥

चित्रं तद्वनदानवृष्टिपयसस्तत्तस्य किं ब्रूमहे

यस्मिन्नन्य वदान्यकीर्त्तिरतुला धत्ते दृणश्रेणितां ।

यद्भूमौ पतितं ग्रसिष्णु जनतापङ्कानि यच्चार्थिनां ।

न्यस्तं हस्ततलेषु भालफलके पापां लिपिं लुम्पति ॥ १८ ॥

तत्तर्पितो देवगणः स नूनमरोचकी चन्द्रमसः सुधायां ।

क्षयन्तु चन्द्रस्य तदीयकीर्त्तिस्पर्द्धासमृद्धानि फलन्यघानि ॥ १९ ॥

शूराणामवधि निर्धिश्य यशसामेकाग्रयः सम्पदां

दातृणां प्रथमः कलाकुलगृहे वैदग्ध्यभाजां गुरुः ।

धौरेयश्च विपश्चितां सुकृतिनामद्वैतवादास्पदं  
 नैवासीन्नच वर्त्तते न भविता हेमाद्रिसूरः परः ॥ २० ॥  
 विभर्त्ति नूनं द्विजवेश मेष स एव हेमाद्रिरिति प्रतीमः ।  
 उदारसन्तानवतो यदस्य कल्पद्रुमं दक्षिणबाहुमाहुः ॥ २१ ॥  
 अथा मूना धर्मकथादरिद्रं त्रैलोक्यमालोक्य कलेर्वलेन ।  
 तस्योपकारे दधता नुचिन्तां चिन्तामणिः प्रादुरकारि चारुः ॥ २२ ॥  
 पञ्चखण्डात्मके शास्त्रे ब्रतखण्डादनन्तरं ।  
 दानखण्डमिदं, तत्र द्वितीयं मथ कथ्यते ॥ २३ ॥  
 अस्मिन्ननेकदानौघरत्नरत्नाकरायिते ।  
 महाप्रकरणानाञ्च विज्ञेयोऽयमनुक्रमः ॥ २४ ॥  
 दानस्तुतिस्ततोदानस्वरूपस्य विरूपणम् ।  
 अङ्गप्रसङ्गो दानानां परिभाषाभिभाषणम् ॥ २५ ॥  
 श्रोतुः श्रद्धाभिष्टद्वयार्थमथ दानफलावलिः ।  
 तुलापुरुषमुख्यानि महादानानि षोडश ॥ २६ ॥  
 अखर्वपर्वतश्रेणि विश्राणनविधिस्ततः ।  
 परस्तादतिदानानां विधिर्विधुतपातकः ॥ २७ ॥  
 ततोदशमहादानविधिवैभववर्णनम् ।  
 कृष्णाजिनानि दानानि देवतादानसंग्रहः ॥ २८ ॥  
 अथ कालविशेषेण बहुधा दानवर्णनम् ।  
 अनन्तफलदानानामनन्तरमुपक्रमः ॥ २९ ॥  
 एवं प्रकरणान्यत्र त्रयोदश महामतिः ।  
 ब्रवीति प्राज्यराज्यादिसाधनानि मनीषिणाम् ॥ ३० ॥  
 अथ दानप्रशंसा तावदभिधीयते । — तत्र व्यासः ।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च चातुर्वर्ण्ये युधिष्ठिर ।

दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा देवेन भाषितम् ॥

नन्दिपुराणे । दानं परं प्रशंसन्ति दानमेव परायणं ।

दानं बन्धुर्म्मनुष्याणां दानं कोषो ह्यनुत्तमं\* ॥

दानं† तन्त्रः परं द्रव्यं दानं माता पिता यथा ।

दानेन न विना किञ्चित्प्रार्थितं फल माप्यते ॥

अपि वालाग्रमात्रस्य तुला तस्य न विद्यते ।

न दानशीलिनामापत्तस्माद्दानं समाश्रयेत् ॥

हारनूपुरसंघोषपूरितोत्तममन्दिरः ।

लावण्यगुणसम्पत्तिर्दानादेव हि लभ्यते ॥

सौरपुराणे । न दानादधिकं किञ्चिद्दृश्यते भुवनत्रये ।

दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते ॥

दानेन शत्रून् जयति व्याधिर्दानेन नश्यति ।

दानेन लभ्यते विद्या दानेन युवतीजनः ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम् ॥

उशना । दानादृते नोपचारो विद्यते धनिनोऽपरः ।

दीयमानं हि तत्तस्य भूय एवाभिवर्द्धते ॥

आह वेदव्यासः । यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने ।

तत्ते वित्तमहं मन्ये श्रेष्ठं कस्यापि रक्षति ॥

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनं ।

अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥

\* दानं कामफलादृक्षा दानं चिन्ताभणि वृणासिति क्वचित्पाठः ।

† पुत्रइति क्वचित्पाठः ।



बृहस्पतिः । तपोधर्मः कृतयुगे ज्ञानं त्रेतायुगे स्मृतं ।

हापरे चाध्वराः प्रोक्ताः कलौ दानं दया दमः ॥

अत्रार्थं शतपथश्रुतिः ।

तदेतत् त्रयं शिञ्चेत् दमं दानं दयामिति ।

दानेन भोगी भवति मेधावो बृहसेवया ।

अहिंसया च दोर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः ॥

यमः । यतीनान्तु शमी धर्मस्वनाहारो वनौकसां ।

दानमेव गृहस्थानां शुश्रूषा ब्रह्मचारिणां ॥

पापकर्मसमायुक्तं पतन्तं नरके नरं ।

त्रायते दान मेकन्तु पात्रभूते द्विजे कृतं ॥

तथा न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणं ।

सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशस्त्रेषु पठ्यते ॥

कूर्मपुराणं । दानधर्मात्परो धर्मी भूतानां नेह विद्यते ।

तस्माद्विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः ॥

द्विजातिभिरित्युपलक्षणं दानस्य सर्वसाधारणत्वात् ।

महाभारते । आयासशतलब्धस्य प्राणैभ्योऽपि गरीयसः ।

गतिरेकैव वित्तस्य दान मन्या विपत्तयः ॥

ब्राह्मणायाभिरूपाय यो दद्यादर्धमर्थिने ।

निदधाति निधिं श्रेष्ठं पारलौकिकमात्मनः ॥

कूर्मपुराणे । न हि दानात् परतरमन्यदस्तीति मे मतिः ।

अनधान्यवतः किञ्चिदहार्यं राजतस्करैः ॥

वल्गुपुराणे । तपःसु चैव तीर्थेषु व्रतेषु नियमेषु च ।

सम्यक् चीर्णेषु विप्रर्षे पश्चाद्दानं समाचरेत् ॥

यस्य वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनां ।  
नापि कीर्त्त्यै, न धर्माय तस्य वित्तं निरर्थकं ॥  
तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषादथ ।  
दद्यात्सम्यक् द्विजातिभ्यः कीर्त्तनानिच कारयेत् ॥

व्यासः । अहन्यहनि याचन्तमहं मन्ये गुरुं यथा ।  
मार्जनं दर्पणस्यैव यः करोति दिने दिने ॥  
किं धनेन करिष्यन्ति देहिनो भङ्गुराश्रयाः ।  
यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतं ॥  
यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्त्तये ।  
यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥  
\* इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ।  
अदाता पुरुषस्यागौ धनं सन्त्यज्य गच्छति ॥  
दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं-न मुञ्चति ।  
मनुः । दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्त्तिकं ।  
परितुष्टेन भावेन पात्र मासाद्य शक्तितः ॥  
द्रष्टे यज्ञे यद्दीयते दक्षिणादि तदैष्टिकं ।  
वह्निर्वेदि च यद्दानं दीयते तत् पौर्त्तिकं ।  
यत् किञ्चिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया ।  
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्व्वतः ॥  
स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये ।  
मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्य स्तथान्वहं ॥

विष्णुधर्मात् । न ददाति च दानानि मीघं तस्य धनार्जनं ।

उभ्यायोभ्याय दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर ॥  
 वज्रिपुराणे । अन्नं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ।  
 दानं विभवतोदत्त्वा नराः स्वर्यान्ति धर्मिणः ॥ तथा,  
 यद्वयजन्ति ददन्तीह भोगान् भुञ्जन्ति नित्यशः ।  
 मा मुदिश्य न ते मूढा इहैव सुखिनः परे ॥  
 याज्ञवल्क्यः । दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः ।  
 याचितेनापि दातव्यं अज्ञापूतन्तु शक्तितः ॥  
 मत्स्यपुराणे । \* उक्तसर्वगुणोपेतमुक्तदोषैर्विवर्जितम् ।  
 कामधुक् धेनुवहानं फलत्याल्लेप्सितं फलम् ॥  
 † इह-कीर्त्तिं वदान्याख्यां-स्त्रीतान् भोगांस्त्रिपिष्टपे ।  
 दानं अज्ञां तृतीयेऽपि जन्मनि प्रभवोत्तमे ॥ वदान्यो बहुप्रदः ।  
 दानमेव परोधर्मी दानमेव परन्तपः ।  
 न हि दानात् परतरमिह लोके-परत्र च ॥  
 दानेन भोगानाप्नोति दानेनायुश्च विन्दति ।  
 नरः स्वर्गापवर्गौ च दानेनैव समश्नुते ॥  
 मार्कण्डेयपुराणे । कुटुम्बं पीडयित्वापि ब्राह्मणाय महात्मने ।  
 दातव्यं भिक्षवेऽन्यन्नं आत्मनोभूतिमिच्छता ॥  
 देवलः । दुर्लभं भारते वर्षे जन्म तस्मान्ननुत्थता ।  
 मानुषाद्ब्राह्मणत्वञ्च दुर्लभं सुतरां मतं ॥  
 विप्रत्वे सति दुष्प्रापा विद्यादिगुणयोगिता ।

\* उक्तः सचगुणोपेतमुक्तदोषैर्विवर्जितः कचित्पाठः ।

† इह-कीर्त्तिं-वदान्याख्या-कचित्पाठः ।

तत्र न्यायार्जितार्थाप्तिस्ततो भक्त्याप्तिरिष्यते ॥  
लब्ध्वैतद्गुणसंयोगं तीर्थं पात्रञ्च पर्व च ।  
दानानि ये प्रयच्छन्ति कृतार्थास्ते नरा भुवि ॥  
अगस्त्यः । गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।  
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ॥  
यैर्न भुक्तं न च हुतं न तीर्थैः\* मरणं कृतम् ।  
हिरण्यमन्नमुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्चितम् ॥  
दीना विवसना रुक्षाः कपालाङ्कितपाणयः ।  
दृश्यन्ते हि महाराज जायमानाः पुनः पुनः ॥  
विष्णुधर्मात् । सीदते द्विजमुख्याय योऽर्थिने न प्रयच्छति ।  
सामर्थ्यं सति दुर्बुद्धिर्नरकायोपपद्यते ॥  
कूर्मपुराणे । यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेत् ब्राह्मणान् सुरान् ।  
सर्वस्वमपहृत्यैनं राजा राष्ट्रात् प्रवासयेत् ॥  
ब्रह्मपुराणे । सदाचाराः कुलीनाश्च रूपवन्तः प्रियंवदाः ।  
बहुश्रुताश्च धर्मज्ञा याचमानाः परात् गृहात्† ॥  
दृश्यन्ते दुःखिनः सर्वे प्राणिनः सर्वदा मुने ।  
अदत्तदानाज्जायन्ते परभाग्योपजीविनः ॥  
व्यासः । अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा ।  
तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम् ॥  
स्कन्दपुराणे । बोधयन्ति न याचन्ते देहीति क्लृप्तं जनाः ।  
अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि ॥

\* सुतीर्थमरणमिति पाठान्तरम् ।

† परान् गृहानिति पाठान्तरम् ।

देहीत्येवं ब्रुवन्नर्थी जनं बोधयतीव सः ।

यदिदं कष्टमर्थित्वं प्रागदानफलं हि तत् ॥

एकेन तिष्ठताधस्तादन्येनोपरितिष्ठता ।

दातृयाचकयोर्भेदः कराभ्यामेव सूचितः ॥

दीयमानन्तु यो मोहान्नोविप्राग्निसुरेषु च ।

निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं व्रजेत्तु सः ॥

‘दीयमानं’ तदुद्देशेन त्यज्यमानमित्यर्थः ।

शातातपः । माददस्वेति यो ब्रूयात् गव्यग्नौ ब्राह्मणेषु च ।

तिर्यग्योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥

यमः । कन्याप्रदाने यज्ञे वा यस्मिन् वा धर्मसङ्कटे ।

विघ्नमाचरते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

तस्माद्विभूतिमन्विच्छन्नदाने विघ्नमाचरेत् ।

दद्यादहरहः पात्रे लोकद्वयजिगीषया ॥

महाभारते । अर्हतामनुरूपाणां नादेयं ह्यस्ति किञ्चन ।

उच्चैःस्त्रवसमप्यश्वं प्रापणीयं सतां विदुः ॥

अनुनीय यथाकामं सत्यसन्धी महाव्रतः ।

स्वैः प्राणैर्ब्राह्मणः प्राणान् परित्राय दिवं गतः ॥

रन्तिदेवश्च साङ्ख्यो वशिष्ठाय महात्मने ।

अपः प्रदाय शीताश्च नाकपृष्ठमितोगतः ॥

आत्रेयचन्द्रदमयोरर्हतोर्विधेवद्वनम् ।

दत्त्वा लोकान् ययौ धीमाननन्तान् स महीपतिः ॥

शिविरीशीनराज्ञानि पुत्रश्च प्रियमौरसम् ।

ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमुपागतः ॥

प्रतर्दनः काशपतिः प्रदाय नयने स्वके ।

ब्राह्मणायातुलां कीर्त्तिमिह चामुत्र चाश्रुते ॥

दिव्यं मृष्टशलाकन्तु सौवर्णं परमर्द्धि तत् ।

कृतं देवामृधो दत्त्वा सराष्ट्रोऽभ्यपतद्विवम् ॥

‘मृष्टशलाकं’ उज्ज्वलपञ्चरम् ।

सङ्कृतिश्च तथात्रेयः शिष्येभ्यो ब्रह्म निर्गुणम् ।

उपदिश्य महातेजा गतो लोकाननुत्तमान् ॥

अम्बरीषो गवोर्दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान् ।

अर्बुदानि दशैकञ्च सराष्ट्रोऽभ्यपतद्विवम् ॥

सावित्री कुण्डले दिव्ये शरीरं जनमेजयः ।

रम्यमावसथञ्चैव दत्त्वामुं लोकमास्थितः ॥

ब्राह्मणार्थं परित्यज्य जग्मतुर्लोकमुत्तमम् ।

सर्व्वरत्नं वृषा दर्भा युवानोऽश्वाः प्रियास्त्रियः ॥

रम्यमावसथञ्चैवदत्त्वामुं लोकमास्थितः ।

निमोराष्ट्रञ्च वैदेहो जामदग्न्यो वसुन्धराम् ॥

ब्राह्मणेभ्यो ददौ चापि गयश्चोर्व्वीं सपत्तनाम् ।

अवर्षिणिच पर्य्यन्ये सर्व्वभूतानि चासकृत् ॥

राजा मित्रसहस्रश्च वशिष्ठाय महात्मने ।

मदयन्तीं प्रियां दत्त्वा तया सह दिवंगतः ॥

सहस्रजिच्च राजर्षिः प्राणानिष्टान् महायशः ।

ब्राह्मणार्थं परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥

सर्व्वकामैश्च सम्पूर्णं दत्त्वा वैश्वं हिरण्यम् ।

मुद्गलाय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महामतिः ॥

नाम्ना च द्युतिमान्नाम शाल्वराजः प्रतापवान् ।

दत्त्वा राज्यमृचीकाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥

मदिराश्वश्च राजर्षिर्दत्त्वा कन्यां सुमध्यमाम् ।

सुवर्णहस्ताय गतो लोकान् देवैरभिष्टुतान् ॥

लोमपादश्च राजर्षिः स तां दत्त्वा सुतां प्रभुः ।

ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वकामैरयुज्यत ॥

दत्त्वा शतसहस्रन्तु गवां राजा प्रसेनजित् ।

सवत्सानां महातेजा गतो लोकाननुत्तमान् ॥

एते चान्ये च बहवो दानेन तपसा सह ।

महात्मानो गताः स्वर्गं शिष्टात्मानो जितेन्द्रियाः ॥

तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिर्यावत् स्थास्यति मेदिनी ।

दानयज्ञप्रजासर्गैरेके हि दिवमाप्नुयुः ॥

दानेन भूता वशीभवन्ति दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।

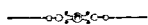
परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानात् दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥ इति-

श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वरसकल-

विद्या-विशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे

दानप्रशंसाप्रकरणम् ।

## द्वितीयोऽध्यायः ।



अथ दानस्वरूपमुपवर्ण्यते ॥

प्राचामाचारभाजां धुरमनुसरता येन सृष्टैर्विशिष्टै-  
रिष्टापूर्तै रणार्हीकृतकृतिनिवहै \* विश्वमास्थां समेति ।  
सोऽयं हेमाद्रिसूरिर्विविधबुधमनश्चित्तमैत्रीपवित्रं  
नानादान-स्वरूप-प्रकरणमधुना वक्ति निर्मुक्तदोषः ॥

तत्र देवलः । अर्थानामुदिते पात्रे अङ्गया प्रतिपादनम् ।

दानमित्यभिनिर्दिष्टं व्याख्यानं तस्य कथ्यते ॥

‘उदिते’ शास्त्रनिरूपिते । अर्थानां प्रतिपादनं नाम पात्रं प्रति  
स्वस्वामिभावापादनपर्यन्तस्यागः । ‘दिहेतु षडधिष्ठानं षडङ्गं  
षड्विपाकयुक् । चतुःप्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते’ ॥ अस्य  
विवरणं तेनैवोक्तम् । तत्र दिहेत्विति । नाल्पत्वं वा ‘बहुत्वं  
वा दानस्याभ्युदयावहम् । अङ्गा भक्तिश्च दानानां वृद्धिचयकरे  
स्मृते ॥ ‘अङ्गा’ आस्तिक्यबुद्धिः । स्नेहपूर्वमभिध्यानं ‘भक्तिः’ ।  
शक्तिरिति पाठे शक्तिरौदार्यम् । षडधिष्ठानमिति । ‘षड-  
धिष्ठानानि’ आश्रयाः निमित्तत्वेन यस्य तत्तथा । तान्याह ।

धर्ममर्थश्च कामश्च ब्रीडाहर्षभयानि च ।

अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि प्रचक्षते ॥



तानि विविनक्ति । पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम् ।

केवलं त्यागबुद्ध्या यद्वर्त्मदानं तदुच्यते ॥

‘प्रयोजनमनपेक्ष्य’ दृष्टफलाननुसन्धानेनेत्यर्थः ।

प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ।

तदर्थदानमित्याहुर्दैहिकं फलहेतुकम् ॥

स्त्री-पान-मृगयाक्षाणां प्रसङ्गाद्यत् प्रदीयते ।

अनर्हेषु च रागेण कामदानं तदुच्यते ॥

संसदि व्रीडया स्तुत्याचार्य्योर्धर्मिभ्यः प्रयाचितः ।

प्रदीयते च तद्दानं व्रीडादानमिति स्मृतम् ॥

दृष्ट्वा प्रियाणि युत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते ।

हर्षदानमिति प्राहुर्दानं तद्वर्त्मचिन्तकाः ॥

आक्रोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्ववेत् ।

दीयते तापकर्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते ॥

षडङ्गमिति । दाता प्रतिग्रहोता च अद्वा देयञ्च धर्मयुक् ।

देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड्विदुः ॥

तानि विवृणोति । अपापरोगी धर्मात्मा दित्सुरव्यसनः शुचिः ।

अनिन्द्याजीवकर्मा च षड्भिर्द्वाता प्रशस्यते ॥

‘अपापरोगी’ राजयत्मादिरोगरहितः ।

त्रिशुक्तः कृशवृत्तिश्च घृणालुः सकलेन्द्रियः ।

विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मणः पात्रमुच्यते ॥

त्रिशुक्त इति ।

‘त्रीणि’ विद्यान्वयवृत्तानि ‘शुक्तानि’ विशुद्धानि यस्य स तथा ।

‘घृणालुः’ कृपालुः । ‘सकलेन्द्रियः’ अविकलेन्द्रियः ।

सौमुख्याद्यतिसम्प्रीति रर्थिनां दर्शने सदा ।  
 सत्कृतिश्चानसूया च तदा श्रेयसि कीर्त्यते ॥  
 अपराबाधमक्लेशं\* प्रयत्नेनार्जितं धनम् ।  
 स्वल्पं वा विपुलं वापि देयमित्यभिधीयते ॥  
 यद्यत्र दुर्लभं भद्रं यस्मिन् कालेऽपि वा पुनः ।  
 दानार्हो देशकालौ तौ स्यातां श्रेष्ठौ न चान्यथा ॥  
 अवस्था देशकालानां पात्रदात्रोश्च सम्पदा ।  
 हीनं वापि भवेच्छ्रेष्ठं श्रेष्ठं वाप्यन्यथा भवेत् ॥

षड्विपाकत्वमाह । दुष्फलं निष्फलं हीनं तुल्यं विपुलमक्षयम् ।  
 षड्विपाकयुगुद्दिष्टं षडेतानि विपाकतः ॥  
 तानि व्याचष्टे । नास्तिक-स्तेन-हिंसेभ्यो जाराय पतिताय च ।  
 पिशुन-भ्रूण-हन्तृभ्यां प्रदत्तं दुष्फलं भवेत् ॥  
 'दुष्फलं' विरोतफलम् । महदप्यफलं दानं श्रद्धया परिवर्जितम् ।  
 परबाधाकरं दानं परमप्यूनतां व्रजेत् ॥  
 'निष्फलं' अपक्वफलम् । अत्यन्ताफलत्वे तु यदेव श्रद्धया करोति  
 तदेव वीर्यवत्तरं भवतीतीतरार्थाऽनुपपन्नः स्यात् फलवचन-  
 विपाकशब्दविरोधश्च । 'परं' श्रेष्ठम् । 'ऊनत्वञ्च' किञ्चिन्नूना-  
 मिप्रायम् । अन्यथा पूर्वेण पौनरुक्त्यप्रसङ्गात् ।  
 यथोक्तमपि यद्वत्तं चित्तेन कलुषेण तु ।  
 तत्तु सङ्कल्पदोषेण दानतुल्यफलं भवेत् ॥  
 युक्ताङ्गैः सकलैः षड्भिर्दानं स्यात् विपुलीदयम् ॥

अनुक्रोशवशाद्दत्तं दानमक्षयतां व्रजेत् ॥

‘अनुक्रोशः, दया । चतुःप्रकारमाह ।

ध्रुवमाजस्त्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात् ।

वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः ॥

प्रपा-राम-तडागादि सर्व्वकामफलं ध्रुवम् ।

तदाजस्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिने दिने ॥

अपत्य-विजयैश्वर्य्य-स्त्री-बालार्थं यद्विधत्ते ।

इच्छासंस्थन्तु तद्दानं काम्यमित्यभिधीयते ॥

कालापेक्षं क्रियापेक्षमर्थापेक्षमिति स्मृतम् ।

त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सहीमं होमवर्जितम् ॥

त्रैविध्यमाह । नवोत्तमानि चत्वारि मध्यमानि विधानतः ।

अधमानोति शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः ॥

तदेव विविनक्ति । अन्नं दधि मधुत्राणं गो-भू-रुक्माश्व-हस्तिनः ।

दानान्युत्तमदानानि, उत्तमद्रव्यदानतः ॥

विद्यादानादनावास-परिभोगौषधानि च ।

दानानि मध्यमानीह मध्यमद्रव्यदानतः ॥

‘परिभोग इति’ परिभोगसाधनं खट्वासनादि ।

उपानत्-प्रेङ्ख-यानानि कृत्रपानासनानि च ।

दीप-काष्ठ-फलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ॥

बहुत्वादर्थजातानां सङ्ख्या शेषेषु नेष्यते ।

अधमान्वशिष्टानि सर्व्वदानान्यतो विदुः ॥

‘बहुवार्षिकं’ बहुनि वर्षाणि प्राप्तं पुरातनमिति यावत् ।

एतेनोत्तममपि हस्त्यश्वादि, जीर्णतां प्राप्तमधमं भवति ।

विनाशत्वमाह । इष्टं दत्तमधीतं वा विनश्यत्यनुकीर्त्तनात् ।

स्नाधा-नुशोचनाभ्याञ्च भग्नतेजो विपद्यते ॥

तस्मादात्मकतं पुण्यं न वृथा परिकीर्त्तयेत् ।

भुक्तवानिति तत्प्राहुस्तमेव कृतवादिनम्\* ॥

‘स्नाधा’ प्रशंसा, ‘वृथा’ रक्षादिप्रयोजनव्यतिरेकेण ।  
कूर्मपुराणात् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलञ्चेति कथ्यते

अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे ॥

अनुद्दिश्य फलं तत् स्यात् ब्राह्मणाय तु नित्यकं ।

यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे ॥

नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥

‘पापोपशान्त्या इति’ नियतनिमित्तोपलक्षणम् ॥

अपत्य-विजयै-श्वर्य-स्वर्गार्थं यत्प्रदीयते ।

दानं तत् काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मविदुः प्रदीयते ।

चेतसा भक्तियुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥

मनुः । येन येन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।

तेन तेन हि भावेन तत्प्राप्नोति हि पूजितः ॥

‘येन येन हि भावेन’ सात्विकराजसादिना ।

तदुक्तं भगवद्गीतासु । दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।

देशे कालेच पात्रेच तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।

दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥

\* वादिन इति पाठान्तरम् ।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।

असंस्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् ॥ कृतानि विधिहीनानि वञ्चनार्थं परस्य वा ।

क्रोधलोभाभिभूतेन-तामसानि विनिर्दिशेत् ॥

सात्विकानि भवन्तीह अद्वया परया द्विज ।

तामसानां फलं भुङ्क्ते तिर्यक्ते मानवः सदा ॥

वर्णसंस्कारभावेन वार्द्धके यदि वा पुनः ।

वाल्मे वा दासभावे वा नात्र कार्या विचारणा ॥

अतोऽन्यथा तु मानुष्ये राजसानां फलं भवेत् ।

सात्विकानां फलं भुङ्क्ते देवत्वे नात्र संशयः ॥

मत्स्यपुराणात् ॥ येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम ।

पौरुषेण विना तेषां केषाञ्चिद्विद्यते फलम् ॥

कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम् ।

कृच्छ्रे ण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम् ॥

गारुडपुराणात् । कायिकं वाचिकं दानं मानसञ्च त्रिधा मतम् ।

अर्हते यत्सुवर्णादिदानं तत्कायिकं मतम् ॥

आर्त्तानामभयं दद्मीत्येतद्वै वाचिकं स्मृतम् ।

विद्ययास्याद्यया योगिः\* तद्दानं मानसं द्विजाः ॥

हारीतः । असद्रव्यदान-मस्वर्गं,† यच्च दत्त्वा परितप्यते तर्ह्य-

दानमफलं, यच्चोपकारिणे ददाति तन्मात्रं परिक्रिष्टं,‡ यच्च सोपधं

\* योगीति पाठान्तरम् ।

† असद्रव्यप्रदाने न स्वर्गमिति वा पाठः ।

‡ परिक्रिष्टमिति क्वचिद्विपाठः ।

ददाति अभ्याचित \* मत्पुत्रं, यच्चापात्वाय ददाति अनिष्टदानं  
 श्रवति, यच्च दत्त्वा परिकीर्त्यते यच्च स्मयदानं आत्तुरं, यच्चाश्वद्वया  
 ददाति-क्रोधाद्राक्षसम्, यच्चाक्रूश ददाति दत्त्वा च क्रोशति  
 असत्कृतं पैशाचं, यच्चावज्जातं ददाति दत्त्वाचावजानीते मुभूशो-  
 स्तामसं यच्चाप्राकृतो ददाति, एते दानोपसर्गा यैरूपसृष्टं दानं  
 असिद्धा† मसम्बद्ध-मस्वर्ग-मयशस्य-मध्रुव-मफलं वा । ‡ तर्ह्यदानम्,  
 तस्मिन्नेव संकल्पकाले दीयमानद्रव्यासमर्पणम् । उपकारिणे, §  
 प्रत्युपकारसमीहयेत्यर्थः । ‘तन्मात्रं’ यावदत्तं तावन्मात्रं । ‘सोपधं’  
 स्नेहाद्युपाधिसहितं, अभ्याचितम्, लोकप्रतिपत्त्यर्थं ख्यापितम् ।  
 ‘अनिष्टदानं’ शत्रवे दानं, स्मयदानं, मादृशोऽन्योदाता नास्ती-  
 त्येवस्त्रिधो भावविशेषः स्मयः, तेन यद्दानं । अप्राकृतः, मत्तादिः ।  
 भविष्यपुराणे ॥ महादानानि वै विद्यादतिदानानि सर्वदा ।

पुण्यमिष्टञ्च पूर्त्तञ्च वृथा दानञ्च यत्नतः ॥

‘महादानानि’ वक्ष्यमाणानि षोडश तुलापुरुषादीनि ।

कनकाश्वतिलानागा दासीरथमहोष्ठहाः ।

कन्याच कपिला धेनुर्महादानानि वै दश ॥

सामवेदोपनिषदि । त्रीण्याहु रतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ।

नरकादुद्धरन्त्येव जपवापनदीहनात् ॥

शङ्खः । इष्टिभिः पशुबन्धैश्च चातुर्न्मास्यैर्यजेत्तु यः ।

\* अन्यत्रावितमिति वा पाठः ।

† अप्रसिद्धमिति क्वचित् पाठः ।

‡ तर्हि त्यागानन्तरकाले हस्तार्पणसम्भवेत्यादान मसमर्पणमिति वा पाठः ।

§ यस्योपकारिणे इति पाठान्तरम् ।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्यज्ञैर्जतं च स द्रष्टवान् ॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानाञ्चैव पालनम् ।

आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च द्रष्टमित्यभिधीयते ॥

एकाम्निकादौ यत्कर्म त्रेतायां यच्च ह्ययते ।

अन्तर्वेद्याञ्च यद्दानं द्रष्टं तदभिधीयते ॥

शङ्खः । रोगिणां परिचर्या च पूर्त्तमित्यभिनिर्द्दिशेत् ।

व्यासः । पुष्करिण्य स्तथावाप्यो, देवतायतनानि च ।

अन्नदानमध्वारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥

नारदः ॥ ग्रहीपरागे यद्दानं सूर्यसंक्रमणेषु च ।

हादश्यादौ तु यद्दानं तदेतत् पूर्त्तमुच्यते ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा

धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते

चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे दानस्वरूप-

प्रकरणम् ॥ २ ॥

## तृतीयोऽध्यायः ।



अथ दानाङ्गनिरूपणम् ।

तानि च द्रव्य-काल-श्रद्धा-संज्ञकानि ।

तदुक्तं भविष्यपुराणे । प्रतिग्रहीता द्रव्यञ्च कालो देशश्च पावनः ।

श्रद्धा च सात्विकी ज्ञेयं दानाना-मङ्गपञ्चकं ॥

तत्र पावननिरूपणम् ।

स्कन्दपुराणे देवीं प्रति ईश्वरवचनं ।

श्रुतीनामाकराह्येते रत्नानामिव सागराः ।

विप्रा विप्राधिपमुखे पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

विप्राधिपः, चन्द्रः तद्वन्मुखं यस्याः सा तथा देवीसम्बोधनमेतत् ।

यत्र वेदविदो विप्रा न प्राश्नन्त्युत्तमं हविः ।

न तत्र देवा देवेशि हविरग्नन्ति कर्हिचित् ॥

तथाच तैत्तिरीयश्रुतिः । यावती वै देवता स्ताः सर्वा विद-

विदि ब्राह्मणे वसन्तीत्यादि ।

वियदित्युच्यते व्योम, प्रकारः प्रापणे स्मृतः ।

दिवं सम्प्रापयन्त्ये ते दातृन् विप्रास्ततः स्मृताः ॥

अपि नारायणोऽनन्तो ब्रह्मा स्कन्दोऽनिलः शिखी ।

तज्ज्ञानं नाभिनन्दन्ति यत्र विप्रा न पूजिताः ॥

येषां प्रसादसुलभ-मायु-धर्मः सुखं धनम् ।

श्री-र्यशः-स्वर्गवासश्च तान् विप्रानर्चयेद्बुधः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे श्रीभगवानुवाच ।



ब्राह्मणैः पूजितैर्नित्यं पूजितोऽहं न संशयः ।  
 निर्भत्सितैश्च निर्भत्स्ये तैरहं सर्वकर्मसु ॥  
 विप्राः परा गतिर्मह्यं यस्तान् पूजयते नृप ।  
 तमहं स्वेन रूपेण प्रपश्यामि युधिष्ठिर ॥  
 काणाः कुण्डाश्च घण्डाश्च दरिद्रा व्याधिताश्च ये ।  
 एवरूपाश्च ये विप्राः पश्य रूपं ममैव ते ॥

एतत्तु ब्राह्मणजातिमात्रस्तुतिपरं ।

याज्ञवल्काः । तपस्तप्तासृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान् वेदगुप्तये ।

तत्स्यथं पितृदेवानां धर्मसंरक्षणाय च ॥

मत्स्यः । नास्ति विप्रसमो देवो नास्ति विप्रसमो गुरुः ।

नास्ति विप्रात्परः शत्रुर्नास्ति विप्रात्परो विधिः ॥

वल्किपुराणात् । न जातिर्न कुलं राजन् न स्वाध्यायः श्रुतं न च ।

कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणं ॥

किं कुलं वृत्तहीनस्य करिष्यति दुरात्मनः ।

कृमयः किं नजायन्ते कुसुमेषु सुगन्धिषु ॥

नैकमेकान्ततो ग्राह्यं पठनं हि विशाम्यते ।

वृत्तमन्विष्यतां तात रक्षोभिः किं न पठ्यते ॥

बहुना किमधीतेन नटस्येव दुरात्मनः ।

तेनाधीतं श्रुतंवापि यः क्रियामनुतिष्ठति ॥

कपालस्थं यथा तोयं स्वदते च यथा पयः ।

दूष्यं स्यात् स्थानदोषेण, वृत्तहीनं तथा श्रुतम् ॥

तस्माद्विद्धि महाराज वृत्तं ब्राह्मणलक्षणम् ।

चतुर्व्वेदोपि दुर्व्वृत्तः शूद्रादल्पतरः स्मृतः ॥

सत्यं दम-स्वपोदान-महिंसेन्द्रियनिग्रहः ।

दृश्यन्ते यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

वशिष्ठः । यं न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् ।

न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मणः ॥

सन्, विशिष्टः, असन्, तद्विपरीतः । अत्र चात्मोत्कर्षप्रका-  
शनं यो न करोति स पात्रमिति तात्पर्यमिति ।

यमः । अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ।

स्वदारनिरतो दाता स वै ब्राह्मण उच्यते ॥

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।

असम्भिन्नार्थमर्थ्यादः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥

आशिषोर्थार्थं-पूजाञ्च प्रसङ्गान्नकरोति यः ।

निवृत्तो लोभमोहाभ्यां तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

‘आशिषः’ आशीर्वादान्, ‘अर्थार्थं’ धनलाभाय । ‘प्रसङ्गः’

अत्यासक्तिः ।

सत्यं दानं क्षमा शीलं आनृशंस्यं दया घृणा ।

दृश्यन्ते यत्र लोकेऽस्मिं स्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

यमशातातपौ । तपोधर्मी दया दानं सत्यं शौचं श्रुतं घृणा ।

विद्या-विज्ञान-मास्तिक्य-मेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥

बौधायनः । विद्या तपश्च योनिश्च एतद्ब्राह्मणलक्षणं ।

विद्या तपोभ्यां योहीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥

वशिष्ठः । ये क्षान्तदान्ताः श्रुतपूर्णकर्णा जितेन्द्रियाः

प्राणिवधे निवृत्ताः ।

प्रतिग्रहे सङ्गचिताग्रहस्तास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥

यमः । विद्यावन्तश्च ये विप्राः सुव्रताश्च तपस्विनः ।

सत्य-संयम-संयुक्ता ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः ॥

पुनन्ति दर्शनं प्राप्ताः किं पुनः संगतिं गताः ।

तेषां दत्त्वाच भुक्त्या च प्राप्नुयुः परमां गतिम् ॥

दत्त्वा द्विजाय शुद्धाय दाता याति शुभां गतिम् ।

विद्यातपःशीलवांश्च स च तारयते नरः ॥

कूर्मपुराणे ॥ स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तोजितेन्द्रियाः ।

सत्यसंयमयुक्ताश्च तेभ्यो दद्यात् द्विजोत्तमाः ॥

ओत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने ।

व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं शक्तिपूर्वकम् ॥

सम्बर्त्तः । ओत्रियाय दरिद्राय अर्थिने च विशेषतः !

यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ॥

ओत्रियस्तु, यमेनोक्तः ।

ओंकारपूर्व्विकास्तिस्रः सावित्रीर्थ्यश्च विन्दतिः ।

चरितब्रह्मचर्य्यश्च सवै ओत्रिय उच्यते ॥

ओंकारपूर्व्विका, महाव्याहृतोरिति शेषः ।

यान्नवल्काः । सर्व्वस्य प्रभवोविप्रा श्रुताध्ययनशालिनः ॥

तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः ।

पद्मपुराणे । यथाहि सर्व्वदेवानां ज्येष्ठः श्रेष्ठः पितामहः ॥

तथा ज्ञानी सदा पूज्यो निर्म्ममोनिष्परिग्रहः ॥

मत्स्यपुराणे । शीलं संवसता ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः ।

प्रज्ञा संकथनात्ज्ञेया त्रिभिः पातं परीच्यते ॥

भविष्यपुराणे । क्षान्ति-सृष्टि-दया-सत्यं-दानं शीलं तपः श्रुतम् ।

एतदष्टाङ्गमुद्दिष्टं परमं पात्रलक्षणम् ॥

वशिष्ठः । स्वाध्यायाढ्यं योनिमन्तं प्रशान्तं वैतानस्यं पापभीरुं  
बहुन्नं । स्त्रीषु चान्तं धार्मिकं गोशरण्यं व्रतैः क्लान्तं तादृशं  
पात्रमाहुः ॥ 'योनिमान्' प्रशस्तकुलोद्भवः । 'वैतानस्थः' अग्नि-  
होत्रादिकर्मपरः । 'स्त्रीषु चान्तः' स्त्रीविषये चान्तः । 'गोश-  
रण्यः', गोशुश्रूषारतः ।

यमः । विद्यायुक्ती धर्मशीलः प्रशान्तः चान्तोदान्तः सत्यवादी  
कृतज्ञः । वृत्तिग्लानो गोहितो गोशरण्यो दाता यज्वा ब्राह्मणः  
पात्रमाहुः ॥

स्वाध्यायवान् नियमवांस्तपस्वी ध्यानविच्च यः ।

चान्तो दान्तः सत्यवादी विप्रः पात्रमिहोच्यते ॥

महाभारते । साङ्गांस्तु चतुरो वेदान् योऽधीते वै द्विजर्षभः ।

षड्भ्योऽनिवृत्तः कर्मभ्यस्तं पात्रमृषयोर्विदुः ॥

'पात्रं, पात्रतममित्यर्थः ।

वशिष्ठः । किञ्चिद्देदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ।

पात्राणामपि तत् पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥

बृहस्पतिः । किञ्चिद्देदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ।

आगमिष्यति यत् पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति ॥

ब्रह्मचारी भवेत्पात्रं पात्रं वेदस्य पारगः ।

पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥

व्यासः । किञ्चिद्देदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ।

असङ्कीर्णं च यत्पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति ॥

'असङ्कीर्णं, योन्यादिसङ्कररहितम् ।

याज्ञवल्क्यः । न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता ।

यत्र वृत्तं मिमे चोभे तद्वि पात्रं प्रकीर्तितम् ॥

देवलः । मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रीचरियश्च ततः परः ।

अनूचानस्तथा भूण-ऋषिकल्प-ऋषि-श्रुतिः ॥

इत्येतेऽष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं स्तुतौ ।

तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्या-वृत्त-विशेषतः ॥

ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रो यदा भवेत् ।

अनुपेतः क्रियाहीनो मात्र इत्यभिधीयते ॥

‘अनुपेतः’, उपनयनरहितः ।

एकदेशमतिक्रम्य वेदस्याचारवानृजुः ।

स ब्राह्मण इति प्रोक्तो निभृतः सत्यवाग्धृणी ॥

‘एकदेशातिक्रमः’, वेदस्य किञ्चिद्गूढनस्याध्ययनम् ।

‘निभृतः’, शान्तः ।

एकां शाखां सकल्याम्बा षड्भिरङ्गैरधीत्य वा ।

षट्कर्मनिरतो विप्रः श्रीचरियो नाम धर्मवित् ॥

वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः ।

शेषं श्रीचरियवत् प्राप्तः सोऽनूचान इति स्मृतः ॥

अनूचानगुणोपेतो यज्ञ-स्वाध्यायमन्वितः ।

भूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजी जितेन्द्रियः ॥

वैदिकं लौकिकञ्चैव सर्वं ज्ञान-मवाप्य यः ।

आश्रमस्थो वशी नित्यमृषिकल्प इति स्मृतः ॥

‘लौकिकम्’, अर्थार्जनादिज्ञानम् ।

जडैरेताभ्यस्तपस्ये नियताशा न संशयो ।

शापा-नुग्रहयोः शक्तः सत्यसन्धो भवेदृषिः ॥

निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ।

ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो-मुनिः ॥

‘निवृत्तः’ निषिद्धकाम्यकर्मभ्यः । ‘निष्क्रियः’, अर्थार्जनादि-  
क्रियारहितः ।

एवमन्वय-विद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः ।

त्रिशुक्ता नाम विप्रेन्द्राः पूज्यन्ते सवनादिषु ॥

‘सवनादिषु’ यज्ञादिषु ।

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि कृत्वा विप्रो यथाविधि ।

निस्तारयति दातारमात्मानञ्च स्वतेजसा ॥

‘समर्थोऽपि, समर्थएवेत्यर्थः ।

न लोके ब्राह्मणेभ्योऽन्यत् पवित्रं पुण्यमेव वा ।

अशक्यञ्च द्विजेन्द्राणां नास्ति वृत्तवतामिति ॥

योक्तव्यो हव्य-कथ्येषु त्रिशुक्ती ब्राह्मणो द्विजैः ।

अभिभूतश्च पूर्वोक्तैर्दोषैः स्पृष्टश्च नेष्यते ॥

‘अभिभूतः, अपकृष्टः ।

‘पूर्वोक्तैः, कुलविद्याचारैः । ‘दोषैः, उपपातकादिभिः ।

मनुः । पात्रस्य हि विशेषेण अङ्गधानस्तथैव च ।

अल्पम्वा बहु वा प्रेत्य दानस्य प्राप्यते फलम् ॥

दत्तः । समं-द्विगुण-साहस्र-मनन्तञ्च यथाक्रमम् ।

दाने फलविशेषः स्याद्विंशायामेव मेव हि ॥

शतमब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ।

सहस्रगुणमाचार्यं अनन्तं वेदपारगे ॥

‘अब्राह्मणः, राजभृतादिः ।

यदाह शातातपः ।

अब्राह्मणास्तु षट्प्रोक्ता ऋषिः शातातपोऽब्रवीत् ।

आद्यो राजभृतस्तेषां द्वितीयः क्रयविक्रयी ॥

तृतीयो बहुयाज्यः स्यात् चतुर्थो ग्रामयाजकः ।

बहवो याज्या यस्य स बहुयाज्यः ।

पञ्चमस्तु भृतस्तेषां ग्रामस्य नगरस्य वा ॥

ग्रामस्य नगरस्य सृत इत्यन्वयः ।

अनागतान्तु यः पूर्वां सादिताञ्चैव पश्चिमाम् ।

नोपासीत द्विजः सन्ध्यां स षष्ठोऽब्राह्मणः स्मृतः ॥

‘ब्राह्मणब्रुवस्तु, पुरस्तादपात्रेषु व्याख्यास्यते ।

आचार्यस्तु महाभारते ।

अध्यापयेत्तु यः शिष्यं कृतोपनयनं द्विजः ।

सरहस्यञ्च सकलं वेदं भरतमत्तम ॥

तमाचार्यं महावाहो प्रवदन्ति मनोषिणः ।

एकदेशन्तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ॥

योऽध्यापयति हृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ।

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति नृपोत्तम ॥

सम्भावयति चान्नेन स विप्रोगुरुरुच्यते ।

अग्न्याधेयं पाकयज्ञा\*जग्निष्टोमादिकं यथा ॥

यः करोति हतोपीनूनं स तु स्यादृत्विजो द्विजः ।

\* अग्निष्टोमादिकान्मन्त्रं निति क्वचित् पाठः ।

† यस्य मनस्यन्विगिदोच्यते रति क्वचित् पाठः ।

यमः । सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥

प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ।

‘प्राधीतः, प्रारब्धाध्ययनः ।

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिं गतिम् ।

वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स भवेद्वेदपारगः ॥

बृहस्पतिः । शूद्रे समगुणं दानं वैश्ये तु द्विगुणं स्मृतम् ।

क्षत्रिये त्रिगुणं प्राहुः षड्गुणं ब्राह्मणे स्मृतम् ॥

श्रोत्रिये चैव साहस्रमाचार्यं द्विगुणं ततः ।

आत्मज्ञे शतसाहस्रमनन्तं त्वग्निहोत्रिणि ॥

विष्णुधर्मात्तरे । अमानुषे समं दानं गोषु ज्ञेयं फलं तथा ।

द्विगुणञ्च तदेवोक्तं तथा त्रैवर्णसङ्करे ॥

शूद्रे चतुर्गुणं प्रोक्तं विशि चाष्टगुणं भवेत् ।

क्षत्रिये षोडशगुणं ब्रह्मवन्धौ तदेव तु ॥

द्वात्रिंशदुग्रं स्मृतं दानं वेदाध्ययनतत्परे ।

शतघ्नं तद्विनिर्दिष्टं प्राधीते लक्षसम्भितम् ॥

अनन्तञ्च तदेवोक्तं ब्राह्मणे वेदपारगे ।

एतेषु, केषाञ्चिदब्राह्मणब्राह्मणब्रुवादीनामपात्राणामपि  
पात्रत्वनिरूपणं मन्त्रवद्ववादिदानव्यतिरिक्तदानविषयम् ।

मन्त्रपूर्वञ्च यद्दानमपात्राय प्रदीयते दातुर्निराकृत्य हस्तं  
तद्भोक्तुर्जिह्वां निकृन्तति

शातातपवचनात् । उपरुदन्ति दातारं गौरश्वः काञ्चनं क्षितिः ।

अश्रोत्रियस्य विप्रस्य हस्तं दृष्ट्वा निराकृते-

क्षितिं वशिष्ठवचनाच्च । मन्त्रपूर्वं गवादिदानानामपात्रप्रति-



पादकानिषेधात् शूद्रादीनान्तु पात्रत्वनिरूपणम् अन्नदानविष-  
यम् । कृतान्नमितरेभ्य इति गौतमवचनात् । अन्नं सर्वत्र  
दातव्यमिति वक्ष्यमाणत्वाच्च ।

दत्तः । व्यसनापट्टणार्थञ्च कुटुम्बार्थञ्च याचते ।

एवमन्विष्य दातव्यं सर्वदानेष्वयं विधिः ॥

व्यसनं, राजचीराद्युपद्रवः ।

‘आपत्, दुर्भिक्षादिपौड़ा । ‘आद्योऽर्थशब्दो, निवृत्तिवचनः ।

मनुः । सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सार्ववेदसम् ।

गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः ॥

नवैतान् स्नातकान् विद्याद्ब्राह्मणान् धर्म्मभिक्षुकान् ॥

‘सान्तानिकः, सन्तानप्रयोजनविवाहार्थीत्यर्थः ।

‘अध्वगः’ अत्र धर्म्मार्थं प्रचलितः ।

(सार्ववेदसः) सर्वस्वदक्षिणयज्ञकृत् ।

‘उपतापी, व्याधिपीडितः ।

निःस्त्रेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः । एतेभ्यो हि द्विजा-  
ग्रेभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् इतरेभ्यो बहिर्व्वेदि कृतान्नन्तु विधीयते ॥

‘विद्याविशेषतः’ इति, अल्पविद्याय अल्पं बहुविद्याय बह्वित्यर्थः ।

बौधायनः । सुत्राह्वण-श्रोत्रिय-वेदपारगेभ्यो गुर्व्वर्थ-निवेशौष-  
धार्थ-वृत्तिक्षीण-यक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोग-वैश्वजितेषु द्रव्यविभागी  
यथाशक्ति कार्य्यो बहिर्व्वेदि भिक्षमानेषु कृतान्नमितरेषु ॥ निवेशः,  
विवाहः । ‘वैश्वजितः, सर्वस्वदक्षिणया कृतविश्वजिद्यागः । बहि-  
र्व्वेदिग्रहणादेतेभ्यो बहिर्व्वेदपि धनमवश्यं देयम् अन्येभ्यस्तु अन्त-  
र्व्वेदेव धनदाननियमः । बहिर्व्वेदि तु कृतान्नस्यैव ।

आपस्तम्बः । भिक्षमाणो निमित्त-माचार्यो विवाही यज्ञो  
मातापितृर्वुभूषार्हतश्च नियमादिलोपः । तत्र, गुणान् समीच्य  
यथा देयं, इन्द्रिय-प्रीत्यर्थं तु भिक्षमाणमनिमित्तं न तथाद्रियेत ।  
'बुभूषा, भरणेच्छा ॥ अर्हतश्च नियमादिलोप इति, अधिकारिण-  
आवश्यककर्मविधिलोपप्रसङ्गः ।

यमः । वेदेन्यनसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु । सन्तारयति  
दातारं महतः किल्बिषादपि ॥

पद्मपुराणे । एकं वेदान्तगं विप्रं भोजयेत् अज्ञयान्वितः ।

तस्य भुक्त्वा स वै कीटिविप्राणां नात्र संशयः ॥

शातातपः । वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत् ।

न तु मूर्खं निराहारं प्रज्ञातमुपवासिनं ॥

व्यासः । यत्सिक्थं वेदविद्भुङ्क्ते षट्कर्मनिरतः शुचिः ।

दातुः फलमसंख्येयं जन्म जन्म तदक्षयम् ॥

वेद-विद्या-व्रत-स्नाते श्रोत्रिये गृहमागते ।

क्रीडन्त्यौषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥

औषधयः, अन्नानि ।

महाभारते । तद्भक्तास्तद्वना-राजस्तद्गृहा-स्तद्वपाश्रयाः ।

अर्थिनश्च भवन्त्वर्थे तेषु दत्तं महाफलम् ॥

(अत्र) तच्छब्देन पूर्वोक्ताः पितरो देवताश्च परामृष्यन्ते ।

अथवा, तदेव दीयमानं भक्तमदनीयं येषां ते तथा

एवं तद्वनादिशब्दा अपि ।

तत्करेभ्यः परेभ्यो वा ये भयार्ता युधिष्ठिर ।

अर्थिनी भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥

हतस्वा-हतदाराश्च ये विप्रा देशसंप्लवे ।  
 अर्थार्थमभिगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥  
 चारित्रनियता राजन् ये कृशाः कृशवृत्तयः ।  
 अर्थिनश्चोपगच्छन्ति तेषु दत्तं महाफलम् ॥  
 अव्युत्क्रान्ताः स्वधर्मेषु पाषण्डसमयेषु च ।  
 कृशप्राणाः कृशाहारास्तेषु दत्तं महाफलम् ॥  
 तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तथा भैक्षचराश्च ये ।  
 अर्थिनः किञ्चिदिच्छन्ति तेषां दत्तं महाफलम् ॥

आदित्यपुराणात् । अक्रोधना धर्मपराः शान्ता-दमदमे रताः ।

तादृशाः साधवो विप्रास्तेभ्यो दत्तं महाफलम् ॥  
 हतसर्वस्वहरणा-निर्दोषा-प्रभविष्णुभिः ।  
 स्पृहयन्ति सुभक्तानां तेषु दत्तं महाफलम् ॥

अथ शातातपपराशरी ।

सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ।  
 भोजने चैव दाने च दहत्यासप्तमं कुलम् ॥

भविष्यपुराणे ।

यस्त्वासन्न मतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते ।  
 दूरस्थं भोजयेन्मदो गुणाढ्यं नरकं व्रजेत् ।  
 तस्मान्नातिक्रमेत् प्राज्ञो ब्राह्मणान् प्रातिवेशिकान् ॥  
 'प्रातिवेशिकान्, स्वगृहाददूरवर्त्तिगृहान् ।  
 सम्बन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा ।  
 भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धून् गृहाधिप ॥  
 नातिक्रमेन्नरस्वेतान् सुमूर्खानपि गोपते ।

अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

‘विट्पतिः, जामाता ।

‘सुमूर्खानपि नातिक्रमेदित्येतत्, अन्नदानविषयम् ।

‘हिरण्यादिदाने तु’ सन्निहितमूर्खव्यतिक्रमे दोषाभावात् ।

तदुक्तं व्यास-वशिष्ठ-बोधायन-शातातप-पराशरैः ।

यस्य चैको गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ।

बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥

ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ।

ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मानि ह्रयते ॥

महाभारते । यदि स्यादधिको विप्रो दूरे वृत्तादिभिर्युतः ।

तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधिम् ॥

विष्णुः । पुरोहितस्वात्मन एव पात्रं स्वस-दुहित-पुत्रजामातरश्चेति ।

‘यस्यैते पुरोहितादयः, तस्यैव ते अन्यगुणरहिता

अपि पुरोहितादित्वेनैव पात्राणि ।

व्यासः । मातापितृषु यदत्तं भ्रातृषु स्वसृतासु च ।

जायापत्योस्तु यदत्तं \* सोऽनित्यः स्वस्तिसंक्रमः ॥

पितुः शतगुणं दानं महस्रं मातुरूच्यते ।

अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्यं दत्तमक्षयम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् ।

आत्मनस्तु भवेत् पात्रं नान्यस्य स्यात् पुरोहितः ।

पुरोहिते तु स्वे दत्तं दानमक्षय्यमुच्यते ॥

उपाध्याय-त्विजोश्चैव गुरावपि च मानवैः ।

\* सोऽनन्तस्वर्गसंक्रम इति पाठान्तरम् ।

वर्णापेक्षा न कर्त्तव्या मातरं पितरं प्रति ॥

‘उपाध्यायादयस्तु, पूर्वमेव व्याख्याताः ।

तथा । मातृश्वसा स्वसाचैव तथैव च पितृश्वसा ।

मातामही भागिनेयी भागिनेयस्तथैव च ॥

दौहित्रो-विट्पतिश्चैव तेषु दत्तञ्च अक्षयम् ।

श्रीभ्रष्टे यत्तथा दत्तं तदप्यक्षयमुच्यते ॥

माता-पित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि ।

दीना-नाथ-विशिष्टेभ्योदातव्यं भूतिमिच्छता ॥

अदत्तदानाज्जायन्ते परभाग्योपजीविनः ॥

‘उपकारिणि’ परोपकारपरे ।

‘विशिष्टाः’ गुणातिशयशालिनः ।

ब्रह्मपुराणे । यत् कन्यासु पिता कुर्याद्दानं पूजनमर्चनम् ।

यत्कृतं सुकृतं विद्यात्तासु दत्तं तदक्षयम् ।

यदत्तं तासु कन्यासु तद्दानं पुण्यमेव च ॥

कालिकापुराणात् । यदत्तं वेदविहिप्ते यदत्तं ब्रह्मचारिणि ।

तपोनिधेस्तु यदत्तं कारुण्येन च यत् सदा ।

तत् सर्वमक्षयं दानं वैमल्येन विधाय यत् ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् । अब्रदाने न कर्त्तव्यं पात्रापेक्षणमणुपि ।

अन्नं सर्वत्र दातव्यं धर्मकामेन वै द्विज ॥

सदोषेऽपि तु निर्दोषं सगुणेऽपि गुणावहम् ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देयमन्नं सदैव तु ॥

विद्या-ध्ययनसत्त्वानामन्नदानं महाफलम् ॥

तथा । दत्त्वा नृपतिभीतानां धनिनाञ्च तथा धनम् ।

तत्करेभ्यश्च भीतानां फलमक्षयमुच्यते ॥  
 यियक्षतां तथा दत्तं व्यसनं तर्तुमिच्छताम् ।  
 दुःखान्वितानां दीनानामक्षयं परिकीर्तितम् ॥  
 विवाह-मेखलाबन्ध-प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ।  
 आपन्नेषु तु यद्वत्तमक्षयं तदुदाहृतम् ॥

सम्बर्त्तः । दानान्येतानि देयानि तथान्यानि च सर्वशः ।  
 दीना-न्ध-कृपणा-र्थिभ्यः श्रेयःकामेन धीमता ॥  
 पद्मपुराणे । दीना-न्ध-कृपणा-नाथ-वाग्विहीनेषु यत्तथा ।  
 विकलेषु तथान्येषु जड-वामन-पङ्गुषु ।  
 रोगार्त्तेषु च यद्वत्तं तत्स्याद्बहुफलं धनम् ॥

अथ अपात्रनिरूपणम् ।

तत्रमनुः । गोरक्षकान् वाणिजकां स्तथा कारु-कुशीलवान् ।  
 प्रैथान् वार्हुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥  
 ये व्यपेताः स्वकर्मभ्यः परपिण्डोपजीविनः ।  
 द्विजत्वमभिकाङ्क्षन्ति तांश्च शूद्रवदाचरेत् ॥  
 नानृग्राह्यो भवति नवणिग्ग्न कुशीलवः ।  
 न शूद्रप्रेषणं कुर्वन्नस्तेनो न चिकित्सकः ॥  
 अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ।  
 तं ग्रामं दण्डयेद्राजा चौरभक्तप्रदोहि सः ॥

वसिष्ठः । उदक्यान्वासते येषां येच केचिदनग्नयः ।  
 कुलस्वाश्रोत्रियं येषां सर्व्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥

‘अन्वासते’ कर्मकाले समीप एव तिष्ठति ।

विष्णुः । नादनं यस्मै दद्यान्नभयान्नोपकारिणि ।

न नृत्य-गीतशैलेभ्यो धर्म्मार्थमिति निश्चयः ॥

‘उपकारिणि, आत्मोपकारपरे-प्रत्युपकारसमीहयेत्यर्थः ।

महाभारते । यस्तु प्रेषान् द्विजान् मूढो योजयेद्व्य-कव्ययोः ।

न भवेत्तत्फलं तस्य वैदिकीयं तथा श्रुतिः ॥

यमः । अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।

नैषां प्रतिग्रहीदेशो न शिलातारयेच्छिलाम् ॥

अपविद्धा-ग्निहोत्रस्य गुरोर्विप्रियकारिणः ।

द्रविणं नैव दातव्यं सततं पापकर्म्मणः ॥

न प्रतिग्रहमर्हन्ति वृषला-ध्यापका द्विजाः ।

शूद्रस्याध्यापनाद्विप्रः पतत्यत्र न संशयः ॥

तथा । राजधानी तथा शून्या यथा कूपश्च निर्जलः ।

यथा हुतमनग्नौ च तथा दत्तं द्विजेऽनृचे ॥

वसिष्ठः । यथा काष्ठमयो हस्ती\* यथा चर्ममयो मृगः ।

यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्वयस्ते† नामधारकाः ॥

विद्वद्भोज्यान्यविद्वांसो येषु राष्ट्रेषु भुञ्जते ।

अप्यनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वा जायते भयम् ॥

व्यास-शातातपी । नष्टशैचि व्रतभ्रष्टे विप्रे वेद-विवर्जिते ।

रोदित्यन्नं दीयमानं किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥

शौचहीनास्तु ये विप्रा न च यज्ञोपवीतिनः ।

हुतं दत्तं तपस्तेषां नश्यत्यत्र न संशयः ॥

\* यस्येति क्वचित्पाठः ।

† नाम विधनौति क्वचित्पाठः ।

ऊषरे वापि तं बीजं यच्च भस्मनि ह्यते ।  
 क्रियाहीनेषु यद्वत्तं त्रिषु नाशोविधीयते ॥  
 प्रस्तरे पतितं बीजं भिन्नभाण्डे च दोहनम् ।  
 भस्मन्यपि हुतं द्रव्यं तद्वद्दानमसाधुषु ॥

‘पूर्वत्र पात्रगुणकथने कृतेऽपि’ पुनर्दोषवचनमेवंविधदोष-  
 भागजनप्रतिषेधार्थम् ।

मनुः । पात्रभूतो हि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम् ।  
 असत्सु विनियुञ्जीत तस्य देयं न किञ्चन ॥  
 सञ्चयं कुरुते यश्च प्रतिगृह्य समन्ततः ।  
 धर्मार्थं नोपयुङ्क्ते यो न तं तत्स्करमर्चयेत् ॥  
 ‘असत्सु, निषिद्धेषु द्यूतादिषु ।

दत्तः । विधिहीने तथापात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।  
 न केवलं हि तद्याति शेषमप्यस्य नश्यति ॥

मनुः । अनर्हते यद्ददाति न ददाति यदर्हते ।  
 अर्हा-नर्हापरिज्ञानादनाद्वर्माच्च हीयते ॥

यमः । यस्तु निङ्गप्रचुरतां वृत्तिमलिङ्गेभ्यः प्रयच्छति ।  
 घोरायां ब्रह्महत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥

भविष्यपुराणे । नाब्राह्मणाय दातव्यं न देयं ब्राह्मणाक्रिये ।  
 न ब्राह्मणब्रूवे चैव न च दुर्ब्राह्मणे धनम् ॥

व्यासः । ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मन्त्र-संस्कार-वर्जितः ।  
 जातिमात्रोपजीवो च भवेद्ब्राह्मणः स तु ॥  
 गर्भाधानादिभिर्युक्तस्तथोपनयनेन च ।  
 न कर्मविन्नचाधीते स भवेद्ब्राह्मणाक्रियः ॥



वाराहपुराणे । अत्रतौ वैश्य-राजन्यौ शूद्रस्याब्राह्मणास्त्रयः ।

वेद-व्रतविहीनश्च ब्राह्मणो ब्राह्मणब्रुवः ॥

यमः । यस्य विदश्च वेदीच विच्छिद्येते त्रिपौरुषम् ।

स वै दुर्ब्राह्मणो नाम यश्चैव वृषलीपतिः ॥

कूर्मपुराणे । न वार्य्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हेतुकेऽपि वा ।

न पाषण्डिषु सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित् ॥

‘नास्तिकः, परलोकवासनाशून्यः ।

‘हेतुकः, हेतुभिः परलोकं निराकरिणुः ।

मनुविष्णुश्च । न वार्य्यपि प्रयच्छेत बैडालव्रतिके द्विजे ।

नबकव्रतिके पापे नावेदविदि धर्मवित् ॥

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनोपार्जितं धनम् ।

दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥

‘अनर्थः, प्रत्यवायः ।

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।

दाढ-प्रतियहीतारौ तथैवाज्ञौ निमज्जतः ॥

यमः । यः कारणं पुरस्कृत्य व्रतचर्यां निषेवते ।

पापं व्रतेन प्रच्छाद्य बैडालं नाम तद्व्रतम् ॥

अर्थश्च विपुलं गृह्य दत्त्वा लिङ्गं विवर्जयेत् ।

आश्रमान्तरितं रक्षेद्बैडालं नाम तद्व्रतम् ॥

यतीनामाश्रमं गत्वा प्रत्यवस्येत्तु यः पुनः ।

यतिधर्मविलापेन बैडालं नाम तद्व्रतम् ॥

विष्णुः । धर्मवर्ज्जी सद्दालुः\* शूद्रिकी लोकदम्भकः ।

बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥  
 यश्च धर्मध्वजो नित्यं सुराध्वज इवोच्छ्रितः ।  
 प्रच्छन्नानि च पापानि ब्रैडालं नाम तद्व्रतम् ॥  
 अधोदृष्टिर्नैकृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।  
 शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो हिजः ॥  
 ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ।  
 ते पतन्त्यधतामिश्रेतेन पापेन कर्मणा ॥

चतुर्विंशतिमतात् ।

रोदित्यन्नं दीयमानं किं मया दुष्कृतं कृतम् ।  
 अश्रोत्रियस्य विप्रस्य हस्तं दृष्ट्वा निराकृतेः ॥

कात्यायनस्वन्यायाह ।

यः स्वाध्यायाग्निमालः स्याद्देवादीनैभिरिष्टवान् ।  
 निराकर्त्तामरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिरिति ॥

शातातपः । नेष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्टञ्च वारुणौ ।

यच्च वाणिज्यके दत्तं न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

दक्षः । धूर्त्तं बन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे ।

चाट-चारण-चौरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥

स्कन्दपुराणे । देव-पितृ-विहीने यदीश्वरेभ्यश्च दीयते ।

दत्त्वा तु कौर्त्तितं यच्च वेदाग्नित्याग्निने तथा ॥

अन्यायो-पार्जित-धनैर्दत्तमब्राह्मणे च यत् ।

गुरवेऽनृतवक्त्रे च स्तेनाय पतिताय च ॥

क्षतघ्नाय च यद्दत्तं सर्वदा ब्रह्मविद्भिषे ।

याजकाय च सर्वस्य वृषण्याः पतये तथा ॥

परिचाराय भृत्याय सर्व्वस्य पिशुनाय च ।  
 इत्येतानि च राजेन्द्र वृथादानानि षोडश ॥  
 गर्भस्थोऽज्ञानवालोपि भुङ्क्ते वृद्धो न यौवने ।  
 तद्वत्तस्येह नाशोस्ति सर्व्वथा रिपुसूदन ॥

तदीयफलमिति शेषः ।

विष्णुधर्मात् । परस्थाने वृथा दानं सदोषं परिकीर्त्तितम् ।

आरुढ़पतिते चैव अन्यायात्तैर्द्वैतैश्च यत् ।  
 व्यर्थं हि ब्राह्मणे दानं पतिते तत्स्करे तथा ।  
 गुरोश्चाप्रीतिजनके कृतघ्ने ग्रामयाजके ॥  
 वेदविक्रायके चैव यस्य चोपपतिर्गृहे ।  
 स्त्रोभिर्जितेषु यद्वत्तं व्यालग्राहे तथैव च ॥  
 ब्रह्मबन्धोच यद्वत्तं यद्वत्तं वृषलीपतौ ।  
 परिचारके च यद्वत्तं वृथा दानानि षोडश ॥

महाभारते । पङ्कज-वधिरा मूका व्याधिनीपहताश्च ये ।

भर्त्तव्यास्ते महाराज न तु देयः प्रतिग्रहः ॥

इति प्रतिग्रहीत निरूपणम् ।

अथ द्रव्याख्यं दानाङ्गमुच्यते ।

तत्र देयनिरूपणम् ।

भविष्यपुराणे । यद्यदिष्टं विशिष्टञ्च न्यायप्राप्तञ्च यद्ववेत् ।

तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥

वल्गुपुराणे । सुभोपात्तेन यत्किञ्चित् करोति लघुना नरः ।

अनन्तं फलमाप्नोति मुहुर्लोऽपि यथा पुरा ॥

‘सुभोपात्तेन’ न्यायोपाज्जितेन ।

‘लघुना’ स्वल्पेन द्रव्येणेतिशेषः ।

देवीपुराणे । न्यायतो यानि प्राप्तानि शाकान्यपि नृपोत्तम ।

तानि देयानि देव्यास्तु कन्यका-योषितां सदा ।

तद्भुक्तेषु च विप्रेषु अपरेषु च नित्यशः ॥

विष्णुपुराणे । यद्यदिष्टतमं लोके यज्ञास्य दयितं गृहे ।

तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥

महाभारते । विशेषतो महाराज तस्य न्यायार्जितस्य च ।

अहया विधिवत् पात्रे दत्तस्यान्तो न विद्यते ॥

गौतमः । स्वामी ऋक्थ-क्रय-सम्बिभाग-परिग्रहा-धिगमेषु ब्रा-

ह्मणस्याधिकं लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्व्विष्टं वैश्यशूद्रयोरिति ।

‘अप्रतिबन्धः’ दायः तत् ऋक्थं । ‘सम्बिभागः’, सप्रतिबन्धो दायः ।

‘परिग्रहः’, जलदणकाष्ठादेरनन्यपूर्व्वस्य स्वीकारः । ‘अधिगमः’

निध्यादेः प्राप्तिः । एषु निमित्तेषु स्वामी भवति । ‘अधिकम्’

असाधारणम् । ‘निर्व्विष्टम्’, कृथादिना द्विजशूद्रादिना च यत्न-

बन्धम् । निर्व्वेशो भृतिभोगयोरिति स्मरणात् ।

मनुः । सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ।

प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥

न्यायोपचयार्थं द्रव्यप्रयोगः ।

‘कर्मयोगः’, आर्त्विज्यम् ।

नारदः । धनमूलाः क्रियाः सर्वा यत्नस्तस्यार्जने मतः ।

रक्षणं वर्द्धनं भोग इति तस्य विधिः क्रमात् ॥

तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं शुक्लं शबलमेव च ।

कृष्णञ्च तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पुनः ॥

‘एकैकस्य शुक्लादेः सप्त सप्तभेदा भवन्तीत्यर्थः ।

श्रुत-शौर्य-तपः-कन्या-याज्य-शिष्या-न्वयागतम् ।

धनं सप्तविधं शुक्लमुदयोप्यस्य तद्विधः ॥

‘आगतशब्दः’, श्रुतादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते । ‘कन्यागतम्, आर्षविवाहे वराङ्गहोतं गोमिश्रुनादि । ‘याज्यागतं’ आर्त्विज्यादिलब्धम् । ‘शिष्यागतम्, गुरुदक्षिणादि । अत्र च यथाधिकारं, शुक्लत्वमवधेयं । ‘उदयः’ फलं तदप्यस्य शुद्धमित्यर्थः ।

कुशीद-क्षुषि-वाणिज्य-शिल्प-शुल्का-नुवृत्तितः ।

कृतोपकारादाप्तञ्च शबलं समुदाहृतम् ॥

‘न्यायोपचयार्थं द्रव्यप्रयोगः, कुशीदं ।’ शिल्पं, कारुकादिकर्म ।

‘आकरादिभ्योद्रव्योदयः, शुल्कं ।’ ‘अनुवृत्तिः’, सेवा ।

पार्श्वक-द्यूत-चौर्या-र्त्ति-प्रतिरूपक-साहसैः ।

व्याजेनोपार्जितं यत्तत् सर्व्वेषां कृष्णमुच्यते ॥

पार्श्वकोपार्जितं, उत्कोचादिलब्धं । ‘आर्त्त्युपार्जितं, परपीडया लब्धं । प्रतिरूपकं, मणिसुवर्णादेः प्रतिरूपकरणं । ‘साहसं, स्वप्राणत्यागयाङ्गीकारेण पश्यतोहरत्वादिकं । ‘व्याजः’ दम्नेन तपःप्रभृति ।

तेन क्रयो विक्रयश्च दानं ग्रहणमेव च ।

विविधाश्च प्रवर्त्तन्ते क्रियाः सम्भोग एव च ॥

यथाविधेन द्रव्येण यत् किञ्चित् कुरुते नरः ।

तथाविधमवाप्नोति सफलं प्रेत्य चेह च ॥

‘यथाविधेन’ शुक्लेन कृष्णेण शबलेन वा दानादि कुरुते तथाविधं फलमाप्नोतीति, शुक्लेन, शुद्धं, दुःखरहितम् ।

‘शबलेन, मिश्रं । कृष्णेन, असुखीदयम् ।  
 पद्मपुराणे । शुक्लेन वित्तेन कृतं’ पुण्यं बहुफलं भवेत् ।  
 शबलं मध्यमफलं कृष्णं हीनधनं फलम् ॥  
 ब्रह्मप्रोक्ते । शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्यात् अद्वयान्वितः ।  
 तीर्थं पात्रं समासाद्य देवत्वे तत् समश्नुते ॥  
 राजसेन च भावेन वित्तेन शबलेन च ।  
 दद्याद्दानमतिथिभ्योमानुषत्वे तदश्नुते ॥  
 तमोवृत्तस्तु यो दद्यात् कृष्णवित्तेन मानवः ।  
 तिर्य्यक्ते तत्फलं प्रेत्य समश्नाति नराधमः ॥  
 नारदः । तत्पुनर्द्वादशविधं प्रतिवर्णाश्रयात् स्मृतम् ।  
 साधारणं स्यात्त्रिविधं श्रेष्ठं नवविधं स्मृतम् ॥  
 धर्मग्रामतिशेषः । प्रतिवर्णाश्रयान्नवविधं साधारणं त्रिविधं  
 मित्येवं द्वादशविधमित्यर्थः ।

क्रमागतं प्रीतिदायः प्राप्तञ्च सह भार्य्यया ।  
 अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधं धनम् ॥  
 वैशेषिकं धनं ज्ञेयं ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम् ।  
 प्रतिग्रहेण संलब्धं याज्यतः शिष्यतस्तथा ॥  
 त्रिविधं क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वैशेषिकं धनम् ।  
 युद्धोपलब्धं काराच्च दण्डाच्च व्यवहारतः ॥

‘कारः, वत्यादिः ।

वैशेषिकं धनं ज्ञेयं वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम् ।  
 कृषि-गौरक्ष-वाणिज्यैः शूद्रस्यैभ्यस्त्वनुग्रहात् ॥  
 ‘एभ्यः’ ब्राह्मणादिभ्यः ।

सर्वेषामिव वर्णानां एवं धर्माधनागमः ।

विपर्ययादधर्मः स्यान्नचेदापन्नरीयसी ॥

( एवंधर्मसाधनं द्रव्यं निरूप्य तच्च कियद्देयं किं देयमित्यपेक्षायां  
याज्ञवल्काः ।

स्वं कुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते ।

नान्वये सति सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम् ॥

‘अन्वये’ सन्ताने । ‘प्रतिश्रुतं’ प्रतिज्ञातम् ।

‘कुटुम्बाविरोधस्तु, व्याख्यातो बृहस्पतिना ।

कुटुम्बभक्त-वसनाद्देयं यदतिरिच्यते ।

मध्वास्वादो विषं पञ्चादातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत् ॥

‘भक्तं’, अन्नं । ‘वसनं’ वस्त्रं । (यावता द्रव्येण कुटुम्बस्य वस्त्रमन्नं

संपद्यते तदतिरिक्तं देयं, इतरत्तु न देयमित्यर्थः) ।

मनुः । शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।

मध्वापानो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः ॥

कात्यायनः । सर्वस्वं गृहवर्ज्यं कुटुम्बभरणाधिकम् ।

यच्च द्रव्यं स्वकं देयमदेयं स्यादतोऽन्यथा ॥

तथा । सप्तरात्राद्गृहक्षेत्रात् यद्यत् क्षेत्रं प्रचीयते ।

पित्रा वाथ स्वयं प्राप्तं तद्दातव्यं विवक्षितम् ॥

(सप्तरात्रादिभ्यो यत्प्रचीयते, अधिकं भवति, तद्दातव्यमिति  
विवक्षितमित्यर्थः) ।

शिवधर्मात् । तस्मात्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् ।

भागद्वयन्तु धर्मार्थमनित्यं जीवितं यतः ॥

(अशेषवित्तस्य भागपञ्चकं परिकल्प्य भागद्वयं जीवनाय संरक्ष्य  
भागद्वयं धर्माय कल्पयेदित्यर्थः) ।

महाभारते । एकां गां दशगुर्द्द्याद्दश दद्याच्च गोशती ।

शतं सहस्रगुर्द्द्यात्\* सर्व्वं तुल्यफलाः स्मृताः ॥

(नन्वेतद्वचनद्वयोपात्तयोर्व्वित्तगोशब्दयोरुपलक्षणार्थत्वेन देय-  
मात्रपरत्वादिषमभागपरिकल्पनं विरुद्धं यथाश्रुत-गो-वित्त-परत्वे-  
नाविरोधे दशगुरेकां गां दद्यादितिवचनाद्दशावरगोर्द्वेनिनोऽपि  
गोदानानधिकारः स्यात् दशधेनुग्रहणयोग्यधनिपरत्वे तु उपलक्ष-  
णपक्षाङ्गीकाराद्विरोधतादवस्थं तस्मान्नूनाधिककल्पयोः कृपणी-  
दाराधिकारिविषयतयैव व्यवस्थेति सुस्थम् ॥

(कुटुम्बाविरोधेन देयमितुक्तं ।) तस्यापवादमाह ।

व्यासः । कुटुम्बं पीडयित्वापि ब्राह्मणाय महात्मने ।

दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता ॥

(यत्यतिथरादिविषयमेतत्) ।

कात्यायनः । स्वेच्छादेयं स्वयंप्राप्तं बन्धाचारेण बन्धकम् ।

वैवाहिकक्रमायाते सर्व्वदानं न विद्यते ॥

‘बन्धक’ आधिः तद्वन्धाचारेणाधिरूपेणैव देयं । ‘यद्विवाहलब्धं  
तत्तस्यां भार्यायां सत्यां सर्व्वमदेयं’ । ‘यच्च’ पितामहादिक्रमायातं  
तत्र पुत्रे सति न देयम् ।

सौदायिकं क्रमायातं शौर्य्यप्राप्तञ्च यद्वेत् ।

स्त्री-ज्ञाति-स्वाम्यनुज्ञातं दत्तं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

‘सौदायिकं’ विवाहलब्धं तद्विवाहार्थयानुज्ञातम् ।



‘क्रमायातम्’ अविभक्तधनैर्ज्ञातिभिरनुज्ञातम् । भूतेन, सता

युद्धेन लब्धं स्वामिनानुज्ञातमित्यर्थः ।

याज्ञवल्काः । देयं प्रतिश्रुतञ्चैव दत्त्वा नापहरेत् पुनः ।

यमः । यच्च वाचा प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् ।

तद्वनमृणसंयुक्तमिह लोके परत्र च ॥

‘ऋणसंयुक्तं ऋणसमर्पणजन्यदोषसंयुक्तमित्यर्थः ।

सप्ताजातान्नरो हन्याद्वर्त्तमानांस्तु सप्त च ।

अतिक्रान्तान् सप्त हन्यादप्रयच्छन् प्रतिश्रुतम् ॥

प्रतिश्रुताप्रदानेन\* दत्तस्य हरणेन च ।

जन्मप्रभृति यत्पुण्यं तत्सर्वं संप्रणश्यति ॥

महाभारते । ब्राह्मणं स्वयमाह्वय भिक्षार्थं क्लृप्तवर्त्तिनम् ।

पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्तं विद्याद्ब्रह्मघातकम् ॥

तथा । संश्रुत्य यो न दिक्षेत याचित्वा यस्य नेष्यति ।

उभावृत्तिकावेतौ मृषा पापमवाप्नुतः ॥

तथा । यो न दद्यात् प्रतिश्रुत्य स्वल्पं वा यदि वा बहु ।

आशास्तस्य हताः सर्वाः क्लीवस्यैव प्रजाफलम् ॥

यं निरीक्षेत संक्रुञ्च आशया पूर्वजातया ।

प्रदहेत हितं राजन् कङ्कमक्षयभुग्यथा ॥

तस्माद्दातव्यमेवेह प्रतिश्रुत्य युधिष्ठिर ।

नारदः । ब्राह्मणस्य च यद्देयं सान्वयस्य † च नास्ति कः ।

सकुल्ये तस्य निनयेत्तदभावेऽस्य बन्धुषु ॥

\* दत्तस्योच्चेदनेन चेति क्वचित्पाठः ।

† न चास्ति स इति क्वचित्पाठः ।

यदा तु न सकुल्यः स्यान्नच सम्बन्धि-बान्धवाः ।

दद्यात् सजाति-शिष्येभ्यस्तदभावेऽप्यु निक्षिपेत् ॥

गौतमः । प्रतिश्रुत्याप्यधर्मसंयुक्ताय न दद्यात् ॥

कात्यायनः । प्राणसंशयमापन्नं यो मासुत्तारयेदितः ।

सर्वस्वन्ते प्रदास्यामीत्युक्तेऽपि न तथा भवेत् ॥

अथ फलतिशयप्रतिपादनार्थं पात्रविशेषेण देयविशेषाः ।

भविष्यपुराणे । गो-भू-तिल-हिरण्यादि दद्यान्नित्यमतन्द्रितः ।

तथा द्रव्यविशेषांश्च दद्यात् पात्रविशेषतः ॥

आर्त्तानामन्नदानञ्च गोदानञ्च कुटुम्बिनाम् ।

तथा प्रतिष्ठाहीनानां क्षेत्रदानं प्रशस्यते ॥

सुवर्णं याज्ञिकानाञ्च विद्याञ्चैवोर्द्धरेतसाम् ।

कन्याञ्चैवानपत्यानां ददतां गतिरुत्तमा ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् । युद्धोपकरणं द्रव्यं क्षत्रिये द्विजपुङ्गवाः ।

पण्योपयोगि तद्वैश्ये शूद्रे शिल्पोपयोगि च ॥

यस्योपयोगि यद्द्रव्यं देयं तस्यैव तद्भवेत् ।

येन येन च भाण्डेन यस्य वृत्तिरुदाहृता ॥

तत्तत्तस्यैव दातव्यं पुण्यकामेन धीमता ।

दण्डं कृष्णाजिनञ्चैव तथा विप्राः कमण्डलुम् ॥

धीरं पुण्यमवाप्नोति दत्त्वैतान् ब्रह्मचारिणः ।

वस्त्रं शय्यासनं धान्यं वैश्वं वैश्वपरिच्छदम् ॥

गृहस्थाय तु तद्दत्तं ज्ञेयं बहुफलं सदा ।

नीवारं वल्कलं शाकं फलं मूलञ्च गौरसम् ॥

वानप्रस्थाय यद्दत्तमनन्तं परिकीर्तितम् ।  
 भिक्षाप्रदानं यतये पात्रदानं तथाहितम् ॥  
 गन्ध-मङ्गल्य-ताम्बूल-रक्तवस्त्रादिकं स्त्रियः ।  
 स्त्रीणां प्रदानं दातव्यं भर्तृहस्ते तु नान्यथा ॥  
 प्रीक्तं संग्रहणं ह्येतद्भक्षं भर्तुः प्रयच्छतः ।  
 अन्नं प्रतिश्रयञ्चैव पात्रे दत्तं महाफलम् ॥  
 विवाहादिक्रियाकाले तत्क्रियासिद्धिकारणम् ।  
 यः प्रयच्छति धर्मज्ञः सोऽश्वमेधमवाप्नुयात् ॥  
 आतुरेभ्यो धनं दत्त्वा दानं बहुफलं भवेत् ।  
 बालक्रीडनकं दत्त्वा मृष्टमन्नं तथैव च ॥  
 फलं मनोहरं वापि अग्निष्टोमफलं लभेत् ।  
 मृष्टान्नं मानवो दत्त्वा मृष्टान्नानि तु काङ्क्षताम् ॥  
 अक्षयं फलमाप्नोति स्वर्गलोकञ्च गच्छति ।  
 श्रीविहीने तथा दत्त्वा भोजनं द्विजसत्तम ॥  
 वस्त्रं शुभ्रम्वा धर्मज्ञः पुण्यं महदुपाश्रिते ।  
 कृपास्थानं परं विप्रा विच्युताः पुरुषाः श्रिया ॥  
 तस्यानुकम्पा कर्त्तव्या सतां वर्त्मनि तिष्ठता ।  
 कार्येण सत्यद्यमं कृत्वा परेषां समुपस्थिते ॥  
 अक्षयं फलमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ।  
 यवसानां प्रदानेन धेनुमत्सु द्विजातिषु ॥  
 लवणानाञ्च धर्मज्ञाः फलमक्षयमश्रुते ।  
 प्रसवेषु तु यद्दत्तं व्यसनार्त्तिभयेषु च ॥  
 तद्दानमक्षयं प्रीक्तं पुरुषस्य विपश्चितः ॥

दत्त्वा ब्राह्मणसार्द्धं जलपात्रमथार्थिने ।

फलमक्षयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥

अङ्गिराः । देवतानां गुरुणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च ।

पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं नोदितं क्वचित् ॥

नन्दिपुराणे । पापदः पापमाप्नोति नरो लक्षगुणं सदा ।

पुण्यदः पुण्यमाप्नोति शतशीऽथ सहस्रशः ॥

तथा पात्रविशेषेण दानं स्यादुत्तरोत्तरम् ।

पितृ-मातृ-गुरु-ब्रह्मवादिनां दीयते तु यत् ॥

तल्लक्षगुणितं विद्यात् पुण्यस्वा पापमेववा ॥

वज्रिपुराणे । हाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।

दातान्नस्य च दुर्भिक्षे सुभिक्षे हेम-वस्त्रदा ॥

अथ अदेय निरूपणम् ॥

देवलः । अन्यायाधिगतां दत्त्वा सकलां पृथिवीमपि ।

अज्ञावर्जमपात्राय न काञ्चिद्भूतिमाप्नुयात् ॥

वज्रिपुराणात् । अन्यायोपगतं द्रव्यं गृहीत्वा यो ह्यपरिणतः ।

धर्माभिकाङ्क्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥

धर्मवैतंसिको यस्तु पापात्मा पुरुषस्तथा ।

ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकविश्वासकारणम् ॥

पापेन कर्मणा विप्रो धनं लब्ध्वा निरंशकः ।

राग-मोहा-न्वितः स्वान्तः कलुषां योनिमाप्नुयात् ॥

अर्थसञ्चयबुद्धिर्हि लोभ-मोह-वशंगतः ।

उद्वेजयति भूतानि हिंसया पापचेतनः ॥

एवं लब्ध्वा धनं लोभात् यजते यो ददाति च ।

स पापकर्म्मणा तेन न सिध्यति पुरागमात् ॥  
 तथा । एतैरन्यैश्च बहुभिरन्यायोपार्जितैर्धनैः ।  
 आरभ्यन्ते क्रिया यास्तु पिशाचास्तत्र दैवतम् ॥  
 वृद्धशातातपः । द्रव्येणान्यायलब्धेन यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।  
 न स तत्फलमाप्नोति तस्यार्थस्य दुरागमात् ॥  
 स्कन्दपुराणे । देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं द्रव्यं चण्डेश्वरस्य च ।  
 त्रिविधं पतनं दृष्टं दान-लङ्घन-भक्षणात् ॥  
 यमः । अपहृत्य परस्यार्थं दानं यस्तु प्रयच्छति ।  
 स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥  
 तथा । परिभुक्तमवज्ञातमपर्याप्तमसंस्कृतम् ।  
 यः प्रयच्छति विप्रेभ्यस्तद्भक्षन्त्यवतिष्ठते ॥  
 'परिभुक्तं' गृहीतोपयोगं वस्त्रादि ।  
 'अपर्याप्तं' स्वकार्याक्षमं जरद्भवादि ।  
 शातातपः । वेद-विक्रयनिर्दिष्टं स्त्रीषु यच्चार्जितं धनम् ।  
 अदेयं पितृदेवेभ्यो यच्च क्लीवादुपागतम् ॥  
 (वेदविक्रयो निर्दिश्यते व्यपदिश्यते यत्तत्तथा) ।  
 (निर्व्विष्टमिति पाठे वेदविक्रयाल्लभ्यमित्यर्थः) ।  
 'स्त्रीषु यच्चार्जितमिति' स्त्रीव्यापारोपजीवनेन-  
 यल्लभ्यम् । स्त्रीषु विक्रीतास्त्विति केचित् ।  
 दक्षः । सामान्यं याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्वनम् ।  
 अन्वाहितञ्च निक्षेपः सर्वस्वञ्चान्वये सति ॥  
 आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि पण्डितैः ।  
 यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

‘सामान्यं’ अनेकस्वामिकम् । ‘याचितं’ संव्यवहारार्थं या-  
चित्वानीतं वस्त्रालङ्कारादि । ‘गृहस्वामिने’ अदर्शयित्वा  
तत्परीक्षमेव गृहस्वामिने अर्पणीयमिति गृहजनहस्ते स्थापितं  
द्रव्यं ‘न्यासः’ । ‘आधिः’ प्रसिद्धा, । ‘दाराः’ कलत्रं । ‘तद्धनं’  
दारधनम् । तच्च व्याख्यातं मनुना ।

अध्यग्न्याध्यावाहनिकं दत्तञ्च प्रीतिकर्मणि ।

भ्रातृ-मातृ-पितृ-प्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥

‘अध्यग्निं’ अग्निसमक्षं यत् स्त्रियै दत्तम् ।

‘अध्यावाहनिकं’ विवाहकाले पित्रादिदत्तम् ।

‘प्रीतिकर्मणि’ स्त्रीपुंसस्वस्थेन भर्त्तापितम्

विवाहोत्तरकालेपि भ्रात्रादिभ्यः ‘प्राप्तम्’ ।

याज्ञवल्क्योप्याह । भ्रातृ-मातृपितृ-पतिप्राप्तमध्यग्न्युपागतम् ।

आधिवेदनिकञ्चैव स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥

‘दारान्तरमिच्छता भर्ता यद्वत्तं’ ‘तदाधिवेदनिकं’ एवं प्रकारं  
स्त्रीधनं न देयमिति । ‘अन्वाहितं’ यदेकस्य हस्ते निहितं  
द्रव्यं तेनाप्यनु पश्चादन्यस्य हस्ते स्वामिने देहीति निहितम् ।  
गृहस्वामि समक्षं स्थापितं द्रव्यं ‘निक्षेपः’ ।

काल्यायनः । विक्रयञ्चैव दानञ्च न नेयाः स्युरनिच्छवः ।

दाराः पुत्राश्च सर्वस्वमात्मनैव तु योजयेत् ॥

आपत्काले तु कर्त्तव्यं दानं विक्रय एव वा ।

अन्यथा न प्रवर्त्तन्त इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥

( आपत्काले तु कर्त्तव्यं दानं विक्रय एवेति स्वकीयदान-  
विक्रये च्छुदारादिविषयम् ) ।

यत्तु दाराणां, आपत्स्वपि न देयानीतिदक्षेणदेयत्वमुक्तं तत्  
स्वदान-विक्रयानिच्छुदारादिविषयम् ।

वशिष्ठः । शुक्र-शोणितसम्भवः पुरुषो मातापितृनिमित्तक  
स्तस्य प्रदान-विक्रय-परित्यागेषु मातापितरौ प्रभवतः नत्वेकं  
पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि सन्तानाय पूर्वेषां न तु स्त्री  
पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्रानुज्ञानाद्भक्तुः ।

बृहस्पतिः । कस्मैचिद्याचमानाय दत्तं धर्माय यद्भवेत् ।

पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयं तस्य तद्भवेत् ॥

(धर्मं कर्तुं याचमानाय यद्दत्तं तेन चेदसौ धर्मं न कुर्या-  
त्तदा तत्तस्मै न देयमित्यर्थः) ।

अङ्गिराः । बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ।

विभक्तदक्षिणां ह्येता दातारं तारयन्ति हि ॥

एका एकस्य दातव्या न बहुभ्यः कथञ्चन ।

दातुर्विक्रयमापन्ना दहत्यासप्तमं कुलम् ॥

(विक्रेतुरेवैतद्दोषप्रदर्शनं न प्रकृतस्य दातुरिति) ।

औपकायनः । कन्या-शय्या-गृहञ्चैव देयं यज्ञोस्तियादिकम् ।

तदेकस्मै प्रदातव्यं न बहुभ्यः कथञ्चन ।

व्यासः । न व्यङ्गां रोहिणीं वन्ध्यां न कृशां मृतवत्सकाम् ।

न वामनां वेहतञ्च दद्याद्विप्राय गां नरः ॥

‘वेहत्’ गर्भोपघातिनी ।

देवलः । विवक्षां रोगिणीं रूक्षां स्थविरां शृङ्गभीषणीम् ।

क्षीण-क्षीरशरीराङ्गां दत्त्वा दोषमवाप्नुयात् ॥

काल्यायनः । न क्षीरां न निर्दग्धां महीं दद्यात् कथञ्चन ।

न श्मशानपरीताञ्च न च पापानिषेविताम् ॥

‘पापाः’ हिंश्रप्राणिनो व्याघ्रादयः ।

विष्णुधर्मोत्तरे । सीशैरां तस्कराकीर्णां तथा व्यालवतीं भुवम् ।

न दद्यात्तु द्विजश्रेष्ठो या च सन्धिषु संस्थिता ॥

स्कन्दपुराणे । पापदः पापमाप्नोति नरो लक्षगुणं सदा ।

तस्मान्न दद्यान्मेधावी पातकं जातु कस्यचित् ॥

महाभारते । दुःखितेभ्यो हि भूतेभ्यो मृत्यु-रोग-जरादिभिः ।

भूयः को दुःखमपरं सष्टुणो दातुमर्हति ॥

दुःखं ददाति योऽन्यस्य ध्रुवं दुःखं स विन्दति ।

तस्मान्न कस्यचिद्दुःखं दातव्यं दुःखभीरुणा ॥

अथ पात्रविशेषेण देयमुच्यते ।

यमः । सुवर्णं रजतं ताम्रं यतिभ्यो यः प्रयच्छति ।

न तत्फलमवाप्नोति तत्रैव परिवर्त्तते ॥

‘परिवर्त्तः’ विपर्ययः ‘एवशब्दः’ अप्यर्थः तेन ‘तत्र’ तस्मिन्  
दातव्येऽपि परिवर्त्तते, धर्मविपरीतं धर्मं जनयतीत्यर्थः ।

तथाचोक्तं । यतये काञ्चनं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेदिति ॥

देवलः । पक्कमन्नं गृहस्थस्य वानप्रस्थस्य गोरसः ।

वृत्तिश्च भिक्षुवृत्तिभ्यो न देयं पुण्यमिच्छता ॥

‘वृत्तिः’ भिक्षातिरिक्तं वर्त्तनम् ।

तथा । न शूद्राय हविर्द्द्यात् स्वस्ति क्षीरं तिलान् मधु ।

न शूद्रात् प्रतिगृह्णीयात्ते घामन्यन्निवेदयेत् ॥

गारसं काञ्चनं क्षैत्रं गास्तिला मधु-सर्पिषी ।

तथा सर्वान्नुसांश्चापि चण्डालेभ्यो न दीयते ॥



‘स्वस्ति न दद्यादिति’ प्रणाममन्तरेण शूद्रस्य स्वस्तीति न  
ब्रूयादित्यर्थः । ‘तेषामिति’ क्षीरादीनां क्रयार्थं मन्थद्वयं निवे-  
दयेदित्यर्थः ।

शङ्खलिखितौ । कृशरं पायसं यावं दधि-मधु-क्षणाजिनानि

शूद्रेभ्यो न दद्यान्नीपाकृतं किञ्चित् ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् । भुवं धेनुमथाश्वश्च रत्नानि कनकन्तथा ।

तिलांश्च कुञ्जरं दद्यान्नाविज्ञाय गुणागुणान् ॥

अथ ग्राह्यमुच्यते । तत्रव्यासः ।

कुटुम्बार्थं हि सच्छूद्रात् प्रतिग्राह्यमयाचितम् ।

वृत्त्यर्थमात्मने चैव न हि याचेत कर्हिचित् ॥

स्कन्दपुराणे । दुर्भिक्षे दारुणे प्राप्ते कुटुम्बे सौदति क्षुधा ।

असाधोरपि गृह्णीयात् प्रतिग्रहमतन्द्रितः ॥

ऋणापाकरणार्थञ्च प्रतिग्राह्यं द्विजोत्तमैः ।

चिकीर्षया तु यज्ञस्य मातापितृव्यमेव च ॥

गृह्णीयाद्ब्राह्मणादेव नित्यमाचारवर्त्तिनः ।

अद्वया विमलं दत्तं तथा धर्मो न हीयते ॥

अब्राह्मणकृतादानादिशुद्धादपि सर्व्वतः ।

ब्राह्मणेन कृतं ग्राह्यं निषिद्धमपि जानता ॥

‘निषिद्धमपि’ अनापदि निषिद्धं क्षणाजिनादि ।

ब्रह्माण्डपुराणात् । अनापद्यतिधर्मेण याज्यतः शिष्यतस्तथा ।

गृह्णन् प्रतिग्रहं विप्रो न धर्मात् परिहीयत ॥

समा-षण्मास-मासैक-षडह-स्त्रिदिनक्षमम् ।

एकाङ्गिकं वा धर्माय गृह्णीयादुत्तरोत्तरम् ॥

गार्ङ्गपुराणात् । यावता पञ्चयज्ञानां कर्तुं निर्बहणं क्षमः ।

तावदेव हि गृह्णीयात् कुटुम्बस्यात्मनस्तथा ॥

यद्गृहीतमनिन्द्येभ्यः श्रद्धापूतञ्च यद्भवेत् ।

दानं प्रतिग्रहीतारं तारयत्येव तदुभ्रवम् ॥

द्रव्यराशिरपि श्रेयाननिन्द्यात् प्रतिगृह्णीताम् ।

निन्द्यस्य द्रव्यलेशोपि निरयायैव जायते ॥

ब्रह्मसतिः । अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णीन्ति साधवः ।

पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनं ह्येतदुत्तमम् ॥

ब्रह्मवैवर्त्तात् । पितृ-मातृ-गुरोरर्थं-विवाहार्थञ्च धर्म्मतः ।

अध्वरार्थञ्च विदुषा ग्रहीतव्यं धनं सदा ॥

गृह्णन् गो-भू-हिरण्यादि तथा नैव विचारयेत् ।

कृतान्नन्तु ग्रहीतव्यं बहुशः सुपरीक्षितम् ॥

सम्बर्त्तः । गृहस्थस्तु सदा युक्तो धर्म्ममेवानुचिन्तयेत् ।

पोथवर्गार्थसिद्धार्थं धनमिच्छेत बुद्धिमान् ॥

तथा । अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः ।

अन्यत्र कुलटा-षण्ड-पतितेभ्यस्तथा द्विषः ॥

यान्नवल्काः । राजा-न्तेवासि-याज्येभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा ।

दम्नि-हैतुक-पाषण्डि-वकवृत्तींश्च वर्जयेत् ॥

तथा । देवा-तिथ्य-र्चन-कृते गुरु-भृत्यादिवृत्तये ।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयादात्मवृत्त्यर्थमेव च ॥

‘सर्वतः’ शूद्रादेरपि । ‘आत्मवृत्तिः’ शरीरधारणमात्रं न तु तृप्तिः ।

तथा विष्णुः । गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन् देवता-तिथीन् ।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् न तु तृप्येत् स्वयन्ततः ॥

अङ्गिराः । गुर्वर्थमतिथीनाम्बा भृत्यानाञ्च विशेषतः ।

शूद्रान्नं प्रतिगृह्णीयात् न तु भुङ्क्ते स्वयन्ततः ॥

मनुः ।\* आहूताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् ।

मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्म्मणः ॥

नाश्रन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च ।

न च हव्यं वह्न्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥

यान्नवल्काः । कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पं दधि क्षितिः ।

मांसं शय्या-सनं धानाः प्रत्याख्येयं न वारि च ॥

मनुः । शय्यां गृहान् कुशान् गन्धान् पयः पुष्पं महीं दधि ।

मत्स्या धानाः पयो मांसं शाकञ्चैव † न निर्लुठेत् ॥

तथा । एधो-दकं मूल-फलमन्नमभ्युद्यतञ्च यत् ।

सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मधु चाभयदक्षिणाम् ॥

‘एधः’ काष्ठं । ‘अभ्युद्यतं’ अयाचितागतम् ।

अङ्गिराः । खल-क्षेत्रगतं धान्यं वापी-कूपगतं जलम् ।

अददद्गोपि तद्ग्राह्यं यच्च गोष्ठगतं पयः ॥

पक्वान्नवर्जं विप्रेभ्यो गो-धान्यं क्षत्रियादपि ।

वैश्याक्तु सर्वधान्यानि शूद्राद्ग्राह्यं न किञ्चन ॥

(अभोज्यान्नविप्रादिविषयमेतत्) ।

यत्तु क्षेत्रगतं धान्यं खले वाथगृहादहिः ।

सर्वकालं ग्रहीतव्यं शूद्रेभ्योऽप्यङ्गिरोमतम् ॥

\* आहूताभ्युद्यतामिति क्वचित् पाठः ।

† न निर्लुठेदिति पाठान्तरम् ।

संस्कारैः शुद्ध्यति ह्येतद्धान्यं तेन शुचि स्मृतम् ।  
 तस्माद्दानं ग्रहीतव्यं मृतसूत्यन्तरेष्वपि ॥  
 'मृतसूत्यन्तरेष्वपीति' तदापहिषयम् ।  
 आममांसं मधु-घृतं धानाः-क्षीरमथोदितम् ।  
 गुडं तक्रञ्च संग्राह्यं निवृत्तिर्नापि शूद्रतः ॥  
 शाक-मत्स्या-रनालानि कन्तुकाः सक्तवस्त्रिलाः ।  
 इक्षुः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्याणि सर्व्वतः ॥  
 'कन्तुकाः' कन्याः ।

वृहस्पतिः । विवाहोत्सव-यज्ञेषु त्वन्तरामृत-सूतके ।  
 सर्व्वं संकल्पितं ग्राह्यं न दोषः परिकीर्तितः ॥  
 शङ्खः । कुमारप्रसवे नाद्यामच्छिन्नायां गुड-तिल-हिरण्य  
 वस्त्र-गो-धान्य-प्रतिग्रहेष्वदोषः ॥ तदह इत्येके ।  
 आह प्रचेताः । सर्व्वेषां सकुल्यानां द्विपद-चतुष्पद-धान्य-वासी-  
 दक्षिणाप्रतिग्रहेष्वदोषः ।  
 विष्णुधर्मोत्तरात् । ग्राह्यं प्राणप्रदानन्तु चण्डालात् पुक्कसादपि ।  
 जीवन् सर्व्वमवाप्नोति जीवन् धर्मं करोति च ।  
 शरीरं धर्मसर्व्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥

अथाग्राह्यमुच्यते ।

ब्रह्मपुराणे । ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयात् वृत्त्यर्थं साधुतः सदा ।  
 अव्य-श्व-मणि-मातङ्ग-तिल-लोहांश्च वर्जयेत् ॥  
 कृष्णाजिन-तिलग्राही न भूयः पुरुषो भवेत् ।  
 शय्या-लङ्कार-वस्त्राणि प्रतिगृह्य मृतस्य च ॥

नरकान्न निवर्त्तत धेनुं तिल-महीन्तथा ॥  
 बहुशो द्विजवित्तानामपि स्तेयं तरिष्यति ॥  
 आतुराद्यद्रुहीतन्तु तत् कथं निस्तरिष्यति ॥  
 'आतुरात्' मुमूर्षोः ।

वज्रिपुराणात् । हस्त्य-श्व-रथ-यानानि मृतशय्या-सनादि यत् ।

कृष्णाजिनञ्च गृह्णाति अनापत्सु गतो द्विजः ॥  
 तथोभयमुखीं घोरां सशैलां मेदिनीं द्विजः ।  
 कुरुक्षेत्रे च यद्दानं चण्डालात् पतितात्तथा ।  
 मासिकेपि नवश्राद्धे भुञ्जन् प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥

स्कन्दपुराणे । अजिनं मृतशय्याञ्च शृङ्गीञ्चोभयतोमुखीम् ।

कुरुक्षेत्रे च गृह्णानो न भूयः पुरुषोभवेत् ॥

पद्मपुराणे । ब्रह्माण्डं भूमिदानञ्च ग्राह्यं नैकेन तद्ववेत् ।

गृह्णन् दीपमवाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥

'भूमिदानमिति' षोडशमहादानान्तर्गतकाञ्चनमेदिनीदान-  
 विषयमेतत् ।

वशिष्ठः । शस्त्रं विषं सुरा वा प्रतिग्राह्याणि ब्राह्मणस्य ॥

भिक्षाग्रहणमधिकृत्य मनुः ।

चिकित्सक-कृतघ्नानां शल्यकर्तुंश्च बार्दुषैः ।

षण्डस्य कुलटायाश्च उद्यतामपि वर्जयेत् ॥

(भिक्षामितिशेषः) । 'चिकित्सकोऽत्र' कुवेद्यः ।

'षण्डः' क्लीवः । 'कुलटा' पुंश्चली ।

यमः । चिकित्सकस्य मृगयोर्विश्यायाः कितवस्य च ।

षण्डनर्त्तकयोश्चैव उद्यतां परिवर्जयेत् ॥

‘मृगयुः’ मृगहन्ता ।

आह वसिष्ठः । चिकित्सकस्य मृगयोः शल्यकर्तृश्च पाशिनः ।

षण्डस्य कुलटायाश्च उद्यतापि न गृह्यते ॥

‘चिकित्सकस्य शल्यकर्तृमृगयोः पाशिनइति’ यत्राक्रमं  
विशेषणद्वयं योजनीयमिति केचित् ।

विष्णुः । एतेष्वपि च कार्येषु समर्थः सन् प्रतिग्रहे ।

नादद्यात् कुलटा-षण्ड-पतितेभ्य स्तथा द्विषः ॥

‘एतेष्विति’ पूर्वोक्तेषु गुरु-देवता-तिथिपूजादिष्वित्यर्थः ।

मनुः । नेहेतार्थं प्रसङ्गेन न विरुद्धेन कर्मणा ।

\* न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्त्यामपि यतस्ततः ॥

यान्नवल्काः । न स्वाध्यायविरोध्यर्थमीहेत न यतस्ततः ।

न विरुद्धप्रसङ्गेन सन्तोषी च भवेत् सदा ॥

तथा । प्रतिग्रहे सूनी-चक्री-ध्वजी-वेश्या-नराविप ।

दुष्टा दशगुणं पूर्वपूर्वादेकी यथोत्तरम् ॥

‘सूना’ प्राणिहिंसा सा विद्यते यस्यासौ सूनी प्राणिहिं-  
सापरः । ‘चक्री’ तैलिकः । ‘ध्वजी’ सुरायाः कर्त्ता ।

सम्बर्त्तः । राजप्रतिग्रहो घोरो मध्वास्वादो विषोपमः ।

पुत्रमांसं वरं भुक्तं न तु राजप्रतिग्रहः ॥

स्कन्दपुराणे । राजप्रतिग्रहमुष्टः पुनर्जन्म न विन्दति ।

ब्राह्मणं यः परित्यज्य द्रव्यलोभेन मोहितः ॥

विषयामिषलुब्धस्तु कुर्याद्राजप्रतिग्रहम् ।

नरके रौरवे घोरे तस्येह पतनं ध्रुवम् ॥

वृक्षा दावाग्निना दग्धाः प्ररोहन्ति घनागमे ।  
 राजप्रतिग्रहैर्दग्धा न प्ररोहन्ति कर्हिचित् ॥  
 तथा । राजप्रतिग्रहो घोरो रौद्रः पापो भयानकः ।  
 नरके यातनां घोरां कः सोढुं शक्तिमान् भवेत् ॥  
 तथा । ब्रह्मर्षि-गालवश्चाहं कुरुक्षेत्रे पुरा स्थितः ।  
 अश्वप्रतिग्रहान्नूनमश्वयोनिं समाश्रितः ॥  
 दावाग्निना च यो दग्ध उदकात् स प्ररोहति ।  
 प्रतिग्रहेण यो दग्धः स दग्धो न प्ररोहति ॥  
 मनुः । न यन्नार्थं धनं शूद्राङ्घ्रिर्भुञ्जेत कर्हिचित् ।  
 भित्तिं यजमानो हि चण्डालः प्रेत्य जायते ॥  
 ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते ।  
 सर्वे ते ब्राह्मणा निन्द्या ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥  
 तथा । हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान् घृतम् ।  
 अविद्वान् प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति दारुवत् ॥  
 अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।  
 अश्वस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥  
 तस्मादविद्वान् विभियाद्यस्मात्\* कस्मात् प्रतिग्रहात् ।  
 स्वल्पकेनाप्यविद्वान् हि पङ्के गौरिव सीदति ॥  
 याज्ञवल्काः । विद्या-तपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः ।  
 गृह्णन् प्रदातारमघो नयत्यात्मानमेव च ॥  
 (ततश्च विद्यातपोरहितेनावसीदतापि बहुहिरण्यादिव्यति-

\* तस्मादितिकचित् पाठः ।

रेकेण कुटुम्बभरणमात्रोपयिकाल्पद्रव्यप्रतिग्रहः कर्त्तव्यो न तु  
तत्रातिप्रशक्तिरिति गम्यते) ।

विष्णुधर्मोत्तरात् । प्रतिग्रहसमर्थोपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत् ।

प्रतिग्रहेण विप्राणां ब्रह्मतेजो विनश्यति ॥

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्मं प्रतिग्रहे ।

प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसौदन्नपि क्षुधा ॥

‘विधिः, मन्वेतिकर्त्तव्यताप्रकारलक्षणः ।

यान्नवल्काः । प्रतिग्रहसमर्थोपि ना दत्ते यः प्रतिग्रहम् ।

ये लोका दानशीलानां स तानाप्नोति शाश्वतान् ॥

इतिद्रव्यनिरूपणम् ॥

अथ कालाख्यं दानाङ्गमभिधीयते ।

तत्र पुण्यकालस्तावत् ।

देवीपुराणे । नित्यो विभुः स्थितः कालो ह्यवस्था तस्य हेतुजा ।

निमित्तादिविशेषैः स लोके पुण्यफलप्रदः ॥

श्रीमार्कण्डेय पुराणे ।

निमेषैर्द्दशभिः काष्ठाः साष्टाभिश्च कला पुनः ॥

त्रिंशत्काष्ठा कलाभिश्च त्रिंशद्भिः स्यान्मुहूर्त्तकम् ॥

अहोरात्रं मुहूर्त्तास्तु नृणां त्रिंशत्तु वै स्मृतम् ।

त्रिंशता तैरहोरात्रैः पक्षौ द्वौ मास उच्यते ।

तैः षड्भि तुरयनं वर्षं द्वे ते दक्षिणीत्तरे ।

तद्देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम् ॥

‘साष्टाभिर्द्दशभिः’ अष्टादशभिरित्यर्थः ।

आहदत्तः । देवकार्याणि पूर्वार्ह्णे मनुष्याणाञ्च मध्यमे ।



पितृणामपराह्णे च कार्याणीति विनिश्चयः ॥

अत्र तिथिकालः प्रथममुच्यते ।

भविष्यपुराणे । तिथीनां प्रवरा यस्माद्ब्रह्मणा समुदाहृता ॥

प्रतिपादिता पदे पूर्वे प्रतिपत्तेन चोच्यते ।

स्नानदानं शतगुणं कार्तिके या तिथिर्भवेत् ॥

स्कन्दपुराणे । आश्विने मासि संप्राप्ते द्वितीया शुक्लकृष्णजा ।

दानं प्रदत्तं यत्तस्यामनन्तफलमुच्यते ॥

पद्मपुराणे । वैशाखमासे या पुण्या तृतीया शुक्लपक्षजा ।

अनन्तफलदा दातुः स्नान-दानादिकर्मसु ॥

भविष्यपुराणे । शिवा शान्ता सुखा राजंश्चतुर्थी त्रिविधा स्मृता ।

मासि भाद्रपदे शुक्ला शिवलोकेषु पूजिता ॥

तस्यां स्नानं तथा दानं उपवासो जपस्तथा ।

भवेत् सहस्रगुणितं प्रसादाहन्तिनो नृप ॥

माघमासि तथा शुक्ला या चतुर्थी महीपते ।

सा शान्ता शान्तिदा नित्यं शान्तिं कुर्यात्सदैव हि ॥

स्नान-दानादिकं सर्वमस्यामन्त्रयमुच्यते ।

यदा शुक्लचतुर्थ्यान्तु वारो भौमस्य वै भवेत् ॥

तदा सा सुखदा ज्ञेया सुखानामिति कीर्तिता ।

स्नान-दानादिकं सर्वमस्यामन्त्रयमुच्यते ॥

स्कन्दपुराणे । शुक्ला मार्गशिरे मासि श्रावणे याच पञ्चमी ।

स्नान-दाने बहुफला नागलोकप्रदायिनी ॥

भविष्यपुराणे । येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी च भरतर्षभ ।

स्नान-दानादिकं सर्वमस्यामन्त्रय मुच्यते ॥

तथा । शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां सूर्यवारो भवेद्यदि ।

सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ॥

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां नक्षत्रं पञ्चतारकम् ।

यदा च स्यात्तदा ज्ञेया जयानामिति सप्तमी ।

स्नान-दानादिकं तस्यां भवेत् शतगुणं विभो ॥

'पञ्च तारकमिति, रोहिण्य-श्लेषा-मघा-हस्तस्य ।

या मार्गशीर्षमासस्य शुक्लपक्षे तु सप्तमी ।

नन्दा सा कथिता वीर सर्वानन्दकरी स्मृता ।

स्नान-दानादिकं सर्वमस्यामन्त्रय मुच्यते ॥

आदिपुराणे । रेवतो यत्र सप्तम्यामादित्यदिवसे भवेत् ।

तद्दानं शत-साहस्रमिति प्राह दिवाकरः ॥

भविष्यपुराणे । पौषे मासि यदा देवि शुक्लाष्टम्यां बुधो भवेत् ।

तदा तु सा महापुण्या महारुद्रेति कीर्तिता ॥

तस्यां स्नानं महादानं तर्पणं विप्रभोजनम् ।

मत्प्रीतये कृतं देवि शत-साहस्रिकं भवेत् ॥

महाभारते । अष्टकासु च यदत्तं तदनन्तमुदाहृतम् ॥

आश्वलायनः । हेमन्त-शिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमी-  
ष्वष्टका इति ॥

तथा शातपथश्रुतिः । द्वादश प्रौर्णमास्यो द्वादशाष्टका द्वाद-  
शमावास्या इति ॥

‘द्वादशापि’ कृष्णाष्टम्य इत्यर्थः ॥

देवीपुराणे । आश्विनस्य तु मासस्य नवमी शुक्लपक्षजा ।

जायते कीटिगुणितं दानं तस्यां नराधिप ॥

गरुडपुराणे । ज्यैष्ठस्य शुक्लदशमी सम्वत्सरमुखी स्मृता ।

तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानञ्चैव विशेषतः ॥

एकादश्यां सिते पक्षे पुण्यं यत्र सत्तम ।

तिथौ भवति सा प्रोक्ता विष्णुना पापनाशिनी ॥

दानं यद्दीयते किञ्चित् समुद्दिश्य जनार्दनम् ।

होमो वा क्रियते तस्यां अक्षयं कथितं फलम् ॥

मासि भाद्रपदे शुक्ला द्वादशी अवणान्विता ।

महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ॥

फलं दत्तहुतानाञ्च तस्यां लक्षगुणं भवेत् ।

विष्णुधर्मोत्तरात् । भाग्यर्चसंयुता चैत्रे द्वादशी स्यान्महाफला ॥

‘भाग्यर्च’ पूर्वफलगुनी ।

हस्तयुक्ता तु वैशाखे ज्येष्ठे तु स्वातिसंयुता ।

ज्येष्ठायाञ्च तथाषाढे मूलोपेता च वैप्लवे ॥

‘वैप्लवे’ आवणे मासि ।

तथा भाद्रपदे मासि अवणेन तु संयुता ।

आश्विने द्वादशी पुण्या भवत्याजर्चसंयुता ॥

‘आजर्चः’ पूर्वभाद्रपदाः ।

कार्तिके रेवतीयुक्ता सौम्ये कृत्तिकया तथा ।

‘सौम्यः’ मार्गशीर्षः ।

पौषे मृगशिरोपेता माघे चादित्यसंयुता ।

‘आदित्यः’ पुनर्वसुः ।

फाल्गुने पुष्यसहिता द्वादशी पावनी परा ।

नक्षत्रयुक्तास्वेतासु स्नानं दानमुपोषितम् ॥

सकृत्कृतं मनुष्याणामक्षय्यफलदायकम् ॥

स्कन्दपुराणे । यस्तु चैत्रत्रयोदश्यां स्नानं दानं समाचरेत् ।

फलं शतगुणं तस्य कर्मणि लभते नरः ॥

ज्योतिःशास्त्रे । कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रविः ।

यदा तदा गजच्छाया आङ्गे पुण्यैरवाप्यते ॥

चैत्रे चतुर्दशी शुक्ला आवणप्रोष्ठपादयोः ।

माघस्य या कृष्णपक्षे दाने बहुफला हि सा ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् ।

वैशाखी कार्तिकी माघी पौर्णिमा तु महाफला ।

पौर्णमासीषु सर्वासु मासर्चसहितासु च ॥

स्नानानामिह दानानां फलं दशगुणं भवेत् ।

यस्यां पूर्णेन्दुना योगं याति जीवो महाबलः ॥

पौर्णमासी तु सा ज्ञेया महापूर्वा द्विजोत्तमा ।

स्नानं दानं तथा जाप्यमक्षय्यं तत्तदा स्मृतम् ॥

ब्रह्मपुराणे । आग्नेयन्तु यदा ऋक्षं कार्त्तिक्यां भवति क्वचित् ।

महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नान-दानेषु चोत्तमा ॥

‘आग्नेयमृक्षं’ कृत्तिका ।

यदा याम्यन्तु भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित् ।

तिथिः सापि महापुण्या ऋषिभिः परिकीर्तिता ॥

‘याम्यं ऋक्षं’ भरणी ।

प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप ।

सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ॥

‘प्राजापत्यं, ऋक्षं’ रोहिणी ।

व्यासः । अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी ।

चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम् ॥

शङ्कोपि । अमावास्या तु सोमे तु सप्तमी भानुना सह ।

चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी ॥

चतस्रस्तिथयस्त्वेतास्तुल्याः सूर्यहणादिभिः ।

सर्व्वमक्षयमत्रोक्तं स्नान-दान-जपादिकम् ॥

महाभारते । अमा सोमे तथा भौमे गुरुवारे यदा भवेत् ।

तत् पर्व्वपुष्करं नाम सूर्य्यपर्व्वशताधिकम् ॥

आतातपः । अमावस्या सोमवारे सूर्य्यवारे च सप्तमी ।

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थी वा चतुर्दशी ॥

तत्र यः कुरुते कर्म शुभम्वा यदि वाशुभम् ।

षष्टिवर्षसहस्राणि कर्त्ता तत्फलमश्नुते ॥

विष्णुपुराणे । अमावस्या यदा मैत्र विद्याखाऋक्षयोगिनी ।

आज्ञे पितृगणस्तृप्तिं तदाप्नोत्यष्टवार्षिकीम् ॥

अमावस्या यदा पुष्ये रौद्रर्क्षे वा पुनर्व्वसौ ।

द्वादशाब्दीन्तथा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोर्चिताः ॥

‘रौद्रर्क्ष’ आर्द्रा ।

वासवा-जैकपादर्क्षे पितृणां तृप्तिमिच्छता ।

वारुणे वाप्यदैवत्ये देवानामपि दुर्लभा ॥

‘वासव’ धनिष्ठा । ‘अजैकपाद’ पूर्वाभाद्रपदा । ‘वारुण’

शततारका । ‘आप्य’ पूर्वाषाढा ।

माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन ।

ऋक्षेण कालः स परः पितृणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ ॥

‘वारुणं’ शततारा ।

अथ युगादिप्रभृतयः । तत्र स्कन्दपुराणे ।

नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्तिके निरगात् कृतम् ।

चेता सिततृतीयायां वैशाखे समपद्यत ॥

दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम् ।

कलिः कृष्णतयोदश्यां लभस्ये मासि निर्गतः ।

युगादयः स्मृता ह्येते दत्तस्याक्षयकारकाः ॥

ब्रह्मपुराणे । युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन कीर्त्तिताः ।

फलं दत्तहुतानाञ्च तास्वनन्तं प्रकीर्त्तितम् ॥

तथा । एताश्चतस्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतञ्चाक्षयमाशु विन्द्यात् ।

युगे युगे वर्षशतेन यत्तपो युगादिकाले दिवसेन तद्भवेत् ॥

तथा । सूर्यस्य सिंहसंक्रान्त्यामन्तः कृतयुगस्य च ।

तथा वृश्चिकसंक्रान्त्यामन्तस्वेतायुगस्य च ॥

ज्येष्ठस्तु वृषसंक्रान्त्यां द्वापरान्तस्तु संख्यया ।

तथा च कुम्भसंक्रान्त्यामन्तः कलियुगस्य च ॥

पद्मपुराणे । युगादिषु युगान्तेषु स्नान-दान-जपादिकम् ।

यत्किञ्चित् क्रियते तस्य युगान्ताः फलसाक्षिणः ॥

आदित्यपुराणे । दिनर्क्षं रेवती यत्र गमनञ्चैव राशिषु ।

युगान्तदिवसं विद्धि तत्र दानमनन्तकम् ॥

ग्रहोपरागे विषुवे सौम्ये वा मिहिरोपदिः ।

सप्तमी शुक्ला-कृष्णा वा युगान्तदिवसं विदुः ॥

‘मिहिरोपदिः’ सूर्यग्रहः ।

मनुः । सहस्रगुणितं दानं भवेद्दत्तं युगादिषु ।

कर्म्म-आद्यादिकञ्चैतत्तथा मन्वन्तरादिषु ॥

मत्स्यपुराणे । अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिकस्य तु ।

चैत्रस्य तु तृतीया या तथा भाद्रपदस्य तु ।

फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ।

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढस्य पूर्णिमा ।

आषाढस्य तु दशमी माघमासस्य सप्तमी ।

कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठे पञ्चदशी तथा ।

मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्याय-पितृतर्पणम् ।

सर्वमेवाक्षयं विन्द्यात् कृतं मन्वन्तरादिषु ॥

(अत्रामावस्याष्टमीव्यतिरेकेण सर्वाः शुक्ला एव) । (पुरा-

णान्तरेण तु श्रावणस्यामावस्या भाद्रपदस्य कृष्णाष्टमी मन्वन्तरा-  
दिरिति प्रतिपादितम्) ।

तद्यथा । आश्विने शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।

तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ।

श्रावणस्याप्यमावस्या पौषस्यैकादशी तथा ।

आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ।

नभस्यस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा ।

कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री\* ज्येष्ठी पञ्चदशी तथा ।

मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥

अथ व्यतीपातादिकालाः ।

याज्ञवल्क्यः । शतमिन्दुक्षये\* दानं सहस्रन्तु दिनक्षये ।

विषुवे शतसाहस्रं व्यतीपाते त्वनन्तकम् ॥

वाराहपुराणे । दर्शं शतगुणं दानं तच्छतघ्नं दिनक्षये ।

शतघ्नं तस्य संक्रान्तौ शतघ्नं विषुवे ततः ।

युगादौ तच्छतगुणमयने तच्छताहतम् ॥

सोमग्रहे तच्छतघ्नं तच्छतघ्नं रविग्रहे ।

असंख्यं व्यतीपाते दानं वेदविदो विदुः ॥

‘शतघ्नं’ शतगुणमित्यर्थः ।

तथा । उत्पत्तौ लक्षगुणं कोटिगुणं भ्रमणनाडिकायान्तु ।

अर्बुदगुणितं पतने जप-दानाद्यक्षयं पतिते ।

उत्पत्त्यादिमानमुक्तं ज्योतिःशास्त्रे ।

विंशतिर्द्वियुतोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः ।

पतने दशनाड्यस्तु पतिते सप्त नाडिकाः ॥

(व्यतीपातोत्र विष्कुम्भादियोगेषु सप्तदशयोगः) ।

(बृहमनुना तु प्रकारान्तरेण व्यतीपातो दर्शितः) ।

श्रवणा-श्लि-धनिष्ठा-द्रा-नागदैवत-मस्तके ।

यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥

‘नागदैवतम्’ अश्लेषा । ‘मस्तकं’, प्रथमचरणाः ।

(मस्तक इति श्रवणादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते) ।

(शास्त्रान्तरेऽन्योपि व्यतीपात उक्तः) ।

पञ्चाननस्थौ गुरु-भूमिपुत्रौ मेघे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे ।



पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः ॥  
 अस्मिन् हि गो-भूमि-हिरण्य-वस्त्र-दानेन सर्वं परिहाय पापम् ।  
 शूरत्वं मिन्द्रत्वमनामयत्वं मन्वाधिपत्यं लभते मनुष्यः ॥  
 'पञ्चाननः' सिंहः । 'गुरु-भूमिपुत्रौ' वृहस्पत्यङ्गारकौ ।  
 'पाशाभिधाना' वादशी । 'करभम्' हस्तनक्षत्रमिति ।  
 (ज्योतिःशास्त्रे तु रवि-चन्द्रयोः संक्रान्तिसाम्ये सूक्ष्मौ 'वैधृत-  
 व्यतीपातौ' दर्शितौ) ।

तदाह गालवः । चन्द्रार्कयोर्नयनवीक्षण जातमूर्तिः  
 कालानलद्युतिनिभः पुरुषोतिरौद्रः ।  
 अस्त्रोद्यतो भुवि पतञ्च निरीक्षमाणः  
 कङ्कतयेहमिति च व्यतिपातयोगः ॥

आह भृगुः ।

क्रान्तिसाम्यसमयः समीरितः सूर्यं पर्वसदृशो मुनीश्वराः ।  
 तत्र दत्त-हुत-जप्त-पूजनं कोटि-कोटि-गुणमाह भार्गवः ॥  
 (अयमर्थः सूर्या-चन्द्रमसोः क्रान्तिसाम्ये पुण्यकालद्वयं सम्भवति) । 'एकः' व्यतीपाताख्यः । 'अपरः' वैधृताख्यः ।

(तत्र संक्रान्तिसाम्यलक्षणस्य व्यतीपातस्य गण्डीत्तराङ्गा-  
 दारभ्य क्रमशः सार्द्धेषु पञ्चसु योगेषु सम्भवोस्ति वैधृत  
 संज्ञस्य तु शुक्रयोगादारभ्य सार्द्धेषु संयोगेषु सम्भवोस्ति वैधृते  
 व्यतीपाते दत्तमक्षयकृद्भवेत्) ।

भरद्वाजः । व्यतीपाते वैधृते च दत्तस्यान्तो न विद्यते ।

व्यतीपाते विशेषेण स हि सूक्ष्मः प्रकीर्तितः ॥

(स्थूलप्रकारेण प्रसिद्धस्तु सप्तविंशतितमो योगो वैधृत इति) ।

अथोपरागकालः ।

पद्मपुराणे । चन्द्रस्य यदि वा भानो राहुणा सह सङ्गमः ।

उपराग इति ख्यातस्तत्रानन्तफलं स्मृतम् ॥

इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं भवेत् ।

गङ्गातीरे तु सम्प्राप्ते इन्दोः कीटी रवेर्दश ॥

‘रवेर्दशगुणमिति’ लक्षगुणाद्दशगुणमित्यर्थः ।

एवमुत्तरत्रापि ।

तथा । रविवारे रवेर्ग्रासः सोमे सोमग्रहस्तथा ।

चूडामणिरिति ख्यातस्तत्रानन्तं फलं स्मृतम् ॥

भरद्वाजः । चन्द्र-सूर्योपरागे च यत्कर्त्तव्यं तदुच्यते ।

सर्वं हेममयं दानं सर्वं ब्रह्मसमा द्विजाः ।

सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥

ऋष्यशृङ्गः । राहुग्रस्ते यदा सूर्यो यस्तु आर्द्रं समाचरेत् ।

तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥

शातातपः । अयनेषु सदा देयं विशिष्टं खगुहेषु यत् ।

षडशीतिमुखेचैव विमोक्षे चन्द्र-सूर्ययोः ॥

‘विमोक्षे’ वर्त्तमाने न तु विमुक्तयोरित्यर्थः ।

उपरागे तु तत्कालमिति स्मरणात् ।

तथाच विशिष्टः । नाड्यः षोडश पूर्व्वेण संक्रान्तेस्तु परेण च ।

राहोर्दृशनमात्रेण पुण्यकालः प्रकीर्तितः ॥

जावालिरपि । संक्रान्तौ पुण्यकालस्तु षोडशीभयतः कलाः ।

चन्द्र-सूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरः ॥

अथ संक्रान्तिकालाः ॥

आह शतातपः ।

संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्य-कव्यानि दातृभिः ।

तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि ॥

रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यो हि मानवः ।

सप्तजन्मान्तरं योगी दुःखभागी सदा भवेत् ॥

वृद्धवशिष्ठः । अयने द्वे च विषुवे चतस्रः षडशीतयः ।

चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो हादश्च स्मृताः ॥

भूषकर्कटसंक्रान्तौ द्वे तूदग्दक्षिणायने ।

विषुवे च तुला-मेषे गोलमध्ये ततो पराः ॥

‘भूषः’ मकरः । ‘गोलः’ राशिचक्रम् ।

कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः ।

षडशीतिमुखा प्रोक्ता षडशीतिगुणा फलैः ॥

वृष-वृश्चिक-कुम्भेषु सिंहे चैव यदा रविः ।

एतद्विष्णुपदं नाम विषुवादधिकं फले ॥

गालवः । मध्ये विषुवति दानं विष्णुपदे दक्षिणायने चादौ ।

षडशीतिमुखेतीते तथोदगयनं भूरि फलम् ॥

(एतच्च फलाधिक्यप्रतिपादनार्थमुक्तम्) ।

पर्वकालस्तु संक्रान्तेः प्रागूर्ध्वं भवेदिति ।

तदाह देवलः । संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितक्षणैः ।

तद्योगश्चाप्यधश्चोर्ध्वं त्रिंशन्नाद्यः पवित्रिताः ॥

आसन्नसंक्रमं पुण्यं दिनाहं स्नान-दानयोः ।

रात्रौ संक्रमणे भानोर्विषुवत्ययने दिने ॥

यायाः सनिहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः ।

(अयमर्थः सर्वास्त्रपि संक्रान्तिषु अतीतत्वमनागतत्वज्ञानादव्य अत्र दिनाह्नं अतीता-नागता वा संक्रान्तिः सन्निहिता भवति तत्र स्नान-दानादिकं कार्यमिति) ।

वशिष्ठस्तु विशेषमाह ।

त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः ।

वर्त्तमाने तुला-मेषे नाड्यस्तूभयतो दश ॥

(अत्र वर्त्तमान उभयत इति च सर्वैरेव कर्कटकादिभिः सम्बध्यते) ।

षडशीत्यां व्यतीतायां अष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः ।

पुण्याख्या विष्णुपद्याञ्च प्राक् पञ्चादपि षोडश ॥

‘अष्टिः’ षोडश । ‘षडशीत्यामतीतायामिति’ पुण्यभूयस्त्वाभिप्रायेणैतत् । (षडशीतिमुखेपि पूर्वमपि पुण्यकालस्य प्रतिपादितत्वात्) ।

तदुक्तं स्मृत्यन्तरे । विष्णुपद्यां धनुर्धर्मान-नृत्यकन्यासु वै यदा ।

पूर्वोत्तरगतौ रात्रौ भानोः संक्रमणं भवेत् ॥

पूर्वाह्ने पञ्च नाड्यस्तु पुण्याः प्रोक्ता मनीषिभिः ।

अपराह्णे तु पञ्चैव श्रूयते स्मार्त्तं च कर्मणि ॥

(अनेन रात्रौ षडशीत्यामतीतायामुत्तरदिने पूर्वाह्णे पञ्च-नाड्यः पुण्या भवन्ति) । भाविन्याञ्च पूर्वदिवसे अपराह्णे पञ्च-नाड्यः पुण्या भवन्तीत्युच्यते ।

‘नृत्यकं’ मिथुनराशिः ।

अङ्गि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम् ।

रात्रौ संक्रमणे पुण्यं दिनार्द्धं स्नान-दानयोः ॥

अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया ।

जर्द्धं संक्रमणे चोर्द्धमुदयात् प्रहरद्वयम् ॥

पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः ।

प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्ता मकर-कर्कटौ ॥

अयमर्थः पूर्वरात्रसंक्रमणे पूर्वस्याह्न-उत्तरार्द्धे दानादि-  
क्रिया । अपररात्रसंक्रमणे तु उत्तरदिवसस्य पूर्वार्द्धे दानादि  
क्रिया । अयनरात्र-संक्रमे तु उत्तरदिवसस्य पूर्वार्द्धे दानादि  
क्रिया । मध्यरात्रसंक्रमे तु दिनद्वयं पुण्यम् । रात्रौ स्नान-दानादि  
प्रतिषेधात् । यस्तु संश्रूयते । संक्रान्त्यादिषु रात्रावपि स्नानदाना-  
दिकं कुर्यादिति तद्वक्षिणीत्तरायणविषयम् । अतएवोक्तम् मुक्ता  
मकरकर्कटाविति । ततश्च मकर-कर्कटयो रात्रावपि स्नान-  
दानानुग्रहे या याः सन्निहिता नाडा इत्यवधेयम् । रात्रौ स्नान-  
दानादिप्रतिषेधस्तु संक्रान्त्यन्तरे व्यतिष्ठत एवेति ।

विषुवादिषु सूक्ष्मपुण्यकालमाह ।

गालवः । विषुवे षण्मुहूर्त्तं स्यात् षडशीतिमुखे द्वयम् ।

तथा विष्णुपदे त्रीणि पुण्यानि मुनयो विदुः ॥

फलमाह भरद्वाजः ।

षडशीत्यान्तु यद्दानं यद्दानं विषुवे द्वये ।

दृश्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते ॥

विष्णुपदादिसूक्ष्मतमं पुण्यकालमाह ।

गालवः । स्थिरभे विष्णुपदं षडशीतिमुखं द्वितनुभे तुलामेषे ।

विषुवन्तुर्थं दत्तायनं मृगे सौम्यकं सूर्ये ॥

पूर्वस्त्रैकैर्व्याख्यातमेतत् ।

अयनांशकतुल्येन कालेनैतत् स्फुटं भवेत् ।

सर्वविष्णुपदाद्युक्तभेदादि ह्ययनेऽन्यथा ॥

मृग-कर्कादिगे सूर्य्ये याम्योदगयने सति ।

तदा संक्रान्तिदाने स्युक्ता विष्णुपदादयः ॥

(अयमर्थः राशिं प्रति त्रिंशदंशका भवन्ति सूर्य्यश्च प्रति-  
दिनमेकैकमंशं भुङ्क्ते तत्र यावद्भिरंशैरयनच्युतिर्भवति तावता  
सूर्य्यस्य भोग्यकालेन भाविनां विष्णुपदादिकानां च्युतिर्भवतीति  
ततश्च यदा द्वादशभिरयनच्युतिर्भवति तदा भाविन्याः संक्रान्ते-  
र्द्वादशभिर्दिनैरर्वाक् पुण्यकालो भवति तस्मिंश्च तच्छान्तिनिमित्तं  
दानादि कर्त्तव्यमिति एवं न्यूनातिरिक्तेष्वपि बोद्धव्यम् । न  
केवलमादित्यस्यैव संक्रमसमये पुण्यकालः किन्तु सर्वेषामपि  
ग्रहाणां नक्षत्र-राशिसंक्रमे पुण्यकालो भवतीति ॥

तदुक्तं ज्योतिःशास्त्रे ।

नक्षत्र-राश्यो रविसंक्रमे स्युर्वाक्-परत्रापि रसेन्दुनाडाः ।  
पुण्यास्तथेन्दोस्त्रिधरापलैर्युगा एकैव नाड्यो मुनिभिः शुभोक्ता ॥  
नाड्यश्चतस्रः सपला कुजस्य बुधस्य तिस्रः पलविश्वयुक्ताः ।  
आद्यर्द्धनाडाः पलसप्तयुक्ता गुरोस्तु शुक्रे सपलाश्चतस्रः ॥  
दिनागनाडाः पलसप्तयुक्ता शनैश्चरस्याभिहिताः सुपुण्याः ।  
आद्ये तु मध्ये जप-दान-होमं कुर्व्वन्नवाप्नोति सुरेन्द्रधाम ॥

अस्यार्थः ।

(आदित्यस्य राशि-नक्षत्रगमने अर्वाक् परतश्च षोडश घटिकाः  
पुण्यकालः । तथा चन्द्रस्यापि राशि-नक्षत्रगमने घटिकैका पलानि-

तयोदश अर्वाक्षपरतश्च पुण्यकाकः । एवं मङ्गलस्य घटिका-  
 शतस्रः पलमेकश्च पुण्यकालः । तथा बुधस्य तिस्रो घटिका  
 शतुर्दशपलानि पुण्यकालः । बृहस्पतेरपि सार्द्धाश्वतस्रो घटिकाः  
 सप्तपलानि पुण्यकालः । शुक्रस्य चतस्रो घटिकाः पलमेकश्च  
 पुण्यकालः । शनैश्चरस्यापि द्वाशीतिघटिकाः सप्तपलानि  
 पुण्यकाल इति ॥

अथ प्रकीर्णकालाः ॥

आह विष्णुः । अमावस्या व्यतीपातो ग्रहणं चन्द्र-सूर्ययोः ।

मन्वादयो युगादिश्च संक्रान्तिर्वैधृतिस्तथा ।

दिनक्षयं दिनच्छिद्रमवमश्च तथा परम् ।

द्वेज्यने विषुवद्युग्मं षडशीतिमुखन्तथा ।

चतस्रो विष्णुपद्यश्च पुत्रजन्मादि चापरम् ।

आदित्यादिग्रहाणाञ्च नक्षत्रैः सह सङ्गमे ।

विज्ञेयः पुण्यकालीयं ज्योतिर्विद्भिर्विचार्य च ।

तत्र दानादिकं कुर्यादात्मनः पुण्यवृद्धये ॥

‘अमावास्यादीनि’ प्रसिद्धानि । दिनक्षयसुक्तम् पद्मपुराणे ।

द्वौ तिथ्यन्तावेकवारि यस्मिन् स स्याद्दिनक्षयः ।

वशिष्ठोप्याह । एकस्मिन् सावने त्वङ्नि तिथीनां त्रितयं यदा ।

तदा दिनक्षयः प्रोक्तस्तत्र साहस्रिकं फलम् ॥

दिनच्छिद्रलक्षणमाह ।

भृगुः । तिथ्यर्द्धतिथियोगर्द्धेदादौ शशिपर्वणः ।

सदृशौ दिवसच्छिद्रसमाख्यौ प्राह भार्गवः ॥

(अयमर्थः तिथ्यर्द्धं करणं करण-तिथि-योग-नक्षत्राणा-

मन्ते आदौ च पर्वकालः सीमग्रहणतुल्यः स च दिनच्छिद्र  
संज्ञइति) ।

कालमानमप्युक्तं तेनैव ।

छेदादिकालः कथितस्तिथिकृत्योर्घटीद्वयम् ।

नाग-वह्नि-पलोपेतं तज्ज्ञे तत्त्वपलैर्युतम् ॥

पलैः शोडशभिर्युक्तं नाडिकाद्वितयं युतेः ।

छेदादिसमयः प्रोक्तो दानेऽनन्तफलप्रदः ॥

‘कृतिः’ करणं । ‘नागः’ अष्टौ । ‘वह्नीयः’ त्रयः । ‘भं’ नक्षत्रम् ।

‘तत्त्व’ पञ्चविंशतिः । ‘युतिः’ योगः ।

तदयमर्थः सिद्धो भवति ।

(तिथिकरणयोराद्यन्ते घटिकाद्वयमष्टविंशत्पलानि पुण्यकालः) ।

(नक्षत्रस्य तु पञ्चविंशतिपलैर्युक्तं घटिकाद्वयम्) ।

(योगस्यापि शोडशभिः पलैर्युक्तं घटिकाद्वयमिति) ।

अवमलक्षणमाह ।

विष्णुः । तिथित्रयं सृष्ट्यत्येको वारः स्यादवमं हि तत् ।

त्रिवारसृक् तिथिर्यत्र दिनसृक् च तदुच्यते ॥

(अत्र दिनक्षयावमयोरियान् भेदः) ।

यत्र तिथिद्वयावसाने वारावसानं स दिनक्षयः ।

यत्र तिथिद्वयावसानेपि वारानुवृत्तिः सोऽवम इति ।

ब्रह्मप्रोक्ते । एकादश्यप्यमावस्या-पूर्णिमा-पुनर्वसु च ।

वैधृतिश्च व्यतीपातो भद्रा चावमवासरः ॥

युगमन्वाद्यस्ते स्युरिन्द्रपर्वसमानकाः ।

क्रान्तिसाम्यं दिनच्छिद्रं ग्रहाणां भगमस्तथा ॥



‘भगमः’ राशिनक्षत्रेषु गमनम् ।

देवी पुराणे । व्यतीपातो विष्णुपदं षडशीतिमुखन्तथा ।

क्रान्तिसाम्यममावास्या ग्रहणं वैधृतिश्च यः ।

संक्रान्तिश्च दिनच्छिद्रं तिथिवृद्धिदिनक्षयः ।

इत्यादि पुण्यकालस्तु होम-दानादिकर्मणः ॥

स्कन्दपुराणे । ग्रहणं चन्द्रसूर्याभ्यामुत्तरायणमुत्तमम् ।

विषुवं सव्यतीपातं षडशीतिमुखन्तथा ।

दिनच्छिद्राणि संक्रान्तिर्ज्ञेयं विष्णुपदं पुनः ।

इति कालः समाख्यातः पुंसां पुण्यविवर्धनः ।

अस्मिन् दत्तानि दानानि स्नान-होम-तपांसि च ।

अनन्तफलदानि स्यः स्वर्ग-मोक्षप्रदान्यपि ॥

आह चवनः ।

अमावास्या-संक्रान्ति-व्यतीपातविषुवा-यन-षडशीतिमुख-विष्णु

पदादि-वैधृति-ग्रहणान्तं स एव पुण्यकालः ॥

अयने षडशीतौ च चन्द्र-सूर्यग्रहे तथा ।

युगादौ वैधृतौ चैव दत्तं भवति चाक्षयम् ॥

आह शातातपः ।

अयनेषु तु यद्दत्तं षडशीतिमुखेषु च ।

चन्द्र-सूर्योपरागे च दत्तं भवति चाक्षयम् ॥

नारदः । विशाखासु यदा भानुःक्षत्तिकासु च चन्द्रमाः ।

स योगः पञ्चमी नाम पुष्करिष्वति दुर्लभः ॥

अथ निषिद्धकालाः । तत्र शङ्खलिखितौ ।

आहारं मैथुनं निद्रां सन्ध्याकाले तु वर्जयेत् ।

कर्म्म चाध्ययनञ्चैव तथा दानप्रतिग्रहौ ॥  
 स्कन्दपुराणे । रात्रौ दानं न कर्त्तव्यं कदाचिदपि केनचित् ।  
 हरन्ति राक्षसा यस्मात् तस्माद्दातुर्भयावहम् ॥  
 विशेषतो निशीथे तु न शुभं कर्म्म शर्मणे ।  
 अतो विवर्जयेत् प्राज्ञो दानादिषु महानिशाम् ॥  
 तथा स्नानञ्चैव महादानं स्वाध्यायन्तु न तर्पणम् ।  
 प्रथमेऽब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने ॥

आह ज्योतिःपराशरः ।

अग्न्याधेयं प्रतिष्ठाञ्च यज्ञ-दानाद्यभिग्रहान् ।  
 माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे विवर्जयेत् ॥  
 वापी-कूप-तडागादि प्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ ।  
 दक्षिणाशामुखे कुर्वन् न तत्फलमवाप्नुयात् ॥  
 बाले वा यदि वा वृद्धे शुके वास्तमुपागते ।  
 मलमासद्वैतानि वर्जये \* दत्ततः सदा ॥

‘मलमासः’ अधिकमासः । तल्लक्षणमाह ।  
 प्रचेताः । एकराशिस्थिते सूर्ये यदा दर्शद्वयं भवेत् ।  
 हव्य-कव्य-क्रियाहन्ता तदा ज्ञेयोऽधिमासकः ॥  
 पैठीनसिः । बत्सरान्तर्गतः पापो यज्ञानां फलनाशकत् ।  
 नैऋत्य-यातुधानानामसंक्रान्तोऽधिमासकः ॥  
 मलिन्तुचमसंक्रान्तं सूर्यसंक्रान्तिवर्जितम् ।  
 अधिमासं विजानीयात् सर्वकर्मसु गर्हितम् ॥

तथा । श्रौत-स्मार्त्तक्रियाः सर्वा द्वादशे मासि कौर्त्तिताः ।

त्रयोदशे तु ताः सर्वा निष्फला इति संज्ञिताः ॥

तस्मात् त्रयोदशे मासि न कुर्यात्ताः कथञ्चन ।

कुर्वन्ननर्थमेवाशु कुर्याच्चात्मविनाशनम् ॥

हारीतः । इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकौर्त्तितः ।

अग्नीसोमौ स्थितौ मध्ये समामौ पितृसोमकौ ॥

तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छेत् कदाचन ।

आद्यो मलिम्बुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः ॥

तस्मिंस्तु प्राकृते मासि कुर्याच्छ्राद्धं यथाविधि ।

तथैवाभ्युदयं कार्यं नित्यमेकं हि सर्वदा ॥

व्यासः । भानुना लङ्घितो मासो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु ।

षष्टिभिर्द्विर्वसेर्मासः कथितो वादरायणैः ।

पूर्वार्द्धन्तु परित्यज्य उत्तरार्द्धं प्रशस्यते ॥

उपाकर्म च हव्यञ्च कथ्यं पर्वोत्सवस्तथा ।

उत्तरेनियतिः कुर्यात् पूर्वं तन्निष्फलं भवेत् ॥

पाराशरः । उपाकर्म-तद्योत्सर्गः \* प्रसवाहो-त्सवा-ष्टकाः ।

मासवृद्धौ पराः कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम् ॥

तथा ज्योतिः शास्त्रे ।

धटकन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाय धन्विनि ।

मकरे वायवा कुम्भे नाधिमासो विधीयते ॥

माण्डव्यः । गर्भे वार्हुषिके प्रेते भूते नित्ये तु मासिके ।

प्रथमे चाब्दिके चैव नाधिमासो विधीयते ॥  
 अथ निषिद्धस्यापि धर्मविशेषेण पुण्यकालत्व मभिधीयते ।  
 देवलः । राहुदर्शन-संक्रान्ति-विवाहा-त्यय-वृद्धिषु ।  
 स्नान-दानादिकं कुय्युर्निशि काम्यव्रतेषु च ॥  
 वृद्धवसिष्ठः । ग्रहणो-वाह-संक्रान्ति \* यात्रादिप्रसवेषु च ।  
 दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते ॥  
 विष्णुधर्मोत्तरे । पूजनन्वतिथीनाञ्च पान्यानामपि पूजनम् ।  
 तच्च रात्रौ तथा ज्ञेयं गवामुक्तञ्च पूजनम् ॥  
 महाभारते । रात्रौ दानं प्रशंसन्ति विना त्वभयदक्षिणाम् ।  
 विद्यां कन्यां द्विजश्रेष्ठा दीपमन्त्रं प्रतिश्रयम् ॥  
 श्रीमार्कण्डेयपुराणे ।  
 महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ।  
 स्नानं तत्र न कुर्वीत काम्य-नैमित्तिकादृते ॥  
 विश्वामित्रः । महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः ।  
 नैमित्तिकन्तथा कुर्यान्नित्यन्तु न मनागपि ॥  
 अथ निमित्तानुरोधेन सदा पुण्यकालाः ॥  
 विष्णुधर्मोत्तरे । कालः सर्वोपि निर्दिष्टः पात्रं सर्वमुदाहृतम् ।  
 अभयस्य प्रदाने तु नात्र कार्या विचारणा ।  
 तदैव दानकालस्तु यदा भयमुपस्थितम् ॥  
 तथा । न कालनियमो दृष्टो दीयमाने प्रतिश्रये ।  
 तदैव दानमस्योक्तं यदा पान्यसमागमः ॥  
 न हि कालं प्रतीक्षेत जलं दातुं तृषान्विते ।

\* यायातीति कचित्पाठः ।

अन्नोदकं सदा देयमित्याह भगवान्मनुः ॥

स्कन्दपुराणे । अर्द्धप्रसूतां गां दद्यात् कालादि न विचारयन् ।

कालः स एव ग्रहणे यदा सा द्विमुखी तु गौः ॥

व्यासः । आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्व्ववत् ।

तदभावे तु गौरेव नरकोद्धरणाय वै ॥

तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीन्तु गाम् ।

शक्तीऽन्योऽरुक्तदा दत्त्वा श्रेयो दद्यान्मृतस्य च ॥

वाराहपुराणे । व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः ।

पुण्यकालास्तदा सर्व्वे यदा मृत्युरुपस्थितः ।

तदा गो-भू-हिरण्यादि दत्तमक्षयतामियात् ॥

तथा । यावत् कालं सुते जाते न नाडी क्षियते नृप ।

चन्द्र-सूर्य्योपरागेण तमाहुः समयं समम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे । अच्छिन्ननाद्यां यदत्तं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः ।

संस्कारेषु च पुत्रस्य तदक्षयं प्रकीर्त्तितम् ॥

मत्स्यपुराणे । यदा वा जायते वित्तं चित्तं अज्ञासमन्वितम् ।

तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनित्यं हि जीवितम् ॥

इति कालनिरूपणम् ॥

अथ देशस्थं दानाङ्गमुपवर्ण्यते ॥

तत्र देवोपुराणे । सर्व्वं शिवाश्रमाः पुण्याः सर्व्वा नद्यः शुभप्रदाः ।

दान-स्नानो-पवासादिफलदाः सततं नृणाम् ॥

आह विष्णुः । चातुर्व्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते ।

\* स स्नेच्छदेशो विज्ञेय आर्य्यदेशस्ततः परः ॥

भविष्यपुराणे । न हीयते यत्र धर्मश्चतुष्पात् सकलो द्विज ।

स देशः परमो नित्यं सर्वपुण्यतमो मम ॥

विद्वद्भिः सेवितो यश्च यस्मिन् देशे प्रवर्त्तते ।

शास्त्रोक्तश्चापि विप्रेन्द्र स देशः परमोमतः ॥

याज्ञवल्क्यः । यस्मिन् देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन् धर्मान्विवोधत ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराणे ।

सह्यस्य चोत्तरो यस्त यत्र गोदावरी नदी ।

पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशोऽतिपावनः ॥

व्यासः । गङ्गाद्वारे प्रयागे च अविमुक्ते च पुष्करे ।

नगरे चाट्टहासे च गङ्गासागरसङ्गमे ।

कुरुक्षेत्रे गयायाञ्च तीर्थे वामरकण्टके ।

एवमादिषु तीर्थेषु दत्तमक्षयतामियात् ।

सर्वतीर्थमयीगङ्गा तत्र दत्तं महाफलम् ॥

स्कन्दपुराणे । वाराणसी कुरुक्षेत्रं प्रयागः पुष्कराणि च ।

गङ्गा-समुद्रतीरञ्च नैमिषामरकण्टकम् ।

श्रीपर्वत-महाकालं गोकर्णं वेदपर्वतम् ।

इत्याद्याः कीर्त्तिता देशाः सुरसिद्धनिषेविताः ॥

सर्वे शिलीञ्चयाः पुण्याः सर्वा नद्यः ससागराः ।

गो-सिद्धमुनि-वासाञ्च देशाः पुण्याः प्रकीर्त्तिताः ।

एषु तीर्थेषु यद्दत्तं फलस्यानन्त्यकृद्भवेत् ॥

पद्मपुराणे । गङ्गा चोदङ्मुखी यत्र यत्र प्राची सरस्वती ।

तत्र क्रतुशतं पुण्यं स्नान-दानेषु सुव्रत ॥

लिङ्गं वा प्रतिमा वापि दृश्यते यत्र कुत्रचित् ।

तत् सर्वं पुण्यतां याति दानेषु च महाफलम् ॥  
 ब्रह्मप्रोक्ते । नदीतीरे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानाञ्च वेश्मनि ।  
 दत्तं शतगुणं प्राहुर्लक्षमादित्यसन्निधौ ॥  
 शिवस्य विष्णोर्वक्त्रेश्च सन्निधौ दत्तमक्षयम् ।  
 तथा । अग्निहोत्रे गवां गोष्ठे वेदघोषपवित्रिते ॥  
 शिवायतनसंस्थाने यदल्पमपि दीयते ।  
 तदनन्तफलं ज्ञेयं शिवक्षेत्रानुभावतः ॥  
 मत्स्यपुराणे । शालग्रामसमुद्भूतः शैलश्चक्राङ्गमखिलतः ।  
 यत्र तिष्ठति वसुधे तत्क्षेत्रं योजनद्वयम् ॥  
 हारवत्याः शिला देवि मुद्रिता मम मुद्रया ।  
 यत्रापि नीयते तत्स्यात्तीर्थं द्वादशयोजनम् ॥  
 तथा । प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च ।  
 दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदी-पुण्यवनेषु च ॥  
 'आयतने' शङ्करादिक्षेत्रे ।

तदुक्तं भविष्यपुराणे ।

क्रोशमात्रं भवेत् क्षेत्रं शिवस्य परमात्मनः ।  
 प्राणिनान्तत्र पञ्चत्वं शिवसायुज्यकारणम् ।  
 फलं दत्त-हुतानाञ्च अनन्तं परिकीर्तितम् ॥  
 मनुजैः स्थापिते लिङ्गे क्षेत्रे मानजिदं स्मृतम् ।  
 स्वयम्भुवि सहस्रं स्यादार्घ्यं चैव तदर्धकम् ॥

अथ अद्वाख्यं दानाङ्गमुच्यते ।

स्कन्दपुराणे । दानं दद्यात् प्रयत्नेन अद्वा-पूतमतन्द्रितः ।  
 अद्वाकृतं स्वल्पमपि दानमानन्तमश्नुते ॥

अश्रद्धयापि यद्वत्तं सर्वस्वमपि सत्तम ।

न तत् फलाय भवति तस्माच्छ्रद्धां समाश्रयेत् ॥

देवलः । प्रदाय शाकमुष्टिम्वा अद्वा-भक्ति-समुद्यतम् ।

महते पात्रभूताय सर्वाभ्युदयमाप्नुयात् ॥

महाभारते । अश्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः ।

निष्किञ्चनास्तु मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः ॥

धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां श्रद्धा परमकारणम् ।

पुंसामश्रद्धानानां न धर्मो नापि तत्फलम् ॥

वल्गुपुराणात् । श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्माः श्रद्धामध्यान्तसंस्थिताः ।

श्रद्धा-निष्ठाः-प्रतिष्ठाश्च धर्माः श्रद्धैव कीर्तिताः ॥

श्रुतिमातरसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेश्वराः ।

श्रद्धामात्रेण गृह्यन्ते न वाक्येन न चक्षुषा ॥

कायक्लेशैर्न बहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः ।

धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनैः सुरैरपि ॥

श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतन्तपः ॥

श्रद्धा-स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ॥

सर्वस्वं जीवितञ्चापि दद्यादश्रद्धया यदि ।

नाप्नुयात् सकलं किञ्चित् श्रद्धानस्ततो भवेत् ॥

वेदव्यासः । श्रद्धा वै सात्विकी देवी सूर्यस्य दुहिता नृप ।

सवित्री प्रसवित्री च जीवविश्वासिनी तथा ।

वाग्वृद्धं त्रायते श्रद्धा मनोवृद्धञ्च भारत ॥

महाभारते । क्रियावान् श्रद्धानश्च दाता प्राज्ञोऽनसूयकः

धर्मा धर्म-विशेषज्ञः सर्वन्तरति दुस्तरम् ॥



स्कन्दपुराणे । अद्या मातेव जननी ज्ञानस्य सुकृतस्य च ।

तस्माच्छ्रद्धां समुत्पाद्य ज्ञानं सुकृतमर्जयेत् ॥

मनुः । अद्येष्टञ्च पूर्त्तञ्च नित्यं कुर्यात् प्रयत्नतः ।

अद्याकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्जनैः ॥

याज्ञवल्करः । दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः ।

याचितेनापि दातव्यं अद्यापूतन्तु शक्तितः ॥

बृहस्पतिः । मन्त्राज्यदोषाद्धोमे तु तपसीन्द्रियदोषतः ।

न्यूनता स्यान्नदाने तु अद्यायुक्ते भवेत् क्वचित् ॥

(एतच्च देशनिरूपणञ्च पूर्वं व्रतखण्डादावेव प्रपञ्चितम्  
इहतु पात्रादिदानाङ्गनिरूपणप्रतिज्ञानिर्वहणार्थं दिज्ञानमेव  
प्रदर्शितम् । न चात्र भविष्यपुराणमतेन दानाङ्गपञ्चके निरू-  
प्यमाणे दानाङ्गभूतस्यापि दातुः कथं पृथगनुपादनमिति शङ्क-  
नीयं दानस्य दातव्यतिरेकेणानुपपत्तेस्तेनैव तदाक्षेपात् एवं  
तर्हि देश-कालादेरप्यनुपादानं स्यात्

अथ सामान्येनैव तदाक्षेपेऽपि ब्रह्मावर्त्तादिविशेषलाभार्थं  
तन्निरूपणमिति दातापि तर्हि शुचित्वादिविशेषलाभार्थं निरू-  
पणीयः स्यात् उच्यते तत्तद्विधायकवाक्यगताख्यातप्रत्ययोपात्तत्वा-  
देव तदनिरूपणं नत्वाक्षेपात् शुचित्वादिविशेषलाभस्तु  
वाक्यान्तरादिति कर्त्तृनभिधानपक्षे तु प्रत्ययोपात्तभावनयै-  
वासाधारण्येन तदाक्षेपान्न देशादिसाम्यं । एवमादिक्लेशपर्या-  
लोचनया षडङ्गदानमिति वदता देवलेन तु निरूप्यत एव) ।  
तथाहि । दाता प्रतिग्रहीता च अद्या देयञ्च धर्मयुक् ।

देश-कालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड्विदुरिति ।

(तल्लक्षणन्तु प्रागभिहितमिति तु न पुनराद्रियामहे ।

न तु अद्वादिवदितिकर्त्तव्यतापि दानाङ्गमित्यतः प्रति-  
पादनीयैव) ।

यदाह याज्ञवल्क्यः । देश-काल-उपायेन द्रव्यं अद्वासमन्वितम् ।

पात्रे प्रदीयते यत्तत् सकलं धर्मलक्षणमिति ॥

‘उपायः’ इतिकर्त्तव्यता । अत्रोच्यते ।

(इतिकर्त्तव्यताविशेषास्तावत्तत्र दानविशेषेष्वेव प्रतिपाद-  
यिष्यन्ते तेषामिह प्रतिपादयितुमशक्यत्वात् सामान्येनेति-  
कर्त्तव्यता पुनरवश्यं वक्तव्येति तदर्थमिदं प्रकरणमारभ्यते ।  
इति अद्वा निरूपणम्) ।

अथ दानसामान्यविधिरुच्यते । तत्र दातृधर्माः ।

भविष्य पुराणे । सम्यक् संसाधनं कर्म कर्त्तव्यमधिकारिणा ।

निष्कामेन महावीर काम्यं कामान्वितेन च ॥

आचारयुक्तः अद्वावान् प्राज्ञो योऽध्यात्मवित्तमः ।

कर्मणां फलमाप्नोति न्यायार्जितधनश्च यः ॥

‘सम्यक्’ प्रथमकल्पादिना । ‘संसाधनं’ यथाविहित-  
साधनम् । ‘अधिकारिणा’ अर्थिना’ समर्थेन विदुषा च ।

‘अध्यात्मवित्तमः’ परलोकफलभागिन्यात्मनि दृढप्रत्यय-  
वान् ।

‘न्यायार्जितधनः’ स्ववृत्त्यर्जितधनः ।

आपस्तम्बः । प्रयोजयिता-नुमन्ता कर्त्तेति स्वर्गनरकफलेषु

भागिनः यो भूय आरभते तस्मिन् फलविशेषः ॥

याज्ञवल्क्यः । विधिदिष्टन्तु यत्कर्म करोत्यविधिना तु यः ।

फलं न किञ्चिदाप्नोति क्लेशमात्रं हि तस्य तत्  
मनुः । प्रभुः प्रथमकल्पस्य योनुकल्पेन वर्तते ।

न साम्प्रदायिकं तस्य दुर्भतेर्विद्यते फलम् ॥

‘साम्प्रदायिकं’ पारलौकिकम् ।

योगियाञ्चवल्काः । अद्वा-विधि-समायुक्तं कर्म यत् क्रियते नृभिः ।

सुविशुद्धेन भावेन तदानन्त्याय कल्पते ॥

विधिहीनं भावदुष्टं कृतमश्रद्धया च यत् ।

तद्वरन्त्यसुरास्तस्य मूढस्य ह्यकृतात्मनः ॥

भविष्योत्तरे । काम्यो दानविधिः पार्थ क्रियमाणो यथातथम् ।

फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयावहः ॥

गारुडपुराणे । प्रशस्तदेश-काले च पात्रे दत्तं तदक्षयम् ।

कोटिजन्मार्जितं पापं ददतस्त्वस्य नश्यति ॥

सकलाङ्गोपि सम्भारी यस्य दानक्रियाविधौ ।

सम्भवेदपि पापीयान् स सद्यो मुक्तिमेष्यति ॥

देवीपुराणे । शुचिना भावपूतेन क्षान्ति-सत्य-व्रतादिना ।

अपि सर्षपमात्रोपि दातारं तारयेद्दिह ॥

दत्तः । दानञ्च विधिवद्देयं काले पात्रे गुणान्विते ॥

यमः । सर्वत्र गुणवद्दानं श्वपाकादिष्वपि स्मृतम् ।

देशे-काले विधानेन पात्रे दत्तं विशेषतः ॥

‘गुणवत्’ उत्तमफलम् ।

तथा । दानं हि बहुमानाद्याः गुणवद्भाः प्रयच्छति ।

स तु प्रेत्य धनं लब्ध्वा पुत्रपौत्रैः सहाश्रुते ॥

परञ्चानुपहत्येह दानं दत्त्वा विचक्षणः ।

सुखोदयं सुखोदकं प्रेत्य वै लभते धनम् ॥  
 'अनुपहत्य, पीडामनुत्पाद्य, "सुखोदकं" सुखोत्तरफलम् ।  
 रामायणे । नावज्ञया प्रदातव्यं किञ्चिद्वा केनचित् क्वचित् ।  
 अवज्ञया हि यदत्तं दातुस्तद्दोषमावहेत् ॥  
 शातातपः । अभिगम्य तु यद्दानं यच्च दानमयाचितम् ।  
 विद्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तो नैव विद्यते ॥  
 प्रच्छन्नानि च दानानि ज्ञानञ्च निरहंकृतम् ।  
 तपांसि च सुतप्तानि तेषां फलमनन्तकम् ॥  
 ब्रह्मप्रोक्ते । गुप्ताध्यायी गुप्तदाता गुप्तपूजाग्निसत्क्रियः ।  
 पूज्यते सर्वलोकेषु सर्वदेवैः शतक्रतुः ॥  
 व्यासः । स्वयं नीत्वा तु यद्दानं भक्त्या पात्राय दीयते ।  
 तत्सहस्रगुणं भूत्वा दातारमुपतिष्ठति ॥  
 बृहस्पतिः । कृते प्रदीयते गत्वा त्रेतायां दीयते गृहे ।  
 द्वापरे च प्रार्थयति कलौ चानुगमान्विते ॥  
 (प्रतिग्रहीत्यगृहं गत्वा यद्दीयते तत्कृते युगे  
 दत्तं भवति) । प्रतिग्रहीतारं स्वगृहमाह्वय यद्दीयते  
 तत्त्रेतायुगे दत्तं भवतीत्यर्थः । एव सुत्तरत्वापि ॥  
 बङ्गिपुराणे । तमोवृतस्तु योदद्याद्भयात् क्रोधात्तथैव च ।  
 नृप दानन्तु तत्सर्वं भुङ्क्ते गर्भस्थ एव च ॥  
 ईर्ष्या-मन्युमनाश्चैव दम्भार्थं चार्थ-कारणान् ।  
 योददाति द्विजातिभ्यः स बालत्वे तदश्रुते ॥  
 देशे काले च पात्रे च योददाति द्विजातिषु ।  
 परितुष्टेन मनसा यौवने तु तदश्रुते ॥

वैश्वदेवविहीनं च सन्ध्योपासनवर्जितम् ।

यद्दानं दीयते तत्तु वृद्धकाले समश्रुते ॥

आह मनुः । न विस्मयेत तपसा वदेदिष्टा नचानृतम् ।

नात्तौविप्रवदेद्विप्रान् न दत्त्वा परिकीर्त्तयेत् ॥

यज्ञोऽनृतेन चरति तपः चरति विस्मयात् ।

आथुर्विप्रापवादेन दानन्तु परिकीर्त्तनात् ॥

यमः । आशां कृत्वा ह्यदातारं दानकाले निषेधकम् ।

दत्त्वा सन्तप्यते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥

हारीतः । दानं ज्ञानं तपस्यागोमन्त्रकर्मविधिक्रियाः ।

मङ्गलाचारनियमाः शौचभ्रष्टस्य निष्फलाः ॥

आह प्रचेताः । स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पित्रे च कर्मणि ।

पवित्राणां तथा जाप्यदाने च विधिचोदिते ॥

वायुपुराणे । क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्येह नास्तिकः ।

भवन्ति न तथा तस्य क्रियाः सर्वा न संशयः ॥

शाटायनः । दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम् ।

प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥

आसनारूढपादस्तु जान्वीर्वा जङ्घयोस्तथा ।

कृतावसक्थिकोयश्च प्रौढपादः स उच्यते ॥

वशिष्ठः । यज्जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससा ।

जपो होमस्तथा दानं तत् सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

विष्णुपुराणे । होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा ।

नैकवस्त्रः प्रवर्त्तते द्विजवाचनके जपे ॥

‘द्विजवाचनके, द्विजस्त्वस्तिवाचनादौ ।

शातातपः । सव्यादंसात्परिभ्रष्टकटिदेशभृताम्बरः ।

एकवस्त्रन्तु तं विद्यात् दैवे पित्रेच वर्जयेत् ॥

श्लोकगौतमः । स्नाने दाने जपे होमे दैवे पित्रेच कर्मणि ।

बध्नीयान्नासुरीं कक्षां शेषकाले यथा रुचिः ॥

यान्नवल्कारः । परिधानाद्बहिः कक्षा निबद्धा ह्यासुरी भवेत् ।

धर्मकर्मणि विद्वद्भिर्वर्जनीया प्रयत्नतः ॥

‘बहिः कक्षा, बहिर्निर्गता कक्षेत्यर्थः ।

मनुः । न कुर्यात् कस्यचित् पीडां कर्मणा मनसा गिरा ।

आचरन्नभिषेकन्तु कर्माण्यप्यन्यथा चरन् ॥

सम्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दन्तधावने ।

पितृकार्ये च दैवेच तथा मूत्रपुरीषयोः ॥

गुरुणां सन्निधौ दाने यागेचैव विशेषतः ।

एषु मौनं समातिष्ठन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ॥

पराशरः । स्नाने दाने जपे होमे, दैवे पित्रेच कर्मणि ।

सव्यापसव्यौ कर्त्तव्यौ सपवित्रौ करौ द्विजैः ॥

लघुहारीतः । जपेहोमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे ।

अशून्यन्तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः ॥

दर्भहीना तु या सव्या यच्च दानं विनोदकम् ।

असंख्यातञ्च यज्जप्तं तत्सर्वं निष्प्रयोजकम् ॥

हारीतः । देवाश्च प्रितरश्चैव तपोयज्ञदानानामीशतेमन्तारः

सर्वकार्यसाधनानामार्त्तिभयोपसर्गभ्योरक्षितारो भवन्ति, मन्त्रा

देवता स्तदा एवं सिद्धमन्त्रवत्करोति, देववत्करोति, यद्ददाति

देवताभिरेव तद्ददाति, यत्प्रतिगृह्णाति देवताभिरेव तत् प्रति-

गृह्णाति, तस्मान्नामन्ववत्प्रतिगृह्णीयात् यत्त्वमन्वतः प्रतिपादिता  
हि देवतास्तुष्णीं प्रतिगृह्णीयुर्हि शठा भवन्ति तस्मान्मन्ववदङ्घ्रि-  
रवोक्ष्य दद्यादालभ्य वा ॥

‘अवोक्ष्य, प्रोक्षणं कृत्वा । ‘आलभ्य, सोदयेन पाणिना  
स्पृष्ट्वा ॥

आपस्तम्बः ॥ सर्वाण्युदकपूर्वाणि दानानि, यथाश्रुति वीहारे ।  
वीहारे, यज्ञे अन्वाहार्यदानादौ यथाश्रुति यावदेव श्रुतं तावदेव  
कुर्यान्नोदकपूर्वतादिनियम इत्यर्थः ॥

वाराहपुराणे । तोयं दद्यात् द्विजकरे दाने विधिरयंस्मृतः ।

सकुशोदकहस्ताश्च ददामीति तथावदेत् ॥

गौतमः । अन्तर्जानुकरं कृत्वा सकुशन्तु तिलोदकम् ।

फलान्यपिच संधाय प्रदद्यात् अद्वयान्वितः ॥

(पात्रासन्निधानेतु नारदीयपुराणे विशेष उक्तः) ॥

मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं \* भूमौ विनिक्षिपेत् ।

विद्यते सागरस्यान्तो दानस्यान्तो न विद्यते ॥

धौम्यः । दानकाले तु सम्प्राप्ते पात्रस्यासन्निधौ जलम् ।

अन्यविप्रकरे दत्त्वा दानं पात्रे निधीयते ॥

षट्त्रिंशन्मतात् । पात्रं मनसि सञ्चिन्त्य क्रियावन्तं गुणान्वितम् ।

देशे काले च सम्प्राप्ते देयमप्सु विनिक्षिपेत् ॥

(उभयासन्निधाने तु विशेषस्तत्रैवोक्तम्)

द्रव्य-पात्र-विकर्षयेत् परोक्षं दातुमुद्यतः ।

तत्पायाद्वै भुवं पात्रं द्रव्यमादित्यदैवतम् ॥

\* भूमौ तोयमिति कचित् पाठः ।

धौम्यः । परोक्षेऽपि तु यद्वत्तं तीर्थे स्नाने न सोदकम् ।

तद्दानं सोदकं प्राहुरनन्तफलदायकम् ॥

परोक्षे कल्पितं दानं पत्राभावे कथं भवेत् ।

गोत्रजेभ्यस्तथा दद्यात् तदभावे स्ववन्धुषु ॥

परोक्षेऽपि च यद्वत्तं भावपूर्व्वेण चेतसा ।

गुरुमित्रहिजातिभ्यस्तत्तु दानमनन्तकम् ॥

परोक्षे खलु यद्वत्तं स्वस्त्यक्षरविवर्जितम् ।

दृश्यते सागरस्यान्तस्तस्यान्तोनैव दृश्यते ॥

आपस्तम्बः । तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञ-दान-तपः-क्रियाः ।

प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनः ॥

त्रिमात्रस्तु प्रयोक्तव्यः कर्मभारभेषु सर्व्वशः ।

तिस्रः सार्द्धास्तु कर्त्तव्या मात्रास्तत्त्वार्थचिन्तकैः ।

देवताध्यानकाले न भुतं कुर्यात् न संशयः ॥

बृहवशिष्ठः । नामगोत्रे समुच्चार्य्य सम्यदानस्याचात्मनः ।

सम्यदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने तु पुंस्त्वयम् ।

(‘पुंस्त्वयमिति, प्रपितामहादिपुरुषत्रयमित्यर्थः) ।

तदुक्तं । नान्दीमुखे विवाहे च प्रपितामहपूर्व्वकम् ।

नाम सङ्कीर्त्तयन् विद्वानन्यत्र पितृपूर्व्वकम् ॥

तथा दानहोमजपान् कुर्व्वन्नासीनः कुशसंस्तरे ।

एषां फलमनन्तन्तु लभते प्राङ्मुखो नरः ॥

स्मृत्यन्तरात् । नामगोत्रे समुच्चार्य्य सम्यक्श्रद्धान्वितो ददेत् ।

सङ्कीर्त्त्य देशकालादि तुभ्यं सम्यददे इति ।

न ममेति स्वस्त्वस्य निवृत्तिमपि कौर्त्तयेत् ॥



षट्त्रिंशन्मतात् । प्रणीते तु समिद्धेऽग्नौ जुहुयाद्वाह्नतित्रयम् ।  
उदगग्रेषु दर्भेषु पात्रं तेषूपपादयेत् ॥

प्रागग्रेषु स्वयंस्थित्वा दाताच परमेश्वरम् ।

ध्यात्वा स्वमुखमुद्दिश्य दक्षिणां प्रतिपादयेत् ॥

समस्ता व्याहृतीर्हृत्वा तत्रोपरि समापयेत् ।

ब्राह्मणं प्रतिपत्वाथ ततः पात्रं विसर्जयेत् ॥

अनेन विधिना दानं दातव्यं होमपूर्वकम् ।

तत्कर्मदक्षिणावर्जं होमवर्जञ्च नार्हति ॥

एतच्च विहिताङ्गभूतहोमकेषु होमानुवादपुरःसरमुपदर्शितं  
तत्तदगुणविधिपरम्, अन्यथा ह्यतथादृष्टशिष्टाचारेषु ताम्बूलादि-  
दानेष्वपि प्रसङ्गः स्यात् । अथ प्रतिग्रहीतधर्माः ।

ब्रह्माण्ड पुराणे ।

शुचिः पवित्रपाणिश्च गृह्णीयादुत्तरामुखः ।

अभीष्ट देवतां ध्यायन् मनसा विजितेन्द्रियः ॥

कृतोत्तरीयकोनित्यमन्तर्जानुकरस्तथा ।

दातुरिष्टमभिध्यायन् गृह्णीयात् प्रयतः शुचिः ॥

आपस्तम्बः । आर्द्रवासास्तु यः कुर्यात् जपहोमं प्रतिग्रहम् ।

सर्वं तद्राक्षसं विन्देत् बहिर्जानुच यत्कृतम् ॥

बौधायनः । काषायवासा कुरुते जपहोमप्रतिग्रहान् ।

तद्देवगमं भवति हव्यकव्यं स्वधा हविः ॥

कागलेयः । हस्तमध्ये ब्रह्मतीर्थं दक्षिणाग्रहणे नतु ॥

आह प्रचेताः । दक्षिणमध्यहस्ते ब्राह्मणस्याग्नेयं तीर्थमग्नेयेन  
प्रतिगृह्णीयादिति ।

गारुड पुराणे ।

स्नातः सम्यगुपस्पृश्य दधानो धौतवाससी ।

सपवित्रकरश्चैव प्रतिगृह्णीत धर्मवित् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे । मृतके सूतके विप्रा नतु ग्राह्यः प्रतिग्रहः ।

तत्रापिच तथा ग्राह्या नरैरभयदक्षिणा ॥

कालः स एव ग्रहणे यदा भयमुपस्थितम् ।

प्रतिग्रहास्तथान्ये तु ग्राह्या नाशुचिना द्विजाः ॥

अभ्यक्तेन च धर्मज्ञास्तथा मुक्तशिखेन च ।

स्नातः सम्यगुपस्पृश्य गृह्णीयात् प्रयतः शुचिः ॥

प्रतिग्रहीता सावित्रीं सर्वत्रैवानुकीर्त्तयेत् ।

ततस्तु कीर्त्तयेत् सार्धं द्रव्येण द्रव्यदेवताम् ॥

समापयेत्ततः पश्चात् कामस्तुत्या प्रतिग्रहम् ।

तदन्ते कीर्त्तयेत् स्वस्ति प्रतिग्रहविधिस्त्वयम् ॥

‘सावित्री सवितृदेवत्या ऋक्, देवस्यत्वेत्यादिप्रसिद्धा ।

‘द्रव्यदेवतां, अभयं सर्वदैवत्यमित्यादिवक्ष्यमाणाम्, काम-  
स्तुत्या कोदात् कस्मा अदादितिमन्त्रेण, शाखान्तरे तु कामः  
कामायेत्यादिप्रसिद्धा ।

आदित्यपुराणे । ओङ्कारमुच्चरन् ग्राह्यो द्रविणं स कुशोदकम् ।

गृह्णीयादक्षिणे हस्ते तदन्ते स्वस्ति कीर्त्तयेत् ॥

तथा । प्रतिग्रहं पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमान् ।

मन्त्रं पठेत्तु राजन्ये उपांशु च तथा विशि ॥

मनसा तु तथा शूद्रे स्वस्तिवाचनमेव च ।

सोकारं ब्राह्मणे कुर्यान्निरोकारं महीपतौ ॥

उपांशु च तथा वैश्ये मनसा स्वस्ति शूद्रजे ।

‘प्रतिग्रहम्’ प्रतिग्रहमन्त्रः । ‘मन्त्र’ मध्यमस्वरम् ।

ब्राह्मणे दातरि सौकारं स्वस्तिवाचनं कुर्यात् । एवं च त्रिया-  
दिषु” ।

विष्णुधर्मोत्तरे । अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता ।

कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्त्तिताः ॥

तथा चैकशकं सर्व्वं कथितं यमदैवतम् ।

महिषश्च तथा याम्य उद्यो वै नैऋतो भवेत् ॥

रौद्री धेनुर्विनिर्द्दिष्टा ह्यगमाग्नेयमादिशेत् ।

मेघन्तु वारुणं विन्द्याद्वराहं वैष्णवं तथा ।

आरण्याः पशवः सर्वे कथिता वायुदेवताः ॥

जलाशयानि सर्वाणि वारिधानीं कमण्डलुम् ।

कुम्भश्च करकञ्चैव वारुणानि निबोधत ॥

समुद्रजानि रत्नानि वारुणानि द्विजोत्तमाः ।

आग्नेयं कनकं प्रोक्तं सर्व्वलोहानि चाप्यथ ॥

प्राजापत्यानि सर्वाणि पक्वान्नमपि च द्विजाः ।

ज्ञेयाश्च सर्वगन्धास्तु गान्धर्वा वै विचक्षणेः ॥

बार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौम्या ज्ञेया रसास्तथा ।

पक्षिणस्तु तथा सर्वे वायव्याः परिकीर्त्तिताः ॥

विद्या ब्राह्मी विनिर्द्दिष्टा विद्योपकरणानि च ।

सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकादीनि पण्डितैः ॥

सर्वेषां शाल्यभाग्डानां विश्वकर्मानुदैवतः ।

द्रुमाणामथपुष्पाणां शाकैर्हरितकैः सह ॥

फलानामपि सर्वेष्वन्तथा ज्ञेयो वनस्पतिः ॥  
 मत्स्यमांसे विनिर्दिष्टे प्राजापत्ये तथैव च ।  
 कृत्रं कृष्णाजिनं शय्यां रथ-मासनमेव च ॥  
 उपानहौ तथा यानं यच्चान्यत्प्राणिवर्जितम् ।  
 तत्तु चाङ्गिरसत्वेन प्रतिगृह्णीत मानवः ॥  
 शूरोपयोगि यत् सर्वं शास्त्र-धर्म-ध्वजादिकम् ।  
 रणोपकरणं सर्वं विज्ञेयं सर्वदैवतम् ॥  
 गृह्णन्तु शक्रदैवत्यं यदनुक्तं द्विजोत्तमाः ।  
 तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्वं वा द्विजसत्तमाः ॥  
 द्रव्याणामथ सर्वेषां देवसंश्रयणान्नरः ।  
 वाचयेज्जलमादाय करेणाय प्रतिग्रहम् ॥  
 दातुमत्र प्रयोगान्ते \* ह्यमुकस्मै सुराय वै ।  
 इदमोपतिगृह्णामि तदन्ते स्वस्ति कीर्त्तयेत् ॥

तद्यथा । अग्नये हिरण्यं प्रतिगृह्णामीति ।

द्रव्याण्यथाव्यथादाय सृष्ट्वा तान् ब्राह्मणः पठेत् ।  
 कन्यादाने तु न पठेद्रव्याणान्तु पृथक् पृथक् ॥  
 प्रतिग्रहे द्विजा श्रेष्ठा स्तथैवान्तर्भवन्ति ते ।  
 प्रतिग्रहस्य यो धर्मो न जानाति द्विजोविधिम् ।  
 द्रव्यस्तैन्यसमायुक्ती नरकं प्रतिपद्यते ॥  
 विधिन्तु धर्मो विज्ञाय ब्राह्मणस्तु प्रतिग्रहे ।  
 दात्रा सह तरत्येव महादुर्गाण्यसौ भ्रुवम् ॥

\* दातुर्मन्त्रप्रयोगान्ते इति पाठान्तरम् ।

तस्मादुक्तं विधिं कृत्वा ब्राह्मणस्तु प्रतिग्रहे ।

आत्मनः श्रेयसीयोगं कुर्याद्दानन्तथैव च ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन विधिर्ज्ञेयः प्रतिग्रहे ॥

तथा । भूमेः प्रतिग्रहं कुर्याद्भूमिं कुर्वन् प्रदक्षिणम् ।

करे गृहीत्वा कन्यान्तु दासदास्यौ द्विजोत्तमः ।

करन्तु हृदि विन्यस्य धम्मर्गो ज्ञेयः प्रतिग्रहः ॥

‘प्रतिग्रहं, स्वीकारम् ।

आरुह्य च गजस्योक्तः कर्णे चाश्वस्य कीर्त्तितः ।

तथाचैकशफानान्तु सर्वेषाम्बा विशेषतः ॥

प्रतिगृह्णीत तान् शृङ्गे पुच्छे कृष्णाजिनन्तथा ।

(सामान्येनैकशफानां कर्णे प्रतिग्रहः उक्तः, यत्वेकशफाः शृङ्गिणः, तान्विशेषतः शृङ्गे प्रतिगृह्णीतेत्यर्थः) ।

कर्णजाः पशवः सर्वे ग्राह्या पुच्छे विचक्षणैः ॥

गृह्णीयान्महिषं शृङ्गे खरं वै पृष्ठदेशतः ।

प्रतिग्रहमथोद्गस्य यानानां चाधिरोहणात् ॥

बीजानां मुष्टिमादाय रत्नान्यादाय सर्वतः ।

वस्त्रं दशान्तादादद्यात्परिधायाथवा पुनः ॥

आरुह्योपानहौ मञ्चमारुह्यैव च पादुके ।

धर्मध्वजौ च संसृष्ट्वा प्रविश्य च तथा गृहम् ॥

अवतीर्थ्य च सर्वाणि जलस्थानानि वै द्विजाः ।

ईषायान्तु रथो ग्राह्यः कृत्रं दण्डं तथैव च ॥

द्रुमांश्च प्रतिगृह्णीयान्मूलन्यस्तकरोद्विजः ।

आयुधानि समादाय तथामुच्य विभूषणम् ॥

‘ईषायां’ दण्डाये । ‘आमुच्य’ वधेत्यर्थः ।

परिशिष्टे । परिगृह्णीत गां पुच्छे कर्षे वा हस्तिनं करे ।

मूर्द्ध्नि दासीमजाञ्चैव पृष्ठेऽश्वतरगर्हभौ ॥

अश्वं कर्षे शटे वापि अन्तमुद्दिश्य धारयेत् ।

शय्या-सन-गृह-क्षेत्रं संसृज्यादाय काञ्चनम् ॥

उद्भञ्ज ककुदि सृष्ट्वा मृगांश्च महिषादिकान् ।

गोधामश्वविधानेन पुच्छे संसृज्य पक्षिणः ॥

दंष्ट्रिणो दंशितञ्चैव तथा क्षुद्रमृगांश्च ये ।

अजादीनांतु सत्वानामेष एव विधिः स्मृतः ॥

कृत्रं दण्डे तरुन्मूले फलं संगृह्य गौरवात् ।

प्रगृह्णीपानहौमञ्च वाचयेत् प्रतिमुच्य वै ॥

वासस्त्वथ समादाय कन्याशीर्षेऽथवा करे ।

ऋतौ भार्यां परपूर्वां प्रतिह्णीत चाक्षताम् ॥

पुत्रमुत्सङ्गमारोप्य प्रतिगृह्णीत दत्तकम् ।

रथं रथमुखे सृष्ट्वा प्रतिगृह्णीत कूवरे ॥

‘कूवरः’ युगाधारकाष्ठम् ।

युग्य-काञ्चन-वस्त्राणां नाङ्गयुक्ते प्रतिग्रहः ॥

अथोभयधर्माः ।

गरुड़पुराणे । दैवम्वा कर्म पितृम्वा नाशुचिः कर्तुमर्हसि ।

स्नानमेव द्विजातीनां परं शुद्धिकरं स्मृतम् ॥

अतः स्नातोर्हता मेति दानेचैव प्रतिग्रहे ।

कृतमस्त्रायिना कर्म राक्षसत्वाय कल्पते ॥

प्रजापतिः कर्मगुप्तेः पवित्रमसृजत्पुरा ।

रक्षोघ्नमेतत् परमं मुनिभिः कल्पितं सवे ॥

तस्मात्तत्करयो द्वैर्दत्तं ददता प्रतिगृह्यता ।

स्नान-होम-जपादीनि कुर्वता च विशेषतः ॥

संत्यज्य वैष्णवं मार्गं ब्रह्ममार्गविनिर्गतम् ।

सकृत् प्रदक्षिणीकृत्य पवित्रमभिधीयते ॥

वायुपुराणे । दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च ।

साङ्गुष्ठेन सदा कार्य्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत् ॥

‘साङ्गुष्ठेन, अङ्गुलीसङ्गताङ्गुष्ठेन’ ।

एतान्येव च कार्य्याणि दानादीनि विशेषतः ।

अन्तर्जानु विधेयानि तद्वदाचमनं नृप ॥

बौधायनः । भोजनं हवनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः ।

बहिर्जानु न कार्य्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम् ॥

ब्रह्माण्डपुराणे । नाधिकारी मुक्तकक्षो मुक्तचूडस्तथैव च ।

दाने प्रतिग्रहे यज्ञे ब्रह्मयज्ञादिकर्मसु ॥

देवाः समेत्य वस्त्रं हि तच्च पुंसामकल्पयन् ।

ततश्च वाससा हीनमसम्पूर्णं प्रचक्षते ॥

सोत्तरीयस्ततः कुर्यात् सर्व्वकर्माणि भाविनः ।

अधीतं काकधीतञ्च परिदध्यान्न वाससी ।

ददानः प्रतिगृह्णंश्च दध्यादहतमेव च ॥

वाराहपुराणे । सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसंध्यादिकक्रियः ।

काम-क्रोध-विहीनश्च पाषण्डस्पर्शवर्जितः ।

जितेन्द्रियः सत्यवादी पात्रं दाता च शस्यते ॥

तथा । प्रमीते गोत्रपुरुषे सूतके वा समागमे ।

दशरात्रमनर्हः स्यात् कर्त्तुं दान-प्रतिग्रहौ ॥

पिण्डोदकादि मृतके दातुं प्रेताय युज्यते ।

आहिन्नायां तथा नाद्यां दानार्हो मृतसूतके ॥

विष्णुधर्मोत्तरे । शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि दद्यादभयदक्षिणाम् ।

शुचिनाऽशुचिना वापि ग्राह्योभयमुपस्थितम् ॥

छन्दोगपरिशिष्टम्

तत्र कात्यायनः । कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना ।

देयं प्रतिग्रहीतव्यमन्यथा विफलं हि तत् ॥

आह जातूकर्ण्यः । ओङ्कारेण दद्यात् प्रतिगृह्णीयाच्च ॥

स्कन्दपुराणे । प्रणवोजगतां बीजं वेदानामादिरेव च ।

एष एव परं ब्रह्म पवित्रमयमुत्तमम् ।

तस्मात् प्रणवमुच्चार्य कार्यो दान-प्रतिग्रहौ ॥

यमः । योर्चितं प्रतिगृह्णाति योऽर्चयित्वा प्रयच्छति ।

तावुभौ गच्छतः स्वर्गे विपरीते विपर्ययः ॥

लिङ्गपुराणे । दद्याद्दानं यथा शक्त्या सदाभ्यर्चनपूर्वकम् ।

ब्राह्मणश्चापि गृह्णीयाद्भक्त्या दत्तं प्रतिग्रहम् ॥

शतातपः । प्रश्नपूर्वन्तु यो दद्यात् ब्राह्मणाय प्रतिग्रहम् ।

स पूर्वं नरकं याति ब्राह्मणस्तदनन्तरम् ॥

‘प्रश्नपूर्वमिति’ । एतमध्यायं एतमनुवाकम्वा यदि त्वमस्त्रलितं पठसि

तदा त एतावद्दामीत्युक्त्वा तथा कृते यद्दीयते तत् ‘प्रश्नपूर्वकम्’ ।

व्यासः । अवमानेन यो दद्याद्गृह्णीयाद्यः प्रतिग्रहम् ।

तावुभौ नरके मग्नौ वसेतां शरदां शतम् ॥



शातातपः । कार्यलोभेन योदद्याद्गृहीयाद्यः प्रतिग्रहम् ।

दाताग्रि नरकं याति ब्राह्मणस्तदनन्तरम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे । प्रतिग्रहोयोविधिना प्रदत्तः

प्रतिग्रहो योविधिना गृहीतः ।

द्वयोः प्रयोगश्चरमन्तु कार्यः

श्रेयस्तथाप्नोति न संशयोऽत्र ॥

अथ मिश्रधर्माः ।

नन्दिपुराणे । दाने विधिमविज्ञाय नहि तद्दातुमर्हति ।

प्रतिग्रहानभिज्ञश्च गृह्णन्निरयमश्रुते ॥

सावज्ञं प्रतिगृह्णानो गृहीतापि पतत्यधः ॥

किन्त्व' वेत्सीति वक्तव्यो न दात्रा ब्राह्मणः कश्चित् ।

सोपि पृष्टः स्वयं तेन दानार्थं तं न कीर्त्तयेत् ॥

“यदि त्वमेतत् पठसि तदा तुभ्यमेतद्दामीति साक्षात्  
परोक्षणमत्र निषिध्यते, पात्रत्वबोधार्थमुपायान्तरेण परी-  
क्षणत्वमनुमतमेव” ।

तदुक्तं यमेन । शीलं संवसनाज्ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः ।

प्रज्ञा संकथनात् ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते ॥

‘संकथनं, शुद्धभावेन विद्याकथा ।

वाराहपुराणे । अपि सर्षपमात्रं हि नदेयं विचिकित्सता ।

मनसा ह्यननुज्ञातः प्रतिगृह्णीत नैव हि ॥

ददानः प्रतिगृह्णंश्च यतो लोभभयादिना ।

नाप्नोति श्रेयसा योगं निरयं चैव गच्छति ॥

नारदीयपुराणे । देश-काल-विधानाद्यैर्हीनं दानं भयावहम् ।

दातुः प्रतिग्रहीतुश्च गृहीतमसतः सदा ॥  
 षट्त्रिंशन्मतात् । नामगोत्रे समुच्चार्य प्राङ्मुखो देयकीर्त्तनात् ।  
 उदङ्मुखाय विप्राय दत्त्वान्ते स्वस्ति वाचयेत् ॥  
 (देयकीर्त्तनादिति, देयकीर्त्तनोत्तरकालं दत्त्वेत्यर्थः) ।  
 प्राक्प्रत्यगास्या बोद्धाहे दाढ्याहकयोः स्थितिः ।  
 दद्यात् पूर्वमुखो द्रव्यमेष एव विधिः सदा ॥  
 (यत्तु कीर्त्तयन्ति, “प्राङ्मुखस्तु गृह्णीयाद्विवाहे तु विपर्यय”  
 इति, तस्य समूलत्वे सिद्धे अनुष्ठानविकल्पः, तत्राप्यु-  
 दङ्मुखसंप्रदानवैशिष्ट्यस्मृतेस्तदेवानुष्ठेयम्)  
 तदुक्तं स्मृत्यन्तरे ।  
 दद्यात् पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः ।  
 आयुर्विर्वर्द्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते तु तत् ॥  
 इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-  
 सकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ  
 दानखण्डे दानाङ्गप्रकरणम् ।

### अथ परिभाषाः ।

सिन्धौ दुर्धरकालकूटकुटिले \* पीयूषशङ्खैव का  
 कान्तानांमधुराधरासवरसम्पर्द्धा सुनिर्द्धारिता ।  
 इन्द्रं निन्दितमाह राहुरसनायोगो वियोगोत्तर  
 स्तनिःसीमसुधा-निधानमधुना हेमाद्रिसूरेर्गिरः ॥  
 अनेन सामान्यतया प्रतीयते महीतलम् ।

\* सिन्धौ वन्धुरकालकूटकुटिले इति क्वचित्पाठः ।

अनेन सामान्यतया परिभाषेह कथ्यते ॥

तत्राह याज्ञवल्क्यः । आर्षं कृन्दश्च दैवत्वं विनियोगस्तथैव च ।

वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः ॥

अविदित्वा तु यः कुर्याद्याजनाध्ययनं जपम् ।

होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं भवेत् ॥

तथा । यश्च जानाति तत्त्वेन आर्षं कृन्दश्च दैवतम् ।

विनियोगं ब्राह्मणञ्च मन्त्रार्थं ज्ञानकर्म च ।

एकैकस्य ऋषेः सोऽपि बन्धो ह्यतिथिवद्भवेत् ।

देवतायाश्च सायुज्यं गच्छत्यत्र नसंशयः ॥

पूर्वोक्तेन प्रकारेण ऋष्यादीन् वेत्ति यो द्विजः ।

अधिकारी भवेत्तस्य रहस्यादिषु कर्मसु ॥

तथा । येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च येन वै ।

मन्त्रेण तस्य तत् प्रोक्तमृषिर्भावस्तदार्पकम् ॥

कृन्दसा कृन्द उद्दिष्टः\* वाससी इव चाकृते ।

आत्मा संच्छादितो देवै र्मृत्योर्भीतै स्तु वै पुरा ॥

आदित्यैर्वसुभीरुद्रैस्तेन कृन्दांसि तानि वै ।

यस्य यस्य तु मन्त्रस्य उद्दिष्टा देवता तु या ।

तदाकारं भवेत्तस्य देवत्वं देवतोच्यते ॥

पुराकल्पे समुत्पन्ना मन्त्राः कर्मार्थ एव च ।

अनेन चेदं कर्तव्यं विनियोगः स उच्यते ॥

नैरुक्तं यच्च मन्त्रस्य विनियोगप्रयोजनम् ।

प्रतिष्ठानं स्तुतिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते ॥

\* कृन्दनात् कृन्दइति पाठान्तरम् ।

एवं पञ्चविधं योगं जयार्थं गृह्यनुस्मरेत् ।  
होमे चान्तर्जले योगे स्वाध्याये याजने तथा ॥

कन्दोगपरिशिष्टम् ।

तत्र कात्यायनः । अक्रियात्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कामकारिणाम् ।

अक्रिया च परोक्ता च तृतीया वायथाक्रिया ॥

स्वशाखाशेषमुत्सृज्य परशाखाश्रयञ्च यः ।

कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघन्तत्तस्य यत् फलम् ॥

यन्नाम्नातं स्वशाखायां पारक्यमविरोधि\* यत् ।

विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत् ॥

‘अग्निहोत्रं, यजुर्वेदशाखासु विहितं, यथा कन्दोगादिभिरनुष्ठायते ।

गृह्यपरिशिष्टकारः ।

बह्वर्णं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्रकीर्तितम् ।

तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत् ॥

प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात् कथञ्चन ।

यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥

‘प्रवृत्तम्, आरब्धम् । ‘अन्यथाभूतं, क्रमाद्यन्यत्वेन यद्वैप-

रीत्यमापन्नम् ।

समाप्ते यदिजानीया† अन्यैतदयथाकृतम् ।

तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥

(एतत्तु कर्मसमाप्तावन्यथाकरणताविषयम्) ।

प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गन्तत्क्रियते पुनः ।

\* परोक्तमविरोधेति कचित्पाठः ।

† यदि जानीयदिति कचित्पाठः ।

तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया ॥

“यत्र प्रधानकर्माकरणं तत्साङ्गमेव पुनःकर्तव्यं, तदङ्गाकरणे-  
पुनर्न साङ्गप्रधानावृत्तिर्नापि तावन्मात्रस्याङ्गस्य करणं किन्तु  
प्रायश्चित्तमेव कार्यम् ।

गृह्यपरिशिष्टे । दर्भाः कृष्णाजिनं मक्ता ब्राह्मणा हविरग्नयः ।

अयातयामान्येतानि नियोज्यानि पुनः पुनः ॥

मरीचिः । मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भचयो मतः ।

अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः ॥

कुन्दोगपरिशिष्टम् ।

कात्यायनः । हरिता यज्ञिया दर्भा पीतकाः पञ्चयज्ञियाः ।

समूलाः पितृदेवत्याः कल्पाषा वैश्वदेविकाः ।

ऋक्षाः प्रवरणीयाःस्यः कुशा दीर्घाश्च बर्हिषः ॥

पञ्चयज्ञियाः पञ्चयज्ञार्हाः ।

“प्रवरणम्, अनुष्ठानम्, तदर्हाः प्रवरणीयाः” ।

लघुहारीतः । चितौ दर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु ।

स्तरणासनपिण्डेषु षट्कुशान् परिवर्जयेत् ॥

पिण्डार्थं ये कृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ।

मूत्रोच्छिष्टधृता ये च तेषां त्यागी विधीयते ॥

नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रे च ये कृताः ।

पवित्रांस्तान्विजानीयाद्यथा कायःस्तथा कुशाः ॥

अनन्तगर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च ।

प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥

तदेव दर्भपिञ्जल्या लक्षणं समुदाहृतम् ।

आज्यस्योत्पवनार्थं यत् तदप्येतावदेव तु ॥

आपस्तम्बः । देवागारे तथा आङ्गे गवां गोष्ठे तथाध्वरे ।

सन्ध्ययोश्च द्वयोः साधुसङ्गमे गुरुसन्निधौ ॥

अग्न्यागारे विवाहेषु स्वाध्याये भोजने तथा ।

उद्वरेदक्षिणं पाणिं ब्राह्मणानां क्रियापथे ॥

(उद्वरेदक्षिणं पाणिमिति सव्यांशे वस्त्रं निधाय दक्षिणं  
बाहुमुत्तरीयादङ्घ्रिः कुर्यादित्यर्थः ।)

याज्ञवल्करः । रौद्रपित्रासुरात्मनांस्तथा देवाभिचारिकान् ।

व्याहृत्यालभ्यचात्मानमपः स्पृष्ट्वान्यदाचरेत् ॥

छन्दोगपरिशिष्टम् ।

कात्यायनः । पित्रमन्त्रप्रवरणे आत्मा लभ्ये अवैक्ष्ये ।

अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥

मार्जार-मूषिक-स्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसम्भवे ।

निमित्तेष्वेव सर्वत्र कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥

“आत्मा लभ्ये, हृदयस्पर्शे, यज्ञादौ विहिते, अवैक्ष्यमपि  
यज्ञादिविहितमेव ग्राह्यम्” ।

याज्ञवल्करः । यदि वाग्यमलोपः स्याज्जपादिषु कथञ्चन ।

व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥

अज्ञानाद्यादि वा मोहात् प्रचवेताध्वरेषु यत् ।

स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ।

तथा शतपथश्रुतिः ।

अथ यदाचंयमो व्याहरति तस्मादुहैष विसृजो यज्ञः पराङ्मा-

वर्त्तते, तत्र वैष्णवीमृचम्बा यजुर्वा जपेदित्यादि ।

छन्दोगपरिशिष्टम् ।

कात्यायनः । यत्रोपदिश्यते कर्मकर्तुरङ्गं न सूच्यते ।

दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥

यत्र दिङ्मयमो नास्ति जपहोमादिकर्मषु ।

तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐन्द्री सौम्यापराजिता ॥

ऐन्द्री प्राची । सौम्या, उत्तरा । अपराजिता, ईशानदिक् ।

आसीन जड्वः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः ।

तदासीनेन कर्तव्यं न प्रह्वेन न तिष्ठता ॥

‘प्रह्वः, प्रणतजानुकः । प्रह्वेण, नम्रेण । तिष्ठता, उर्द्धेण ।

वशिष्ठः । जपहोमोपवासेषु धौतवस्त्रधरो भवेत् ।

अलङ्कृतः शुचिर्म्मौनी अङ्गावान् विजितेन्द्रियः ॥

कात्यायनः । सदोपवीतिना भायं सदा बद्धशिखेन तु ।

विशिखोऽनुपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम् ॥

निगमपरिशिष्टे । वामस्कन्धे यज्ञोपवीतम्, दैवे प्राचीनावीत

मितरथा पितृयज्ञे नाभ्यां द्विकण्ठासक्तमुत्सर्गे निवीतं पृष्ठ-

देशावलम्बि ग्राम्यधर्मेषु ।

‘ग्राम्यधर्मः, स्त्रोसंयोगः’ ।

बौधायनः । कर्मयुक्तो लाभेरधःस्पर्शं वर्जयेत् ।

आह मनुः । चण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ।

रजस्वला च षण्डश्च नेक्षेरन्नग्रतो द्विजान् ॥

होमि प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते ।

दैवे हविषि पित्रे वा तन्नच्छत्ययथातथम् ॥

स्कन्दपुराणे । पाषण्डिनश्च पतिता ये च वै नास्तिका जनाः ।

पुण्यकर्मणि तेषां वै सन्निधिर्नेष्यते क्वचित् ॥

अथ विज्ञानललितात् ॥

पृथिव्यप्तेजसां वायोर्म्मण्डलानि क्रमेण तु ।

पीतं वक्ति चतुष्कोणं पार्थिवं शक्रदैवतम् ॥

वृत्तार्थमाप्यं पद्माकं शुक्तं वरुणदैवतम् ।

अस्त्रं स्वस्तिकसंयुक्तं तैजसं वज्रदैवतम् ॥

वृत्तं विन्दवृतं वायुदैवतम् कृष्णमानिलम् ॥

गरुडपुराणे । कस्तूरिकाया हौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च ।

कुङ्कुमस्य त्रयश्चैका शशिनः स्याच्चतुःसमम् ॥

कर्पूरश्चन्दनं दर्भकुङ्कुमं च समांशकम् ।

सर्वगव्यमिति प्रोक्तं समस्तसुरवल्लभम् ॥

तथा । कर्पूरमगुरुश्चैव कस्तूरीचन्दनं तथा ।

कक्कोलञ्च भवेदेभिः पञ्चभिर्यत्तर्कहर्मः ॥

शिवधर्म्मे । पञ्चामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं नृप ॥

स्कन्दपुराणे । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।

पञ्चगव्यमिति प्रोक्तं सर्वपातकनाशनम् ॥

ब्रह्माण्डपुराणे । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्ष्मचतन्यगोधपल्लवाः ।

पञ्चभङ्गादितिप्रोक्ताः सर्वकर्मसु शोभनाः ॥

पञ्चरात्रे । रजांसि पञ्चवर्णानि मण्डालार्थं हि कारयेत् ।

शालितण्डुलचूर्णेन शुक्तं वा यवसम्भवम् ॥

रक्तं कुसुम्भसिन्दूरगैरिकादिसमुद्भवम् ।

हरितालीद्भवं पीतं रजनीसम्भवं क्वचित् ॥



कृष्णैर्द्रव्यैर्वै हरितं पीतकृष्णविमिश्रितम् ॥

रजनी, हरिद्रा ।

आदित्यपुराणे । अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत् ।

रूद्रबीजं परं पूतं यतस्तस्यैव सर्वदा ॥

भविष्यपुराणे । मधुरोन्मत्तश्च लवणं कषायस्तिक्त एव च ।

कटुकश्चेति राजेन्द्र रसषट्कमुदाहृतम् ॥

स्कन्दपुराणे । दधि क्षौरमथाज्यञ्च मार्त्तिकं लवणं गुडः ।

तथैवेक्षुरसश्चेति रसाः प्रोक्तामनीषिभिः ॥

भविष्यपुराणे । अनुक्तद्रव्यतत्सङ्ख्यादेवताप्रतिमा नृप ।

सौवर्णीं राजती ताम्नीं वृक्षजा मार्त्तिकीं तथा ॥

चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानुरूपतः ।

आमाषात्पलपर्यन्तं कर्त्तव्यां शाठ्यवर्जितैः ॥

सुवर्णं रजतं ताम्र-मारकूटं तथैव च ।

लोहं तपु तथासीसं धातवः परिकीर्त्तिताः ॥

तथा । आपःक्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा ।

यवाः सिद्धार्थकाश्चैवमर्घाऽष्टाङ्गः प्रकीर्त्तितः ॥

तथा । दूर्वा यवाङ्कुराश्चैव वालकं दूतपल्लवाः ।

हरिद्राद्वयसिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः ॥

कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाख्या नव स्मृताः ॥

कुन्दोगपरिशिष्टे ।

\* कुष्ठं मांसो हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम् ।

\* मुरामांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ।

शठी चम्पकमुलञ्च सर्वापधिगणः स्मृत इति स्मार्त्ताः ।

वचा चम्पकमुस्तच्च सर्व्वोषधो दश स्मृतः ॥

आवाहनासनार्धं पाद्याचमनमधुपर्कस्नानापञ्च ॥

वासीभूषणगन्धसुमनोयुतधूपदीपभोज्यानि प्रादक्षिण्यं नति-  
रिति कथयन्त्यपचारषोडशकम् ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे । हैमराजतताम्ना वा मृगमया लक्षणाश्विताः ।

यात्रोद्वाहप्रतिष्ठादौ कुम्भाः स्युरभिषेचने ॥

पञ्चाशाङ्गुलवैपुल्या उत्सेधे षोडशाङ्गुला ।

द्वादशाङ्गुलकं मूलं मुखमष्टाङ्गुलं भवेत् ॥

पञ्चाशाङ्गुलेति आशा दिशः, ताश्च, दशसंख्यावाचकत्वेन  
ज्योतिःशास्त्रादौ प्रतिज्ञाः । “पञ्च च आशाश्च पञ्चाशाः ।

तावन्ति अङ्गुलानि वैपुल्यं येषां ते तथाभूताः ।

मध्यप्रदेशे तिर्य्यङ्मानेन पञ्चदशाङ्गुला इत्यर्थः । अथवा  
वाह्यप्रदेशे बलयाकृतिना सूत्रेण नीयमाना मध्यस्थाने पञ्चाशद-  
ङ्गुला इत्यर्थः । अस्मिन् पक्षे पञ्चाशाङ्गुलेति छान्दसः प्रयोगः,  
इति सङ्कीर्णविधिः ।

अथ दक्षिणादिनिर्णयः ।

तत्र शतपथश्रुतिः । स एष यज्ञोऽहती नादक्षत देवा-  
दक्षिणाभिरदक्षयं स्तव्यदेनं दक्षिणाभिरदक्षयं स्तस्मादक्षिणा-  
नामेति ।

भविष्यपुराणे । अदत्तदक्षिणं दानं व्रतञ्चैव नृपोत्तम ।

विफलं तद्विजानीयाद्भस्मनीव हुतं हविः ॥

षट्चिंशन्मतात् ।

अजायुक्तः शुचिर्दान्तो दानं दद्यात् मदक्षिणम् ।

अदक्षिणन्तु यद्दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

मैत्रायणीयपरिशिष्टम् ।

दक्षिणालाभे मूलानां भक्ष्याणां ददाति न त्वेवं यजेत् ॥

तथाच शतपथश्रुतिः ।

तस्मान्नादक्षिणं हविः स्यादिति ॥

भविष्योत्तरे ॥ काम्यं यदीयते किञ्चित्तत्समग्रं सुखावहम् ।

असमग्रन्तु दीषाय भवतीह परत्र च ॥

तस्मान्न दक्षिणाहीनं विधानविकलं न च ।

देयं दानं महाराज समग्रफलकाङ्क्षया ॥

अन्यथा दीयमानं तदपकाराय केवलम् ।

प्रत्यक्षतश्चार्थहानिर्न च तत् फलदं भवेत् ॥

आह भगवान् व्यासः ॥ सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।

सर्वेषामेवदानानां सुवर्णं दक्षिणेयते ॥

एतच्च, विशेषविहितगोवस्त्रादिदक्षिणकदानवर्जं सामान्य-  
विहितदक्षिणेषु दानेषु व्यवतिष्ठते तत्रापि परायेष्ठतमेति प्राशस्त्यं  
दर्शयति नत्वन्यां दक्षिणां निराचष्टे आनन्त्यार्थत्वाद्विज्ञायाः  
सुवर्णस्य प्रकष्टत्वात् सर्वदानेषु सुवर्णं दक्षिणेतिवचनार्थः,  
अन्यदपि पुरुषस्याहारौपयिकं तण्डुलादिकं दक्षिणार्थेन योज्यं ।  
यत् श्रूयते । “अन्येषाञ्चैव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृता ।  
सुवर्णं दीयमाने तु रजतं दक्षिणेयते” इति तदेतच्छ्रुतः स्तस्य  
परिज्ञायश्रद्धातव्यम् ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुला धान्यमेव च ।

नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेव सदक्षिणम् ॥

स्कन्दपुराणे । देयद्रव्यतृतीयांशं दक्षिणां परिकल्पयेत् ।

अनुक्तदक्षिणे दाने दशांशं वापि शक्तिः ॥

तुलापुरुषादिदानानि अधिकृत्य ।

लिङ्गपुराणे । दक्षिणा च शतञ्चार्द्धं तदर्द्धं वा प्रदापयेत् ।

ऋत्विजाञ्चैव सर्वेषां दश निष्कान् प्रदापयेत् ॥

भविष्योत्तरे । ज्ञेयं निष्कशतं पार्थ दानेषु विधिरुत्तमः ।

मध्यमस्तु तदर्द्धेन तदर्द्धेनाधमः स्मृतः ॥

मेषाञ्च कालपुरुषे तथान्येषु महत्स्वपि \* ।

एवं वृक्षे तथेष्टे च धेनोः कृष्णाजिनस्य च ॥

अशक्तस्यापि क्लृप्तोऽयं पञ्चसौवर्णिको विधिः ॥

अतोऽप्यल्पेन यो दद्यान्महादानं नराधमः ।

प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःख-शोकाबहं भवेत् ॥

जयाभिषेकमुदाहृत्य लिङ्गपुराणे ।

अष्टषष्टिपलोन्मानं दद्यादै दक्षिणां गुरोः ।

होतृणाञ्चैव सर्वेषां त्रिंशत्पलमुदाहृतम् ॥

अध्येतृणां तदर्द्धेन द्वारपालानां तदर्द्धतः ॥

एतेनान्यत्रापि, गुरोर्वृद्धऋत्विजां तदर्द्धं जापकानां तदर्द्धं  
द्वारपालानामिति दक्षिणाविभागोऽवमन्तव्यः ।

ब्रह्मवैवर्ते सुबाहुरुवाच ।

देवानां प्रतिमां विप्र गृहीत्वा ब्राह्मणः स्वयम् ।

आत्मीययोगं कुरुते विक्रीत्वा वा विभज्य वा ॥

तिलधेन्वादयश्चैव कथं भक्ष्या विजानता ।

धेनुत्वाद्गच्छणं शस्तं न शस्तंचेति संशयः ।

विश्वामित्र उवाच ।

धर्मश्च मूलं प्रथमं श्रुतिं वेदविदो जगुः ।

श्रुतिर्मूलं स्मृतीनान्तु पुराणं सेतिहासकम् ॥

श्रुतिमूलं समाख्यातं तदुक्तं नैव चालयेत् ।

दानकाले तु देवत्वं प्रतिमानां प्रकीर्तितम् ॥

धेनूनामपि धेनुत्वं श्रुत्युक्तं दानयोगतः ।

दातुर्वै दानकाले तु धेनवः परिकीर्तिताः ।

विप्रस्य व्ययकाले तु द्रव्यं तदिति निश्चयः ॥

दानसम्बन्धिविप्रेण द्रव्यमागच्छता गृहम् ।

तत्सर्वं विदुषा तेन विक्रीयं स्वेच्छया विभो ॥

कुटुम्बभरणं कार्यं धर्मकार्यं च सर्वशः ।

अन्यथा नरकं यातीत्यिवमाह पितामहः ॥

कथं तिलानां धेनुत्वं देवत्वं प्रतिमासु च ।

उभयोः शास्त्रतो विद्याद्धेनुत्वं देवतां तथा ॥

शास्त्रं प्रमाणं परमं प्रमाणानामिति स्थितिः ।

आगमादेव लोकस्य प्रतीतिर्नान्यतः कुतः ॥

पुराणं मानवी धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् ।

आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥

अथ द्रव्यदानम् ।

ब्रह्मपुराणे । धर्मशास्त्रेषु मानार्थं याः संज्ञा मुनिभिः स्मृताः ।

ताः सर्वा व्यवहारार्थं बोधव्याः सम्प्रदायतः ॥

मनुः । लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ।

ताम्र-रूप्य-सुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥

जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।

परमं तत्प्रमाणानां \* त्रसरेणुः प्रचक्ष्यते ॥

त्रसरेणुष्टकां† त्रया लिखैका ‡ परमाणुतः ।

ता राजसर्पपस्तिस्त्रस्ते द्वयो गौरसर्पपः ॥

सर्पपाः षट् यवोमध्य स्त्रिग्रवन्त्वेककृष्णतः ।

पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश ।

हे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥

ते षोडश स्याद्वरणं पुराणधैव राजतः ।

कार्षापणस्तु विज्ञेयस्तान्त्रिकः कार्षिकः पणः ॥

धरणानि दश त्रयः शतमानस्तु राजतः ।

चतुःसौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥

यान्नवल्काः । जाल-सूर्य-मरीचिस्थं त्रसरेणुरजः स्मृतम् ।

तेऽष्टौ लिखातु तास्तिस्त्रो राजसर्पप उच्यते ॥

गौरस्तु ते त्रयः षट् ते यवो मध्यस्तु ते त्रयः ।

कृष्णलः पञ्च ते माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वापि प्रकीर्तितम् ।

\* प्रथमं तत्प्रमाणानामिति क्वचित्पाठः ।

† त्रसरेणवोऽष्टाविति वा पाठः ।

‡ परिमानत इति क्वचित्पाठः ।

द्वे क्षणले रूप्यमाषो धरणं षोडशैव ते ॥

शतमानन्तु दशभिर्द्वरणैः फलमेव च ।

निष्कः सुवर्णाश्चत्वारः कार्ष्णिकस्ताम्रिकःपणः ॥

आह विष्णुः ।

जालस्थानमरीचिगतं रजः त्रसरेणुसंज्ञं, तदष्टकं लिप्ता,  
तत्त्रयो राजसर्षपः, तत्त्रयं गौरसर्षपः, ते षट् यवः, तत्त्रयं  
क्षणलं, तत्पञ्चकं माषः, तद्द्वादशकमक्षौद्रं, सचतुर्भाषकं  
सुवर्णः, तच्चतुःसौवर्णिकोनिष्कः, द्वे क्षणले रूप्यमाषकः, ते  
षोडश धरणम् । ताम्रिकः) कार्ष्णिकः ।

कात्यायनः । माषो विंशतिभागश्च त्रयः कार्ष्णिकः पणस्य तु ।

काकिणी तु चतुर्भागी माषस्य च पणस्य च ॥

पञ्चनद्याः प्रदेशे तु संज्ञेयं व्यावहारिकी ।

कार्ष्णिकपणप्रमाणन्तु तन्निबद्धमिहैव या ॥

कार्ष्णिकपणस्यैकाज्ञेया ताश्चतस्रस्तु धानकः ।

ते द्वादश सुवर्णस्तु दीनारस्तु त्रिकः स्मृतः ॥

नारदः । कार्ष्णिको दक्षिणस्यां दिशि रौप्यः प्रवर्तते ।

पणैर्निबद्धः पूर्वस्यां षोडशैव पणस्य तु ॥

अगस्तिप्रोक्तेपि ।

यवः स्यात् सर्षपैः षड्भिर्गुञ्जा च स्यात् त्रिभिर्गवैः ।

गुञ्जाभिः पञ्चभिश्चैको माषकः परिकीर्तितः ॥

भवेत् षोडशभिर्माषैः सुवर्णस्तैः पुनः स्मृतम् ।

चतुर्भिः पलमेकस्य दशसो धरणं विदुः ॥

अष्टभिर्भवति व्यक्तैस्तण्डुलो गौरसर्षपैः ।

स वैण्वो यवः प्रोक्तो गोधूमं चापरे जगुः ॥  
 विष्णुगुप्तः । पञ्च गुञ्जा भवेन्माषः शाणस्तैश्च चतुर्गुणैः ।  
 कणजो धरणं प्राहुर्म्मणिमानविशारदाः ॥  
 मज्जाटिका कणजविशेषस्तौल्ये गुञ्जाद्वयं विदुः ।  
 मज्जाटिकाविंशतिस्तु धरणं तद्विदामतम् ॥  
 स्थूलमध्यातिसूक्ष्माणां सुसूक्ष्माणामपि स्मृतम् ।  
 माषकैः पञ्चरागः स्यादिन्द्रनीलादिषु स्मृतम् ॥  
 कुहुस्तत्र प्रयोक्तव्यो न यस्मिन्मानमीरितम् ।  
 दीनारो रौपकैरष्टाविंशत्या परिकीर्तितः ॥  
 सुवर्णस्य सप्ततिमो भागो रौपक इष्यते ॥

प्रकारान्तरेणाप्याह । सुक्षेत्रे यथावन्मध्यपाककाले निष्पन्ना  
 धान्यमाषा दश सुवर्णमाषः, पञ्च वा गुञ्जाः सुवर्णमाषकः  
 ते षोडश सुवर्णः, एवं प्रमाणसिद्धस्य द्वितीया संज्ञा कर्ष इति ।  
 चतुष्कर्षं पलं, पलानां शतेन तुला, विंशतितौलिकौ भारः,  
 अस्यैव भारस्य उदतौलिक इति द्वितीया संज्ञा ।  
 ब्रह्मप्रोक्ते । पलानां विंशतिर्विंशः पञ्चवीशास्तुला मता ।

उदतौलिकः स एव स्यात् भारो विंशतितौलिकः ॥

विष्णुगुप्तः । रूप्यस्य सुवर्णाङ्गिन्नमानमभिधीयते अष्टाशीति  
 गौरसर्षपा रूप्यमाषकः ते षोडश धरणं निष्पावा विंशतिर्वा  
 रूप्यपलञ्च दशधरणकं तत्पलानां शतन्तुला तत्तुलाविंशति-  
 भार इति विंशत्या ब्रूहितण्डुलैस्तुलायां विष्टतैर्वज्राख्यरत्नस्य  
 धरणं भवति । अष्टभिर्गौरसर्षपैस्तण्डुलं कल्पयेदितिकेचित् ।  
 तथा निर्घण्टौ । मानन्तुलाङ्गुलिप्रस्थैर्गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः ।



ते षोडशाक्षः कर्षोस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम् ॥  
 सुवर्णविस्तौ हेम्नोक्षे कुरुविस्तस्तु तत्पले ।  
 तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥  
 आचितं दश भाराःस्युः शाकटो भार आचितः ।  
 कार्षापणः कार्षिकः स्यात् कार्षिकस्तस्त्रिकः पणः ॥

आदित्यपुराणे । एकं दश शतञ्चैव सहस्रं चेति सत्तम ।

यथोत्तरं दशगुणं सहस्राणि दशायुतम् ॥  
 शताहतं सहस्रन्तु प्रोच्यते नियुतं\* बुधैः ॥  
 तथा शतसहस्राणि दश प्रयुतमुच्यते ।  
 शतं शतसहस्राणि कोटिरित्यभिधीयते ॥  
 अर्बुदं दशकोटयस्तु वृन्दं कोटिशतं विदुः ॥  
 सहस्रं कोटयश्चापि खर्व्वमाहुश्च तद्विदुः ।  
 दशकोटिसहस्राणि निखर्व्वमिति संज्ञितम् ॥  
 शतकोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते ।  
 सहस्रं कोटयश्चापि पद्ममात्रन्तु तद्विदुः ॥  
 सहस्रन्तु सहस्राणां कोटीनां दशधा पुनः ।  
 गणितन्तु समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदोजनाः ॥

अथ धान्यमानम् ।

श्रीमार्कण्डेयपुराणे । यज्ञिरे तानि वीजानि ग्राम्यारण्याभिधानि च ।

ओषध्यः फलपाकान्ताः शतं सप्तदश स्मृताः ॥  
 ब्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाः कङ्गुकास्तिलाः ।  
 प्रियङ्गवः कोविदाराः कोरदूषाः सचीनकाः ॥

\* नियुतमित्यत्र लघुं प्रयुतमित्यत्रच नियुतमितिकेचिदाहुरिति ।

माषा मुद्गामसूराश्च निष्पावाः सकुलोत्थकाः ।  
 आटक्यश्चणकाश्चैव शणः सप्तदश स्मृताः ॥  
 इत्येता ओषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयः स्मृताः ।  
 ओषधो यज्ञिया ज्ञिया ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥  
 ब्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमाः कङ्गुसर्षपाः ।  
 माषा मुद्गाः सप्तमाश्च अष्टमाश्च कुलोत्थकाः ॥  
 श्यामाकाश्चैव नीवारा जर्तिलाः स गवेधुकाः ।  
 कीविदारसमायुक्तास्तथा वेणुयवाश्च ये ।  
 ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषधश्च चतुर्दश ॥  
 स्कन्दपुराणे । यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुकुलोत्थकाः ।  
 माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः श्यामसर्षपाः ॥  
 गवेधुकाश्च नीवारा आढक्यश्च सतीनकाः ।  
 चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु ॥  
 'धान्यानि, ब्रीहयः । 'गवेधुकाः, कसकाः । 'नीवाराः,  
 आरण्यब्रीहयः । 'सतीनका, वर्तुलकलायाः । चीनकाः, षष्टिक-  
 विशेषाः ।  
 षट्त्रिंशन्मतात् । यवा गोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुस्तथैव च ।  
 श्यामाकश्चीनकंचैव सप्तधान्यमुदाहृतम् ॥  
 भविष्य पुराणे । पलद्वयंतु प्रसृतं द्विगुणं कुङ्गवं मतम् ।  
 चतुर्भिः कुङ्गवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥  
 आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कश्चित्तीवृधैः ।  
 कुम्भो द्रोणद्वयं सूर्पखारी द्रोणास्तु षोडश ॥  
 विष्णुधर्मोत्तरे । पलञ्च कुङ्गवः प्रस्थ आढको द्रोण एव च ।

धान्यमानेषु बोद्धव्याः क्रमशोऽमौ चतुर्गुणाः ॥

द्रोणैःषोडशभिः खारी विंशत्या कुम्भ उच्यते ।

कुम्भैस्तु दशभिर्बाधो धान्यसंख्याः प्रकीर्तिताः ॥

वाराहपुराणे । पलद्वयन्तु प्रसृतम् मुष्टिरेकं पलं स्मृतम् ।

अष्टमुष्टिर्भवेत्कुञ्चिः कुञ्चयोष्टौ तु पुष्कलम् ॥

पुष्कलानि च चत्वारि आदकः परिकीर्तितः ।

चतुरादको भवेत् द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम् ॥

चतुर्भिः सेतिकाभिस्तु प्रस्थ एकः प्रकीर्तितः ।

(मुष्टिःयजमानस्येति केचित् । मुष्टिरेकं पलं स्मृतमिति प्रोक्तं  
सेतिकेति कुडवः ।

पाद्वे । चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थैश्चतुर्भिरादकः ।

चतुरादको भवेद्द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम् ।

अथ गोपथब्राह्मणे । पञ्चकृष्णलको माषस्तैश्चतुःषष्टिभिः पलम् ॥

पलैर्हार्त्तिशङ्खिःप्रस्थो मागधेषु प्रकीर्तितः ।

आदकस्तैःश्चतुर्भिश्च द्रोणःस्याच्चतुरादकः ॥

द्रवद्रव्यविषये स्कन्दपुराणे ।

पलद्वयेन प्रसृतम् द्विगुणं कुडवं मतम् ।

चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थ आदकस्तैश्चतुर्गुणैः ॥

चतुर्गुणो भवेद्द्रोण इत्येतत्द्रवमानकम् ।

अथ भूमानम्

आदित्यपुराणे । जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।

प्रथमं तत्प्रमाणानां तसरेणुं प्रचक्षते ॥

तसरेणुस्तु विज्ञेयो अष्टौ ये परमाणवः ।

त्रसरेणवस्तु ते ह्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः ॥  
 रथरेणवस्तु ते ह्यष्टौ बालाग्रं तत्स्मृतं बुधैः ।  
 बालाग्राख्यं लिच्छा तु यूका लिच्छाष्टकं बुधैः ॥  
 अष्टौ यूका यवं प्राहुरङ्गुलान्तु यवाष्टकम् ।  
 द्वादशाङ्गुलमात्रो वै वितस्तिस्तु प्रकीर्तितः ॥  
 अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या नग्रासः प्रादेश उच्यते ।  
 तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया ।  
 कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुलिका स्मृता ॥  
 रत्निस्त्र्यङ्गुलपर्वणि विज्ञेयस्त्रिकविंशतिः ।  
 चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु ॥  
 किष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलः ।  
 यस्मवत्याङ्गुलैश्चैव धनुर्दण्डः प्रकीर्तितः ॥  
 धनुर्दण्डयुगं नालि ज्ञेयो ह्येते यवाङ्गुलेः ।  
 धनुषा त्रिंशता नखमाहुः संख्याविदो जनाः ॥  
 धनुःसहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते ।  
 अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनन्तु प्रकीर्तितम् ॥

मार्कण्डेय पुराणे । परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्ग्रीहीरजः ।

बालाग्रं चैव लिच्छा च यूका चाथ यवाङ्गुलम् ॥  
 क्रमादष्टगुणान्याहुर्विवानष्टततोङ्गुलम् ।  
 षडङ्गुलं पदं प्राहुर्वितस्तिर्द्विगुणं स्मृतम् ॥  
 द्वौ वितस्ती ततो हस्तो ब्रह्मतीर्थं द्विचेष्टनैः ।  
 चतुर्हस्ती धनुर्दण्डो नालिका तद्युगेन तु ॥  
 क्रोशोधनुःसहस्रे द्वे गव्यूतिश्च चतुर्गुणा ।

द्विगुणं योजनं तस्मात् प्रोक्तं संस्थानकोविदैः ॥  
 बृहस्पतिः । दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम् ।  
 दश तान्येव गोचर्म ब्राह्मणेभ्योददाति यः ॥  
 वसिष्ठः । दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः ।  
 पञ्चचाभ्यधिकान् दद्यादेतन्नोचर्म चीच्यते ॥  
 विश्वधर्मोत्तरे । यदुत्पन्नमथाग्राति नरः संवत्सरं द्विजः ।  
 एकं गोचर्ममात्रं तु भुवः प्रोक्तं विचक्षणैः ॥  
 मत्स्यपुराणे । दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम् ।  
 त्रिभागहीनं गोचर्म मानमाह प्रजापतिः ॥  
 बृहवसिष्ठः । गवांशतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठेदयन्वितः ।  
 एतन्नोचर्ममात्रं तु प्राहुर्वेदविदो जनाः ॥  
 अथ मण्डपादि लक्षणम् ।  
 बौधायनः । मध्याङ्गुलीकूर्परयोर्मध्ये प्रामाणिकः करः ।  
 छन्दोगपरिशिष्टे । अङ्गुष्ठाङ्गुलमानं तु यत्र यत्रोपदिश्यते ।  
 तत्र तत्र बृहत्पर्व्वयन्त्रिभिर्मनुयादुधः ॥  
 अथ पञ्चरात्रे । कुर्याद्वैष्णवयागेषु चतुर्व्वारांश्च मण्डपान् ।  
 सारदारुभवांस्तंभान् दृढान् कुर्यादृजून् समान् ।  
 मण्डपाङ्गोच्छ्रितान् वेदसंस्थांश्चूडान्वितांस्तथा ।  
 बलिका-मूर्द्धतस्तेषां स्तम्भद्वादशकं पुनः ॥  
 बाह्ये पीठप्रमाणेन तत्र सूत्रविभागतः ।  
 मध्यमोत्तमयोर्वेदी मण्डपस्य त्रिभागतः ॥  
 चतुर्थांशोच्छ्रितिस्तस्यास्त्रिसप्तपञ्चतोपि वा ।  
 नवैकादशहारं वा द्रष्टव्यं प्रकल्पयेत् ॥

कनीयान् दशहस्तः स्थान्मध्यमोद्वादशोन्मितः ।

तथा षोडशभिर्हस्तैर्मण्डपः स्यादिहोत्तमः ॥

वेदसंख्यान्, चतुःसंख्यानित्यर्थः ।

चूडा, शिखा साच स्तम्भशिरसि उपरितनसरन्ध्रवल्किप्रवेश  
नार्थं क्रियते ॥

बाह्य, इति अन्तर्विन्यस्त स्तम्भचतुष्टयापेक्षया बाह्यत्वम् ॥  
अयमर्थः । पूर्वं मध्यस्तम्भचतुष्टयं विन्यस्य ततो बाह्यपरिघौ  
स्तम्भद्वादशकं विन्यसेत एवञ्च षोडशस्तम्भो मण्डपः संप्रपद्यते ।  
सूत्रविभागत इति, प्राक्पश्चिमायतस्य दक्षिणोत्तरायतस्य वा  
चेत्रसूत्रस्य तृतीयांशपरिमितं अन्तरालं बिहाय स्तम्भा निवेश-  
नीया इत्यर्थः । कन्यसे द्विकरमिति, कन्यसे मण्डपे द्विहस्त-  
विस्तारं द्वारं कार्यम् । मध्यमोत्तमयोस्तु चतुरङ्गुलाभिहङ्गा  
विधेयम् ।

विश्वम्भरवास्तुशास्त्रे ।

मण्डपान्तरमुत्सृज्य कर्तव्यं मण्डपद्वयं । धाम्नीधाम्ना-  
न्तरं त्यक्त्वा धामाग्रे यत्रमण्डपः । दशद्वादशहस्तो वा कला  
हस्तोऽथवा पुनः । यदा मण्डपद्वयं क्रियते तदा प्रथममण्डप  
परिमितमन्तरं त्यक्त्वा द्वितीयमण्डपं कुर्यात् । यदा तु धामाग्रे  
मण्डपः क्रियते तदा तद्वामपरिमाणमन्तरं त्यक्त्वा परतो मण्डपं  
कुर्यादित्यर्थः ।

कलाहस्तः, षोडशहस्तः ।

करैः षड्विस्तु संख्याया विजयाद्यास्तु मण्डपाः ।

अश्वत्थो-डुम्बर-प्लक्ष-वट-शाखाकृतानि तु ॥

मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराख्येतानि कारयेत् ।

पञ्चहस्तप्रमाणास्ते विस्तारेण द्विहस्तकः ॥

षडङ्गुलाभिवृद्धास्तु सप्तहस्ता यथोत्तमे ।

पञ्चहस्तेति, कन्यसे मण्डपे पञ्चहस्ताः । मध्यमे षड् हस्ताः ।

उत्तमे सप्तहस्ताः द्वारशाखा विधेयाः ॥

तथाहि ।

हस्तात्प्रभृति षडङ्गुलाभिवृद्धा विस्तारो विधेयः ।

मस्तके द्वादशांशेन शङ्ख-चक्र-गदाम्बुजम् ॥

प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां सदारुजम् ।

प्रञ्चमांशं न्यसेद्भूमौ सर्वसाधारणोविधिः ॥

तत्र संग्रहे । प्रतिकुण्डं पताकास्तु प्रोक्ताः शास्त्रार्थकोविदैः ।

सप्तहस्ताः पताकाःस्युः सप्तमांशेन विस्तृताः ॥

लोकपालानुवर्णेन वड्भीतुः\* हिमप्रभा ।

पीत-रक्तादिवर्णाश्च पञ्चहस्ता ध्वजाः स्मृताः ।

द्विपञ्चहस्तैर्दण्डैः स्तैर्विशजैः संयुता मताः ॥

द्विपञ्चहस्तैः, दशहस्तैः ।

गरुडपुराणे । पञ्चहस्ता ध्वजाः कार्य्या वैयुल्येन द्विहस्तकाः ।

सप्तहस्ताः पताकाःस्युर्विशलङ्गुलविस्तृताः ।

दशहस्ताः पताकानां दण्डाः पञ्चाशर्वेशिताः ।

सिन्दूराः कर्कुरा धूम्रा धूसरा मेघसन्निभाः ॥

हरिताः पाण्डुवर्णाश्च शुभ्राः पूर्व्यादितः क्रमात् ।

एवंवर्णाः सुभाःकार्य्याः पताकाः पाकशासनः ॥

\* नवमी तु क्वचित्पाठः ।

भविष्यत्पुराणे । वेदिपादान्तरं त्यक्त्वा कुण्डानि नव पञ्च वा ।

वेदास्त्राण्येव तानि स्युर्व्वर्त्तुलान्यथ वा क्वचित् ॥

वेदास्त्राणि, चतुरस्त्राणि ॥

आम्नायरहस्ये । कुण्डानि चतुरस्त्राणि वृत्तनालाकृतीनि वा ।

नव पञ्चाथ चैकं वा कर्त्तव्यं लक्षणावितम् ॥

नवकुण्डविधाने तु दिक्षु कुण्डाष्टके स्थिते ।

नवमं कारयेत् कुण्डं पूर्व्व-शान-दिगन्तरे ।

विधाने पञ्च कुण्डानामीशाने पञ्चमं भवेत् ।

ज्ञानरत्नावल्यां । दिक्षु वेदास्त्रवृत्तानि पञ्चमं त्वीशगोचरे ।

नारदीयेऽपि । यत्रोपदिश्यते कुण्डचतुष्कान्तत्र कर्मणि ।

वेदास्त्रमर्द्धचन्द्रञ्च वृत्तं पद्मनिभं तथा ॥

कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः ।

कुण्डवेद्यन्तरञ्चैव सपादकरसम्मितम् ।

पीठवद्वन्तु यत्कुण्डं सुप्रमाणं सुगर्त्तकम् ॥

बह्वचपरिशिष्टे । भूक्तौ मुक्तौ तथा पुष्टौ जीर्णोद्धारौ विशेषतः ।

सदाहोमे तथा शान्तौ वृत्तं वरुणदिग्गतम् ॥

कामिके तु तत्तद्विद्ध तत्तत्फलार्थं कुण्डोक्तिर्यथा ।

ऐन्द्रां-स्तम्भे चतुष्कोणे अग्नौ भोगे भगाकृतिः ।

चन्द्रार्द्धमारणे याम्ये नैर्ऋते द्वित्रिकोणकम् ॥

वारुण्यां शान्तिके वृत्तं षट्सु उच्चाटनेऽनिले ।

उदीच्यां पौष्टिके पद्मं रौद्रगामष्टास्त्रमुक्तिदम् ॥

सर्व्वेषु चैतेषु होमानुसारेण हस्तादिमात्रं क्षेत्रफलमुपकल्प-

नीयम् ।



तदुक्तं भविष्यपुराणे । मुष्टिमानं शतार्द्धं तु शते चारत्त्रिमात्रिकम् ।

सहस्रेत्वथ होतव्ये कुर्यात्कुण्डं करात्मकम् ॥

द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुःकरम् ।

अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम् ॥

मुष्टिमानमिति, वक्ष्यमुष्टिहस्तमात्रमित्यर्थः ॥

इदानीं चतुरस्त्रादिकुण्डानामुद्धारक्रमोऽभिधीयते ॥

चतुरस्त्रं तावदाह विश्वकर्मा ।

कृत्वा प्राक् सूत्रमर्द्धाङ्गं दक्षिणोत्तरमत्स्ययोः ।

न्यस्य सूत्रं ततः कोणैरङ्कितैश्चतुरस्त्रकम् ॥

पूर्वङ्केनाप्युपायेन प्राचीं निश्चित्य प्राक्पश्चिमायातां रेखा-  
मालिख्य तामर्द्धभागे लाञ्छयित्वा दक्षिणोत्तरदिशोर्मत्स्यद्वयं  
कुर्यात् सूत्रोपरि सूत्रान्तरनिपातनात् स्वस्तिकमध्याकृतिः  
शिल्पशास्त्रेषु मत्स्य इत्युच्यते । मत्स्यद्वयनिष्पत्तिश्चात्रैवं कार्या ।  
पूर्वोक्तरेखापरिमितस्य सूत्रस्यादि, तस्याएव रेखाया मूले  
निधाय तत्सूत्रान्तरं परिभ्रम्य वृत्तं रचयेत् तस्या एव-  
रेखाया अपरप्रान्ते तस्यैव सूत्रस्यादिं निधाय तत्सूत्रान्तं परि-  
भ्रम्य द्वितीयन्तं कुर्यात् एवं वृत्ते द्वये कृते दक्षिणोत्तरदिशो-  
र्मत्स्यद्वयं निष्पद्यते अथ मत्स्यद्वये पूर्वोक्तरेखालाञ्छने चैकं  
सूत्रं निष्पात्य दक्षिणोत्तरायतां रेखां लिखेत् । एवं दिक्षु साधि-  
तासु विदिक्साधनार्थं कोणान् लाञ्छयेत् । तत्रायं प्रकारः ।  
पूर्वनिष्पन्नरेखाप्रान्तचतुष्टयस्य प्रत्येकं पार्श्वद्वये चिकीर्षितपरि-  
माणस्यार्द्धमर्द्धं निधाय तत्सन्धौ कोणलाञ्छनानि कुर्यात्  
ततः कोणलाञ्छनेषु सूत्रचतुष्टयनिपातनात् पूर्वदिशुदक्षिणयो-

निकं चतुरस्रं कुण्डं कुर्यात् । योन्याकारादीनामुद्धारश्चतुरस्र-  
प्रकृतिकस्तु कामिकशास्त्रात् ।

पञ्चमांशं पुरोन्यस्य मध्ये वेदांशमानतः ।

भ्रमादश्वत्थपत्राभं कुण्डमाग्नेयमुच्यते ॥

क्षेत्रस्य पञ्चमभागं पुरप्राच्यां दिशि विन्यस्य मध्ये कोणसूत्र-  
स्येति शेषः । वेदांशः, तुरीयांशः । भ्रमात्, सूत्रान्तपरिभ्रमणेन  
अश्वत्थपत्राकारं कुण्डमाग्नेयदिशि कुर्यादिति । तत्रायं  
निर्माणाप्रकारः । पूर्वोक्तन्यायेन समचतुरस्रीकृतस्य क्षेत्रस्य  
पश्चिमरेखामध्यात् पूर्वरेखामध्यभेदिनीं क्षेत्रसूत्र-पञ्चमांशाधिकां  
गर्भरेखामालिख्य नैऋत्यदेशे कोणसूत्रान्तरीयांशे लाञ्छयित्वा  
तस्माञ्छनोपरि विन्यस्तादेः सूत्रस्य पूर्वोक्तगर्भरेखामूलावन्यस्तं  
प्रान्तं परिभ्रम्य बहिर्वृत्तार्धं निष्पाद्य वायव्यकोणेऽप्येवमेव  
वृत्तार्धं रचयेत् । ततो गर्भरेखाप्रान्तात् वृत्तद्वयप्रान्तस्पर्शि  
सूत्रद्वयं निपात्य पिप्पलपत्राकारमाग्नेयदिश्युदङ्मुखयोनिकं  
योनिकुण्डं विदध्यात् । चतुरस्रे ग्रहैर्भक्ते त्यक्त्वाद्यन्तो तदंशकौ  
मध्यसप्तमांशमाने तु कुण्डं खण्डेन्दुवत् क्रमात् । चतुरस्रे क्षेत्रे ग्रहै-  
र्नवभिर्विभक्ते आद्यन्तो त्यक्त्वा अवशिष्टसप्तमांशमानेन सूत्रभ्रम-  
णात् खण्डेन्दुसदृशं कुण्डं कुर्यात् । अत्रैवं कृतिः । चतुरस्रं  
क्षेत्रं नवधा विभज्य तत्र प्रथमोन्तिमश्चेति भागद्वयं परिसृज्य  
अवशिष्टसप्तभागादिमरेखागर्भदेशे सूत्रादिं निधाय तस्यैव भाग-  
सप्तकस्यान्तिमरेखागर्भदेशे सूत्रान्तं निवेश्य तत्सूत्रपरिभ्रमणेन  
प्रथमरेखातुल्यं विश्रान्तप्रान्तवृत्तार्धं विरचयेत् । अथ प्रथमरेखा-  
प्रान्तद्वयमपि वृत्तार्धं संयोज्य दक्षिणदिगवस्थितमुत्तराशाभिमुखयो-

निकं खण्डं चन्द्रखण्डं विदध्यात् । त्रिभागवृद्धितो मत्स्यैस्त्रिभि-  
 नैशाचरं भवेत् । स्थानत्रये तृतीयांशत्रयं वृद्ध्या मत्स्यत्रयेण-  
 नैशाचरं नैर्ऋत्यदिक्सम्बन्धि कुण्डं कुर्यात् । इहायं सम्प्रदायः ॥  
 पूर्ववत्समचतुरस्रं क्षेत्रं निर्माय तत्तिरस्त्रीनपश्चिमरेखामध्यात्  
 तिर्यगवस्थितपूर्वरेखामध्यभेदिनीं क्षेत्रसूत्रतृतीयभागाधिकां  
 गर्भरेखामालिख्य पूर्वोक्तपश्चिमरेखाप्रान्तद्वयमपि क्षेत्रसूत्र तृती-  
 यभागाधिकं कुर्यात् ततो गर्भरेखाप्रान्तात् पूर्वोक्तपश्चिमरेखा-  
 प्रान्तद्वयमपि क्षेत्रसूत्रतृतीयभागाधिकं कुर्यात् । ततो गर्भ-  
 रेखाप्रान्तात् पूर्वोक्तपश्चिमरेखाप्रान्तद्वयस्पर्शिसूत्रद्वयं निपात्य  
 नैर्ऋत्यदिशि पूर्वोक्तमुखयोनिकं त्रिकोणं कुण्डमुत्पादयेत् ।  
 एवञ्च विधीयमाने स्थानत्रये तृतीयांशत्रयं वृद्धिस्तत्रैवमत्स्यत्रयमपि  
 निष्पद्यत इति । कर्माङ्घ्राष्टांशसंन्यासादृत्तं कुण्डमिहोदितम् ।  
 कर्मसूत्रार्द्धस्य योऽष्टमांशस्तस्य संन्यासात् सम्यक् न्यासात् वृत्तं  
 कुण्डं स्यादिति । अत्रैवं रचनाप्रकारः । चतुरस्रे क्षेत्रे कोणात्  
 कोणान्तरगामिनः सूत्रस्यार्द्धं कोणार्द्धशब्दवाच्यमष्टधा विभज्य  
 यावानष्टमो भागस्तावन्तं भागं चतुर्दिक्षु बहिर्विन्यसेत् । ततः  
 क्षेत्रगर्भदेशे सूत्रादिं निधाय बहिःस्थिताष्टमभागविन्यस्तं तस्यैव  
 सूत्रस्य प्रान्तं सर्वतः परिभ्रम्य पश्चिमदिशि पूर्वोक्तमुखयोनिकं  
 वृत्तकुण्डं कुर्यात् । षड्भागवृद्धितो मत्स्यैश्चतुर्भिः स्यात् षडस्रकं ।  
 क्षेत्रपार्श्वयोः प्रत्येकं षष्ठभागवृद्धं कृत्वा अवशिष्टदिशीर्मत्स्यचतुष्टय-  
 मुत्पद्य सूत्रषट्कपातात् षडस्रकुण्डनिष्पत्तिरिति । अत्रैवं सम्प्र-  
 दायः । समचतुरस्रं क्षेत्रं षोढा विभज्य यावान् षष्ठोभागस्तावता  
 मानेन क्षेत्रस्य दक्षिणोत्तरपार्श्वे समन्ताद्द्वर्द्धयित्वा तदेवक्षेत्रमायत

चतुरस्रं सम्पादयेत् । अथानन्तरोक्तपार्श्वद्वयेखास्यर्शिनीं दक्षिणी-  
त्तरायतां गर्भरेखां रचयेत् । ततः क्षेत्रमध्यादुत्तरपार्श्वरेखा-  
मध्याच्च पूर्वोक्तगर्भरेखाद्वपरिमितमेकैकं सूत्रं निपात्य पूर्वशा-  
नदिशोरन्तराले मत्स्यं मुत्पाद्य तेनैवप्रकारेण पश्चिमवायव्योरन्त-  
राले मत्स्यं कुर्यात् । अथ भूयोपि क्षेत्रमध्यादक्षिणपार्श्वरे-  
खामध्याच्च प्रागुक्तगर्भरेखाप्रान्तद्वयात् लाञ्छनचतुष्टयस्यर्शिसूत्र-  
चतुष्टयं निपातयेत् । एवं लाञ्छनानन्तरालस्थितसूत्रद्वयेन  
सह सूत्रषट्कं प्रयोगाद्वायव्यदिशि प्राङ्मुखयोनिकं षट्कोणकुण्डं  
कुर्यात् ।

चतुरस्राष्ट्रभागेन कर्णिकास्यादिभागशः ।

तद्वहिस्त्वेकभागेन केसराणि प्रकल्पयेत् ॥

तृतीये दत्तमध्यानि तुरीये दलकोटयः ।

भ्रमणात् पद्मदलं स्याद्द्वितीयं दर्शयेद्वहिः ॥

चतुरस्रस्य अष्टधा विभक्तस्य मध्ये अष्टमभागेन कर्णिका-  
स्यात् कर्णिकाया वह्निः परिधिस्थे द्वितीये अष्टमभागविन्यासे  
केसराणि स्युः केसराद्वहिःपरिधिस्थिते तृतीये अष्टमभागे  
विन्यासे दलमध्यानि कल्पयित्वा चतुर्थे दलकोटीं विधाय  
चतुरस्राद्वहिर्द्वितीयाणि स्पर्शयेत् । अत्राप्यष्टमभागेनेति सम्ब-  
ध्यते । विभागशः, विभागे विभागे सर्वदिग्भागेष्वित्यर्थः । भ्रम-  
णात्, सूत्रस्येति शेषः । एतच्च पद्मद्वयं सर्वत्र योजनीयम् ।

अयमर्थः । चतुरस्रं क्षेत्रं प्रागग्राभिरुदगग्राभिश्च रेखाभि-  
रष्टधा विभज्य मध्यदेशे लाञ्छयित्वा क्षेत्राद्वहिश्चतुर्दिक्षु समन्ता-  
दपरमष्टभागं विन्यसेत् सत्येवं लाञ्छनात् परितः प्रतिदिग्

पञ्चपञ्चाष्टमभागावधारेखा भवन्ति । ततः पूर्वोक्तलाञ्छनीपरि  
विन्यस्तादेस्तत्तद्रेखाविन्यस्तप्रान्तस्य च सूत्रस्य परिभ्रमणात्  
पञ्चवृत्तानि सम्पाद्य वृत्तातिरिक्तरेशाः परिमार्जयेत् ततः प्रथमे  
वृत्ते कर्णिका । द्वितीये केसराणि । तृतीये दलमध्यानि ।  
चतुर्थे दलकोटयः । पञ्चमे दलाग्रानीति कृत्वा अष्टदलं पूर्वाभि-  
मुखयोनिकं पञ्चकुण्डमुत्तरदिशि कुर्यात् ।

इदानीमेतदेव कुण्डं प्रकारान्तरेणीच्यते ॥

वृत्तकुण्डं ममं चान्यदशवान्यप्रकारतः ।

वृत्तकुण्डं पुरा कृत्वा चतुर्धा मेखलां भजेत् ॥

उत्क्षेपञ्च तथा कृत्वा कर्णिका सार्द्धका भवेत् ।

अवशिष्टं दलं वेददलमष्टदलन्तु वा ॥

यथा प्रतोच्यां दिशि वृत्तकुण्डमभिहितमिहापि तथैव कृत्वा  
तन्मध्ये यथाविभागं पञ्चकुण्डं कुर्यादिति । अथवेत्यादिना  
तृतीयः प्रकार उच्यते । पूर्वं वृत्तकुण्डमेव आमेखलं मेखलाम-  
वधोक्त्य अन्तश्चतुर्धा भजेत् । वृत्तकुण्डमध्ये अन्यस्यापि सम-  
भागस्य वृत्तत्रयस्य करणाच्चतुर्थचेत्रविभागः कार्य्यइत्यर्थः ।  
ततः क्षेत्रमध्ये सार्द्धभागेन विस्तृता कर्णिका विधेया । उत्क्षे-  
पञ्च तथा कृत्विति, कर्णिकाया उच्छ्रयमपि सार्द्धभागेन कृत्वेत्यर्थः ।  
अवशिष्टेन सार्द्धभागद्वयेन केसरव्यतिरिक्तानि दलान्येव कुर्यात् ।  
एवञ्चतुर्दलमष्टदलम्वा पञ्चकुण्डं कुर्यात् ।

क्षेत्रात् द्वादशमं भागं चतुर्दिक्षु तदन्तरे ।

विन्यस्त्य तत्प्रमाणेन तुर्यांशमपरं नयेत् ॥

तस्य कर्णप्रमाणेन तदुज्ज्वलपि लाञ्छयेत् ।

तत्राष्टसूत्रसंयोगादष्टास्रं कुण्डमुच्यते ॥

द्वादशधा विभक्तस्य क्षेत्रस्य यावान् द्वादशी भागस्तावन्तं भागं चतुर्दिक्षु विन्यस्य, तदन्तरे, तस्य क्षेत्रस्य अन्तरे बहिःप्रदेशे अन्तरं बहिर्यागोपसंख्यानयोरिति ज्ञापकादन्तरशब्देन बहिर्वचनः । तत्प्रमाणेनेति तस्य बहिर्विन्यस्तद्वादशभागस्य परिमाणेन अपरं द्वितीयं तुर्यास्रं चतुरस्रं नयेत् प्रणयेत् कुर्यात् इति यावत् । तुर्यास्रमिति, स्वार्थिकोऽत्र पूरणप्रत्ययः । तस्य कर्णप्रमाणेनेति । कोणात् कोणान्तरस्पर्शिसूत्रं शिल्पशास्त्रेषु कर्ण इति प्रसिद्धम् । इह तु क्षेत्रगर्भादारभ्य चतुष्कोणगामिनः पृथगेव चत्वारः कर्णा इत्यभिप्रायेण कर्णाद्वमपि कर्णशब्देनोक्तम् । तेनायमर्थः ।

बाह्यस्थितचतुरस्रस्य गर्भदेशावधिर्यावान् कर्णस्तावता मानेन तद्भुजासु तस्य कर्णस्य भुजासु लाञ्छयेत् । अत्र बाह्यचतुरस्रसूत्रांशेव कर्णेभ्योपार्श्ववर्तीनि निजभुजाकारतया भुजाशब्देनोच्यन्ते । अयमाशयः । बाह्यचतुरस्रसम्बन्धिन्येकस्मिन् कोणे कर्णाद्वपरिमितस्य सूत्रस्यादिं निधाय तत्सूत्रं चतुरस्ररेखोपरि प्रसार्य सूत्रप्रान्ते लाञ्छयेत् । एवं प्रतिकोणं सूत्रादिं निधाय प्रातिलोभ्यानुलोभ्येन सूत्रप्रसारणात् तत्तत्प्रान्ते लाञ्छयन् प्रदिदिशं लाञ्छनद्वयकरणाद्विचतुष्टयेन लाञ्छनेषु सूत्राष्टकनिपातनादष्टास्रकुण्डं कुर्यादिति ।

अयमिह निर्माणप्रकारः ।

पूर्ववच्चतुरस्रीकृतस्य क्षेत्रस्य बहिश्चतुर्दिक्षु द्वादशमं भागं विन्यस्य तत्परिमाणेन अपरं चतुरस्रं कुर्यात् । अथ तदीय-

कर्णाईपरिमितस्य सूत्रस्य प्रतिकोणमादिं निधाय चतुरस्ररेखो-  
परि प्रसारणात् तत्तत्प्रान्तेषु लाञ्छयन् दिक्चतुष्टयेन लाञ्छना-  
ष्टकं कृत्वा तद्वाञ्छनोपरि सूत्राष्टकनिपातनादैशानदिशि  
पूर्वाभिमुखयोनिमष्टाश्रकुण्डं कुर्यात् । इदानीं दिग्नियमम-  
न्तरेणैव तत्तत्कर्मापयोगितया विज्ञानललितोपदिष्टं कुण्डद्वय-  
मुच्यते ।

सप्तमांशं वह्निर्यस्य कृत्वा वृत्तमिह भ्रमात् ।

चतुर्थभागान्यूनं पूर्वक्षेत्रे च सम्मितैः ॥

धनुर्ज्याकृतिभिः पञ्चसूत्रैः पञ्चास्रकुण्डकम् ।

होमे प्रशस्यते भूतशाकिनीग्रहनिग्रहे ॥

चतुरस्रस्य क्षेत्रस्य वह्निःप्रदेशे चतुर्दिक्षु क्षेत्रसप्तमांशं विन्य-  
सेत् । ततः क्षेत्रगर्भविन्यस्तादेः बाह्यस्थितसप्तमांशोपरि विन्यस्त-  
प्रान्तस्य सूत्रस्य सर्वतः परिभ्रमणात् वृत्तं निष्पादयेत् । पूर्वं  
क्षेत्रेणेति, वह्निस्थितवृत्तापेक्षया पूर्वक्षेत्रशब्देन आन्तरचतुरस्र-  
क्षेत्रमेवोच्यते ।

ततश्चायमर्थः । आन्तरचतुरस्रस्य यदैर्घ्यं तत्स्वकीय-  
चतुर्थभागान्यूनं कृत्वा यन्मानं भवति तावता मानेन परिमितं  
सूत्रं विधाय तादृशानि पञ्चसूत्राणि बाह्यवृत्तस्यान्तर्विन्यस्य  
सूत्रसन्धौ कोणं कुर्यात् । तानि च पञ्च सूत्राणि प्रत्येकं  
प्रान्तद्वयमंशसृष्टवृत्तत्वात् धनुर्ज्याकृतोनि धनुरारूढमौर्वींसदृशानि  
स्युः । ततः पञ्चभूतातिरिक्तं सर्वं परिमृज्य पञ्चास्रकुण्डं  
रचयेत् ।

तच्च ग्रहनिग्रहादिहोमे प्रयोज्यम् ।

दशमांशं वहिर्विन्यस्य कृत्वा वृत्तमिह भ्रमात् ।  
भक्ताक्षेत्रं चतुःषष्ट्या तद्भागैः त्रिंशता त्रिभिः ॥  
समायसूत्रं तादृशात् सप्तास्रं सूत्रसप्तकात् ।  
अभिचारोपशान्त्यर्थं हीमकुण्डमिति स्मृतम् ॥

इहापि चतुरस्रस्य क्षेत्रस्य दशमभागं चतुर्हिंक्षु बहिर्विन्यस्य  
पूर्ववत् वृत्तं कुर्यात् । अथ पूर्वक्षेत्रं चतुःषष्ट्या विभज्य तेषां  
चतुःषष्टिसंख्यानां भागानां मध्ये त्रयस्त्रिंशत्संख्यैर्भागैः परि-  
मितं सूत्रं कृत्वा तादृशानि सप्तसूत्रानि वृत्तस्यान्ते विन्यस्य  
सप्तास्रं कुण्डं कुर्यात् । अत्रापि सूत्राणां धनुर्ज्याकारत्वं  
सूत्रसन्धौ कोणनिर्म्माणं सप्तसूत्रातिरिक्तपरिमार्जनंचेति पूर्ववदेव  
वेदितव्यम् ।

एतच्च कुण्डमभिचारदोषोपशमनहीमेषु प्रयोज्यम् ।

आह विश्वकर्मा ।

यावन्मात्रः कुण्डविस्तार उक्तस्तावत्खातस्यापि मानं प्रदिष्टम् ।  
यादृक् कुण्डस्याकृतिः संप्रदिष्टा तादृगुपं मेखलाया विदध्यात् ॥  
स्थापने सर्वकुण्डानां ध्वजायः सर्वसिद्धिदः ॥

सर्वेषु चैतेषु प्रोक्तमानाद्वद्वाङ्गुल्यवादि न्यूनमतिरिक्तं वा  
विधाय ज्वजायः साधनीयः ।

विस्तारे दैर्घ्यगुणिते अष्टभिर्विभक्ते यद्येकः परिशिष्यते  
तदा ध्वजाय इति ।

खातेधिके भवेद्भोगो हीने धेनुधनक्षयः ।  
वक्रकुण्डे तु सन्तापी मरणं भिन्नमेखले ॥  
मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः ।



भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डे योन्या विना कृते ।

अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत् कण्ठवर्जितम् ॥

खातहोने भवेद्भोग इत्यादिना खातादिलक्षणरहितस्य कुण्डस्या-  
निष्टफलत्वदर्शनादिदानीं खातादीनामेव लक्षणमभिधीयते ।

तद्यथा मोहचूडोत्तरशास्त्रे ।

चतुर्विंशतिमं भागमङ्गुलं परिकल्प्य तु ।

चतुर्विंशङ्गुलं हस्तं कुण्डानां परिकल्पयेत् ।

हस्तामात्रं खनेतिर्यगूर्ध्वं मेखलया सह ॥

मुष्टिमानं शतार्द्धमित्यादिना प्रसिद्धेनैव हस्ताङ्गुलव्यवहारेण  
होमानुसारात् कुण्डमानमुक्तम् । इयन्तु खातादिमान कथनार्थं  
परिभाषा क्रियते । चिकीर्षितकुण्डत्वेन चतुर्विंशतिधा विभज्य  
यावान् चतुर्विंशतिमो भागस्तावत्परिमाणमङ्गुलं परिकल्प्य  
चतुर्विंशत्या अङ्गुलैर्हस्तं परिकल्पयेत् । ततस्तेन हस्तेन परि-  
मितं सर्वकुण्डानां तिर्यक्खातमानं विधायमेखलासहितस्य  
खातस्य तेनैव हस्तेन परिमितमूर्द्धमानं विदध्यात् । प्रथमेषु  
उक्तम् । कुण्डं जिनाङ्गुलं तिर्यगूर्ध्वं मेखलया सह ।

जिनाङ्गुलं, चतुर्विंशत्यङ्गुलम् ॥

प्रतिष्ठासारसंग्रहेऽपि ।

पञ्च-त्रिमेखलोच्छ्रायां ज्ञात्वा शेषमधः खनेत् ॥

विश्वकर्मणाप्युक्तम् ।

व्यासात् खातः करः प्रोक्तो निम्नस्तिथ्यङ्गुलेन तु ।

तिथ्यङ्गुलानि, पञ्चदशाङ्गुलानि खातस्य निम्नत्वम् ।

उन्नता सा नवाङ्गुलैरिति, वक्ष्यमाणत्वान्मेखलात्रयपक्षे नवा-  
ङ्गुलं प्रथममेखलयोत्सेध इत्यभयोश्चतुर्विंशत्यङ्गुलत्वम् ।

कण्ठमानमुक्तं कालोत्तरे ।

खाताद्वाह्येऽङ्गुलः कण्ठः सर्वकुण्डेष्वयं विधिः ॥

खात-मेखलयोरन्तराले अङ्गुलमानेन कण्ठमोष्ठापरपर्यायं  
कुर्यात् ।

सारसमुच्चये । खाताद्वाह्याङ्गुलः कण्ठस्तद्वाह्ये मेखला क्रमात् ।

मेखलालक्षणमुक्तं कामिके ।

क्षेत्राकीर्णशेन तस्योष्ठः स्यात्तदेदत्तुभागतः ।

मेखला पृथुतोच्छ्रायः कुण्डाकारा तु मेखलाः ।

सर्वेष्वान्तु प्रकर्त्तव्या मेखलैकात्र लाघवात् ॥

क्षेत्रस्य, अर्काशेन, द्वादशांशेन कुण्डस्योष्ठः कण्ठशब्दवाच्यः  
स्यात् तदेदभागतः कुण्डचतुर्थांशतो मेखलायाः पृथुता  
विस्तारः ।

तथा ऋतुभागतः षष्ठभागेन मेखलोच्छ्रायः कार्यः ॥

पिङ्गलामतेपि । खातादेकाङ्गुलं त्यज्य मेखलानां स्थितिर्भवेत् ।

मेखलैकाधवा तिस्रो भूतसंख्यायवा प्रिये ॥

भूतसंख्याः, पञ्चसंख्याः ।

उक्तञ्च प्रथमे । कण्ठाङ्गुलाद्वहिः कार्य्या मेखलैका षडङ्गुला ।

चतुस्त्रिंशदङ्गुला यद्वा तिस्रः सर्वत्र शोभनाः ॥

यदा एका मेखला तदा सा विस्तारोत्सेधाभ्यां षडङ्गुला  
विधेया । “एका षडङ्गुलोत्सेधविस्तारा मेखला मतेति”  
पिङ्गलोक्तेः । यदा तु मेखलात्रय पक्षस्तदा क्रमेण चतुस्त्रि-  
ंशदङ्गुलमानाः कर्त्तव्याः । मोहचूट्रीत्तरे । मेखलात्रितयं  
कार्य्यं कोणरामयमाङ्गुलैः । कोणाः, चत्वारः । रामाः,

त्रयः । 'यमौ' द्वौ । तत्र सर्वान्तिमा, षाड्जुला । मध्य स्थाः त्रय  
ङ्गुलाः । कुण्डकण्ठसन्निहिता चतुरङ्गुला इति । सत्येवं प्रथम-  
मेखलायाः कुण्डकण्ठादारभ्य नवाङ्गुल उत्सेधः स्यात् ॥

लक्षणं संग्रहेऽपि ।

प्रथमाष्टाङ्गुला व्यासादुन्नता सा नवाङ्गुलैः ।

मध्यात्तु चाङ्गुला बाह्ये षट्तीया तु यमाङ्गुला ।

मेखलाः पञ्चवा कार्याः षट्-पञ्चा-ध्वि-त्रि-पक्षकैः ॥

प्रथमकुण्डसन्निहिता आन्तरोत्सेधनवाङ्गुला बाह्ये तु चतुर-  
ङ्गुलैव । अष्टाङ्गुला चतुरङ्गुला । अद्भ्यः, चत्वारः ।

पक्षौ द्वौ ॥

योनि लक्षणमुक्तं स्वायम्भवे ।

मेखला मध्यतो योनिः कुण्डार्द्धा त्र्यंशविस्तृता ।

अङ्गुष्ठमानीष्ठकण्ठा कार्याश्चक्षुदलाकृतिः ॥

प्रागग्नि-याम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखा ।

पूर्वामुखा स्मृताः शेषा यथा शोभं समन्विताः ॥

मेखलाया गर्भदेशे कुण्डार्द्धदीर्घा कुण्डततोयांशविस्तृता  
योनिः कार्या । अत्रोष्टशब्देन, योन्यग्रमुच्यते । कण्ठशब्देन, च  
योनिमेखला । अङ्गुष्ठशब्दः, अङ्गुलपर्यायः । एकाङ्गुलपरि-  
माणेन योनिरयमेखलाञ्च कुर्यादित्यर्थः । विस्तारोऽष्टाङ्गुलो  
योनिरयमङ्गुलसंमितमिति पिङ्गलीक्तेः ।

नारदीये । कुण्डत्र्यंशप्रविस्तारा योनिरुच्छ्रयताङ्गुलम् ।

कुण्डार्धेन तु दीर्घा स्यात् कुण्डोष्ठी बोधिपत्रवत् ॥

कुण्डाष्टोति, यथा कुण्डे द्वादशांशेन ओष्ठो विहित एवं

योनेरपि द्वादशभागेन ओष्ठः कार्य इत्यर्थः । यथा कुण्डे प्रविष्ट-  
ओष्ठो यस्या इति । 'बोधिपत्रम्, अश्वत्थपत्रम् ।

त्रैलोक्यसारे ।

दौर्घात् सूर्याङ्गुलानाभिस्त्रांशोना विस्तरेण तु ।

एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे तथा ॥

कुम्भद्वयसमायुक्ता चाश्वत्थदलवन्मता ।

अङ्गुलमेखला युक्ता मध्ये \* त्वाज्यघृतिस्तथा ॥

दक्षस्था पूर्व्याम्ये तु जलस्था पश्चिमोत्तरे ।

नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षदलस्थिता ॥

'सूर्याङ्गुलाः, द्वादशाङ्गुलाः । 'त्रांशोनेति, दौर्घटतीयां-  
शान्यूनविस्तारा । 'एकेनाङ्गुलेनोच्छ्रिता तथा, एकेनाङ्गुलेन  
कुण्डमध्ये प्रविष्टा । 'कुम्भद्वयसमायुक्तेति, पूर्वोक्ताग्नेयकुण्डस्य  
तुल्याकृतेर्योनेर्बुधदेशस्थितं दक्षद्वयमेव गजकुम्भाकृतित्वात् कुम्भ-  
शब्देनोक्तम् । तेनात्र कुम्भस्थलाकृतिर्घटद्वयं मृत्पिण्डद्वयं वा  
स्थाप्यमिति तद्ग्राह्यं । अङ्गुलमेखलेनेति, एकाङ्गुलमानया  
मेखलया परिवेष्टितेत्यर्थः । मध्ये त्विति, यथा सुचि घृत-  
धारणाय बिलं क्रियते तथा योनिमध्येपि बिलं कर्तव्यमित्यभि-  
प्रायः । दक्षस्थेति, पूर्व्याग्नेययाम्य कुण्डेषु दक्षिणभागे उत्तराभि-  
मुखा योनिः कार्या नैर्ऋत्यादिकुण्डेषु तु पश्चिमभागे प्राङ्-  
मुखा विधेयाः । 'नवम इति, अष्टदिक्षु कुण्डेष्वेवं विधाय पूर्व-  
शानदिशोरन्तराले यन्नवमं कुण्डं चतुर्दिक्षु वा कुण्डचतुष्टयं

\* आच्यस्थितिरिति कचित्पाठः ।

कृत्वा ईशानदिशि यत्पञ्चमं कुण्डं तयोरपि दक्षिणभागेपि योनिः  
कार्येत्यर्थः ॥

वह्वृचपरिशिष्टे । अथाबुधः स धूमे तु जुहुयाद्यो हुताग्ने ।

यजमानो भवेदन्धः सपुत्र इति च श्रुतिः ॥

च्छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः ।

पाण्याहु तिर्द्वादश पर्वं पूर्विका रश्मादिनाचेत्\*सुचि पर्वंपूरिका ।

दैवेन तीर्थेन च ह्यते हविः स्वङ्गारिणि स्वर्विषि तच्च पावके ॥

योनिर्च्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः ॥

मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्चैव जायते ।

तस्मात् समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथञ्चन ॥

आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं तथा ।

जुह्वयुश्च हुते चैव पाणिमूर्पसुचादिभिः ॥

न कुर्यादग्निधमनं कुर्यात्तु व्यजनादिना ।

मुखेनैव धमेदग्निं मुखाद्धिषोभ्यजायत ॥

नाग्निं मुखेनेति तु यज्ञौकिके योजयन्ति तत् ।

भविष्यत्पुराणे । भूमौ स्थितेन पात्रेण विष्टब्देन च पाणिना ।

वामेन यदुर्गार्हूलं नान्तरीक्षे तु ह्यते ॥

धनायुर्द्वाररेखासु सोमतीर्थं तु मध्यमं ।

लाजादिहवनं तेन कर्त्तव्यं वपनं तथा ॥

‘वपनम्’ ब्रीह्यादिनिर्व्वापः ।

वायुपुराणे । कण्डनं पेष्णञ्चैव तथैवोक्ते खनं सदा ।

सकृदेव पितॄणां स्याद्देवानां तच्चिरुच्यते ॥

मरीचिः । प्रागग्र्याः समिधो ग्राह्या अखर्वानौष्ठपाटिताः ।

काम्येषु वशकर्मादौ विपरीता जिघांसति ॥

विशीर्णा विदलाङ्गस्वा वक्रा बहुशिराः कृशाः ।

दीर्घास्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशकाः ॥

समिदित्यनुवृत्तौ ब्रह्मपुराणे ।

शमी-पलाश-न्यग्रोध-प्लक्ष-वैकङ्कतोद्भवा ।

अश्वत्थोडुम्बरी विल्वश्चन्दनः सरलास्तथा ।

शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः ॥

छन्दोग परिशिष्टे कात्यायनः ।

नाङ्गुष्ठादधिका कार्या समित् स्थूलतया क्वचित् ।

न वियुक्ताज्जवा चैव न सकीटा न पाटिता ॥

प्रादेशान्नाधिकान्यूना न तथा स्याद्विशाखिका ।

न सपर्णा समित् कार्या होमकर्मसु जानता ॥

तथा । यथोक्तवस्त्वसम्पन्ने \* ग्राह्यां तदनुकारि यत् ।

यवानामिव गोधूमा ब्रीह्रीणामिव शालयः ॥

आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ।

मन्त्रस्य देवतायाश्च, प्रजापतिरितिस्थितिः ॥

‘अनादेशे’ अविधाने ।

मन्त्रस्य देवतायाश्च अनादेशे प्रजापतिः देवता प्राजापत्यो-  
मन्त्रः समस्ता व्याहृतयश्च ।

यत्र तु देवतोक्ता मन्त्रश्च नास्ति तत्र मूलमन्त्रोवेदितव्यः ।

\* यथोक्तवस्त्वमप्राप्नाविति क्वचितपाठः ।

सचोसक्तो गरुडपुराणे ।

प्रणवादिनमोऽन्तञ्च चतुर्थन्तञ्च सत्तम ।

देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ॥

विष्णुधर्मात्तरे । दध्यलाभे पयः कार्यं मध्वलाभे तथा गुडः ।

घृतप्रतिनिधिं कुर्यात् पयो वा दधि वा नृप ॥

पैठीनसिः । काण्ड-मूल-पर्ण-पुष्प-फल-प्ररोह-रस-गन्धादीनां  
सादृश्येन प्रतिनिधिं कुर्यात् सर्वालाभे यवः प्रतिनिधिर्भवति ॥

मैत्रायणीयपरिशिष्टे ।

दर्भाभावे काशः प्रतिनिधिः अद्येष्ठाः पलाशा-श्वत्थ-खदिर-  
रीहितको-दुम्बराणां, तदलाभे सर्व्ववनस्पतीनां तिलक-नीप-निम्ब-  
राजवृक्ष-शाम्भान्य-रलूक-कपित्थ-कोविदार-विभोतक-श्लेष्मान्तक-  
सर्व्व-कण्टकिवर्जं । घृतमन्यार्थं प्रतिनिधिस्तदलाभे दधि-  
पयो वा ।

इति मण्डपादिलक्षणम् ॥

अथ वृद्धिश्राद्धम् ॥

आह शातातपः । नानिष्ट्वा पितृयज्ञेन वैदिकं किञ्चिदाचरेत् ।

तत्रापि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

अकृत्वा मातृयागन्तु वैदिकं यः समाचरेत् ।

तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः ॥

मातृगणास्तु भविष्यपुराणे निरूपिताः ।

गौरी-पद्मा-शची-मेधा-सावित्री-विजया-जया ।

देवसेना-स्वधा-स्वाहा-मातान्या लोकमातृकाः ॥

हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतयाहस ।

पूज्या चित्रे ऽथवाच्चायां वरदाभयपाणयः ॥

विष्णुपुराणे । कन्या-पुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः ।

शुभकर्मणि वालानां चूडाकर्मदिके तथा ॥

सौमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।

नान्दीमुखान् पितृनादौ तर्पयेत् प्रयती गृही ॥

जावालः । यज्ञोद्वाह-प्रतिष्ठासु मेक्षलावन्ध-मोक्षयोः ।

पुत्रजन्मवृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं समाचरेत् ॥

तेन वैदिकहोमाङ्गकेषु दर्शपूर्णमासादिषु अन्येषु च वचन-  
विशेषितेषु कर्मसु वृद्धिश्राद्धमाचरणीयम् ॥

तथा तुलापुरुषादीनामपि यागसंशब्दनात् लोकपाला-  
वाहनमन्त्रेषु च सर्वेषु ममाध्वरम्पाहियज्ञं रक्षेत्यादिशब्द  
प्रयोगात् सत्यपि दानरूपत्वे यागधर्मैराभवितव्यमिति तत्रापि  
वृद्धिश्राद्धं कर्तव्यम् । एवमेव सहोमकेषु धान्यपर्वतादिष्वपि-  
अनुसन्धेयाः ।

तस्य विधिमाह कात्यायनः ।

आभ्युदयिके प्रदक्षिणमुपचारः पूर्वाह्णिके अमन्त्रवज्रं जपं  
ऋजवो दर्भा यवैस्तिलार्थः सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्नः, सुसम्पन्न  
मित्यनुज्ञातो दधिवदराक्षतमिश्राः पिण्डा नान्दीमुखान्  
पितॄन् वाचयिष्ये इति पृच्छति, वाच्यतामित्यनुज्ञातो नान्दी-  
मुखान् पितॄन् वाचयिष्ये, इति पृच्छत्यावाहयेत्यनुज्ञातो नान्दी-  
मुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यन्तर्ह्यस्थाने नान्दीमुखाः पितरः  
पितामहाः प्रपितामहा मातरो मातामहाश्च प्रीयन्तामिति, न  
स्वधां प्रयुञ्जीत युग्मानाशयेदिति ।



निगदव्याख्यातमेतत् ।

श्रीमार्कण्डेय पुराणे ।

नान्दोमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियां ।

प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित् प्रजायते ॥

अथ मधुपर्कः ।

आह जावालः । वैवाह्यमृत्विजश्चैव श्रोत्रियं गृहमागतम् ।

अर्हयेन्मधुपर्केण स्नातकं गृहमेववा ॥

विश्वामित्रः । संपूज्य मधुपर्केण ऋत्विजः कर्म कारयेत् ।

अपूज्यकारयेत् कर्म किन्विषेणैव युज्यते ॥

तद्विधिस्तु कालायनसूत्रे ।

षडर्ध्या भवन्त्याचार्या ऋत्विग्वैवाह्या राजा प्रियः स्नातक इति प्रतिसंवत्सरानर्हयेयुर्यज्ञमाना ऋत्विजः ॥

आसनमाहार्याह । साधुभावानास्तां अर्चयिष्यामोभवन्त मित्याहरन्ति विष्टरं पादं पादार्घ्यमुदकमर्घमाचमनीयं मधुपर्क दधि-मधु-घृतमपिहितं कांस्ये कांस्येनान्यस्त्रिस्त्रिः प्राह विष्टरादीनि विष्टरं प्रतिगृह्णाति वर्षोस्मि समानामुद्यतामसूर्यः ॥

इमन्तमभितिष्ठामि यो माकश्चाभिदा सतीत्येनमभ्युपवि-  
शति पादयोरन्यं विष्टर आसीनाय सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं  
प्रक्षालयति ब्राह्मणश्चेद्दक्षिणं प्रथमं विराजो दीहसि विराजो  
दीहमशीयमयि पादायै विराजो दीह इत्यर्घ्यं प्रतिगृह्णात्या-  
पश्य युष्माभिः सर्वान् कामानवाप्त्वानीति निनयन्नभिमन्त्रयते  
समुद्रं वः प्रहिणोमि स्वां योनिमभिगच्छत ।

अरिष्टा अस्माकं वीराणां मापरा सेचि मत्पथ इत्याचामत्यामागन्य-

सासमीयसा सृजवर्चसा तं मां कुरुप्रियं प्रजानामधिपतिं पशू-  
नामरिष्टिं तनूनामितिमित्रस्यत्वेति मधुपर्कं प्रतीक्षते देवस्यत्वेति  
प्रतिगृह्णातित् । सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणस्यानामिकया त्रिः  
प्रयौति नमः स्यावास्यावान्यशनेया विद्मं तत्ते निष्क्रान्तामीत्य-  
नामिकाङ्गुष्ठेन च त्रिर्निरुक्षयति तस्य त्रिः प्राश्नानि यन्मधुनो  
मधव्यं परमं श्रीं रूपमन्नाद्यन्तेनाहं मधुनो मधव्येन परमेण रूपे-  
णान्नाद्येन परमो मधव्योन्नादोऽसानीति मधुमतीभिर्वा प्रत्याचं  
पुत्रायान्ते वासिनोवान्तरत आसीनायीच्छिष्टं दद्यात् सर्व्वं वा  
प्राश्नीयात् प्राग्वा सञ्चरेति नयेदाचम्य प्राणान् संमृशति वाङ्म  
आस्येनसोः प्राणोच्योश्चक्षुः कर्णयोः श्रोत्रं वाह्वीर्वलमूर्ध्वीं रोजी  
रिष्टानि मेङ्गानि तनुस्तत्वामि सहेत्याचान्तोदकाय शसेमा दाय-  
गौरिति त्रिः प्राह प्रत्याह माता रुद्राणां दुहितावसूनात् ।  
स्वसापानाममृतस्य नाभिः प्रनुवोचं चिकितुषे जनाय भागामना-  
गामदिति वधिष्ठेति मम चामुष्य पाप्मानत् । हतोमीति यद्या-  
लभैताव्ययद्युत्सिसृक्षेन्ममचामुष्य च पाप्माहत मुत्सृजत तृणान्य-  
त्त्विति ब्रूयान्नत्वेवामात् । सौर्धः स्याद्वधियज्ञमधिविवाहं कुरु-  
तेत्येव ब्रूयाद्यद्यप्यसक्तत्संवत्सरस्य सोमे न यजेत कृतार्घ्या एवैनं  
याजयेयुर्नाकृतार्घ्या इति श्रुतेः । अस्यार्थः । आसनमाहार्येत्यन्तं  
सुवीधाः । साधुभवानित्यादिमर्घ्यप्रत्यक्षेषणं । आहरन्त्यर्घ्यं पितृ-  
सम्बन्धि पुरुषाभिप्रायेण बहुवचनं । विष्टरोच्छिन्नायपञ्चविंशति-  
कुशपत्रकृतः ।

तथा च परिशिष्टे । कतिभिस्तु भवेद्ब्रह्मा कतिभिर्विष्टरोमतः ।

पञ्चाषड्भिर्भवेद्ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः ॥

जर्घकेशो भवेद्ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः ।

दक्षिणावर्त्तको ब्रह्मा वामावर्त्तस्तु विष्टरः ॥

प्रथमो विष्टर उपवेशनार्थम् ।

पाद्यमिति, पादार्घ्यं द्वितीयं विष्टरम् ।

पादार्घ्यमुदकं सुखीष्णं । अर्घ्यो व्याख्यातः ।

आचमनीयं उदकमेव 'मधुपर्क', दधि-मधु-घृतं कांस्य  
भाजने तेनैवा पिहितम् । अर्घ्यार्घ्यपितृव्यतिरिक्तोन्यएव विष्टरा-  
दीनि त्रिस्त्रिः प्राह, विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यतामित्येवं ॥  
अर्घ्यस्तु तुष्णीमेव विष्टरं प्रतिगृह्य वर्षीस्मीति मन्त्रेण ततो-  
पविशति ॥

'पादयोरन्यमिति, पादार्घ्येण बाध्यते ।

ततश्च पादप्रक्षालनानन्तरं द्वितीयविष्टरदानं । तथा-  
चोत्तरसूत्रे विष्टर आसीनाय सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं  
प्रक्षालयतीति, एकस्मिन् विष्टर आसीनस्य पादप्रक्षालन-  
मुपदिशते । ब्राह्मणश्चेदर्घ्यो भवति तदा दक्षिणपादं प्रथमं  
प्रक्षालयेत् । विराजो दीहोसीति मन्त्रेण जलं गृहीत्वा प्रक्षालय-  
त्यर्घ्यं एव, आपस्थइति मन्त्रेण अर्घ्यं प्रतिगृह्णाति, अर्घ्योदकं  
निनयत् समुद्रं व इति जपति, आचामयन्निति मन्त्रेणाचमति  
मित्रस्यस्वेति मन्त्रेण, मधुपर्कमीक्षते देवस्यस्वेति मन्त्रेण मधुपर्कं  
प्रतिगृह्णाति । सर्वेषु वैतेषु त्रिस्त्रिरेतानि द्रव्याण्यभिधाय  
प्रतिगृह्यतामित्यर्थमाहान्यः ।

अथार्घ्यं मधुपर्कपात्रं सव्ये पाणी कृत्वा दक्षिणस्यानामि  
कया नमःस्यावेति मन्त्रेण मधुपर्कं त्रिः प्रयौति, मिश्रयतीत्यर्थः ।

अनामिकाङ्गुष्ठेन च तूष्णीं त्रिर्निरुक्षति निषिञ्चतीत्यर्थः ।  
च शब्दात् प्रयौति च । अतश्च प्रतियुवनं, निरुक्षणं एवञ्च निरु-  
क्षणाव्यवधानात् समन्वकं त्रिः प्रयुवनं विधेयमिति सिद्धति ।

यन्मधुन इति मधुमतीभिर्वा मधुपर्कं त्रिः प्राश्नीयात् ॥

मधुपर्कं च सोमे च नोच्छिष्टो भवतीति स्मरणात्, उच्छिष्ट  
स्यैव मन्त्रपाठः । अथाचम्य वाङ्मनास्य इत्यादिभिर्मेनैः प्राणा-  
यतनानि संस्पृशन् अत्र साकाङ्गत्वादस्तीत्यध्याहारः ।

स इति च सर्व्वचानुषङ्गः ।

अरिष्टानि मेङ्गानि तनुरित्यत्र, सन्वित्यध्याहारः । आचान्तो-  
दकाय शासमादाय गौरिति त्रिः प्राहेति, आचान्तोदकग्रहणात्  
पुनराचमनमतिकेचित् । अपरेत्वाहुः । आचान्तमुदकं येन  
स आचान्तोदकः तदर्थं शस्त्रादानमिति तादर्थ्यं च पश्चालं  
भस्य तदर्थत्वात् एतच्चाध्यर्ककर्त्तव्यम् ।

ततो माता रुद्राणामिति मन्त्रं अर्घ्यः प्रतिब्रूयात् ।

अमुथेति चार्घ्ययितुर्नाम ग्रहणं, यद्यालभेत पाप्मानं घातया-  
मीतिप्रयोगः । अथ यद्युत्सिष्टेनमचामुथ च पाप्माहतमुत्-  
सृजत तृणान्यत्विति ब्रूयात् ।

अत्रार्घ्ययितुर्नामादेशः ।

ओमुत्सृजत तृणान्यत्तीति ब्रूयादिति, निगदीयं ।

नत्वेवामाप् सोर्घस्त्रादधियज्ञमधिवाहङ्कुरुते इत्येवं ब्रूयात्  
शेषं सुगमम् ।

अथ पुण्याहवाचनं । आह वेदव्यासः ।

सम्पूज्य गन्धमान्याद्यैर्ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् ।

धर्मकर्मणि माङ्गल्ये संग्रामाद्भूतदर्शने ॥

यमः । पुण्याहवाचनं देवे ब्राह्मणस्य विधीयते ।

एतदेव निरोद्धारं कुर्यात् क्षत्रियवैश्ययोः ॥

कश्यपः । लोके भूतिकर्मसु वै तदादीन्येव वाक्यानि स्युर्यथा  
पुण्याहं सुसमृद्धमिति ।

भूतिकर्मसु, सम्पत्करकर्मसु, स्वस्तिवाचनादिष्विति यावत् ।

‘एतदादीनि, प्रणवादीनि ।

पुण्याहवाचनमुक्तं बहुचपरिशिष्टे ।

अवनिहृतजानुमण्डलंकमलमुकुलसदृशमञ्जलिं शिरस्याधाय,  
दक्षिणेन पाणिना सुवर्णपूर्णकलशं धारयित्वा, दीर्घा\*नागा-  
नद्योगिरयस्त्रीणि विष्णुपदानि च तेन आयुःप्रमाणेन पुण्याहं  
दीर्घमायुरस्तु, शिवा आपः सन्तु, सौमनस्यमस्तु, अक्षतञ्चाष्टि-  
चास्तु, गन्धाः पान्तु, माङ्गल्यञ्चास्तु, पुष्पाणि पान्तु, सत्रियमस्तु,  
अक्षतानि पान्तु, आयुष्मस्तु, तांबूलानि, पान्तु, ऐश्वर्यमस्तुदक्षिणाः  
पान्तु, आरोग्यमस्तु, दीर्घमायुः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः चौर्यशो विद्या  
विनयो वित्तं बहुपुत्रञ्चायुष्मञ्चास्तु, यं कृत्वा सर्ववेदोवन्नक्रिया  
करणकर्मारम्भाः शुभाः शोभनाः प्रवर्तन्ते, तमहमोद्धारमादिं कृत्वा  
ऋग्यजुःसामाशीर्वचनं बहुऋषिमतं समनुज्ञातभवद्भिरनुज्ञातः  
पुण्यं, पुण्याहं वाचयिष्ये, वाच्यतां द्रविणीदा द्रविणमस्तु, अस्य  
सवितापश्चातान्नवोनवो भवति, जायमानोच्चा दिवि दक्षिणावन्तो  
असुरित्येता ऋचः पुण्याहे ब्रूयात्, व्रतनियमतपःस्वाध्यायशत्रु-  
दमदानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयतां,

समाहितमनसःस्मः । प्रसीदन्तु भवन्तः प्रसन्नाःस्मः शान्तिरस्तु  
पुष्टिरस्तु, तुष्टिरस्तु, वृद्धिरस्तु, अविघ्नमस्तु, आयुष्यमस्तु, आरोग्य-  
मस्तु, शिवङ्गर्मास्तु, कर्मसिद्धिरस्तु, पुत्रसमृद्धिरस्तु, धनधान्य-  
समृद्धिरस्तु, द्रष्टव्यमस्तु, अनिष्टनिरसनमस्तु, यत्पापं तत् प्रति-  
हतमस्तु, यच्छ्रेयस्तदस्तु, उत्तरे कर्मण्यविघ्नमस्तु, उत्तरोत्तरमह-  
रहरभिवृद्धिरस्तु, उत्तरोत्तरक्रियाः शुभाः सम्पद्यन्तां, तिथि-  
करण-मुहूर्त्त-नक्षत्रसम्पदस्तु, तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रग्रहल-  
ग्नाधिदेवताः प्रीयन्तां, तिथिकरणे मुहूर्त्ते नक्षत्रे सग्रहे देवते  
प्रीयेतां, दुर्मापाञ्चाल्यौ प्रीयेतां, अग्निपुरोगाविश्वेदेवाः प्रीयन्तां,  
इन्द्रपुरोगा मरुद्गणाः प्रीयन्तां, वसिष्ठपुरोगा ऋषिगणाः प्रीयन्तां,  
महेश्वरपुरोगा उमा मातरः प्रीयन्तां, अरुन्धतीपुरोगा एकपद्मः  
प्रीयन्तां, विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्तां, ब्रह्मपुरोगाः सर्व-  
वेदाः प्रीयन्तां ।

ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्तां, सरस्वत्यः प्रीयन्तां, अज्ञा-मेधे  
प्रीयेतां, भगवती कात्यायनी प्रीयतां, भगवती माहेश्वरी प्रीयतां,  
भगवती ऋद्धिकरी प्रीयतां, भगवती वृद्धिकरी प्रीयतां, भगवती  
पुष्टिकरी प्रीयतां, भगवती तुष्टिकरी प्रीयतां, भगवन्तौ विघ्न-  
विनायकौ प्रीयेतां सर्वाः कुलदेवताः प्रीयन्तां सर्वाः ग्रामदेवताः  
प्रीयन्तां, हताश्च ब्रह्मद्विषः,

हता विद्विषः, हताः परिपन्थिनः, हताश्च विघ्नकर्त्तारः, हता-  
श्च विघ्नकराः, शत्रवः पराभवं यान्तु, शाम्यन्तु घोरानि, शाम्यन्तु  
पापानि, शाम्यन्तु ईतयः शुभानि वर्द्धन्तां, शिवा आपः सन्तु शिवा  
ऋतवः सन्तु, शिवा अग्नयः सन्तु, शिवा आहुतयः सन्तु, शिवा वन-

सप्तयः सन्तु, शिवा आपः सन्तु, अहोरात्रे शिवे स्यातां निकामे,  
निकामे, नः पर्यन्तो वर्षतु । फलवत्योन ओषधयः पच्यतां योग-  
क्षेमो नः कल्पतां, शुक्रा-ङ्गारक-बुध-बृहस्पति-शनैश्चर-राहुकेतु-  
सोमसहिता आदित्यपुरोगाः सर्वे ग्रहाः प्रीयन्तां, भगवान् नारा-  
यणः प्रीयतां, भगवान् पर्जन्यः प्रीयतां, भगवान् स्वामी महासेनः,  
प्रीयतां पुण्याहकालं वाचयिष्ये, वाच्यतां उद्गातेव शकुने सामगा-  
यसि याज्यया यजति यत्पुण्यं नक्षत्रं तद्भदकुवीतोपव्यूषं यदा वै  
सूर्य उदेति अध नक्षत्रं नैति यावति तत्र सूर्यो गच्छेत् यत्र जघन्यं  
पश्येत्तावत् कुर्वीत यत्कारी स्यात्पुण्याह एवं कुरुते तानि यानि  
एतानि यमनक्षत्राणि यान्येव देवनक्षत्राणि तेषु कुर्वीत यत्कारी-  
स्यात् पुण्याह एवं कुरुते पुण्याहं भवन्तो ब्रूवन्तु औम् पुण्याहं  
स्वस्तये वायुमुपब्रुवामहे आदित्य उदितोय, स्वस्तिन इन्द्रो  
बृहस्पतिः स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः  
स्वस्ति नो बृहस्पति र्दधातु ।

अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः चतस्रो देव्योरजसा अविष्टाः  
ते यज्ञं पान्तु रजसः पुरस्तात् संवत्सरीणममृतं स्वस्ति ।

स्वस्ति भवन्तो ब्रूवन्तु ।

आयुष्मते स्वस्ति ऋद्ध्यामस्तोमं सर्वामृद्धिमृद्ध्यास्त हव्यैर्नम-  
सोपसद्यमित्रं देवं मित्रधेयन्त्रोऽसु अनुराधान हविषा बर्हयन्तः शतं  
जीवेम शरदः सनीलास्त्रोणि त्रीणि वैदेवानामृद्ध्यानि त्रीणि कृ-  
न्दांसि त्रीणि सवनानि त्वय इमे लोकासद्वयमेव तद्दीर्य एषु लोकेषु  
प्रतितिष्ठति ऋद्धिं भवन्तो ब्रूवन्तु ऋद्ध्यातां श्रिये जातः श्रिय एत्विनं  
यस्मिन् ब्रह्माध्यजयत् सर्वमेतदमुञ्च लोकमिदमूच सर्वन्तन्नोन-

दानखण्डं ३ अध्यायः ] हेमाद्रिः ।

१४८

क्षत्रमभिजिद्विजित्यश्रियं दधात्वर्णयमान अदबुधौयमन्त्रं मे  
गोपाय यमृषयस्त्रयीविदो विदुः यजुः ऋचः सामानि यजूंषि सा  
हि श्रीरमृतायतां श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु अस्तु श्रीः पुण्याह  
समृद्धिरस्तु भगवान् प्रजापतिः प्रीयताम् ।

इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीमहादेवस्य समस्तकर-

णाधीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते

चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे

परिभाषा प्रकरणम् ।

---



## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ दानफलानि ।

आचारैः सृहणीयतां गमयता जन्म द्विजन्मान्वये  
कीर्त्तैः सर्वपथीनतां रचयता तैस्तैर्गुणानां गणैः ।  
तत् किञ्चित् परमं महः कलयता मीमांसया कृन्दसां  
येनोच्चैःफलदायिदानमहिमन्यात्मेव दृष्टान्वते ॥  
यो हेमाद्रिः शिवं स्तौति सर्व्वदानागमोदितम् ।  
सोऽथ दानफलं प्राह सर्व्वदानागमोदितम् ॥

तत्र सामवेदोपनिषदि ।

दानेन सर्व्वान् कामानवाप्नोति, चिरजीवित्वं प्रह्लाचारौ  
रूपवानहिंस्र उपपद्यते, स्वर्गं पर्णाशनात्\* दिविचरः पदो भक्ष-  
स्थान-वीरासनाद्वित्तवान्-पितृ-मातृ-गुरु-शुश्रूषाध्यानवान् स्वर्गीयः  
काञ्चनदानेनेति ।

आह भगवान् ऋग्वेदः ।

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण, हिर-  
ण्यदा अमृतत्वं भजन्ते, वासोदाः सोम प्रतिरन्त आयुरिति ।  
हारीतः । आपोददत् तृषमभिजयत्यात्मानं च निष्क्रीणाति ।

अन्नदानादसून् निष्क्रीणाति अन्नवानन्नादोऽन्नपतिश्च भवति ।

वस्त्रदानाद्वचोनिष्क्रीणाति सुरूपोऽनग्नो वस्त्रभाक् भवति, हिरण्यप्रदानात्तेजो निःक्रीणाति सुतेजाः श्रीमान् हिरण्यभाग्भवति, गोप्रदानाद्वाचो निष्क्रीणाति, सुवाग्दिपाप्मा गोभाक् च भवति, अनडुत्प्रदानात् प्राणान्निष्क्रीणात्यरोगो बलवान् धुर्य्-भाक् च भवति, रथप्रदानाच्छरीरन्निष्क्रीणाति मृत्युविविध-विमानभाग्भवति, शय्याप्रदानात् सुखं निष्क्रीणाति यानशयना-सनविविधसुखश्रीभाग्भवति अपरिमितप्रदानादपरिमितयोषं-पुष्पाति अपरिमितान् कामानवाप्नोति ।

तद्विविधं भवति अविज्ञातदानं च विज्ञातदानञ्च,

यदविज्ञातविदुषे तदविज्ञातं दानम्, अथ यद्विज्ञातविदुषे सत्रह्यचारिणे वैश्वानरमाददानाय, यद्ददाति प्रतिगृह्णाति च, तद्विज्ञातदानं, तदप्येतद्यजुष्युक्तं, (इदं कस्मा अदादिति) ।

आत्मानं निष्क्रीणाति, आत्मानमेव ददातीत्यर्थः ।

अनेन प्रकारेण जलादिदानमेव स्तूयते ।

विष्णुः । तैजसानां पात्राणां प्रदानेन पात्री भवति कामानां ।

मधु-ष्टत-तैलदानेनारोग्यं औषधप्रदानेन च, लवणप्रदानेन 'लावण्यं, धान्यप्रदानेन तुष्टिः, सस्यदानेन च तथा, इन्धनप्रदानेन दीप्ताग्निर्भवति, संग्रामे सज्जयमाप्नोति, आसनदानेन स्थानं, शय्यादानेन भार्यां, उपानत्प्रदानेनाश्वतरीयुतं रथं, क्षेत्रप्रदा-नेन स्वर्गं, तालवृन्त-चामरप्रदानेनादुःस्वित्त्वं, पुष्पप्रदानेन ज्याग्रान् भवति, अनुलेपनप्रदानेन कीर्त्तिमान् भवति ।

आह मनुः । वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।

तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपद-श्चक्षुरुत्तमम् ॥

भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।

गृहदोग्राणि वेश्मानि रूप्यदीरूपमुत्तमम् ॥

वासोदञ्चन्द्रसालोक्य-मश्विसालोक्य-मश्वदः ।

अनङ्गदः श्रियं पुष्टां गोदीव्रधस्य विष्टपम् ॥

यानशय्याप्रदो भार्या-मैश्वर्यमभयप्रदः ।

धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥

‘ब्रह्मसार्ष्टितां’ ब्रह्मसमानगतित्वम् ।

याज्ञवल्क्यः । भूदीपाश्वान्नवस्त्रान्धस्तिल-सर्पिः-प्रतिश्रयान् ।

नैवेशिकस्वर्णधुर्यान् दत्त्वा स्वर्गं महीयते ॥

गृहधान्याभयोपानकृत्तमाल्यानुलेपनम् ।

यानं वृत्तं श्रियं शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥

‘प्रतिश्रयः’ प्रवासिनामाश्रयः ।

‘नैवेशिकं, विवाहप्रयोजनकं द्रव्यम्

तथा । श्रान्तसम्बाहनं रोगि परिचर्यां सुरार्चनम् ।

पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदासमम् ॥

यमः । दत्त्वा प्रतिश्रयं लोके तथादत्त्वैवचाभयम् ।

तथा दत्त्वा क्षितिं विप्रे ब्रह्मलोके महीयते ॥

कृत्तदोगृहमाप्नोति गृहदो नगरन्तथा ।

तथोपानत्प्रदानेन रथमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥

इत्यनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्भुवि जायते ।

गवां ग्रास-प्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

रुक्मदः सर्वमाप्नोति रूप्यदो रूपमुत्तमम् ।  
वासोदञ्चन्द्रसालीक्यं सूर्यसालीक्यमश्वदः ॥  
राजोपकरणं दत्त्वा रत्नानि विविधानि च ।  
नगरञ्च तथा दत्त्वा राजा भवति भूतले ॥

तथा । देवमाल्यापनयनं देवागारसमूहनम् ।  
अर्चनञ्चैव विप्राणां द्विजोच्छिष्टापकर्षणम् ॥  
पादशौचप्रदानञ्च प्रकल्प्य परिचारणम् ।  
पादाभ्यङ्गप्रदानञ्च श्रान्तसम्बाहनन्तथा ॥  
गवां कण्डूयनञ्चैव ग्रासदानाभिवन्दने ।  
भिक्षादीपप्रदानञ्च तथैवातिथिपूजनम् ॥  
एकैकस्य फलं प्राह गोप्रदानसमं यमः ।  
यस्तु सम्भृत्य सम्भारं ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥  
तस्य पुण्यकृतान् लोकान् न वक्तुं प्रभवाम्यहम् ॥

‘सम्भारो’ यज्ञ-विवाहाद्युपकरणद्रव्यम् ।  
फलमूलानि पानानि शाकानि विविधानि च ।  
यानानि दत्त्वा विप्रेभ्यो मुदायुक्तः सदा भवेत् ॥

तथा । धान्योदकप्रदायी च सार्थिर्दःसुखमश्नुते ।  
विप्रेभ्यः पादुके दद्याद्दयनान्यासनानि च ॥  
विविधानि च दानानि दत्त्वा च नृपतिर्भवेत् ।

तथा । अन्नदस्तु भवेच्छीमान् सुदृष्टः कौर्त्तिमानपि ॥  
तैलमामलकं यच्छन् पादाभ्यङ्गन्तथैव च ।  
नरः सुदृष्टस्तेजस्वी सुखवाञ्छैव जायते ॥

तथा । मृत्तिकां गोशकटहर्मानुपवीतं तथोत्तरम् ।  
 दत्त्वा गुणवते विप्रे कुले जायेत चोत्तमे ॥  
 सुखवासन्तु योदद्यादन्तधावनमेवच ।  
 शुचिः स्यात्सुभगोवाग्मी सुखीचैव सदा भवेत् ॥  
 पादशौचन्तथा यानं शौचञ्च गुदलिङ्गयोः ।  
 यः प्रयच्छति विप्राय शुचिः शुद्धः सदा भवेत् ॥  
 गन्धौषधमथाभ्यङ्गं माक्षिकं लवणं तथा ।  
 यः प्रयच्छति विप्राय सौभाग्यं सतु विन्दति ॥  
 अत्रिः । दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ।  
 पानीयदस्त्वरण्ये च ब्रह्मलोके महीयते ॥  
 देवलः । आन्तायान्नप्रदः स्वर्गं विमानेनाधिरोहति ।  
 प्राप्नोति दशगोदानफलं\* रोगिप्रतिक्रियः ॥  
 प्रक्षाल्य पादौ विप्राय लभेत् गोदानजं फलम् ।  
 चन्दनं तालवृक्षञ्च फलानि कुसुमानि च ।  
 ताम्बूल-मासनं शय्यां दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥  
 कात्यायनः । पादाभ्यङ्गैः शिरोभ्यङ्गैर्दानमानार्चनादिभिः ।  
 मृष्टवाक्यैर्विशेषेण पूजनीया द्विजोत्तमैः ॥  
 वायुपुराणे । चन्दनानां प्रदातारः शङ्खानां मौक्तिकस्य च ।  
 पापकर्तृनपि पितृन् स्तारयन्ति यथाश्रुतिः ॥  
 महाभारते । दासीं दासमलङ्कारं क्षेत्राणि च गृहाणि च ।  
 ब्रह्मदेयां सुतां दत्त्वा स्वर्गमाप्नोत्यसंशयं ॥  
 लभते च शिवस्थानं बलिपुष्पप्रदो नरः ।

---

\* भोगिप्रतिक्रिय इति पाठान्तरम् ।

तथा । धुर्यप्रदानेन गवां तथाश्वैर्लोकानवाप्नोति नरो वसूनाम् ।  
 वज्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं यानं तथापानहसम्प्रदानात् ॥  
 वस्त्रप्रदानेन फलं सूरूपं गन्धप्रदानात् सुरभिर्नरः स्यात् ।  
 भिक्षान्नपानीयरसप्रदाता प्राप्नोति सर्वांश्च रसान् प्रकामान् ॥  
 प्रतिश्रयाच्छादनं सप्रदाता प्राप्नोति तान्येव न संशयोऽत्र ।  
 स्रग्धूपगन्धानुविलेपनानि स्नानानि माल्यानि च मानवीयः ।  
 दद्याद्दिजेभ्यः स भवेदरीगस्तथाभिरूपश्च नरेन्द्रलोके ॥

तथा । चन्दनागुरुधूपांश्च विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति ।  
 ताम्बूलञ्च स्रजञ्चैव स स्वर्गं प्रव्रजेन्नरः ॥  
 तिलान्ददच्च पानीयं दीपमन्नप्रतिश्रयम् ।  
 सतां स्वर्गेषु नामेतत्सूनुतानि वचांसि च ।  
 सान्त्वदः सर्वमाप्नोति सर्वशोकैर्विमुच्यते ॥  
 प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधाञ्च विन्दति ॥

आदित्यपुराणे । धर्मशास्त्रप्रदातारः सत्रदानरताश्च ये ।  
 तीर्थ-तडाग-कूपादि-नौका-सेतु-प्रदाश्च ये ॥  
 स्कन्धेन तारयेद्यस्तु तृषार्त्तानां जलप्रदः ।  
 पक्वान् ददाति केदारान् सफलांश्चैव पादपान् ॥  
 षष्टिकोटि सहस्राणि अर्बुदानां च वै त्वयम् ।  
 क्रीडन्ति ते स्वर्गपुरे एतदुक्तं द्विजोत्तम ॥

तथा । अश्वम्बा यदि वा युग्यं शोभने वाथ पादुके ।  
 ददाति यः प्रदानं वै ब्राह्मणेभ्यः सुसंयतः ॥  
 तस्य दिव्यानि यानानि रथा ध्वजपताकिनः ।  
 दुष्टः पन्था न चैवेह भविष्यति कथञ्चन ॥

अन्न-पाना-श्व-गो-वस्त्र-हस्त-शय्या-सनानि च ।

प्रेतलोके प्रशस्तानि दानान्यष्टौ विशेषतः ॥

लिङ्गपुराणे । वस्त्रं जलं पवित्रं च दत्त्वाथ शिवयोगिनि ।

स महाभोगमाप्नोति अन्ते योगञ्च शाश्वतम् ॥

आसनं शयनं यानं योददाति यशस्विने ।

समं सर्वेषु भूतेषु तस्य दुःखं न विद्यते ॥

कालिकापुराणे । अभ्यङ्गमिन्धनं नीरं शयनासनमेव च ।

दद्याद्गवाह्निकं चैव तमुद्दिश्य दिने दिने ॥

कायिनामन्नदानन्तु तदुद्दिश्य निवेदयेत् ।

अथवा किं प्रलापेन यत् किञ्चित् सुकृतं भुवि ॥

कुर्वन्तत्पदमाप्नोति शिवमुद्दिश्य लीलया ।

देवीपुराणे । द्रव्यं भू-हेम-गो-धान्यन्तिलवस्त्रघृतादिकम् ॥

विधिना चोपवासेन एकान्ननक्तभोजनात् ।

शुचिना भावपूतेन च्यान्था सत्यव्रतादिना ॥

अपि सर्षपमात्रस्य दातारन्तारयेद्दत् ।

आदित्यपुराणे ॥ अथान्नदानाद्भूदानात् प्रीतो भवति केशवः ॥

गुड-क्षीर-घृतैर्वस्त्रैः प्रीतो भवति चन्द्रमाः ।

जलदानाच्च वरुणः सुप्रसन्नो भवेत् सदा ।

रजतेन च दत्तेन प्रीतः स्याच्च महेश्वरः ॥

सुवर्णेन तु दत्तेन वज्रिर्नित्यं प्रसीदति ।

हस्त्यश्वरथयानैश्च मघवानासनैस्तथा ॥

शयनैर्वैश्वभिर्धर्मशूत्रेणोष्णांशुरेव च ।

उपानद्वां यमोगोभिः सौरभेयः कर्पाईनः ॥

पादुकाभ्यां प्रदत्ताभ्यां पद्मयोनिः प्रतुष्यति ।

अलङ्कारैस्तथामान्यैर्जगन्माता च पार्वती ॥

स्कन्दपुराणे । यो गाञ्च महिषीं दद्यात् सालङ्कारां पयस्विनीं ।

कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स कामान् लभते खिलान् ॥

सौरपुराणे । कृष्णाजिनञ्च महिषी मेघी च दशधेनवः ।

ब्रह्मलोकप्रदायिन्यस्तुलापुरुष एव च ॥

वल्गुपुराणे । यानमश्वमनङ्गाहं हेमरूप्यमणींस्तिलान् ।

ये प्रच्छित्तिन्यपापेषु निरताः सर्व्वदा मुने ।

न तेषां भैरवः पत्या कदाचिदपि जायते ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे हंसउवाच ।

नरस्वासनदानेन स्थानं सर्व्वत्र विन्दति ।

सय्यादानेन चाप्नोति भार्यां ब्राह्मणसत्तमाः ॥

दत्त्वा द्विजाय शयनं स्वास्तीर्णं चोत्तरच्छदम् ।

कुले महति संभूतिं रूपद्रविणसंयुताम् ॥

तथापक्षवतीं भार्यां प्राप्नोति वशगां तथा ।

अनेनैव प्रदानेन भार्या पतिमवाप्नुयात् ॥

वितानकप्रदानेन सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।

कृत्रदश्च तथा विप्रा नात्रकार्या विचारणा ॥

कृत्रं शतशलाकञ्च वृष्टेरातपवारणम् ।

सर्व्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गं लोके महीयते ॥

याम्यं मार्गं तथा याति सुखेन द्विजसत्तम ।

उपानहौ तथा दत्त्वा श्लक्ष्णस्नेहसमन्विते ॥

रथमश्वतरीयुक्तं त्रिदित्रं प्रतिपद्यते ।



सर्वपापविनिर्मुक्तोयाम्यं मार्गं सुखं व्रजेत् ॥  
 तालवृन्तप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 तथा चामर दानेन सर्वदुखैर्विमुच्यते ।  
 पादुकानां प्रदानेन गतिमाप्नोति शोभनाम् ॥  
 पादपीठप्रदानेन स्थानं सर्वत्र विन्दति ।  
 स्थानमेव तथाप्नोति दण्डं दत्त्वा द्विजातये ॥  
 यज्ञोपवीतदानेन वस्त्रदानफलं लभेत् ।  
 उष्णीषदानस्य तथा फलमेतदुदाहृतम् ॥  
 दन्तकाष्ठप्रदानेन सौभाग्यं महदाप्नुयात् ।  
 मृत्तिकायाः प्रदानेन शुचिः सर्वत्र जायते ॥  
 शौचस्नानोदकं दत्त्वा विरोगस्त्वभिजायते ।  
 रोगनाशमवाप्नोति तथाभ्यङ्गप्रदः सदा ॥  
 तथैवौषधदानेन रोगनाशमश्नुते ।  
 स्नानीयानि सुगन्धीनि दत्त्वा सौभाग्यमश्नुते ॥  
 अनुलेपनदानेन रूपवानभिजायते ।  
 कायाग्नि-दीप्ति-प्राकाशाङ्गतिं चैव तथोत्तमाम् ॥  
 यस्तु संसाधनार्थाय ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।  
 स याति वङ्गिसालोक्यं शत्रुनाशं च विन्दति ॥  
 तैजसानि तु पात्राणि दत्त्वा सलवणानि च ।  
 तैजसानि तु पात्राणि सतैलानि प्रयच्छतः ॥  
 आरोग्यमुत्तमं प्रीक्तं लावण्यमपि चोत्तमम् ।  
 तथा । समुद्रजानां भाण्डानां शङ्खादीनां प्रदायकः ।  
 पात्री भवति कामानां यशसश्च न संशयः ॥

कङ्कतस्य प्रदानेन परां बाधां प्रमुञ्चति ॥  
 शय्याप्रदानं लोकेषु तथा स्थानकरं परम् ।  
 दत्त्वानुलेपनं मात्स्यं परां लक्ष्मीमुपाश्रुते ॥  
 तथा । नृवाह्यं पुरुषो यस्तु द्विजे सम्यक् प्रयच्छति ।  
 अश्वमेधफलं तस्य कथितं द्विजसत्तमाः ॥  
 शिविकायाः प्रदानेन वज्रिष्टोमफलं भवेत् ।  
 स याति शक्रसालोक्यं यस्तु योधं प्रयच्छति ॥  
 यस्तु कर्मकरीं दासीं ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।  
 लोकास्तु सुलभास्तस्य वसूनां समुदाहृताः ॥  
 तरुणीं रूपसम्पन्नां दासीं यस्तु प्रयच्छति ।  
 सोऽप्सरोभिर्मुदायुक्तः क्रीडते नन्दने वने ॥  
 उष्ट्रस्वा गर्हभस्वापि यः प्रयच्छति तु द्विजाः ।  
 अलकाञ्च समासाद्य यच्चेन्द्रैः सह मोदते ॥  
 दानानामुत्तमं प्रोक्तं प्रदानं तुरगस्य च ।  
 वङ्गवायाः प्रदानन्तु तथा बहुफलं स्मृतम् ।  
 तुरगान् यः प्रयच्छन्ति सूर्यलोकं व्रजन्ति ते ॥  
 यावन्ति तस्य रोमाणि तावद्वर्षशतानि च ।  
 शुक्लान्तरङ्गमन्दत्वा फलं दशगुणं भवेत् ॥  
 गौर्यथा कपिला श्रेष्ठा तथैव तुरगःसितः ।  
 तुरङ्गमं सुपर्वाणं सालङ्कारं प्रयच्छतः ॥  
 पुण्डरीकफलं प्रोक्तं नात्रकार्या विचारणा ।  
 चतुर्भिस्तरगैर्युक्तं सर्वोपकरणैर्युतम् ॥  
 रथं द्विजातये दत्त्वा राजसूयफलं लभेत् ॥

प्रदाय करिणीं सम्यगेतदेव फलं लभेत् ।  
 कुञ्जरस्य प्रदानेन मनुष्यः स्वर्गविद्युतः ॥  
 राजा भवति लोकेऽस्मिन् यशोविक्रमसंयुतः ।  
 सुवर्त्मकत्वं मातङ्गं दत्त्वा विप्राय वै द्विजाः ॥  
 राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं विन्दत्यसंशयम् ।  
 चतुर्भिः कुञ्जरैर्युक्तं रथं दत्त्वा द्विजातये ।  
 समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

तथा । यथोक्तविधिना दद्यात् क्रीत्वा तु कपिलां नरः ।  
 सर्वकामसमृद्धश्च स यज्ञफलमश्नुते ॥  
 गवां लोकमाप्नोति कुलमुद्धरति स्वकम् ।  
 वारुणं लोकमाप्नोति दत्त्वा च महिषीं ततः ॥  
 अलंकृतान्तु तां दत्त्वा गोदानफलमाप्नुयात् ।  
 अजामलं कृतां दत्त्वा वज्रिलोके महीयते ॥  
 तमेव लोकमाप्नोति दत्त्वाजं विधिवन्नरः ।  
 महिषस्य प्रदानेन याम्ये लोके महीयते ॥  
 वारुणं लोकमाप्नोति दत्त्वा रत्नं नृपोत्तम ।  
 घृष्टिप्रदानाच्च तथा तदेव फलमश्नुते ॥  
 आरण्यपशुदानेन बायुलोके महीयते ।  
 एतदेवफलं प्रोक्तं प्रदानेन च पक्षिणाम् ॥

ब्रह्माण्डपुराणे । लोके अष्टतमं सर्वमात्मनश्चापि यत्प्रियं ।  
 सर्वं पितॄणां दातव्यं तेषां मेवाक्षयार्थिना ॥  
 जाम्बूनदमयन्दिव्यं विमानं सूर्यसन्निभं ।  
 दिव्याप्सरोभिः सम्पूर्णमन्नदी लभते क्षयम् ॥

आच्छादनन्तु योदद्यादहतं आहकर्मणि ।  
 आयुःप्रकाशमैश्वर्यं रूपञ्च लभते शुभम् ॥  
 यज्ञीपवीतं योदद्यात् पादुके आहकर्मणि ।  
 शोभनं लभते यानं पादयोः सुखमेव च ॥  
 व्यजनन्तालवृन्तञ्च दत्त्वा विप्राय सत्कृतम् ।  
 प्राप्नुयात्तत्पसंयुक्तं शयनीयं सुखावहम् ॥  
 आङ्घ्रिषूपानहौ दत्त्वा ब्राह्मणेषु सदा भुवि ।  
 दिव्यं स लभते चक्षुर्व्राजियुक्तं रथं तथा ॥  
 येष्ठञ्छत्रञ्च विमलं पुष्पमालाविभूषितम् ।  
 प्रासादस्तूतमो भूत्वा गच्छन्तमनुगच्छति ॥  
 शरणं रत्नसम्पूर्णं सशय्यासनभाजनम् ।  
 आङ्घ्रि दत्त्वा पितृभ्यस्तु नाकपृष्ठे महीयते ॥  
 मुक्ता-वैदूर्यवासांसि रत्नानि विविधानि च ।  
 लवणानां सुपूष्पानि आङ्घ्रि पात्राणि यो ददेत् ।  
 रसास्तमनुतिष्ठन्ति आयुः सौभाग्य मेव च ॥  
 पात्रं वै तैजसं दत्त्वा मनोज्ञं आहकर्मणि ।  
 पात्रं भवति कामानां विद्यानाञ्च धनस्य च ॥  
 राजतं काञ्चनञ्चैव दद्याच्छाङ्घ्रि तु कर्मणि ।  
 प्रभूतं लभते दाता प्राकाम्यां धनमेव च ॥  
 धेनुं आङ्घ्रिषु योदद्याद्दृष्टिं कुम्भोपदोहनाम् ।  
 गावस्तमनुतिष्ठन्ति गवां पुष्टिस्तथैव च ॥  
 गन्धवन्ति विचित्राणि स्नानानि सुरभीणि च ।  
 पूजयित्वा तु पात्राणि आङ्घ्रि सत्कृत्य दापयेत् ॥

गन्धवद्वा महानद्यः सुखानि विविधानि च ।  
 दातारमुपतिष्ठन्ति पुनन्त्यश्चपतिव्रताः ॥  
 शयना-सन-यानानिभूमयो वाहनानि च ।  
 दातारमुपतिष्ठन्ति तथा स्वर्गे महीयते ।  
 आङ्घ्रिष्वेतानि योदद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥  
 सर्पिःपूष्पानि पात्राणि आङ्घ्रि सत्कृत्य दापयेत् ।  
 कुम्भदोहनक्षीराणां सहस्रं लभते गवाम् ।  
 रम्यानावसथान् दत्त्वा राजसूयफलार्द्धभाक् ॥  
 तथाभरणसम्पूर्णां सोपधानां खलङ्कृताम् ।  
 शय्याञ्च विविधां दत्त्वा द्विजोऽग्निष्टोमभाग्भवेत् ॥  
 दासीं दासञ्च विविधं तथैवोद्गमजाविकम् ।  
 हस्त्य-श्व-रथ-यानञ्च आङ्घ्रिकर्मणि नित्यशः ।  
 तिलांश्च विविधान् दत्त्वा लभते फलमक्षयम् ॥  
 पितृकर्मणि युक्तस्तु शालिशोभनपुण्यकृत् ।  
 घनपुष्पं फलोपेतं दत्त्वा शोभनमश्नुते ॥  
 कृपा-राम-तडागानि क्षेत्र-योष-गृहाणि च ।  
 दत्त्वा तु मोदते स्वर्गे नित्यमाचन्द्रतारकम् ॥  
 स्वास्तीर्णं शयनं दत्त्वा आङ्घ्रि रत्नविभूषितम् ।  
 पितरस्तस्य तुष्यन्ति स्वर्गे चानन्त्यमश्नुते ॥  
 पदकौशेयपत्रोर्णं तथा प्रच्छादकञ्चलम् ।  
 अजिनं रौरवपदं पावनं मृगरौमजम् ॥  
 दत्त्वा चैतानि विप्रेभ्यो भोजयित्वा यथाविधि ।  
 प्राप्नोति अद्धानस्तु, हयमेधस्य यत् फलम् ॥

कौशेय-क्षौममार्गञ्च दुकूलमहतं तथा ।  
 अङ्घ्रिष्वेतानि यो दद्यात् कामान् प्राप्नोत्यनुत्तमान् ॥  
 पक्वान्नानि करम्भञ्च मिष्टान्न-वृतशर्कराः ।  
 कशरा मधुपर्कञ्च पयः पायसमेव च ।  
 स्निग्धमुष्णञ्च यो दद्याज्ज्योतिष्टोम फलं लभेत् ॥

ब्रह्माभारते । वस्त्राभरणदातारो भक्तपानान्नदास्तथा ।

कुटुम्बान्नप्रदातारः पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥  
 सहस्रपरिवेष्टारः तथैव च सहस्रदाः ।  
 चातारश्च सहस्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
 सुवर्णस्य च दातारो गवाञ्च भरतर्षभ ।  
 यानानाञ्च प्रदातारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
 वैवाहिकानां प्रेङ्गाणां प्रेक्ष्याणाञ्च युधिष्ठिर ।  
 दातारो वाससाञ्चैव पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥  
 विहारा-वसथो-द्यान-कूपा-राम-सद-प्रदाः ।  
 प्रपाणाञ्चैव कर्त्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
 नयेत् पातात्तथा बाधाहारिद्राक्ष्याधिधर्षणात् ।  
 यत्कृते प्रतिमुच्यन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
 शुश्रूषाभिस्तपोभिश्च कृतमादाय भारत ।  
 ये प्रतिग्रहनिस्त्रेहास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
 सर्वहिंसानिवृत्ताश्च नराः सर्वसहाश्च ये ।  
 सर्वस्याययभूताश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥  
 आदराश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च भारत ।  
 ये वै जितेन्द्रिया धीरा स्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

नारसिंहपुराणे । एकविंशत्यमौ स्वर्गो निविष्टा मेरुमूर्धनि ।

अहिंमादानकर्त्तारो यज्ञानां तपसां तथा ।

एतेषु निवसन्ति स्म जनाः क्रोधविवर्जिताः ॥

एकविंशतिस्वर्गा अनन्तरमेव वक्ष्यमाणा आनन्दप्रभृतयः ।

जलप्रवेशो चानन्दं प्रमोदं वक्त्रिसाहसि\* ।

भृगुप्रपाते सौख्यं रणे चैवातिनिर्मलम् ॥

अनशने चायं सन्यासे मृतो गच्छेत्त्रिपिष्टपम् ।

क्रतुयाजौ नाकपृष्ठमग्निहोत्रौ च निर्वृतिम् ॥

‘क्रतुयाजौ, सोमयागकर्त्ता ।

तडाग-कूपकर्त्ता च लभते पौष्टिकं द्विज ।

सुवर्णदायी सौभाग्यं लभते स्वर्माहातपाः ॥

शीतकाले महावह्निं प्रज्वालयति योनरः ।

सर्वसत्वहितार्थाय स स्वर्गञ्चाप्सरं लभेत् ॥

हिरण्य-गो-भूदानेन निरहङ्कारमाप्नुयात् ।

भूदानेन तु शुद्धेन लभते शान्तिकं पदम् ॥

गोप्रदानेन स्वर्गन्तुं निर्मलं लभते नरः ।

अश्वदानेन पुण्याहं कन्यादानेन मङ्गलम् ॥

द्विजेभ्यस्तर्पणं कृत्वा दत्त्वा वस्त्राणि भक्तितः ।

श्वेतन्तु लभते स्वर्गं यत्र गत्वा न शोचति ॥

कपिला गो प्रदानेन परमार्थं महोयते ॥

एकान्नभोजी यो मर्त्या नक्तभोजी च नित्यशः ।

उपवासी त्रिरात्राद्यैरन्ते स्वर्गसुखं लभेत् ॥

‘एकान्नभोजी, एकभक्तव्रतः ।

सरित्स्नायी जितक्रोधो ब्रह्मचारौ वृद्धव्रतः ।

निर्मलं सुखमाप्नोति तथा भूतहिते रतः ॥

विद्यादानेन मेधावी निरहंकारमाप्नुयात् ॥

ब्रह्मपुराणे । कर्पूरा-गुरु-कस्तूरी-चन्दनानि द्विजातये ।

दत्त्वा सम्यग्वाप्नोति भोगमप्सरसां शुभम् ॥

रत्नालङ्कार-वासांसि शयनासनभाजनम् ।

बहुभाग्यः सुखी चैव प्रदत्त्वा जायते नरः ॥

यो ददाति महासत्त्वतुरङ्ग-रथ-दन्तिनः ।

स विमानवरारूढः प्रजापतिपुरं व्रजेत् ॥

उष्ट्रो-रम्भा-ज-महिषीं यो ददाति महायशः ।

स नैव नरके वासमासादयति जातुचित् ॥

नारसिंहपुराणे ।

यस्तु सर्वाणि दानानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।

स प्राप्य न निवर्त्तेत देवं शान्तमनामयम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

किंस्वित्स्वकैः पूजनैर्ब्राह्मणानां लोकङ्गत्वा ब्राह्मणं ब्राह्मणेन्द्राः ।

देवैर्विप्रैः पूज्यमानः सुखी स्यात्तस्माद्देयं प्रार्थितं ब्राह्मणेभ्यः ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-

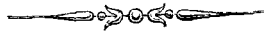
धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते

चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे

दानफलप्रकरणम् ॥



## पञ्चमोऽध्यायः ।



अथ दानानि प्रतिपाद्यन्ते ।

तत्र प्रथमं विशिष्टतया तुलापुरुषादिषोडशमहादानानि ।  
जाताः सन्ति पुरा भवन्ति बहवो ये दानशीलान् नरा ।  
स्तान् कल्पद्रुमकामधेनुतुलया स्तोतुं समर्था जनाः ।  
तां धेनुमपि तद्रुमभ्रुविमहादानच्छलाद्यच्छतः ।  
हेमाद्रेरुपमानवस्तानि पुनः पुष्पाति तूष्णीं न कः ॥

तुला पुरुषमुख्यनामपि येन सहासहा ।

तुलापुरुषमुख्यानां दानानां विधिमाह सः ॥

तत्र तुलापुरुषदानं तावदभिधीयते ।

मत्स्यपुराणे सूतउवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानानुकीर्तनम् ।

दानधर्म्मपि यत् प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥

सर्वपापक्षयकरं नृणान्दुःखविनाशनम् ।

यत्तत्षोडशधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले ॥

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापहरं शुभम् ।

पूजितं देवताभिश्च ब्रह्म-विष्णु-शिवादिभिः ॥

आद्यन्तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञितम् ।

हिरण्यगर्भदानञ्च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् ॥  
 कल्पपादपदानञ्च गोसहस्रञ्च पञ्चमम् ।  
 हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च ॥  
 हिरण्याश्वरथस्तद्वैमहस्ति-रथस्तथा ।  
 पञ्चनाङ्गलकं तद्वज्रादानं तथैव च ॥  
 द्वादशं विश्वचक्रञ्च ततः कल्पलतात्मकम् ।  
 सप्तसागरदानञ्च रत्नधेनुस्तथैव च ॥  
 महाभूतधटस्तद्वत्षोडशः परिकीर्तितः ।  
 सर्वाण्येतानि कृतवान् पुरा शम्बरसूदनः ॥  
 वासुदेवश्च भगवान् अम्बरीषोऽथ पार्थिवः ।  
 कार्तवीर्यार्जुनो नाम प्रह्लादः पृथुरेव च ॥  
 चक्रुरन्ये महीपालाः केचिच्च भरतादयः ।  
 यस्माद्विभ्रसहस्रेभ्यो महादानानि सर्वदा ॥  
 रक्षन्ति देवताः सर्वा एकैकमपि भूतले ।  
 एषामन्यतमं कुर्याद्वासुदेवप्रसादतः ॥  
 न शक्यमन्यथा कर्तुमपि शक्रेण भूतले ।  
 तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापति-विनायकौ ॥  
 महादानमखं कुर्यात् विप्रैश्चैवानुमोदितः ।  
 एतदेवाह मनवे परितुष्टो जनार्दनः ।  
 यथा तदनुवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥

मनुरुवाच ।

महादानानि यानीह पवित्राणि शुभानि च ।  
 रहस्यानि प्रदेयानि तानि मे कथयाच्यत ॥

मत्स्यउवाच ।

नोक्तानि यानि गुह्यानि महादानानि शोडश ।

तानि ते सम्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।

तुलापुरुषयागीयं येषामाद्योभिधीयते ॥

‘आद्यः’ प्रकृतिभूतः ।

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।

युगादिषूपरागेषु तथा मन्वन्तरादिषु ॥

संक्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च ।

सितपञ्चदशीपर्वद्वादशीष्वष्टकासु च ॥

यज्ञो-त्सव-विवाहेषु दुःखप्रादुतदर्शने ।

द्रव्यब्राह्मणलाभे च अद्वा वा यत्र जायते ॥

तीर्थे वायतने गोष्ठे कूपा-राम-सरित्सु च ।

गृहे वाय वने वापि तडागे रुचिरे तथा ॥

महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा ।

अनित्यं जीवितं यस्मादसु चातीवञ्चलम् ॥

केशेष्विव गृहीतस्तु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।

पुण्यान्तिथिमश्रासाद्य कृत्वा ब्रह्मणवाचनम् ॥

वक्ष्यमाणं मण्डपादिं कारयेदित्यन्वयः ।

तिथिमित्युपलक्षणम् ।

पूर्वाह्णे पुण्यमुहूर्त्तादौ चेति वेदितव्यं, ‘ब्राह्मणवाचनं’ ब्राह्मणैः  
पुण्याह्वादिगद्वाचनम्, तद्विधानन्तु परिभाषायां प्रागभिहितम् ।

इह चायं प्रयोगक्रमः ।

उक्तकालान्यतमदानप्रतिपादनदिनात्पूर्वद्युः प्रातः सुस्नातः

शोभूतेऽहममुकदानं प्रतिपादयिष्ये, इति यजमानः सङ्कल्पं विधाय,  
प्रत्यूहसमूहविघाताय शिव-विष्णु-विनायकान् सम्पूज्य, ब्राह्मणा-  
नुज्ञातः कर्म समारभेत्, अथ वृद्धिश्राद्धं कृत्वा तदनन्तरम्-  
त्विग्वरणं विधाय, तांश्च मधुपर्कविधिना सम्पूज्य, पश्चिमद्वार-  
मण्डपं प्रविश्यापराह्णेऽधिवासनं विदध्यात्, मधुपर्कविधि-कुण्डम-  
खण्डपादिलक्षणानि परिभाषायां द्रष्टव्यानि ।

विशेषस्तु वक्ष्यते ।

षोडशारत्निमात्रञ्च दश द्वादश वा करान् ।

मण्डपं कारयेद्विद्वांश्चतुर्भद्राननम्बुधः ॥

यजमानस्यैकविंशत्यङ्गुलः, अरत्निः चतुर्विंशत्यङ्गुलः, करः ।

एतच्च मानत्रयमुत्तम-मध्यमा-धमभेदेन विज्ञेयम् ।

‘चतुर्भद्राननमिति, चत्वारि भद्रयुक्तानि आननानि द्वाराणि  
यस्य स तथा ।

यदाह दानसभामधिकृत्य विश्वकर्मा ।

द्वारेश्चतुर्भिः परिनिर्गतैर्या विभूषिता सुन्दरमूर्तिरूपा ।

रत्नोद्भवा सा कथिता सभेद्यं भद्रं ह्यनिन्द्यं करणीयमस्या इति ।

मत्स्यपुराणे । सप्तहस्ता भवेद्देदी मध्ये पञ्चकराय वा ।

तन्मध्ये तोरणं कुर्यात् सारदारुमयं शुभम्

उत्तममण्डपे सप्तकरा वेदी, इतरयोस्तु पञ्चकरेति व्यवस्थितौ  
विकल्पः, साचेष्टकामयी चतुर्थांशोच्छिता विधेया ।

तन्मध्ये तुलावलम्बानार्थं तोरणाकृतित्वात्तोरणम्, सारदा-  
रुणि, शाकेङ्गदीत्यादि, वक्ष्यमाणानि ।

कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ।

सुमेखलायोनियुतानि तद्वत्सम्पूर्णकुम्भानि महासनानि ॥

सताम्बपात्रद्वयसंयुतानि सयज्ञपात्राणि सविष्टराणि ।

हस्तप्रमाणानि तिला-ज्य-धूप-पुष्पो-पहाराणि सुशोभनानि ॥

‘चतुर्दिक्षु, वेद्या इति शेषः । सपादहस्तसम्मितञ्च कुण्डवे-  
द्योरन्तरं विधेयम् । ‘पूर्णकुम्भः, जलपूर्णकलशः, ‘ताम्बपात्रद्वयं,  
हवनीयहव्याधारभूतम् । ‘यज्ञपात्राणि, सुक्सुवादीनि । ‘विष्टरः,  
क्षिन्नाग्रपञ्चविंशतिकुशपत्रनिर्मितः । ‘धूपः, गुग्गुलप्रभृतिः’ ‘उप-  
हारः, फलान्नादिः ।

पूर्वोत्तरे हस्तमिताथ वेदी ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय ।

अर्चाच्चनं ब्रह्म-शिवा-च्युतानां तथैव कार्यं फल-मात्य-वस्तैः ॥

‘पूर्वोत्तरे’ ईशानभागे ।

आयामतो विस्तारतश्च हस्तसंमिता वितस्तिमात्रोच्छ्रया च  
वेदी कार्य्या । तत्र मध्ये सूर्यं स्थापयेत् ।

आग्नेये सीमं, दक्षिणतो भीमं, ईशाने बुधं, उत्तरे गुरुं, पूर्वे  
भार्गवं, पश्चिमतः शनिं, नैऋत्यभागे राहुं, वायव्यतः केतूनिति ।

आदिशब्दोपात्ताश्चैते, ईश्वर-गौरी-स्कन्द-विष्णु-ब्रह्म-शक्र-  
यम-काल-चित्रगुप्ता इत्यधिदेवताः ।

अग्नि-जल-भूमि-विष्णु-शक्र-शची-प्रजापति-सर्प-ब्रह्माण इति  
प्रत्यधिदेवता एते स्व स्व ग्रहसंनिधौ स्थाप्याः ।

तथा । विनायको दुर्गा वायुराकाश-मण्डिनौचेति शनि-सूर्य-  
योरुत्तरभागे राहु-केत्वोश्च दक्षिणे दुर्गाप्रभृतीनां स्थापनम् ।  
तथा लोकपालादीनामप्यत्र स्थापनम् । तेषामुत्तरत्र देवतात्वेना-  
भिधानात् ।

तदुक्तं स्मृत्यन्तरे । इन्द्रःपूर्वं तु संस्थाप्यः प्रेतेशं दक्षिणे तथा ।

वरुणं पश्चिमे भागे कुवेरं चोत्तरे न्यसेत् ॥

इन्द्रः पीतो यमः श्यामो वरुणः स्फटिकप्रभः ।

कुवेरस्तु सुवर्णाभो अग्निश्चापि सुवर्णभः ॥

तथैव निऋतिः श्यामो वायुर्धूम्रः प्रशस्यते ।

ईशानस्तु भवेद्रक्त एवं ध्यायेत्क्रमादिमान् ॥

इन्द्रस्य दक्षिणे पार्श्वे वसूनावाहयेद्बुधः ।

ध्रुवोऽध्वरस्तथा सोम आपश्चैवा\*निलोऽनलः ॥

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च† वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः ।

देवेशे-शानयोर्मध्ये आदित्यानां तथायनम् ॥

धाता-र्यमा च मित्रश्च वरुणोऽंशोभगस्तथा ।

इन्द्रोविवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमः स्मृतः ॥

ततस्त्वष्टा ततोविष्णुरजघन्योजघन्यजः‡ ।

इत्येते द्वादशादित्या नामभिः परिकीर्त्तिताः ॥

अग्नेः पश्चिमतोभागे रुद्राणामयनं विदुः ।

वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरीशश्च महायशः ॥

अजैकपादहिर्ब्रह्मा§ पिनाको चापराजितः ।

भूवनाधीश्वरश्चैव कपाली च विशाम्पतिः ।

स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रास्वेकादश स्मृताः ॥

\* आपस्तम्बेति क्वचित् पाठः ।

† प्रभातश्चेति क्वचित् पाठः ।

‡ समुद्र इति क्वचित् पाठः ।

§ वज्र इति पाठान्तरम् ।

प्रेतेश-रक्षसोर्मध्ये मातृस्थानं प्रकल्पयेत् ॥

मातृनामानि परिभाषाप्रकरणे दर्शितानि गौरी-पद्मादीनि ।

निर्ऋतेरुत्तरेभागे गणेशायतनं विदुः ।

क्रुवेर-मरुतोर्मध्ये मरुतां स्थानमुच्यते ॥

मरुतो नाम ते देवा गणा वै सप्तसप्तकाः ।

आवहः प्रवहश्चैव उदहः सखहस्तथा ॥

विवहः प्रवहश्चैव तथा परिवहोऽनिल ॥ इति ।

एते सूर्यादयो ग्रहयज्ञोक्तविधिना पूजनीयाः, अनुक्तमन्त्र-  
काणान्तु, प्रणवादिभिश्चतुर्थ्यन्तैर्नामभिर्नमोन्तैः स्थापनादि वि-  
धेयम् ।

अथ तत्रैव ब्रह्म-शिवा-च्युतानामर्चनं प्रतिमापूजनञ्च कर्त्तव्यम् ।  
तल्लक्ष्यं ब्रह्माण्डदाने वक्ष्यते ।

मत्स्यपुराणे ।

लोकेशवर्णाः परितः पताका मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात् ।

द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि चत्वार्यपि क्षीरवनस्पतीनाम् ।

द्वारेषु कुम्भद्वयमत्र कार्यं स्वर्गन्ध-धूपा-स्वर-रत्नयुक्तम् ॥

लोकेशवर्णाः, इन्द्रः पीतोयमः श्यामइत्यादिनिरन्तरोक्तलो-  
कपालसमानवर्णाः ।

‘परितः, मण्डपस्य पूर्वोदिसर्वदिक्षु । ‘किङ्किणिकाः, चतुर्द-  
शदिक्षु । ‘क्षीरवनस्पतीनां, अश्वत्थो-दुम्बर-प्लक्ष-न्यग्रोधानां पू-  
र्वोदक्षिण-पश्चिमोत्तरद्वारेषु यथाक्रमं मस्तके दारुमयशंख-चक्र-  
गदा-पद्मचिह्नितानि तोरणानि कुर्यात् ।

‘रत्नानि’ कनकप्रभृतीनि परिभाषायामुक्तानि ।

शाके-ङ्गुदी-चन्दन-देवदारु-श्रीपर्णि-बिल्व-प्रियकाञ्जनोत्थम् ।

स्तम्भद्वयं हस्तयुगावखातं कृत्वा दृढं पञ्चकरोच्छ्रितम्वा ।

तदन्तरं हस्त चतुष्टयं स्यात्तथोत्तराङ्गं चतुरस्रमेव ॥

‘शाकः’, वृक्षविशेषः । महाराष्ट्रे साधद्विति प्रसिद्धः ॥

‘श्रीपर्णी’, ‘भद्रपर्णी’ तरुः । ‘प्रियकः’ बीजकः ।

स्तम्भद्वयं चतुरश्रीकृत्य वेदिमध्ये पूर्व-पश्चिम-भागयोर्निधेयम् ।

‘उत्तराङ्गं’ स्तम्भद्वयोरुपरिकाष्ठम् । तच्च पञ्चकरोच्छ्रितयोः

स्तम्भयोर्हस्तचतुष्टयादुपरि निधेयम् । अथोत्तराङ्गञ्च तदङ्गमेवेति पाठे तदीयमिति स्तम्भसजातीय काष्ठत्वर्थः ।

समानजातिश्च तुलावलम्बा हैमेन मध्ये पुरुषेण युक्ता ।

दैर्घ्येण सा हस्तचतुष्टयं स्यात् पृथुत्वमस्यास्त् दशाङ्गलानि ॥

सुवर्णभद्राभरणा तु कार्य्या सलीहपाशद्वयशृङ्खलाभिः ।

युता सुवर्णेन च रत्नमाला विभूषिता माल्यविलेखनाभाः ॥

‘समानजातिः’ तोरणसमानजातिः तुलोत्तराङ्गमध्ये द्वादश-भिरङ्गुलैरधस्तादुदगग्रा अवलम्बा ।

‘पुरुषेण’ विष्णुना ।

‘शृङ्खलावलम्बितया’ सुवर्णेनिर्मितया ।

तत्प्रतिमालक्षणमुक्तं पञ्चरात्रे ।

अधश्चक्रं गदामूर्ध्वं वामयोः करयोः क्रमात् ।

ऊर्ध्वं शंखमधःपद्मं गोविन्दः कपिलाङ्गकः ॥

हस्तचतुष्टयदीर्घन्तु, प्रान्तद्वयन्यस्तयोर्लीहपाशयोर्वहिःस्थित-मण्डलषट्कं विहाय विज्ञेयम् ।



समस्ततुलाया अष्टोत्तरशताङ्गुलमितत्वात् पृथुत्वञ्चास्या  
दशाङ्गुलपरिमितेन वलयाकृतिना सूत्रेण सम्मितं विधेयमित्यर्थः ।

स च नोहपाशद्वयशृङ्खलाभिर्युतेति, सुवर्णधारणार्थं फलक-  
धारिणीभिर्लोहपाशद्वयावलम्बितशृङ्खलाभिर्युक्ता कार्येत्यर्थः ।

वज्रिपुराणे ।

आश्वत्थीं खादिरीं वापि पालाशीं वा सुवृक्षजाम् ।

चतुर्हस्तप्रमाणेन सुश्लक्ष्णाः सुदृढां नवाम् ॥

सुवर्तुलां समान्तद्वत् स्निग्धां क्षिद्रत्रयान्विताम् ।

मौञ्जशिक्योभयोपेतां बद्धां स्तम्भे तु यन्त्रिये ॥

आह नारदः ।

चतुरस्रा तुला कार्य्या पादौ चापि तथा विधौ ।

चतुर्ध्वपि च पार्श्वेषु मानं स्याच्चतुरङ्गुलाम् ॥

मुक्ता तावत्तु कटकानन्तयोर्विन्यसेद्बुधः ।

चतुर्हस्ताधरतुला मध्ये च शृङ्खलान्विता ।

शिक्यं हस्तद्वयं कुर्यात् कटकं चतुरङ्गुलमिति ॥

यदाह विश्वकर्मा ।

विशेषदानं कथितं तुलादि तस्मात्तुलालक्षणमुच्यते प्राक् ।

तुलाप्रमाणं स्मृतमङ्गुलानि दैर्घ्येऽखिलेष्वर्षवतिप्रमाणैः ॥

प्रान्तद्वयेऽप्यङ्गुलषट्कमुक्तं शतन्तुलाष्टोत्तरमङ्गुलानां ।

स्युर्विशतिः पञ्च च धातुदम्भा बन्धेष्वधिष्ठातसुरां निवेश्याः ॥

द्रुशः शशी मारुत-रुद्र-सूर्याः स्याद्विश्वकर्मा गुरु-रङ्गिरी-ग्नी ।

प्रजापतिर्विश्वजगद्धिधाता पर्जन्यगम्भीरपितृदेवताश्च ॥

सौम्यश्च धर्मा-मरराज-मण्डि-जलेग मित्रा-वरुणौ-मरुद्गणाः ।

धनेश-गन्धर्व-जलेश-विष्णुरेते चतुर्विंशतिरेव देवाः ॥  
 स्यात्पञ्चविंशः पुरुषः स एको यस्तीत्यमानस्तुलया महात्मा ।  
 एता विधेयास्तपनीयमध्ये रत्नाचिता दैवतभूतयस्ताः ॥  
 षडङ्गुलः स्याच्चतुरस्रपिण्डः प्रान्तद्वये विष्णुरनन्तनामा ।  
 तुलोर्द्धभागे कलशद्वयं स्यात्तथाङ्कुटद्वन्द्वमधस्तुलान्ते ॥  
 षडङ्गुलीत्यं कटकश्च पिण्डोऽप्येकाङ्गुली विष्णुरनन्तनामा ।  
 पार्श्वद्वयन्तच्चतुरङ्गुलं स्यादेवं मया ते कथितं प्रमाणम् ॥  
 मध्याङ्कुटे सङ्कलिकाङ्गुलानि पञ्चाशताविंशतिरेवदैवैः ।  
 एकाङ्गुलोऽस्या भवतीहपिण्डस्तत्राधिदेवः किल वासुकिः स्यात् ॥  
 एकैकरज्जुर्लभतेङ्गुलानि त्रिःसप्ततिः पिण्डगताङ्गुला च ।  
 तच्चेलकद्वन्द्वमथाङ्गुलानि त्रिंशत्तथा पञ्चदशाधिका स्यात् ॥  
 तदानुवङ्गं शुभकाष्टवाटं पिण्डेङ्गुलद्वन्द्वमथोविधेयम् ।  
 आध्याद्यर्थैस्तन्यधिदेवता स्यात् तुलान्तरे भूमिपतिर्निवेश्या ।

इति ॥

ईशः शशीत्यादि । अतेश्वर-चन्द्र-मारुत-सूर्य-देवराजज-  
 लेशानां ब्रह्माण्डदाने लक्षणं वक्ष्यते ।

रुद्रस्य विश्वचक्रे ।

विश्वकर्मारूपनिर्माणमुक्तं विष्णुधर्मोत्तरे ॥  
 विश्वकर्मा तु कर्तव्यः श्मशुलीरस्तनाधरः ।  
 सन्दंशपाणिर्द्विभुजस्तेजोभूर्त्तिधरो महान् ॥  
 गुरुसौम्ययोः स्वरूपं नवग्रहदाने वक्ष्यते ।  
 अङ्गिरोग्निभूर्त्तिमाह विश्वकर्मा ॥  
 कमण्डलुं सुवज्रैव शक्तिं दर्भमपिक्रमात् ।

कलयन्त्यङ्गिरो नाम्ना कराग्राणि समन्ततः ॥

पाण्यश्वाग्निना सोपि कलयन्ति जपस्रजं ।

शक्तिञ्च पुस्तकञ्चैव क्रमादेव कमण्डलुम् ॥

एतयोश्च मिलितयोर्देवतात्वम् ।

प्रजापतिस्वरूपमुक्तं सिद्ध्यर्थसंहितायाम् ।

यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवक्त्रश्चतुर्भुजः ।

अक्षं शुचं सुवं धत्ते कुण्डिकाञ्च प्रजापतिः ।

विश्वदेवलक्षणं, विश्वम्भरदाने वक्ष्यते ।

विधाटरूपं प्रजापतितुल्यमेव, किन्त्वसौ चतुर्वक्त्रो विधेयः ।

पर्जन्यलक्षणमुक्तं सिद्ध्यर्थमंहितायां ।

पर्जन्यनाम विज्ञेयो गजवक्त्रचयान्वितः ।

द्वौ धत्ते सर्वजीवात्मा वरं बीजञ्च शङ्खकम् ॥

कठारञ्च पयोजञ्च चिन्तारत्न महाशुचिः ।

पाशञ्चक्रं किशलयं कुण्डी च दशभिः करैः ॥

शम्भुः पूर्ववत्, एतयो रपि मिलितयोर्देवतात्वम् । पितृलक्ष-  
णमुक्तं मयदीपिकायाम् ।

कुशविष्टरपद्मस्थाः पितरः पिण्डपात्रिणः ।

धर्ममुक्तिर्विष्णुधर्मोत्तरे ।

चतुर्वक्त्रश्चतुष्पादश्चतुर्बाहुः सिताम्बरः ।

सर्वाभरणवान् श्वेतो धर्मः कार्यो विजानता ।

दर्क्षिणे चाक्षमाला च तस्य वामे तु पुस्तकं ॥

आश्विनोर्लक्षणं, हिरण्याश्वरघदाने वक्ष्यते ।

मित्रमुक्तिर्माह विश्वकर्मा ॥

मित्रः कमलपाणिश्च कमलासनसंस्थितः ।

द्विभुजः श्वेतमुर्त्तिश्च सर्वभूतहिते रतः ॥

वरुणस्तु पूर्ववत्, अत्रापि मिलितयोर्देवतात्वम् ।

मरुद्गणरूपं, मरुद्गणदाने द्रष्टव्यम् ।

धनेशलक्षणं, धान्याचलदाने ।

गन्धर्वरूपमाह यमः ।

वरदो भक्तलोकानां किरीटी कुण्डली गदौ ।

कार्यः सूरूपो गन्धर्वो वीणावाद्यरतस्तथा ॥

विष्णुलक्षणमाह विश्वकर्मा ।

प्रदक्षिणं दक्षिणाधःकरादारभ्य नित्यशः ।

विष्णुः कौमोदकी-पद्म-शङ्ख-चक्रैरलङ्कृतः ॥

पाशौद्वयं लोहमयञ्च चेलकद्वयञ्च भूमिः

प्रादेशमात्रादूर्ध्वमवमलम्बा ।

प्रादेशम्बा चतुर्मात्रं भूमिं त्यक्त्वावलम्बयेदितिलिङ्गपुराणस्मरणात् ।

अथ मत्स्यपुराणे ।

चक्रं लिखेद्धारिजगर्भयुक्तं नानारजोभिर्भुवि पुष्पकीर्णं ।

वितानकञ्चोपरि पञ्चवर्षं संस्थापयेत्पुष्प-फलोपशोभम् ॥

चक्रं हादशारं वारिवारिजगर्भयुक्तं, मध्ये पद्मयुक्तम् ।

‘भुवि’ वेदिमध्ये ।

‘नानारजोभिः’ सित-पीतादिचूर्णैः ।

अश्वत्थिजो वेदविदश्च कार्य्याः सूरूपवेशान्वयशीलयुक्ताः ।

विभ्रानदक्षाः पटवोऽनुकूला येचार्य्यदेशप्रभवा द्विजेन्द्राः ॥

गुरुश्च वेदार्थविदार्थ्यदेशसमुद्भवः शीलकुलाभिरूपः ।

कार्यः पुराणाभिरतोतिदत्तः प्रसन्नगम्भीरसरस्वतीकः ।

सिताम्बरः कुण्डल-हेम-सूत्र-केयूर-कण्ठाभरणाभिरामः ॥

पटवो-रागरहिताः, आर्यदेशीव्याख्यातः ।

तत्राष्टौ ऋत्विजः, अष्टौ द्वारपालाः,

जापकाश्चाष्टौ, गुरुश्चेति वरणीयाः ।

तथा सत्यपुराणे एवोक्तम् ।

शुभास्तत्राष्टहोतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै ।

अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः ।

हेमालंकारिणः कार्या द्विजा वै पञ्चविंशतिः ॥

तत्रायं प्रयोगः ।

अथ अमुकदानस्य यज्ञेनाहं यज्ञे तत्र तदङ्गभूतहीमादि  
कर्म कर्तुं अमुकसगोत्रं अमुकशर्माणं अमुकवेदाध्यायिनं ऋत्विजं  
त्वामहं वृणे ।

तथा अथ अमुकमहादानयज्ञेनाहं यज्ञे ।

तत्र तदङ्गभूतसकलकर्म कर्तुं कारयितुञ्च अमुकसगोत्रं  
अमुकशर्माणं अमुकवेदाध्यायिनं आचार्यं त्वामहं वृणे इत्यादि  
ज्ञेयं वृतोस्मीति सर्वत्र प्रतिवचनम् ।

तद्विनियोगश्च तत्रैव दर्शितः ।

गन्धपुष्पैः रत्नङ्गुल्य द्वारपालान् समन्ततः ।

पठध्वमिति तान् ब्रूयात् आचार्यस्त्वभिपूजयन् ॥

यजध्वमिति च ब्रूयात् हीटकान् पुरएव तु ।

उत्कृष्टमन्त्रजाप्येन तिष्ठध्वमिति जापकानिति ॥

पूर्वेण ऋग्वेदविदौ भवेतां यजुर्विदौ दक्षिणतश्च काथ्यौ ।

स्थाप्यौ द्विजौ सामविदौ च पञ्चादाथर्वणावत्तरतश्च कार्यौ ॥

विनायकादिग्रह-लोकपाल-वस्वष्टका-दित्य-मरुद्गणानाम् ।

ब्रह्मा-च्युतेशा-र्क-वनस्पतीनां समन्वतो-होमचतुष्टयं स्यात् ।

जप्यानि सूक्तानि तथैव चेषामनुक्रमेणैव यथास्वरूपम् ॥

अथ च पूर्वादिदिग्नियमो ऋगादिवेदविदामृत्विजां द्वारपालानां च वेदितव्यः ।

विनायकादीत्यादिशब्देन, एकादशरूद्रा नवग्रहाधिदेवताः प्रत्यधिदेवता दुर्गा वायुराकाशाश्विनौचेति, स्वमन्वतः, स्व स्ववेदमन्त्रैर्होमचतुष्टयमिति, वेदचतुष्टयसम्बन्धात् होमानां चतुष्टयं । ततो गुरुणाग्निस्थापने कृते स्वेस्वे कुण्डे द्वौ द्वाद्वत्विजौ रुद्राखोक्तमन्त्रैरेकैकस्य विनायकादेर्द्वादश द्वादश तिलाज्याहुतीर्जुहुयाताम् ।

इह तावद्द्वादशविनायकादयो देवाः दशलोकपालाः वस्वष्टकं एकादशरूद्राः द्वादशादित्याः सप्तसप्त मरुद्गणाः पञ्च ब्रह्मादय इत्येवं पञ्चाशीतिसंख्येभ्यो देवेभ्यः प्रतिकुण्डं विंशत्यधिकाहुतिनियमानुपपत्तेः । तच्चपरिभाषायां दर्शितम् ।

होमावसाने कृततूर्थनादौ गुरुर्गृहीत्वा बलि-पुष्प-धूपम् ।

आवाहयेत्लोकपतीन् क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः ॥

एह्येहि सर्वामर-सिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरा-मरेश ।

संवीज्यमानोऽस्परसाङ्गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

ओं इन्द्राय नमः ॥

एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोभिजुष्टः ।

तेजोवता लोकगणेन मार्द्धं ममाध्वरं रक्षतु ते नमस्ते ।

ओं अग्नये नमः ।

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चितधर्ममूर्ते ।

शुभा-शुभा-नन्द-शुचामधीश-शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते ॥

ओं यमाय नमः ।

एह्येहि रत्नोगणनायकस्त्वं विशालवेताल-पिशाचसङ्घैः ।

ममाध्वरं पाहि शुभाधिनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते ॥

ओं निर्ऋताय नमः ।

एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहासरोभिः ।

विद्याधरे-न्द्रा-मरगीयमानः पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥

ओं वरुणाय नमः ॥

एह्येहि यज्ञेश्वर रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः ।

प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ओं वायवे नमः ।

एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।

सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ओं सोमाय नमः ।

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूल-कपाल-खट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् ।

लोकेन भूतेश्वर यज्ञसिद्धौ गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ओं ईशानाय नमः ।

एह्येहि पातालधरा-मरेन्द्र नागाङ्गना-किन्नरगीयमान ।

यक्षो-रगेन्द्रा-मरलोकसार्द्धम् अनन्त रक्षाधरमस्मदीयम् ॥

ओं अनन्ताय नमः ।

एह्येहि विश्वाधिपते मुरेन्द्र लोकेन सार्द्धं पितृदेवताभिः ।

सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरन्नः सततं शिवाय ॥

ओं ब्रह्मणे नमः ।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।

ब्रह्म-विष्णु-शिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥

देव-दानव-गन्धर्वा यक्ष-राक्षस-पन्नगाः ।

ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥

एते ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु सुदान्विताः ।

इत्यावाह्य सुरान् दद्यादृत्विग्भ्यो हेमभूषणम् ॥

कुण्डलानि च सूत्राणि हैमानि कटकानि च ।

अथाङ्गुलीयं चित्राणि वासांसि शयनानि च ॥

द्विगुणं गुरवे दद्याद्भूषणाच्छादनादिकम् ।

जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतोदिशम् ॥

उपोषितास्ततः सर्वे कृत्वैवमधिवासनम् ।

आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद्वाह्मणवाचनम् ॥

‘शान्तिकाध्यायः’ शन्नइन्द्राग्नी भवता मवीभिरित्यादिकः ।

उपवासाशक्तौ नक्तमुक्तम् ।

पद्मपुराणे । उपवासी भवेदेव अशक्तौ नक्तमिष्यत इति ।

एवं पूर्वैद्युरधिवासनं कृत्वा सर्व्वे तत्रैव वसेयुः ।

ततः अन्येद्युर्दानकालसमीपे ब्राह्मणवाचनं विधाय पूर्णा-  
हतिप्रभृतिकर्मसमाप्तिं कुर्यात् ।

आत्ययिककार्यापत्तौ सद्योवाधिवासनविधिः ।

तदुक्तं । सद्योऽधिवासनं वाथ कुर्याद्यो विकली नर इति ।



अथाथर्वणगोपथब्राह्मणे ।

ऋत्विग्यजमानो केश-श्मश्रु-नखानि वापयित्वा संभारानुकल्प-  
द्रव्यन्तत्तदाज्यभागान्तं कृत्वा अयं नो अग्निरिति महाव्या-  
हृतयो ब्रह्मयज्ञानमग्ने गोभिरग्नेभ्यावर्त्तिनग्नेः प्रजातं यदावध-  
न्नितिशांल्युदकेन सम्पातमानोय स्नानकलशेषु निर्व्वपेदिदमाप  
आपोहिष्ठावाहुभ्यामभिषेचयेद्यथोक्तमञ्जनाभ्यञ्जनानुलेपनं कार-  
यित्वा वासो गन्धान् स्रजञ्चावध्याभिजिह्महर्त्ते तुलां हिरण्य-  
वर्णैः पवित्रैरभ्युक्ष्य गन्ध-पुष्प-धूपैरर्चयित्वा उपहाराञ्च दत्त्वा  
राजानमाह्वयार्धं दत्त्वा तुलामारोपयेत् ।

मत्स्यपुराणे । ततो मङ्गलशब्देन स्तापिती वेदपुङ्गवैः ।

त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।

शुक्लमाल्याम्बरधरो तान्तुलामभिमन्त्रयेत् ॥

स्नपनन्तु, कुण्डसमीपस्थितकलशोदकैः कर्त्तव्यम् । स्नपन-  
मन्त्राश्च, सुरास्त्वामभिशिञ्चन्त्वित्यादयो ग्रहयज्ञोक्ता वेदितव्याः ।

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सर्वमाश्रिता ।

साक्षिभूता जगद्वाची निर्मिता विश्वयोनिना ॥

एकतः सर्वसत्यानि तथानृतशतानि च ।

धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगत्प्रिये ॥

त्वन्तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्त्तितम् ।

मान्तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोस्तु ते ॥

योसौ तत्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ।

स एषोधिष्टितो देवि त्वयि तन्मात्रमो नमः ॥

नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषमङ्गकः ।

त्वं हरे तारयस्वाम्भान् अस्मात् संसारसागरात् ॥

पुण्यकालं समासाद्य कृत्वैवमधिवासनम् ।

पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा तुलां तामारुहेद्बुधः ॥

सखङ्ग-चर्मकवचः सर्वाभरणभूषितः ।

धर्मराजभयादाय हैमसूर्येण संयुतः ।

कराभ्यां वद्वमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन् हरेर्मुखम् ॥

धर्मराजसु, महिषारुढश्चतुर्भुजोदण्ड-पाश-पाणिः कर्तव्यः ।

सूर्योऽपि, सुवर्णमयः पद्मासनः पद्मधरः कार्यः ।

तौच दक्षिणवाममुष्टिस्थौ विधाय हरेस्तुलामध्यस्थितस्य  
मुखं पश्येदित्यर्थः ।

ततोपरि तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः ।

समादभ्यधिकं यावत् काञ्चनञ्चातिनिर्मलम् ।

पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नराधिप ॥

पुष्टिकाम इति गुण फल सम्बन्धो गोदोहनेन प-

शुकामस्य प्रणयेदिति तदवगन्तव्यम् ।

इह तावदादौ राज्ञस्तुलाधिरोहणं पश्चात् सुवर्णन्यासइत्युक्तम् ।

गोपथब्राह्मणे तु सखङ्गः सशिरस्त्राणः सर्वाभरणभूषणः ॥

तपनीयमग्रतः कृत्वा पश्चात्तोल्यो नराधिपः ॥

दक्षिणेन तु सुवर्णेन सुवर्णं स्यादुत्तरेच नराधिप इति ।

ततश्चेतिहासपुराणं पञ्चमो वेद इति ।

तुल्यबलत्वे अनुष्ठानविकल्पः । ये तु मन्यन्ते स्मृतिवत्पुराणा-  
नीति तन्मते पूर्वं सुवर्णारोपणम् ॥

पश्चाद्राजारोपणमिति ।

क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेवमुदीरयेत् ॥  
 नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि ।  
 पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥  
 त्वया धृतं जगत् सर्वं वहि-स्थावर-जङ्गमम् ।  
 सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि ॥

वह्निपुराणे । कृत्वा तु विधिवद्भूमिं सुस्नातस्तीर्थवारिणा ।

तुलां पूज्यविधानेन ब्राह्मैर्मन्त्रैश्च वैदिकैः ॥  
 ससुपोष्याच्चयेद्देवं पीताम्बरधरं हरिम् ।  
 पश्चात्तदारुहेक्किक्यं प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽथवा ॥  
 जाम्बूनदेन शुद्धेन पूरयित्वा तुलां पृथक् ।  
 सर्वाभरणपूर्णाङ्गः सवस्त्रासनसंयुतः ॥  
 तत्र स्थित्वा मुहूर्त्तं स द्रव्यात्तिष्ठेत् समुव्रतिम् ।  
 जपेत् मन्त्रञ्च पौराणं पुनन्तुमिति वा चतुश्चम् ॥  
 यथापवित्रमतुलमपत्यं जातवेदसः ।  
 तथा स्नेन पवित्रेण सुवर्णं हि पुनातु मां ॥  
 रुद्रस्य मुमहत्तेजः कार्तिकेयस्य सम्भवः ।  
 तथा स्नेन पवित्रेण सुवर्णं हि पुनातु मां ॥  
 यथाग्निर्देवताः सर्वाः सुवर्णञ्च तदात्मकम् ।  
 तथा स्नेन पवित्रेण सुवर्णं हि पुनातु माम् ॥  
 यत्कृतं मे स्वकायेन मनसा वचसा तथा ।  
 दुष्कृतं तत् सुवर्णस्थं पातु मुक्तिः परा शुभा ॥  
 इत्युक्त्वा तद्वत्विजे च दद्याच्छिष्यः स्वमेव हि ।

समुत्तीर्याङ्गदन्तच्च दृह्ययादपरन्ततः ॥

मत्स्यपुराणे । ततोऽवतीर्थं गुरवे पूर्वमर्द्धं निवेदयेत् ।

ऋत्विग्भ्योऽपरमर्द्धं दद्यादुदकपूर्वकम् ॥

गुरवे ग्राम-रत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत् ।

तत्रायं प्रयोगः ।

ओं अद्य अमुकस्मिन् देशे अमुकस्मिन् काले अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्माणे ब्राह्मणाय अमुकसगोत्रः अमुकशर्म्मा इदं तुलापुरुष-  
सुवर्णार्द्धं अमुककामस्तुभ्यमहं संप्रददे नमः, एतद्दानप्रतिष्ठार्थमिमां  
दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे नमः, एतत् उदकपूर्वकं पूर्वार्द्धं गुरवे  
दद्यात्, ऋत्विग्भ्योऽप्येवमपरं, अदक्षिणन्तु यद्दानं तत्सर्वं निष्कलं  
भवेदिति वचनादिह दक्षिणापेक्षायां गुरवे ग्राम-रत्नादीनि श्रुतं  
दक्षिणात्वेन सम्बध्यते ।

अथ गोपयब्राह्मणे ।

अच्युताद्योरिति चतसृभिरवरोहयेत् तांतुलामुपसंस्कृत्य महा-  
व्याहृतिमावित्रीशान्तिभिरंहोमुपयैराज्यं हुत्वा सूर्यस्यावृतमिति  
प्रदक्षिणमावृत्यात्माङ्गलङ्कारं कर्त्वे दद्यात्सहस्रं दक्षिणां ग्रामवर-  
ञ्चेति ।

‘कर्त्वे’ आचार्याय ऋत्विजे च ।

तत्रार्द्धमाचार्यस्यार्द्धमृत्विजामिति, सहस्रं दक्षिणामिति, सह-  
स्रशब्दस्यानुपात्तसंख्येयविशेषतया, मत्स्यपुराणे च रत्नानीत्यत्र  
संख्याविशेषानुपादानात् शाखान्तरे च वररत्नानां दक्षिणास्था-  
नश्रुतेः रत्नसहस्रमेव न्याय्यं । तत्तु यथाशक्ति यथालाभं मुक्तादीना-

मन्यतमस्य सहस्रमवगम्यते, दक्षिणाधिकरणन्यायेन गवामिव  
समानजातीयानामेव संख्यासम्बन्धात् ।

‘ग्रामवरं, ग्रामश्रेष्ठम् ।

केचित्तु गुरवे ग्रामरत्नानीत्यत्रापि श्रेष्ठतावचनो रत्नशब्द इति  
व्याचक्षते ।

तेषां मते सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणा स्मृतेति वच-  
नात्, सहस्रं दक्षिणामित्यत्र सुवर्णमेव दक्षिणेत्यवगन्तव्यम् ।

सहस्रसंख्याव्यवच्छेदश्च तस्य कृष्णलात्प्रभृति यथाशक्ति सम्पा-  
दनीय इति ।

प्राप्य तेषामनुज्ञाञ्च तथान्येभ्योपि दापयेत् ।

दीना-नाथ-विशिष्टादीन् पूजयेत् ब्राह्मणैः सह ॥

‘अत्रान्यशब्देन जापका उच्यन्ते ।’

विशिष्टा अत्राह्मणा अपि पितृशुश्रूषादिगुणयुक्ताः,

इह तावदर्द्धं गुरवे, अर्द्धमृत्विग्भ्यः, समस्ततुलापुरुषद्रव्यं  
देयमित्येकः पक्षः ।

अस्मिन् पक्षे जापकेभ्यो अन्यैव दक्षिणा दातव्या, गुर्वादी-  
नामनुज्ञया अन्येभ्योपि दद्यादिति अपरः पक्षः ।

तत्र गुर्वादीनां प्रदेयद्रव्यपरिमाणानिर्देशे धराद्धं-

चतुर्भागं गुरवे विनिवेदयेदिति विकृतिभूतपृथिव्यादिदान-  
प्रकरणश्रुतं देयद्रव्यसंख्यानियमो न्यायः ।

येन वा तुष्यते गुरुरितिसामान्योपदिष्टमाचरणीयं तथा  
दीनानाथ-विशिष्टेभ्योऽपि देयमिति तृतीयः पक्षः ।

अत्र यद्यपि विकल्पवाची शब्दीनास्ति तथापि पक्षान्तरश्रय-  
णेनार्थाद्विकल्पः सम्पद्यते ।

मत्स्यपुराणे ।

न चिरन्धारयेद्देहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः ।

तिष्ठद्भयावहं यस्माच्छोक-व्याधिकरं नृणाम् ।

शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति पुष्कलम् ॥

ततः प्राग्वत्पुण्याहवाचने कृते देवतावेदिसमोपं गत्वा पूर्वं च  
देवतानां पूजादि यजमानः कुर्यात् ।

आचार्यस्तु यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवात् ।

द्रष्टकामप्रदानार्थं पुनरागमनाय च ॥

इत्यनेन मन्त्रेण देवतानां विसर्जनं कुर्यात् ।

अनेन विधिना यस्तु तुलापुरुषमाचरेत् ।

प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरे वसेत् ॥

विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ।

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ।

कल्पकोटिशतं यावत् तस्मिन्लोके महीयते ॥

कर्मक्षयादिह पुनर्भुवि राजराजः

भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपीठः ।

अद्भान्वितो भवति यज्ञसहस्रयाजी

दीप्तप्रतापजितसर्वमहीपलोकः ॥

योदीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः

कालान्तरे स्मरति वाचयतीह लोके ।

योवा शृणोति पठतीन्द्रमानरूपः ।

प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टम् ॥

वज्रिपुराणे ।

एवं दत्त्वा सुवर्णञ्च ब्रह्महत्यादिकन्तु तत् ।

पापान्निहत्य पुरुषः स्वर्गलोकञ्च गच्छति ॥

तत्र स्थित्वा चिरं राजन् यदायाति महीतले ।

राजराजेश्वरः श्रीमान् वीतशोको निरामयः ॥

रूप-सौभाग्यसम्पन्नो नित्यं धर्मपरायणः ।

पुनर्विष्णुपदं याति यत्र गत्वा न शोचति ॥

इति तुलापुरुषदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

राज्ञां षोडशदानानि नन्दिना कथितानि च ।

धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं कर्मणैव महात्मनाम् ।

तुलाधिरोहणाद्यानि शृणु तानि यथातथम् ॥

ग्रहणादिषु कालेषु शुभे देशे सुशोभने ।

विंशहस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव वा ॥

अथाष्टादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः ।

कृत्वा वेदिं तथा मध्ये नवहस्तप्रमाणतः ॥

अष्टहस्तेन वा कुर्यात् सप्तहस्तेन वा पुनः ।

द्विहस्ताध्वर्द्धहस्ता वा वेदिका चाति शोभना ॥

द्वादशस्तम्भसंयुक्ता साधुरम्याग्रमस्तका ।

परितो नव कुण्डानि चतुरस्राणि कारयेत् ॥

ब्रह्म-ईशानयोर्मध्ये प्रधानं ब्रह्मणः सुतः ।

अथ वा चतुरस्रञ्च योन्याकारमतः परम् ॥

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत् ॥  
 अर्धचन्द्रं त्रिकोणञ्च वर्तुलं कुण्डमुत्तमम् ।  
 षड्भुजं सर्वतोवापि त्रिकोणं पद्मसन्निभम् ॥  
 अष्टास्रं सर्वमार्गेषु स्थण्डिलं केवलन्तु वा ।  
 चतुर्द्वारसमोपेतं चतुस्तोरणभूषितम् ॥  
 दिग्गजाष्टकसंयुक्तं दर्भमालासमाश्रितम् ।  
 अष्टमङ्गलसंयुक्तं वितानोपरि शोभितम् ॥  
 तुलायाश्च द्रमाश्चाथ विल्वाद्याश्च विशेषतः ।  
 बिल्वा-श्वत्थ-पलाशा-द्याः केवलं खदिरन्तु वा ॥  
 एवं स्तम्भाः कृता येन तेन सर्वन्तु कारयेत् ।  
 अथ वा मिश्रमार्गेण वेणुना वा प्रकल्पयेत् ॥  
 अष्टहस्तप्रमाणन्तु हस्तद्वयसमायतम् ।  
 तुलास्तम्भस्य विष्कम्भो नाहस्तत्रिगुणो मतः ॥  
 द्वाङ्गुलेन विहीनन्तु सुवृत्तं निर्गुणं तथा ।  
 उभयोरन्तरञ्चैव षड्हस्तं नृपतेः स्मृतम् ॥  
 द्वयोश्चतुर्हस्तकृतमन्तरं स्तम्भयोरपि ।  
 षड्हस्तमन्तरं ज्ञेयं तयोरुपरिसंस्थितम् ॥  
 वितस्तिमात्रविस्तारं विष्कम्भस्तावद्द्वुलः ।  
 स्तम्भयोस्तु प्रमाणेन उत्तरं द्वारसन्धितम् ॥  
 षट्त्रिंशमात्रसंयुक्तं व्यायामन्तु तुलात्मकम् ।  
 विष्कम्भमष्टमावन्तु यवपञ्चकसंयुतम् ॥  
 षट्त्रिंशमात्रनालं स्यान्निर्गुणं वर्तुलं शुभम् ।  
 विंशहस्तेत्यादि । कूटः, मण्डपविशेषः ।



कलाहस्तेन षोडशहस्तैः, विंशतिहस्तादिमण्डलत्रये क्रमान्वादिहस्तविस्तारस्य वेदितव्यस्य द्विहस्तोऽर्धहस्तो हस्तश्चेत्युक्तयो विधेयः ।

विधाय मण्डपं तत्र तन्मध्ये वेदिकान्नयेत् ।

नवाष्ट-सप्तहस्तेन द्विहस्तार्धहस्ततः ॥

विस्तारेणोक्तयेणापि द्वादशस्तम्भसंयुतामितिकामिकोक्तिः ।

साधुरम्याग्रमस्तकेति, समचतुरस्रत्वं समतलत्वञ्चोपरिभागस्य विधेयमित्यर्थः ।

अथवा चतुरस्रमिति पूर्वोदिकुण्डानां क्रमाच्चतुरस्रादयो नव सन्निवेश्याः, स्त्रीणां तु यजमानत्वेन योन्याकाराखिव, अथवा यथोक्ताकारत्वेन स्थण्डिलत्वेन सर्वत्र हस्तमात्रं क्षेत्रं क्षेत्रफलं सममेव साध्यं तच्च परिभाषायामुपपादितम् ।

वटो-दुम्बरा-श्वत्थ-प्लक्षजानि चत्वारि तोरणानि दिग्गजाष्टकं तत्तद्विकालवर्णपताकाः, अष्टमङ्गलानि विश्वचक्रदाने वक्ष्यन्ते ।

अष्टहस्तप्रमाणं तुलास्तम्भयोरायतम् । आयामः, दैर्घ्यमित्यर्थः ।

‘हस्तद्वयसः, हस्तपरिमाणः तुलास्तम्भयोर्विष्कम्भ इत्यन्वयः ।

तस्मात् त्रिगुणःपरिणाहः ।

द्वाङ्गुलेनहीन इति, स एव परिणाहः ।

क्रमहान्या अग्रे अङ्गुलद्वयहीनःसम्पादनीयः ।

कामिकेतु । सप्त-षट्-पञ्चहस्तैस्तुपार्श्वस्तम्भोक्तयोमतः ।

अष्टहस्तादितश्चाथ द्विपञ्चद्वयसाङ्गुलः ॥

तुलास्तम्भस्य विष्कम्भो नाहस्तत्रिगुणोमुने ।

द्वयाङ्गुलविहीनन्तु सुवृत्तं निर्व्रणं तथा ॥

इति द्विपञ्चदशसाङ्गुलो दशाङ्गुलमानो विष्कम्भः ।

त्रिंशदङ्गुलः परिणाहः ।

स च क्रमहान्या अग्रे अष्टाविंशत्यङ्गुलइत्यर्थः ।

स्तम्भयोरन्तरं षडहस्तं चतुर्हस्तस्त्वा दृशस्तम्भोक्त्या नुरूपं विधेयम् ।

षडहस्तस्तम्भयोरन्तरालं गुणदैर्घ्यस्योपलक्षणम् ।

उत्तरञ्च विस्तारोत्सेधाभ्यां द्वादशाङ्गुलम् ॥

तत्प्रान्तरन्वयोस्तम्भाग्रशिखरे प्रवेश्य तोरणं निश्चाद्यम् ।

अथतुलादण्डस्य मानमाह ।

षट्त्रिंशन्मानमित्यादि ! व्यायामी नाम प्रसारितसबाहुहस्त-  
द्वयस्य तिर्यगन्तरालबाह्वोः करसंयुतयोः, व्यायामस्तिर्यगन्तर-  
न्तयोरित्यभिधानात् ।

ततः षट्त्रिंशदङ्गुलान्वितव्यायाममात्रन्तुलादण्डे दैर्घ्यं, विष्क-  
म्भमष्टमात्रमिति, अष्टाङ्गुलः सपञ्चयवस्तुलादण्डप्रान्तयोन्यासः ।

तत्रार्थाद्यवोनषट्त्रिंशदङ्गुलः परिणाहः । षट्त्रिंशन्मान-  
मात्रमिति, तुलादण्डमध्ये षट्त्रिंशदङ्गुलः परिणाहः । तत्रा-  
र्थात् द्वादशाङ्गुलो न्यासः ।

अष्टाङ्गुलेन विस्तारस्त्वग्रे भूतयवान्वितः ।

षट्त्रिंशन्मात्रनाहस्तु मध्यमे तु विधीयते,

इति कामिकोक्तेः ।

अग्रे मूले च मध्ये च हेमपट्टेन बन्धयेत् ।

पट्टमध्ये प्रकर्त्तव्यमवलम्बनकवयम् ॥

तान्मेण वाप्यरूप्येण आयमेनैव कारयेत् ।

मध्ये चोर्ध्वमुखं कार्यं अवलम्बं सुशोभनम् ।  
 रश्मिभिस्तोरणायै वा बन्धयेच्च विधानतः ॥  
 जिह्वामिकां तुलामध्ये तोरणञ्च विधीयते ।  
 उत्तरस्य तु मध्येऽथ शङ्कुद्वयमनुत्तमम् ।  
 वितानेनोपरिच्छाद्य दृढं सम्यक् प्रयोजयेत् ॥  
 सुदृढञ्च तुलामध्ये मानमङ्गुलमानतः ।  
 पटस्यैव तु विस्तारः पञ्चमात्रप्रमाणतः ॥  
 वध्नीयाच्चक्रपाशञ्च अवलम्बेन सुस्थितम् ।  
 शुल्बजौ च दृढौ विद्वान् बन्धनेन तु कारयेत् ॥  
 शिख्योऽधस्तात्प्रकर्त्तव्यौ पञ्चप्रादेशविस्तरौ ॥  
 सहस्रेण तु कर्त्तव्यौ पञ्चप्रादेशविस्तरौ ॥  
 सहस्रेण तु कर्त्तव्यौ पलेनाधारकाव्भौ ।  
 शताष्टकेन वा कुर्यात्पलानां षट्शतेन वा ॥  
 चतुस्तालप्रविस्तारं मध्यमं परिकीर्त्तितम् ।  
 सार्द्धत्रितालविस्तारो नियमश्च विधीयते ॥  
 पञ्चमात्रं चतुर्मात्रं त्रिमात्रं फलमुच्यते ।  
 चतुर्द्वारसमोपेतं द्वारमङ्गुलिनाथ वा ॥  
 कुण्डलैश्च समोपेतं श्लक्ष्णस्वच्छसमन्वितैः ।  
 कुण्डले कुण्डले कार्यं शृङ्खलापरिमण्डलम् ॥  
 शृङ्खलाधारवलयमवलम्बेन योजयेत् ।  
 प्रादेशं वा चतुर्मात्रं भूमित्यक्ता वलब्धयेत् ॥  
 धटौ पुरुषमात्रौ तु कर्त्तव्यौ शोभनावुभौ ।  
 द्विहस्तवालुकापूर्णे शिले तत्र विनिक्षिपेत् ॥

दिहस्तमात्रमवटो स्थापनीयौ प्रयत्नतः ।

शेषं सम्पूरयेत् विहान् वालुकाभिः समन्ततः ।

येन निश्चलतां गच्छेत्तेन मार्गेण कारयेत् ॥

‘अथ मूलइत्यादि, अवलम्बनकीलकप्रवेशार्थवेधनिवाता-  
दिना यथा तुला न शीर्येत तथा हेमादिना पट्टबन्धस्तुलायाः  
कार्यः ।

अवलम्बनं, समशृङ्खलादिसंश्लिष्टवलयधारोच्छ्रकतुण्डा-  
कारोभयाग्रलम्बनं कार्यं, अथवा तुलामध्यावलम्बनस्थाने ऊर्ध्वमुखं  
ताम्रादिकीलकं निधाय तन्मूलच्छिद्रप्रोततिर्यक्कीलकस्थितं  
मध्यकीलकोभयपार्श्वस्थायि ताम्रादिमयं तोरणं कृत्वा तदग्रवलय-  
बन्धरश्मिभिरुत्तराधोऽवलम्बितं वलयं संयोजयेत् । जिह्वामिका  
मिति, पूर्वोक्त एव तुलामध्यवर्ती ऊर्ध्वमुखः कटकाख्यः कीलकः,  
जिह्वातोरणमपि प्रागुक्तमेव, एतच्च सुवर्णकारादिनक्षुतुलासु-  
दृश्यते । उत्तरस्यद्विति, उत्तरमध्यावलम्बितकुण्डलाग्रोऽयः-  
शङ्करूढमुखस्तस्य मूले उत्तरोपरिचितानवद्वितं लोहपट्टं  
निधाय तदुपरि तन्मूलं द्विधाभूतं तिर्यग्वितत्य घटयेत् ।

शङ्कुः सुषिरसम्पन्न इति, कुण्डलिताग्रे उत्तममध्यावलम्बितेऽ-  
धोमुखशङ्को तुलामध्योर्ध्वमुखालम्बनशङ्कोचैकं वलयमङ्गुष्ठमूलं  
नियोजयेत् \* शङ्कुः सुषिरसम्पन्नो वलयेनसमन्वित इति कामि-  
कोक्तेः । पट्टस्येति, पूर्वोक्तपट्टस्येयं मानीतिः, पञ्चमात्रं यवा-  
ङ्गुलं, वग्नोयादिति, तुलाप्रान्तावलम्बाभ्यां तत्तच्छिष्यशृङ्खला-  
धारं चक्रपाशाख्यं वलयं योजयेत् । शुल्वं ‘ताम्रं’ । आधारा-

योतयेदिति पाठान्तरम् ।

विति, ताम्रपलानां दशाष्टशतैः क्रमान् पञ्चादिप्रादेश  
विस्तारौ पञ्चचतुस्रङ्गुलोच्छ्रितप्रान्तावङ्गुलनाहचतुःच्छिद्रप्रोत  
चतुर्वलयावितौ यजमानद्रव्यधाराधारकौ कार्यौ । तद्व-  
लयचतुष्कास्त्रिष्टुष्टङ्गलाचतुष्कं शिखाख्यमुपरिविरचितवलयद्वयं  
तुलायाधोवलम्बकौ योजयेत् । घटाख्याधाररन्ध्रचतुष्कं मधू-  
च्छिष्टेन संस्त्रिष्टं कार्यं, आधारौ च भूमेरुपरि, चतुरङ्गुल-  
मिति, प्रादेशमात्रे चान्तरिक्षेऽवलम्बौ, अवटौ तु दक्षिणो-  
त्तरस्तम्भनिखनार्थौ, अत्रस्तम्भयोः दक्षिणोत्तरत्वं तुलायाश्च  
प्राक्पश्चिमायतत्वमवधेयं । स्वमेयं चैन्द्रदिग्भागे सुवर्णं तत्र  
निक्षिपेदिति वक्ष्यमाणत्वात् । द्विहस्तवालुका पूर्णं तत्र शिले  
षट्शिलाख्ये निधाय वालुकाभिः प्रपूर्य्य दृढयेत् ।

श्रूयतां परमं गुह्यं वेदिकोपरि मण्डलम् ।

अष्टमङ्गल संयुक्तमङ्गुलाङ्गुश शोभितम् ॥

फलपुष्प समाकीर्णं धूपदीपसमन्विते ।

वेदीमध्ये प्रकर्त्तव्यं दर्पणोदरसन्निभे ॥

आलिखेन्मण्डलं पूर्वं चतुर्द्वारसमन्वितम् ।

शोभोपशोभासंयुक्तं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥

चुम्बिजातिसमीपे तं पञ्चवर्णञ्च कारयेत् ।

वज्रं भागुत्तरे भागे आग्नेयां शक्तिमुज्ज्वलाम् ॥

आलिखेद्दक्षिणे दण्डं नैऋत्यां खड्गमालिखेत् ।

पाशञ्च वारुणे लेख्यं ध्वजञ्च वायुगोचरे ॥

क्रौव्याञ्च गदां लेख्यं ईशान्यां शूलमालिखेत् ।

शूलस्य वामदेशे तु चक्रं पद्मञ्च दक्षिणे ॥

एवं लिखित्वा पश्चाच्च होमकर्म समारभेत् ।  
 प्रधानहोमं गायत्र्या स्वाहा-शक्राय वज्रये ॥  
 यमाय देवराजाय वरुणाय च वायवे ।  
 कुवेराय तथेशाय विष्णवे ब्रह्मणे पुनः ॥  
 स्वाहान्तं प्रणवेनैव होतव्यं विधिपूर्वकम् ।  
 स्वशाखाग्निमुखेनाथ जयादिप्रति संयुतम् ॥  
 स्थितान्तं सर्वकार्याणि कारयेद्देवित्तमः ।  
 सर्वहोमाग्रहोमे च समित्पालाशयोज्यते ।  
 एकविंशतिसंख्याकं मन्त्रेणानेन होमयेत् ॥

अयं न इक्ष्वा आत्माजातवेदस्तेनद्वास्व वर्धस्व चेदुवर्धय  
 चास्मान् प्रजया पशुभिर्वृक्षवर्चसेनान्नाद्येन समिधयः स्वाहा,  
 भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, भूर्भुवः स्वः स्वाहा । समि-  
 होमश्चरुणाञ्च घृतस्य च यथा क्रमम् ।

शुक्लान्नं पायसञ्चैव मुद्गानां चरवः स्मृताः ।

सहस्रं स्वातदूर्ध्वं स्वा शतमष्टोत्तरन्तु वा ।

अग्न आयूंषि पवस आशुवोर्जमिषञ्च नः आरेवाधस्व दुत्सुनां  
 अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः तमोमहे महा-  
 मयं अग्नेपवस्वस्वपा अन्ने वर्धः सुवीर्य्यं दधद्रायं मयि पोषं ।  
 प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव यत्का-  
 मास्ते, जुहुमस्वन्नो अस्त्वयममुथ पितामावस्य पिता वयंस्यामः  
 पतयो रैणां ५ स्वाहा ।

तत्तमर्च्यं सर्वहोमे त सामान्यं विधिपूर्वकम् ।

गायत्र्या च प्रधानस्य समिहोमस्तथैव न ॥

चरूणाञ्च तथाज्यस्य शक्रादीनाञ्च होमयेत् ।

वज्रादीनाञ्च होतव्यं सहस्राद्यं ततः क्रमात् ॥

ब्रह्मयज्ञानमन्त्रेण ब्रह्मणे विष्णवे नमः ॥

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः, प्रचोदयात् ।

अयंविशेषः कथितो होममार्गः सुशोभनः ।

दूर्व्याक्षीरसित्तेन पञ्चविंशत् पृथक् पृथक् ॥

तम्वकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं

उर्वारुकमिव ब्रध्मनान्मृत्यो मुक्षीय मामृतात् स्वाहा ।

दूर्वाहोमः प्रशस्तोयं वास्तुहोमश्च सर्वथा ।

प्रायश्चित्तमघोरिण सर्पिषाच शतं शतं ॥

अयतामित्यादि, पूर्वोक्तवेदिमध्ये सर्वतोभद्राख्यं मण्डलं लेख्यं तच्च शोभीपशोभागश्चात् पञ्चसारोक्तं दीक्षामण्डलं ग्राह्यं, एतयोर्लक्षणमुपवर्णितं परिभाषायां । वज्रमिति ।

मण्डलाद्वहिर्दिक्षु दिक्पालायुधानि लेख्यानि, गायत्रारौद्र्याः प्रधानकुण्डे होमः, तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो-रुद्रः प्रचोदयादिति, रुद्रगायत्री ।

स्वाहा शक्रायेत्यादि, प्रणवादिभिश्चतर्थीयुक्तैः स्वाहान्तैः शक्रादि लोकपालनामभिः प्राच्यादिकुण्डाष्टके होमः ब्रह्मविष्णो रपीशानकुण्डे होमः, कार्यः, स्वशाखाग्निमुखेन समिद्धेऽग्नौ प्रधानहोमानन्तरमाज्येन जयाद्युपहोमाः कार्य्याः, उक्तं ह्यापस्त-स्वेन यथा प्रदेशं प्रधानाहुतीर्हुत्वा जयाभ्यातान् राद्रभृतः प्राजापत्यान्ता व्याहृतिर्विहिता मौविष्टकृतिमित्युपजुहोति । इयञ्च जयाद्यक्तिः स्वस्वगृह्योक्तोपरिष्ठात् तन्नोपलक्षणार्था ॥

सर्वहोमः, प्रधानहोमः । तत्रापि, पालाशी, समित् । अत्र-  
होमः अन्वाधानेधानादिरूपः । सर्वहोमायहोमेच समित्  
पालाशयोच्यते, एकविंशतिसंख्याकमित्येतत् पृथक् वाक्यं ।  
तत्र व्याहृतिभिरन्वाधाने चतस्र समिधोहोतव्याः, अग्रंते इति-  
मन्त्रेण, परिधाद्यारानुयाजादिविनियुक्तावशिष्टेधाधानं कार्यं,  
इदञ्च स्वगृह्योक्तं पूर्वं तन्वोपलक्षणं अथ समिदादिहोमः कर्तव्यः  
तत्र चरवः शुडान्नाद्या इत्थं समिदादिपञ्चद्रव्याणि होम्यानि,  
अग्न आयूं षोढ्यादिमन्त्रचतुष्केणज्यहोमः प्रधानहोमात् पूर्व-  
कार्यं, रुद्रगायत्रैव प्रधानकुण्डे समिदाज्यचरुहोमः इन्द्रादि-  
दिक्पालानां स्वस्वमन्त्रेण तत्र कुण्डेषु सहस्रसंख्यः पञ्चशत-  
संख्योवाज्यहोमः प्रतिकुण्डं त्र्यम्बकेन पञ्चविंशतिसंख्यो दूर्वाहोमो  
वास्तोष्पते इतिमन्त्रेण वास्तहोमश्च विधेयः । शिखिपर्जन्यादि-  
तत्तद्देवतानामभिर्वास्तुहोमः तानि, च गृहदानप्रकरणे वक्ष्यन्ते,  
आज्येन शतसंख्यः प्रयश्चित्तहोमः, अयमिह सर्वोपिहोमः सपरि-  
वारेश्वरपूजनानन्तरं कार्यः, मध्यमे देवदेवेशं वामे गौरीसमायुत  
मित्यादिना देव पूजामुक्ताततो होमः प्रकर्तव्य इतिकामिकोक्तिः ।

ब्रह्माणं दक्षिणे वामे विष्णुं विश्वगुरुं शिवं ।

मध्ये वेद्या महादेवं इन्द्रादिगणसंहतम् ॥

आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरं ।

जघां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रिकामपि ॥

कायां पुष्टिं धृतिं तुष्टिं शाखोक्तायः महात्मने ।

विस्तरां शुभगाञ्चैव बोधनोच्च प्रदक्षिणं ॥



आध्यायिनोच्च संपूज्य देवं पद्मासने रविं ।  
 प्रभूतं प्राक् प्रकर्त्तव्यं विमलं दक्षिणे तथा ॥  
 सारं पश्चिमभागे च आराध्यं चोत्तरे यजेत् ।  
 मध्ये सुखं विजानीयात् केसरेषु यथाक्रमं ॥  
 दीप्तां सूक्ष्मां जयां भद्रां विभूतिं विमलां क्रमात् ।  
 आमोघां विद्युताञ्चैव मध्यतः सर्व्वतो सुखीम् ॥  
 सोममङ्गारकञ्चैव बुधं जीवमनुक्रमात् ।  
 भार्गवञ्च तथा मन्दं राहुं केतुं समन्ततः ।  
 पूजयेद्दोमयेदर्घ्यं दापयेच्च विशेषतः ॥  
 ब्राह्मणान् भेजयेत्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान् ।  
 विद्याध्ययनसम्पन्नान् कृत्वैवं विधिविस्तरं ॥  
 होमे प्रवर्त्तमाने च पूर्व्वदिक स्थानमध्यमे ।  
 आरीहयेद्दिधानेन रुद्राध्यायेन वै नृपं ॥  
 धारयेत्तत्र यज्वानं घटिकैकाविधानतः ॥  
 यजमानो जपेन्मन्त्रं रुद्रगायत्रिसंज्ञकं ।  
 घटिकाङ्गं तदर्द्धं वा तत्रैवासनमारभेत् ॥  
 आलोच्य वसनं धोमान् कूर्चहस्तः समाहितः ।  
 नृपश्च भूषणयुतः खड्गखिटकधारकः ॥  
 स्वस्तिऋषादिभिश्चादावन्ते चैव विशेषतः ।  
 पुण्याहं ब्राह्मणैः कार्य्यं वेद-वेदाङ्गपारगैः ॥  
 जय-मङ्गलशब्दादिब्रह्मशोषैः रुद्रोभनैः ।  
 नृत्य-वाद्यादिभिर्गीतैः सर्व्वशोभासमन्वितैः ॥  
 स्वमेव चैन्द्रदिग्भागे सुवर्णं तत निक्षिपेत् ।

तुलाधारौ समौ वृत्तौ तुलाभारस्तदाभवेत् ॥

ब्रह्माणमित्यादि, मध्ये ब्रह्मादिदेवतापरिवृतमौखरं संपूज्य  
ततः सूर्यं पूजयेत् ।

मण्डलात् प्राक् कल्पितकर्णिकामध्ये ऊषादित्यौ पूज्यौ ततः  
प्रभाभास्करी प्रज्ञाभानूदेवहुत्यादिमिथुनचतुष्कमाग्नयादि-  
कोणेषु पूज्यं, छायादिशक्तिचतुष्टयन्तु प्राच्यादिदिक्षु पूजनीयं  
विस्ताराद्यास्त्वान्नयादिष्वासनपादेषु, प्रभूतादयस्तु पूर्वादिष्वा-  
सनगात्रेषु परमसुखा तु मध्ये रवेरास्तरणं स्थापनीयं  
तदुपरि पूर्वोक्तं रविमादित्याख्यं पद्मोपरि पूजयेत्, दीप्ताद्या-  
स्तु केसरस्थाः शक्तयः तत्रापि सर्वतोमुखी कर्णिकायां  
पूज्या, ततोवहिर्दलाग्रेषु सोमाद्याः पूज्याः एवं शिवसूर्यौ  
समाराध्य शिवाग्नौ शैवोक्तमग्निकार्यञ्च कृत्वा सूर्यायाधं  
दत्त्वा होममुपक्रम्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा पूर्णाहुत्याः पूर्वं  
पुण्याहं तुलारीहणाङ्गं वाचयित्वा तुलारीहणं कारयेत् ।

शतनिष्काधिकं श्रेष्ठं तदङ्गं मध्यमं स्मृतम् ।

तस्याप्यङ्गं कनिष्ठं स्यात् त्रिविधिं तत्र कल्पितम् ॥

वस्त्रयुग्मं तथोष्णीषं कुण्डलं कण्ठभूषणम् ।

अङ्गुलीभूषणञ्चैव मणिबन्धस्य भूषणम् ॥

एनानि चैव सर्वाणि प्रारम्भे धर्मकर्मणि ।

पुरोहिताय दत्त्वाथ ऋत्विग्भ्यः संप्रदापयेत् ॥

पूर्वोक्तभूषणं सर्वं शोष्णीषं वस्त्रसंयुतं ।

दद्यादेतत् प्रयोक्तव्यः कुण्डलाच्छादनं \* बुधः ॥

दक्षिणाञ्च शतं चार्द्धं \* विप्राय प्रतिपादयेत् ।  
 ऋत्विजाञ्चैव सर्व्वेषां दशनिष्कान् प्रदापयेत् ॥  
 यागोपकरणं द्रव्यमाचार्याय प्रदापयेत् ।  
 इतरेषां द्विजानान्तु पृथगिष्टं प्रदापयेत् ॥  
 दक्षिणाञ्च पुरोहितद्विजेभ्यो दापयेत् स्वयम् ।  
 आचार्य्येषु प्रदातव्यं श्रोत्रियेभ्यो विशेषतः ॥  
 वन्दीकृतांश्च विसृजेत् कारागृहनिवेशितान् ।  
 सहस्रकलसेनैव स्नापयेत् परमेश्वरम् ॥  
 घृतेन केवलैनापि देवदेवमुमापतिं ।  
 पयसा वाथ दध्ना वा सर्व्वद्रव्यैरथवापि वा ॥  
 ब्रह्मकूर्चैर्वा देयं पञ्चगव्येन वा पुनः ।  
 गायत्र्याचैव गोमूत्रं गोमयं प्रणवेन च ॥  
 आप्यायस्वेति वै क्षीरं दध्नाक्वावेति वै दधि ।  
 तेजोसीत्याज्यमीशानं मन्त्रेणैवाधिषिञ्चयेत् ॥  
 देवस्यत्वेति देवेश कुशाम्बु कलसैर्नवैः ।  
 रुद्राध्यायेन सर्व्वं शं स्नापयेत् परमेश्वरम् ॥  
 सहस्रकलसैः शम्भोर्नाम्नाञ्चैव सहस्रकैः ।  
 विष्णुना कथितैर्व्वाथ नन्दिना कथितैस्तु वा ॥  
 दक्षेण मुनिमुख्येन कौर्त्तितेनापि वा बुधः ।  
 महापूजा च कर्त्तव्या महादेवस्य भक्तिनः ॥  
 शिवार्चकाय दातव्या दक्षिणार्द्धा गुरोः शुभा ।  
 देवार्चकानां सर्व्वेषां दक्षिणा च यथा क्रमं ॥

दीनान्धकृपणानाश्रयाल-वृद्ध-कृशातुरान् ।

भोजयेच्च विधानेन दक्षिणामपि दापयेत् ॥

वस्त्रयुग्ममित्यादि, वस्त्रयुग्मेष्विषकुण्डलादीनि तु प्रारम्भ एव वरणान्तरं कृतमधुपर्कभ्यः पुरोहितब्रह्मर्त्विक्सदस्येभ्यो-  
दद्यात् आचार्य्याय द्विगुणं । द्विगुणं गुरवे दद्यात् भूषणाच्छा-  
दनादिकमिति मत्स्योक्तेः । एतत् प्रयोक्तृभ्यः शतादिनिष्कनिर्मितं  
प्रागुक्तभूषणञ्च दद्यात् । दक्षिणाञ्चेति, शतादिदक्षिणामाचार्या  
य दत्त्वा ऋत्विग्भ्योस्तु दशनिष्कानि, इतरेषां परिचारकाणां तु  
निष्कमात्रं । यत्र कर्मकरास्तेभ्यः पृथक्निष्कं प्रदापयेदितिका-  
मिकोक्तेः । तुलाधिरूढं द्रव्यमन्येभ्य एव दातव्यमिति कामिक-  
मतम्, तुलाधिरोहितं वित्तं ब्राह्मणेभ्यः प्रदापयेत् । मङ्गलेभ्यो-  
विशेषेण मदर्थं वापि कल्पयेत् । देशिकेभ्योविशेषेण दद्यात्  
अद्वासमन्वित इति ।

अथ महाभिषेकपूजातत्कर्तृदक्षिणा च कार्येत्याह, सहस्र-  
कलशेत्यादिना, सर्वद्रव्यैः सुवर्णफलरत्नोदकपञ्चामृताद्यैः, अद्वा  
दक्षिणेति, तुलारोहणाचार्य्यदक्षिणाप्रमाणार्द्धं, शिवार्चकादिभ्यो  
दक्षिणादानमिति, कामिकेतु महाभिषेकपूजानन्तरं तुलारो-  
हणमुक्तं, यत् मण्डले पूजितान् सर्वान् देवानभ्यर्च्य होमयेत् ।

पूर्णाहुत्यादिचैवैनां क्रियामत्र समापयेत् ।

सहस्रकलशाद्यैश्च संस्त्राप्य परमेस्वरम् ।

महापूजा च कर्त्तव्या प्रभूतहरिषान्विता ।

पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः क्षीराद्यैः स्नपनन्तु वा ।

ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्तुलारोहणमाचरेत् ॥

अथ दक्षिणादानान्तरं पूर्णाहुत्याद्युत्तरतन्त्रसमापनं पूण्याह  
वाचनञ्च कार्यमिति सिद्धिः सहस्रकलशैः सहस्रनामभिरीशानं  
स्नापयेदित्यभिहितं तदुक्तं लिङ्गपुराणोक्तमेव, नामसहस्रमालि-  
ख्यते,

ऋषय जतुः । नाम्नां सहस्रं रुद्रस्य नन्दिना ब्रह्मयोगिना ।

कथितं ब्रह्मवेदार्थं सकलं सूत सुव्रत ।

नाम्नां सहस्रं विप्राणां वक्तुमर्हसि शोभनम् ॥

सूत उवाच । सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः ।

अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नां सर्वस्य सुव्रत ॥

यज्जप्त्वाच मुनिश्रेष्ठोगाणापत्यमवाप्नुयात् ।

तदहं संप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥

ओं स्थिरः स्थाणुः प्रभुः भानुः प्रभवो वरदो वरः ।

सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वकर्मकरो भवः ॥

जटी चर्मा शिखण्डी च सर्वगः सर्वभावनः ।

हरिश्च दक्षिणाख्यश्च सर्वभूतहरप्रभुः ॥

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियन्ता चामनोद्भवः ।

श्मशानचारी भगवान् खचरोगो वरोदनः ॥

अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतधारणः ।

उन्मत्तवेषः प्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥

महारूपो महाकायः सर्वरूपो महायशः ।

महात्मा सर्वभूतश्च विरूपो वामनो नतः ॥

लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्राभासो भवनोरुचिः ।

पवित्रश्च महाश्चैव नियमो नियमाश्रितः ॥

सर्वकर्मादिकर्माणा \* मादिरादिकरोनिधिः ।  
 सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमोदक्षः सुधाकरः ॥  
 चन्द्रसूर्यासनः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्मतिः ।  
 आदिराज्यो भयंकर्त्ता मृगवाणार्पणो नवः ॥  
 महातपोघोरतपा आदर्शनैकसाधकः ।  
 संवत्सराक्षतो मन्त्रः प्रमाणं परमन्तपः ॥  
 योगाचार्यो महाविम्बो महारेता महाबलः ।  
 सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुवीजो वृषवाहनः ॥  
 दशबाहुस्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः ।  
 विश्वरूपस्तपश्चेष्टो बलवीरो बलाग्रणीः ॥  
 गणकर्त्ता गणपतिर्दिग्वासा काम्यएव च ।  
 मन्त्रवित् परमो मन्त्रः सर्वभावकरो हरः† ॥  
 कमण्डलुधरो धन्वी बहुहस्तः कपालवान् ।  
 अशनीशः शतघ्नीशः खड्गवाणायुधो महान् ॥  
 अजश्च मृगरूपश्च तेजस्तेजःकरो विधेः ।  
 उष्णीषो वस्त्रवल्कश्च उदक्तो विनतस्तथा ॥  
 दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्णएव च ।  
 शृगालरूपः सर्वार्थो मुण्डः सर्वशुभङ्करः ॥  
 सिंहशार्दूलरूपश्च गान्धारो च कपर्द्यपि ।  
 जडरेता जडलिङ्गी उड्डीशायी नभस्तुलः ॥  
 त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रः सेनापतिर्भुवः ।

\* सर्वकर्मादिधर्माणामिति क्वचित्पाठः ।

† मन्त्रः सर्वकरो हर इति पाठान्तरम् ।

अहीराचश्चरत्तश्च त्रिवन्मन्युः सुवर्चसः ॥  
 गन्धर्वहा दैत्यहाच कालधानी\* गुणाकरः ।  
 सिंहशार्दूलरूपाणामर्द्धचन्दधरोहरः ॥  
 निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः ।  
 बहुरूपोबहुधनः सर्वसारो मृतोहरः ॥  
 नित्यप्रियोनित्यमृत्युर्नर्त्तनः सर्वलोलुपः ।  
 सकार्मुकीमहाबाहुर्महाघोरोमहातपाः ॥  
 महासारोमहापाशो नित्योगिरिकरोनतः ।  
 सहस्रहस्तोविजयोव्यवसायोर्थनन्दितः ॥  
 अमर्षणीय धर्मात्मा वज्रहा कामनाशनः ।  
 दक्षहा† परिचारीच प्रसहोमध्यमस्तथा ॥  
 तेजोपहारी बलवान् विदितोभ्युत्कृतिो वहः ।  
 गम्भीरघोषगम्भीरो गम्भीररववाहनः ॥  
 न्यग्रोधरूपो‡ न्यग्रोधो विश्वकर्मा विभुर्वहुः ।  
 तोत्तोपायश्च हर्ष्यश्च रूद्रीयः कर्मकायवित् ॥  
 विष्णुप्रसादितो यज्ञः सुमुखोवड्‌वामुखः ।  
 हुताशनसहायश्च प्रशान्तात्मा हुताशनः ॥  
 उग्रतेजा महातेजा विजयोजयकालवित् ।  
 ज्योतिषोनयनः सिद्धिः सिद्धविग्रहएव च ॥  
 खड्गी दण्डी जटी लाली वर्डनीव्यधनीवली ।  
 चीणी विपणचीनालीवली कलकदुस्तथा ॥

\* कालोधातेति पाठान्तरम् ।

† न्यधारक इति वा पाठः ।

शवरूपोनिनादीच सर्वथाह्यपरिग्रहः ।  
 व्यालरूपोविलावासी इहा पालस्तरंगवित् ॥  
 देशश्रीमालवृक्षर्मा सर्वावलविमोचनः ।  
 वन्धनश्चासुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशनः ॥  
 सद्यः प्रमोदीदुर्वापः सर्वायुधनिषेवितः ।  
 प्रस्कन्दोय विभागश्च अतुल्योयज्ञमानवित् ॥  
 सर्ववासः सर्वधारीदुर्वासा वासवोनरः ।  
 हैमी हैमकरोयज्ञः सर्वधारीधरोधमः ॥  
 आकारोह्यध्वनिवहोमरुसङ्गः प्रतापवान् ।  
 भिक्षुश्च भिक्षारूपीच रौद्ररूपः सुरासवी ॥  
 वसुयशोवसुवर्चावसुवेगेवसुप्रदः ।  
 सर्वावासीचयोवासोस्वपदेशकरोवरः ॥  
 मुनिरात्मा मुनेर्लीकसभाज्यश्च सहस्रभुक् ।  
 पक्षी च पक्षिरूपश्च आदिदीपो विशंपतिः ॥  
 समीरोदमनोङ्कारोह्यर्थीह्यर्थकरोवरः ।  
 वासुदेवश्च वामश्च वामदेवश्च वामनः ॥  
 सिद्धयोगोपहारी च सिद्धः सर्वार्थसाधकः ।  
 अक्षुण्णः क्षुण्णरूपश्च वृषणोऽदुरव्ययः ॥  
 महासेनो विशाखश्च षष्टिभागोगवांपतिः ।  
 शुक्लहस्तस्तु विष्टम्भीवकस्तम्भनग्नव च ॥  
 अतावतत्कलस्त्रातोह्यकर्मा सुकरोभवः ।  
 वानस्पत्यावाजसनेनित्यमायमपूजितः ॥  
 ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वाचारः सचारवित् ।



ईशान ईश्वरकरोनिशाचारीह्यनेकधृत् ॥  
 निमित्तस्थोनिमित्तं च नन्दीनन्दिकरोहती ।  
 नन्दीश्वरश्च नन्दीच नन्दनेमिप्रवर्द्धनः ॥  
 भगहारीनिहन्ताच लोकालोकपितामहः ।  
 चतुर्मुखो महालिङ्गश्चारुलिङ्गस्तथैव च ॥  
 लिङ्गाध्यक्षोवराध्यक्षः कालाध्यक्षो युगावहः ।  
 बीजाध्यक्षो बीजकर्त्ता बुद्ध्यात्मानुगतोबलः ॥  
 अतिहासश्च कल्पश्च दमनोजगदीश्वरः ।  
 दम्भोदम्भकरालम्भो वंशोवंशकरः कली ॥  
 लोककर्त्ता पशुपतिः महाकर्त्ताह्यधोक्षजः ।  
 अक्षरं परमं ब्रह्म बलवान् शुक्र एव च ॥  
 नित्योद्यमीशः शुद्धात्मा सिद्धोमानो गतिर्हविः ।  
 प्रसादस्तवनोदीर्घोदर्यणोहव्यमिन्द्रजित् ॥  
 वेदाकारः सूत्रकारो विद्वांश्च परमर्हणः ।  
 महामेघनिवासीच महाघोरो वशीकरः ॥  
 अग्निज्वालोमहाज्वालो अभिधूम्रावृत्तोरदिः ।  
 ब्राह्मणः शङ्करोनित्योवर्चस्वीधूम्रकेतनः ॥  
 नीलस्तथाङ्गलुप्तश्च शोभनो निरवग्रहः ।  
 स्वस्त्यस्वस्तिविभावश्च भाषीभागकरोलघुः ॥  
 उल्लङ्गश्च महागर्भः परायणपरायवान् ।  
 कृष्णः कर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियः सहवाणिकः ॥  
 महापादो महाहस्ता\* मायाकायोमहायशः ।

महास्पर्शी महामात्रो महानेत्रो विशालयः ॥  
महास्कन्धो महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः ।  
महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः श्मशानवान् ॥  
महावक्त्रो महातेजाः कन्दरात्मा मृगालयः ।  
लवणो लवणोदयश्च मामयश्च पयोनिधिः ॥  
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वोमहामुखः ।  
महानलोमहारोमा महाकेशोमहारजाः ॥  
अशपलप्रसादश्च प्रत्ययोगी च साधकः ।  
प्रसेवो अपानश्च आदिकर्मा महामुनिः ॥  
वृषकोवृषकेतुश्च अनलोवायुवाहनः ।  
मण्डली मेरुवासश्च देववाहन एव च ॥  
अथर्वशीर्षोसोमोर्ध्वभुक् सहस्रो जिनाकसः ।  
यज्ञपादभुजोगुह्यः प्रकाशोजास्तथैव च ॥  
अमोघार्थप्रमादश्च अन्तर्भाव्यः सुदर्शनः ।  
उपहारप्रियः सर्वः कनकः काञ्चनस्थिरः ॥  
नाभितुण्डकरोहिण्यः पुष्करःऽस्थावरःस्थिरः ।  
द्वादशस्त्रोधनं वाह्येयज्ञेयज्ञसमाहितः ॥  
नक्तोनीलः कविःकालो मकरःकालपूजितः ।  
शुक्लः स्त्रीरूपकृतपः शुचिभूतनिषेवितः ॥  
आश्रमस्थः कपोतस्थो विश्वकर्मा पवित्रराट् ।  
विशालः शालस्ताम्बोष्ठो ह्यंबुजातः सुनिश्चयः ॥  
कपिलः कलशः शूलश्चायुधश्चैव रोमसः ।  
गन्धर्वो ह्यदितिस्ताक्ष्यो ह्यविज्ञेयः सुसारदः ॥

परस्वधायुधो देवो ह्यर्यकारौ सुबान्धवः ।  
 जतुवीणे महाकोप ऊर्ध्वरेता जलेशयः ॥  
 उग्रवंशकरो वंशो वंशवन्द्या ह्यनिन्दितः ।  
 सर्वाङ्गरूपी मायावी सुहृदो ह्यनिलो नलः ॥  
 बन्धने बन्धकर्त्ता च सबन्धनविमोचनः ।  
 राक्षसादिश्च कामारिर्महादंष्ट्रसमायुधः ॥  
 बहुत्वनिन्दितः सर्वशङ्करः स्थाय्यकोपनः ।  
 अमरेशो महाघोरो विश्वदेवः सुरारिहा ॥  
 अहिर्वृधातिरन्तिश्च चेकितानो हली तथा ।  
 अजैकपाच्च कामाली शङ्करोजो महाधरः ॥  
 धन्वन्तरिर्धूमकेतुः शून्यो वैश्रवणस्तथा ।  
 धाता विष्णुश्च शङ्खश्च त्रयी त्वष्टा धरो ध्रुवः ॥  
 प्रभासः सर्वतो वायुरर्थमा सविता रविः ।  
 धृतिश्चैव विधाता च मान्वाता भूतवाहनः ॥  
 तीरस्तीव्रश्च भीमश्च सर्वकर्मा गुणोद्वहः ।  
 पद्मगर्भो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रो नभोनयः ॥  
 फलपाशोपशान्तश्च पुराणः पुण्यकृत्तमः ।  
 क्रूरकर्त्ता क्रूरवासी धनुरात्मा महौषधं ॥  
 सर्वायशः सर्वचारी प्राणेशः प्राणिनां पतिः ।  
 देवदेवसुरोत्सिक्तः सदसत्सर्वरत्नवित् ॥  
 कैलासादिगुहावासी हिमवद्भिरसंश्रियः ।  
 कुलहारी कुलकर्त्ता बहुभिन्नो बहुप्रजः ॥  
 प्राणेशो वर्धकी वृक्षा वकुलश्चादकिस्तथा ।

सारग्रीवो महाजव्विलालश्च महौषधी ।  
 सिद्धान्तकारो सिद्धान्तश्छन्दोव्याकरणोत्तरः ॥  
 सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहकः सिंहवाहनः ।  
 प्रभावात्मा जगत्कालः कालकम्पी तनूतनुः ॥  
 सारङ्गो भूतवक्राङ्गः केतुमाली भवेन्धन\* ।  
 भूतालयो भूतपतिरहेरात्रि पलो मलः† ॥  
 अस्त्रहृत् सर्वभूतानां निश्चलश्चलविद्वधः ।  
 अमोघः संयमो हृष्टो भोजनः प्राणधारणः ॥  
 धृतिमान्मतिमांस्त्यक्तः सक्तस्तु युगाधिपः ।  
 गोपालो गीयुवाग्रामोगो चर्मवसनो हरः ॥  
 हिरण्यवाहुश्च तथा गुहावासः प्रवेशनः ।  
 महामन्ता महाकालो जितकामो जितेन्द्रियः ॥  
 गान्धारश्च सुरापश्च तापकर्म्मरतो हितः ।  
 महाभूतो भूतवृत्तो ह्यस्पर्शी गणसेवितः‡ ॥  
 महाकेतुधरो धाता नैकतानरतश्च सः ।  
 अवेदनीय आवेद्यः सर्वगश्च सुखावहः ॥  
 तोरणस्तरणी धातुः परिधापत्तिरुर्जितः ।  
 संयोगवर्द्धनो वृद्धो गुणिकोय गुणाधिपः ॥  
 नित्यो धाता सहायश्च देवासुरपतिः पतिः ।  
 अविमुक्तश्च बाह्वश्च सृदेवोपि सुपर्वणः ॥

\* भवेधनमिति वा पाठः ।

† मल इति क्वचित् पाठः ।

‡ सेविन इति क्वचित् पाठः ।

आषाढश्च सुषाढश्च स्कन्दो हरिदो हरः ।  
 वपुरावर्त्तमानान्यो वपुःश्रेष्ठो महावपुः ॥  
 शिरोहरोपि मर्षण्यः सर्वलक्षणलक्षितः ।  
 अक्षयो रथगीतश्च सर्वभोगी महाबलः ॥  
 समायोज्यमहामायस्तोर्थदेवो महापथः ।  
 निर्जीवो जीवनो मन्त्रः सुभगो बहुकर्टकः ॥  
 रत्नभूतोय रत्नाङ्गो महार्णवनिनादभृत् ।  
 मूलो विशाखो ह्यमृतो व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः ॥  
 आरोहणोतिरोहश्च शीलधारी महात्तपाः ।  
 महाकण्ठो महायोगी युगो युगकरो हरिः ॥  
 युगरूपो महारूपोवनतो गहनाञ्चनः ।  
 न्यायनिर्वापणः पादः पण्डितो ह्यवलो यमः ॥  
 बहुमालो महामालःशिपिविष्टः सुलोचनः ।  
 विस्तारो लवणं रूपं कुसुमांशः पलोदयः ॥  
 वृषभो वृषभाङ्गाङ्गो मणिविम्बो जटाधरः ।  
 इन्दुर्विसर्गः सुमुखः शरसर्वायुधैः सह ॥  
 निवेदनःसुधाताचः स्वर्गदारीमहाधनः ।  
 गन्धमाली च भगवान्नर्त्तनः सर्वलक्षणः ॥  
 सन्तानवाहुः सकलः सर्वमङ्गलवाचनः ।  
 चलस्ताली करस्ताली उदंशः संयमी युवा ॥  
 यन्त्रतन्त्रसुविख्यातो लोकसर्वायथो मृदुः ।

मुण्डो विरूपो विकृतो दौमतेजाः सहस्रपात् ॥  
 सर्वमूर्धा सर्वदेवः सर्वदेवमयो गुरुः ।  
 सहस्रबाहुः सर्वाङ्गः शरण्यः सर्वलोकधृक् ॥  
 काष्ठा कला मुहूर्त्तं वा मात्रा वा पक्षपक्षकः ।  
 विश्वक्षेत्रप्रदो वीजं लिङ्गमध्यस्तु निर्मलः ॥  
 सदसद्वाक्ताधीनामा माता भ्राता पितामहः ।  
 स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं सुखद्वारं त्रिविष्टपम् ॥  
 निर्वाणहृदयश्चैव ब्रह्मलोकः परा मतिः\* ।  
 देवासुरविनिर्माता देवासुरगणाधिपः ॥  
 देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणायणीः ।  
 देवाधिदेवी देवर्षिर्देवासुरसुधाप्रदः ॥  
 देवासुरेश्वरोविष्णुर्देवासुरमहेश्वरः ।  
 सर्वदेवमयोचिन्त्यो देवतात्मात्मसम्भवः ॥  
 उद्गतस्त्रिक्रमो वैद्यो विराजो वीरजो वरः ।  
 द्रुडो हस्तिपुरव्याघ्रो देवसिंहो मरप्रभुः† ॥  
 विबुधश्च‡ सुरश्रेष्ठः स्वर्गदेवतपोधनः ।  
 संयुक्तोऽयोभनो वक्ता आशायी प्रभवोऽव्ययः ॥  
 गुरुः कान्तो निजः सर्गः पवित्रं सर्ववाहनः ।  
 शृङ्गी शृङ्गप्रियो ब्रह्मराजराजो निराश्रयः ॥  
 अविरामः संस्मरणोऽनिरामः सर्वसाधनः ।

\* पराजतिरिति रिति वा पाठः ।

† परि प्रभुरिति वा पाठः ।

‡ विबुधाय इति वा पाठः ।

ललाटाक्षो विश्वदेहो हरिणी ब्रह्मवर्चसः ॥  
 स्थावराणां पतिश्चैव नियमेन्द्रियवर्द्धनः ।  
 सिद्धार्थः सर्वभूतार्थो चिन्त्यसत्यव्रतः शुचिः ॥  
 व्रताधिपः परं ब्रह्म मुक्तानां परमा गतिः ।  
 विमुक्तो मुक्ततेजश्च श्रीमान् श्रीवर्द्धनो जगत् ॥  
 यथाप्रधानं भगवानिति भक्त्या स्तुतो मया ।  
 भक्तिमेधं पुरस्कृत्य महायज्ञपतिर्विभुः ॥  
 ततोभ्यनुज्ञां प्राप्यैवं सूतो गतिमताङ्गतिः ।  
 तस्माल्लब्धस्तवः शम्भोर्नृपस्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्य महायशः ।  
 गाणपत्यं परं प्राप्य प्रसादात्तस्य यत् प्रभोः ।  
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि आवयेद्वाङ्मणानपि ।  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति वै द्विजः ॥  
 ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।  
 शरणागतघाती च मित्रविश्वभघातकः ॥  
 मातृहा पितृहा चैव वीरहा भ्रूणहा तथा ।  
 संवत्सरं क्रमाज्जप्त्वा त्रिसन्ध्यं शङ्कराश्रमे ।  
 देवभिष्ट्वा त्रिसन्ध्यञ्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 इति लिङ्गपुराणोक्तस्तुलापुन्यदानविधिः ।

श्रीशङ्करउवाच । तुलादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् ।

वह्नीर्या चरितं पूर्वं लक्ष्म्या नारायणेन च ॥

पुण्यं दिनमग्रासाद्य तृतीयायां विशेषतः ।

गोमयेनानुलिप्तायां भूमौ कुर्याद्वटं शुभम् ।

दारवं शुभवृक्षस्य चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥  
 सुवर्णं तत्र बध्नीयात् स्वशक्त्या घटितं घटे ।  
 सौवर्णं स्थापयेत्तत्र वासुदेवं चतुर्भुजं ॥  
 शक्त्या द्वयंतु बध्नीयात् स्थापयेत् पिटके ततः ।  
 तत्पारुहेत्स्वस्त्रास्त्रः पुष्पा-लङ्कारभूषितः ॥  
 अभीष्टां देवतां गृह्य स्नापयित्वा घृतादिभिः ।  
 तुलादानस्य सर्वस्य विधिरेषः प्रकीर्तितः ॥  
 प्रथमा तु घृतस्योक्ता तेजोवृद्धिकरी तुला ।  
 मात्तिकेन तु सौभाग्यं तैलेन बहुलाः प्रजाः ॥  
 वस्त्रस्य दिव्यवस्त्राणि प्राप्नोति तुलया ध्रुवं ।  
 लवणस्य तु लावण्यमरोगित्वं गुडस्य तु ॥  
 असपत्नी शर्करया सुरूपा चंदनेन च ।  
 अवियुक्ताभवेद्भर्त्रा तुलायाः कुङ्कुमस्य च ॥  
 नसंतापो हृदि भवेत्क्षीरस्य तुलया सदा ।  
 सर्वकामप्रदाः सर्वाः सर्वपापक्षयंकराः ॥  
 यो ददाति तुलाः सर्वाः स गौर्यालयमाप्नुयात् ।

मन्त्रेण दद्यादभिमन्त्रितां तु सक्लत्तुला मेकतमां द्विजेभ्यः ।  
 स याति गौर्याः सदनं सुपुण्यैर्नशोक-दौर्गत्यमुपाश्रुते पुमान् ॥  
 त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणं परिकीर्तिता ।  
 मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोस्तु ते ।  
 इत्यारुह्य क्षणं स्थित्वा चिन्तयित्वा हरिप्रियां ॥  
 अवरुह्य ततो दद्यादर्द्धं पादमथापि वा ।  
 गुरुं संपूज्य विधिवत् सर्वालङ्कारभूषणैः ॥



विसर्जयेन्नमस्कृत्य भोजयित्वा विधानतः ।  
 श्रेष्ठं द्विजेभ्यो दातव्यं स्त्रीभ्योन्येभ्यस्तथैव च ॥  
 द्रष्टव्यं विशिष्टानामश्रितानां कुटुम्बिनां ।  
 कदलीदलसंस्थान्तु पञ्चपिण्डां हिमाद्रिजां ।  
 कर्पूरस्य तुलापूज्या कुङ्कुमेनालभेत्तु तां ॥  
 अवरुह्य तुलायास्तु गुरवे तां निवेदयेत् ।  
 विधिनानेन योदद्यात् तूलादानं विमत्सरः ॥  
 सलोकमेति पार्वत्याः सेव्यमानोऽप्सरोगरैः ।  
 तत्रोत्थ कालं सुचिरमिहलोके नृपो भवेत् ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्ती घृतादितुलापुरुषदानविधिः ।

कृष्णउवाच । अनेनैव विधानेन केचिद्रूप्यभयं पुनः ।

कर्पूरेण तथेच्छन्ति किञ्चिद्वाङ्मण्यपुङ्गवाः ॥  
 अनेनेति, मुख्यतुलापुरुषदानकथितेनेत्यर्थः ।  
 तथा सितवतीयायां नार्थः सोभाग्यदर्पिताः ।  
 कुङ्कुमेन प्रयच्छन्ति लवणेन गुडेन वा ।  
 तत्र मन्त्रा न होमा वा एवमेव प्रदापयेत् ॥

आह विश्वामित्रः ।

आदित्ये राहुणा ग्रस्ते सुवर्णं स्तोलयेत्तनुं ।  
 सोमग्रहेतु रूप्येण यथादानं तथा शृणु ॥  
 प्रवर्ग्यस्य मुखेयुक्त उत्पन्नपत्रदेहतः ।  
 सर्वपापहरायैतद्दामि प्रीयतां विधुः ॥  
 द्रव्यचार्यं जलं त्वप्सु निक्षिपेत् द्विजसत्तमः ।  
 प्रीयन्ते पितरः कांस्ये ताम्ने चैव पितामहाः ।

लवणे सिन्धुजे लक्ष्मीः प्रीयते पार्वती गुडे ।  
 गन्धैर्गुडो वा वासोभिः सौभाग्यं लवणे परं ॥  
 प्रीयतां विश्वधाप्रीतिर्दानमन्तोभिधीयते ।  
 तुलापुरुषतो राजन् याहि तत् परमं पदं ॥  
 सर्वपापविश्वद्वान्मा मुक्तिं यान्त्यपुनर्भवां ।  
 हत्वा तु ब्राह्मणं भूयस्तोलयेदात्मनस्तनुं ।  
 सुवर्णेनात्मतुल्येन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥

इति रूप्यादि तुलापुरुषः ।

अथ गारुडपुराणे । सनत्कुमार उवाच ।

तुलापुरुषदानन्तु शृणु मृत्युञ्जयोद्भवम् ।  
 अष्टलोहं प्रदातव्यं सर्वरोगोपशान्तये ॥  
 कांस्यञ्च यक्षणे देयन्तपु चार्शीविकारके ।  
 अपस्मारे च मीसं स्यात् ताम्रं कुष्ठे सुदारुणे ॥  
 पैत्तलं रक्तपित्ते च रूप्यं प्रदरमेहयोः ।  
 सौवर्णं सर्वरोगेषु प्रदद्यान्मृत्फलोदनम् ॥  
 फलोद्भवं तथा दद्याद्ग्रहणे दीर्घदारुणे\* ।  
 गौडं भस्मकरीगेषु योगन्तु गण्डमालके ॥  
 जाङ्गलञ्चाग्निनां मान्द्ये रोमीत्याते तु पौष्पकम् ।

जाङ्गलं काष्ठजमिति ।

मधूद्भवं तथा देयं काश-श्वास-जलोदरे ।  
 घृतोद्भवं तथा देयं हृदि रोगोपशान्तये ॥  
 क्षीरं पित्तविनाशाय दाधिकं भगदारुणे ।

\* दीर्घं वारुणे क्वचित् पाठः ।

लावणं बलनाशाय पैशं दद्रुविनाशने ॥  
 अन्नञ्च सर्वरोगस्य नाशने स्मृतमेव च ।  
 अधिदैवतं लोहे च महाभैरव उच्यते ॥  
 कांस्ये तु पूषाश्विनौ च वायुश्च सैसके स्मृतः ।  
 ताम्ब्रे सूर्यस्तथा प्रोक्तः पैत्तले च कुजस्तथा ॥  
 रूप्ये च प्रितरो ज्ञेयाः सुवर्णे सर्वदेवताः ।  
 फले सोमो गुडे चापस्ताम्बूले तु विनायकः ॥  
 गन्धर्वाः कुसुमे चैव जाङ्गलेग्निस्तथा स्मृतः ।  
 मधौ यक्षाः प्रयत्नेन घृते मृत्युञ्जयः स्मृतः ॥  
 क्षीरे तारागणाः सर्वे दध्नः सर्पाः प्रकीर्त्तिताः ।  
 पिष्टे प्रजापतिर्देवो अन्ने सर्वाश्च देवताः ॥  
 आर्त्तो यदा स्यात्पात्रं वा प्राप्नुयात्पुण्यदेशतः ।  
 मृत्यु मृत्युञ्जयप्राप्तविधिना यत्प्रदीयते ।  
 तदेव सर्वशान्त्यर्थं भवतीह न संशयः ॥  
 मृत्युञ्जयप्राप्तविधिना, मृत्युञ्जय पूजयेदित्यर्थः ॥

मृत्युञ्जयपूजाविधिश्च देवीपुराणे ।

श्रीं जुंस, इति मन्त्रेण देवीयञ्चतुर्भुजस्त्रिनेत्रकः ।  
 अक्षमालाधरो देवो दक्षिणेन तु पाणिना ॥  
 वामेनामृतकुण्डो च धारयन्नमृतान्वितां ।  
 वरदाभयपाणिश्च दिव्याभरणभूषितः ॥  
 शुक्लः सनीलवामाश्चपद्मस्योपरिसंस्थितः ।  
 जाती तस्य शिराज्ज्यं जवंवाश्व शिखा स्मृता ॥  
 यो वीषडिति कवचं जैनेत्रे च प्रकीर्त्तिताः ।

जः फण्डस्तं भवेत्सदा । ओङ्कारः, आवाहनमन्त्रः ।  
 ओङ्कारो वै त्रिसर्जने, अष्टशक्तयः, पञ्चाक्षरसंमिताः ।  
 जया च विजया चैव अजिता चापराजिता ।  
 भद्रकाली कपाली च क्षेम्यामृतपराजिता ॥  
 ओं जुंसमन्त्रप्रयोगेन पूज्योमृत्युञ्जयः शिवः ।  
 गन्धादिभिर्गन्धान्यायं यथा ब्राह्मणपूजनम् ।  
 नृत्युञ्जयोक्तदानेषु सर्वेष्वेवं विधिः स्मृतः ॥

‘जप्तव्यः’ ।

ओं जूं स इति वै दातुं कामीघं साधयेत्सदा ।  
 लोहे तदा मन्त्रममुं ग्रहीतुर्हृदि रोपयेत् ॥  
 शिरो-ललाटदेशे च जिह्वामूले च गण्डयोः ।  
 नाभौ च ब्रह्मगुह्ये च एतदङ्गाष्टकं न्यसेत् ॥  
 अरत्निहस्तमात्रञ्च सारं तस्य प्रकीर्तितम् ।  
 यथेच्छया प्रयोगेण यथावत् कर्तुरिच्छया ॥  
 षष्टिपलैः सङ्घटितमज्जातपलिकं भवेत् ।  
 लोहञ्च निष्पन्नमेव तत्र अन्नेन मिश्रितम् ॥  
 पञ्चाशत्पलसंयुक्तं दण्डं वायससंज्ञकम् ।  
 वस्त्रैराच्छाद्य दानेन यमदण्डो न विद्यते ॥

इति नानारोगघ्नतुलापुरुषदानविधिः ।

आत्मानं तोलयित्वा तु दद्याल्लीहञ्च तत्समम् ।  
 द्विजाय शिवभक्ताय यवान्यस्मै द्विजातये ॥  
 पादुको-पानह-कृत्-चामरा-सनसंयुतम् ।  
 अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातादिपर्वसु ॥

अद्यायुक्तः शुचौ देशे विशेषादुत्तरायणे ।  
 पञ्चामृतेन संस्नाप्य देवदेवसुमापतिम् ॥  
 केवलेन घृतेनाथ प्रस्थमात्रेण धूर्जटिम् ।  
 सुगन्धिचन्दनजलैस्ततः संस्नापयेद्दिभुम् ॥  
 चन्दना-गुरु-कर्पूर-कक्कोल-मृगनाभिभिः ।  
 विलिप्य परमेशानं सुमनोभिरयार्चयेत् ॥  
 भक्त्या निवेद्य नैवेद्यमनवद्येन चेतसा ।  
 ततः प्रणम्य जगतामीश्वरं प्रार्थयेदिति ॥  
 देवदेव जगन्नाथ कृपालो परमेश्वर ।  
 मामुद्धरस्व संसारपङ्कसङ्गोचदुःस्थितम् ॥  
 इति संप्रार्थ्य योदद्याल्लोहमात्मसमन्तरः ।  
 स याति शिवसालोक्यं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।  
 ततः पुनरिहायातः पृथिव्यामेकराड्भवेत् ॥

सर्वेषु चैतेषु सुवर्णं दक्षिणा, अनुक्तदक्षिणेषु दानेषु तस्य यथा  
 शक्तिं विहितत्वात् ॥

इति स्कन्दपुराणेऽक्षी लोहतुलापुरुषदानविधिः ।

अथ हिरण्यगर्भाख्यं द्वितीयं महादानमुच्यते ।

मत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

हेम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम् ॥

पुण्यन्दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।

ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाद्यादनादिकम् ॥

कुर्व्यादुपोषितस्तद्वस्त्रकेशावाहनं धः ॥५॥

पुण्याहवाचनं कृत्वा तद्वत् कृत्वाधिवासनम् ॥

अत्र देश-काल-वृत्तिश्राद्ध-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन-गुरु-  
ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-कुण्ड-मण्डप-वेदिसम्भार-होमाधिवास-  
नादि सर्वं हिरण्यगर्भादिपञ्चदशमहादानप्रकृतिभूतं मत्स्य-  
पुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं वेदितव्यम् ।

ब्राह्मणैरानयेत् कुण्डन्तपनीयमयं शुभम् ।

दासतत्रङ्गलोच्छ्रायं हेमपङ्कजगर्भवत् ।

त्रिभागहीनविस्तारं प्रशस्तं सुरजाकृति ॥

कुण्डमिति, हिरण्यगर्भाख्यं पात्रं, तपनीयमयं, स्वर्णमयं  
हेमपङ्कजं अष्टदलं तदेव नाभिश्चन्द्राद्यं, त्रिभागहीनविस्तार-  
मिति, अष्टाचत्वारिंशदङ्गुलविस्तारमित्यर्थः । सुरजाकृति, मृद-  
ङ्गाकृति । आज्यक्षीराभिपूरितमिति क्वचित्पाठः । तद्वष्टत-  
क्षीरे तुल्यपरिमाणे, यद्यपि चातिपूरितमित्युच्यते तथापि यज-  
मानप्रवेशेन यथा तन्न वहिरुच्छलति तथा पूरणीयम् ।

दशान्ताणि सरत्नानि दातुं सूचीं तथैव च ।

हेमनालं सपिटकं वहिरादित्यसंयुतम् ॥

तथैवावरणं नाभेरुपवीतञ्च काञ्चनम् ।

पार्श्वतः स्थापयेत्तद्वह्निमदण्डं कमण्डलुम् ॥

दशान्ताणि, दशखण्डानि, अभ्राणीति क्वचित्पाठः । तानि  
काञ्चनानि अभ्राकारतया, अभ्राणीति । अभ्रं खनिवमिति  
केचित्, रत्नानि पञ्च प्रमिद्धानि, सपिटकं, मञ्जूषान्वितं, वहिरिति,  
हेमकूण्डाद्वाह्यप्रदेशे पार्श्वतः स्थापयेदित्यनेन मन्वन्त्यः ।

वह्निगादित्यसंयुतमिति च पाठान्तरम् ।

वज्रिभास्करयोर्लक्षणं ब्रह्माण्डदोने वक्ष्यते ।

वज्रिमप्ययसंयुतमिति, तदा अप्ययः, वरुणः ।

तल्लक्षणमपि तत्रैव, नाभेरावरणमिति, नाभ्यावरणार्थं सौवर्णं  
वस्त्रं दात्रादीन्यपि सुवर्णमयान्येव कार्याणि ।

पद्माकारं विधानं स्यात् समन्तादङ्गुलाधिकम् ।

मुक्तावलौसमोपेतं पद्मरागदलान्वितम् ।

तिलद्रोणोपरि गतं वेदीमध्ये ततोर्चयेत् ॥

द्रोणः परिभाषायां व्याख्यातः ।

इह खलु हिरण्यगर्भनिर्माणसुवर्णपरिमाणस्यानाम्नानात्  
यावता यजमानस्य प्रवेशधारणोपादिकां कुण्डं भवति तावता  
घटनीयं, तच्च वेदिकामध्ये लिखितचक्रस्योपरि तिलद्रोणं निधाय  
तदुपरि संस्थाप्य पूजयेत् । अथ तुलापुरुषदानतदधिवासनदि-  
नादग्रेयुर्ब्राह्मणवाचनं विधाय पूर्णाहुतिप्रभृतिकर्मशेषसमाप्तिं  
कुर्यात् । ततश्च कुण्डसमीपवर्तिकलग्नजलैः पूर्ववदभिषेकः,  
तदुच्यते ।

ततो मङ्गलग्नेन ब्रह्मघोषरवेण च ।

सर्वोषधोदकस्नानं स्नापितो वेदपुङ्गवैः ।

सर्वोषधः, व्याख्याताः,

शुक्लमात्याम्बरधरः सर्वोभरणभूषितः ।

इममुच्चारयेन्नन्वं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥

नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ।

समलोकसुराध्यक्ष जगन्नाथे नमो नमः ॥

भूर्भुवः प्रमुखा लोकास्तत्रगर्भे व्यवस्थिताः ।

ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते विश्वधारिणे ॥

नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय ।

नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः ॥

यतस्त्वमेव भूतात्मा भूतमूते व्यवस्थिताः ।

तस्मात् मामुद्धरा शिषदुःखसंसारसागरात् ॥

एवमामन्वा तन्मध्यमाविश्यास्त उदङ्मुखः ।

मुष्टिभ्यां परिसंगृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ ।

जानुमध्ये शिरः कृत्वा तिष्ठे दुच्छासपञ्चकं ॥

धर्मराजोऽत्र सुवर्णमयः, तल्लक्षणञ्च तुलापुरुषेऽभिहितं  
चतुर्मुखोऽपि सौवर्णः, तल्लक्षणं ब्रह्माण्डदाने वक्ष्यते, तत्र दक्षिण-  
मुष्टौ धर्मराजः, वाममुष्टौ चतुर्मुख इति ।

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ।

कुर्यात् हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ॥

अनवलोभनमप्यत्र विज्ञेयं, एतेषु, गर्भादानादिषु वक्ष्यमाणेषु  
जातकर्मादिषु, मन्त्रयुक्तमनुष्ठानमात्रमत्राचरणीयं ।

गौतमङ्गलघोषेण गुरुं सन्तीषयेत्ततः ।

जातकर्मादिकाः कुर्यात् क्रियाः षोडश चापराः ॥

ताश्चाभिधीयन्ते । जातकर्म्म १ नामकरणं २ निष्क्रमणं ३  
अन्नप्राशनं ४ चूडाकरणं ५ उपनयनं ६ प्राजापत्यं ७ ऐन्द्रं ८  
आग्नेयं ९ सौम्यं १० इति, चत्वारि वैद्व्रताभि गोदानं केशान्त-  
येति द्वादश, पूर्वाष्टतस्त्रदुभयेषु षोडश च ।

सूत्रादिकञ्च गुरवे दत्त्वा मन्त्रमिमं जपेत् ।

नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय ते नमः ।



चराचरस्य जगती गृहभूताय वै नमः ॥

मन्त्रोऽहं जनितः पूर्वं मर्त्यधर्माद्विजोत्तमः ।

त्वद्गर्भसंभवादिष दिव्यदेहो भवाम्यहं ।

चतुर्भिः कलशैर्भूर्यस्ततस्ते द्विजपुङ्गवाः ।

स्नानं कुर्युः प्रसन्नाद्य सर्वाभरणभूषिताः ।

कलशैः कुण्डसमीपस्थितैरेव, स्नानं कुर्युर्यजमानस्येति शेषः  
देवस्यत्वेति मन्त्रेण स्थितस्य कनकासने ।

अद्यजातस्य तेज्जानि अभिषेक्ष्यामहे वयम् ॥

दिव्येनानेन वपुषा चिरञ्जीव सुखीभव ।

ततो हिरण्यगर्भं तं तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः ॥

अत्र दानवाक्यादिप्रयोगो द्रव्यविभागश्च ऋत्विगाचार्याणां-  
तुलापुरुषवद्देवित्वव्यः ।

ते पूज्याः सर्वभविन ब्रह्मो वा तदाज्ञया ।

तत्रोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत् ॥

पादुको-पानह-कृत्-चामरा-सनभाजनम् ।

ग्रामं वा विषयं वापि यच्चान्यदपि संभवेत् ॥

विषयः, ग्रामसमूहः ।

अन्यत्, रत्नादि ।

अत्राप्यात्मालंकारं गुरवे दद्यात् ग्रामादयश्च दक्षिणात्वेनैव  
संब्रूयते, प्रकृतौ तथा दर्शनान्, ततः पूर्ववत् पुण्याह वाचने-  
कृते देवतापूजाविसर्जनादि विधेयं ।

अथ हिरण्यगर्भविधि व्याख्यामः ।

सर्वपापापनोदन उद्दमयन आपूर्यमाणे पक्षे श्वःपुण्ये नक्षत्रे

ऋत्विग्यजमानौ कृत्स्नश्मशुरोमनखौ स्यातां अथ कुत्विक्-  
 प्रागस्तं गमनादाश्वत्यावरण्या वादाय जायस्वान्नेऽश्वत्यादिति  
 द्वाभ्यां मथ्यमानमनुमन्त्रयते तृतीयया जातं चतुर्थीपसमादधाति  
 शुचि दूरिशं परिधाप्य यथोक्तमाञ्जनाभ्यञ्जनानुलेपनं कारयित्वा  
 वासोगन्धान् हिरण्यस्रजश्च आवध्याग्निमुपसमाधायालभ्याज्यं  
 जुहुयात्, हिरण्यगर्भाय स्वाहा, व्रह्मणे स्वाहा विष्णवे स्वाहा प्रजा-  
 पतये स्वाहा परमेष्ठिने स्वाहा कस्मै स्वाहेति च आवयित्वा तैरे  
 वपस्याय अग्नेः प्रजातं परियद्धिरण्यं यदा बध्नन्नितिहिरण्य  
 स्रजमाग्रथ रक्षन्तुत्वा अग्नय इति चतसृभीरक्षां कृत्वा दर्भान्  
 संस्तीर्याधःशय्यासनौ स्यातां शोभूतेभिजिन्मुहूर्त्तं हिरण्यमयं  
 मण्डलाकृतिनाभिमात्रं पात्रमाधाय सापिधानं शुचाज्यस्था-  
 ल्युदकपात्राण्यात्माङ्गारञ्चेति हिरण्यमयानि राजानं हिरण्य-  
 वतीभिः स्नापयित्वा हिरण्यकलसैस्तस्मिन्पात्रे पयोगणेन पयश्चा-  
 सीभ्यां होमुचेन शान्तो तीयेन हिरण्यगर्भसूक्तेण पञ्चभिश्च नामभिः  
 संपातानानीय सदस्यावृत्विजापयेद्राजा हिरण्यगर्भत्वमीप्सति  
 तस्मै भगवन्तो मनुजानीषेति तैरनुज्ञातात्तु देहिवाजिन्निति  
 द्वाभ्यां प्रवेशयेत् तयस्त्रिंशद्देवाइत्यपिधाय तमनुपिधाय त  
 मनुशास्ति वाचं नियम्य प्रति संहृतेन्द्रियाणि विशेषेभ्यो मनसा  
 च भगवन्तं हिरण्यगर्भं परमेष्ठिनं ध्यायन्नास्तेति तथेति  
 तत् प्रतिपद्यते सप्तदशमात्रान्तरमास्ते सप्तदशोवै प्रजापतिः  
 प्रजापतेरावृतमित्युद्धरेद्वनेनमिति च तैरनुज्ञाप्य तमुद्धरेत्  
 तथैव सदस्याननुज्ञाप्योद्धरेद्धिरण्येन चक्रेणैलपावृत्य माते प्राण-  
 इत्युद्धरेदुद्धतं हिरण्यनाम्ना प्रतिमुच्यस्वामृत्युरित्युपस्येत्संप-

श्रयमाना इत्यवेक्षितावेक्षितो ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्यं नमस्कुर्यात्  
हिरण्यगर्भायेत्येवमादिभिरेते वै हिरण्यगर्भस्य प्रीतमानास्तं  
ब्राह्मणा ब्रूयुस्तिष्ठ हिरण्यगर्भानुगृहीतोऽसीत्यप्रतिरथेनेति हुत्वा-  
संस्थाप्य अमुं ते राजावरुण इति वरुणमभिष्टयावभृशमुपेत्य  
स्नात्वा पवित्रैरभ्युक्ष्यालंकृत्यादित्यमुपतिष्ठेत् ।

हिरण्यं तव यज्ञर्भो हिरण्यस्यापि गर्भजः ।

हिरण्यगर्भस्तस्मात्त्वं माम्पाहि महतो भयादिति ॥

सूर्यस्यावृतमिति, प्रदक्षिणमावृत्य ग्रहा नैामीति ग्रहान्  
प्रतिपद्य त्वमग्ने प्रमिनिरित्यग्निमुपस्थाप्योत्सृजेद्विजेभ्यः शत-  
सहस्रं दक्षिणा-ग्रामवरञ्च सुक्-शुवा-ज्यस्थाणु-दक्षपात्रा-त्काल-  
ङ्गारं चेद्दद्यात्सदस्येभ्यो यावद्वा तुष्येरंस्तावद्वा देयं यथा काम-  
मन्त्रेण ब्राह्मणान् परिचरेत् ।

तत्तल्लीकाः ।

वेदानां पारगा यत्र चतुर्णां ब्रह्मवित्तमाः ।

तुष्टा यस्याशिषो ब्रूयुस्तस्यैज्या सकला भवेत् ॥

ब्राह्मणाजां प्रसादेन सूर्यो दिवि विराजते ।

इन्द्रोऽप्येषां प्रसादेन देवानतिविराजति ॥

हिरण्यदानस्य फलममृतत्वमिति श्रुतिः ।

श्रूयते ह्यस्य दाता यः सोमृतत्वं समश्नुते ॥

य इच्छाकुप्रभृतयः पुरा राजर्षयोऽमलाः ।

दत्त्वा हिरण्यं विप्रेभ्यो ज्योतिर्भूत्वा दिवि स्थिताः ॥

य एवं संस्कृतो राजा विधिना ब्रह्मवादिना ।

प्रजानामिह साम्राज्यं ज्यैष्ठ्यं त्रैष्ठ्यं स गच्छति ॥

अमुस्मिन् ब्रह्मणा सार्द्धमानन्दमनुभूय वै ।

ज्योतिर्मयात् सत्यलोकान्नचेहावर्तते पुनः ॥

इति ब्राह्मणम् ।

मत्स्यपुराणे । अनेन विधिना यस्तु पुण्येऽङ्गि विनिवेदयेत् ।

हिरण्यगर्भदानं स ब्रह्मलोके बिधीयते ॥

पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरे वसेत् ।

कल्पकोटिशतं यावद्ब्रह्मलोके महीयते ॥

कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिध्यसाध्यै \*

रमरचरममालावीज्यमानोऽसरोभिः ।

पितृशतमथवन्धून् पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रान्

अपि नरकनिमग्नांस्तारयेदेक एव ॥

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यक्

मधुपुररिपुलोके पूज्यते सोऽपि सिद्धैः

मतिमपि च जनानां यो ददाति प्रियार्थं

विबुधपतिजन्मनां नायकः स्यादमोघम् ॥

इति हिरण्यगर्भदानविधिः ॥

श्रीभगवान् उवाच ।

दानधर्मेषु यद्दानं दानधर्मेत्तरं शृणु ।

यत् कृत्वा पातकैः सर्वैर्मुच्यन्ते जन्तवः सदा ॥

यो ददाति च विप्रेभ्यस्त्रस्य स्वर्गोऽप्यदूरतः ।

हिरण्यगर्भं तं कुर्याद्विरण्याष्टतुलाकृतं ॥

सप्तषट्पञ्चचत्वारि तुलाया वृद्धिरेकतः ।

श्रातकुम्भमयं कुण्डं कृत्वारत्नित्वयोन्नतम् ॥  
 द्वाङ्गुलं वर्तुलं भद्रं नानारत्नैरलंकृतम् ।  
 शुचिदेशे समे देशे सौवर्णं पङ्कजं लिखेत् ॥  
 चतुरस्रं चतुर्हस्तं चतुर्द्वारञ्च मण्डलम् ।  
 मध्ये पद्मं समालिख्य रत्नकीर्णन्तु कारयेत् ॥  
 पद्मे संस्थापितं\* कुण्डं हेमगर्भन्तु सञ्चितम् ।  
 प्रादेशद्वयविस्तीर्णं चतुःप्रादेशमायतम् ॥  
 चारु कृत्वा तु सौवर्णं नाभिं कनकसूत्रितम् ।  
 कृत्वा हस्तप्रमाणन्तु कुण्डस्याभ्यन्तरे यदि ॥  
 तत् कुण्डं पूरयेत् क्षीरैर्गन्ध-पुष्पैः समर्चयेत् ॥  
 कुण्डस्योपरिपार्श्वे† च ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरान् ।  
 सूर्यं ग्रहांश्च सौवर्णान् लोकपालान्श्च कारयेत् ॥  
 शुचिः स्नात्वा नरः सम्यक् पूजयेत् सर्वदेवताः ।  
 स्थण्डिलं तत्र कुर्वीत होमयेद्युर्हिजातयः ॥  
 क्रतुसंवेशनं कृत्वा तत् कुण्डं परिवेष्टयेत् ।  
 वान्तोभिः परितः सर्वं यावत्कर्म समाप्यते ॥  
 गर्भाधानं पुंसवनं सोमन्तोन्नयनादि च ।  
 कृत्वा पञ्चाङ्गिनिष्क्रम्य तत्कुण्डान्तरसंहतम् ॥  
 नाभिं नाभिप्रदेशे च काण्ठे कनकसूत्रिकाम् ।  
 गृहीत्वा कर्षयेद्विप्रान् दाता स्वर्गान्महीं व्रजेत् ॥  
 शङ्खतूर्यनिनादोच्चैरुक्त्वित्यार्कमुदोरयेत् ।

\* संस्थाप्येति क्वचित् पाठः ।

† कुण्डस्योत्तरदिक्पार्श्वे इति वा पाठः ।

नमो हिरण्यगर्भाय मन्त्रमेतमुदाहरेत् ॥  
 यावत् षोडशसंस्कारान् जातकर्मादि कारयेत् ।  
 यथोक्तं वैदिकं कर्म मन्त्रवित् कारयेद्विजान् ॥  
 तत्क्षीरपायसं सिद्धं भोजयेद्विजस्तदा ।  
 तदेवात्मनि युञ्जीयात् भक्तशेषं द्विजोत्तमैः ॥  
 हिरण्यगर्भचारुञ्च नाभिं सौवर्णिकान्वितम् ।  
 तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यादिष्टापूर्त्तानि ऋत्विजे ।  
 नरो वा यदि वा नारी एवं ब्रह्मात्मसंभवम् ॥  
 यः कारोति महापुण्यं तस्यापि शृणु यत्फलम् ।  
 मृतो ब्रह्मत्वमाप्नोति हंसयानं रविप्रभम् ।  
 ब्रह्मकन्याभिः संसेव्यो ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥  
 ब्रह्म वत् क्रीडते तत्र ब्रह्मसंवत्सरत्रयम् ।  
 ब्रह्मलोकावतीर्णश्च इन्द्रलोके महीयते ॥  
 इन्द्रलोके रमित्वा तु वर्षकोटिशतत्रयम् ।  
 ब्रह्मणस्तु पुरे रभ्ये क्रीडित्वाथ तदोपमम् ॥  
 विद्याधरोऽथ गन्धर्वो वर्षकोटिं पृथक् पृथक् ।  
 इह लोके तु संप्राप्ते राजराजोत्तमः प्रभुः ॥  
 शतयोजनविस्तीर्णे त्रिगुणे वायु मण्डले ।  
 रूप-सौभाग्यवान् वीरो जायते हि न संशयः ॥  
 यावद्वर्षशतं राज्यं सुसम्पन्नमकण्टकम् ।  
 तेजस्वो सुखभाग्नित्यं धर्मवान् विजितेन्द्रियः ॥  
 इति विष्णुधर्मीकोहिरण्यगर्भदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच । तुलैका कथिताह्विषामाद्यामासाद्य रूपिणीं ।

हिरण्यगर्भं वक्ष्यामि द्वितीयं सर्वसिद्धिदम् ॥  
 अधःपात्रं सहस्रेण हिरण्येन विधीयते ।  
 ऊर्ध्वपात्रं तदर्धेन मुखसंवेशमात्रकम् ॥  
 फलामिवं शुभां कुर्यात् सर्वालङ्कार संयुतां ।  
 अधः पात्रे स्मरेद्दिव्यां गुणत्रयसमन्विताम् ॥  
 चतुर्विंशतिकान्देवीं ब्रह्म-विष्णु-ग्निरूपिणीम् ॥  
 ऊर्ध्वपात्रे गुणातीति षट्त्रिंशकमुमापतिम् ।  
 आत्मानं पुरुषं ध्यायेत् पञ्चविंशकमञ्जकम् ॥  
 पूर्वोक्तस्थानमध्ये तु वेदिकीपरिमण्डले ।  
 शालिमध्ये क्षिपेन्नीत्वा नववस्त्रैश्च वेष्टितम् ॥  
 माषकल्पो न चालिष्य पञ्चगव्येन पूरयेत् ।  
 ईशानाद्यैर्यथान्यायं पञ्चभिः परिपूजयेत् ।  
 पूर्ववच्चैव पूजा च होमश्चैव यश्चाक्रमम् ॥  
 आद्या, हिरण्यगर्भादिदानानां प्रकृतिभूता-

तुला पुरुषोक्त क्रिया, अतः सानान्यरूपिणी, हिरण्यगर्भादौ  
 प्रातिस्विकविशेषैः सह तुलापुरुषोक्तं मण्डपादिऋत्विग्दक्षिणान्तं  
 सामान्यं समुच्चयमित्यर्थः, सहस्रेणा कर्षणमित्यवधेयं ।

कुर्यात् सहस्रकर्षेण अधः पात्रं हिरण्यतः ।

तदर्धेनोर्ध्व पात्रन्तु सहस्रेण द्वयन्तु वा ॥

द्विपादं वा त्रिपादं वा सपादं सार्धमेव वा ।

द्विगुणं वा प्रकर्तव्यं यथा लाभन्तु वा भवेत् ।

मङ्गुल्यं वा तं कृत्वा स्वर्णपट्टैस्तु वेष्टयेत्

इतिकामिकीर्तेः ।

एतच्च स्वल्पदानाधिकारिविषयम् ।

आढ्याविषये तु तुल्यतन्त्रोक्तं यथा ।

चत्वारिंशत् षडधिकैः सहस्रैर्गर्भमुत्तमम् ।

पञ्चविंशसहस्रैस्तु मध्यमं समुदाहृतम् ।

तद्वादशसहस्रैस्तु सुवर्णैरधमं भवेदिति ॥

देवीसुमापतिञ्च स्मरेदिति, तयोः प्रतिमं कृत्वेत्यवधेयं ।

वातुलेपि ।

अधः पात्रे तु कर्त्तव्यमुमारूपं प्रसन्नकम् ।

जड्वपात्रे तु कर्त्तव्यो महेशस्य तु विग्रहः ॥

अथवा शक्तिभागे तु लक्ष्मीं वै तत्र कारयेत् ।

जड्वपात्रे तु कर्त्तव्यं विष्णुरूपं परं शुभम् ।

एतेषां लक्षणं, ब्रह्माण्डदाने वक्ष्यते । आत्मानमिति, यजमान-  
मीश्वरेण निषिक्तं गर्भस्थं पुरुषत्वेन स्मरेत् ततोमण्डलान्तस्थपद्मं  
कर्णिकामध्ये धान्यराशौ हिरण्यगर्भसंज्ञां फलाञ्चिन्निक्षिपेत् ।

माषकल्कः अयःफलकसखन्धीनीरन्ध्रतार्थः ।

पञ्चगव्य पूरणमुक्तं वातुले ।

गोमूत्रं द्विगुणं क्षीरात् क्षीराङ्गं दधि कथ्यते ।

तदङ्गं गोमयं क्षयं गोमयाङ्गं घृतं भवेत् ॥

हिं कृण्वतीत्य चा तत्र गोमूत्रन्तु विनिक्षिपेत् ।

शकमयमित्युक्त्वा तत्र गोमयं परिकल्पयेत् ॥

आध्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरं तत्र प्रकल्पयेत् ।

दधिक्राव्णेति मन्त्रेण दधि तत्र प्रयोजयेत् ।

घृतमिमिक्षे मन्त्रेण घृतं तत्र विलोडयेत् ॥



एवमापूरयेत् यत्नात् जानुदघ्नन्तु देशिकः ।

सम्यगापूरयेद्विद्वान् ब्रह्मजज्ञानकेन वै ।

प्रविशेत् प्राङ्मुखो विद्वानाविश्यास्त उदङ्मुख इति ॥

ईशानादिमन्त्रास्तैत्तिरीयकश्रुतौ ॥

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो-  
धिपतिः ब्रह्माशिवो मेऽस्तु सदाशिवो सद्योजातं प्रपद्यामि सद्यो-  
जाताय वै नमः, भवेभवे नाति भवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः,  
वामदेवाय नमः, ज्येष्ठाय नमः, त्र्येष्ठाय नमः, रुद्राय नमः, कालाय  
नमः, कलविकरणाय नमः, वलाय नमः, बलविकरणाय नमः, बल-  
प्रमथनाय नमः, सर्वभूतदमनाय नमः, मजीन्मनाय नमः अघो-  
रेभ्यो घोरिभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्वतः सर्वसर्वदेवेभ्यो नमस्ते-  
स्तु रुद्ररूपेभ्यः, तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः  
प्रचोदयादिति, पूर्ववदिति लिङ्गपुराणोक्तानुलापुरुषदानवदित्यर्थः

गौरीगायत्रिकां जप्त्वा प्रविशेत् प्राङ्मुखः स्वयं ।

सुभगायै विद्महे यशोमालिन्यै धीमहि-

तन्नो गौरी प्रचोदयादिति गौरीगायत्री ।

विधिनैवततः पञ्चाङ्गर्भाधानादिकाः क्रियाः ।

कृत्वा षोडशमार्गेण विधिना ब्राह्मणोत्तमः ॥

दूर्वारसेन कर्त्तव्यं मेचनं दक्षिणे पुटे ।

जदुम्बरफलैः सार्द्धैकविंशत्कुशांस्तदा ॥

शक्त्याय तावदेवात्र कुर्यात् सीमन्तकर्मणि ।

उदाहे कन्यकां कृत्वा त्रिंशन्निष्केन शोभनम् ॥

अलंकृत्य तथा कृत्वा शिवाय विनिवेदयेत् ।

अन्नप्राशनके विद्वान् भोजयेत् पायसादिभिः ।

एवं विश्वजिदन्ताश्च गर्भाधानादिकाः क्रियाः ॥

शक्तिवीजेन कर्त्तव्या ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।

शेषं सर्व्वञ्च विधिना तुलादानवदाचरेत् ॥

विधिनेत्यादि, गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तीन्नयन-जातकर्म्म-  
नामकरणोप-निष्क्रमणा-न्नप्राशन-चौडोपनयन-वेदव्रतचतुष्क-गो-  
दान-समावर्त्तन-विवाहाख्याः षोडशक्रियाः, तत्र निषेकपुंसवने  
यजमानस्य मातापितृस्थानीयमिधुनमानीय तत्र पुंसा स्त्रिया वा  
च उपरिपात्रनासारव्यस्थापनीये छिद्रद्वये, दक्षिणपुटे दूर्वारसं  
सेचयेदाचार्यः ।

कर्त्तारं भार्य्या युक्तं सर्वालङ्कारशोभितम् ।

आनीय कुर्यात् तत्स्थस्य गर्भाधानादिकाः क्रियाः ।

भार्यादक्षपुटे दूर्वारससेचनमाचरेदिति कामिकोक्तेः ॥

प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां सेचनं तत आचरेत् ।

दूर्वारसेन कर्त्तव्यं व्याहृत्या च घृताहुतिः ॥

इति वातुलीतिश्च ।

उदुम्बरफलैः सह एकविंशत् कुशान् हृदाहुतेखाख्येन शक्ति-  
वीजेन सीमन्तकर्म्म कुर्यात् ।

एकविंशति संख्यातानुदुम्बरफलान्वितान् ।

कुशानानीय शक्त्याथ कुर्यात् सीमन्त कर्म्म चेति कामिकोक्तेः ॥  
निषेकादिद्वयञ्च, गर्भान्तःस्थे कार्य्यं, निष्क्रान्ते त्वितराणीति,  
एवमेताः षोडशक्रियाः, तदुपरि पञ्चमहायज्ञधक्षा अर्थ्यमान्ता-  
श्चतुर्विंशतिः, एवं चत्वारिंशत्संस्कारकर्माणि गौतमादिस्मृतानि

विश्वजिद्यागसहितानि कार्याणि इत्यर्थः, शेषमिति, ऋत्विगा-  
चार्यदक्षिणादिकं सर्वेभ्यो हिरण्यगर्भद्रव्यदानं तदनुमत्याचान्ये-  
भ्योपि श्रोत्रियादिभ्योदानमिति लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदान-  
वदनुविधेयम् ॥

इति श्रीलिङ्गपुराणोक्तो हिरण्य गर्भदानविधिः ।

अथ ब्रह्माण्डाभिधानं तृतीयं महादानं लिख्यते ।

मत्स्यपुराणे । अथातः संप्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डं विधिपूर्वकम् ।

यच्छ्रेष्ठं सर्वभूतानां महापातकनाशनम् ॥

पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।

ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥

लोकेशावाहनं तद्वदधिवासनकं तथा ॥

तुलापुरुषदानवदिति, काल-देश-वृद्धिआह-शिवादिपूजा-ब्राह्मण-  
वाचन गुरु-ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-कुण्ड-मण्डप-वेदिकासम्भार-  
लोकेशावाहनाधिवासनादिसर्वं मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदान-  
विहितं वेदितव्यमित्यर्थः ॥

कुर्याद्विंशत्पलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तिः ।

शकलद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः ॥

शकलद्वयं, खण्डद्वयं ।

तल्लक्षणन्तु ब्रह्माण्डपुराणे

कुम्भच्छाया भवेद्यादृक् प्रतीच्यां दिशि चन्द्रमाः ।

उदितःशुक्लपक्षादौ वपुरणस्य तादृशमिति ॥

कुम्भच्छायाइति, कुम्भच्छाया ग्रीवाहीनकुम्भादित्यवधेयम् ।

दिग्गजाष्टकसंयुक्तं षडदाङ्गसमन्वितम् ।

लोकपालाष्टकोपेतं मध्यस्थितचतुर्मुखम् ॥  
 शिवा-च्युतार्क-शिखर-सुमालक्ष्मीसमन्वितम् ।  
 वस्त्रा-दित्य-मरुद्गर्भं महारत्नसमन्वितम् ॥  
 अथैतेषां दिग्गजप्रभृतीनां क्रमेण लक्षणान्युच्यन्ते ।  
 आदित्यपुराणे । शुभ्राभ्रश्च चतुर्दंष्ट्रः श्रीमानैरावतो गजः ।  
 पुष्पदन्तो वृहत्सान्नः षड्दन्तः पुष्पदन्तवान् ।  
 सामान्यगजरूपेण शेषा दिक्करिणः स्मृताः ॥  
 तन्नामानि शास्त्रान्तरे ।  
 ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोज्जनः ।  
 पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ।  
 वेदाङ्गानि स्कन्दपुराणे ।  
 शिञ्जा-कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषाञ्चितिः\* ।  
 छन्दश्चेति षडेतानि वेदाङ्गानि प्रचक्षते ॥  
 मूर्त्तानि ब्रह्मणो लोके साक्षसूत्राणि तानि तु ।  
 द्विजातिषु शुभास्थानि वामे दधति कुण्डिकाम् ॥  
 तानि च पश्चिमदिशि वेदसन्निधौ निवेशनीयानि । दिग्वि-  
 शेषानाम्नानात् प्रधानं नीयमानं हि तत्राङ्गान्यपकर्षतीति-  
 न्यायात्, वक्ष्यते च, पश्चिमे चतुरोवेदानिति ।  
 लोकपालरूपाख्याह विश्वकर्मा ।  
 चतुर्दन्तो गजारूढो वज्रपाणिः पुरन्दरः ।  
 प्राचीपतिः प्रकर्त्तव्यो नानाभरणभूषितः ॥

\* गतिरिति पाठान्तरम् ।

पिङ्गभू-श्मश्रु-केशा-क्षः पीनाङ्गजठरोरुणः ।  
 छागस्थः साक्षसूत्रस्थ सप्तार्चिः शक्तिधारकः ॥  
 ईषत्पीनो यमः कार्यो दण्डहस्तो विजानना ।  
 रक्तहृक् पाशधृक् क्रुद्धो निर्ऋतिर्विष्णुताननः ।  
 पुंस्थितः खड्गहस्तश्च भूतवान् राक्षसावृतः ॥  
 वरुणः पाशशृत् सौम्यः प्रतीचां मकराश्रयः ।  
 धावन् हरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः ।  
 दशाश्वरथगः सीमो गदापाणिर्वरप्रदः ॥

शशकवाह इत्यागमान्तरं ।

पूर्वोत्तरे त्रिनेत्रश्च वृषभस्थः स्निग्धलभृत् ।  
 कपालपाणिश्चन्द्रार्द्धभूषणः परमेश्वरः ॥

चतुर्मुखरूपन्तु विष्णुधर्मीत्तरात् ।

पद्मपत्रासनस्थश्च ब्रह्मा कार्यश्चतुर्मुखः ।  
 अक्षमालास्रजं विभ्रत् पुस्तकश्च कमण्डलुम् ।  
 वासः कृष्णाजिनं तस्य पार्श्वे हंसस्तथैव च ।

शिवलक्षणमुक्तं वायुपुराणे ।

पञ्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः ।  
 कपाल-शूल-खट्वाङ्गो चन्द्रमौलिः सदाशिवः ॥  
 विष्णुलक्षणमुक्तं तुलापुराणदाने ।  
 सूर्यलक्षणमुक्तं विष्णुधर्मीत्तरे ।

रविःकार्यः शुभश्मश्रुः सिन्दूरारुणसुप्रभः ।  
 पद्मासनः पद्मकरो भूषितो रशनाधरः ॥  
 उमालक्ष्मीसमन्वितमित्यत्र, शिवाच्यतयोः

सन्निहिते उमालक्ष्म्यौ विधेयौ ।  
 उमालक्षणमुक्तं देवीपुराणे ।  
 गौरीं शङ्खेन्द्वर्णाभां शर्वरोशनिषेविताम् ।  
 वृत्तपद्मासनासीनां साक्षसूत्रकमण्डलम् ॥  
 वरदीद्यतरूपाढ्यां सर्वमाख्यफलप्रियाम् ।  
 वरदीद्यतरूपाढ्यां, वरदाभयपाणिकामित्यर्थः ॥

लक्ष्मीलक्षणमुक्तं पञ्चरात्रे ।

पद्मासनस्थां ह्रस्वोति श्रियं त्रैलोक्यमातरम् ।  
 गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्वालङ्कारभूषितां ॥  
 रौक्मपद्मकरव्यग्राः स्वरदां दक्षिणेन तु ।

वस्त्रादिरूपाणि, नारदीये,

प्रसन्नवदनाः सौम्या वरदाः शक्तिपाणयः ।  
 पद्मासनस्था द्विभुजाः कर्त्तव्या वसवः सदा ॥  
 पद्मासनस्था द्विभुजाः पद्मगर्भान्तकान्तयः ।  
 करादिस्क्रन्वपर्यन्तनालपङ्कजधारिणः ॥  
 अधःसंस्थितमेषादिराशयः प्रावृताङ्घ्रिकाः ।  
 इन्द्राद्या द्वादशादित्यास्तेजोमण्डलमध्यगाः ॥

तथा । वायुतुल्येन रूपेण मरुतीनाम देवताः ।

कर्त्तव्या इति शेषः, वस्त्रादिनामानि, तुलापुरुषोक्तानि  
 वेदितव्यानि, महारत्नसम्पन्नमिति, महारत्नानि परिभाषाया-  
 मुक्तानि, अजन्तमियुनान्वितमिति क्वचित्पाठः ।

फणासप्तान्वितो नन्तः पृथ्वी स्त्रीरूपधारिणीत्यनन्तमिधुनम् ।

अथ प्रकृतमुच्यते ।

वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम् ।

कौशियवस्त्रसम्ब्रीतं तिलद्रोणेपरि न्यसेत् ।

तथाष्टादशधान्यानि समन्त्रात्परिकल्पयेत् ॥

वितस्तेरङ्गुलशतमिति, षादशाङ्गुलमारभ्याङ्गुलशतं याव-  
च्छत्यनुसारेण कार्यमित्यर्थः । द्रोणमानमष्टादशधान्यानि च  
परिभाषायां द्रष्टव्यानि, सच तिलद्रोणे वेदिकायां लिखित-  
चक्रस्योपरि स्थापनीयः ।

पूर्व्वेणानन्तशयनं प्रद्युम्नं पूर्व्वदर्क्षिणे ।

प्रकृतिर्दर्क्षिणे देशे संकर्षणमतः परम् ॥

पश्चिमे चतुरोवेदाननिरुद्धमतः परम् ।

अग्निमुत्तरतो हैमं वासुदेवमतः परम् ॥

समन्तान् गुणपीठस्थानचयेत् काञ्चनान् बुधः ।

स्थापयेदस्त्रसंब्रीतान् पूर्व्वकुम्भान् दशैव तु ॥

पूर्व्वेष्टेत्यादि, ब्रह्माण्डात् पूर्व्वदेशे अनन्तशयनं

शेष शायिनं गुणपीठे स्थापयेत्, तन्मूर्त्तिलक्षणं

विष्णुधर्मीत्तरात् ।

देवदेवञ्च कर्त्तव्यः शेषसुप्तश्चतुर्भुजः ।

एकपादोऽस्य कर्त्तव्यो लक्ष्यत्सङ्गतः प्रभुः ॥

तथापरञ्च कर्त्तव्यः शेषभोगाङ्गसंस्थितः ।

एकोभुजोऽस्य कर्त्तव्यस्तत्र जानौ प्रसारितः ॥

कर्त्तव्यो नाभिदेशस्थस्तथा तस्यापरः करः ।

तथैवान्यःकरः कार्यो देवस्य तु शिरोधरः ॥  
 सन्तानमञ्जरीधारी तथावास्य करः परः ।  
 नाभिसम्भूतकमले सुखासीनः पितामहः ॥  
 नाललग्नौ तु कर्त्तव्यौ पद्मस्थौ मधुकैटभौ ।  
 शंख-चक्र-गदादीनि मूर्त्तानि परितो न्यसेदिति ।

प्रद्युम्नलक्षणं पञ्चरात्रादिषु ।  
 दक्षिणोर्ध्वकरे पद्मं दद्याच्छंखमधः करे ।  
 चक्रमूर्ध्वं ततो वामे गदां दद्यात् तथा द्विज ।  
 चापेषुष्ट्रवा प्रद्युम्नो रूपवान् विश्वमोहक इति ॥

अत्र यद्यपि प्रकृतेरव्यक्तरूपतया विधानमशक्यं तथापि लक्ष्या-  
 दिशब्दव्यपदेश्यं सुकरमस्ति तद्रूपमित्यतस्तदन्यतमरूपनिर्माण-  
 मेव न्याय्यं ।

तदुक्तं मार्कण्डेयपुराणे ।

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।  
 मातुलिङ्ग-गदा-खेटं पानपात्रञ्च विभ्रती ।  
 नागयोनिञ्च लिङ्गञ्च विभ्रती नृप मूर्धनोति ॥

संकर्षणरूपम्-

विष्णुधर्मोत्तरे । वासुदेवस्य रूपेण कार्य्यः संकर्षणः प्रभुः  
 स तु शुक्लवपुः कार्य्यो नीलवासा यदूत्तरः ।  
 गदास्थाने च मुशलञ्चक्रस्थाने च लाङ्गलमिति ॥  
 वेदमूर्त्तयो भूतघटे बध्यन्ते । अनिरुद्धरूपं नारदीये ।  
 कृष्णं चतुर्भुजं दक्षे शरं खड्गं तदुत्तरे ।  
 धनुः खेटधरं वीरमनिरुद्धं प्रचक्षते ॥



अग्निलक्षणमुक्तं ।

वासुदेवरूपमपि नारदीये ।

वासुदेवः शिवः शान्तः सिताञ्जय चतुर्भुजः ।

योगमूर्धोर्ध्वशङ्खश्च हृद्देशार्पितहस्तकः ।

धारयेदुत्तरे चक्रं करे वै दक्षिणे गदामिति ॥

एते च देवताविशेषा, ब्रह्माण्डनिर्माणवत्कृतसुवर्णात् पृथक् सुवर्णेनैव घटनीया ब्रह्माण्डस्य किल विंशतिपलात्प्रभृति पल-सहस्रावधिरिह नियमः, पुराणेषु दृश्यते ततोवक्तव्यमाणकाञ्चने तस्मिन् न्यूनसंख्यत्वाद्यथावद्विहितत्वमापद्यते नच दिग्गजाष्टक-संयुक्तं लोकपालोपेतमित्यादिना एक एव तावद्भिरंगैरङ्गी निष्पा-द्यत इति ब्रह्माण्डवत् कृतसुवर्णे शैव दिग्गजादिप्रतिमानिर्मितौ न कश्चिद्वाध इति वाच्यं, काञ्च नान् कारयेदिति पुनः काञ्चनोप-देशानार्थक्यापत्तेः अश्रूयमाण परिमाणानां प्रतिमानामङ्गुष्ठ-पर्वप्रभृतिवितस्तिपर्यन्तं यथाशक्ति परिमाणं कल्पनीयं ।

पूर्णकुम्भान् स्थापयेदित्यत्र समतादिति योज्यं ।

दशैव धेनवो देया सहेमाम्बरदीहनाः ।

पादुकीपानहस्तचामरासनदर्पणैः ॥

भक्ष-भोज्या-व्रदीपेक्षु-फल-माल्यानुलेपनैः ।

होमाधिवासनान्ते च स्थापितो वेदपुङ्गवैः ॥

इत्थमुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिःकृत्वाथ प्रदक्षिणम् ।

सहेमाम्बरदीहनाइति, हेमशृङ्ग्यः ताम्रदीहनाः सवस्त्राः पार्श्वतो दक्षिणार्थमुपकल्पनीयाः तत्राचार्याय द्वे ऋत्विग्मनोऽभ्याः

संप्रदेया, जापकादीनां अन्यैव यथाशक्ति दक्षिणेति, भविष्यो  
त्तरे तु ज्ञेयं निष्कशतं पार्श्वत्वादिना सुवर्णमेव दक्षिणार्थमुपकल्प-  
नीयमित्युक्तं; आद्याधिवासनदिनादन्येद्युरग्निकुण्डेषु ऋत्विगुप-  
वेशनादिकर्मशेषसमाप्तौ तुलापुरुषदानवद्विहितायां पूर्व्ववदेवस्त्रा-  
पितः शुक्तमाल्यां वरधरो गृहीतकुसुमाञ्जलिर्यजमानो ब्रह्माण्डं  
त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य मंत्रमुच्चारयेत् ।

मन्त्रः । नमोस्तु विश्वेश्वरविश्वधामजगत्सर्वित्रे भगवन्नमस्ते ।

सप्ताधिलोकामरभूतलेण गर्भेण सार्द्धं वितराभिरक्षां ॥

ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु प्रयान्तु पापानि चराचराणां ।

त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां ब्रह्माण्डदीपाः प्रलयं व्रजन्तु ॥

एवं प्रणन्यामरविश्वगर्भं दद्याद्विजेभ्यो दशधा विभज्य ।

भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्य समम्भजेऽक्षेपमतः क्रमेण ॥

दानवाक्यं तुलापुरुषवद्देदितव्यं तच्च दशधा विभज्य गुरो-  
र्भागद्वयं प्रकल्प्य अवशिष्टाष्टभागानामेकैकं भागं त्रिधा विभज्य  
चतुर्विंशतिसंख्येभ्य ऋत्विगादिभ्यः समन्दद्यात्, तदनुज्ञयान्ये-  
भ्योऽपि ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ।

स्वल्पहोमं पुरुरेक एव कुर्यादथैकाग्निविधानयुक्त्या

स एव संपूज्यतमोऽल्पवित्तैर्यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन ॥

विंशतिपलादारभ्य पलसहस्रावधिद्रव्ये

ब्रह्माण्डे सहस्रतदर्द्धादित्युत्तममध्यमादितैविध्यकल्पनायां  
कनीयोभागस्याल्पत्वमवधेयं, विंशतिपलनिर्गतस्यैवाल्पत्वमित्येके,  
उक्तं विंशतिपलादर्वाक् यथाशक्ति विधाने स्वल्पत्वमवगन्तव्य-  
मिति केचित्, एकाग्निविधानं एकस्मिन्नेव कुण्डे होमकरणम्,

कुण्डमपि वरुणदिग्भागस्थितं वृत्ताकारञ्च कार्यं, तदेतत्परि-  
भाषायामुपपादितं, अथ पुण्याहवाचने कृते देवतावेदीसमीपं  
गत्वा पूर्ववद्यजमानेन देवतापूजायां विहितायामाचार्यो विस-  
र्जनं विदध्यात् ।

इत्थं य एतदखिलं पुरुषोत्त कुर्या-  
ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महहिमानं ।  
निर्द्धूतकल्मषविशुद्धतनुमेरारे-  
रानन्दकृत् पदमुपैति सहासरोभिः ॥  
सन्तारयेत् पितृपितामहपुत्रपौत्र  
बन्धु-प्रिया-तिथि-कलत्र-शताष्टकं यः ।  
ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकौघ-  
मानन्दयेच्च जननीकुलमप्यशेषं ॥  
इति पठति शृणोति वा य एत-  
त्सुरमवनेषु गृहेषु धार्मिकाणां ।  
मतिमपि च ददाति मोदते सा  
भरपति भवने सहासरोभिः ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तो ब्रह्माण्डदानविधिः ।

राजोवाच ।

विधिं ब्रह्माण्डदानस्य कृत्वायं मोक्षभाग्भवेत् ।  
कालं देशं दिजन्तीर्थं सर्व्वमेतद्वदस्व मे ॥  
कृतेन येन सर्व्वस्य फलभागी भवाम्यहं ।  
कुक्षितस्यास्य भावस्य मोक्षः स्यादचिराच्च मे ॥

वशिष्ठ उवाच ।

एवं श्रुत्वा ततो राजन् पुरीधास्तस्य तं द्विजः ।  
 ब्रह्माण्डं कारयामास सौवर्णं सर्व्वधातुभिः ॥  
 पीठं निष्कसहस्रेण पद्मन्तत्र प्रकल्पयेत् ।  
 तत्र ब्रह्मा तस्य मध्ये पद्मरागैरलङ्कितः ॥  
 सावित्र्या चैव गायत्र्या ऋषिभिर्मुनिभिः सह ।  
 नारदाद्यैः सुतैः सर्वैरिन्द्राद्यैश्च सुरैस्तथा ॥  
 सौवर्णविग्रहाः सर्वे ब्रह्माणस्तु पुरःसराः ।  
 वाराहरूपो भगवान् लक्ष्म्या सह सनातनः ॥  
 नीलान्मरकतांश्चैव भूषायान्तस्य कारयेत् ।  
 रजतस्य विशुद्धस्य देहं रुद्रस्य कारयेत् ॥  
 यो मौक्तिकैः\*स्तस्य शोभाङ्कारयेदत्र बुद्धिमान् ।  
 मौक्तिकैश्चापि सोमस्य शोभां वल्कैर्हिवाकरैः ॥  
 सावित्रीगायत्री तु, ब्रह्माणः पार्श्वभागे स्थापनीयौ ।

तदाह नारदः ।

सावित्री दक्षिणे पार्श्वे गायत्री नाम वामतः ।  
 विलोकयन्त्यौ ब्रह्माणं साक्षसूत्रकमण्डलुम् ॥  
 ऋषयः सप्त, गौतमाद्याः ।

तदुक्तमादित्यपुराणे ।

गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रश्च काश्यपः ।  
 जमदग्निर्वशिष्ठोऽत्रिः सप्त वैवस्वतोऽन्तरे ॥

\* गोमेदकैरिति पाठान्तरं ।

सप्तर्षिलक्षणमाह ।

यमः । सप्तर्षयस्तु जटिलाः कमण्डल्वक्षसूचिणः ।

ध्याननिष्ठा वशिष्ठस्तु कार्योभार्यासमन्वितः ॥

‘मुनयो’ वानप्रस्थाः, नारदाद्यैरिति तेषां विशेषणं ।

तानाहमनुः ।

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुस्तरम् ।

पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितोदश ॥

मरीचिमत्राङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुं ।

प्रचेतसं वशिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेव च ॥

तल्लक्षणमाह विश्वकर्मा ।

जटिलाः श्मश्रुलाः शान्ता दशाधमनिसन्तताः ।

कुसुम्भाक्षधराः कार्य्या मुनयो हिभुजाः सदा ।

तेषु सव्यभुजामूलस्निष्टधीरस्तु नारदः ॥

कर्पूरगौरदेहश्च साक्षसूत्रकमण्डलुः ।

इन्द्रादिरूपाण्यपि प्रागभिहितानि ।

वाराहरूपं विष्णुधर्मोत्तरे ।

वाराहरूपः कार्य्यस्तु शेषोपरिगतः प्रभुः ।

शेषश्चतुर्भुजः कार्य्यश्चारुरत्नफणान्वितः ॥

कर्त्तव्यौ शीरमुश्लौ करयोस्तस्य यादव ।

सर्परूपश्च कर्त्तव्यस्तथैव रचिताञ्जलिः ॥

आलीटस्थानसंस्थानस्तत्पृष्ठे भगवान् भवेत् ।

वामा रत्निगता तस्य योषिद्रूपा वसुन्धरा ॥

नमस्कारपरा तस्य कर्त्तव्या हिभुजा शुभा ।

यस्मिन् भुजे धरा देवी तत्र शङ्खः करे भवेत् ॥

अन्ये तस्य कराः कार्याः पद्म-चक्र-गदा-धराः ।

पद्मासनस्थां कुर्वीत श्रियं त्रैलोक्य मातरम् ॥

गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्वालङ्कारभूषिताम् ।

रौक्मपद्मकरव्यगां वरदां दक्षिणेन तु ॥

रुद्ररूपं प्रागभितं, ग्रहलक्षणानि तद्वर्णाश्च नवग्रहदाने वक्ष्यन्ते,  
'सर्ववर्णानि, ग्रहसमानवर्णानि, रत्नानि भूषणार्थं दापयेदित्यर्थः ।  
सर्वधातुभिः ब्रह्माण्डं कर्त्तव्यमित्युक्तं, तत्र सुवर्णस्य पीठनिर्मा-  
णादिविनियोगमभिधायेदानीं धात्वन्तरैः कर्त्तव्यं, तदुच्यते ।

पीठात्सप्तगुणं रौप्यं रौप्यात्ताम्रं तथा विधम् ।

ताम्रात्सप्तगुणं कार्यं कांस्यमत्र नराधिप ॥

तपुणः परतःसीसं तावल्लोहं च कारयेत् ।

सप्तद्वीपाः समुद्राश्च सप्तैव कुलपर्वताः ॥

अनया संख्यया ज्ञात्वा निपुणैः शिल्पिभिः कृता ।

तथाविधं सप्तगुणमित्यर्थः सप्तद्वीपा इत्यादि एतेषामेकैक-  
धातुना एकैकं द्वीपं समुद्रं कुलाचलञ्च रचयेदित्यर्थः ।

यादृशानि च भूतानि राजतान्येव कारयेत् ।

अरण्यानि च सत्वानि सौवर्णानि च कारयेत् ॥

वृक्षान् वनस्पतींश्चात्र वृण्वल्लीः सवीरुधः ।

'यादृशानि, जलसम्भवानि, पुष्पफलवन्ती वृक्षाः,

'अपुष्पाः, फलिनोवनस्पतयः, वीरुधोगुच्छगुल्मादयः ।

सर्वं प्रकल्प्य विधिवत्तीर्थं देयं विचक्षणैः ।

कुक्षेत्रे गद्यां च प्रयागेऽमरकण्टके ॥

द्वारवत्यां प्रभासे च गङ्गाहारे च पुष्करे ।  
 तीर्थेष्वेतेषु वै देयं ग्रहणे सोमसूर्ययोः ॥  
 दिनद्विद्वेषु सर्वेषु अयने दक्षिणीत्तरे ॥  
 व्यतीपाते बहुगुणं विषुवे च विशेषतः ।  
 दातव्यमेतद्राजेन्द्र विचारं नैव कारयेत् ॥  
 बालाग्निहोत्रिणं विप्रं सुरूपञ्च गुणान्वितम् ।  
 सपत्नीकं च संपूज्य भूषयित्वा विभूषणैः ॥  
 पुरोहितं मुख्यतमं कृत्वान्यांश्च तथर्त्विजः ।  
 चतुर्विंशद्गुणोपेतान् सपत्नीकान्निमन्त्रितान् ॥  
 अहताम्बुमुच्छन्नान् स्रग्विनः सुविभूषितान् ।  
 अङ्गुलीयकरत्रानि कर्षवेष्टांश्च दापयेत् ॥  
 एवं विधांश्च संपूज्य तेषामग्रे स्वयंस्थितः ।  
 अष्टाङ्गप्रणिपातेन प्रणम्य च पुनः पुनः ॥  
 पुरोहिताय पुरतः कृत्वा वै करसंपुटम् ।  
 यूयं वै ब्राह्मणा धात्रा मैत्रत्वेनानुगृह्यते ॥  
 सौमुख्येनेह भवताम्भवेत् पूतीनरः स्वयम् ।  
 भवतां प्रीतियोगेन स्वयं प्रीतः पितामहः ॥  
 ब्रह्माण्डेन तु दत्तेन तेषां मतिजनार्दनः ।  
 पिनाकपाणिर्भगवान् शक्रश्च त्रिदशेश्वरः ॥  
 एते वै तोषमायान्ति अनुध्याता द्विजोत्तमैः ।  
 एवं\* स्तुत्वा ततो राजा ब्राह्मणान् वेदपारगान् ॥

ब्रह्माण्डं गुरवे प्रादात् सविधानं पुनः पुनः ।  
 सर्वकामैस्ततस्तप्तो सययौ स्वर्गं नराधिप ॥  
 तेनापि गुरुणा तच्च विभक्तं ब्राह्मणैः सह ।  
 दत्तस्त्रैरपि चान्येभ्यो ब्रह्माण्डांशोनराधिपः ॥  
 ब्रह्माण्डं भूमिदानं च ग्राह्यं नैकेन तद्ववेत् ।  
 गृह्णन्दीषमवाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥  
 सर्वेषाञ्चैव प्रत्यक्षदातव्यं तं नराधिपः ।  
 दीयमानञ्च पश्यन्ति तेऽपि पूता भवन्ति हि ॥  
 दर्शनादेव ते पूता भवेयुनात्र संशयः ॥  
 भीमद्वादशी वाव्रीक्ता स्वर्णनाभिमृगाजिनम् ।  
 एतानि गत्वा पश्येत्तु दृष्टैरेतैः क्रियाफलम् ।  
 अयन्नादेव लभ्येत कर्तुं चैव सलोकताम् ॥

इति पद्मपुराणेऽक्तो ब्राह्माण्डदानविधिः ।  
 अथ कल्पपादपसंज्ञं चतुर्थं महादानमारभ्यते ॥

मत्स्य उवाच ।

कल्पपादपदानाख्यमतः परमनुत्तमम् ।  
 महादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम् ॥  
 पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।  
 पुण्याहवाचनं कुर्यात्लोकेशावाहनं तथा ।  
 ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥

आदिशब्देन कालदेशवृद्धिशिवादिपूजागुरुऋत्विग्चतु-  
 ष्टयवरण-मधुपर्क-दान-होम-वेदिकोपरिचक्र-लेखनपञ्च-वर्ण



वितानपताकातोरणादि, मत्स्यपुराणीकतुलापुरुषदानव, द्वेदि-  
तव्यम् ।

काञ्चनान् कारयेद्दृक्षान् नानाफलसमन्वितान् ।

नानाविहारवस्त्राणि भूषणानि च कारयेत् ॥

नानाफलानि, स्त्री-पुरुष-गो-गज-वाजि-मणि-वज्र-कनक-रजत-  
भक्ष्यफलादीनि ।

शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रात् प्रकल्पयेत् ।

अर्द्धात् क्लृप्तसुवर्णस्य कारयेत् कल्पपादपम् ॥

गुडप्रस्थोपरिष्ठाच्च सितवस्त्रयुगावृतम् ।

ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशङ्खं सभास्करम् ।

कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं प्रकल्पयेत् ॥

अर्द्धात्क्लृप्तसुवर्णस्येति, यथाशक्तिदानवक्लृप्तसुवर्णस्यार्द्धेन ब्रह्मा-  
दिप्रतिमासहितं कल्पपादपं कुर्यात्, द्वितीयमर्ध्वं चतुर्धाविभज्य  
एकैकांशेन वक्ष्यमाणस्त्र्यस्रदेवतासहितान् सन्तानादीन् विदध्यात्,  
गुडप्रस्थोत्र द्वात्रिंशत्पलपरिमितः, तथाचोक्तं, द्वात्रिंशत्पलकः  
प्रस्थः पुराणे परिकीर्तित इति, ब्रह्मादिलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने,  
कामदेवरूपन्तु विष्णुधर्मोत्तरात् ।

कामदेवस्तु कर्त्तव्यो रूपेणाप्रतिमो भुवि ।

अष्टबाहुः प्रकर्त्तव्यः शङ्खपद्मविभूषणः ॥

चापवाणकरश्चैव मदादञ्चितलीचनः ।

रतिः प्रीतिस्तथाशक्तिर्भार्याश्चैतास्तथोज्ज्वलाः ॥

चतस्रस्तस्य कर्त्तव्याः पत्न्योरुपमनोहराः ।

चत्वारश्च करास्तस्य कार्यार्थास्तनोपमाः ॥

केतुश्च मकरः कार्यः पञ्चवाणमुखीमहानिति ।

अधस्तादिति ब्रह्मादिभिरपि सम्बध्यते । अथ प्रकृतौ परि-  
माणाभावात् पुरुषेक्षया प्रतिमादिपरिमाणनियमः । सन्तानं  
पूर्ववत्तद्वह्नीयांशेन कल्पयेत्,

‘तुरीयांशेन, द्वितीयांश्चतुर्थ्यांशेनेत्यर्थः ।

तद्वत्कल्पवृक्षवत्, पञ्चशाखं गुडप्रस्थोपरिगतं ब्रह्मादिप्रति-  
मान्वितं कुल्यादित्यर्थः, केचित्तु कामदेवमधस्तात् प्रकल्पयेदिति-  
सन्तानवृक्षे योजयन्ति, तस्मिन् तत्प्रतिमैव कर्त्तव्या ।

मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया साङ्गं दृतोपरि ।

पश्चिमे परिभद्रन्तु सावित्रा सह जीरके ॥

सुरभिसंयुतं तद्वह्निष्य हरिचन्दनम् ।

तुरीयांशेन कुर्वीत सौम्येन फलसंयुतम् ॥

श्रीलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डे, सावित्रीलक्षणमाह नारदः ।

पद्मासना च सावित्री साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥

सुरभिलक्षणं ब्रह्माण्डपुराणे ।

सवत्सा सुरभो, धेनुरागता प्रसूतस्तनीति,

‘सौम्येन, उत्तरेण ।

घृतादीनामपि परिमाणपेक्षायां तद्वदिति वचनात्-

सन्निधानाच्च प्रस्थपरिमाणत्वमवधेयम् ॥

कौशेयवस्त्रसंयुक्तानिचुमाल्यफलान्वितान् ।

तथाष्टौ पूर्णकलशान् पादुकासनभाजनम् ।

दीपकीपानहृत्त्रचामरासनसंयुतम् ।

फलमाल्ययुतं तद्वदुपरिष्ठाहिनायकम् ।

तथाष्टादशधान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत् ॥

अशनभाजनं, भोज्यान्वितभाजनं वितानं पञ्चवर्णं ।

अथ पूर्ववत् पूर्वैद्युरधिवासनं विधाय श्वोभूते ब्राह्मणवाच-  
नादिपूर्णाहुतिपर्यन्तं कर्मशेषं समापयेत् ।

होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदिपुङ्गवैः\* ।

त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥

नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने ।

विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्त्तये ॥

यस्मात् त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्द्दिवाकरः ।

मूर्त्तामूर्त्तपरं वीजमतः पाहि सनातनः ॥

त्वमेवामृतसर्वस्वमनन्तः पुरुषोऽव्ययः ।

सन्तानाद्यैरुपेतः सन् पाहि संसारसागरात् ।

अमृता, देवाः तेषां सर्वस्व, अमृतसर्वस्वम् ॥

एवमामन्त्र्य तं दद्यात् गुरवे कल्पपादपम् ।

चतुर्भ्यश्चापि ऋत्विग्भ्यः सन्तानादीन् प्रकल्पयेत् ॥

दानवाक्यमतः, तुलापुरुषोक्तमूहनौयं, चतुर्भ्यः प्रकल्पयेदित्येकै-  
कस्मै दद्यादित्यर्थः, चतुर्भ्य इतिवचनादत्र चतुर्णामेवर्त्तिजां वरण-  
मिति गम्यते, ऋत्विगष्टकपक्षे तु ऋत्विग्भ्य इति ऋत्विक्त्युग्मेभ्य  
इत्यर्थः, एतस्मिंश्च पक्षे जापकादिभ्यो अन्यैव दक्षिणा दातव्या,  
वेदचतुष्टयापेक्षया चतुःसंख्यत्वमिदं ऋत्विजामितिकेचित् इहा-  
पि । प्राप्य तेषामनुज्ञाञ्च तथान्येभ्योपि दापयेदिति बोधव्यम्,  
दक्षिणानिर्णयश्च, पूर्ववत्, स्वल्पेष्वाग्निवत् कुर्याद्गुरुवे वाभि

\* वेदपुङ्गवैरिति क्वचित्पाठः ।

पूजनं न वित्तशायं कुर्वीत न च विस्मयवान् भवेत् ।  
स्वल्पत्वविवरणमुक्तं ब्रह्माण्डे, ततः पुण्याहवाचने कृते वेदि-  
समीपं गत्वा कृतदेवपूजोयजमानोगुरुः पूर्वदेव देवताविसर्जनं  
कुर्यात् ।

अनेन विधिना यस्तु महादानं निवेदयेत् ।  
सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥  
अप्सरोभिः परिहृतः सिद्धचारणपद्मगैः ।  
भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्रीमसंमितान् ॥  
स्तूयमानो दिवःपृष्ठे पितृपुत्रप्रपोचकान् ।  
विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलोकं स गच्छति ॥  
दिवि कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजो भवेत् ततः ॥  
नारायणवलीपेति नारायणपरायणः ।  
नारायणकथासक्तो नारायणपुरं व्रजेत् ॥  
यो वा पठेत् सकलकल्पतरुप्रदानं  
यो वा शृणोति पुरुषोत्पन्नः स्मरेद्वा ।  
सोऽपोन्द्रलोकमधिगम्य सहाप्सरोभिः  
स्रन्वन्तरं वसति पापविमुक्तदेहः ॥

इति मत्स्यपुराणीककल्पतरुदानविधिः ।

लिङ्गपुराणे, सनत्कुमार उवाच ।

अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि कल्पपादपमुत्तमम् ।  
शतनिष्केण कर्तव्यं सर्वशाखासमन्वितम् ॥

‘सर्वशाखाः, सर्वदिगन्तशाखाः ।

शाखायां विधिना कृत्वा मुक्तादाम प्रलम्बितम् ।

दिव्यैर्भरकतैश्चैव चाङ्गुराणि प्रविन्यसेत् ॥  
दिव्यैः, उत्कृष्टैरित्यर्थः ।

प्रवालङ्कारयेद्दीमान् प्रवालेन द्रुमस्य च ।  
प्रवालेन प्रवालङ्कारयेदिति, द्रुमैर्व्वालपल्लवान् कारयेत्यर्थः ।  
फलानि पद्मरागैश्च पारिजातस्य शोभनम् ।  
मूलदण्डञ्च नीलेन वज्रेण स्कन्धमुत्तमम् ॥  
वैदूर्येण द्रुमाग्रञ्च पुष्परागेण मस्तकम् ।  
स्कन्धादूर्ध्वभागो मस्तकं, तदूर्ध्वं, द्रुमाग्रम् ।  
गोमेदकेन वै स्कन्धं सूर्यकान्तेन सुव्रतः ।  
चन्द्रकान्तेन वा वेदिं द्रुमस्य स्फटिकेन वा ॥  
वितस्तिमात्र आयागो वृक्षस्य परिकीर्तितः ।  
शाखाष्टकसमानञ्च विस्तारञ्चोर्ध्वतस्तथा ॥

शाखाव्यतिरिक्तस्य वृक्षस्य वितस्तिमात्र, उच्छ्रायः कार्यः,  
उर्ध्वतस्तथेति, स्कन्धादूर्ध्वमुखो नवमो या मध्यमशाखा तस्या-  
अपि वितस्तिमात्र उच्छ्रायः, शाखाष्टकसमानं विस्तारमिति,  
अष्टदिग्मुखीनामष्टशाखानां विस्तारं तिर्यग्व्याप्तिवितस्ति-  
मात्रमेव कुर्यादित्यर्थः ।

तन्मूले स्थापयेद्विष्णुं लोकपालसमावृतम् ।  
व्वर्षोक्तवेदिमध्ये तु मण्डले स्थाप्य पादपम् ॥  
पूजयेद्देवमीशानं लोकपालांश्च दत्ततः ।  
पूर्ववज्रपद्मोमायन्तुलाभारवदाचरेत् ॥  
निवेदयेद्द्रुमं शम्भोर्ब्राह्मणायाथवा नृप ।  
ब्राह्मणेभ्योऽथवा राजा सार्वभौमो भविष्यति ॥

तुलाभारवदाचरेदित्यत्र लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं  
विधिमाचरेदित्यर्थः ।

कालोत्तरे । पलानान्तु सहस्रेण कल्पयेत् कल्पपादपम् ।

समूलदण्डपत्रञ्च फलपुष्पसमन्वितम् ॥

पञ्चस्कन्धन्तु संकल्प्य पञ्चानां स्थापयेत् सुधीः ।

सद्योजातेन मन्त्रेण देयं ग्राह्यं शिवाग्रतः ॥

दिव्यैर्विमानैर्देहान्ते शिवलोके महीयते ।

पितरस्तस्य भीदन्ते सत्यलोके महीयते ॥

इति शैवकल्पतरुदानविधिः ।

अथ गोसहस्राख्यं पञ्चमं महादानमुच्यते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

गोसहस्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं परम् ॥

पुण्यं तिथिमथासाद्य युगमन्वन्तरादिकम् ।

पयोव्रतस्त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापि वा ॥

लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत् ।

पुण्याहवाचनं कुर्याद्धोमः कार्यस्तथैव च ॥

ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।

वृषं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधिवासयेत् ॥

गोसहस्रादिनिष्क्रम्य गवां दशकमेव च ।

॥ यानैरितिपुस्तकान्तरे पाठः ।

॥ यथासुखमिति क्वचित्पाठः ।

पयोव्रतस्त्रिरात्रमिति, दानदिनात् पूर्व<sup>१</sup> त्रिरात्रं पयोव्रतः-  
स्यादित्यर्थः, अत्रादिशब्देन देशकाल-वृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-  
गुरु-ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-कुण्डवेदिकावितान-चक्रलेखन-पता-  
कादीनि मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितानि गृह्यन्ते, वृषं  
लक्षणसंयुक्तं, वृषलक्षणानि, उन्नतस्कन्धककुदं उज्ज्वलायत  
कम्बलमित्यादीनि वृषोत्सर्गप्रकरणे मत्स्यपुराणोक्तान्येव वेदि-  
तव्यानि, गोसहस्रादिनिष्क्रम्येति दशोत्तरगोसहस्रादिति वेदि-  
तव्यम्, अग्रे दशाधिकगोसहस्रविनियोगदर्शनात्, यद्यपि गवां  
दशकमित्यत्र गोमात्रप्रतीतिः तथापि उत्तरत्र ऋत्विग्भ्यो धेनु-  
मेकैकां दशकादिनिवेदयेदिति, धेनुसंशब्दनात्, पुराणान्तरे  
गोसहस्रादिनिष्क्रम्य सवत्सं दशकं गवामिति श्रवणाच्च धेनुदशक  
मेवाधिवासनीयम् ।

इतरासु पुनर्नावश्यं धेनुरूपत्वादरः ।

गोसहस्रं वह्निः कुर्याद्वस्त्रमाल्यविभूषितम् ।

सुवर्षशृङ्गाभरणं रौप्यपादसमन्वितं ॥

अतः प्रवेश्य दशकं वस्त्रमाल्यैस्तु पूजयेत् ।

सुवर्ण-घण्टिकायुक्तं ताम्रदीहनिकान्वितम् ॥

सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलङ्कृतम् ।

केशेयवस्त्रसम्बन्धितं माल्यगन्धसमन्वितम् ॥

हेमरत्नयुतैः शृङ्गैश्चामरैश्चापि शोभितं ।

पादुकोपानहच्छत्रभाजनासन\* संयुतम् ॥

\* चामरासनेति कचित्पाठः ।

‘दशसौवर्णिके शृङ्गे, खुराः, पञ्चपलाः ।

पञ्चाशत्पलदोहनकः अन्यत्र तत्राभिधानात् घण्टिकादि-  
सुवर्णशब्दोऽत्र षोडशमापपरिमितहिरण्यवचनः, सक्तदुच्चरित-  
सुवर्णशब्दावगतपरिमाणपरित्यागानुपपत्तेः । पादुके, काष्ठमय्यौ,  
चर्मकृते उपानहाविति भेदः ।

गवां दशकमध्ये स्यात् काञ्चनो नन्दिकेश्वरः ।

कौशियवस्त्रसंवीती नानाभरणभूषितः ॥

लवणद्रोणशिखरे-माल्यक्षुफलसंयुतः ।

कुर्यात् पलशतादूर्ध्वं सर्वमेतदशेषतः ॥

भक्तितः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु ।

गोशते वै दशांशेन सर्वमेतत् प्रकल्पयेत् ॥

लवणद्रोणशिखरे, लवणद्रोणीपरीत्यर्थः ।

नन्दिकेश्वरलक्षणं ललितविजयात् ।

ऊर्ध्वस्त्रिनेत्रो द्विभुजः सौम्यास्थोनन्दिकेश्वरः ।

वामे तु शूलभृद्दक्षे चाक्षमालासमन्वित इति ॥

ऊर्ध्व इति, अशयानानुपविष्ट इत्यर्थः ।

पलशतादूर्ध्वं पलसहस्रत्रितयं यावदिति, साभरणनन्दिके-  
श्वरविषयमेतत् आनन्तर्यात्, गोशते वै दशांशेनेति, गोशते  
देये गामेकामेकञ्च वृषभं वेदिमध्येऽधिवासयेत् पलदशका-  
दूर्ध्वं पलशतत्रयं यावदितिसाभरणनन्दिकेश्वररचनादिकं कुर्या-  
दित्यर्थः ।

पुण्यकालमथासाद्य गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।

सर्वौषध्युदकस्नानस्त्रापितो वेदिपुङ्गवैः ॥



इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।

अत्रापि पूर्ववत् पूर्वद्युरधिवासनं विधाय द्वितीयदिवसे  
ब्राह्मणवाचनानन्तरमग्निकुण्डेषु ऋत्विगुपवेशनादिपूर्णाहुतिप-  
र्यन्तं कर्मशेषं गुरुः समापयेत् ततः पुण्यकालं आत्मानु-  
कूललग्नमुहूर्त्तादिलक्षणमासाद्य कुण्डसमीपस्थितकलशोदकेन  
ब्राह्मणैः स्नापितः शुक्लमाल्याम्बरधरो यजमानो वक्ष्यमाण  
मन्त्रानुदीरयेत् ।

नमो वो विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च ।

लोकाधिवासिनोभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः ॥

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः ।

ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः ॥

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।

गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

यस्मात् त्वं वृषरूपेण धर्म्म एव सनातनः ।

अष्टमूर्तिरधिष्ठानमतः पाहि सनातनः ॥

इत्यामन्त्रा तु यो दद्याद्गुरवे नन्दिकेश्वरम् ।

सर्वापकरणोपेतं गोयुगञ्च विचक्षणः ॥

ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशकादिनिवेदयेत् ।

गवां शतमथैकैकं तदर्द्धं चाथ विंशतिः ॥

दशपञ्चाशद्वाधिकास्तदनुज्ञया ।

दानवाक्यमत्र तुलापुरुष वहेदित्यं, एते च शतप्रभृति पञ्च-  
पर्यन्ता विकल्पा ऋत्विग्विषयाः तदानन्तर्यात्, ततश्चायमर्थः सिद्धो  
भवति गोदशकमध्यान्नन्दिकेश्वरयुतं गोयुगं गुरवे प्रतिपाद्या-

शेषाणामष्टानाङ्गवामेकैकामेकैकस्मै ऋत्विजे दद्यात्, तथा गो-  
सहस्रमध्यात् शतद्वयं गुरवे प्रदाय एकैकं शतमृत्विग्भ्यो दद्यात्,  
अथवा शतं गुरवे पञ्चाशतं ऋत्विग्भ्यः अथ वा चत्वारिंशतं गुरवे  
विंशतिं विंशतिमृत्विग्भ्यः विंशतिं, वा गुरवे दश दश ऋत्विग्-  
भ्यः, दशवा गुरवे पञ्च पञ्च ऋत्विग्भ्यो दद्यात् शेषा गास्तदनुज्ञया  
अन्येभ्योपि दद्यात् । दक्षिणाञ्चान्न पूर्ववदेव दद्यात् । अनुक्त-  
दक्षिणाषु सुवस्व दक्षिणेति वचनात् यथाशक्ति सुवर्णं वा, ततः  
पूर्ववदेव पुण्याहवाचन-देवतापूजन-विसर्जनादि कुर्यात् ।

नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दीपकरी भवेत् ।

बह्वप्रश्नैकस्य दातव्या श्रीमदारोग्यवृद्धये ॥

पयोव्रतः पुनस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः ।

इदञ्च पयोव्रतानुष्ठानं, शक्त्यापेक्ष्यम् ।

अशक्तौ नक्तमिथत इति वचनात् ।

आवयेत् शृणुयाद्वापि महादानानुकीर्तनम् ।

तद्दिनं ब्रह्मचारी स्याद्यदीक्षेद्विपुलां श्रियम् ।

आथर्वणगोपथब्राह्मणे । अथातो गोसहस्रविधिर्गोष्ठ उदकान्ते  
शुची देशे प्राञ्चमिधमपसमाधाय अन्वालभ्याथ जुहुयात्, आगा-  
वसूक्तेनाद्यं जुहुयात्, महाब्रीहीणामैन्द्रञ्चरुं सौम्यञ्च सहस्रं  
तस्याः पयसि अपयित्वा गाव इति, एवमुभय इत्येतेन जुहुयात्  
पञ्चादग्नेस्तीर्थोदकपूर्णकलशमवस्थाप्याहिसंवीगेष्ठेनेति दशगाः  
स्नापयेत् त्वरमाणान्याः समभ्युक्ष्य सहस्रं तस्याः स्नानोदकेनेम  
मिन्द्रं वर्धय क्षत्रियं म इति, राजानमभिषिचेमात्राप इति,  
षड्भिर्यथोक्तमञ्जनाभ्यञ्जनानुलेपनं कृत्वा सहस्रतमीं प्रथमामलं-

कृत्य गावो मामुपतिष्ठत प्रजावती स्यूवासादिति च सय्यासयेत्  
 प्रियमशनन्दत्वा द्वित्यमघ्रादितिसहस्रतमीमालभ्य जपेत् मया  
 गावोपतिना सवद्धमिति मन्त्रेणानेनार्धं दत्त्वा सहस्रतमीं पुनरुप  
 संगृह्य भूमिश्चा प्रतिगृह्णात्विति जपेत् सहस्रं तस्याः पृष्ठतो ब्रजन्  
 सर्वाः प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य स्वस्ति वाच्य ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य  
 दशगा दक्षिणा कर्त्तुं सहस्रतमां वस्त्रयुग्मञ्च तदपि ।

श्लोकाः ।

सप्तजन्मानुगं पापं पुरुषैः सप्तभिः कृतं ।  
 तत्क्षणात् विधिनानेन नाशयेद्गोप्रदीनरः ॥  
 सर्वेषामिह दानानां फलं यत् परिकीर्तितम् ।  
 तदवाप्नोति विप्रेभ्यो गोसहस्रप्रदीनरः ॥  
 अश्वमेधं वृषोत्सर्गंगोसहस्रत्रयन्तु यः ।  
 दद्यान्मादायइत्याहुः परितःस्तर्पयन्ति हि ॥  
 अस्मादनेन विधिना गोसहस्रन्तु दीनरः ।  
 प्रदद्यात् स विशुद्धात्मा याति तत् परमं पदमिति ॥

मत्स्यपुराणे ।

अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदीभवेत् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणमेवितः ॥  
 विमानेनार्कवर्णेन क्रिद्विणीजालमालिना ।  
 सर्वेषां लोकपालानां लोके संपूज्यते नरैः ॥

प्रतिमन्वन्तरे तिष्ठेद्राजराजो भवेत् पुनः ।  
 अश्वमेधशतं कुर्याच्छिवध्यानपरायणः ॥  
 वैष्णवं लोकमास्थाय\* ततो मुच्येत बन्धनात् ।  
 पितरश्चाभिनन्दन्ति गोसहस्रप्रदं शुभम् ॥  
 अपि स्यात्सकुलेऽस्माकं पुत्रोदौहित एव च ।  
 गोसहस्रप्रदो भूत्वा नरकादुद्गरिष्यति ॥  
 तत्सकर्मकरो वा स्यादपि द्रष्टा तथैव च ।  
 संसारसागरादस्माद्योऽस्मान् सन्तारयिष्यति ॥  
 इति पठति य एतन्नी-सहस्र-प्रदानम्  
 सुरभुवनमुपेयात्संस्मरेद्वापि पश्येत् ।  
 अनुभवति सुखं वा वाच्यमानो निकायम्  
 प्रहतकलुषदेहः सोऽपि यातीन्द्रलोकम् ॥  
 इति गोसहस्रदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

गोसहस्रप्रदानञ्च वदामि शृणु सिद्धये ।  
 गवां सहस्रमादाय सवत्सं सगुणं शुभम् ॥  
 ताश्चाभ्यर्च्य यथाशास्त्रमष्टौ सम्यक् प्रयत्नतः ।  
 तासां शृङ्गाणि हेम्नाथ प्रतिशृङ्गेण बन्धयेत् ॥  
 खुरांश्च राजतेनैव बन्धयेत् कण्ठदेशतः ।  
 प्रतिनिष्केण कर्त्तव्यं कथं वक्त्रेण शोभनम् ॥  
 गवां सहस्रमादायेति, अष्टाधिकं गोसहस्रमिति ज्ञेयम् ।

† योगमास्थायेति पुस्तकान्तरे ।

ताद्यान्याश्च महाभाग अष्टौ संगृह्य यत्नतः ।

इति वातुलोक्तिः ।

बन्धयेत् कण्ठदेशतद्व्यञ्जं वस्त्रमिति शेषः ।

वस्त्रं बध्वा गले गाञ्च विप्रेभ्यो दापयेत् क्रमात् ।

निष्कं स्वर्णमयं कृत्वा पटं कण्ठे च बन्धयेत् ॥

इति कामिकोक्तिः ।

विप्रेभ्यो दापयेद्गावो दक्षिणाञ्च पृथक् पृथक् ।

दशनिष्कं तदर्द्धं वा तदर्द्धार्द्धमथापि वा ॥

यथाविभवविस्तारं निष्कमानमथापि वा ।

वस्त्रयुग्मञ्च दातव्यं पृथक् विप्रेषु शोभनम् ॥

गावश्चाराध्य यत्नेन दातव्याः सुमनोरमाः ।

एवं दत्त्वा विधानेन शिवमभ्यर्च्य शङ्करम् ॥

जपेदग्रे यथान्यायं गवां स्तवमनुत्तमम् ।

गावोममाग्रतो नित्यं गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥

हृदये नः सदा गावो गवां मध्ये वसाम्यहम् ।

एवं स्तुत्वा द्विजाग्रिभ्यो दत्त्वा गास्ताः सदक्षिणाः ॥

तद्ग्रीमसंख्यावर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ।

पूर्ववदधिवासनं शिवस्य सहस्रकलशायभिषेचनं कृत्वा गो-  
स्तवमुच्चार्य प्रत्येकं गोदानं कार्यं, आचार्यादिदक्षिणा च  
प्राग्वत् ।

इति लिङ्गपुराणोक्तो गौसहस्रदानविधिः ।

अतः परं स्मृतं दानं ये न रोहन्ति देहिनाः ।

दुर्लभं तत्परम्याम तप्ता कामैरशेषतः ॥

सहस्रन्तु सवत्सानां धेनूनां यः शिवाय वै ।  
 स्नानार्थं विधिवद्दद्यात्सोपि तत्पदमाप्नुयात् ॥  
 तद्गोसहस्रक्षीरेण तथा दध्ना च शङ्करम् ।  
 सर्पिषा च समग्रेण स्नाप्य वाद्यादिमङ्गलैः ।  
 दद्यात् सरसिजं रौक्मं लिङ्गं सम्पूज्य यत्नतः ।

रौक्मं, सौवर्णं ।

तदग्रे वाथ पुष्पैस्तु आपीठान्तं सुशीभनम् ।  
 वितानहेमघण्टादीन् युग्मं चैव निवेदयेत् ॥  
 आपीठान्तं पुष्पैः पूरयेदिति शेषः ।  
 दीपदर्पणनैवेद्यं हेमदण्डञ्च चामरम् ।  
 अग्निं सन्तर्प्य चाज्येन मन्त्रविच्छेत्त्रियेण च ।  
 हेमवस्त्रयुगेनैव भूषितेन द्विजेन वै ॥  
 आज्येनेत्यादि, आज्येन द्रव्येण त्रियेण ऋत्विग्युतेन  
 सन्तर्प्येदित्यर्थः ।

हेमवस्त्रयुगेनेति हेम्ना शोभनवस्त्रयुग्मेनेत्यर्थः ।

ततो ब्रह्मरवेणैव शुक्ला गौस्तत्र या शुभा ।  
 वितानञ्चोच्छेत्तस्या गच्छेत् प्राग्दक्षिणं पुनः ॥  
 हराय चापराः सर्वा गास्तास्तदनुचालयेत् ।  
 मण्डिता हेमवस्त्रार्द्यैर्महावादित्रिभिः स्वनै ॥  
 प्रदक्षिणं ततोदेवं कृत्वा गावस्तदग्रतः ।  
 स्थापयित्वा तु ताः सर्वा यजमानः प्रदक्षिणम् ॥  
 सुरभीया च या मुख्या तस्यास्वये च कारयेत् ।

सर्वं तत्गोसहस्रं तु महाब्रह्मरवेण वै ॥  
 ततस्तु पुच्छमादाय तिलहीमयवाक्षतैः ।  
 सपुष्पोदकहस्ताभ्यां शङ्कराय निवेदयेत् ॥

यवाक्षतैः, अक्षतयवैः ।

ततस्त्वेकादशभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तथापराः ।  
 गावोवसान्विता दद्यात्तेभ्यो देयं विचिन्त्य च ॥  
 अब्रतान् सुव्रतांस्तत्र ब्राह्मणांश्च विशेषतः ।  
 दीनान् सुदुःखितांश्चैव भोजयेदनिवारितान् ॥  
 विधिनानेन ये भक्त्या स्वर्जिता गोसवेन तु ।  
 उद्दिश्य शङ्करन्देवं मुच्यते भवबन्धनात् ॥

स्वर्जितोसवौ दृष्टान्तः ।

अथ वान्यत् प्रकारेण दद्यान्नोशतमुत्तममिति ॥  
 शतशब्दो बहुवाची स चात्र सहस्रपरः  
 अग्रे सहस्रविनियोगदर्शनात् ।  
 एकादशाधिकं रुद्रे चिच्छक्तये मिताय च ।  
 संपूर्णं पूर्ववत् कृत्वा विधिमादौ प्रयत्नतः ॥  
 होमपूजादिसंयुक्तं दद्यात्तत्रैव शम्भवे ।  
 दीक्षितानां शतं ह्येकमाहृत्य शिवमन्दिरे ॥  
 ततः पूज्य यथा न्यायं दद्यात्तेभ्यो यथा शृणु ॥  
 दशकं दशकं चैव एकैकस्य पृथक् पृथक् ।  
 हृदि शम्भुं गवां चैव ध्यात्वा तेषां निवेदयेत् ॥  
 अधिकं दशकं यत्र नीलकण्ठेन्दुशेखरे ।

दद्यात् पूर्वविधानेन धेनूनाञ्च सवत्सकम् ॥

दीक्षितानां शतमित्यादि शम्भुप्रोतये शम्भून्ध्यात्वा दीक्षितानां सम्प्रदानभूतानां दद्यादित्यर्थः ।

पूर्वविधानेन, स्तूपनप्रकारेण ।

अथ वा ओत्रियान् विप्रान् वेदवेदाङ्गपारगान् ।

आहृत्य द्विगुणन्तेभ्यः पञ्च पञ्च ददेत् सुधीः ॥

कृत्वा विधिमिमञ्जन्तुः न शीच्यः स्यात् कदाचन ।

गर्भागारज्वरेभूयः परिक्रामति नैव सः ॥

‘गर्भगारज्वरे’ गर्भवासक्लेशे ।

इति कालिकापुराणोक्तत्रिप्रकारगोसहस्रदानविधिः ।

अगस्त्य उवाच ।

दानमन्त्रं प्रवक्ष्यामि गोसहस्राख्यमुत्तमम् ।

यत्कृत्वा नर्मदातीरे मुच्यते भवबन्धनात् ॥

शैवानां वैष्णवानाञ्च सहस्रं भोजयेत्तथा ।

ततः सहस्रं दोग्द्वीणां शुक्लानाञ्च गवां तथा ॥

गर्भिणीधेनुसंमिश्रं वृषभैर्दशभिर्धृतम् ।

अर्चितं गन्धपुष्पाद्यैर्हैमवस्त्रैरलंकृतम् ॥

प्रदक्षिणमुपक्रम्य मन्त्रेणानेन भक्तिः ।

ओं नमो भगवते वासुदेवायेति मन्त्रः ।

वेदविद्भिः समाकीर्णं विष्णोरायतने शुभे ।

नर्मदातीरमासाद्य दीपमालां \* प्रवन्धयेत् ॥

गावो ममायतो नित्यं गावस्तृष्टत एव च ।



गावो मे हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहं ॥  
 गवां मन्त्रं समुच्चार्य जपेदासां पुरस्थितः ।  
 गन्धतोयाक्षतैर्युक्तं गृहीत्वा ताम्रभाजनम् ॥  
 गवां पुच्छान्भसा स्नातः शुक्लवस्त्रसमन्वितः ।  
 सर्वकल्मषनिर्मुक्तः शुद्धः शुचिमनास्ततः ॥  
 स्नापयित्वा तु गास्तत्र ताविप्रानर्म्मदाजले ।  
 पञ्चदश्यां पूर्णचन्द्रे राहुसीमसमागमे ॥  
 तैरेव सार्धं विप्रेन्द्रैरभिपूज्य हरिं स्मरेत् ।  
 मृत्युपुत्रकलत्राद्यैर्युक्तः स्वजनवान्वयैः ॥  
 निवेदयेत्तु विप्रेभ्यो मन्त्रेण श्रद्धयान्वितः ।  
 आदि दाने च होमे च विवाहे मङ्गले तथा ॥  
 गोमातरस्थिता नित्यं विष्णुलोके शिवप्रिया ।  
 शिवायैता मया दत्ता विष्णवे च महात्मने ॥  
 एवं विप्राय यो दद्यात् यन्नार्थं समलंकृताः ।  
 विनिवेद्य च शर्वाय गोसहस्रमलङ्कृतम् ॥  
 प्राप्नोति परमं स्थानं यत्नत्वा न निवर्त्तते ।  
 कुलानि त्रिंशदुत्तार्थं नरकाद्भृत्यवान्भवान् ॥  
 स्थापयेद्द्वैष्णवे लोके शिवस्य च महात्मनः ।  
 सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शुद्धः सर्वगतः प्रभुः ॥  
 संसारसागराभ्युक्तो हरितुल्यः प्रजायते ।  
 अनेनैव विधानेन गृहस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥  
 विनापि ज्ञानयोगेन गोसहस्रप्रदानतः ।  
 तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र गोसहस्रप्रदो भव ॥

देववद्विवि मोदन्ते येन ते पितरः सदा ।

इति स्कन्दपुराणोक्ता गोसहस्रदानविधिः ।

आदित्यपुराणे ।

अथ प्रयच्छे द्विप्रेषु गोसहस्रं महामुने ।

अर्चयेन्नम्यपुष्पैस्तु पट्टैः सर्वाः समर्चयेत् ॥

पट्टैः, वस्त्रैः,

सर्वाः कनकशृङ्गास्ताः सर्वा रौप्यखुरार्चिताः ।

हीनांगा न ददेत् गावः कृशा वृद्धातुरास्तथा ॥

एकाङ्गामर्चयेत्तासां शेषाणां च विधिं शृणु ।

तिलानां तु शतं, ह्येषां दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥

पाद्येन विधिना चैव तर्पयित्वा द्विजांस्तथा ॥

तिलानां शतं, तिलानान्द्रीणशतमित्यर्थः ।

‘पाद्येन, पाद्यार्घादिना ।

शुचिः शुद्धमना भूत्वा योऽर्चयेच्च जनाह्वनम् ।

प्रणम्य शिरसा देवं दत्त्वा गावश्च सत्वरम् ।

तेन ता अर्चिताः सर्वा भविष्यन्ति न संशयः ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञाः संहिताध्यापका द्विजाः ।

अग्निहोत्ररता ये च स्वाध्यायनिरताश्च ये ॥

एतान् विप्रान् परीक्षेत गोप्रदाने महामुने ।

ईदृशानान्तु यदत्तं तच्चानन्तमिहोच्यते ॥

अनन्तस्य तदा दानमिति सत्यं महामुने ।

उपोष्य विधिवच्चैव प्रसन्नमनासेन्द्रियः ॥

उपेत्य ब्राह्मणेभ्यश्च दद्याद्गावश्च सत्वरः ।

स्पर्शयित्वा तु तां गावः सुमनाः सुसमाहितः ॥

‘स्पर्शयित्वा दत्त्वा,

न चैतास्ताडयेद्दण्डैर्न हस्तेन न लेष्टुना ।

यथोक्तं गोसहस्रन्तु यः प्रयच्छति वै द्विजः ॥

सर्वक्लेशान् परित्यज्य विष्णुलोके महीयते ।

तथा । तिलानान्तु शतं यस्तु विना गोभ्यः प्रयच्छति ॥

पलमेकं सुवर्णस्य गोसहस्रादिशिष्यते ।

यथोक्तं गोसहस्रन्तु प्रयच्छेत्तु द्विजातिषु ॥

तत्फलं लभते दाता सदाः पापात् प्रमुच्यते ।

यस्तु पश्यति पापात्मा सोऽपि पापात् प्रमुच्यते ॥

एकविंशतिमुद्धृत्य ये च पूर्वं व्यवस्थिताः ।

तारयन्ति नराः क्षिप्रं कुलान्येकोत्तरं शतम् ।

अलाभे गोसहस्रस्य सुवर्णं दातुमर्हति ॥

सहस्रार्द्धं शतं नूनं द्विजानां च तिलैः सह ।

तथा च लभते नित्यं संपूर्णं द्विजसत्तम ॥

अर्चितानां सहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः ।

संपूर्णदक्षिणं विप्र गोसहस्रं प्रकीर्तितम् ॥

तिलानान्तु शतं ह्येकं गवां दानेन तत्समम् ।

सहस्रार्द्धं सुवर्णस्य, षोडशमाषपरिमितस्येति शेषः ।

महाभारते । गवां सहस्रदः प्रेत्य नरकं नैव पश्यति ।

सर्वत्र विजयञ्चापि लभते मनुजाधिप ।

दशगोसह स्रदोनित्यं शक्रेण सह मोदते ।

अक्षयान् लभते लोकान् नरः शतसहस्रशः ॥

सुवर्णशृङ्गैस्तु विराजितानां

गवां सहस्रस्य पुनः प्रदाता ।

प्राप्नोति पुण्यं दिवि शक्रलोक-

मित्येव माहुर्मुनिवेदसङ्घाः ॥

इति गोसहस्रदानविधिः ।

अथ हिरण्यकामधेनुसंज्ञं षष्ठं महादानमुच्यते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रक्ष्यामि कामधेनुविधिं परं ।

सर्वकामप्रदं नृणां महापातकनाशनम् ।

लोकेशावाहनं तद्वद्भूमिः कार्योऽधिवासनम् ॥

तुलापुरुषवत् कुर्यात् कुण्डमण्डपवेदिकाः ।

स्वल्पेष्वेकाग्निवत्कुर्यात् गुरुरेव समाहितः ॥

कुण्डमण्डपवेदिका इत्युपलक्षणम् ।

इह हि देश-काल-वृद्धिश्राद्ध-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन-गुरु  
ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-वेदिकोपरिचक्रलेखन-पञ्चवर्णवितान-  
तीरण-पताकादि-सर्वमुक्तं मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं  
वेदितव्यं । स्वल्पेऽप्वेकाग्निवदिति, एकाग्निवत् करणं व्याख्यातं ।

काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुं वत्सञ्च कारयेत् ।

उत्तमा पलसहस्रैस्तदर्द्धेन तु मध्यमा ॥

कनीयसी तदर्द्धेन कामधेनुः प्रकीर्त्तिता ।

शक्तितस्त्रिपलादूर्द्धमशक्तोपीह कारयेत् ॥

अत्र यद्यपि वत्सपरिमाणमनुक्तं तथापि कामधेनुविधान-  
वत् तप्तकाञ्चनचतुर्थ्यांशेन वत्सः कल्पनीयः, समस्तधेनुपरिमित-  
द्रव्यनिष्कृष्टवत्सनिर्माणव्याप्तिदर्शनादिहापि धेनुदानत्वाविशेषात्  
तथैव निश्चीयते । तथा च गुडधेन्वादिषु तच्चतुर्थ्यांशेन दत्तसंख्या-  
दिति तत्र तत्र वक्ष्यते ।

वेद्यां कृष्णांजिनं तस्य गुडप्रस्थसमन्वितम् ।

न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलंकृताम् ।

कुन्भाष्टकसमीपेतां नानाफलसमन्विताम् ॥

कल्पतरुदाने, प्रस्थो व्याख्यातः । ‘महारत्नानि, पद्मराग-  
प्रभृतोनि, वत्सन्दत्ते तु विन्यसेदिति क्वचित्पाठः, ‘नानाफलानि,  
गोगजवाजिस्त्रीपुरुषप्रभृतोनि, सौवर्णानि, कल्पतरुदानोक्तानि ।

तथाष्टादशधान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत् ।

इक्षुदण्डाष्टकं तद्वन्नानाफलसमन्वितम् ।

भाजनं चासनं तद्वत् ताम्रदीहनकं तथा ॥

अष्टादशधान्यानि परिभाषायां द्रष्टव्यानि ‘नानाफलानि,  
मातुलिङ्गादीनि ।

कौशेय वस्त्रद्वयसंप्रयुक्ताम्

दीपातपत्राभरणाभिरामां ।

स चामरां कुण्डलिनीं सघण्टां

गणितिकापादुकरोप्यपादाम् ॥

रसैश्च सर्वैः परितोभिजुष्टां

हरिद्रया पुष्पफलेरनेकैः ।

अजाजिकुस्तुम्बुरुगर्कराभिः

वितानकं चीपरि \* पञ्चवर्णं ॥

स्नातस्ततो मङ्गलवेदघोषैः

प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः ।

आवाहयेत्ताडुधेनुमन्त्रैः

द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः ॥

सघण्टागणत्रिकेत्यादि घण्टागणत्रिकापादुकाभिः सह वर्त्तत  
इतिसघण्टागणत्रिकापादुका साचासौ रौप्यपादाचेति विग्रहः ।  
गणनासाधनत्वाद्गणत्रिका, अक्षमालागणत्रिकेति क्वचित्पाठः ।  
तत्र गणत्रिका कण्ठभूषणं केचित्, केचित्तु गलन्तिकेति पठित्वा  
जलपूर्णाकर्करोति व्याचक्षते । रसाः परिभाषायामुक्ताः अजा  
जीरकं, कुस्तुम्बुरुर्द्धान्यकं, एवमुपकल्पितसम्भारः पूर्ववदधिवासनं  
विधाय तदन्यदिवसे प्रातः कृतपुण्याहवाचनोऽग्निकुण्डेषु ऋत्वि-  
गुपवेशनादिपूर्णाहुतिपर्यन्तकर्मशेषसमाप्तिं कृत्वा सर्वोपधिजल-  
स्नातः शुक्लमाल्यांवरो गृहीतकुसुमाञ्जलिर्यजमानस्त्रिःप्रदक्षिण-  
मावृत्य गुडधेनुमन्त्रैस्तामावाहयेत् । गुडधेनुमन्त्राः । या  
लक्ष्मीः सर्वभूतानामित्यादयः, तत्प्रकरणे द्रष्टव्याः, आवाहना-  
नन्तरं वक्ष्यमाणमन्त्रेणामन्त्रयेत् ।

त्वं सर्वदेवगणमन्दिरसङ्गभूता

विश्वेश्वरन्निपद्यगोदधिपर्वतानां ।

त्वद्दानशस्तसकलीकृतपातकौघः

प्राप्तोऽस्मिनिर्द्वितीयतीव परां नमामि ॥

लोके यथेप्सितफलार्द्धं विधायिनीं त्वा

मासाद्य कीहि भवदुःखमुपैति मर्त्यः ।

संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं

त्वां कामधेनुरिति देवगणा वदन्ति ॥

आमन्त्र्य शीलकुलरूपगुणान्विताय

विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात् ।

प्राप्नोति धाम सपुरन्दरदेवजुष्टं

कन्यागणैः परिवृतं पदमिन्दुमौलेः ॥

दानवाक्यमत्र तुलापुरुषोक्तमूहनीयं, विप्रायेत्येकवचनमेका-  
ग्निविधानपक्षे, अनेकाग्निविधानपक्षे तु प्रकृतिभूततुलापुरुष-  
दानवदाचार्यादीनां विभागव्यवस्था तदनन्तरं पुण्याहवाचन-  
वेदिस्थितदेवतापूजनविसर्जनानि कुर्यात् दक्षिणाविचारश्च  
पूर्ववत् ।

इति मत्स्यपुराणोक्तो हिरण्यकामधेनुदानविधिः ।

व्यासउवाच ।

राजन्निहैकामपि कामधेनुं

दद्यात् समुद्दिश्य तु केशवंत्वाम् ।

विप्राय वै सर्वगुणीपपन्नां

कृत्वा व्रतं कच्छमनोहरैस्तु ॥

सम्यक् प्रदत्तैस्तु गवां सहस्रैः

सवत्सवस्त्रैः सहितैश्च हेम्ना ।

काले फलं यत्नभते मनुष्यो

न कामधेनोश्च समं द्विजेभ्यः ॥

शतैः सहस्रैश्च तथा हयानां

सम्यक् प्रदत्तैश्च महाद्विपानां ।

कन्यारथैर्वा करवाजियुक्तैः

शतैः सहस्रैः सततं द्विजेभ्यः ॥

दत्तैः फलैर्यत्नभते मनुष्यः

समं तथा स्यान्नतु कामधेनोः ।

यो जाह्नवीतीरगतो हिमाद्रौ

सन्तप्यतेऽतीवतपः सदा वै ॥

ब्राह्मं पदं गन्तुमना द्विजेन्द्रो

नैतत् फलं तच्च हि कामधेनोः ।

चान्द्रायणैः कृच्छ्रमहापराकैः

संशुद्धाते पापयुतो मनुष्यैः ॥

कार्तिके कृष्णपक्षे तु नरः प्रयतमानसः ।

एकादश्यामुपोष्याथ नरो दिनचतुष्टयम् ॥

घृतेन स्नापयेद्विष्णुं गव्येन पयसापि वा ।

नक्ताशी गोरसैर्हव्यैः पूजयेन्नाधुसूदनम् ।

गन्धपुष्पैः सुनैवेद्यैर्वस्त्राभरणकुण्डलैः ॥

शङ्खासिचक्रोद्यतबाहुविष्णो

गर्दाजहस्तस्य तु शार्ङ्गपाणेः ।

अर्घं प्रयच्छामि जनार्दनस्य

श्रिया युतस्यापि धराधरस्य ॥

श्रियः पतिं श्रीधरमेककान्तं\*



श्रियः सखायं हि श्रियोनुकूलम् ।

नमाम्यहं श्रीधरसन्निवासम्

समर्चितो मे प्रददातु कामान् ॥

एवं पूज्य विधानेन श्रियायुक्तैस्तु नामभिः ।

पृथक् जागरणं कुर्यात् श्रिया सार्द्धं जगत्पतेः ॥

या देवो भार्गवं भेजे कुलं सर्व्वतृपूजिता ।

आयातु सा गृहे नन्दा सुप्रीता वरदा मम ॥

याङ्गिरसं सदा देवो सुनन्दा प्रत्युपस्थिता ।

आयातु मे गृहे सा तु सुप्रीता वरदा सती ॥

सुरभी या भरद्वाजं कामधेनुः सुकामदा ।

सदा भजेद्गृहं सा च ममायातु सुरार्चिता ॥

सुशीला कश्यपं या तु भेजे सर्व्वत्र कामदा ।

सा मे भवतु सुप्रीता कामधेनु गृहे सदा ॥

सुमना या वशिष्ठन्तु सम्प्राप्य सुमुदे शुभा ।

सा मे गृहं सदायातु कामदा वरपूजिता\* ॥

एवं पूज्य विधानेन प्रभाते विमले शुभे ।

शुक्लाम्बरधरः स्नातः शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥

कृतनित्यक्रियो हृष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः ।

अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनसुसंयुते ॥

तिलप्रस्थेनवाकीर्णे चतुर्वर्णविभूषिते† ।

क्षौमवस्त्रान्विते शुभ्रे मध्वाज्यपात्रसंयुते ॥

\* कामधेनुः प्रपूजिता इति पुस्तकान्तरेः ।

† चतुर्वर्णं प्रपूजितं इति कचित् पाठः ।

शुभवस्त्रैः समावृत्य सर्वरत्नैरलंकृताम् ।  
 सुवर्णशृङ्गीं-सखुराञ्चतुष्कर्षां मनोरमाम् ॥  
 क्षीराब्धिपयसोपेतां धेनुमन्त्रैस्तु पूजयेत् ।  
 या धेनुः सर्वदेवानामृषीणां भावितात्मनाम् ॥  
 क्षीराब्धिनिर्गता या च सा मे भवतु सुस्थिरा ।  
 घृतक्षीराभिषेकं च कृत्वा विष्णोः प्रयत्नतः ॥  
 समभ्यर्च्य यथा ज्ञेयं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।  
 गावो ममाग्रतः सन्तु गावः पार्श्वे तु पृष्ठतः ॥  
 गावो मे हृदये नित्यं गवांमध्ये वसाम्यहम् ।  
 प्राङ्मुखोदङ्मुखीं वापि सितयज्ञोपवासिनीं ॥  
 इमान्त्वं प्रतिगृह्णीष्व देव देव जगत्पते ।  
 सवक्त्रालंकृतां धेनुं गोविन्दः प्रीयतामिति ॥  
 एवं विप्राय तान्दद्यात् कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।  
 अनुव्रजेच्च गच्छन्तं पदान्यष्टौ नराधिप ॥  
 अनेन विधिना यस्तु कामधेनुं प्रयच्छति ।  
 सर्वकामसमृद्धार्थः स्वर्गलोके स गच्छति ॥  
 यदृत्वा सकलां पृथ्वीं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।  
 तत्फलं प्राप्यते राजन् कामधेन्वा न संशयः ॥  
 चिन्तामणिः कामधेनुस्तथा भद्रघटो नृप ।  
 त्रीणि समफलान्याहुर्दानानि मुनिसत्तमाः ॥  
 सप्तावरान् सप्तपरान् आत्मानं चैव मानवः ।  
 शतजन्मकृतात्पापान्मोचयत्यवनोपते ॥  
 पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।

दानानामेव सर्वेषामुत्तमं परिकीर्तितम् ॥  
 सर्वकामप्रदम्यन्यं पापघ्नं सर्वदं शुभम् ।  
 सर्वेषामेव पापानां जातानां महतामपि ॥  
 प्रायश्चित्तमिदं शस्तं कथितं ब्रह्मणा नृप ।  
 ब्रह्मविट्-क्षत्र-शूद्राणां कर्त्तव्या यत्नतो नृप ॥  
 सर्वकामफलार्थाय कामधेनुरियं सतां  
 वृषाज्य-तिल-होमेन कामधेनुं-प्रयत्नतः ।  
 संकल्पं प्रतिपाद्येह सर्वपृथ्वीप्रदो भवेत् ॥  
 इति वङ्गिपुराणोक्तकामधेनुदानविधिः ।

अथ लिङ्गपुराणे ।

सनत्कुमार उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमधेनुविधिं क्रमात्\* ।  
 सर्वपाप-प्रशमनं देशदुर्भिक्षनाशनम् ॥  
 उपसर्ग-विनाशञ्च सर्वव्याधिनिवारणम् ।  
 निष्काणान्तु सहस्रेण सुवर्णेन तु कारयेत् ॥  
 तदर्द्धेनापि वा सम्यक् तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।  
 शतेन वा प्रकर्त्तव्यं सर्वकार्येषु सुव्रतः ॥  
 सर्वकार्येष्विति अव्यक्तेषु अनुक्तमानेषु सौवर्णसम्प्रदायेषु  
 सहस्रादिशतावरमानत्वमवधेयमिति इयं चोक्तिः प्रासङ्गिकी वा-  
 तुलेमानान्तरमुक्तं । त्रिपलादिसहस्रान्तं हेम्ना धेनुं प्रकल्पये-  
 दिति ।

शिवाय कामधेनुन्तु पलानां पञ्चभिः शतैः ।

यो ददाति महासेन राहुग्रस्ते दिवाकरे ।

तेन दत्तं भवेत्सर्वमात्रहृन्भवान्तिकम् ।

इति कालोत्तरमतम् ।

गौरूपं सखुरन्दिव्यं सर्वलक्षणसंयुतम् ।

खुराग्रे विन्यसेद्वज्रं शृङ्गे वै पद्मरागकम् ॥

भुवोर्मध्ये न्यसेद्विष्यं मौक्तिकं मुनिसत्तम ।

वैदूर्येण स्तनान् कुर्यात्पद्मलं नीलनिर्मितम् ॥

दन्तस्थाने प्रकर्त्तव्यं सर्वरत्नविभूषितम् ।

पशुवत् कारयित्वा तु वत्सं कुर्यात् सुशोभनम् ॥

दशांशकेन कर्त्तव्यं सर्वरत्नविभूषितम् ।

कामिकेतु, तुरीयांशेन वत्सकइत्युक्तम् ।

पूर्वोक्तवेदिकामध्ये मण्डलञ्च प्रकल्पयेत् ॥

तन्मध्ये सुरभिं स्थाप्य सर्वतः सर्वरत्नकाम् ।

सवत्सां सुरभिं तत्र वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥

संपूजयेत्तु गायत्र्या सवत्सां सुरभिं पुनः ।

अथैकाग्निविधानेन होमं कुर्यात् यथा विधि ॥

समिदन्वाज्यभागेन पूर्ववत्शेषमाचरेत् ।

शिवपूजा प्रकर्त्तव्या लिङ्गं स्थाप्य घृतादिभिः ॥

गामालभ्य च गायत्र्या विप्रेभ्यो दापयेच्च तां ।

दक्षिणा च प्रदातव्या त्रिंशन्निष्कं महामते ॥

‘गायत्र्या’ गोसावित्रीत्यस्तोत्रमन्त्रेणेत्यर्थः ।

गोसावित्रीतिमन्त्रेण मन्त्रयीत विचक्षणः ।

इति वातुलोक्तेः,

कामिकेतु ।

घृताद्यैः पूजयेद्देवं सहस्रकलशादिभिः ।

गामाराध्य तु गायत्र्या विप्रेभ्यो दापयेच्च ताम् ॥

आचार्यं पूजयेत् पूर्वं केयूरकटकादिभिः ।

वस्त्रयुग्मञ्च दत्त्वा तु विज्ञाप्य विधिपूर्वकम् ।

दक्षिणा तु प्रदातव्या त्रिंशन्निष्का महातपः ॥

त्रिंशन्निष्कदक्षिणादानन्तु, एकाग्निपक्षविषयं, अनेकाग्नि  
पक्षे तुलापुरुषवद्दक्षिणा ।

तदुक्तं शैवे ।

अथैकाग्निविधानं वा समिदाज्यं हविष्ययुक् ।

त्रिंशन्निष्कावरा देया गुरोरेकाग्निकल्पत इति ॥

एकाग्निपक्षश्च स्वल्पवित्तविषयः ।

पूर्ववत् क्षेपमिति, शेषमनुक्तं किञ्चित् तदखिलं लिङ्गपुराणोक्त  
तुलापुरुषविहितमाचरेदित्यर्थः ।

कालोत्तरे । एतस्यास्तु प्रदाता यस्तेन दत्तं चराचरम् ।

त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो विमानैर्दिव्यवर्चसैः ॥

शिवलोकं मवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

तदन्ते चक्रवर्ती स्यात् ज्ञानवांस्तु शिवं व्रजेत् ॥

इति नानाशास्त्रीयकामधेनुदानम् ।

अथ हिरण्याश्वाभिधानं सप्तमं महादानमालिख्यते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिम्परम् ।

यस्य प्रसादाद्भुवन मनन्तफलमश्रुते ॥

पुण्यं तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत् ॥

ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।

स्वल्पेष्वेकाग्निवत् कुर्याद्विमवाजिमखं बुधः ॥

अत्रादिशब्देन देश-काल-वृद्धिश्चाङ्ग-शिवादिपूजा-गुरुऋत्विग्व-  
रण-मधुपर्कदान-वेदिकोपरिचक्रलेखन-वितानतोरणपताका-धि-  
वासनादि मत्स्यपुराणीकतुलापुरुषदानविहितं संगृह्यते, स्वल्पेष्वे-  
काग्नि वदिति, व्याख्यातं, स्थापयेद्देदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलो  
परि, कृष्णाजिननिहितद्रोणपरिमिततिलोपरीति विज्ञेयम् ।

कौशेयवस्त्रसम्बोतं कारयेद्देमवाजिनम् ।

शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रपलाद्बुधः ॥

पादुकोपानहकृत्रचामरासनभाजनैः ।

पूस्सकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसंयुतम् ।

शय्यां सोपस्करान्तद्वेदेममार्त्तण्डसंयुताम् ॥

शय्यापस्करा विविधास्तरणोपधानवस्त्रफलपुष्पकुङ्कुमकर्पूरा-  
गुरुचन्दनतांबूलदर्प्यणकङ्कतिकाचामरव्यजनासन एतदग्रस्थित  
पात्राः\*सि मुद्रिकोपानहयुगलताम्रवटिकादिजलपात्रदोपिका  
वितानादयः, मार्त्तण्डसंयुतमिति, उपर्यारूढसौवर्णं सूर्याश्वं  
कुर्यादित्यर्थः ।

सूर्यलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डे ।

ततः सर्वौषधिस्रानस्त्रापितो वेदपुङ्गवैः ।

इमं मुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥

ब्रह्मापि पूर्व्वेद्युरधिवासनं विधाय द्वितीयदिवसे पूर्व्ववत्  
पुण्याहवाचनादि-पूर्णाहुतिपर्य्यन्तं कर्म, गुरुः समापयेत् ।

अथ सर्वौषधिजलस्नातः शुक्लाम्बरो यजमानस्त्रिःप्रदक्षिणी-  
कृत्य वक्ष्यमाणमन्त्रमुदीरयेत् ।

नमस्ते सर्व्वदेवेश वेदाहरणलम्पट ।

वाजिरूपेण मामस्मात् पाहि संसारसागरात् ॥ :

त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्करम् ।

यस्मात् भ्रामयसे लोकानतः पाहि सनातनः ॥

एवं मुच्चार्य्य गुरवे तमश्च विनिवेदयेत् ।

दत्त्वा पापक्षयाद्भानोर्लोकमभ्येति शाश्वतम् ॥

गोभिर्विभवतः सर्व्वान् ऋत्विजश्चाभिपूजयेत् ।

सर्व्वधान्योपकरणं गुरवे विनिवेदयेत् ॥

सर्व्वं शय्यादिकं कृत्वा भुञ्जीतातैलमेव हि ।

पुराणग्रवणं तद्वत् कारयेद्भोजनादनु ॥

दानवाक्यमत्र पूर्व्ववदनुसन्धेयं, अनुक्तदक्षिणेषु सुवर्णं  
इक्षिणेति, यथा शक्तिसुवर्णदक्षिणा, विभवतां स्वविभवानुसारेण  
सर्व्वान् सदस्यादौऋत्विजश्च गोभिः पूजयेत्, सर्व्वधान्योपकरण-  
मिति, विनियोगात् पूर्व्वं धान्यसादनं गम्यते, गुरवे निवेदयेदिति,  
स्वल्पद्रव्यदाने आचार्यायैव अश्वं प्रदाय ऋत्विग्भ्यो यथाशक्ति  
सुवर्णादि दद्यात् सहस्रपलादिद्रव्यदाने तु प्रकृतिवद्भावस्था,

स्वल्पतरेष्वेकाग्निपक्षेऽपि द्रष्टव्या ततश्च पूर्ववत् पुण्याहवाचन  
देवतापूजनविसर्जनानि कुर्यात् ।

इमं हिरण्याश्वविधिं करोति यः  
संपूज्यमानो दिवि देवतेन्द्रैः ।  
विमुक्तपापः स पुरं सुरारिः  
प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितः सन् ॥  
इति पठति य एतद्वैमवाजिप्रदानम्  
सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वमेधेन भूपः ।  
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयाति  
त्रिदशपतिवधूभिः पूज्यते योऽथ पश्येत् ॥  
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद्वा  
हेमाश्वदानमभिनन्दयतीह लोके ।  
सोऽपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः  
स्थानं पुरन्दरमहेश्वरदेवजुष्टम् ॥

इति मत्स्यपुराणोक्ती हिरण्याश्वदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

हिरण्याश्वप्रदानं च वदामि विजयावहम् ।  
अश्वमेधायुतश्रेष्ठं रहस्यं शृणु सुव्रत ॥  
अष्टोत्तरसहस्रेण अष्टोत्तरशतेन वा ।  
कृत्वा श्वं लक्ष्णैर्युक्तं सर्व्वालङ्कारसंयुतम् ॥

शतसहस्रशब्दौ, विहितोपलक्षणपरौ ।

शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रपलावधि ।



अल्पे त्वेकाग्नवत् कुर्यात् द्वेम वाजिमखंबुध ॥

इति वातुलोक्तिः ।

पञ्चकल्याणकं सम्यक् रजतेन तु कारयेत् ।

चतुर्षु पदेषु मुखे च श्वेतोहयः पञ्चकल्याणक उच्यते ॥

सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाङ्गैश्च समन्वितम् ।

सर्वायुधसमीपितं इन्द्रवाहनमव्ययम् ॥

तं मध्यदेशे संस्थाप्य तुरङ्गं सङ्गुणान्वितम् ।

उच्चैःश्वरसमं ज्ञात्वा आनीयैव समर्चयेत् ॥

मध्यदेशे संस्थाप्येति, एतद्दानप्रकृतिभूतलिङ्गपुराणोक्ततुला-  
पुरुषदानविहितवेदिकामण्डलमध्ये तिलोपरि तमश्च संस्थाप्य  
उच्चैःश्वरसमनुधायन् पूजयेत् ।

तस्य पूर्वदिशिभागे ब्राह्मणं वेदपारगम् ।

सुरेन्द्रबुद्ध्या सम्पूज्य पञ्चनिष्कान् प्रदापयेत् ॥

तमश्च ब्राह्मणे भ्यर्च्य प्रदद्याद्विधिनैव तु ।

सुवर्णाश्च प्रदद्यात्तु आचार्यमथ पूजयेत् ॥

यथा विभवविस्तारं पञ्चनिष्कैरथापि वा ।

दीनान्ध-कृपणा-नाथ-वाल-वृद्ध-कृशा-तुरान् ।

तोषयेदन्नदानेन ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥

घृतेन स्नापयेद्देवं लिङ्गं मूर्त्तिमहेश्वरम् ।

सङ्ख्यापलशतं तस्य पयसा त्वेवमेव हि ॥

ब्रह्मकूर्चेन संस्थाप्य विलेप्यागुरुचन्दनैः ।

सम्पूज्य प्रणिपत्यथ देवदेवं क्षमापयेत् ॥

एतद्यः कुरुते भक्त्या दानमश्नस्य मानवः ।

ऐन्द्राक्षोकांश्चिरंभुक्ता भुवि राजेश्वरो भवेत् ॥

इन्द्रबुद्ध्या आराधित विप्राय पञ्चनिष्कान्

दत्त्वा ओत्रियादिभ्यो हिरण्याश्वं दत्त्वा आचार्यञ्चाभ्यर्च्यतस्मै  
निष्कपञ्चकं दद्यात् शिवसपनादि पूर्वोत्तरतन्त्रं सर्वं पूर्ववत् ।

मत्स्यपुराणदौ तु आचार्यायैवाश्वदानमुक्तं ।

कामिकेतु,

गन्धादि भिस्तमभ्यर्च्य विप्रेभ्योविनिवेदयेत् ।

सुरेन्द्रबुद्ध्या सम्पूज्य पञ्चनिष्कान् प्रदाय च ॥

मण्डलाभ्यर्चनं होमं कलशस्थापनं तथा ।

दक्षिणां देशिकादीनां तुलाभारवदाचरेत् ॥

इति लिङ्गपुराणोक्तो हिरण्याश्वदानविधिः ।

अथ हिरण्याश्वरथनामधेयमष्टमंमहादानमुपक्रम्यते,

मत्स्यपुराणे ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादान मनुत्तमं ।

पुण्यमश्वरथं नाम महापातकनाशनम् ॥

पुण्यं दिनमयासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

लोकेशावाहनं कुर्यात्तुलापुरुषदानवत् ।

ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥

तुलापुरुषदानवदिति, मत्स्यपुराणोक्त तुलापुरुषवद्देदितव्यं,

आदिशब्दस्यापि पूर्ववदेव व्याख्या

कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा काञ्चनं कारयेद्रथम् ।

अष्टाश्वं चतुरश्वं वा चतुश्चक्रं सकूवरम् ॥

इन्द्रनीलेन कुम्भेन \* ध्वजरूपेण संयुतम् ।

लोकपालाष्टकीपेतं पद्मरागदलान्वितं ॥

अत्र तिलानां रथस्य च परिमाणपेक्षायां पुरुषेक्षया नियमः प्रकृतौ परिमाणाश्रवणात्, केचित् सन्निधानात् सुवर्णहस्ति रथादिदानस्थितं तिलानां द्रोणपरिमाणत्वमिह वदन्ति । 'कूवरो, युगाधारकाष्ठं । ध्वजो 'दण्डः, स च रथस्य सौवर्णत्वात्सौवर्ण एव तथा चोपरिस्थितेन इन्द्रनीलमणिमयेन कलशेन युक्तः कर्तव्यः । लोकपाललक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डे,

चत्वारः पूर्णकलशा धान्यान्यष्टौदशैव तु ।

कौशियवस्त्रसंयुक्तमुपरिष्ठाद्वितानकम् ॥

मात्येक्षुपलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम् ।

यो यज्ञक्तः पुमान् कुर्यात् शतनाम्नाधिवासनम् ।

वितानमत्र पञ्चवर्णं, पुरुष इष्टदेवताकारः सौवर्णरथे स्थापनीयः, वस्त्रोपानहपादुकाः ।

गोभिर्विभवतः सार्धं दद्याच्च शयनासनम् ।

आभारात्रिपलादूर्ध्वं शक्तितः कारयेद्बुधः ॥

'भारः, पलसहस्रद्वयं, एतच्च सुवर्णमानं ध्वजपुरुषलोकपालाश्वचक्ररक्षकसहितस्य वेदितव्यं ।

अष्टभौरथसंयुक्तं चतुर्भरिथवाजिभिः ।

हाभ्यामथयुतं दद्याद्देमसिंहध्वजान्वितम् ॥

हेमेन सिंहाङ्कितेनयुक्तमिति अष्टाश्वपक्षे, चतुरश्वपक्षे च इन्द्रनीलमथकुम्भो ध्वजे कार्यः, अश्वद्वयपक्षे हेमसिंहइति व्यवस्था ।

चक्ररक्षावधौ तस्य तुरगस्थावथाश्विनौ ।

पुण्यं कालं ततः प्राप्य पूर्ववत् स्नापितो द्विजैः ।

शुक्लमाभ्यास्यरो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥

चक्ररक्षौ चक्रसमीपे अश्वारूढावश्विनौकुमारी कार्य्यौ ।

तत्तत्क्षणमाह गोभिलः ।

द्विभुजौ देवभिषजौ कर्त्तव्यावश्ववाहनौ ।

तयोरोषधयः कार्य्यादिव्या दक्षिणहस्तयोः ।

वामयोः पुस्तकौ कार्य्यौ दर्शनोयौ तथा द्विजेति ॥

‘पुण्यकालं, यजमानानुकूलं लग्नमूहर्त्तादिकम् ।

अत्रापि पूर्व्ववदधिवासनदिनादन्यदिवसे पुण्याहवाचनादि  
सकलकर्मसमाप्तौ सर्व्वोषधिजलस्नातो गृहीतकुसुमाञ्जलिः यज-  
मानस्तिःप्रदक्षिणीकृत्य वक्ष्यमाणं मन्त्रं मुदाहरेत् ।

नमो नमः पापविनाशनाथ

विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय ।

धान्नामधीशाय भवाभषाय

पापौघदावानल देहि शान्तिम् ॥

वस्त्रष्टकादित्यमरुद्गणानाम्

त्वमेव धाता परमं निधानम् ।

यतस्तृतीये हृदयं प्रदातु

धर्म्मोक्तानत्त्वमघौघनाशात् ॥

इहापि दानप्रयोगसुवर्णदक्षिणादानऋत्विगाचार्य्यद्रव्यविभा-  
गस्वल्पैकाम्निविधानादि पूर्व्ववदनुसन्धेयम्, ततः पुण्याहवाचन-  
देवतापूजन-विमर्जनंदिक्कुर्यात् ।

अथाथर्वणमोपथ ब्राह्मणे ।

ओं अथातो अश्वरथविधिमनुक्रमिष्यामः ।

सर्वपापापनोदन उदगयन आपूर्यमाणपक्षेऽश्वःपुण्ये नक्षत्रे-  
अद्वाप्रेरितोग्रहयुक्तो ग्रहणकाले वा अथ ऋत्विक् प्रदानकालात्  
सुवर्णं रथमानीय सर्वं शान्त्युदकेनाभ्युक्ष्य यथोक्तमाञ्जनाभ्यञ्ज-  
नानुलेपनं कारयित्वा, वासोगन्धान् स्रजश्चावध्य अग्निमुपसमा-  
धाय अन्वालभ्याथ जुहुयादुदेहि वाजिन्निति द्वाभ्यां, सूर्यं चरुं  
अपयित्वा विषासहिं सहमानमित्यभिमन्त्रान्वालभ्याथ जुहुयात्  
रथं योक्तं युगमश्वौच सर्वं शान्त्युदकेनाप्लाव्य वा तुरङ्गम् वाजि-  
न्नित्यश्वयोर्मूर्ध्नि सम्पातान् स्थालीपाकाद्यजेत् । उदयते नम  
इति नवभिर्मन्त्रैः नमस्कृत्य द्विजानन्ते तर्पयेत् ।

तत्र श्लोकौ ।

सर्वेषामेव दानानां फलं यत्तत् प्रकीर्तितम् ।

तत्तदाप्नोति विप्रेभ्यो विधिनाश्वरथन्ददत् ॥

अनामयं स्थानमवाप्य देवैः

रत्नङ्गनीयं सुक्तं हिरण्यम् ।

सुवर्णतेजाः प्रविमुक्तपापो

रथैश्वरन् दिव्यति सूर्यलोके ॥

मत्स्यपुराणे ।

इति तुरगरथ प्रदानमेत

ब्रह्मय स्रुदन मन्त्र यः करोति ।

सकलकलुषपटलैर्विमुक्तदेहः

परममुपैति यदं पिनाकपाणेः ॥

देदीप्यमानवपुषा विजितप्रभाव-  
माक्रम्य मण्डलमखण्डलचण्डभानोः ।

सिद्धाङ्गनानयनषट्पदपौयमानो  
वक्ताम्बुजाम्बुजभवेन चिरं सहास्ते ॥

इति पठति शृणोति वा य इत्यम् ।

कनकतुरङ्गमरयप्रदानमीव ।

न स नरकपुरं व्रजेत् कदाचि

न्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः ॥

इति हिरण्याश्वरथदानविधिः ।

अथ हेमहस्तिरथाभिधानं नवमम् महादानमारभ्यते ।

मत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हेमहस्तिरथं शुभम् ।

यस्य प्रदानाद्भवनं वैष्णवं याति मानवः ॥

पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।

विप्रवाचनकं कुर्यात्लोके शावाहनं बुधः ॥

ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।

अत्राप्युपोषितं तद्वद्वाङ्मनैः सह भोजनम् ॥

इहाप्यादिशब्देन देश-काल-वृद्धिश्चाद्यादि-सर्वमनुक्तं मत्स्य-  
पुराणोक्ततुलापुरुषस्थितं वेदितव्यं । उपोषित इति, उपवासा-  
शक्तौ नन्वमपि वेदितव्यम् ।

कुर्यात् पुष्परथाकारं काञ्चनं मणिमण्डितम् ।

वलभोभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम् ॥

लोकपालाष्टकोपेतं शिवार्कब्रह्मसंयुतम् ।

मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम् ॥

‘पुष्परथः, क्रीडार्थो रथः, सचतुष्किकाकारेणोपर्याच्छादितो भवति वलयेभ्यो लोकपालाश्रयः, लोकपालब्रह्मशिवाकलक्षण-मुक्तं ब्रह्माण्डे, मध्यशब्दः पूर्वापराभ्यां सव्यध्यते, शिवादीनामपि स्थानापेक्षावास्तेनैव निवृत्तेः ।

नारायणादिलक्षणं पञ्चरात्रात् ।

नारायणो चतुर्बाहुः शङ्खं चक्रं तथोत्तरे ।

दक्षिणे तु महापद्मं मीलञ्जीमूतसन्निभे ।

वासे श्रीवत्सकीहस्ता मुष्टिः पद्मकरा परेति ॥

कृष्णाजिने तिलद्रोणं कृत्वा संस्थापयेद्रथम् ।

तथाष्टादशधान्यानि भाजनासनचन्दनैः ॥

दीपिकीपानहक्त्रपादुकादर्पणान्वितम् ।

ध्वजेतु गरुडं कुर्यात् कूवराग्रं विनायकम् ॥

नानाफलसमायुक्तं उपरिष्ठाद्वितानकम् ।

कौशेयं पञ्चवर्णं च अन्तानकुसुमान्वितम् ॥

चतुर्भिः कलशैः सार्द्धं गोभिरष्टाभिरन्वितम् ।

चतुर्भिर्हयमातङ्गैः सुक्तादाम विभूषितैः ॥

स्वरूपतः करिभ्याञ्च युक्तं कृत्वा निवेदयेत् ।

कुर्यात् पञ्चपलादूर्ध्वमाभारादपि शक्तितः ॥

ध्वजेतु गरुडं कुर्यादित्यादि, ध्वजोदण्डः ।

गरुडलक्षणमुक्तं नारदीये ।

ओ ऐन्द्रस्याग्रतः पक्षो गुडाकेशः कृताञ्जलिः ।

सव्यजानुगतो भूमौ मूढौ च फणि मण्डितः ॥

पक्षिजङ्घी नरग्रीवस्तुङ्गनासी नराङ्गकः ।

द्विबाहुः पक्षयुक्तश्च कर्त्तव्यो विनतासुतः ॥

अथ विनायकस्य ।

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च कर्त्तव्योऽत्र गजाननः ।

नागयन्त्रीपवीतश्च शशाङ्गकृतशेखरः ॥

दन्तं दक्षकरे दद्याद्वितीये चाक्षसूत्रकम् ।

तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं तथा ॥

उपर्यधोहस्तयोर्दन्तादि, देयमिति, क्ववरीत्याख्यातः ।

‘अस्नान कुसुमं, पुष्पविशेषः ।

रुदिर्यौगिकमुपहरतीति न्यायात् ।

महासहेति प्रसिद्धमेव गृह्यते भारी व्याख्यातः ।

ध्वजगतदेवताश्च पञ्चपलादिपरिमितेन रघवत् कृतसुवर्णे-  
नैव निष्पादनीयाः एवं सम्भारानुपकल्प्य पूर्व्ववदधिवासनं  
विधाय दिवसेषु पुण्याहवाचनादिसकलं कर्मकाण्डं समाप्य  
सर्व्वोपधिजलैराचार्य्यो यजमानस्य स्नपनं कुर्यात् ।

ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः ।

त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥

नमो नमः शङ्करपद्मजार्कलोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।

त्वं सेव्यसे देव पुराण यज्ञतेजोमयस्यन्दन पाहि यन्मात् ॥

यत्तत्पदं गुह्यतमं मुरारिरानन्द हेतुगुणरूपमन्तः ।

योगैकमानसहृशोमुनयः समाधौ पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथे-  
ऽधिरूढः ।



यस्मात्त्वमेव भवसागरसंश्रिताना  
मानन्दभाण्डभृतमध्वरपानपात्रं ।  
तस्मादधीधमनेन कुरु प्रसादं  
चामीकरेभरयसाधवसम्प्रदानात् ॥

मन्त्रे णानेन प्रणम्य यथा शक्तिं सुवर्णदक्षिणां मुपकल्प्यापूर्ववत्  
प्रयोगमुच्चार्य्य तं गजरथं प्रत्यक्षगजसंयुतं ब्राह्मणेभ्यः प्रतिपादयेत्,  
आचार्यादीनामर्द्धचतुर्भागादिव्यवस्था तदनुज्ञयाचान्येभ्योपि दानं,  
दीनानाथपूरणं चेति, प्रकृतिवदाचरणाय, ततः पुण्याहवाचने  
कृते यजमानो वेदिसमीपं गत्वा देवतापूजां विदध्यात् । आच-  
र्य्यस्तु विसर्ग्ययेच्च, आर्धवर्णगोपथब्राह्मणे, अथातो हस्तिरथदान-  
विधिं वक्ष्ये ।

जातरूपमयं कृत्वा रथं चक्रसुशोभनम् ।  
हस्तिभिः सप्तभिर्युक्तमर्चयित्वा यथाविधि ॥  
अथवा चतुर्भिर्युक्तं हेमं राजतमेव वा ।  
अस्पृष्टं दारुजं वापि सर्व्वसम्भारपूरितम् ॥  
हस्तियुग्मेन सम्बन्धितं\* सौरभेययुगेन वा ।  
भुङ्क्ते सप्तैव जन्मानि सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥

हस्तियुक्ते चन्द्रमसि पौर्णमास्यमावास्यायोरन्यस्मिन् पुण्येतिथौ-  
ऽह्नि हस्ति वा शुची देशे तन्वमित्युक्तं प्राञ्चमिक्षमग्निमुपसमा-  
धायान्वारभ्याथ जुहुयात् । सवित्रे स्वाहा, पतङ्गाय स्वाहा, पाव-  
काय स्वाहा, सहस्ररश्मये स्वाहा, मार्त्तण्डाय स्वाहा, विष्णवे  
स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा परमेष्ठिने स्वाहेति हुत्वा हस्तिवचंसप्रथर्ता-

बृहद्यश इति कलशे सम्पातानानीय युगं योक्तं रथमिति सर्वं सम्प्रोच्य यत्तस्यत्वामनसायुनज्मीति योजयेत् ।

अश्वान्तस्य त्वामनसा युनज्मि प्रथमस्य च उक्तमुहो ।

भवोदुह्य धावतां युक्तायार्घं दद्यात् स्यावैर्युक्तः सितपाहिर-  
रमयो यस्य रथः पथिभिर्वर्त्तते शिवैः शन्तीअग्ने वसुविदा हिरण्य-  
कहिरण्यपाणिः सविता नोऽभिरक्षतु ।

बृहद्वस्तिरथंयुक्तं हस्तेन तुददन्तरः ।

सवितु स्थानमाप्नोति दिव्यां कामजवां शुभाम् ॥

मत्स्यपुराणे । इत्थं प्रणम्य कनकेन रथप्रदानं ।

यः कारयेत्सकलपापविमुक्तदेहः ।

विद्याधरामरमुनीन्द्रगणाभिजुष्टम् ॥

प्राप्नोत्यसौ पद्मतीन्द्रियमिन्दुमौलिः ॥

कृतदुरितवितानप्रोज्ज्वलहृद्भिजाल

व्यतिकरकृतदाहोद्दिगभाजोपि बन्धून् ।

नयति च पितृपौत्रान् रौरवादप्यशेषान्

कृत गजरथदानः शाश्वतं सञ्च विष्णोः ॥

इति हेम हस्ति रथदानविधिः ।

अथ पञ्चलाङ्गलाख्यं दशमं महादानमुपपाद्यते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमं ।

पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम् ॥

पुण्यां तिथिमयासाद्य युगादिग्रहणादिकाम् ।

भूमिदानं नरोदद्यात् पञ्चलाङ्गलकान्वितम् ॥

कर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा सस्यशालिनम् ।

निवर्त्तनं शतं वापि तदर्द्धं वापि शक्तिः ॥

सारदारुमयान् कृत्वा हलान् पञ्च विचक्षणः ।

सर्वोपकरणैर्युक्तांस्तथान्यान् पञ्च काञ्चनान् ॥

कर्वटादिस्वरूपं मार्कण्डेयपुराणे ।

सीत्सेधवप्राकार सर्वतः खातकावृतम् ।

योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतं पुरम् ॥

तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेनञ्च कर्वटम् ।

तथा शुद्धजनप्रायाः सुसमृद्धकृषीवलाः ॥

क्षेत्रीयभागभूमध्ये वसति ग्रामसंज्ञितेति ।

निवर्त्तमानन्तु सप्तहस्तेन दण्डेनेत्यादि वक्ष्यति ॥

‘सारदारुणि’ शाकेङ्गुदीचन्दनप्रभृतौनि, ‘उपकरणानि’ युग-  
योक्तृफलरज्जुप्राजनादीनि ।

वृषान् लक्षणसंयुक्तान् दशैव च धुरन्धरान् ।

सुवर्णशृङ्गाभरणान् सुक्तालाङ्गूलभूषणान् ॥

रौप्यपादाग्रतिलकान् रक्तकीशियभूषितान् ।

स्रग्दामचन्दनयुतान् \* शालायामधिवासयेत् ॥

वृषलक्षणानि सुशीलत्वं त्वरुणत्वम् इन्द्रियत्वम् अरोगित्वम्  
क्लेशसहत्वमित्यादीनि ।

‘अग्रं’, ललाटदेशः, ततश्च रौप्यपादान् रौप्यललाटतिलकांश्चेति ।

पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसनिर्वपेच्चरुम् ।

एकस्मिन्नेव कुण्डे तु चरुमस्यै निवेदयेत् ॥

\* अग्रन्त्यचन्दनयुता भिति पुस्तकालये पाठः ।

पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलांस्तथा ॥

इहापि पूर्ववदधिवासनादि विधाय तदन्यदिवसे पुण्याह-  
वाचनं कृत्वा अग्निकुण्डेषु ऋत्विगुपवेशनादिकर्मशेषं समापयेत्,  
किन्त्वपरोक्षाय विशेषः, तुलापुरुषोक्तहोमे विहितशेषाणां ऋत्वि-  
जामन्यतमं गुरुरादिशेत् स एक एव ऋत्विगेकस्मिन्नेव कुण्डे  
पर्जन्यादित्यरद्रेभ्यस्तस्मिन्निङ्गमन्त्रैः पायसचरुप्रभृतिद्रव्येणाष्टोत्तर-  
सहस्रं जुहुयात् ।

तुलापुरुषवत् कुर्यात्लोकेशावाहनं बुधः ।

ततो मङ्गलशब्देन शुक्लमान्याम्बरोबुधः ॥

आह्वय द्विजदम्पत्यं हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ।

कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्च विभूषयेत् ॥

शय्यां सोपस्कुरान्दद्याद्विनुमेकां पयस्विनीम् ।

तथाष्टादशधान्यानि समन्तादधिवासयेत् ॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्व्वं निवेदत् ॥

लोकेशावाहनमित्युपलक्षणम् ।

अत्र हि देव-काल-वृद्धियाव-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन-गुरु-  
ऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-कुण्डमण्डपवेदिकावितान-चक्रलेखन-तो-  
रणपताकादि मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषविहितं गृह्यते ।

तत इति, होमानन्तरं सर्व्वोषधिजलस्नातः शुक्लाम्बरधरोदया-  
दित्यन्वयः, आह्वय द्विजदम्पत्यमिति, सकलकर्मनियुक्तस्य गुरो-  
र्दक्षिणान्तराप्रतीतिः सन्निहितपरित्यागे कारणाशवात् द्विज-  
शब्दस्याविरोधाच्च सकलवस्य गुरोरेव दातव्यमिति गम्यते.

तदनुज्ञयाचान्येभ्योपि देयमिति, स्वल्पेष्वेकाग्निविधानमपि बोद्धव्यं,  
अथोपस्करा हिरण्याश्वदाने व्याख्याताः ।

अथ मन्त्रः ।

यस्माद्देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च ।

धुरन्धराङ्गे तिष्ठन्ति तस्मात् भक्तिः शिवेऽस्तु मे ॥

यस्माच्च भूमिदानस्य कलानार्हन्ति षोडशौम् ।

दानान्यन्यानि मे भक्ति धर्म एव दृढा भवेत्

इति मन्त्रमुच्चार्य यथाशक्ति दक्षिणामुपकल्प्य पूर्वप्रयोगेण  
प्रतिपादयेत्, ततश्च पुण्याहवाचन-देवतापूजन-विसर्जनानि ।

दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम् ।

त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः ॥

मानेनानेन यो दद्यान्निवर्त्तनशतं बुधः ।

विधिनानेन तस्याश्च क्षीयते पापसंहतिः ॥

तदर्द्धमपि वा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम् ।

भवनस्थानमात्रम्वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥

यावन्ति लाङ्गलक्रमार्गमुखानि भूमे-

र्भाषाम्पतेर्दुहितुरङ्गजरोमकाणि ।

तावन्ति शङ्करपुरे स ममा हि तिष्ठे

झूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥

गन्धर्व-किन्नर-सुरासुर-सिद्ध-सङ्घै

राधूतचामरमुपेत्य सहस्रिमानम्\* ।

संपूज्यते पितृ-पितामह-वन्द्य-युक्तः

शम्भोः पुरं व्रजति चामरनायकः सन् ॥  
 इन्द्रत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति  
 गो-भूमि-लाङ्गल-धुरन्वरसम्प्रदानात् ।  
 तस्मादघौघपटलक्षयकारि भूमे  
 दर्शनं विधेयमप्यतिभूतिभवाद्भवाय ॥  
 इति श्रीमत्स्थपुराणेऽक्तः पञ्चलाङ्गलकदानविधिः ।

श्रीभगवानुवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि दानमप्यद्भुतं तव ।  
 येन दत्तेन राजेन्द्र सर्व्वदानप्रदो भवेत् ॥  
 सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वसौख्यप्रदायकम् ।  
 संयुक्तहलपंक्त्याख्यदानं सर्व्वफलप्रदम् ॥  
 पंक्तिर्दशहला प्रोक्ता हलस्य स्याच्चतुर्युगम्\* ।  
 सारदारुमयान्याहुर्दलानि दश पण्डिताः ॥  
 सौवर्णपट्टनङ्गानि रत्नवन्ति शुभानि च ।  
 युवानो वलिनीभव्यान्नाङ्गहीनान् खलंक्रतान् ॥  
 “वस्त्रकाञ्चनपुष्पैस्तु चन्दनादिग्धमस्तकान् ।  
 भद्राङ्गान्योजयेत्तेषु लाङ्गलेषु वृषान्” पुमान् ॥  
 योक्ताणि युगलग्नानि सवृषाणि च कारयेत् ।  
 प्रतोदकोलिकाबन्धसर्व्वोपकरणानि च ॥  
 एवंविधैर्हलैः कुर्यात्संयुक्तां दलपंक्तिकां ।  
 खेटकं कर्क्कटं वापि ग्रामं वा सस्यशालिनं ॥

निवर्त्तनशतं वापि तदर्द्धं वापि कल्पयेत् ।  
 एवं विधां पर्वकाले दद्यात् प्रयतमानसः ॥  
 कार्त्तिक्यां वायुवैशाख्यामुत्तरेत्यने तथा ।  
 ज्येष्ठौ ग्रहणे वापि विषुवे चाथ दापयेत् ॥  
 ब्राह्मणान् वेदसम्पन्नानव्यङ्गाङ्गान् स्वलस्कृतान् ।  
 श्रीचित्रांश्च विनीतांश्च दलसंख्यान्निमन्त्रयेत् ॥  
 दशहस्तप्रमाणेन कारयेन्मण्डपं बुधः ।  
 पूर्वद्युः कुण्डमेकञ्च हस्तमात्रञ्च शोभनम् ॥  
 तत्र व्याहृतिभिर्हामं कुर्युस्ते द्विजसत्तमाः ।  
 पञ्चन्यादित्यरुद्रेभ्यः पावसन्निर्व्वपेच्चरम् ॥  
 पलाशसगिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलांस्तथा ।  
 आवास्य च ततः पंक्तिं धान्यमध्यगतां शुभाम् ॥  
 ततः सञ्चरन्निर्व्वपे तु स्नातः शुक्लाश्वरः शुचिः ।  
 हलपंक्तिं योजयित्वा भजमानः समाहितः ॥  
 शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषैः मपुष्कलैः ।  
 इन्द्रमुच्चारयेन्नन्वं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥  
 यस्माद्देवयणाः सर्व्वे हले तिष्ठन्ति सर्व्वदा ।  
 वृषस्कन्धे सन्निहितास्तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे ॥  
 यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशौम् ।  
 दानान्यन्यानि मे भक्तिर्दमे चास्तु मदा दृढा ॥  
 एवमुक्ते ततः पंक्तिं प्रेरयेद्योऽद्विजोत्तमः ।  
 बीजानि सर्व्वरत्नानि सुवर्णं रजतं तथा ॥  
 स्वयं पश्चादन्ते लम्बोविप्रहस्तेषु निर्व्वपेत् ।

यायान्निवर्त्तनं यावत्ततस्तु विरमेद्बुधः ।  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विप्राणां प्रतिपाद्य च ॥  
 सदक्षिणविधानेन प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥  
 अनेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति ।  
 एकविंशत्कुलोपेतः स्वर्गलोके महीयते ॥  
 सप्तजन्मानि दारिद्र्यं दौर्भाग्यं व्याधयस्तथा ।  
 न पश्यति च भूमेऽथ तथैवाधिपतिर्भवेत् ॥  
 दृष्ट्वा तु दीयमानन्तु दानमेव युधिष्ठिर ।  
 आजन्मनः कृतात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥  
 दानमेतत् पुरा दत्तं दिलीपेन ययातिना ।  
 शिविना निमिनाच्चैव भरतेन च धीमता ।  
 तेऽद्यापि दिवि मोदन्ते दानस्यास्य प्रभावतः ॥  
 प्रयत्नेन महीपाल दानमेतद्रूपोत्तम\* ।  
 दातव्यं भक्तियुक्तेन स्त्रिया वा पुरुषेण वा ॥  
 यदि पंक्तिर्न विद्येत पञ्चचत्वारि वा नृप ।  
 एकमप्युक्तविधिना हलं देयं विचक्षणैः ॥  
 यावन्ति लाङ्गलमुखीत्यमृदां रजांसि  
 यावन्ति चात्र सुधुरन्धररोमकाणि ।  
 तावन्ति शङ्करपुरे स युगानि तिष्ठेत्  
 पङ्क्तिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥  
 युक्तां वृषै-रतिबलै-र्हलपंक्तिमेनाम्  
 पुण्येऽङ्गि भक्तिसहितां द्विजपुङ्गवानां ।

\* दापयेत्तद्रूपोत्तम इति क्वचित् पाठः ।



इच्छन्ति ये सुकृतिनोऽसुधासमेता

स्तेभूभुजामुखमुपेत्य भवन्ति भव्याः ॥

इति भविष्योत्तरोक्तोहलपंक्तिदानविधिः ।

अथैकादशधरादानसंज्ञं महादानमुपवर्ण्यते ।

श्रीमत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच ।

अथातः सस्मद्वक्ष्यामि धरादानजन्यतमम् ।

पापक्षयकरं नृणाममङ्गल्यविनाशनम् ॥

कारयेत् पृथिवीं हैमो जम्बुद्वीपानुकारिणीम् ।

मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम् ॥

लोकपालाष्टकोपेतां नववर्षसमन्विताम् ।

नदीनदशतोपेतामन्ते सागरवेष्टिताम् ॥

‘अनुकारिणीम्, मट्टशीमिच्छर्थः ।

इह हि जम्बुद्वीपसदृशीं कुर्यादित्युक्ते निखिलनगनगरसरोवरव-  
नाद्यन्वितमहोसादृश्यप्राप्तौ मर्यादापर्वतवतीमित्यादिना तावन्मा-  
त्रान्वितधरण्यनुकार इति गम्यते । इतरथा सामान्येनैव तदव-  
गतेर्विशेषानर्थक्यप्रसङ्गात्, तदयमर्थः हैमो पृथ्वीं कुर्यादित्युक्ते मत्त-  
द्वीपवत्याः\* प्रसङ्गे जम्बुद्वीपानुकारिणीमित्युच्यते तत्रापि नाना-  
पर्वतान्वितानुकारप्रसङ्गे मर्यादापर्वतवतीमिति† तथासति मेरो-  
रनुकरणप्राप्तौ मध्ये मेरुसमन्वितामिति नानादेवगणानिवृत्त्यर्थं  
लाकपालाष्टकोपेतामिति, एवं च संख्येयपक्षाश्रयणे‡ पुराणा-

\* मत्तद्वीपवत्याः करणप्रसङ्गे इति कचिन् पाठः ।

† मत्तद्वीपवत्याः इति वा पाठः ।

न्तरोपदर्शितवर्षचतुष्टयादिपक्षपरिग्रहशङ्कानिवृत्त्यर्थं नववर्ष-  
समन्वितामित्युच्यते ।

तत्र जम्बुद्वीपः सुपवर्णितं विष्णुपुराणे ।  
नववर्षन्ते मैत्रेय जम्बुद्वीपमिदं मया ।  
लक्षयोजनविस्तारं सक्षेपात्कथितं तव ॥  
जम्बुद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः ।  
मैत्रेय बलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्बहिः ॥  
जम्बुद्वीपः समस्तानां द्वीपानां मध्यतः स्थितः ।  
तस्यापि मेरुमैत्रेय मध्ये कनकपर्वतः ॥  
चतुरशीतिसाहस्रयोजनैरस्यचोच्छ्रयः ।  
प्रतिष्ठा षोडशाद्वस्ताद्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥  
मूले षोडशसाहस्री विस्तारस्तस्य सर्वतः\* ॥  
पुराणान्तरे तु, अष्टषष्टियोजनोच्छ्रय इत्युक्तं ॥  
तथा । मेरीचतुर्द्दिशंतत्र नवसाहस्रविस्तृतम् ।  
इलावृतं महाभागश्चत्वारश्चानुपर्वताः ।  
विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः ॥  
पूर्वेण मन्दरोनाम दक्षिणे गन्धमादनः ।  
वैभ्राजः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरेऽस्मृतः ॥  
मर्यादापर्वतास्तु, ब्रह्माण्डे पुराणे दर्शिताः ।  
जाठरादेवकूटश्च पूर्वस्यान्दिशि पर्वतौ ।  
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ॥

कैशासीहिमवांश्चैव दक्षिणे वरपर्वतौ ।

पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तव्यवस्थितौ ॥

त्रिशृङ्गीजारुधिश्वैव उत्तरौ वरपर्वतौ ।

पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तव्यवस्थितौ ॥

निषधः पारिजातश्च पश्चिमौ वरपर्वतौ ।

तौ दक्षिणोत्तरादामावानीलनिषधायतौ ।

नीलनिषधपर्वतौ तु, अग्रे वक्ष्येते ।

लोकपालाष्टकोपेतामिति, लोकपाला इन्द्रादयोऽष्टौ, तेषां  
लक्षणं पूर्वमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, तत्तन्निवेशाश्च मेरीरुपरि प्रद-  
क्षिणक्रमेण पूर्वदिदिक्षु कर्तव्याः,

नववर्षममन्वितामिति ।

वर्षोपवर्णनञ्च, ब्रह्माण्डपुराणे ।

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।

एतवै भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम् ।

हरिवर्षं तथैवान्यं मेरीर्दक्षिणतोद्विज ॥

रम्यकं चोत्तरेवर्षं तस्यैवानु हिरण्यमयम् ॥

उत्तराः कुरवश्चैव यथा वे भारतं तथा ।

मेरोः पूर्वेण भद्राश्च केतुमालं च पश्चिमे ॥

वर्षेदे तु समाख्याते तयोर्मध्यमिलावृतम् ।

नवमहस्त्रमेतेषामेकैकं विजसत्तमाः ॥

तथा । हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चैव दक्षिणे ।

नीलः श्वेतश्च शृङ्गोच उत्तरे वर्षपर्वताः ॥

सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ।

लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशह्रीनास्तथापरे ॥

लक्षप्रमाणावित्यादि, इलाहृतस्योभयपार्श्ववर्त्तिनौ नीलनिषधौ द्वौ पर्वतौ दैर्घ्येण लक्षगुणौ\* विज्ञेयौ, तद्वाह्यवर्त्तिनौ श्वेतहेमकूटौ नवतिसहस्रयोजनप्रमाणौ विज्ञेयौ, तथा तद्वाह्यस्थितौ शृङ्गीहिमवन्तौ अशीतिसहस्रयोजनप्रमाणावित्यर्थः । अत्र युक्तिरुक्ता मत्स्यपुराणे, द्वीपस्य मण्डलीभावात् क्वासद्विः प्रकीर्त्तितेति ।

ब्रह्माण्डपुराणे ।

मेरोस्तु पश्चिमे भागे नवसाहस्रसंश्रिते ।

चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि गन्धमादनपर्वतः ॥

चत्वारिंशसहस्राणि परिवृद्धो महीतलात् ।

सहस्रमवगाहे तु सति द्विगुणविस्तरः ।

पूर्वेण माल्यवान् शैलस्तत्प्रमाणः प्रकीर्त्तितः ॥

अत्र शतसहस्रादियोजनपरिमाणानां पृथिव्यादीनां कर्तुमशक्यत्वात् योजनसहस्रस्थाने अर्द्धाङ्गलादिमानं परिकल्प्य यथोक्त संख्यातारतम्यमनुडेयं । नदीनदशतापेतमिति, नद्यो भागीरथी-प्रभृतिकाः, नदाः शोणादयः, तेषां माकल्येन विधातुमशक्यत्वात् यावच्छक्यमनुकाः कर्त्तव्यः । अन्ते सागरवेष्टितामिति, यद्यपि यावत्परिमाणा पृथ्वी तावानिव सागरः तथा अनुकारमात्रोपदेशात् शक्यानुकारमात्रमाचरणेयं ।

\* लक्षप्रमाणाविति पुलकान्तरे ।

महारत्नसमाकीर्णां वसुरुद्रार्कसंयुतां ।  
 हेम्नः पलसहस्रेण तदर्धं वाथ शक्तितः ॥  
 शतत्रयेण वा कुर्याद्विशतेन शतेन वा ।  
 कुर्यात्पञ्चपलादूर्ध्वमशक्तोपि विचक्षणः ॥  
 तुलापुरुषवत् कुर्यात् लोकेशावाहनम्बुधः ।  
 ऋत्विङ्गण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥  
 वेद्यां कृष्णजिनं कृत्वा तिलानामुपरि न्यसेत् ।  
 तथाष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ॥  
 तथाष्टौ पूर्णकलशान् समन्तात्परिकल्पयेत् ।  
 वितानकञ्च कौशियं फलानि विविधानि च ॥  
 तयांशुकानि रम्याणि यीक्ष्ण्डशकलानि च ।  
 इत्येवं रचयित्वा तामधिवासनपूर्वकम् ॥  
 शुक्लमाख्याम्बरधरः शुक्लाभरणभूषितः ।  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥

महारत्नेत्यादि, महारत्नानि, माणिक्यप्रभृतीनि, परिभाषायां  
 दर्शितावि, वसुरुद्रार्करूपमुक्तं ब्रह्माखण्डाने, आच्छादनादिकमि-  
 त्यादिकशब्देन देश-कालवृत्त्याद-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचना-  
 धिवासनादित्यर्थं तुलापुरुषोक्तप्रबुध्यं, पूर्णकलशान् स्रग्गन्धपञ्च-  
 रत्नपूर्वाङ्कुरवृत्तपल्लवावितानित्यवधेयं, वितानं पञ्चवर्णमिति,  
 प्रदक्षिणं कृत्वा, विःप्रदक्षिणमावृत्यत्यर्थः, प्रदक्षिणादिकं च  
 द्वितोददिवसे पूर्णहोतवन्तकर्मशेषसमाप्तौ सर्वोपधिक्षानानन्तर-  
 मनुमन्थेयम् ।

पुनश्चकालमशमाद्य सन्धानितानुदाहरेत् ॥

नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेकं भवनं यतः ।  
 धात्री च सर्वभूतानामतः पाहि वसुधरे ॥  
 वसून् धारयसे यस्मात् वसुचातीव निर्मलं ।  
 वसुधरा ततोजाता तस्मात्पाहि भवादलम् ॥  
 चतुर्मुखोपि नोगच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले ।  
 अनन्तायै नमस्तस्मात् पाहि संसारकर्मभात् ॥  
 त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता ।  
 गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा ॥  
 बुद्धिर्वृहस्पती ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता ।  
 विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात्ततोविश्वम्भरा मता ॥  
 धृजिः क्षितिः क्षमा क्षौणी पृथ्वी वसुमती रसा ।  
 एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ॥  
 एव मुच्चार्य तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥  
 धराङ्गं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत् ॥  
 शेषञ्चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

अत्रापि पूर्ववद्दानवाक्यमुच्चार्य जलपूर्वं दानमाचार्यानुज्ञया  
 अन्येभ्योपि दानं दीनानाथपूरणं, स्वल्पेष्वाग्निविधानं, भूमि-  
 पतिकर्तव्ये\* कर्मणि ग्रानादिदक्षिणादानं अशक्तकर्तृके यथाशक्ति  
 सुवर्णदक्षिणादानमित्यनुसन्धेयं, अथ ब्राह्मणवाचनानन्तरं देव-  
 तापूजनविसर्जनानि कुर्यात् । आथर्वणगोपयब्राह्मणे, अथ  
 रोहिण्यां स कल्पासुषोषितो ब्रह्म यथात्रीजरसरत्नगन्धावकीर्ण-

\* भूमिपतिकर्तृके इति पुस्तकान्तरे ।

तीर्थोदकपूर्णकलशमभिष्टाभिषेकमन्त्रैर्यथोक्तैर्दातारमभिषिञ्चति  
 व्रतेन त्वं व्रतपत इति व्रतमुपैत्यायाचिताशनावधःशायिनौ  
 भवतो व्रतोपचारं यथाशक्त्येकरात्रं पञ्चरात्रं वा द्वादशरात्रं  
 व्रतञ्चरित्वा श्वोभूते तन्वमाज्यभागान्तं कृत्वान्वारभ्याथाज्यं  
 जुहुयात् कामसूक्तं कालसूक्तं पुरुषसूक्तमित्यथ सुवर्णं मयीं भूमिं  
 भूमेः प्रतिकृतिं गोचर्ममात्रां कृत्वानीय वेद्युत्तरतोऽस्यां वेदिमि-  
 त्युपस्थाप्य गिर्यस्ते पर्वता इति पर्वतानवस्थाप्य हिरण्यरज-  
 तमणिमुक्ताप्रवालकादिभिरुपशोभयेद्यदहः संप्रयतीरिति साम-  
 न्दसानेति नदीः काञ्चयित्वा रसैश्च परिपूरयेत् अपरमग्रमसि समु-  
 द्रन्वाभ्यवष्टुजामीति समुद्रान् वनस्यतिः सह देवैः\* नश्रायगन्निति  
 बृहस्पतिर्नेति वनस्यतीनन्यांश्च यज्ञे त्वा मनसा सङ्कल्पयेन्ननसा  
 सङ्कल्पवतीह भवति निधी बिभ्रतीति नमस्कारयित्वा सत्यं बृह-  
 स्पत्यनुवाकीये देवामोदित्येकादशस्येति पुण्याहं वाचयेत् संस्थाप-  
 येन्न च दि वो देवज्ञतेमेत्यभिमन्वा ब्राह्मणेभ्यो दद्याद्वातुरेषास्मै-  
 रोहिणीकामं निकामं वा दुःख इति ।

यथा रोहन्ति बीजानि हलाकृष्टे महीतले ।

एवं कामाः प्ररोहन्ति प्रेत्य हि मनसा सदा ॥

सर्वेषामेव दानानां यत्फलं समुदाहृतं ।

तत् प्राप्नोति च विप्रेभ्यो दत्त्वा भूमिं यथाविधि ॥

अथ मत्स्यपुराणे ।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्भिमधरां शुभाम् ।

पुण्यकालेति संप्राप्ते स पदं याति वैष्णवं ॥

विमानिनार्कवर्षेन किङ्किणीजालमालिना ।  
 नारायणपुरङ्गत्वा कल्पत्रयमथो वसेत् ॥  
 पुत्रपौत्रप्रपौत्रांश्च तारयेदेकविंशतिम् ॥  
 इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गा-  
 दपि कल्पविमानैर्मुक्तदेहः समन्तात् ।  
 दिवममरवधूभि र्याति संप्रार्थ्यमानः ।  
 पदममरसहस्रैः सेवितं चन्द्रमौलेः ॥

इति धरादानविधिः ।

लिङ्गपुराणे, सनत्कुमार उवाच ।  
 सुवर्णमेदिनीदानं प्रवक्ष्यामि समासतः ।  
 पूर्वोक्तदेशकालेतु कारयेन्मुनिभिः सह ॥  
 लक्षणेन यथापूर्वं कूपे वा मण्डपेऽथवा ।  
 मेदिनीं कारयेद्विद्यां सहस्रेणापि वा पुनः ॥  
 एकहस्तेन कर्त्तव्या चतुरस्रा सुशीभना ।  
 सप्तदीपसमुद्राद्यैः पर्वतैरपि संयुता ॥  
 सर्वतीर्थनगोपेता मध्ये मेरुसमन्विता ।  
 अथवा मध्यतो द्वीपं नवखण्डं प्रकल्पयेत् ॥  
 पूर्ववन्निखिलं कृत्वा मण्डले वेदिमध्यतः ।  
 सप्तभागैकभागेन सहस्राद्विधिपूर्वकम् ॥  
 ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्या दक्षिणा पूर्वचोदिता ।  
 सहस्रकलशाद्यैश्च शङ्करं पूजयेच्छिवम् ॥  
 सुवर्णमेदिनीं प्रोक्ता लिङ्गेऽस्मिन् पर्वतं मतम् ।  
 'मुनिभिः, नियतात्मभिर्विप्रैः सहेत्यर्थः ।



सहस्रेण, पलानामिति ज्ञेयं, हेमः पलसहस्रेणेत्यादि पञ्चप-  
लाद्रुद्धं कुर्यादिति मन्त्रोक्तेः, सा च एकहस्तमिता चतुरस्रा सप्त-  
द्वीपवती कार्या, अथवेति पक्षान्तरं, स्वल्पद्रव्याभिप्रायं तदेवाह  
सप्तभागैकभागेन, सहस्रादिति सहस्रसप्तमांशेन, नवखण्डं  
जम्बुद्वीपमात्रं कल्पयेदित्यर्थः, ब्राह्मणेभ्य इति, बहुत्वमनेकाग्नि  
पक्षविषयं, पूर्ववदिति, लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानवदित्यर्थः  
कालोत्तरे, पृथिवीदानमेवात्र शृणु लेशेन षण्मुख ।

उत्तमा मध्यमा कन्या पृथिवी त्रिविधा मता ॥

शतार्द्धकोटिविस्तारात्तूत्तमा परिकीर्त्तिता ।

सप्तद्वीपावसानातु मध्यमा समुदाहृता ॥

जम्बुद्वीपावधिः कन्या त्रिविधां परिकल्पयेत् ।

उत्तमाः पञ्चभिर्भारैः काञ्चनेन प्रकल्पयेत् ॥

सहस्रहितयेनैव कन्या द्वादशपर्वताः ।

तदर्द्धात्तारजङ्गमं तथा पद्मं समादिशेत् ॥

द्वादशपर्वतास्तु कालोत्तरोत्तरत्नमेरुदाने द्रष्टव्याः, तारजं-  
रूप्यकृतं, उत्तमा कथिता पृथ्वी चण्डेन मध्यमा मता । कन्यकात्र  
त्रिभागेन त्रिहात्या कूर्मपङ्कजे ॥ ऋग्यजुःसामगानान्तु शिव-  
भक्तेषु निक्षिपेत् ।

चतुष्पादपट्पदार्थसंहितापाठकायच ।

तस्य पादः प्रदातव्यः पृथ्वी कूर्मकजेषु च ॥

शेषेषु च यथान्यायं ज्ञानं ज्ञात्वा निवेदयेत् ।

सूर्यस्य ग्रहणे दत्तं शिवस्याग्रे निवेदयेत् ॥

मेरुवत् कल्पयेत्तत्र पर्वतांश्च त्रयोदश ।  
 सहस्रेण पलानान्तु तत्र मेरुं प्रकल्पयेत् ॥  
 सहस्रद्वितयेनैव कल्पाद्वादशपर्वताः ।  
 चतुःशतसमायुक्ताः प्रत्येकन्तु ग्रहाः स्मृताः ॥  
 तथैव राशयः कल्पा नक्षत्राणि तदर्द्धतः ।  
 हीपाश्च ग्रहवत्कल्पा जम्बुसंज्ञादिकास्ततः ॥  
 चाराद्यस्तु तथा सप्त देवयोन्यष्टकं तथा ।  
 मृगाद्याश्च यथा यदङ्गुली ब्रह्मादयस्तथा ॥  
 पातालसप्तकं कल्पां भूर्लीका दिवसप्तकं ।  
 सहस्रखण्डं कूर्मश्च नवखण्डं कजोद्भवं ।  
 एवं कल्पा शिवस्याग्रे शिवविप्रेषु दापयेत् ॥  
 सुव्रतेश्वहताङ्गेषु वेदसिद्धान्तवेदिषु ।  
 दातव्या पृथिवी तेषां बहुरूपं स्मरंस्तथा ॥

बहूनि अधीरवीरतराणि रूपाणि यस्यासौ बहुरूपो अधीर-  
 मन्त्रः ।

अवीरेभ्योऽधवीरेभ्यो घोर घोरतरेभ्यः

सर्वतःशर्वसर्वेभ्योनमन्त्रे अमृतरुद्ररूपेभ्यः

राहुणा गृह्यमाणेतु सूर्यविम्बितु निर्वपेत् ।  
 एवं सङ्कल्पा विधिवच्छिवस्याग्रे प्रदापयेत् ॥  
 परमाणवोयावन्तो ब्रह्माण्डस्य भवन्ति हि ।  
 तावत्कल्पसहस्राणि शिवलीके महीयते ॥  
 पितरस्तस्य नन्दन्ति बलन्ति च यशामुखम् ।  
 रुद्रायुर्यावदन्ते च रुद्रलोके वसन्ति च ॥

महीभजस्तदन्ते तु शिवभक्त्या भवन्ति हि ।

मोक्षः प्रजायते तेषां शिवभावानुदीक्षया ॥

इति सुवर्णपृथिवीदानविधिः ।

सूत उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि युष्माकं मुनिसत्तमाः ।

जम्बुद्वीपप्रदानाख्यं दानानामुत्तमोत्तमं ॥

यस्य प्रदानान्मनुजो वैष्णवं लोकमाप्नयात् ।

सर्वपापक्षयकरं सर्वमङ्गलकारकम् ॥

आरोग्यश्रीकरञ्चैवमायुर्वर्द्धनमुत्तमम् ।

भुक्तिदं मुक्तिदन्तृणामभीष्टफलदं शुभं ॥

यथाह भगवान् शम्भुः पृष्टः पर्वतकन्यया ।

तथेदं संप्रवक्ष्यामि युष्माकं मुनिसत्तमाः ॥

द्रुशमासीनमेकान्ते कैलासे हिमवत्सूता ।

प्रणिपत्य जगन्नाथं पर्य्यपृच्छत सादरा ॥

भगवन् किं नरैः कार्यं सर्वदुःखनिवारणम् ।

अनायासेन देवेश सर्वमङ्गलकारकं ॥

इत्येवमुक्तः पार्वत्या पिनाकी वृषभध्वजः ।

यथाह भगवान् देव्यै तत्सर्वं कथयामि वः ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि महादानं जम्बुद्वीपाह्वयन्तु तत् ।

यथाह भगवानस्य पद्मयोनिर्जनाईनः ॥

पुण्येऽङ्गि पुण्यनक्षत्रे पुण्यकाले तु सर्वतः ।

विषुव ययनादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

व्यतीपातेऽथ वा कुर्याज्जन्मर्त्तं वा विशेषतः ।  
 अष्टम्यां पञ्चदश्यां वा नित्यं वा दानमाचरेत् ॥  
 पुण्यदेशेषु सर्वेषु नदीदेवालयादिषु ।  
 दानं गृहे वा दातव्यं श्रद्धा वा यत्र जायते ॥  
 विप्रन्तु वेदविदुषं गुरुं सम्पूज्य यत्नतः ।  
 भूलेपनादि यत्कार्यं सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥  
 विलेपयेत्सर्वभूमिं गोमयेन सवारिणा ।  
 तत्र विंशतिहस्तन्तु लेपयेत्परिमण्डलम् ॥  
 लवणेनोदधिं तत्र परितः परिकल्पयेत् ।  
 प्रादेशमात्रं विस्तारादष्टद्वीणेन पार्व्वति ॥  
 तत्राक्षतान्निर्विकिरेत् श्वेतपुष्पैः समन्ततः ।  
 तन्मध्ये कारयेन्मेरुं धान्यभारत्रयेण वै ॥

मेरुर्महाब्रह्ममयस्तु मध्ये  
 सुवर्णकल्पद्रुमसंयुतः स्यात् ।  
 पूर्व्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो  
 याम्येन गोमेदकपुष्परङ्गैः ॥  
 पश्चाच्च गारुमतनीलरत्नैः  
 सौम्येन वैदूर्यसरोजरङ्गैः ।  
 श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवाल-  
 लतान्वितः शक्तिशिलातलः स्यात् ॥  
 शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात्  
 पूर्व्वेण पीतानिच दक्षिणे तु ।  
 वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि

रक्तानि चैवोत्तरतोषणाली ॥  
 ब्रह्मातु मध्ये कमलासनस्थ-  
 चतुर्मुखः काञ्चननिर्मिताङ्गः ।  
 चतुर्भुजश्चात्र निवेशनीयो  
 दधत् स्तुचं चात्र कमण्डलुञ्च ॥  
 तथाक्षसूत्रं जपसाधनञ्च  
 कृष्णाजिनं चोपरितश्च बिभ्रत् ।  
 गङ्गां चतुर्धा पतितान्निधाय  
 चतुर्दिशं चोदकपूर्णरूपाम् ॥  
 रौप्यान्महेन्द्रप्रभृतीन्थाष्टौ  
 संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण ।  
 नानाद्विजौषानि च राजतानि  
 मृगाश्च सर्वत्र निवेशनीयाः ॥  
 पूर्वेण मन्दरगिरिर्यवतण्डुलाभ्याम्  
 शुक्लाम्बरेण परितः परिवेष्टितान्तः ।  
 प्लक्षेण काञ्चनमयेन वृषेण तद्व-  
 द्रौप्येण वृक्षमृगपक्षियुतो विधेयः ॥  
 वाम्येन गन्धमदनीत्र गिरिस्तु, कार्यो  
 मुनैश्च जम्बुतरुणा च हिरण्मयेन ।  
 हैमेन यक्षपतिना च विराजमानः  
 पीताम्बरेण परितः परिवेष्टितश्च ॥  
 पश्चात्तिलाचलमथोपरि कर्बुराभम्  
 वासः सपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम् ।

आकारयेद्विपुलमन्द्रसुगन्धपुष्पम्  
 रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानम् ॥  
 संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण  
 शैलं सुपार्श्वमपि माघमयं सुवस्तं ।  
 न्यग्रोधवृक्षमपि हेममयं सुधेनुम्  
 रौप्यैश्च शक्तिघटितैश्च सुभं विधाय ॥  
 मेरोश्च पुष्पाभरणञ्च कार्य्यम्  
 घृतीदकं प्रश्रवणञ्च दिक्षु ।  
 क्षीराज्यदध्ना मधुना सरांसि  
 प्रागादि तेषां च यथाक्रमेण ॥  
 हिम हेमकूटनिषधाःक्रमश्च याग्ये  
 सौम्ये च नीलसितशृङ्गयुताः क्रमेण ।  
 प्रादेशमात्रं परिनिस्तृतास्ते  
 प्रागायता ह्युपरि\* वस्त्रयुताश्च सर्व्वे ॥  
 प्रत्येकमत्र वर्षच्छदपर्वतानाम्  
 भारेण धान्यपरिमाणमुशन्ति सन्तः ।  
 शक्त्याच रौप्यकृतपक्षियुताश्च सर्व्वे  
 सौगन्धिपुष्पफलवस्त्रयुगा विधेयाः ॥  
 आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ  
 तेषां मध्यगतौ मेरुस्तौ च धान्यविनिर्मितौ ॥  
 निषधः पारिजातश्च नर्यादापर्वताविमौ ।  
 मेरोः पञ्चमभागेन यथा तौ गन्धमादनौ ॥

गन्धमादनशैलोऽसौ पूर्वपश्चाद्यथाविधौ ।  
 श्वेततण्डुलनिर्माणौ दक्षिणोत्तरतः स्थितौ ॥  
 सितान्तःप्रमुखाः सर्वे दक्षिणे ककुभादयः ।  
 शंखकूटादयश्चैव उत्तरे परिकीर्त्तिताः ॥  
 तांस्त्रीन् केशरशैलांश्च कृत्वा धान्यमयान् शुभान् ।  
 वस्त्रैराविष्टा शैलेन्द्रं मेरुमन्यांश्च वेष्टयेत् ॥  
 दक्षिणं भारतं वर्षं तत् किंपुरुषसम्भृतम् ।  
 हरिवर्षं ततः प्रोक्तं मेरोर्दक्षिणतस्ततः ॥  
 इलावृतं वृतं मेरोश्चतुर्थं वृषभं तथा ।  
 रभ्यं हिरण्यं तस्मात् कुरवश्चेति चोत्तराः ॥  
 भद्राश्वः केतुमालश्च पूर्वपश्चिमतः स्थितौ ।  
 प्रोक्तानि नववर्षाणि जम्बुद्वीपे तु नामतः ॥  
 हिमाद्रिमध्ये देवेशं श्रियञ्च विनिवेशयेत् ।  
 प्रासादाभिमुखावेतौ काञ्चनेन विनिर्मितौ ॥  
 शङ्ख-चक्र-गदा-पाणिं पीतवाससमच्युतम् ।  
 किरीट-केयूर-धरं श्रीवत्साङ्कितवक्षसं ॥  
 पद्मामने समासीनां पद्महस्तां सुलोचनाम् ।  
 प्रमन्नवदनां देवीं तस्य दक्षिणतोन्यसेत् ॥  
 कैलासमध्यतो माञ्च त्वां चैव विनिवेशयेत् ।  
 मां च शङ्करनामानं त्वां च गौरीं वरानने ॥  
 चतुर्भुजं वृषस्यञ्च जटिलं चन्द्रमोलिनम् ।  
 खट्वाङ्गशूल-वरदाभय-हस्तञ्च मां न्यसेत् ॥  
 मदुःसङ्गतां त्वां च दर्पणे दीवरान्विताम् ।

भद्रासने भगवन्तं हयरूपमुखं हरिम् ॥  
 सौवर्णं स्थापयेद्देवं भारते कूर्मरूपिणम् ।  
 वाराहं केतुमालं वै मत्स्यं कुरुषु चीत्तरे ॥  
 सौवर्णान्नथवा रौप्यान् स्थापयेत्तु यथाक्रमम् ।  
 एवं जम्बाह्वयं\* ह्रीं कृत्वा चैव यथाविधि ॥  
 अर्घपाद्यासनं स्नानं यथावत् स्थापनं क्रमात् ।  
 ब्रह्मादयस्तथादेवाः शैलाः कल्पद्रुमास्तथा ॥  
 स्वनाममन्त्रैः पूजार्हा नमस्कृष्टान्तदीपितैः ।  
 गन्ध-पुष्प-नमस्कार-धूप-दीप-फलैस्तथा ॥  
 तथोपहरणाद्यैश्च पूजयित्वा प्रयत्नतः ।  
 भद्राश्ववर्षे होमन्तु सर्पिषा च समाचरेत् ॥  
 स्वनाममन्त्रैर्होतव्यं स्वाहाकारसमायुतैः ।  
 दशोत्तरशतं हुत्वा ब्रह्मणे मेरवे तथा ॥  
 इतरेषाञ्च सर्वेषामष्टोत्तरशताहुतीः ।  
 स्नानार्थं यजमानस्य पुरतः कलशञ्चसेत् ॥  
 आढकीदरपूर्णन्तु स्वकूर्चं वस्त्रवेष्टितम् ।  
 गन्धाः सुमनसस्तस्य कुशाग्रान्विनिवेशयेत् ॥  
 याश्च त्रयोविधास्यन्ति ताश्चात्रावाहयेत्ततः ।  
 गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ॥  
 आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।  
 इत्यावाह्यं ततस्तस्य कलशं विमलोदकम् ॥



अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः स्थापयेत् प्रीतिपूर्वकम् ।  
 स्नापयेत् प्राङ्मुखं तत्र दातारं कलशोदकैः ॥  
 ऋग्भिर्व्वरुणदेवीभिः पावमानौभिरेव च ।  
 दानकाले च सम्प्राप्ते दाता नारी नरोऽथवा ॥  
 स्नापितो गुरुणा तेन सार्द्धं दानं समाचरेत् ।  
 त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥  
 प्रत्येकं पर्व्वतान् सर्वाङ्गान् प्रणिपत्य पुरःसरम् ।  
 मध्यमं गुरवे दद्याद्विमं मन्त्रसुदीरयेत् ।  
 अन्यस्मै वा प्रदातव्यं तस्यानुज्ञा मवाप्य च ॥

यथाच भूरादिसप्तल्लोका  
 स्वयि स्थिता भूधरराज नित्यम् ।  
 अमीसुरा असुरा लोकनाथा  
 ब्रह्मादयो देवगणाश्च नित्यं ॥  
 त्वत्संप्रदानादहमप्यशेषैः  
 पापैर्विसुक्तास्त यथाभवेयम् ॥  
 श्रेयस्तथापर्व्वतराजमह्यं  
 कुरु प्रभो देववरैश्च सार्द्धं ॥  
 इतो-दमुक्त्वा प्रददेत्तु मेरुं  
 सकाञ्चनं राजतवस्त्रयुग्मम् ।  
 प्रत्येकमेकं द्विजपुङ्गवानाम्  
 प्रागादि दद्यादितरान् क्रमेण ॥  
 सुरासुराणाममृतार्थकृत्यै  
 त्वया कृतं मन्दरशैल सत्य ।

तथा च मां रक्ष च सर्वतस्त्वं  
 तव प्रसादाद्विरजा यथाहं ॥  
 गन्धादिमादन इतीरितभूधरेन्द्र  
 वेदे तवापि गरुडाय नमोस्तु तुभ्यं ।  
 त्वत्सम्प्रदानहतपापसमस्तदीपं  
 च्छायाधिशैलवर रक्ष च मामजस्रम् ॥  
 देवालयाय विपुलाय नमोऽचलाय  
 हंसाय वेदपुरुषाय नमोऽच्युताय ।  
 युष्मत्प्रदाननिहताखिलपापराशिं  
 हंसेन सार्द्धममराचल पाहि मां त्वं ॥  
 वन्दे सुपार्श्वममराचलमप्रमेय-  
 न्येन च देवसुरभिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।  
 त्वद्दानभक्तियुतसत्क्रिययाहमद्य  
 त्वामेव यामि शरणार्थमवैहि मां त्वं ॥  
 श्रीवत्सवक्षस-मनादि-मजंममस्त-  
 लोकाधिपं सकलकारणमच्युतञ्च ।  
 नारायणं शरणमेभि धराधरेन्दैः  
 सार्द्धं श्रिया हिमवतःस्थितिमादिमीडे ॥  
 देवाय देवगणपूजितपादपद्म-  
 युग्माय भक्तजनदुःखविनाशनाय ।  
 कैलाशशैलनिलयाय भवाय नित्यं  
 गौरीप्रियाय वरदाय नमः शिवाय ॥  
 चक्री त्वनादिनिधनः शरणागतं मां ।

भद्राश्वनामनिगतो हरिरच्यतोऽसौ ।  
 आस्ति ह नाथ न वपुःसनकादियोगि-  
 पूर्गैरभिष्टुतपुरातनकीर्त्तियुक्तः ॥  
 मध्ये महार्णवहिमाचलयो निर्षण-  
 कूर्माकृतिं शरणमेमि भवाभवाय ।  
 पारावरं मथितमत्र सदा दधाति  
 यस्त्वं नमामि सुरपूजितमप्रमेयम् ॥  
 वाराहरूपिणमनन्तमनन्तकेतुम्  
 लोकस्वरूपिणमनेकशिरोक्षिपादम् ।  
 वन्दे महीधरममेयमपारकीर्त्तिं  
 यज्ञेशमेमि शरणं हर मीशितारम् ॥  
 देवस्तथोत्तरकुरुष्वपि नित्यमास्ते  
 मत्स्यः सुरेन्द्रगणपूजितपादपद्म ।  
 रक्षत्वशेषजगतां पतिरच्यतोऽसौ  
 संसारदुःखचलितं शरणागतं मां ॥  
 उक्तैवमात्र मघनाशनदानमन्त्रं  
 प्रत्येकमेकं द्विजपुङ्गवानाम् ।  
 भुक्त्वा शुभानि मनसेच्छति यानि वासौ  
 गच्छेच्च यत्र न निवर्त्तयतीह मर्त्यः ॥  
 गुरवे दक्षिणां दद्यात् सुवर्णञ्चैव वाससौ ।  
 यागोपकरणं सर्व्वं गुरवे विनिवेदयेत् ॥  
 इत्याह भगवान् प्रीतः पार्वत्या परमेश्वरः ।  
 अहमप्यब्रुवै सर्व्वं युष्माकं मुनिसत्तमाः ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तो जम्बुद्वीपदानविधिः ।

ब्रह्मा उवाच ।

शृणु देव मुने दानं सप्तद्वीपाह्वयञ्च तत् ।

तत् कृत्वा पृथिवीदानफलं सर्व्वमुपाश्रुते ॥

पुण्यकालेषु सर्व्वेषु चन्द्रसूर्य्यगहादिषु ।

देवागारादिदेशेषु पुण्येष्वायतनेषु च ॥

विप्रं गुरुं वेदविदञ्च दत्तं

विद्याप्रदं वृणुयात्तत्र पूर्व्वम् ।

स कारयेच्छैवतदङ्गकार्य्यम्

ऋते दानं गुरुणानेन सर्व्वम् ॥

समान्भूमिं लिम्पयेद्भूमयेन

सवारिणा शुचि तत्रापि मध्ये ।

कृत्वा द्वीपं जम्बुसंज्ञं यथावत्

तद्वाह्ये च प्लक्षनामा निवहः ॥

जम्बुप्लक्षाह्वयो द्वीपो शास्मलश्च तथापरः ।

कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः ॥

एते द्वीपाः समुद्रैश्च सप्तसप्तभिरावृताः ।

लवणे-क्षु सुरा-सर्पिर्-दधि-दुग्ध-जलैः समम् ॥

जम्बुद्वीपः समस्तानामितेषां मध्यमः स्मृतः ।

तस्यापि मेरुर्देवर्षे मध्ये कनकपर्वतः ॥

प्लक्षद्वीपस्य विस्तारः षोडशाङ्गुल इष्यते ।

पादाधिकस्तथान्येषामुत्तरीत्तरमुच्यते ॥

षोडशद्वीपान्येषां प्लक्षद्वीपं प्रकल्पयेत् ।

ततः पादाधिकं प्रोक्तमन्येषामुत्तरोत्तरम् ।  
 विस्तार एष द्वीपानामुदधीनाञ्च सर्वशः ॥  
 प्लक्षादिपञ्चद्वीपेषु वर्षभूधरनिम्नगाः ।  
 प्रत्येकं सप्तसप्त स्युः श्वेततण्डुलनिर्मिताः ॥  
 पुष्करे भूधरं त्वेकं मध्यतो वलयाकृतिं ।  
 वर्षद्वयं तथाचान्यन्नामतः श्रूयतां मुने ॥  
 प्लक्षे शान्तमयं वर्षं शिशिरं सुखदं तथा ।  
 आनन्दञ्च शिवं चैव क्षेमकृत् सुखमेव च ॥  
 गोमेदपर्वतश्चान्द्रो नारदोदुन्दुभिस्तथा ।  
 सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजः सप्त पर्वताः ॥  
 अनुतप्ता शिवाचापि अम्बिका त्रिदिवी क्रमात् ।  
 अमृता सुकृताचैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ॥  
 प्लक्षन्तु प्रथमे वर्षे मध्यतो विनिवेशयेत् ।  
 पलेन वा यथाशक्ति तदर्धेन विनिर्मितं ॥  
 तत्पाश्वर्ध्वं देवदेवेशं सर्व्वलोकगुरुं हरिं ।  
 सोमरूपधरन्देवं सौवर्णं विनिवेशयेत् ॥  
 श्वेतौ हरितजीमूतौ रोहितो वैद्यतस्तथा ।  
 नर्मतः सुप्रभः सप्त वर्षाण्येते च पर्वताः ॥  
 कुमुदश्चोदनश्चैव तृतीयश्च बलाहकः ।  
 कङ्कश्च महिषश्चैव ककुब्जान् सहजोगिरिः ॥  
 योनिस्तोया विलम्बा च चन्द्रा शुक्ला च मीचनी ।  
 विवृत्तिः सप्त नद्यश्च शाल्मले परिकीर्तिताः ॥  
 उद्भिदो वेणुमाश्चैव सुरती लवणो धृतिः ।

प्रभाकरश्च कपिलः पर्वतान् शृणु नारद ॥  
 मणिद्रुमोहैमशैलो द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा ।  
 कुशोषमश्च हरितो मन्दरः सप्तमस्तथा ॥  
 धूतपापा शिवा चापि पवित्रा शमिता तथा ।  
 द्युदम्भा महिषीचैव सर्वपापहरा तथा ॥  
 कुशस्तम्बं कुशद्वीपे क्रीञ्चे चैतान्निबोध मे ।  
 वर्षाणि भूधराश्चैव विष्णुश्च परएव च ॥  
 अन्धकारो मुनिश्चैव दुन्दुभिः सप्तमस्तथा ।  
 क्रीञ्चश्च वामनश्चैव अन्धकारोऽथ पञ्चमः ॥  
 पुण्डरीको दुन्दुभिश्च सप्तैते स्थुरिहाचलाः ।  
 गौरी कुमारी सन्ध्याच रात्रिश्चैव मनोजवा ॥  
 यक्षादिः पुण्डरीकश्च सप्तसप्त उदाहृताः ।  
 शाकमध्ये शाकवृक्षो वर्षप्लक्षेच निम्नगाः ॥  
 सप्तसप्त च देवर्षे अयूतां गदतो मम ।  
 जलदश्च कुमारश्च सुकुमारी मणीचकः ॥  
 कुसुमोत्तममोदश्च सप्तमश्च महाद्रुमः ।  
 उदयो जलधारश्च रैवतश्चानुपर्वताः ॥  
 पञ्चमोऽभ्रगिरिः शैलो अम्बिका केसरी तथा ।  
 सुकुमारी कुमारीच नलिनी वेणुका तथा ॥  
 इन्दुका रेणुकाचैव गभस्तिः सप्तमौ तथा ।  
 पुष्करेतु महापद्मो धातकीति प्रकीर्त्तिता ॥  
 मध्यतो वलयाकारौ मानसोऽत्र च पर्वताः ।  
 न्यग्रोधवृक्षः पूर्वतु ब्रह्मणः स्थानमुच्यते ॥

सप्तमः पुष्करद्वीपः तद्वहेव समावृतः ।  
 एवं द्वीपाः समुद्रैश्च सप्तसप्तभिरावृताः ॥  
 द्वीपैश्चैव समुद्रैश्च समाना द्विगुणाः परे ।  
 द्वीपमानान् द्रुमान् सर्वान् राजतान्विनिवेशयेत् ॥  
 तथापक्षिमृगान्मत्स्यान् पर्वतोदधिषु क्षिपेत् ।  
 जम्बुद्वीपाधिपं विष्णुं तत्र चैव निवेशयेत् ॥

प्लक्षे सीमं शाल्मले वायुरूपं  
 कुशद्वीपे ब्रह्मरूपं पुराणं ।  
 क्रौञ्चे रुद्रं शाकसंज्ञेऽथ सूर्यं  
 ब्राह्मं रूपं पुष्करे देव देवं ॥  
 कृत्वाचैकं बहुधा चारुमूर्तिं  
 हिरण्यजं जगतामीशमाद्यं ।  
 प्रक्षाल्य पूतेन जलेन मन्त्रैः  
 संप्रोक्ष्य दर्भैश्च निधाय देवान् ॥  
 संवेष्ट्य वस्त्रैश्च धराधरेन्द्रान्  
 समन्ततो विकिरेत् पुष्पवृष्ट्या ।  
 अर्घ्यादिभिर्हव्ययुतैश्चहस्तैः  
 मम्यज्य मेरुं प्रमथांश्च सर्वान् ॥  
 स्वनाममन्त्रैश्च नमोयुतैश्च  
 स्वाहायुतैः पूर्ववद्धोममन्त्रः ।  
 यथा पुरा तत्र तथैव कुर्या  
 देवाधिपैर्लेन्द्रवनस्पतीनां ॥  
 पूर्वदुरेव विधिना समाप्य

गुरुश्च तत्राधिवसेन्निशायां ।  
 निशासु वेदानुमतस्तथैव  
 वस्त्रादिदानञ्च ततः क्रमेण ॥  
 ततः प्रभाते विमले तु दान्  
 काले तदा स्नापितोद्यौतवस्त्रः ।  
 यथा पूर्वं जम्बुसंज्ञस्य चोक्तं  
 तथादानं सादरं हारयित्वा ॥  
 ततो विप्रान् पूज्य तेषां क्रमेण  
 तां दापयेन्मन्त्रपूर्वन्तथैव ।  
 सोमं वायुं ब्रह्मरूपञ्च चन्द्रं  
 तथा सूर्यं ब्रह्मणोरूपमायं ॥

वीरुधौषधिद्विच्छाणां सृगाणां जगतां प्रभोः ।  
 आह्लादजननी यस्मात् तस्मात्त्वं पाहि मां सदा ॥  
 अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य योजगति स्थितः ।  
 सदागतिरमेयात्मा रक्ष त्वं व्याहृतस्तु मां ॥  
 यः कर्त्ता जगतां पाता ब्रह्मलीकपितामहः ।  
 त्वत्सम्प्रदानाद्देवेश श्रेयश्चास्तु सदा मम ॥  
 रक्षार्थं देवदेवानां जगतामपि शङ्कर ।  
 त्वया तु त्रिपुरन्दग्धं सदा मे संप्रसीद तत् ॥  
 उदेत्यस्तमनं याति नित्यं पाति जगत्रयं ।  
 प्रत्यक्षं सर्वलोकानां योऽसौ मे संप्रसीदतु ॥  
 सृष्टिस्थितिविनाशानां कारणज्जगतामसौ ।  
 हिरण्यगर्भा भगवान् सदा मे संप्रसीदतु ॥



इत्येवमेव विधिभिर्द्विज पुङ्गवानाम्

प्रत्येकमेकञ्च यथा क्रमेण ।

दद्यात्तदा गुरवे दक्षिणां च

वासः सुवर्णादधिकं सुवर्णं ॥

कृत्वा सप्तद्वीपपर्यन्तभूमिं

दत्त्वा देवान् जातरूपान् क्रमेण ।

दद्यात्तस्मै गुरवे दानशेषं

साङ्गोपांगन्धान्यवस्त्रादि सर्व्वं ॥

आदावन्ते पञ्चभिर्विप्रवर्यैः

पुण्याहञ्च स्तुतिमृद्विञ्च वाचं ।

दद्यात्तेभ्यो दक्षिणां जातरूपं

वासोधान्यं भोजयेद्वाह्मणांश्च ।

सप्तद्वीपाह्वयं दानमेवं कृत्वाथ नारद ।

नारी वा पुरुषोवाथ वैरिञ्चिं लोकमाप्नुयात् ॥

उवाच नारदायैवं भगवान् लोकभावनः ।

यथा मया पि तत्सर्व्वं प्रोक्तं वै मुनिसत्तमाः ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तः सप्तद्वीपदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

तत्रासीता मुनयः शौनकाद्या-

स्तेचारण्ये नैमिषे सतवागे ।

सुखासीनं सूतसुनुन्तदानीम्

गत्वापृच्छन् यज्ञकर्मावसाने ॥

उग्रस्त्रवः परिपृच्छामहे त्वाम्

किं कृत्वासौ पुरुषोवाथ नारी ।  
 आयुश्च सर्वं लभतेऽथ रोगै  
 विमुच्यते भूतिमुपैति चायमां ॥  
 दुःखप्रनाशं\* ग्रहभीतिनाशम्  
 दृष्टं तथा त्रिविधे चाङ्गते वा ।  
 अथान्यद्वा भयदौषप्रशान्ति-  
 मभीष्टसिद्धिं प्रददाति कर्तुः ॥  
 दानं व्रतं देवताभ्यर्चनं वा  
 किं तत् कृत्वा कृतकृत्योभवेत्ताः ।  
 शुश्रुषवस्तववाक्यञ्च यत्तु  
 वदास्माकं सूतदानातिविद्वन् ॥  
 इत्येवमुक्तो मुनिभिस्तदानी-  
 मुग्रश्रवाः प्रत्युवाचाथ तेषां ।  
 शृणुध्वं वः कथयिष्याम्यहन्त-  
 त्वेवं भूतं पृथिवीपद्मदानं ॥  
 देवागारे नदनद्योस्तु तीरे  
 गृहेऽन्यस्मिन् पुण्यदेशे च कुर्यात् ।  
 तडागे वा नन्दने वाथ कुर्या-  
 दारामे वा रमते यत्र चेतः ॥  
 विप्रं गुरुं वेदपुराणदक्षं  
 सङ्गृह्य वैतानि क्रमादरेण ।  
 दद्यात्तु तस्मै गुरुवेऽथ वासो

युगं शुभं काञ्चनभूषणानि ॥  
 अलङ्कृतोऽसौ प्रकरोति सर्व-  
 मृतेदानं किञ्चिदिहास्ति कार्यं ।  
 गव्येन भूमिं शक्यता जलेन  
 चालेपयेद्दिशतिहस्तमात्रां ॥

कूटस्वर्षातपत्राणां समं प्राक्प्लवमेव वा ।  
 षोडशारत्निमात्रन्तु चतुरस्रं प्रकल्पयेत् ॥  
 यद्येष्टं तत्र कुर्यादै स्तम्भांश्च परिकल्पयेत् ।  
 चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुस्तोरणभूषितं ॥  
 दर्भमालापरिवृतं मङ्गलाङ्कुरशीभितं ।  
 वितानेनोपरिच्छन्नं शुभेन सितरूपिणा ॥  
 परितो लोकपालानां ध्वजाश्च परिकल्पयेत् ।  
 वस्त्रैरावेष्टयेत् स्तम्भान् चतुर्हिंक्षु विचक्षणः ॥  
 लम्बयेत् पुष्पमालाश्च सर्वतस्तम्भसन्धिषु ।  
 प्रागुदक्प्रवणां भूमिं गोमयेनोपलेपयेत् ॥  
 एवंकूटप्रपाञ्चाय पटं वा परिकल्पयेत् ।  
 मध्ये ब्रीहिमयं शैलं महामेरुं प्रकल्पयेत् ॥  
 मध्यमं दशभारेण\* तुरीयांशेन चैतरान् ।  
 मन्दरं पुरतः कृत्वा दक्षिणे गन्धमादनं ॥  
 विपुलं पश्चिमे शैलं सुपार्श्वेत्तरेऽचलं ।  
 विष्कम्भपर्वतौ द्वौतु पूर्वपश्चिमभागयोः ॥  
 परितश्चान्तरे वर्षपर्वताः समुदाहृताः ।

\* तुरीयांशेनेति कचित् पाठः ।

विष्कम्भपर्वतौ, मन्दरगन्धमादनावेवाभिप्रेतौ, वर्षपर्वतास्तु  
धरादानोपदिष्टा द्रष्टव्याः ।

जम्बूप्लक्षाह्वयो द्वीपौ शात्मलश्च तथापरः ।

कुशं क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमम् ॥

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलेः समम् ।

एवं द्वीपाः समुद्रेश्च सप्तसप्तभिरावृताः ॥

एवं ब्रीहिमयाञ्छैलान् पतिष्णः कारयेत्तथा ।

भारार्द्धेनाथवा शैलानितरान् परिकल्पयेत् ॥

इतरान्, वर्षपर्वतानित्यर्थः ।

सख्येष्ट्य शैलान् वासोभिः सर्वानिव महीदधीन् ।

चतुरथतुरः पात्रान् तत्तद्रथेण संविशेत् ॥

मन्दारं पारिजातञ्च सन्तानं हरिचन्दनम् ।

मेरोरुपरि सौवर्णान् चतुर्दिक्षु निवेशयेत् ॥

तन्मध्ये कल्पवृक्षञ्च सौवर्णं कमलासनम् ।

ब्रह्माणं दिभुजं देवं प्राङ्मुखं विनिवेशयेत् ॥

मेरुशृङ्गाणि चत्वारि राजतानि प्रकल्पयेत् ।

सौवर्णं मादनं प्लक्षं मन्दरे विनिवेशयेत् ॥

हिरण्यं गरुडं जम्बुगन्धमादनपर्वते ।

सौवर्णञ्च पुरोहंसमश्वत्थं परिकल्पयेत् ॥

सुपार्श्वं सुरभीं हैमीं न्यग्रोधञ्च निवेशयेत् ।

राजतानपि सर्वेषु मृगपक्षिमहीरुहः ॥

द्रक्षुचन्दनखण्डानि सर्वेषु विनिवेशयेत् ।

दारेषु कुम्भौ जलवस्त्रयुक्तौ

फलैर्युतौ चन्दनखण्डयुक्तौ ।  
 कोणेषु पूर्णं कलशन्तथैव  
 चतुर्दिशमिन्दुरसं निधाय ॥  
 कृत्वैव मद्रिप्रवरांश्च देवा-  
 नाराधयन् चन्दनपुष्पधूपैः ।  
 स्वनाममन्त्रैश्च नमोन्तरूपै-  
 रभ्यर्च्य सर्वानथ विप्रमुख्यान् ॥  
 सार्द्धं तथा गुरुणा पञ्चभिस्तैः  
 पुण्याहकं स्वस्तिमृद्धिं च वाच्यं ।  
 ततोऽब्रह्मीमं गुरुरेव कुर्यात्  
 पूर्वोत्तरस्यान्दिशि भूधराणाम् ॥  
 अग्निं समाधाय हृतेन दध्ना  
 जुहोति देवाय च नामचोक्ता ।  
 तथा गिरीणामपि नाममन्त्रै  
 र्द्वाहृतोरधिकञ्चैवमेकम् ॥  
 पूर्वद्वारेवं गुरुरेव कृत्वा  
 निशां तथा जागरणं च कुर्यात् ।  
 रक्षोघ्नमन्त्रांश्च जपन् स आस्ते  
 ततः प्रभाते विमले प्रकर्त्ता ॥  
 प्राप्ते पुण्ये दानकाले प्रदाता  
 कुशोदकैस्तिलमित्रैश्च विद्वान् ।  
 स्नात्वा शुचिर्गुरुणा प्रोक्षितोऽसौ  
 तथा मन्त्रैर्व्याकुलैः पावमानैः ॥

दद्यात् पुष्पाञ्जलिं तत्र मेरोः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।  
 सम्पूज्य दद्याद्विप्राय गुरवे वाहिताग्नये ॥  
 यस्मात्त्वं लोकपालानां ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।  
 आवासः सर्वदेवानां तस्मान्मां पाहि सर्वतः ॥  
 यस्मात्त्वं क्षितिपद्मस्य कर्णिकारं महीधर ।  
 तस्मात्त्वं सर्वदा ह्यस्मच्छे यांसि प्रददस्व वै ॥  
 इति दद्यान्महामेरुं विप्राय विदुषे ततः ।  
 प्रागाद्युत्तरपर्यन्तान् विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥  
 प्रत्येकमेकं विदुषां चतुर्णां प्रतिकल्पयेत् ।  
 दद्यात् पुष्पाञ्जलिञ्चैव कृत्वाचापि प्रदक्षिणम् ॥  
 यस्मात्त्वं मदनावासी देवानामपि पर्वत ।  
 सम्प्रीयतां मे भगवान् मन्दरः पर्वतोत्तमः ॥  
 यस्मात्त्वं गरुडावासः सदा देवालयचलः ।  
 सम्प्रीयताम्मे भगवान् गन्धमादनपर्वतः ॥  
 यस्मिन्नश्वत्थवृक्षस्थी हंसरूपी सदा वसेत् ।  
 तस्मात् सम्प्रीयतां मह्यं विपुलः पर्वतोत्तमः ॥  
 सुरभिस्तिष्ठते नित्यं न्यग्रोधोमस्तके तव ।  
 आरामो देवतानां त्वं सुपाश्वं प्रीतिमान् भव ॥  
 इत्येवं पृथिवीपद्मदानं दानोत्तमं तथा ।  
 दत्त्वा भुङ्क्तेऽधिकान् भोगान् ब्रह्मसालोक्यमाप्नुयात् ॥  
 पुण्याहं स्वस्तिमृद्विञ्च वाचयेद्गुरुणा सह ।  
 विद्वद्भिः पञ्चभिर्विप्रैर्दद्यात्तेषान्तु दक्षिणाम् ॥  
 दानोपदेष्टुं गुरवे दक्षिणां प्रतिपादयेत् ।

उपदेष्टाञ्च षष्ठीभिप्रेतो वैतानिकस्य तु  
गुरोस्तेषाञ्च दद्यात्तु दक्षिणामित्यनेन च  
दक्षिणादानसिद्धेः ।

दानमानसमं निष्कं जातरूपं विधानतः ।  
आसनं शयनं वस्त्रं पात्रं भोजनसाधनम् ।  
पानीयसाधनङ्गांस्थं गुरवे प्रतिपादयेत् ॥

एतद्दानेऽप्युपयुक्तं समस्तम्  
दद्यात्तस्मै गुरवे वस्त्रजातम् ।  
स्वयं भुङ्क्ते स दृतं पाणिनोक्तं  
गुरून् विप्रान् भोजयेद्देष्टवर्गान् ॥  
एवं पुरा ऋषये नारदाय  
जगत्कर्त्ता वाब्रवीत्पद्मयोनिः ।  
मयाचोक्तं पृथिवीपद्मदानम्  
ततः किञ्च प्रब्रवीमि द्विजेन्द्राः ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तः पृथिवीपद्मदानविधिः ।

शौनक उवाच ।

अन्त्यजागमने मर्त्यैः पाण्डुरोगी प्रजायते ।  
वक्ष्यामि तत् प्रतीकारं दानहोमादिकर्मणा ॥  
पलत्रयेण कुर्वीत राजतेन वसुन्धराम् ।  
तदर्धेनाथवा कुर्याद्वित्तशाठान्नकारयेत् ॥  
सपर्वतवनां क्लृप्तां समुद्रपरिवेष्टिताम् ।  
नवरत्नानि निक्षिप्य श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥  
क्रांस्थपात्रे विनिक्षिप्य पलायकविनिर्मिते ।

देवीमावाहयेत्तत्र सर्वाधारां हरिप्रियाम् ॥  
एह्येहि देवि धात्री त्वं रूपेस्मितम्यगाविश ।  
सहिता पर्वतैर्दीपैः समुद्रैः सुमना भव ।

आवाहनमन्त्रः ।

एवमावाह्यतां देवीं गन्धमाल्यैः समर्चयेत् ।  
उपचारैः षोडशभिराचार्यः सर्वशास्त्रवित् ॥  
होमञ्चापि प्रकुर्वीत समिदाज्यतिलैरथ ।  
भूमिर्भूमौति मन्त्रेण समिद्धोमः प्रकीर्त्तितः ॥  
तथा । भूमिर्भूमिमगात्माना मातामातरमित्यपि ।  
मन्त्रः प्रकीर्त्तितश्चाग्नौ तिलाज्याहुतिभिर्हुनेत् ॥  
अग्नेरुत्तरतश्चापि कुम्भं वस्त्रेण वेष्टितम् ।  
स्थापयेद्व्रणं शुभ्रमश्वस्थानादिमृत्तिकाः ॥  
प्रक्षिपेच्च ततः शुद्धवारिणा परिपूरिते ।  
पवमानादिभिर्मन्त्रैरभिषेकञ्च कारयेत् ॥  
शन्नोदेव्यनुवाकेन शान्तिं चापि प्रकल्पयेत् ।  
अभिषिक्तस्य चाङ्गानि वस्त्रेण परिमार्जयेत् ॥  
अक्षीभ्यमनुवाकेन यथालिङ्गं सदर्भकम् ।  
आचार्याय च तां पृथ्वीं दद्याद्रोगी समाहितः ॥  
मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।  
धात्री धरित्री भूतानां वराहेणोद्धृता प्रिया ॥  
रत्नगर्भसमुद्रैकवसना सर्वशोभना ।  
दानेनानेन सुप्रीता पाण्डुरोगं व्यपोहतु ॥  
दानमन्त्रः, । अनेन विधिना दत्त्वा पृथ्वीदानं प्रयत्नतः ।



यद्दानं वै कृतं मर्त्ये अन्यजागमनेन तु ॥

तत्सर्वं नाशमायाति पाण्डुरोगादिकं महत् ।

शान्त्यर्थं ब्राह्मणैः सार्द्धं कुर्यात् पुण्याहवाचनं ॥

इति पद्मपुराणोक्तः पाण्डुरोगहरः पृथिवीदानविधिः ।

अथ विश्वचक्रशब्दितं द्वादशं महादानमाख्यायते ।

मत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

विश्वचक्रमितिख्यातं सर्वपापप्रनाशनम् ॥

तपनीयस्य शुद्धस्य विषुवादिषु कारयेत् ।

ज्येष्ठं पलसहस्रेण तदर्धेन तु मध्यमम् ॥

तस्यार्धेन कनिष्ठं स्यात् विश्वचक्रमुदाहृतं ।

अन्यद्विंशपलादूर्ध्वमशक्नोपि निवेदयेत् ॥

षोडशारन्ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम् ।

नाभिमध्ये स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम् ।

शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वे तु देव्यष्टकसमावृतं ।

‘अरोनाम, नाभ्यन्तोपक्रमान्तगामिशलाकाकृतिरवयवविशेषः

‘नेमयः, प्रधयः भ्रमन्त्योवलयाकारेणावस्थिताः

तासामष्टकेन तुल्यान्तरालेनावृतम् ।

वेष्टितं, नाभिपद्मे स्थितमिति

अष्टदलपद्माकारा नाभिः तत्कर्णिकायां योगारूढमिति  
हृद्देशावस्थापितहस्तद्वयं पार्श्वस्थितशङ्खचक्रं विष्णुं विन्यस्य दला-  
ष्टकपूर्वादिक्रमेण शङ्खचक्रं प्रतिष्ठापयेत् । तल्लक्षणं तु नार-  
दीये ।

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा तथापरा ।  
 प्रज्ञा सत्या तथेशाना नवमी वाप्यनुग्रहेति ॥  
 सर्वा दक्षिणहस्तेन वरदेन विराजिता ।  
 सव्येन चक्रे धारिण्यः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणा इति ॥  
 अत्र देव्यष्टकसमावृतमितिवचनान्नवम्या अनुपयोगः ।  
 द्वितीयावरणे तद्वत् पूर्वतो जलशायिनः ।  
 अतिर्भृगुर्वशिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च ॥  
 मत्स्यः कूर्मोवराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।  
 रामोरामश्च कृष्णश्च बुधः कल्कीति च क्रमात् ॥  
 जलशायिप्रभृतीनां, लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदानद्वये ।

मत्स्यादीनान्तु पञ्चरात्रे ।

वामे शङ्खं गदां दक्षे द्विभुजोमत्स्यरूपधृक् ।  
 नराङ्गिर्मत्स्यरूपी वा मत्स्यरूपी जनार्दनः ॥  
 एतदेव कूर्मलक्षणं मत्स्यपदस्थाने कूर्मपदप्रयोगे सति ।  
 मधुपिङ्गलवर्णश्च चतुर्बाह्वायुर्धैर्युतम् ।  
 नराङ्गं शूकरास्यं च मनाक्पीनं सुभीषणम् ॥  
 श्रीवामकूर्परस्था तु धरानन्तौ पदानुगौ ।  
 एतद्रूपधरं देवं वराहं भुक्तिमुक्तिदम् ॥  
 ज्वलदग्निसमाकारं सिंहवक्त्रं नराङ्गकम् ।  
 दंष्ट्राकरालवदनं ललज्जिह्वं सुभीषणम् ॥  
 वृत्ताक्षं जटिलं क्रुद्धं आलीढं पीनवत्तसम् ।  
 अभेद्यतीव्रनखरं वामोरूकृतदानवं ॥  
 तद्वत्तोदारयन्तं च कराभ्यां नखैर्भृशं ।

गदाचक्रधरं द्वाभ्यां नरसिंहं जगत्प्रभुम् ॥  
 कुण्डोच्छत्रधरोद्दिद्योर्वा मनः परिकीर्तितः ।  
 क्षत्रान्तकरणं घोरमुद्वहन् परशुं करे ॥  
 जामदग्न्याः प्रकर्त्तव्यो रामो रोषारुणेक्षणः ।  
 युवा प्रसन्नवदनः सिंहस्कन्धो महाबलः ॥  
 आजानुवाहुः कर्त्तव्यो रामो बाणधनुर्धरः ।  
 शङ्खचक्रधरः कार्य्यो नीलोत्पलदलच्छविः ॥  
 कृष्णो दीर्घद्विबाहुश्च सर्वदैत्यक्षयङ्करः ।  
 काषायवस्त्रसंवीतः स्कन्धसंसक्तचौवरः ॥  
 पद्मासनस्थो द्विभुजो ध्यायी\* बुद्धः प्रकीर्तितः ।  
 खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो हयारूढो महाबलः ॥  
 स्नेहोच्छेदकरः कल्की द्विभुजः परिकीर्तित इति ।  
 तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता ॥

गौरीलक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डपुराणे ।

ब्रह्माण्याद्याः सप्तमातरः ।

तासाञ्च, लक्षणमुक्तं लक्षणसंग्रहे ।  
 गौरी चतुर्मुखी वीरा अक्षमाला सुचान्विता ।  
 कुण्डाज्यपात्रिणी वामे ब्रह्माणी हंससंस्थिता ॥  
 गौरी, गौरवर्णा ब्रह्माणीविशेषणमेतत् ।  
 त्रिनेत्रा शूलहस्ता च जटाखण्डिन्दुमण्डिता ।  
 कपालमालिनी शुक्ला रुद्राणी वृषसंस्थिता ॥  
 रक्ता शक्तिधरा देवी रक्तमाल्याम्बरान्विता ।

शिखिपृष्ठसमारूढा कौमारौ स्कन्दरूपिणी ॥  
 शङ्ख-चक्र-गदा-शार्ङ्ग-खड्गहस्ता च तार्चगा ।  
 श्यामा चतुर्भुजा देवो वैष्णवी वनमालिनी ॥  
 कृष्णा पीनोदरा क्रूरा शूकरास्यानुकारिणी ।  
 सवस्ता यौवनोद्भिन्ना नार्यभरणभूषिता ॥  
 वाराही महिषस्था तु मदिरा दण्डधारिणी ।  
 खड्ग-खेटकसंयुक्ता अथवापि चतुर्भुजा ॥  
 सहस्राक्षा गजारूढा हेमाभा वज्रधारिणी ।  
 इन्द्राणी सर्वसिद्धार्था सर्वाभरणभूषिता ॥  
 गर्त्ताक्षी क्षीणदेहा तु क्षामकुक्षिभयङ्करौ ।  
 विवृतास्या च दंष्ट्रोऽग्रा शिवे वा कौशिके स्थिता ॥  
 लेलिहाना विमुक्ताक्षी ज्वलत्केशाहिमण्डिता ।  
 ह्रीपिचर्माश्वरा क्रुद्धा चामुण्डा मुण्डमालिनी ॥  
 जटिला वर्तुला चक्षुः चतुर्बाहुषु बिभ्रती ।  
 कपालकर्त्तरी याम्ये पाशं शूलञ्च वामत इति ॥  
 वस्त्रकलक्षणमुक्तां ब्रह्माण्डदाने\* ।  
 चतुर्थे द्वादशादित्या वेदाश्चत्वार एव च ।  
 पञ्चमे पञ्चभूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु ॥  
 लोकपालाष्टकं षष्ठे दिङ्मातङ्गास्तथैव च ।  
 सप्तमेऽस्त्राणि सर्वाणि मङ्गल्यानि च कारयेत् ।  
 अन्तरान्तरतो देवान् विन्यसेदष्टमे पुनः ॥

\* पुराणे इति कचित् पाठः ।

आदित्य-लोकपालादि-गजानां, लक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डदाने ।

वेदस्वरूपाणि, महाभूतघटदाने वक्ष्यन्ते ।

पञ्चभूतानि, पृथिव्यादीनि ।

तल्लक्षणमुक्तं विष्णुधर्मीक्षरे ।

शुभवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता ।

चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चन्द्रांशुसदृशास्वरा ॥

रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमौषधसंयुतम् ।

पद्मं करे च कर्त्तव्यं भुवो यादवनन्दन ॥

दिग्गजानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा ।

सर्वौषधियुता देवी शुक्लवर्णा ततः स्मृता ॥

अपां रूपमुक्तं, स्कन्दपुराणे ।

तस्य ध्यानवतः पूर्वमापः प्रत्यक्षतां ययुः ।

स्त्रीरूपाः शुभवर्णाश्च द्विभुजाः श्वेतवाससः ।

दधानाः पाशकलशौ करयोर्मकरासना ॥

तेजस्वग्निः, तस्य रूपमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

वायोश्च, आकाशरूपमुक्तं विष्णुधर्मीक्षरे ।

नीलीत्पलाभं गगनन्तद्वर्णास्वरधारि च ।

चन्द्रार्कहस्तं कर्त्तव्यं द्विभुजं सौम्यदर्शनम् ।

द्विरष्टवर्षाकारश्च स्त्रीपुंसव्यञ्जनोज्झितम् ॥

रुद्रलक्षणमुक्तं, विश्वकर्मणा ।

रक्तवर्णा स्त्रिनयना द्विभुजा चन्द्रमौलयः ।

जटिलाश्च प्रकर्त्तव्या रुद्रा वाणधनुर्देरा इति ॥

सप्तमेऽस्ताणि, सर्वाणीति, अत्र सत्यपि सर्वशब्दे षोडशकोष्ठ-

सन्निवेशोपयोगित्वादष्टावस्त्राणि मङ्गल्यानि चाष्टाविलेतावतामेव  
परिग्रहो न्यायः ।

अस्त्राण्युक्तानि, गरुडपुराणे,

खड्ग-शूल-गदा-शक्ति-कुन्ता-डुग-धनुंषि च ।

स्वधितिश्वेति शस्त्राणि तेषु चापं प्रशस्यत इति ॥

मङ्गल्याख्याह पराशरः ।

दक्षिणावर्त्तशङ्खश्च रोचना चन्दनन्तथा ।

मुक्ताफलं हिरण्यञ्च च्छत्रञ्चामरमेव च ।

आदर्शश्चेति विज्ञेयं मङ्गल्यं मङ्गलावहम् ॥

अन्तरान्तर इति पूर्वोक्तिः, सर्वैरेव सम्बध्यते अन्तराणाम-  
न्तरो मध्यदेश इत्यर्थः अष्टमावरणे तु पूर्वोक्तान् ब्रह्मादीन् षोड-  
शदेवान् विन्यसेदिति दानविवेककारः अभीष्ट देवान्विन्यसेदिति  
केचित् एते च देवताविशेषा विश्वचक्रनिर्माणार्थमवकृतस्यैव  
सुवर्णस्य मध्यतश्चक्रारूढा निष्पादनीयाः न पृथक् सुवर्णेन तथा-  
विधेयैव चक्रस्य कार्यतयोपदेशात् ।

तुलापुरुषवच्छेषं समन्तात्परिकल्पयेत् ।

ऋत्विज्जण्डपसम्भार-भूषणाच्छादनादिकम् ॥

विश्वचक्रं ततः कुर्यात् कृष्णाजिनतिलोपरि ।

तथाष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान् ॥

पूर्णकुम्भाष्टकञ्चैव वस्त्राणि विविधानि च ।

माल्येक्षुफलरत्नानि वितानं वापि कारयेत् ॥

अवादिशब्देन, हविः-याज्ञ-शिवादिपूजा-

ब्राह्मणवाचनाधि-वासनादीनि संगृह्यन्ते ।

भविष्योत्तरे ।

अधिवास्य ततश्चक्रं पश्चाद्गोमं समाचरेत् ।  
 चातुश्ररणिकासूत्रब्राह्मणाश्चतुरोऽष्ट वा ॥  
 होमं कुर्यात्तात्मानो वस्त्राभरणभूषिताः ।  
 होमद्रव्यसमोपेताः सुक्स्त्रुवैस्ताम्रभाजनैः ॥  
 चक्रप्रतिष्ठितानान्तु सुराणां होम इष्यते ।  
 तल्लिङ्गैर्जुहुयान्मन्त्रैः सर्वोपद्रवशान्तये ॥

मत्स्यपुराणे ।

ततोमङ्गलशब्देन स्नातः शुक्ताम्बरो गृही ।  
 होमाधिवासनान्तेषु गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥  
 द्रममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वा तु प्रदक्षिणम् ।  
 नमो विश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः ॥  
 परमानन्दरूपौ त्वं पाहि संसारकर्दमात् ।  
 तेजोमयमिदं यस्मात् सदा पश्यन्ति योगिनः ॥  
 हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम् ।  
 वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये च माधवः ॥  
 अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह ।  
 विश्वचक्रमिदं यस्मात् सर्वपापहरं परम् ॥  
 आयुश्चाधिवासस्य भवादुद्धर मामतः ।  
 इत्यामन्त्र्य च योदयात् विश्वचक्रं विमत्सरः ॥  
 त्रिमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ।

वैकुण्ठलोकसामाद्य चतुर्बाहुः सनातनः ॥

सेव्यते ऽप्सरसां सङ्घैस्त्रिष्टेत् कल्पशतत्रयं ।

अत्रापि पूर्ववद्दानवाक्यमभिधाय-

यथाशक्ति सुवर्णदक्षिणासहितंजल-

पूर्णमाचार्यादिभ्यः सम्प्रदानं प्रतिपादनं तदनुज्ञयान्येभ्योपि  
दानम् दीनानाथतर्पणम् स्वल्पेत्वेकाग्निविधानमृत्विगाचार्याणां  
विभागव्यवस्था चेति सर्व्वं प्रकृतिवदनुष्ठेयं, ततः पुण्याहवाचन-  
देवतापूजनविसर्जनानि कुर्यात् ।

प्रणमेद्वा स्वयं कृत्वा विश्वचक्रं दिने दिने ॥

तस्यायुर्वर्द्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुला भवेत् ।

इति सकल जगत्सुराधिवासम्

वितरति यस्तपनीयषोडशारम् ।

हरिभुवनमुपागतः ससिद्धै

श्चिरमधिगम्य नमस्यते शिरोभिः ॥

असुदर्शनतां प्रयाति शत्रो

र्मदनसुदर्शताञ्च कामिनीनां ।

ससुदर्शनकेशवानुरूपः

कनकसुदर्शनदानदग्धपापः ॥

कृतगुरुदुरितानिषोडशार

प्रवरसुदर्शनदानता निरस्य ।

ब्रजति च समुरारिधाम भित्वा

भवमतित्य भुवने भत्वान भूयः ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तो विश्वचक्रदानविधिः ।



अथ कल्पलताभिधानं त्रयोदशं महादानमुपवर्ण्यते ।

मत्स्यउवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

महाकल्पलता नाम महापातकनाशनम् ।

पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

ऋत्विग्मण्डपसन्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।

तुलापुरुषवत् कुर्यात् लोकेशावाहनादिकं ॥

आदिशद्द्व्याख्यानं पूर्ववत् ।

चामीकरमयीः कुर्यात् दशकल्पलताः शुभाः ।

नानापुष्पफलोपिता नानांशुकविभूषिता ॥

विद्याधरसुपर्णानां मिथुनैरुपशोभिताः ।

हरोनादित्सुभिः\* सिद्धैः फलानिच विहङ्गमैः ॥

चामीकरं, सुवर्णं कल्पलतास्तुलाकारा विधेयाः,

नानाफलानि, पुंस्त्रीगोगजवाजिप्रभृतीनि, स्वरूपपुष्पफलानां  
तुलनार्थत्वेनैवोपपत्तेः ।

‘अंशुकानि, वस्त्राणि । सुपर्णाः, पक्षिणः ।

एवं दशकल्पलतां विधाय वेदिकयाम् लिखितचक्रस्योपरि  
मध्ये द्वयं पूर्वादिदिक्षु चाष्टौ स्थापयेत् ।

लोकपालानुमारिण्यः कर्तव्यास्तासु देवताः ।

ब्राह्मीमनन्तशक्तिञ्च लवणस्योपरि न्यसेत् ।

अधस्ताच्च तयोर्मध्ये पद्मशङ्करे शुभे ॥

लोकपालानुसारिण्यो देवता, लोकपालशक्तय इत्यर्थः ।

अधस्ताच्च तयोरिति, मध्यस्थापितयोः कल्पलतयोरधस्तात्  
पद्माकारां ब्राह्मीं, शङ्खधरामनन्तशक्तिञ्च स्थापयेत् ।

लवणादिपरिमाणञ्च, परिमाणविशेषा-

निर्देशात् पुरुषेच्छया नियम्यते । लवणं स्तूपयोर्न्यस्येदिति  
क्वचित्पाठः तत्र स्तूपो राशिः द्विवचनं राशिद्वयापेक्षयेति ।

इभासनस्थातु गुडे पूर्वतः कुलिशायुधा ।

रजन्यजस्थिताग्नेयीस्तुहीपाणिरथानले ॥

पाम्यामहिषमारुढाग्निदीपिनी तन्दुलोपरि ।

घृतेन नैऋती स्थाप्या सखन्ना दक्षिणापरे ॥

वारुणे वारुणी क्षीरे भूषस्था नागपाशिनी ।

पताकिनी च वायव्ये मृगस्था शर्करोपरि ॥

सौम्या निलेषु संस्थाप्या शङ्खिनी निधिसंस्थिता ।

माहेश्वरी वृषगता त्वीशपाणिः त्रिशूलिनी ॥

इभो-गजः सच चतुर्दन्तीविधेयः, कुलिशं, वज्रं, रजन्यजस्थि-  
तेति, रजनी, हरिद्रा, अजः, छागः, हरिद्रोपरिस्थापिता छाग-  
वाहनेत्यर्थः अनले, आग्नेयदिग्भागे, दक्षिणापरे नैऋतदिग्भागे  
नैऋतीप्रेतवाहनेत्यवधेयं भूषस्थामकरवाहनेत्यर्थः ।

निधिसंस्थितेतिनिधिरूपं कलशानुकारि ।

मौलिन्योवरदास्तद्वत् कर्तव्या वालिकान्विताः ।

शक्त्या पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रात् प्रकल्पयेत् ॥

सर्वामासुपरिष्ठाञ्च पञ्चवर्णं वितानकम् ।

धेनवो दशकुम्भाश्च वस्त्रयुग्मानि चैव हि ॥

मौलिन्यो, मुकुटधराः, वरदा इति, यथोक्तायुधधारिणः करा-  
दितरेण करेण वरदमुद्रान्विता ईत्यर्थः । 'वालिका, कर्णभूषणं  
बालकान्विता इति कचित्पाठः तदा वामोत्सङ्गस्थितवालका इति  
व्याख्या एतच्च पञ्चपलादिपरिमितकल्पलताकरणीपक्षमसुवर्णे-  
नैव विभज्य सर्वं कर्तव्यं, पृथक्द्रव्येण कर्तव्यानुपदेशात् ।

मध्यमहे तु गुरवे ऋत्विग्भ्योन्यास्तथैव च ।

ततो मङ्गलग्नेन स्नातः शुक्ताम्बरो बुधः ।

त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥

तत इति होमाधिवासन पुण्याहवाचनादि पूर्वोक्त कर्मकला-  
पानन्तर्यमुच्यते, स्नात इति कुण्डसमीपवर्त्तिकलग्नेन सर्वोषधि-  
जलेन ऋत्विग्भिः स्नापितः, गृहीतकुसुमाञ्जलिरित्यपि त्रयं ।

अथ मन्त्रः ।

नमोनमः पापविनाशिनीभ्यो

ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालनीभ्यः ।

आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यो

दिग्भ्यस्तथाकल्पलतावधूभ्यः ॥

अथ पूर्ववत् प्रयोगमुच्चार्य मध्यमे हे देवतादिसहिते कल्पलते  
गुरवे प्रतिपाद्य शेषा ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत् ।

तदनुज्ञया अन्येभ्योपि दानं दीना नाथ पूरणं, स्वल्पेत्वेकाग्नि  
विधानं चेति पूर्वोक्तमनुसन्धेयं । ततः पुण्याहवाचनदेवतापूजन-  
विसर्जनानि कुर्यात् ।

इति सकलदिग्गङ्गनाप्रदानं

भवभय सृदनकारि यः करोति ।

अभिमतफलदे स नाकलोके  
वसति पितामहवत्सराणि त्रिंशत् ॥  
अभिमतफलदे, इष्टफलदायिनि ।

पितृशतमवतारयेद्भवाब्धेः  
सच दुरितौघविनाशशुद्धदेहः ।  
सुरपतिवनितासहस्रसंख्यैः  
परिवृतमम्बुजसंसदाभिवन्धः ॥  
इति विधानमिदं सदिगङ्गना-  
कनककल्पलताविनिवेदने ।  
पठति यः स्मरतीह तदीक्षते  
स पदमेति पुरन्दरमेवितम् ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तः कल्पलतादानविधिः ।  
अथ सप्तसागरसंज्ञं चतुर्दशं महादानमाख्यायते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमदुत्तमं ।  
सप्तसागरकं नाम महापातकनाशनं ।  
पुण्यं दिनमथासाय कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥  
तुलापुरुषवत् कुर्यात् लोकेशावाहनं वधः ।  
ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकं ॥  
आदिशब्देन, वृद्धिश्चाङ्ग-पुण्याहवाचनादि ।  
कारयेत् सप्तकुण्डानि काङ्हनानि विचक्षणः ;  
प्रादेशमात्राणि तथारत्निमात्राणि वा पुनः ॥

कुर्यात्सप्तपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः ।

संस्थाप्यानिच सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि ॥

कुण्डानि, भाण्डानि, प्रादेशादिपरिमाणं, तिर्थगूर्ध्वपरिज्ञेयम् ।

एकविंशत्यङ्गुष्ठपर्वपरिमितोरत्निः तदर्धं प्रादेशः, तिला,  
द्रीणपरिमाणाः सौवर्णसंप्रदेयाश्रयाणां कृष्णाजिनसम्बन्धिनां  
तेषां तथाव्याप्तिदर्शनात् ।

प्रथमं पूरयेत् कुण्डं लवणेन विचक्षणः ।

द्वितीयं पयसा तद्वत्तृतीयं सर्पिषा पुनः ॥

चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चममेव च ।

षष्ठं शर्करया तद्वत्सप्तमं तीर्थवारिणा ॥

स्थापयेत्तवणस्यान्ते ब्रह्माणं काञ्चनं शुभं ।

केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरं ॥

भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये सुराधिपं ।

शर्करायां न्यसेत्क्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीं ॥

सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च समन्ततः ।

ब्रह्मादिप्रतिमालक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डदाने सर्वरत्नानि सर्व-  
धान्यानिच परिभाषायां ।

तुलापुरुषवक्त्रेणमत्रापि परिकल्पयेत् ।

ततो वारुणहामान्ते स्नापितो वेदपुङ्गवेः ।

त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदाहरेत् ॥

शेषशब्देन पुण्याहवाचनमाचार्यादिभ्यो जलपूर्वीकं दानं ।  
तदनुज्ञाचान्येभ्योऽपि दानं दोनानाथतर्पणं, स्वल्पेष्वेकाग्नि-  
विधानमित्याद्यनुसन्धेयं । अयं विशेषः, द्वितीयदिवसे तुलापुरु-

षोक्तकर्मशेषसमाप्तौ पूर्णाहुतेः पूर्वमाज्यतिलैस्तुलिङ्गमन्त्रेण सहस्र  
संख्योवाक्यहोमः कर्त्तव्यः ।

नमोवः सर्वसिन्धूनामाधारिभ्यः सनातनः ।

जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्योनमीनमः ॥

क्षीरोदकाज्यदधिमाधवलावणे क्षु-

सारामृतेन भुवनत्रयजीवसङ्घान् ।

आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्त-

स्तस्मान्ममाप्यघविनाशमलंविदध्वं ॥

यस्मात् समस्तभुवनेषु भवन्त एव

तीर्थामरासुरसुबद्धमणिप्रतानं ।

पापक्षयाम्बरविलेपनभूषणाय

लोकस्य विभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः ।

ततो, यथा शक्तिदक्षिणासहितसंप्रदानान्ते पूर्ववत् पुण्या-  
हवाचन-देवतापूजनविसर्जनानि कुर्यात् ।

इति ददति रसामरसंयुतान्

मुचिरविस्मयवानिह सागरान् ।

अमलकाञ्चनवर्णमयानसौ

पदमुपैति हरेरमरावृतः ॥

सकलपापविघातविराजितः

पितृपितामहपुत्रकलत्रकं ।

नरकलोकसमाकुलमप्यलं

ऋगिति साऽर्पयते शिवमन्दिरं ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तः सप्तसागरदानविधिः ।

अथ रत्नधेनुसमाख्यं पञ्चदशमहादानं प्रतिपाद्यते ।

मत्स्यपुराणे मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

रत्नधेनु इति ख्यातं गोलोकफलद्वन्द्वणाम् ॥

पुण्यां तिथिमयासाद्य तुलापुरुषदानवत् ।

लोकेशावाहनं कृत्वा ततोधेनुं प्रकल्पयेत् ॥

भूमौ क्षणाजिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयुतम् ।

धेनुरत्नमयीं कुर्यात् संकल्प्य विधिपूर्वकम् ॥

लोकेशावाहनमित्युपलक्षणं

अत्र हि देश-काल-वृद्धियाङ्ग-शिवादिपूजा-ब्राह्मणवाचन-  
गुरुऋत्विग्वरण-मधुपर्कदान-कुण्डमण्डप-वेदिका-चक्रलेखन-वि-  
तान-तीरण-पताकादिकं मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषविहितं संगृ-  
ह्यते धेनुं प्रकल्पयेदिति लवणाद्रोणोपरि प्राञ्चुखीमुदक्यादा-  
रेखाभिः सवत्साङ्गवाक्यतिम् रचयेदित्यर्थः ।

स्थापयेत्पद्मरागणामेकाशीतिं मुखे वृधः ।

पुष्परागशतन्तद्वह्नीणायां परिकल्पयेत् ।

ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृग्गोः ॥

घोणायां, नासिकाग्रभागे, हेमतिलकादिषु, सारतः, परिमाण-  
तय फलविशेषे इति न्यायात् ज्ञायते, यथाशक्त्यनुष्ठानं मुक्ताफल-  
शतत्रैतद्वये विभज्य स्थापनौयम् ।

भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्थिते ।

काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरो वज्रशतात्मकम् ॥

शृङ्गाणीति, वत्सशृङ्गापेक्षया बहुवचनम्

ग्रीवायां नेत्रपट्टकं गोमेदकशतात्मकम् ।

इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्यशतपार्श्वके ॥

स्फटिकैरुदरन्तहस्तौ गन्धिकशतात्कटिम् ।

खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम् ॥

स्फटिकैरित्यत्र, साहचर्यात् तद्वदितिवचनाच्छतसंख्यैरित्यव-  
धेयं, सौगन्धिकं, माणिक्यविशेषः, मुक्ताफलानामपि शतसंख्यत्वम-  
वधेयं ।

सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दनम् ।

कुङ्कुमानि च रीमाणि रौप्यां नाभिञ्च कारयेत् ॥

गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत् ।

तथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत्सर्व्वसन्धिषु ॥

अन्यानि, माणिक्यादीनि यथाशक्ति यथालाभं स्थापयेत् ।

कुर्व्यात्शर्करया जिह्वां गोमयञ्च गुडात्मकम् ।

गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धं स्वरूपतः ॥

पुच्छाग्रे चामरन्दद्यात् समीपे ताम्रदीहनम् ।

कुण्डलानि च हैमानि भूषणानि च शक्तितः ।

कारयेदेवमेवन्तु चतुर्थांशेन वत्सकं ॥

एव मेवमिति, एतैरेव धेनूक्तैरत्नादिद्रव्यैरित्यर्थः ।

तथासर्वाणि धान्यानि पादाश्चेक्षुमयाः स्मृताः ।

नानाफलानि सर्वाणि पञ्चवर्णवितानकम् ॥

एवं विरचनां कृत्वा तद्वद्गोमाधिवासनम् ॥

ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा धेनुमामन्त्रयेद्बधः ।

गुडधेनुवदामन्त्रा इदञ्चोदाहरेत्ततः ॥



तद्वदिति, मत्स्यपुराणोक्ततुलापुरुषदानवदित्यर्थः ।

सर्वौषधिसंज्ञानादिकमपि तद्वदेव ज्ञेयं दक्षिणां दत्त्वेति क्रमो-  
ऽवाविवक्षितः, दक्षिणाचात्र यथाशक्ति सुवर्णं, नृपकर्तृके तु दाने  
ग्रामरत्नादयः, इति गुडधेनुवत् यालक्ष्मीरित्यादिमन्त्रैः ।

त्वां सर्व्वदेवगणधाम यतः पठन्ति

रुद्रेन्द्रविष्णुकमलासनवासुदेवाः ।

तस्मात् समस्तभुवनत्रयदेवयुक्ता

आम्नाहि देवि भवसागरपीडमानम् ॥

आमन्त्र्य वेत्य मभितः परिवृत्य भक्त्या

दद्यात् द्विजाय गुरवे जलपूर्व्वकन्तां ।

यः पुण्यमाप्य दिनमत्र कृतोपवासः

पापैर्विमुक्ततनुरेति पदं मुरारेः ॥

परिवृत्य, प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिरित्यपि ज्ञेयं ।  
कृतोपवासस्त्वमधिवासनदिने, अशक्तौ तु नक्तमित्युक्तं गुरवे द-  
द्यादित्येकाग्निपक्षविषयः । अनेकाग्निपक्षेतु तुलापुरुषवद्वा-  
वस्था दानानन्तरं पूर्व्ववत्पुण्याहवाचन-देवतापूजन-विसर्जनानि  
कुर्यात् ।

इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानम्

वितरति स विमानं, प्राप्य देदीप्यमानम् ।

सकलकलषमुक्तो ब्रह्मभिः पुत्रपौत्रैः

सहमदनमुरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तोरत्नधेनुदानविधिः ।

अथ महाभूतघटशब्दितं षोडशं महादानमिह निरूप्यते ।

मत्स्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम् ।

महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम् ॥

पुण्यान्तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

ऋत्विग्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।

तुलापुरुषवत् कुर्यात् लोकेशावाहनादिकम् ॥

आदिशब्दस्तु, पूर्ववदेव व्याख्येयः ।

कारयेत् काञ्चनं कुम्भं महारत्नाचितं बुधः ।

प्रादेशादङ्गुलशतं यावत् कुर्यात् प्रमाणतः ॥

क्षीराज्यपूरितं तद्वत्कल्पवृक्षसमन्वितम् ।

क्षीरघृते गव्ये, समपरिमाणे च स्थापनीये कल्पवृक्षलक्षणं  
पञ्चशाखत्वादिकल्पतरुदाने द्रष्टव्यम् ।

पद्मासनगतांस्तव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ।

वराहेणोद्धृतां तद्वत् कुर्यात् पृथ्वीं सपद्मजाम् ॥

वरुणञ्चासनगतं काञ्चनं मकरोपरि ।

हुताशनं मेषगतं वायुद्धृतमृगासनम् ॥

तथाकाशाधिपं कुर्यात् मूषकस्थं विनायकम् ।

विन्ध्यसेव्वटमध्ये तान् वेदपञ्चकसंयुतान् ॥

ब्रह्मादिलक्षणं, वरुणादिलक्षणञ्च मत्स्यपुराणीकब्रह्माण्ड-  
दानविहितम् वेदितव्यं, वराहलक्षणं तु पद्मपुराणीकब्रह्माण्डे ।

विनायकस्वरूपं हस्तिरथ इति ।

ऋग्वेदस्याक्षसूत्रन्तु यजुर्वेदस्य पद्मजं ।

सामवेदस्य वीणा स्याद्वीणां दक्षिणतोन्त्यसेत् ॥

अथर्वदेदस्य पुनः सुक् सुवौ कमलं करे ।  
 पुराणदेदोवरदः साक्षसूतकमण्डलुः ॥  
 परितः सर्वधान्यानि चामरासनदर्पणम् ।  
 पादुकोपानहच्छत्रदीपिकाभूषणानि च ॥  
 शय्या च जलकुम्भाश्च पञ्चवर्णवितानकम् ।  
 स्नात्वाधिवासनान्ते तु मन्दमेतमुदीरयेत् ॥

पादुका, काष्ठकृता, जलकुम्भाः,

षोडश, प्रकृतौ तथादर्शनात् ।

अधिवासनान्ते स्नात्वेति पूर्वस्मिन् दिने अधिवासनं विधाय  
 द्वितीयदिवसे पुण्याहवाचनादिपूर्णाहुतिपर्यन्तं कर्मशेषं समाप्य  
 सर्वौषधिजलैः पूर्ववद्वृत्तिगम्भिः स्नापितो दजमानस्त्रिःप्रदक्षिण-  
 मावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः' वक्ष्यमाणं मन्त्रमुदाहरेत् ।

नमो वः सर्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरे ।

महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम ॥

यस्मान्न किञ्चिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम् ।

ब्रह्माण्डे सर्वभूतेषु तस्मात् शीरक्षयास्तु मे ॥

इत्युच्चार्य महाभूतघटं यो विनिवेदयेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिं ॥

विमानेनाकैवर्णेन पितृवन्समन्वितः ।

स्तूयमानेऽमरस्त्रीभिः पदमभ्येति वैष्णवम् ॥

अत्र च, जलपूर्व' ब्राह्मणेभ्यः प्रदेये

प्रतिपादिते तुलापुरुषवद्विभागव्यवस्था तदनुज्ञयाचान्देभ्योऽपि  
 दानं दीनानाघपूरणं च कर्त्तव्यं दक्षिणस्य कर्मणोनिष्कलत्वात् ।

यथाशक्ति गुर्वादिभ्यो भूमिसुवर्णादिकं दक्षिणेति स्वल्पेत्वेकाग्नि-  
विधानमप्यवगन्तव्यं तदनन्तरं पूर्ववत्पुण्याहवाचन-देवतापूजन-  
विसर्जनानि ।

षोडशैतानि यः कुर्यात् महादानानि मानवः ।

न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते ॥

इति पठति य इत्थं वासुदेवस्य पार्श्वे

ससुतपितृकलत्रः संशृणोतीह सम्यक् ।

पुररिपुभवने वा मन्दिरे वा कलन्मयी-

श्चिरममरवधूभिर्मोदते सोऽपि कल्पम् ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तो महाभूतघटदानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधी-

श्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते

चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे

षोडशमहादानविधिः ।

## अथ षष्ठाध्यायः ।

अथ पर्वतदानविधिः ।

अयं लोकालोकः परमहिमवान् शश्वदुदयः  
सुपार्श्वस्थायिश्रीः कलितविपुलाभोगसुभगः ।  
इतिप्रत्यक्षेऽपि स्फुरदखिलशैलेन्द्रविभवः  
परं हेमाद्रित्वं प्रकटयति विश्रान्तविवुधः ॥  
धान्यशैलादिदानानामिह हेमाद्रिसूरिणा ।  
विचित्रविधिविस्तारः प्रस्तावः क्रियतेऽधुना ॥  
तत्र धान्यपर्वतदानं तावदुच्यते तदेव पद्मपुराणे ।

भीष्मउवाच ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम् ।  
यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम् ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा मुनिसत्तम ।  
यत् प्रसादान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान् ॥  
पुराणेषु च देवेषु यज्ञेष्वायतनेषु च ।

न तत् फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्रुते ॥

पुराणेषु वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च, कृतेषु न तत् फलमिति  
सम्बन्धः ।

तस्माद्विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुत्तमम् ।

प्रथमो धान्यशैलः स्यात् द्वितीयो लवणाचलः ॥

गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः ।

पञ्चमस्तिलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पासपर्वतः ॥

सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः ।

राजतो नवमस्तद्विंशमः शर्कराचलः ॥

वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः ।

अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये ॥

शुक्लपक्षे तृतीयायां उपरागे शशिक्षये ।

विवाहीक्षवयज्ञे वा द्वादश्यामथवा पुनः ॥

शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे च विधानतः ।

धान्यशैलादयो देया यथाश्रद्धं विधानतः ॥

तीर्थे वायतने वापि गोष्ठे वापि भवाङ्गणे ।

मण्डपं कारयेद्भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम् ॥

प्रागुदक्प्रवर्णं तद्वत्प्राङ्मुखो वा विधानतः ।

मण्डपलक्षणान्तु, परिभाषायां प्रतिपादितं ।

अत्र चायं विधानक्रमः दानदिवसात् पूर्वदुः पूर्वाह्ने कृत  
स्नातादिक्रियो यजमानो अमुकपर्वतदानमहं शतः करिष्ये इति-  
कृतसंकल्पो वृद्धिश्राद्धमाभ्युदयिकं विधाय पूर्ववत् पुण्याहवाचनं  
कुर्यात्, तदनन्तरं तु अद्य अमुकस्मिन् देशे अमुकस्मिन् काले

अमुकपर्वतदानेनाहं यक्ष्ये तत्र तदङ्गभूतहोमादिके अमुकशर्माणं  
अमुकवेदाध्यायिनं ऋत्विजं त्वामहं वृणे इति ।

पुराणवेदविदाञ्चतुर्णामृत्विजावरणं, तथा ओम् अद्य  
अमुकस्मिन् देशे अमुकस्मिन् काले अमुकपर्वतदानेनाहं यक्ष्ये  
तत्र तदङ्गभूतानि कर्माणि कर्तुं कारयितुं च अमुकसर्गाच्च  
अमुकशर्माणं अमुकवेदाध्यायिनं गुरुं त्वामहं वृणे इत्याचार्य्यं  
वृणुयात् वृतोस्मीति सर्वत्र प्रतिवचनं तत्र तावत् मधुपर्केणार्चये-  
दितिसर्वपर्वतदानसाधारणोऽयं विधिः ।

गोमयेनोपलिप्तायां भूमावास्तीर्य्य वै कुशान् ।

तन्मध्ये पर्वतं कुर्यात् विष्कम्भपर्वतान्वितम् ॥

धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद्गिरिरिहोत्तमः ।

मध्यमः पञ्चशतिकः कनिष्ठः स्यात् त्रिभिः शतैः ॥

द्रोणलक्षणमुक्तं, परिभाषायां ।

प्रमाणस्थकरचरणस्य पुंसो द्वादशभिः प्रसृतिभिः कुडवी  
भवति अनेन कुडवेन चतुर्गुणोत्तरं प्रस्थाढकद्रोणा भवन्ति अतः  
चतुर्द्रोणस्था कुडवैः णो भवतीति कल्पतरुणा व्याख्यातं ।

मेरुर्महात्रीहिमयस्तु मध्ये

सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।

पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्ते

याम्येन गोमेदकपुष्परङ्गैः ॥

पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः

सौम्येन वैदूर्य्यसरोजरङ्गैः ।

श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवाल  
 लतान्वितः शुक्तिशिलातलः स्यात् ॥  
 ब्रह्माय विष्णुर्भगवान् सुरारि  
 दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मयः स्यात् ।  
 मूर्ध्वव्यवस्था गतमत्सरेण  
 कार्याः सुवर्णेन तथा द्विजौघाः ॥  
 चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि-  
 नितम्बभागेष्वपि राजतः स्यात् ।  
 आर्द्रेक्षुवंशावृतकन्दरस्तु  
 घृतोदकः प्रश्रवणश्च दिक्षु ॥  
 शुक्लाम्बराख्यम्बुधरावली स्यात्  
 पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन ।  
 वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि  
 रक्तानि चैवोत्तरतो घनाली ॥  
 रौप्यान्महेन्द्रप्रमुखानथाष्टौ  
 संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण ।  
 नानाफलाली च समन्ततः स्यात्  
 मनोरमं माख्यविलेपनं च ॥  
 वितानकं चोपरि पञ्चवर्णं  
 मन्तानपुष्पाभरणं सितञ्च ॥

मेरुरित्यादि, महाव्रीहयो, राजान्नशालयः, वृक्षत्रयसंयुत,  
 इति दक्षिणे मन्दारः, उत्तरे पारिजातो, मध्ये कल्पतरुरिति वृक्ष-  
 त्रयं, तथा पूर्वतो हरिचन्दनं, पश्चिमे सन्तान इति तरुद्वयं च



कुर्यात्, एते सर्वपर्वतेषु कर्त्तव्या इति शर्कराचले वक्ष्यमाणत्वात्  
सर्वेषाञ्च पञ्चशाखत्वमवधेयमिति ।

वज्रं, होरकं । गारुत्मतं, मरकतं । सरोजरागः, पद्मरागः ।  
मुक्ताफलादीनि च यथादिशं वक्ष्यमाणराजतशृङ्गेषु निवेशनी-  
यानि । पुरारिः, महेश्वरः ।

ब्रह्मादिलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

‘मूर्ध्ववस्था’ उपरिदेशस्थिता ।

गतमत्सरेण, वित्तशाठ्यरहितेन ।

द्विजौघाः, पक्षिसमूहाः ।

दिवीशा इति क्वचित्पाठः ।

तत्र आदित्यावसवोरुद्रादिवीशाः तेषु, वस्त्रादिलक्षणमुक्तं  
ब्रह्माण्डदाने, रुद्रलक्षणं विश्वचक्रे, इक्षुरेव वंशः, घृतमेवोदकं,  
वस्त्राण्येव मेघसमूहाः कर्कुराणि, चित्राणि ।

लोकपाललक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

इत्थं निवेश्यामरशैलमग्रं

मेरोश्च विष्कम्भगिरीन् क्रमेण ।

तुरीयभागेन चतुर्दिशन्तु

संस्थापयेत् पुष्पविलेपनाट्यान् ॥

पूर्व्वेण मन्दरमनेकफलैश्च युक्तं

युक्तं गणैः कनकभद्रकदम्बचिह्नं ।

कामेन काञ्चनमयेन विराजमान-

माकारयेत् कुसुमवस्तविलेपनाट्यं ॥

क्षीराकृणीदमरसाद्य वनेनचैव

रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानं ।  
 याम्येन गन्धमदनश्च निवेशनीयो  
 गोधूमसञ्चयमयः कलधौतजम्बा ॥  
 हैमेन यक्षपतिना घृतमानसेन  
 वस्त्रैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात् ।  
 पञ्चात्तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्प-  
 सौवर्ण-पिप्पल-हिरण्मय-हंसयुक्तम् ॥  
 आकारयेद्रजतपुष्पवनेन तद्व-  
 द्द्वस्त्रन्वितं दधिसितोदरसस्तथाग्रे ।  
 संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण  
 शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सवस्त्रं ॥  
 पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरन्त-  
 माकारयेत्कनकधेनुविराजमानं ।  
 माक्षीकभद्रसरसाच वनेन तद्व-  
 द्रौप्येण भास्करवता च युतं विधाय ॥

इत्थन्निवेश्येत्यादि, एवं मेरुं निवेश्य तच्चतुर्थभागपरिमितेन  
 पृथक्द्रव्येण एकैकं विष्कम्भगिरिं कुर्यात् न तु चतुर्थभागेन  
 चतुरोपीति, तथाच लवणाचले वक्ष्यति चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्व-  
 तान् कारयेत्, पृथगिति, पूर्वेण मन्दरमिति, सन्निधानान्मन्दरो-  
 ऽपि ब्रौहिमय एव, गणैर्युक्तमिति, पुरुषाकृतिगणत्वयान्वित-  
 मित्यर्थः ।

अनेकफलाली युक्तं यवैरिति क्वचित्पाठः ।

तस्य सभूलत्वे यवानुष्ठानमपि कार्यं ।

कनकघटितेन भद्रकदम्बाख्येन वृक्षेण लक्षितं ।

कामलक्षणमाह विश्वकर्मा ।

चाप-वाणधरः कामी रतिप्रेयान् सुमध्यमः ।

अलीढी नन्दनो राजी रूपवान् विश्वमोहक इति ॥

क्षीरपूरितेन, अरुणोदसंज्ञिकेन रूप्यघटितेन सरसा वने-  
नापि रूप्यघटितेन विराजमानमिति सम्बन्धः ।

याम्ये नेत्यादि, गन्धमदनी, गन्धमादनः,

कलधौतजम्बेति, सुवर्णजम्बुवृक्षेण ।

यक्षपतिरूपमुक्तं श्रीप्रश्ने ।

ऋग्वेदमापिङ्गनेत्रञ्च गदिनं पीतविग्रहं ।

पुष्पकस्थन्धनाध्यक्षं ध्यायेत् शिवसखं सदेति ॥

घृतमानसेनेति घृतपूरितेन मानसाभिधानेन राजतेन  
सरसा । पश्चादिति, पश्चिमदेशे दधिपूरितसितोदनाम रजत-  
निर्मितं सर इति, विपुलशैलं, विपुलं नाम पर्वतं माक्षीकभद्रस-  
रसेति, माक्षिकं, मधु मधुपूरितेन रजतमयेन भद्राभिधानेन  
सरसा युतमित्यर्थः ।

अत्र च कामदेवस्य प्रत्यङ्मुखत्वं हंसस्य प्राङ्मुखत्वं कन-  
कधेनोर्दक्षिणामुखत्वं च शर्कराचलस्थितदिग्देशसापेक्ष्यं दैव-  
तेषु सर्वशैलेषु वेदितव्यं, चरमव्यवस्था कुतोपि शास्त्राद्वावस्थिति-  
रिति । एते च कामदेवादयः कदम्बादीनां निजपर्व्वीतवृक्षाणा-  
मधस्तात्कर्त्तव्याः ।

होमैश्चतुर्भिरथवेदपुराणविद्भि-

र्दान्तेरनिन्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ।

पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं

कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च ॥

रात्रौ च जागरमनुद्धतगौततूर्यै-

रावाहनञ्च कथयामि शिलोच्चयानां ॥

पूर्वेणेत्यादि मण्डपस्य पूर्वभागे हस्तमात्रं कुण्डं विधाय तस्य पूर्वोत्तरदिग्विभागे तुलापुरुषोक्तलक्षणं देवतावेदिं कृत्वा तत्र विनायकादिदेवताभ्यः पूर्ववत् पूजां विदध्यात् अनन्तरमृत्विजोऽग्निस्थापनान्ते ग्रहाणां लोकपालानामित्यादिवक्ष्यमाणदेवताभ्यस्तिलिङ्गमन्त्रैस्तिलदिद्रव्येण होमं कुर्युः । सहस्रेत्वय होतव्ये कुर्यात् कुण्डं करात्मकमित्युक्तेरत्र हस्तपरिमितकुण्डोपदेशादाहुतिमहस्रं होतव्यमिति दानविवेककारः ।

अत्र विनायकादयो द्वात्रिंशद्देवाः, द्वादशादित्याः, एकादशरुद्राः, दशलोकपालाः, अष्टौ वसवः, ब्रह्मा-विष्णु-शिव-सूर्याश्चत्वारः काम-धनद-हंस-कामधेनव-श्चत्वारः इत्येवमेकाशीतिसंख्येभ्यो देवेभ्यः ग्रहाणां प्रतिदैवतं त्रयोदशाहुतिहोमे त्रिपञ्चाशदधिकमाहुतिसहस्रं सम्पद्यते अष्टशतन्तु होतव्यमिति ब्रह्माण्डपुराणे वक्ष्यति तिलादीनिचत्वार्थेव । हविर्द्रव्याणि घृताक्तानीत्यवगन्तव्यं समिधः, साधारण्यादुदुम्बरस्य होमानन्तरं पुष्पोपहारानादाय वक्ष्यमाण मन्त्रैर्यथाक्रमं पर्वतानावाहयेत्, तत्र मेरोरावाहनमन्तः ।

त्वं सर्वदेवगणधामनिधेर्विरुद्ध

मस्मद्गृहेष्यमपर्वत नाशयाशु ।

क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमात्रः ।

सम्पूजितः परमभक्तिमता मया हि ॥  
 त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्द्दिवाकरः ।  
 मूर्त्तमूर्त्तपरं बीजमतः पाहि सनातनः ॥  
 यस्मात्त्वं लोकपालानां विश्वमूर्त्तेश मन्दिरम् ।  
 रुद्रादित्यवसूनाञ्च तस्माच्छान्तिं प्रपच्छ मे ॥  
 यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च समस्तथा ।  
 तस्मान्नामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ।  
 एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरञ्चाभिपूजयेत् ॥

अथमन्दरस्य ।

यस्माच्चैतरेण त्वं भद्राश्वेनवर्षेण च ।  
 शोभसे मन्दर क्षिप्रमलं पुष्टिकरो भव ॥

अथ गन्धमादनस्य ।

यस्माच्चूडामणिर्जम्बुद्वीपे त्वं गन्धमादन ।  
 गन्धर्व्ववनग्रीभावानतः कीर्त्तिर्दृढास्तु मे ॥

अथ विपुलपर्व्वस्य ।

यस्मात्त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ।  
 हिरण्मयाश्वत्थशिखस्तस्मात् पुष्टिर्भुवास्तु मे ॥

अथ सुपार्श्वस्य ।

उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात् सावित्रेण वनेन च ।  
 सुपार्श्वराजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे ॥  
 एवमामन्त्र्य तान् सर्व्वान् प्रभाते विमले पुनः ।  
 स्नात्वाथ गुरवे दद्यात् मध्यमं पर्व्वतोत्तमम् ॥

विष्कम्भपर्वतान् दद्याद्विग्नैः क्रमशो नृप ।

गावोदद्याच्चतुर्विंशदथ वा दश पार्थिव ॥

शक्तिः सप्त वाष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमान् ।

एकां वा गुरवे दद्यात् कपिलाञ्च पयस्विनीम् ॥

एवमामन्त्रेति, दानदिनात् पूर्वदिवसे सर्वमिदमामन्त्रणादि विधाय गीतवादित्रादिभिर्निशामतिबाह्य ततः प्रभाते गुरुप्रभृतयो विहितस्नानादिक्रियाः पूर्णाहुतिपर्यन्तं सकलकर्मशेषं समाप्य कुण्डसमीपस्थापितकलशजलेन पूर्ववद्यजमानं स्नापयेयुः ।

यजमानोऽपि शुक्ताम्बरपरिधानः प्रदक्षिणीकृत्य वक्ष्यमाण-  
मन्त्रेण यथाक्रमं पर्वतान् प्रतिपादयेत् ।

तत्र प्रयोगः ।

ओम् अद्य अमुकस्मिन् काले अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्मे  
ब्राह्मणाय एतममुकपर्वतं सोपस्करं अमुकसगोत्रोऽहं अमुकशर्म्मा  
अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे नमः, अमुकसगोत्राय अमुकशर्म्मे  
ब्राह्मणाय एतत् पर्वतदानप्रतिष्ठार्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्र-  
ददे, अत्र च दक्षिणापेक्षायामश्रुतदक्षिणान्तरकल्पनानुपपत्तेर्गा-  
वोदद्यादिति श्रुतमेव दक्षिणात्वेन सम्बध्यते विनापि दक्षिणा  
संशब्दनमस्येव दक्षिणात्वमिति केचित्, सहस्रदक्षिणां कृत्वेत्यादि  
ब्रह्माण्डपुराणे वक्ष्यमाणदक्षिणाग्रहणन्तु युक्तमिति ।

पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः ।

त एव पूजने मन्त्रास्तएवोपस्कराः स्मृताः ॥

ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनाञ्च सर्वशः ।

स्वमन्त्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते ।

उपवासो भवेन्नित्यमशक्तानक्तमिष्यते ॥

सर्वत्राक्षरलवणमश्रीयादिति वक्ष्यमाणत्वादक्षरलवणं नक्तं  
वेदितव्यम् ।

विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु पार्थिव ।

दानकालेषु ये मन्त्राः पर्वतेषु च यत्फलम् ॥

अथ मन्त्रः ।

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्त्रे प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते ॥

अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः ।

धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नमोनमः ॥

एवमाचार्यादीन्, सम्पूज्य तदनुज्ञया अन्येभ्योपि दद्यात्

ततो यजमानो वेद्यां पूर्ववद्देवताः सम्पूज्य नमस्कुर्यात् ।

गुरुस्तान्विसर्जयेत्, ततो यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनम् कृतोप-  
वासस्य यजमानस्य दानदिने क्षारलवणवर्जनं सर्वपर्वतोपस्करा-  
णाञ्च ब्राह्मणगृहप्रापणं शर्कराचलीकृतं सर्वत्र द्रष्टव्यम् ।

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयङ्गिरिम् ।

मन्वन्तरशतं सार्द्धं देवलीके महीयते ॥

अप्सरोगणगन्धर्वैराकीर्णं विराजितः ।

विमानेन दिवः पृष्ठमायाति सुरसेवितः ॥

कर्मक्षयाद्राजराज्यं प्राप्नोतीह न संशयः ॥

अथ ब्रह्माण्ड पुराणात्

श्रीभगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि धान्यपर्वतमुत्तमम् ।  
यं दत्त्वा सर्वदानानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
नद्यास्तोरे गृहे वापि देवतायतने तथा ।  
मण्डपं कारयित्वा च विधानं परिकल्पयेत् ॥  
कार्त्तिक्यामयने चैव ग्रहणे वापि कृतस्त्रयः ।  
अन्येष्वपि च कालेषु यदा शङ्काभिजायते ॥  
महाप्रीतिकरङ्गुर्थ्यात् पर्वतं शुभलक्षणम् ।  
साहस्रिको भवेच्छ्रेष्ठस्तदर्धेन तु मध्यमः ॥  
त्रिभिः शतैः कनिष्ठस्तु द्रोणानां नृपसत्तम ।  
अलाभे वा यथाशक्त्या कारयेच्छ्रद्धयान्वितः ॥  
मध्ये प्रकल्पयेन्मेरुं महाव्रीहिमयं शुभम् ।  
विष्कम्भपर्वतञ्चैव यवैः कुर्यात्तु पूर्वतः ॥  
दक्षिणेनाथ गौधूमैस्तिलैः पश्चिमतस्तथा ।  
माषैश्चैवोत्तरं कुर्यात्तुरीयांशेन पर्वतान् ॥  
सौवर्णशिखरोपेतांस्तान् सर्वान् कारयेद्बुधः ।  
सर्वरत्नविचित्राङ्गान् केतुवृक्षैरलङ्कृतान् ॥  
नानाद्रुमलतोपेतान् सुरभिच्चाप्यलङ्कृतान् ।  
वस्त्रैः प्रच्छादितान् कृत्वा गन्धैर्मातृशैस्तु पूजयेत् ॥  
एवं विधं गिरिं कृत्वा नानाभक्ष्यैः समन्ततः ।  
पूजयेत् फलमूलैश्च रसैर्नानाविधैस्तथा ॥  
ग्राम्यारण्यैस्तथाधान्यैः पूरयेत् सर्वतस्तथा ।  
ब्रह्मविष्णुशिवांस्तत्र सौवर्णान्विनिधोजयेत् ॥



पूर्वतः कारयेत् कुण्डं हस्तमात्रं सुशीभनम् ।  
 ब्राह्मणास्तत्रहीतारो अष्टौ चत्वार एव च ॥  
 गृहस्थाः साधवो दान्ताः सम्पूर्णवयवास्तथा ।  
 आधोतवासमश्चैव कटकादिभिरन्विताः ॥  
 चन्दनादिग्धगावाश्च तथापुष्पैरलङ्कृताः ।  
 एवं विधास्तथाविप्रा होमं कुर्युरतन्द्रिताः ॥  
 इन्द्राद्या लोकपालाश्च तेषां होमो विधीयते ।  
 तल्लिङ्गैश्चैव मन्त्रैश्च समिद्भिरथ वा तिलैः ॥  
 पौरुषेण तु सूक्तेन ब्रह्मादीनां विधीयते ।  
 तथा व्याहृतिभिर्होमं तिलैराज्येनचैव हि ॥  
 अष्टशतं तु होतव्यं सर्व्वकामसमृद्धये ।  
 पूजयेत् पर्व्वतं पश्चात् यजमानः प्रसन्नधीः ॥  
 स्नात्वा शुक्लाञ्जरो भूत्वा कामक्रोधविवर्जितः ।  
 अन्नं प्राणा हि भूतानां बलन्तेजस्तथैव च ॥  
 जङ्गमाजङ्गमं सर्व्वं जगदन्ने प्रतिष्ठितम् ।  
 अन्नाद्भवन्ति भूतानि अन्नाद्बहुवन्ति चैव हि ॥  
 तच्च धान्याधिकारेण अन्नं बहुविधं भवेत् ।  
 अतो धान्यगती मेरुः करोत्वभिमतं मम ॥  
 नमस्ते सर्व्वलोकानामाधारः सुरपूजितः ।  
 वित्तहीनो मम कुले मा भवत्विह कश्च न ॥  
 अत्युच्छिन्नं तथैवान्नं मम जन्मनि जन्मनि ।  
 मा यातु संचयं चैव दीयमानमहर्निशम् ॥  
 एवं सम्पूज्य पूर्व्वदूरात्वा कुर्यात् महोत्सवम् ।

शङ्खतूर्यनिनादैश्च गेयमङ्गलपाठकैः ॥  
 ततः सर्वसमीपे तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 सहस्रदक्षिणं कृत्वा शक्त्या च विभवस्य च ॥  
 दक्षिणारहितो यज्ञः शत्रून्वायाभिजायते ।  
 तस्मात् स दक्षिणं देयं यत् किञ्चिद्दानसंज्ञितम् ॥  
 हीतारस्तत्र ये तेषां दद्याद्विष्कम्भवान् बुधः ।  
 आचार्यं पूजयेत् पश्चाद्भोभिरश्वैर्गजैस्तथा ॥  
 अलङ्कारैस्तथा मुखैर्वस्त्रैः पुष्पानुलेपनैः ।  
 आचार्यं पूजयेत्तं च भोजयित्वा यथा विधि ॥  
 गावश्चालंक्रता देया बहुक्षीरा गुणान्विताः ।  
 रूपवत्यस्तरुण्यश्च तुष्ट्यर्थं जुह्वतां नृप ॥  
 अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धान्यमयं गिरिम् ।  
 उद्धृत्य चात्मना सार्द्धं स्वर्गमारोपयेत् परम् ॥  
 मन्वन्तराणि षड्विंशन्मोदते विबुधैः सह ।  
 दिव्यं विमानमारुह्य नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥  
 पुण्यक्षयादिहाप्येत्य समद्वीपपतिर्भवेत् ।  
 दशजन्मानि राजेन्द्र हापरे जायते युगे ॥  
 दशवर्षसहस्रायुः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।  
 यश्चेदं शृणुयाद्दानं कीर्त्यमानं समाहितः ॥  
 दरिद्रः परया भक्त्या सोऽपि सद्गतिमाप्नुयात् ॥

भविष्योत्तरात् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि धान्यपर्वतमुत्तमम् ।

ब्रोहिभिः कारयेत्तन्तु गोधूमैरथ वा यवैः ॥  
 सहस्रेणोत्तमं कुर्यात्तदर्द्धेन तु मध्यमम् ।  
 तस्याप्यर्धात् कनिष्ठन्तु कुर्याद्विभवसारतः ॥  
 तेषां पूर्वविधानेन सर्व्वं कुर्यात् यथाक्रमम् ।  
 फलं वापि तदा राजन् पूर्वमेव समश्रुते ॥

धान्याचलं कनकवृक्षविराजमानं  
 विश्वम्भपर्व्वतयुतं सुरसिद्धजुष्टं ।  
 यच्छन्ति ये सुमतयः प्रणिपत्य विप्र  
 ते प्राप्नुवन्ति परमेष्ठिपदाब्जयुग्मं ॥  
 इति धान्यपर्व्वतदानविधिः ।  
 अथ लवणाचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम् ।  
 यत्प्रदानान्नरोलोके प्राप्नोति शिवसंयुतम् ॥  
 उत्तमः षोडशद्रोणः कर्त्तव्यो लवणाचलः ।  
 मध्यमः स्यात्तदर्द्धेन चतुर्भिरधमः स्मृतः ॥  
 वित्तहीनो यथा शक्त्या द्रोणादर्द्धं तु कारयेत् ॥  
 चतुर्थांशेन विश्वम्भपर्व्वतान् कारयेत् पृथक् ॥

द्रोणरुक्षणमुक्तं ।

चतुर्थांशेनेति मुख्यशैललवणात् पृथक् प्रत्येकं चतुर्थांशपरि-  
 मितेन लवणेनेत्यर्थः ।

विधानं पूर्व्ववत् कुर्यात् ब्रह्मादीनां च सर्व्वदा ।

तद्वैमतैरून् सर्वान् लोकपालनिवेशनम् ।  
सरांसि कामदेवादीन् स्तद्वच्चान् निवेशयेत् ॥  
तद्वदितिधान्यपर्वतवदित्यथः ।

कुर्याज्जागरमत्रापि दानमन्त्रान्विबोधत ।  
सौभाग्यरससम्भूतो यतो यं लवणोरसः ।  
तदात्मकत्वेनच मां पाहि पापान्नगोत्तम ॥  
यस्मादन्नरसाः सर्वे नैत्कटा लवणं विना ।  
प्रियञ्च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥  
विष्णुदेहसमूहूतं यस्मादारोग्यवर्धनम् ।  
तस्मात् पर्वतरूपेण पाहि संसारमागरात् ॥  
अग्नेन विधिना यस्तु दद्यात्तवणपर्वतम् ।  
उमालोके वसेत्कल्पं ततो याति पराङ्गतिम् ॥  
इति पद्मपुराणोक्तो लवणाचलदानविधिः ।

अथ गुड़पर्वतदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गुड़पर्वतमुत्तमम् ।  
यत्प्रदानान्नरः स्वर्गमाप्नोति सुरपूजितम् ॥  
उत्तमो दशभिर्भारैर्मध्यमः पञ्चभिर्मितः ।  
त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात्तदर्धेनाल्पवित्तवान् ॥  
भारः, परिभाषायां व्याख्यातः ।

तद्वदामन्त्रणं पूजा होमवृत्तसुरार्चनम् ।  
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत्सरांसि वनदेवताः ॥

होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम् ।  
 धान्यपर्वतवत् कुर्यादिमं मन्त्रमुदरयेत् ॥  
 यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोऽयं जनार्दनः ।  
 सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् ॥  
 प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारौणां पार्वती यथा ।  
 तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसोमतः ॥  
 मम तस्मात् परां लक्ष्मीं ददस्व गुडपर्वत ।  
 यस्मात् सौभाग्यदायिन्या भ्राता त्वं गुडपर्वत ।  
 निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा ॥  
 अनेन विधिना यस्तु दद्यात् गुडमयं गिरिम् ।  
 पूज्यमानः स गन्धर्वैर्गौरौलीके महीयते ॥  
 पुनः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ।  
 आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तो गुडपर्वत दानविधिः ।

श्रीभगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतसुत्तमम् ।  
 सर्वपापहरं पुण्यं सौभाग्यजननं परम् ॥  
 पुष्टिदं शान्तिदञ्चैव सुखदं दिव्यभोगदम् ।  
 भारैस्तु दशभिः कुर्याद्यथाशक्त्यापि वा भवेत् ॥  
 पूर्ववत् मण्डपं कृत्वा सर्वोपकरणानि च ।  
 पूर्ववदिति, ब्रह्माण्डदानोक्तधान्यपर्वतवदित्यर्थः ।  
 लोकपालसमीपितं तथाकाञ्चनशृङ्गिणम् ।

मुक्ताफलविचित्राङ्गं वस्त्रालङ्कृतविग्रहम् ॥  
 प्रवालकलतोषितं\* इक्षुखण्डोपवेणुकम् ।  
 नितम्बं राजतन्तस्य मेखलाकारसंस्कृतम् ।  
 कुर्यात्ताम्रमयं स्कन्धं नानाधातुविभूषितम् ॥  
 कृत्वा तमोदृशं शैलं सर्वधान्यसमावृतम् ॥  
 सर्वाषधिसमोषितं सशृङ्गं समहाद्रुमम् ।  
 कल्पयित्वा विधानेन सवितानं विचक्षणैः ॥  
 कुण्डमेकं ततः कृत्वा चतुःकोणं खलङ्कृतम् ।  
 नियोज्यास्तत्र विद्वांसो ब्राह्मणाः संसितव्रताः ॥  
 पञ्चमो गुरुरनीकस्तान् सर्वान् पूजयेत्ततः ।  
 पूजितास्ते यथान्यायं होमं कुर्युरतन्द्रिताः ॥  
 लोकपालान् ग्रहांश्चैव ब्रह्मादींश्च विधानतः ।  
 खलिङ्गोक्तैश्च मन्त्रैश्च होमयेयुर्द्विजोत्तमाः ॥  
 महाव्याहृतिभिश्चैव अयुतं तत्र होमयेत् ।  
 आचार्यः सह विप्रैस्तेर्मनेन सुसमाहितः ॥  
 ब्रह्मवीषरतस्तस्मिन् कारयित्वा महोत्सवम् ।  
 एवं विधिं तदा कृत्वा पूर्वद्युः प्रश्रद्धयान्वितः ॥  
 दद्यात्तं माघमासस्य तृतीयायां विशेषतः ।  
 चैत्रस्य वा विधानेन तृतीयायां प्रदापयेत् ॥  
 अन्येष्वपि च कालेषु ग्रहणादिषु कारयेत् ।  
 त्वं रसानां वरोनित्यं देवानाञ्च सदा प्रियः ॥  
 सुखं प्रयच्छ मे नित्यं नमस्ते पर्वतोत्तमं ।

यावद्भूः सागरा नद्यो यावच्चन्द्रार्कतारकाः ।  
 तावन्मेत्वं सुखं यच्छ सौभाग्यमतुलन्तथा ॥  
 एवं सम्पूजयित्वा तं ब्राह्मणानां निवेदयेत् ।  
 आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्दीनान्धकृपणानपि ॥  
 विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ।  
 तस्मिन्दिने च भोक्तव्यं मधुरं क्षारवर्जितम् ॥  
 अनग्नालेपनञ्चैव कृतकृत्योभवेन्नरः ।  
 तस्माद्देयमिदं दानं फलमुत्तममिच्छता ॥  
 गतिञ्च शाश्वतीं लोके सौभाग्यं रूपमेव च ।  
 अनेन विधिना चैव दातव्यो गुडपर्वतः ॥  
 विंशद्भारस्तु कर्त्तव्यः शेषं पूर्ववदाचरेत् ।  
 दानमेतत् प्रशस्तं स्यात् स्त्रीणां राजन्विशेषतः ॥  
 सौभाग्यराजकामस्य सर्वस्यापि विधीयते ।  
 पूर्वोक्तञ्च फलं प्राप्य कृतकृत्योहि जायते ॥  
 इति ब्राह्मण्डपुराणोक्ती गुडपर्वत दानविधिः ।

अथ सुवर्णाचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम् ।  
 यस्य प्रदानाद्भवनं विरिञ्चिर्याति मानवः ॥  
 उत्तमः पलमाहस्त्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः ।  
 तदर्द्धेनाधमस्तद्दत्त्ववित्तोऽपि शक्तिः ॥  
 दद्यादेकपलाद्दर्द्धं यथाशक्त्या विमत्सरः ।

धान्यपर्वतवत्सर्वं विदध्याद्राजसत्तम ।  
 विष्कम्भशैलास्तद्वच्च ऋत्विग्भः प्रतिपादयेत् ॥  
 नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः ।  
 यस्मादनन्त फलदस्तस्मात् पाहि शिलीचयः ॥  
 यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मात्पुण्यं जगत्पते ।  
 हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगीत्तमः ॥  
 अनेन विधिना यस्तु दद्यात् कनकपर्वतम् ।  
 स याति परमं ब्रह्मलीकमानन्दकारकम् ॥  
 तत्र कल्पशतन्तिष्ठेत्ततो याति पराङ्गतिम् ॥

अत्र यद्यपि गुरवे मध्यशैलं दद्यात् ऋत्विग्भ्यो विष्कम्भा-  
 चलानीत्युक्तं, नापि तुलापुरुषवदित्यादि श्रूयते, तथापि पलस-  
 हस्रादिपरिमितसुवर्णदानार्हस्य एकस्यासुलभत्वात् अन्येष्वपि च  
 बहुसुवर्णकेषु बहुभ्यादानदर्शनात् अत्रापि तुलापुरुषवदष्टचतुर्थ-  
 भागादि गुरवे प्रदाय, तदनुज्ञया अन्येभ्योऽपि दद्यादिति गम्यते,  
 प्रकृतावदर्शनान्नैवमिति चेत् माभूत् प्रकृतौ तुलापुरुषादिस्थितमे-  
 व गृह्यत इति कोविरोधः, एकश्च विध्यन्तो भवतीत्येकस्य  
 प्रकृतिद्वयानुपपत्तिरिति चेत् अथ प्रकृतावप्येवमेव व्यवस्थेति  
 ब्रूमः । लवणाचलादिसकलशैलदानप्रकृति भूतस्य धान्यपर्वतस्य  
 कथमन्यधर्मसंग्रह इति चेत् न प्रकृतेरप्यङ्गाङ्गिसापेक्षतया  
 धान्यपर्वतेऽपि कुण्डमण्डपाचार्यलक्षणादितुलापुरुषधर्मग्रहण-  
 दर्शनात् ।

ततश्च द्रव्यबहुत्वे बहुभ्यो, द्रव्याल्पत्वे ब्राह्मणपञ्चकाय खल्पत  
 मत्वे अचार्यायैव देयमितिसिद्धं ।



इति पद्मपुराणोक्तः सुवर्णाचलदानविधिः ।

अथ तिलशैलदानविधिः ।

पद्मपुराणात्

पुलस्त्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः ।

यत्पदानान्नगयाति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥

उत्तमोदशभिर्द्रोणैः पञ्चभिः मध्यमीमतः ।

त्रिभिः कनिष्ठोविप्रेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः ॥

पूर्वञ्चापरं सर्वं वृक्षविष्कम्भकादिकम् ।

दानमन्त्रान् प्रवक्ष्यामि यथावद्राजसत्तम ॥

यस्मात् मधुवने विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः ।

तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छत्री भवत्विह ॥

हव्यकव्येषु यस्माच्च विलैरेवाभिलक्षणम् ।

भवादुडर शैलेन्द्र तिलाचल नमोस्तु ते ॥

इत्यामन्त्राच्च यो दद्यात्तिलाचलमनुत्तमम् ।

स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

दीर्घायुष्यमवाप्नोति इह चामुत्र मानवः ।

पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत् ॥

अथ ब्रह्माण्ड पुराणात् भगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलपर्वतमुत्तमम् ।

यद्दानं सर्वदानानां परत्र फलदायि च ॥

तिलाः पवित्रमतुलं पवित्राणाञ्च पावनाः ।  
 विशोर्देहसमुद्भूतास्तस्मादुत्तमताङ्गताः ॥  
 तिला भवन्ति रक्षार्थं जगतां तिसृणामपि ।  
 शुक्लपक्षे तु देवानां प्रदद्याद्यस्तिलोदकम् ॥  
 कृष्णपक्षे पितॄणान्तु स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः ।  
 तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समवेतं तिलाञ्जलिम् ॥  
 तस्य देवाः सपितरः तप्ता यच्छन्ति वाञ्छितम् ।  
 श्वकाकोपहतं यत् पतितादिभिरेव च ।  
 तिलैः रभ्यलितं सर्वं पवित्रं स्यान्नसंशयः ॥  
 एवं विधैस्तिलैर्यस्तु कृत्वा पर्वतमुत्तमम् ।  
 प्रदद्याद्भिजमुख्याय पुण्यन्तस्याक्षयं भवेत् ॥  
 विधानं तस्य वक्ष्यामि माहात्म्यमपि चोत्तमम् ।  
 व्यतीपातेऽयने चैव ग्रहणे शशिसूर्ययोः ।  
 जन्मर्त्ते विषुवे चैव देयं माघे विशेषतः ॥  
 तिलैर्यत्क्रियतेमाघे दानहोमादिकं तथा ।  
 तदक्षयं भवेन्नोके तर्पणादिकमेव च ॥  
 तथा नद्यां गृहे वापि कृत्वा भण्डपमुत्तमम् ।  
 पूर्वोक्तेन विधानेन कुर्यात्सर्वमशेषतः\* ॥  
 पूर्वोक्तेनेति, ब्रह्माण्डपुराणीक्तधान्यपर्वतस्थिते नेत्यर्थः,  
 शतत्रयेन द्रोणानां शक्त्या वापि प्रकल्पयेत् ।  
 पर्वतस्य चतुर्थेन भागेन परिकल्पयेत् ॥

दिशाचलान्मन्दरादीन्स्तिलैरेव विचक्षणः ।  
 ब्रह्मादिलोकपालांश्च सौदर्शान् कारयेत्तथा ॥  
 इक्षुदण्डैः समन्तात् भूषयेद्यागमण्डपम् ।  
 कुण्डमेकं चतुष्काणं पूर्वतः कारयेद्बुधः ॥  
 हस्तमात्रप्रमाणेन मेखलानाभिसंयुतम् ।  
 संस्थापयेद्विजांस्तत्र चातुश्चरणिकान् शुचीन् ॥  
 पूर्वोक्तेन विधानेन तत्र होमो विधीयते ।  
 पूजयेत् पर्वतश्चैव माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥  
 मणिरत्नप्रवालैश्च प्रथमेऽहनियत्नतः ।  
 विष्णुदेहसमुद्भूतै तिलैस्त्वं कारितो मया ॥  
 देवालय महामेरो नमस्ते भूभृतां वर ॥  
 सप्त जन्मानि यत्किञ्चिन्मया पापमनुष्ठितम् ।  
 क्षयं प्रयातु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्नगोत्तम ॥  
 एवं संपूजयित्वा तु प्राप्य चैवाशिषं शुभाम् ।  
 रात्रौ महोत्सवं कृत्वा पर्वतस्यसमीपतः ।  
 पूजयित्वा द्विजान् सम्यक् सोपाध्यायान् सहाहितः ॥  
 सहस्रं दक्षिणां दद्याच्छक्त्या वापि प्रदापयेत् ।  
 अत्रापि गावोदातव्या अष्टौ चत्वार एव च ॥  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा पर्वतं ब्राह्मणांस्तथा ।  
 शिरसा प्रणिपत्याथ आङ्गावांसु मनुव्रजेत् ॥  
 अनेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति ।  
 स गच्छेत् पितृभिः मार्गं विष्णुलोकमलौपमम् ॥  
 विमानवरमारुह्य किङ्किणीजालमण्डितम् ।

अप्सरोगणसम्बौतं गन्धर्वैरतिशोभितम् ॥  
 दशकोट्यस्तुवर्षाणां भुङ्क्ते भोगान् यथेप्सितान् ।  
 पुण्यक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः ॥  
 नारी वा तस्य पत्नी वा सुभगा रूपसंयुता ।  
 दत्ता कुलोदहा चैव पुत्रपौत्रसमन्विता ॥  
 कृतेयुगेऽभिजायेत पञ्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ।  
 सगरेण ककुत्स्थेन धुन्वुमारेण वै पुरा ॥  
 मान्वात्रा यवनाश्वेन कार्त्तवीर्येण चैव हि ।  
 दानमेतत् पुरा दत्तं तत्पत्नीभिस्तथैव च ॥  
 प्राप्तमैश्वर्यमतुलं कीर्त्तिर्लोके च शाश्वती ।  
 तस्माद्वियं सदा दानं एतद्राजवरोत्तमाः ॥  
 विधानमिदमाकर्ण्य निर्द्वनः श्रद्धयान्वितः ।  
 कपिलादानपुण्यस्य समं फलमवाप्नुयात् ॥

इति तिलपर्वतदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तिलपर्वतमुत्तमम् ।  
 पूर्वोक्तस्थानकाले तु कृत्वा संपूजयेत्ततः ॥  
 अत्र पूर्वशब्देन लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानमवगन्तव्यम् ।  
 सुसमे भूतले रम्ये वल्मीकादिविवर्जिते ।  
 दशतालप्रमाणेन दण्डं संस्थाप्य वैमुने ।  
 अद्भिः सम्प्रोक्ष्य पश्चाद्भि तिलास्तस्मिन् विनिक्षिपेत् ॥

तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामयेत्यादिना ताल-  
मानमुक्तं परिभाषायां ।

प्रोक्षयेत्पञ्चगव्येन तन्देशं ब्राह्मणोत्तमः ।

मण्डलं कल्पयेद्विद्वान् पूर्ववत्समाहितः ॥

नववस्त्रैश्च संस्थाप्य द्रोणपुष्पं विकीर्य च ।

तस्मिंस्तु पर्वतं कुर्यात् तिलभारैर्विशेषतः ॥

दण्डात् प्रादेशमुखेध उत्तमे परिकीर्तितः ।

चतुरङ्गुलहीनस्तु मध्यमे परिकीर्तितः ॥

दण्डतुल्यः कनिष्ठे स्याद्दण्डहीनेन कारयेत् ।

वेष्टयित्वा नवैर्वस्त्रैः परितः पूजयेत् क्रमात् ॥

सद्यादीनि प्रतिन्यस्य पूजयेद्विधिपूर्वकम् ।

अष्टदिक्षु च कर्त्तव्या देवानां मूर्त्तयः क्रमात् ॥

विनिष्केण सुवर्णेन प्रत्येकं कारयेत्ततः ॥

सद्यादीनि, सद्योजातप्रभृतीनि, देवानां, लोकपालानां ।

दक्षिणा विधिना कार्या तुलापुरुषदानवत् ।

होमश्च पूर्ववत्प्रोक्तो यथावच्छ्रुतिसत्तमः ॥

तुलापुरुषोऽत्र लिङ्गपुराणोक्त एवेति विज्ञेयम् ।

अर्चयेद्देवदेवेशं लोकपालममावृतम् ।

तिलपर्वतमध्यस्थं तिलपर्वतरूपिणम् ॥

शिवार्चना च कर्त्तव्या सहस्रकलशादिभिः ।

दर्शयेत्तिलमध्यस्थं देवदेवमुमापतिम् ॥

पूजयित्वा विधानेन क्रमेण च विमर्जयेत् ।

ओत्रियाय द्रविद्राय दापयेत्तिलपर्वतम् ॥

एवं तिलमयं प्रोक्तं दानं सर्व्वाधिकं परम् ।

यत्कृत्वा मानवी नूनं स्वर्गं मोक्षञ्च विन्दति ॥

अत्रैवं कृतिः, प्रागुक्तमण्डपवेदीमण्डले गव्यैः प्रोक्ष्य दर्भान्  
द्रोणपुष्पादिचावकीर्य च वस्त्रैराच्छाद्य यजमानो दशतालमितं  
दण्डं निधाय यवाक्षतशुद्धतिलैर्दण्डमाच्छादयन् शैलालकृतिं कुर्यात्  
उत्तमे दण्डात् प्रादेशाधिक्यं, मध्यमे अष्टाङ्गलाधिक्यं, कनिष्ठपक्षे तु  
दण्डसाम्यं तिलराशेरिति । ततो वस्त्रैराच्छाद्य तं मेरुरूपं  
ध्यात्वा तदुपरि शिवं पलत्रयावरस्वर्णनिर्मितं संस्थाप्य सद्या-  
दीनि न्यसेत्, तत्र प्रथमावरणे पञ्च ब्रह्माणि, तद्वाह्ये सर्वादिमूर्त्तिं  
संस्थाप्य, तद्वाह्ये भूम्यादिमूर्त्तिः, तद्वाह्ये लोकपाला इति, एते च  
सर्वे निष्कत्रयपरिमितेन हिरण्येन विधाय तत्तन्मन्त्रैः पूज्याः, तत्र  
शिवलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

सद्योजातादिलक्षणमुक्तं मयदीपिकायाम् ।

सद्याजातं सितं कुर्याद्वरदाभयहस्तकम् ॥

सौम्यं मौलीन्दुसम्पन्नं बालाकारं त्रिलोचनम् ।

वामदेवं सुरक्ताङ्गं मान्यवस्त्रोपवीतकम् ॥

तुङ्गनासं च खट्वाङ्गं खड्गखेटकपाणिनम् ।

बभ्रुभ्रूश्मश्रूमौलीन्दु दंष्ट्रालम्बिताननम् ॥

पाशखेटेषु खट्वाङ्गकाययुक्तं चतुष्टये ।

शूल-दण्ड-कुठारा-सीन् दद्याद्दक्षेण पाणिषु ॥

पीताम्बरं सुसौम्यञ्च नरं कुङ्कुमसन्निभम् ।

कुर्यान्मौलीन्दुसम्पन्नं पाशशूलधरं द्वयोः ॥

स्फटिकाभजगद्धेतुं त्रिनेत्रं चन्द्रमौलिनम् ।

ईशानं पञ्चमं कुर्यात् त्रिशूलाभयपाणिनमिति ॥

सर्वादिलक्षणमाह विश्वकर्मा ।

सर्वो भोमी महादेवो रुद्रः पशुपतिर्भवः ।

उग्रेशानाविति ह्यष्टौ मूर्त्तिणाः शिवसन्निभाः ॥

मृगाङ्गचूडामणयो जटामण्डलमण्डिताः ।

त्रिनेत्रा वरखडाङ्गत्रिशूलाभयपाणय इति ॥

मूर्त्यष्टकमध्ये तु पृथिव्यप्तेजोवायुकाशानां रूपाणि पञ्च-  
महाभूतघटदाने निरूपितानि, चन्द्रार्कयोस्तु वरदानप्रकरणे  
वक्ष्यन्ते, यजमानमूर्त्तिस्तु विशेषानुक्तेरितरपुरुषतुल्यैव वेदितव्या,  
लोकपाललक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, ततः पूजानन्तरतत्तन्मन्त्रैः  
समिदादि हुत्वा पृथक्स्थस्य शिवस्य सहस्रकलशाभिषेकं कृत्वा  
यजमानाय तिलपर्वताग्रस्थं शिवं प्रदर्शयेदाचार्यः ।

यजमानस्तु शिवादीनभ्यर्च्य तं शैलं श्रोत्रियाय प्रदापयेत् ।

आचार्यादिदक्षिणादि पूर्व्ववत् ।

अत्रायै यजमानमधिकृत्य कालीत्तरतन्त्रे षु ।

अथ वा परमेशानमष्टोत्तरशतैरपि ।

कलशैः स्रपयित्वा तु समभ्यर्च्य यथाविधि ॥

कुर्यात् प्रदानमन्त्रेण गुरुरष्टोत्तरं सुधीः ।

महादेवी महारुद्रः शङ्करो नीललोहितः ॥

ईशानो विजयो भोमी देवदेवी भवोद्भवः ।

कपालो गन्धर्व विज्ञेयो रुद्रा एकादशस्त्रिमे ॥

समन्तासकलेशस्य पूजनीया यथाक्रमम् ।

कृष्णाजिने संप्रपूज्य तिलानां षोडशाधिकैः ॥  
 सुवर्णत्रयसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितं ।  
 शोभितं पुष्पमालाभिः फलैश्च समलङ्कृतम् ॥  
 रुद्रानेकादश ध्यात्वा क्रमेण परिदापयेत् ।  
 शिवभक्ताय शान्ताय श्रीत्रियाय द्विजन्मने ॥  
 एवं यः कुरुते भक्त्या विधिनानेन संयुतः ।  
 आयुःश्रियं जयङ्गीर्त्तिमनुभूय शिवं व्रजेत् ॥  
 इति लिङ्गपुराणीकस्तिलपर्वतदानविधिः ।  
 अथातः संप्रवक्ष्यामि तिलपर्वतमुत्तमम् ।  
 यस्य प्रदानात्सकलं क्षयमेष्यति पातकम् ॥  
 सप्तजन्मान्तरे यस्यात्पापं भ्रूणवधादिकम् ।  
 तत्सर्वं क्षयमभ्येति तिलपर्वतदानतः ॥  
 पुण्यकालेषु सर्वेषु उपरागे विशेषतः ।  
 पुण्यदेशे प्रयत्नेन दातव्यं तिलपर्वतम् ॥  
 देवालयस्य पुरतो मण्डपं कारयेद्बुधः ।  
 प्रविभक्तचतुर्द्धारं चतुस्तोरणसंयुतं ॥  
 दशद्वादशहस्तं वा चतुरस्रं सुसंस्थितम् ।  
 वितानोपरिसंक्लृप्तं दिग्वितीर्णवितानकं ॥  
 द्वारेषु पूर्णकलशान् स्थापयित्वा द्वयं द्वयं ।  
 पूर्वस्मिन् दिवसे प्रातः कुर्यात् पुण्याहवाचनं ॥  
 ततः सङ्कल्पयित्वा तु गुरुं वेदाङ्गपारगं ।  
 वशिष्ठं पुण्यचरितं युवानां कृतलक्षणम् ॥  
 ऋत्विजयाष्ट संग्राह्या वेदवेदाङ्गपारगाः ।



तेषां निवेदयेत् कार्यं श्व प्रदास्ये तिलाचलम् ॥  
 ततो गुरुं महादेवं पूजयित्वा विधानतः ।  
 विनायकमुमां चैव ततः सूत्रं प्रपातयेत् ॥  
 मण्डपे नवकोष्ठानि कल्पयित्वा समन्ततः ।  
 अष्टौ कुण्डानि कार्याणि ईशाने नवमं भवेत् ॥  
 मध्यकोष्ठं प्रविस्तीर्य सितवस्त्राणि सर्व्वतः ।  
 तिलैः शुद्धैर्महामेरुं मध्ये कार्य्यं प्रयत्नतः ॥  
 उत्तमस्त्रिपलंभरैर्द्वाकाभ्यां मध्यमाधमौ ।  
 षड्भागेन ततः कार्याः समन्ताद्वर्षपर्व्वताः ॥  
 मातृशान्निपधश्चैव हिमवान् हेमकूटकः ।  
 गन्धमादनशैलश्च शृङ्गवान् श्वेतशैलकौ ॥  
 ऐन्द्रादिषु निधातव्या वासीभिष्ठादयेद्वहिः ।  
 कल्पद्रुमस्तु, सौवर्णः सर्व्वरत्नोपशोभितः ॥  
 सर्व्वपुष्पफलोपेतो न्यस्तव्यो मेरुमूर्धनि ।  
 हैमान् सृगान् खगांश्चापि दुमांश्चापि विनिर्द्दिशेत् ॥  
 सर्व्वशैलेषु मन्दारसृगपक्ष्यादिकञ्च यत् ।  
 निधातव्यं प्रयत्नतः तुरीयांशेन मेरुतः ॥  
 सुमेरोर्द्वादशपलं दशाष्टौ वाप्यनुक्रमात् ।  
 सुवर्णस्य प्रमाणं स्यादुत्तमाधममध्यमं ॥  
 अधस्तात् कल्पवृक्षाणां सौवर्णकमले हरम् ।  
 सुखासीनं चतुर्वाहुं जटासुकुटमण्डितम् ॥  
 त्रिनेत्रं सौम्यवदनं सौवर्णं न्यस्य पूजयेत् ।  
 शिवनामा तु मध्ये स्याद्भवः शम्भुस्त्रिलोचनः ॥

स्थाणुरीशो महादेवः शङ्करः शङ्करेश्वरः ।  
 पूर्वादिषु महादेवमेभिर्नामभिरर्चयेत् ॥  
 दिवाहविष्यभोजीस्यात् सगुरुस्ते च ऋत्विजः ।  
 स्वेन स्वेन विधानेन गृह्योक्तेन विशेषतः\* ॥  
 हुत्वाज्यभागौ जुहुयाद्यथोक्तं सर्वमाचरेत् ।  
 वस्त्रैः प्रपूजयेत्सर्वानृत्विजो गुरुमेव च ॥  
 द्विगुणं गुरवेदद्यात् कुण्डलीरङ्गलीयकैः ।  
 उपानष्टच्छत्रशय्याभिरासनैः पादुकेन च ॥  
 ततो विमूलआदित्ये पुण्यकाल उपस्थिते ।  
 अनुज्ञातस्तैर्विप्रैर्यजमानः प्रसन्नधीः ॥  
 सर्वौषधिजलस्नातः क्षौमवासाः स्त्रलङ्कृतः ।  
 प्रदक्षिणं गिरिं कृत्वा विप्रानाह्वय यत्नतः ॥  
 ज्ञानिनो गुणसम्पन्नानात्मनिष्ठानलीलुपान् ।  
 वेदवेदाङ्गविदुषस्तच्च देवं प्रकल्प्य च ॥  
 तस्य तस्य गिरिः पार्श्वे तत्तन्नाम्ना प्रपूजयेत् ।  
 मेरुं तत्प्रथमं दद्याद्विव संप्रीयतामिति ॥  
 गुणोत्कृष्टाय विप्राय भावयित्वा तु तं शिवम् ।  
 एवं पूर्वादिशैलांस्तु तत्तन्नाम्ना प्रदापयेत् ॥  
 प्रीयतामिति तान् विप्रान्स्तत्तद्देवं प्रकल्प्य च ।  
 सर्वं क्रियाकलापञ्च निवेद्य परमेष्ठिनम् ॥  
 पूजयित्वा द्विजानग्रे दीनान्धकृपणांस्ततः ।  
 आशीर्मङ्गलसंयुक्तस्ततो बन्धुसमन्वितः ॥

अनेन विधिना यस्तु दद्यात्तिलमयं गिरिम् ।  
 न तस्य विद्यते किञ्चित्पापं सप्तजनोद्भवम् ॥  
 विमानेन शिवं गच्छेन्निः कामी यः समाचरेत् ।  
 सकामो लभते कामान् यं यमिच्छति चेतसा ॥  
 इति प्रश्नोत्तरतन्त्रोक्ततिलशैलदानविधिः ।

अथ कार्पासपर्वतदानविधिः ।

पद्मपुराणात् ।

कर्पासपर्वतस्तद्विंशद्भारैरिहोत्तमः ।  
 दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः कनिष्ठः पञ्चभिः स्मृतः ॥  
 भारेणाल्पधनी दद्याद्विंशतिविवर्जितः ।  
 धान्यपर्वतवत्सर्वमासाद्य राजसत्तम ॥  
 प्रभातायान्तु शर्वथ्यां दद्यादिदमुदीरयेत् ।  
 त्वमेवाचरणं यस्मात्त्रोकानामिह सर्वदा ॥  
 कर्पासाचल तस्मात्त्वमघोषध्वंसनो भव ।  
 एवं कर्पासशैलेन्द्रं यो दद्यात् पर्वसन्निधौ ।  
 रुद्रलोके वसेत्कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥

ब्रह्माण्डपुराणात् भगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि कर्पासाचलमुत्तमम् ।  
 परमं सर्वदानानां प्रियं सर्वदिवौकसाम् ॥  
 दिगकालौ समासाद्य धनं यद्वाञ्छयत्नतः ।  
 देयमेतन्नृणादानं तारणार्थं कुलस्य च ॥

पर्वतं कल्पयेत्तत्र कार्पासेन विधानतः ।  
 पूर्वोक्तेन विधानेन कृत्वा सर्वं विधानतः ॥  
 विशङ्गारस्तु कर्त्तव्य उत्तमः पर्वतो बुधैः ।  
 मध्यमं दशभिः कुर्याज्जघन्यं पञ्चभिस्तथा ॥  
 सर्वधान्यसमूहस्य मध्ये ह्योषधिभिर्वृतम् ।  
 रसैरत्रैश्च संयुक्तं लोकपालावृतं तथा ।  
 ब्रह्मादयस्तथा शृङ्गे काञ्चनेन विनिर्मिताः ॥  
 कुलाकुलांश्च चत्वारश्चतुर्भागेन कल्पयेत् ।  
 सोवर्णशिखरान् सर्वान् सर्वरत्नोपशोभितान् ॥  
 नानाधातुविचित्राङ्गान् भक्ष्यभोज्यसमावृतान् ।  
 कुण्डे वा स्थण्डिले वापि तत्र होमो विधीयते ॥  
 ऋत्विजश्च तथाचाष्टौः कारयेद्वेदवित्तमान् ।  
 होमोऽव्याहृतिभिश्चैव अग्नौ तद्देवतेरपि ॥  
 गन्धेन सर्पिषा तत्र तथा कृष्णतिलैरपि ।  
 अयुतं हामसंख्या च पालाशसमिधस्तथा ॥  
 शङ्खतूर्यनिनादैश्च तथामङ्गलपाठकैः ।  
 उत्सवं कारयेत्तत्र दिनमेकमतन्द्रितः ॥  
 पर्वकाले ततो दद्यात् पूजयित्वा विधानतः ।  
 नमः सर्वामरावाम् भूतसङ्घैरभिष्टुतः ॥  
 ब्रह्मादयो मे वरदा भवन्तु विबुधाः सदा ।  
 इत्युच्चार्य नरो दद्यान्नारी वा विधिपूर्वकम् ॥  
 पूजयित्वा द्विजान् सप्त्यक् वासोभिर्भूषणैस्तथा ।  
 अग्नेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति ॥

स गच्छेत्तिदशायासं विमानोपरि संस्थितः ।  
 अम्सरोगणसंवीतो गन्धर्व रभिसंस्थितः ॥  
 तत मन्वन्तरं यावदुषित्वा विवृधालये ।  
 पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य महोन्मङ्क्ते ससागराम् ॥  
 रूपधान् सुभगोवाग्मो श्रीमानतुलविक्रमः ।  
 पञ्चजस्यानि नावी वा जायते नात्रसंग्रयः ॥  
 भूयश्च शृणु राजेन्द्र दिव्यं कार्पासपर्वतम् ।  
 तच्च भारशतेनैव कुर्यादङ्गनं वा पुनः ॥  
 शेषं पूर्वं विधानेन सर्वं कुर्याद्यथाक्रमम् ।  
 फलं पूर्वादितञ्चैव जायते नृपसत्तम ॥

इति कार्पासपर्वतदानविधिः ।

अथ घृताचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि घृतशैलमनुत्तमम् ।  
 तेजोऽमृतमयन्दिव्यं महापातकनाशनम् ॥  
 विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्यात् घृताचलः ।  
 दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिरधमः स्मृतः ॥  
 अल्पवित्तः प्रकुर्वीत द्वाभ्यां मेरुविधानतः ।  
 विश्वेश्वरपर्वतांस्तद्वत्तुर्भागेन कल्पयेत् ॥  
 शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत् ।  
 कारयेत् संहतान् सर्वान् यथाशोभं विधानतः ॥  
 विष्टयेत् शुक्लवासोभिरिन्दुदण्ड फलादिकैः ।  
 धान्यपर्वतवच्छेषविधानमिह पठति ॥

अधिवासञ्च कुर्वीत तद्वडोमं मुरार्चनम् ।

अत्र पलसहस्रपरिमितङ्घृतं घृतकुम्भः प्रसिद्धः कुम्भग्रहणे तस्या-  
नियतपरिमाणत्वादनवस्थितं शास्त्रार्थप्रसङ्गात् तच्च द्रवद्रव्यत्वा-  
दाधारमपेक्षत इति । शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशये-  
दित्यनेन तस्य कलशाधारत्वात् प्रतिपाद्यते 'तन्दुलपात्राणीति'  
पर्वतपञ्चकापेक्षया बहुवचनम् ।

प्रभातायान्तु शर्व्वर्यां गुरवे विनिवेदयेत् ।

विश्वम्भपर्वतांस्तद्वद्विग्रह्यः शान्तमानसः ॥

संयोगात् घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसः ।

तस्माद्घृतार्चिर्व्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शङ्करः ॥

यस्तु तेजोमयं ब्रह्म घृते तच्च व्यवस्थितम् ।

घृतपर्व्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधरः ॥

अनेन विधिना दद्याद्घृताचलमनुत्तमम् ।

महापातकयुक्तोऽपि लोकमायाति शङ्करम् ॥

हंसमारमयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना ।

विमानेनाप्सरोभिश्च मिद्विद्याधरैर्द्वैतः ।

विहरेत् पितृभिः सार्द्धं यावदाहृतसंप्लवम् ॥

इति पद्मपुराणोक्तो घृतपर्व्वतदानविधिः ।

अथ रत्नाचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अतः परम्प्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम् ।

मुक्ताकलसहस्रेण पर्व्वतस्यादिहोत्तमः ॥

मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिंशतेनाधमः स्मृतः ।

चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युःसमन्ततः ॥

पूर्वेण वज्र-गोमेदैर्हृत्तिणे इन्द्र-नीलकैः ।

पुष्परागयुतैः कार्द्यैः विद्वद्भिर्गन्धमादनः ॥

वैदूर्यविद्रुमैः पश्चात् सन्निश्रो विपुलाचलः ।

पद्मरागैः ससौपर्णैरुत्तरेण तु विन्यसेत् ॥

‘वज्रगोमेदैः’ समसंख्यैः, समं स्यादश्रुतत्वादितिन्यायात् एव-  
मुत्तरत्वापि विज्ञेयं ॥

सौपर्णः गरुडात्मजः ।

सौवर्णे रिति क्वचित्पाठः ।

भान्यपर्वतवत् सर्व्वमत्रापि परिकल्पयेत् ।

तददावाहनङ्गुर्याङ्गान् देवांश्च काञ्चनान् ॥

पूजयेत् पुष्पपानीयैः प्रभाते च विसर्जनम् ।

पूर्वं वह्नुर्गुह्यं त्विग्मा इमान्मन्त्रानुदीरयेत् ॥

यथा देवगणाः सर्व्वे सर्व्वरत्नेष्वपि स्थिताः ।

त्वञ्चरत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचलः ॥

यस्माद्रत्नप्रदानेन वृष्टिं प्रकुरुते हरिः ।

महारत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्व्वत ॥

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्रत्नमयं गिरिम् ।

स याति वैष्णवं लोकं अमरेश्वरपूजितः ॥

यावत्कल्पशतं मार्गं वसेदिह नराधिप ।

रूपारीग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥

ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदत्रा-मुत्र वा कृतम् ।  
तत्सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥  
इति पद्मपुराणोक्तो रत्नपर्वतदानविधिः ।

अथ रूप्याचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अः परम्पवक्ष्यामि रूप्याचलमनुत्तमम् ।  
यत्प्रदानान्नरीयाति सीमलीकं द्विजोत्तमः ॥  
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो राजताचलः ।  
पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधरः स्मृतः ॥  
अशक्नो विंशतेरुर्ध्वं कारयेच्छक्तितः सदा ।  
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत्तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥  
पूर्ववद्राजतान् कुर्यात् मन्दरादीन् विधानतः ।  
कलधौतमयांस्तत्र लोकेशानर्चयेद्बुधः ॥

‘कलधौतं’ काञ्चनम् ।

ब्रह्मविष्णुर्कवान् कार्योर्नितम्बोत्र हिरण्मयः ।  
राजतस्याद्यदन्येषां सर्वतदिह काञ्चनम् ॥  
शेषञ्च पूर्ववत्कुर्यात् होमजागरणादिकम् ।  
दद्यात्तद्वत् प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ॥  
विष्कम्भशैलान् ऋत्विग्भाः पूज्यवस्त्रविभूषणैः ।  
इमं मन्त्रं पठन् दद्याद्दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥  
पितॄणां वल्लभं यस्माद्धर्मस्य शङ्करस्य च ।  
रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरात् ॥  
इत्थं निवेश्य यो दद्याद्राजताचलमुत्तमम् ।



गवायुतमहस्रस्य फलमप्राप्नोति मानवः ॥  
 सोमलोके स गन्धर्वैः किन्नरोप्सरसाङ्गणैः ।  
 पूज्यमानो वसेद्विद्वान् यावदाहृतसंप्लवम् ॥  
 इति पद्मपुराणोक्ता रूपाचलदानविधिः ।

अथ शर्कराचलदानविधिः ।

पुलस्त्य उवाच ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शर्कराचलमुत्तमम् ।  
 यस्य प्रदानादिशृङ्गैर्कूटस्तुष्यन्ति सर्व्वदा ॥  
 अष्टभिः शर्कराभारै रत्तमः स्यान्महाचलः ।  
 चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामधरः स्मृतः ॥  
 भारेण वार्द्धभारेण कुर्याद्यः स्वल्पवित्तवान् ।  
 विश्वम्भपर्व्वतान् कुर्यात् तुरीयांशेन मानवः ॥  
 धान्यपर्व्वतवत्सर्व्वमासाद्यामरसंयुतम् ॥  
 मेरीरुपरि तद्वच्च स्थाप्य हेमतृचयम् ।  
 मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः ॥  
 एतद्वृक्षत्रयं मूर्द्ध्नि सर्व्वेष्वपि निवेशयेत् ।  
 हरिचन्दनमन्तानौ पूर्व्व-पश्चिमभागयोः ॥  
 निवेश्यौ सर्व्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले ।  
 मन्दारे कामदेवश्च प्रत्यग्वक्तः सदा भवेत् ॥  
 गन्धमादनशृङ्गे च धनदः स्यादुदङ्मुखः ।  
 प्राङ्मुखा वेदमूर्त्तिश्च हंसः स्याद्विपुलाचले ॥  
 हैमो सुपाश्वे सुरभी दक्षिणाभिमुखौ भवेत् ।  
 धान्यपर्व्वतवत् सर्व्वमावाहनमन्त्रादिकम् ॥

कृत्वाथ गुरवेदयान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् ।  
 ऋत्विग्भाञ्चतुरःशैलानिमान्मन्वानुदौरयेत् ॥  
 सोभाग्यामृतसारोऽयं परमं शर्करा यतः ।  
 तन्ममानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्व्वदा ॥  
 अमृतं पिवतां ये तु निपेतुर्भुवि सौकराः ।  
 देवानां तत्समं सोमं पाहि नः शर्कराचलः ॥  
 मम भवतु मध्या यदुद्भूताशर्करा यतः ।  
 तन्मयोमि महाशैल पाहि समारसागरात् ॥  
 यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः ।  
 सर्व्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति शिवमन्दिरम् ॥  
 चन्द्रादित्यप्रतोकाशमधिरुद्धानुजीविभिः ।  
 सहैव यानमातिष्ठेत् स तु विष्णुप्रचोदितः ॥  
 ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ।  
 आयुरारोग्यसम्पन्नो यादज्जन्मायुतद्वयम् ॥  
 भोजनं शक्तितः कुर्यात् सर्व्वशैले विभ्रतसरः ।  
 सर्व्वत्राक्षारलवण मश्नीयात्तदनुज्ञया ॥

भोजनं कुर्यादिति, दानानन्तरं यथा शक्तिब्राह्मणेभ्यो भोजन-  
 दानं कुर्यादित्यर्थः । स्वयमपि अक्षारलवणमश्नीयादिति ।

पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद्ब्राह्मणालयम् ।

पश्येदिमानप्यधनाऽपि भक्त्या

स्पृशेत् मनुष्यैरिह दीयमानान् ।

शृणोति भक्त्या मतिं ददाति

निःकलमघः सोऽपि दिवं प्रयाति ॥

दुःखं प्रशमयति पठमानैः

शैलेन्दैर्भवभयभेदनैर्मनुजैः ।

यः कुर्यात्किमु मुनिपुङ्गवेह सम्यक्

सत्त्वात्मा सकलगिरीन्द्र सम्प्रदानम् ॥

इति पद्मपुराणोक्तः शर्कराचलदानविधिः ।

अथ शैवानि द्वादशमेरुदानानि निरूप्यन्ते ।

तत्र कालोत्तरशैवशास्त्रात् ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मेरुदानं यथाक्रमम् ।

आकार्तिकात्ममारभ्य मेरुव्रतं समाचरेत् ॥

कार्तिकायां रत्नमेरुश्च दातव्यस्तु शिवायतः ।

सर्वेषाञ्चैव मेरुणां प्रमाणं क्रमशः शृणु ॥

दञ्च-पद्म-महानीलनील-स्फटिकसञ्चकः ।

पुष्पं मरकतं मुक्ता ग्राह्याः स्वविभवेन तु ॥

प्रस्थमात्रास्तु संग्राह्याः प्रस्थादर्द्धार्द्धमिव वा ।

यथाशक्त्याथ वा देया वित्तशठं विना सुत ॥

मेरोर्विभागं वक्ष्यामि शिवस्याग्रे यथार्चयेत् ।

कर्णिकायां न्यसेन्मेरुं ब्रह्मणिशुभ्रभूषितम् ।

तत्सर्वं मातृवात्राम पर्वतं पूजयेत्तदा ॥

तत् पूर्वभद्रमञ्जन्तु अश्वत्थाम्नास्ततः परम् ।

मेरुतः पूर्वदिग्भागे पूर्वं पूर्वोत्तरतयम् ॥

कथितं स विशेषेण दक्षिणस्यान्ततः परम् ।

निषधो हेमकूटश्च हिमवांश्च तथा त्रयम् ॥

एव मुत्तरभागे तु नीलः श्वेतश्च शृङ्गवान् ।

पश्चिमे गन्धमादास्थं केतुं वै केतुमाल्यकम् ।  
 एवं द्वादशसंयुक्तं मेरुपर्वतनायकम् ॥  
 सोपवासः शुचिर्भूत्वा विशेषात् पूजयेच्छिवम् ।  
 महास्नानं प्रकर्त्तव्यं महापूजायवा सुतः ॥  
 पूजान्ते देवदेवाग्रे रत्नमेरुं प्रकल्पयेत् ।  
 प्रदद्याच्छिवविप्राय शिवमन्त्रमनुसरेत् ॥  
 महास्नानं महापूजा च लिङ्गपुराणे ।  
 महास्नानञ्च यः कुर्याद्भूतेन विधिनेव तु ।  
 स याति मम सायुज्यं स्थानेष्वेतेषु सुव्रते ॥  
 स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः ।  
 पलानान्ते सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥  
 स्नाप्य लिङ्गं मदीयञ्च गव्येनैव घृतेन च ।  
 विशोध्य सर्वद्रव्यैस्तु यावद्भिरभिषिञ्चति ॥  
 महास्नाने प्रसक्ते तु स्नानमष्टगुणं स्मृतम् ।  
 जलेन केवलेनैव गन्धतोयेन शक्तितः ॥  
 अनुलेपनञ्च तत्सर्वं पञ्चविंशत्यलेन वै ।  
 शमीपत्रं च विधिना बिल्वपत्रं च पङ्कजम् ॥  
 अथान्यानि च पत्राणि बिल्वपत्रं न सन्त्यजेत् ।  
 दशद्राणैस्तु नैवेद्यमष्टद्राणैरथापि वा ॥  
 दशद्रोणसमम्पूज्यमाढके तु विधीयते ।  
 वित्तहीनस्य भक्तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥  
 भेरोमृदङ्गसुरजतिमिलापटहादिभिः ।

वादित्रैर्विविधैश्चान्यै रान्दोलैर्विविधैरपि ॥

जागरङ्कारयेत्तत्र प्रार्थयेत्तु तथाक्रमम् ।

स्वभृत्यपुत्रदारैश्च तथा सम्बन्धिवान्यवैः ॥

सार्द्धं प्रदक्षिणं कृत्वा प्रार्थयेत्क्षिप्रमैश्वरम् ।

द्रव्यहीनैः क्रियाहीनैः अज्ञाहीनैः सुरेश्वर ॥

कृतं वाप्यकृतं वापि क्षन्तुमर्हसि शङ्कर ।

इत्युक्त्वा चैव रुद्रञ्च त्वरितं शान्तिमेव च ॥

मं इत्येव महावीजं तथा पञ्चाक्षरस्य वै ।

मेरीरनुमन्त्रणमन्वास्तु कालोत्तरणवीक्ताः ।

नमः काञ्चनदेवाय धराधराय वै नमः ।

ब्रह्मविष्णोश्शुक्लाय धरानाभिस्थिताय च ॥

नगद्वादशनाथाय सर्वपापापहारिणे ।

शिवभक्ताय शुद्धाय त्राणं मे कुरु सर्वदा ॥

निष्पापःपितृभिः सार्द्धं शिवं गच्छामि हं नमः ।

त्वं शिवस्तु शिवस्याग्रे शिवोहञ्च शिवाय च ॥

निवेदयामि भक्त्या तु पितृणां तारणाय चेति ।

‘तथा वस्त्राश्चसहिती मेरुस्तत्रपुण्यफले शृणु ॥

लक्षयोजनमानस्य मेरीर्ये परमाणवः ॥

तावत्कल्पसहस्राणि शिवलोके महोयते ।

उदरेन्नरकात्सोपि त्रिमसकुलमन्ततिम् ॥

तदन्वयगता ये तु डिम्भाडिभ्रमता नराः ।

महापातकिनश्चान्ये तथा विश्वामघातकाः ॥

गुरुद्रोहकृता ये तु म्रूणहाः पितृघातकाः ।

प्रसवे तु मृता नारी कुमारी शीलदूषिता ॥  
 तां वा रुद्रस्य सामीप्यं स नयेन्मेरुदानकृतम् ।  
 मेरुदानञ्च मनसा यः स्मरेत्तु शिवाग्रतः ॥  
 यात्यसौ शिवलोकन्तु देहान्ते धौतकिल्बिषः ।  
 हेममेरुप्रमाणन्तु फलञ्चैव शृणुष्व तत् ॥  
 पलानान्तु सहस्रेण मय्ये मेरुं प्रकल्पयेत् ।  
 शृङ्गत्रयसमायुक्तं ब्रह्मविष्णुहरान्वितम् ॥  
 एकैकं पर्वतं तस्य शतैकैकेन कारयेत् ।  
 मेरुणा सह पूर्व्वेण विख्यातास्तु त्रयोदश ॥  
 एवं शिवाग्रतो मेरुं दातव्यस्तु प्रयत्नतः ।  
 अयनेषु च सर्वेषु ग्रहणेषु विशेषतः ॥  
 आचार्याय प्रदातव्यः संहितापारगाय च ।  
 पूर्व्वोक्तस्य महामेरोः सनगस्य महात्मनः ॥  
 शिवलोके वसेत्सोपि यावत्तत्परमाणवः ।  
 पितृन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् ॥  
 पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च तारयेत्किमतः परम् ।  
 भोगान् भुक्त्वा महीं कृतस्त्रां भुङ्क्ते च शिवभाविनः ॥  
 दरिद्रो रूप्यमेरुन्तु हेममानेन कारयेत् ।  
 पर्व्वता द्वादश तथा सङ्कल्प्या रचनान्विताः ॥  
 उत्तरे ह्ययने देयं देयं वा ग्रहणद्वये ।  
 प्रागुक्तान्तु फलान्तस्य भवत्यत्र न संशयः ॥  
 भूमिमेरुप्रमाणन्तु कथ्यमानं शृणुष्व तत् ।  
 विषयं मण्डलञ्चाथ ग्रामं वा पर्व्वतं स्मरेत् ॥

शेषास्तदष्टमांशेन नगाःस्यूरविसंख्यया ।  
 भूमिपर्वतपुण्यन्तु कोवा वर्ष्मयितुं क्षमः ॥  
 परमाणुत्रजोयावत् क्षितीशो भवति ध्रुवम् ।  
 तावत्कोटिसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥  
 भोगान् भुक्त्वा ततोराजा जायते योगिनां कुले ।  
 ज्ञानं प्राप्य तदा तस्य पुनर्जन्म न विद्यते ॥  
 हस्तिमेरुं ततोवक्ष्ये संक्षेपात् पार्वतीसुत ।  
 न वृद्धं न तथा बालं रत्नपुच्छसुशोभितं ॥  
 शूरं सर्व्वगुणोपेतं घण्टाचामरभूषितं ।  
 नक्षत्रमालासंयुक्तं शस्त्रध्वजविभूषितं ॥  
 दिव्यवस्त्रसमायुक्तं सुवर्णरचनायुतं ।  
 सूर्य्यस्य ग्रहणे देयं गुग्गु तं शिवाग्रतः ॥  
 तेन दत्तेन दत्तं तु लक्ष्यो जनपर्व्वतं ।  
 पुरुषत्रयसमायुक्तं पर्व्वतद्वादशान्वितं ॥  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यः शिवसायुज्यतां व्रजेत् ॥  
 पितरस्तस्य मोदन्ते रुद्रलोके समन्ततः ।  
 एतत्तत्र समाख्यातं हस्तिदानं तन्मामतः ॥  
 अथाश्वमेरुर्वा देवो योदत्तो रविणा पुरा ।  
 श्वेतैर्व्विनीतेः सुवर्णेः प्रत्यग्रैः पञ्चमंख्यया ॥  
 मध्ये मेरुः कल्पितव्योरविसंख्यास्तु पर्व्वताः ।  
 सवस्त्रहेमदारैश्च सप्त वा ध्वजभूषिताः ॥  
 वेशाख्यां वाद्य कार्त्तिक्यां दातव्यस्तु शिवाग्रतः ।  
 विप्राय शिवभक्ताय संहितापारगाय च ॥

तस्मै देयो यथोक्तस्तु हयमेरुर्विधानतः ।  
 संपूज्य परया भक्त्या हेमकङ्कण-कुण्डलैः ॥  
 रसनामुकुटेनैव अङ्गुलीयहयेन च ।  
 सर्वेषां चैव दाने तु भूषणैर्भूषयेत्तदा ॥  
 अकृत्रिमैर्भूषणैस्तु राजा मेरुं विभूषयेत् ।  
 अश्वमेरुप्रदानेन रुद्रलोके महीयते ॥  
 यावन्त्यश्वेषु रोमाणि तावद्वर्षायुतानि च ।  
 महाकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥  
 अश्वालाभे दरिद्रस्तु गोमेरुम्बा प्रकल्पयेत् ।  
 अश्वसंख्याप्रमाणेन फलं चैतत् समं भवेत् ॥  
 अथ वा वस्त्रमेरुश्च दातव्यस्तु शिवाग्रतः ।  
 भारमात्रेण पद्मैस्तु नानावर्णैः सुपर्वतः ॥  
 मध्ये मेरुः कल्पनीयो वस्त्रैः शेषांस्तु कल्पयेत् ।  
 मेरवस्तस्य मानेन नानावर्णैः सुशोभितैः ॥  
 प्रत्येकं पर्वताः कल्प्या हेमशृङ्गाः सुवर्णकाः ।  
 शिवभक्ताय विप्राय दातव्यास्तु शिवाग्रतः ॥  
 दिव्यैश्वर्यपदं याति सहस्रक्रतुसम्भवं ।  
 दिव्यं वर्षशतं सम्यक् कुर्याद्भोगं यथेष्टया ॥  
 चक्रवर्त्तित्वमभ्येति ज्ञानवान् जायते तदा ।  
 शिवालयं ततो याति न भूयो जन्म चाप्नुयात् ॥  
 अथ वा घृतमेरुस्तु दातव्यः कथ्यते मया ।  
 मेरुः पलानां मध्येतु सहस्रैः पञ्चभिर्हितः ॥  
 शतैः पञ्चभिरेकैकं पर्वतं तत्र कल्पयेत् ।



त्रिशृङ्गं त्रिपलं मेरोः काञ्चनं देवतार्चनं ॥  
 एकैकपलिकं शेषपर्वते वस्त्रभूषिते ।  
 कृत्वा पूजां विशेषेण शिवस्याग्रे प्रकल्पयेत् ॥  
 शिवभक्ताय विप्राय दातव्यः शिवमिच्छता ।  
 कुलमुद्धरते सोऽपि पैतृकं मातृकं तथा ॥  
 दिव्यं वर्षगतं सार्द्धं \* रुद्रलोके महीयते ।  
 भारते पृथिवीखण्डे पतिर्भवति नान्यथा ॥  
 एवं वै खण्डमेरुन्तु सितखण्डेन कल्पयेत् ।  
 रुद्रलोकपदं याति पितृभिः सह मोदते ॥  
 अथ वा धान्यमेरुन्तु शिवस्याग्रे प्रकल्पयेत् ।  
 पञ्चखारोमितं मध्ये मेरुन्यान्येन कल्पयेत् ॥  
 एकैकं खारिमात्रेण पर्वतं शेषमादिशेत् ।  
 पूर्ववद्वेमशृङ्गन्तु सवस्त्रं परिकल्पयेत् ॥  
 शिवपूजावमाने तु शिवविप्राय दापयेत् ।  
 कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥  
 पितरस्तस्य मोदन्ते ब्रह्मलोके तथा चिरं ।  
 एतदष्टांगमानेन तिलमेरुं प्रकल्पयेत् ॥  
 शृङ्गाणि पूर्ववत्तस्य तथाचान्यनगेषु च ।  
 तिलमेरुः प्रदातव्यः शिवस्याग्रे गुरोः सदा ॥  
 प्रयाति शिवसायुज्यं बन्धुभिः सहितो नरः ।  
 दशकोटिसहस्राणि भुक्त्वा भोगान् यथेच्छया ॥  
 समस्तमेदिनीं भुङ्क्ते शिवे पश्चात् प्रलीयते ।

इति द्वादशसंख्याताः पर्वताः कथितास्तव ॥  
 अथ मन्त्रं तथाकालं ज्ञात्वा मेरुं प्रदापयेत् ।  
 अयनेषु च सर्वेषु ग्रहणेषु विशेषतः ॥  
 मेरुप्रदानं कर्तव्यमुपोष्य सुचिरं सदा ।  
 इति शैवद्वादशमेरुदानानि ।

हंस उवाच ।

भूय एव महाबाहो शृणु दानं महाफलं ।  
 यद्वत्त्वा पुरुषोराजन् नेह संजायते पुनः ॥  
 मेरुर्हंसमयश्चैव त्रिशङ्कोराजतोऽपि वा ।  
 पलत्रयेण सौवर्णां त्रिंशत्या राजतैः पलैः ॥  
 ताम्रैः पञ्चाशता प्रोक्ता पलानां कांस्यकस्तथा ।  
 लोहश्च भारमात्रस्तु सीसकस्य तथा स्मृतः ॥  
 लवणस्याप्येव मेव ब्रीहीणामेव मेव च ।  
 भारद्वयेन खातस्तु गौडः स्यात्पञ्चभारकः ॥  
 कास्तूरिकः पञ्चपलः कार्पूरः पलत्रिंशतेः ।  
 कौङ्कुमः स्याच्छतपलः कार्पासः षड्त्रिंशभारकः  
 एवं द्रव्यविशेषैस्तु मेरुः कार्य्याविजानता ।  
 यथा गमं तथा कार्य्यं नात्र कार्य्या विचारणा ॥  
 विचारे क्रियमाणे च हेतुकत्वं प्रसज्यते ।  
 हेतुप्रतिष्ठा विज्ञेयः पुरुषोरागदूषितः ॥  
 रागादिदोषदुष्टस्तु पुरुषो नात्र संशयः ।  
 तस्मान्मेरोः प्रमाणन्तु भाषितं ब्रह्मणा स्वयं ॥

आस्तिकाय विनीताय प्रोच्यते कृपया विभो ।  
 नास्तिकाय न वक्तव्यं वाक्यं धर्मं विजानता ॥  
 कृत्वा मेरुं त्रिशृङ्गन्तु सौवर्णं राजतादिकं ।  
 अर्चयेत्\* पीतकुसुमैर्जागरं कल्पयेत्ततः ॥  
 ब्राह्मणं पात्रभूतन्तु काले तु ग्रहणादिके ।  
 आह्वय प्रक्षाल्य पादौ आसने तूपवेशयेत् ॥  
 मेरुं पर्वतराजन्तु गृहाण त्वं द्विजोत्तम ।  
 ममानुकम्पया ब्रह्मन् वराहः प्रीयतामिति ॥  
 कोदादिति तु मन्त्रेण ग्रहः कार्यो विजानता ।  
 मेरुं समर्प्य विप्राय द्रव्येण स्वेच्छया कृतं ॥  
 तावद्वर्षसहस्राणि कोटिं वापि महीयते ।  
 वसन्ति स्वर्गलोकेषु यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥  
 इति त्रिणुधर्मीको मेरुदानविधिः ।

अथ पञ्चपर्वतदानविधिः ।

तिलपर्वतदानञ्च तथा लवणपर्वतः ।  
 कार्पासगुडयोश्चैव तथा सर्षपपर्वतः ॥  
 धान्यपर्वतदानस्य विधिरत्रापि कीर्तितः ।  
 फलं पुण्यं प्रमाणं च तत् प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥  
 आषाढे कार्तिके चैव माघ-वैशाखयोरपि ।  
 पूर्णमास्यां तु दातव्यं दानमेतद्युधिष्ठिर ॥  
 भूप्रदेशे तु लिप्तेषु पुष्पकीर्णैः सुशोभिते ।  
 तिलानां बहुवर्णानां कुम्भं कुम्भाद्वैमेववा ॥

विंशतिद्रोणमथवा षोडशद्रोणमेव वा ।

तिलद्रोणाष्टकैर्वापि चतुर्भिरथ वा पुनः ॥

विभिर्द्रोणैरलाभे तु कुर्वीत तिलपर्वतम् ।

कुम्भोऽत्र विंशतिद्रोणपरिमाणः तच्च द्रोणैः षोडशभिः खारी  
विंशत्या कुम्भ उच्यते इत्यादिना परिभाषायामुपदर्शितं, कुम्भो  
द्रोणद्वयमिति गृह्यमाणे विंशतिद्रोणादिकम् प्रथमकल्याः\*दनुक-  
ल्पमनुकल्प्य न समञ्जसं स्यात् इतरत्र तु सार्धकुम्भेन प्रथमकल्पः  
विंशतिद्रोणादिरनुकल्प इति युक्तं स्यात् ।

सुवर्णैरजतैस्ताम्रैः कांस्यैः शौक्तैश्च मौक्तिकैः ।

इक्षुदण्डसमाकीर्णान्वनखण्डांश्च कारयेत् ॥

गुडेन विविधान् कुर्यात् पाषाणशिखरांस्तथा ।

ताम्बूलफलपुष्पाद्यैरलङ्काराद्यनेकधाः ॥

कुर्यात् मृगपशुपक्षिणस्ताम्रसौवर्णराजतान् ।

द्वादश पूर्णकुम्भांश्च फलशाखादिशोभितान् ॥

स्थापयित्वा तु सर्वत्र पूजां कृत्वा विधानतः ।

कृत्वा प्रदक्षिणञ्चैव जानुभ्यां धरणीं व्रजेत् ॥

लवणस्य सर्षपाणां तत्प्रमाणं तथैव च ।

कार्पासपर्वतञ्चापि तुल्यसंख्यं तथैव च ॥

पुण्यकालेषु लभते नात्र कार्या विचारणा ।

पर्वतस्थोत्ररे पार्श्वे ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरान् ॥

स्थापयेत् लोकपालांश्च दिशासु विदिशासु च ।

अर्चयेदर्घपाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥

\* दनल्प मनुकल्प इति पुस्तकान्तरे ।

तोरणैश्च पताकाभिः शोभयित्वा चतुर्दिशम् ।  
 अग्निकार्यञ्च कुर्वीत तिलाद्यैः पञ्चवारुणैः ॥  
 एवं यः कुरुते भक्त्या शैलदानमनुत्तमम् ।  
 क्रीडाशैले महारम्ये क्रीडित्वा कालमीप्सितत् ॥  
 धर्मेण पूज्यमानोऽथ शक्रलोकं स गच्छति ।  
 शक्रलोकं नयेदन्ते कुलकोटिशतत्रयम् ॥  
 पञ्चान्नहोदये रम्ये सोमराजपुरोत्तमे ।  
 रमित्वा वर्षकोटिन्तु द्विगुणं परिसंख्यया ॥  
 भूयो जन्मत्रयं राज्यं भुङ्क्ते निहतकण्टकम् ।

इति विष्णुधर्मोक्तः पञ्चपर्वतदानविधिः ।

अथ शिखरदानविधिः ।

राम उवाच ।

शिखराणां समाचक्ष्व दानान्विपुरनाशनम् ।  
 यानि दत्त्वा तु दौर्भाग्यं दौर्गत्यं न प्रजायते ॥

शङ्कर उवाच ।

शृणु राम प्रवक्ष्यामि शिखराणां यथाक्रमम् ।  
 दानं देयं यथा येन तत् शृणुष्व सनातनम् ॥  
 माघशुक्लतृतीयायां मार्गशीर्षस्य वा पुनः ।  
 तृतीया वाथ वैशाखे शुक्ला या रोहिणीयुता ॥  
 प्रौष्ठपद्यां तृतीयायां विशेषेण तु भार्गव ।  
 गुडेक्षु वस्त्र-लवण-धान्यका-जाजि-शर्कराः ॥  
 खर्जूरतन्दुलद्राक्षाक्षौद्रैर्मलयजेन च ।

फलैर्मनोहरैः रम्यैः शिखराणि प्रदापयेत् ॥

एषामन्यतमं दद्याद्यथाश्रद्धं विधानतः ।

आत्मप्रमाणं कुर्वीत प्रादेशाभ्यधिकं शुभं ॥

मुवि गोमयलिप्तायामिच्छुपत्राणि संस्तरेत् ।

ततः कुर्वीत शिखरं गौरीस्थानमनुत्तमम् ॥

द्विहस्तं मूलं कर्त्तव्यं हस्तमात्रं शिरस्तथा ।

भित्तिरिच्छुदलैः कार्या वेष्टयेद्रक्तवाससा ॥

दानद्रव्येण तन्मध्यं पूरयेद्भृगुनन्दन ।

इच्छुपत्रकटे गौरीं तस्योपरि निवेदयेत् ॥

चतुर्भुजां हेममयीं पूजयेत् कुङ्कुमेन तु ।

गौरीरूपमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

वेष्टयेत् सूक्ष्मवस्त्रेण देवीं शिखरमेव च ।

अष्टाङ्गं पूजयेद्गौरीं मन्त्रैरेतैस्तु भक्तितः ॥

नमो भवान्यै पादौ तु कामिन्यै जानुनी ततः ।

वामदेव्यै तथाचौरु नाभिञ्चैव जगत्प्रिये ॥

आनन्दायै तु हृदयं नन्दायै पूजयेत् स्तनौ ।

सुभद्रायै मुखं पूज्यं ललितायै नमः शिरः ॥

एवं पूज्य महादेवीं शिखरानभिमन्त्रयेत् ।

यस्मान्निवासः पार्वत्याः शिखर त्वं सुरैर्वृतः ॥

तस्मान्नाम्पाहि भगवंस्त्वं गौरीशिखरः सदा ।

एवमामत्र शिखरं तृतीयायां यतव्रतः ॥

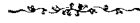
ततः स्नात्वा प्रभाति तु दद्यान्मन्त्रेण भक्तितः ।

यस्मात्त्वं सर्वभूतानामुपरिष्ठादवस्थितः ॥

तस्माच्छिवः प्रीयतां मे तव दानात्सदानघः ॥  
 अर्द्धभागं चतुर्थं वा पञ्चमं वा ततो गुरोः ।  
 दत्त्वा शेषन्तु बन्धूनां शिष्टानां स्वजनस्य च ॥  
 अनुजीविस्वभृत्यानां दुर्गतानां च कामतः ।  
 एवं दत्त्वा तु शिखरं गौर्या भुञ्जीत वाग्यतः ॥  
 स मुक्तकेशः सम्प्राश्य क्षीरं घृतमथापि वा ।  
 विधिनानेन योदद्यात् गौर्याः शिखरमुत्तमम् ॥  
 स वसेद्भवने देव्याः कल्पकोटिशतत्रयम् ।  
 पुण्यक्षयादिहागत्य जायते पृथिवीपतिः ॥  
 अनेन विधिना देयं विधिहीनं न कारयेत् ।  
 विधिहीनं कृतं सर्व्वं न दातुः फलदम्भवेत् ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरे शिखरदानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर  
 सकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्व्वर्गचिन्ता-  
 मणौ दानखण्डे पर्व्वतदानप्रकरणम् ।

## दानखण्डम् सप्तमोऽध्यायः ।



अथातिदानविधानमुच्यते ।

अथातिदानानि सतां हिताय  
हेमाद्रिसूरिः प्रकटी करोति ।  
दानेन येषां सक्तदप्यनल्प  
कल्यान्तसाक्षी वरभोगयोगः ।

कानि पुनस्तानीत्यपेक्षायां भविष्यत्पुराणे ।  
त्रैलोक्यादुरतिदानानि गावः\* पृथ्वी सरस्वती ।  
नरकादुद्धरन्त्येव जपवापनदोहनैरिति ॥  
अत्र यद्यपि धेनुशब्देन स्वरूपतो गौरेवाभिधीयते  
तथापि धेनुशब्दसाधारण्यादिऽप्रकरणे गुडधेन्वादीनामपि  
सन्निवेशो युक्तः तासु च क्रमेण निरूप्यमाणसु दशमौ स्यात्  
स्वरूपत इति स्वरूपधेनोरन्ते स्थितत्वात् गुडधेन्वादय एव  
प्रथमतो निरूप्यन्ते ।

तदुक्तं मत्स्यपुराणे ।

यास्तु पापविनाशिन्यः पठान्ते दशधेनवः ।  
तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप ॥

---

\* धेनुरिति पुस्तकान्तरे ।



प्रथमा गुडधेनुः स्यात् घृतधेनुस्तथापरा ।  
 तिलधेनुस्तृतीया तु चतुर्थी जलसंज्ञिता ॥  
 क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथापरा ।  
 सप्तमी शर्करा धेनुः\* दधिधेनुरथाष्टमी ॥  
 रसधेनुः† नवमी स्याद्दशमी स्यात् स्वरूपतः‡ ।  
 एतावत्तु विधानञ्च स्तमाचक्ष्व जगत्पते ॥  
 किं रूपं केन मन्त्रेण दातव्या तदिहीच्यताम् ।

मत्स्य उवाच ।

गुडधेनुविधानस्य यद्रूपमिह यत्फलम् ।  
 तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्व्वपापविनाशनम् ॥  
 कृष्णाजीनं चतुर्हस्तं प्राचीवं विन्यसेद्भुवि ।  
 गोमयेनोपलिप्तायां दर्भानास्तीर्य्य सर्व्वतः ॥  
 लघ्वे णकाजिनन्तद्वत्सस्य परिकल्पयेत् ।  
 प्राङ्मुखीं प्रापयेद्धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम् ॥  
 एणकाजिनं, कृष्णाजिनं, प्राङ्मुखीं प्राक्शिरसमित्यर्थः ।  
 तदुत्तरेण वत्साऽपि तथैव परिकल्पनीयः ।  
 उत्तमा गुडधेनुः स्यात्सदाः॥ भारमनुत्तमम् ।  
 वत्सभारेण कुर्व्वीत भाराभ्यां मध्यमः स्मृतः ॥  
 अर्द्धभारेण वत्सः स्यात् गृहवित्तानुसारतः ।

\* नवणस्याष्टमी तथेति पुस्तकान्तरे ।

† कार्पासधेनुरिति पुस्तकान्तरे ।

‡ भारचतुष्टयमिति पाठः पुस्तकान्तरे ।

भाराः 'परिभाषायां व्याख्यातः' गृहवित्तानुसारत इति  
त्रयमुत्तममध्यमादिकल्पना निजवित्तानुसारतः कर्त्तव्येत्यर्थः ।

धेनुवत्सौ घृतास्यौ तौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ ।

शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणी ॥

सितसूत्रासरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ ।

ताम्बकद्रुकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥

गद्रूकं, ककुत्प्रदेशः ।

विद्रुमभूयुगोपेतौ नवनीतस्तनान्वितौ ।

क्षोमपुच्छौ कांस्यदीहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥

सुवर्णशृङ्गाभरणी राजतखुरसंयुतौ ।

नानाफलमयैर्दन्तैर्घ्राणगन्धकरण्डकौ ॥

‘अत्र च सारतः परिमाणतश्च फलविशेष इति  
यथाशक्ति सुवर्णशृङ्गादित्वमवधेयम्’ ।

इत्येवं रचयित्वा तु धूपदीपैरथार्चयेत् ।

अथामन्त्रणमन्त्रः ।

ओं या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ।

धेनुरूपेण सा देवी मम\* पापं व्यपोहतु ॥

देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया ।

धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसीः ।

चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ॥

चतुर्मुखस्य या लक्ष्मी र्यालक्ष्मीर्धनदस्य च ।  
 लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥  
 स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजान्तथा ।  
 सर्वपापहरा धेनुः तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥  
 एवमामत्र तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

अत्रैष दानवाक्यप्रयोगः ।

ओं अद्य अमुकस्मिन् काले अमुकसगोत्राय अमुकशर्मणे  
 ब्राह्मणाय इमां गुडधेनुं यथोक्तसर्वोपकरणवतीं यथोक्तक्षमवत्स-  
 हितां विष्णुदैवतां अमुकसगोत्रोऽहं अमुकशर्मा अमुककामस्तु-  
 भ्यमहं सम्प्रददे मम अमुकसगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय  
 एतद्गुडधेनुदानप्रतिष्ठार्थं सुवर्षं दक्षिणा इदं तुभ्यमहं सम्प्रददे  
 न ममेति दक्षिणा तु त्रयोनिष्कशतं पार्थत्यादिना परिभाषाया-  
 मुक्ता ब्राह्मणस्तु पुच्छदेशे प्रतिगृह्य स्वस्ति कुर्यात् ।

विधानमेतद्देनूनां सर्वासामिह पठ्यते ।

‘सर्वासाम्प्रत्यक्षधेनुव्यतिरक्तानामित्यवगन्तव्यं ।

तथा एतदेव विधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः ।

मन्द्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि ॥

यथाश्वं प्रदातव्या भुक्तिमुक्ति-फलप्रदाः ।

अशेषयज्ञफलदाः सर्वपापहराः शुभाः ।

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽयवा पुनः ॥

गुडधेन्वादयो देया उपरागादिपर्वसु ॥

‘अत्र घृतादिधेनुद्रव्यपरिमाणमपि गुडधेनूक्तमेव ।

विधानमेतद्देनूनां सर्वासामपि पठ्यते

इति सामान्येनातिदेशात् ।

कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासान्तु राशय इति तु भारचतु-  
ष्टयादिपरिमितस्य द्रवद्रव्यस्य कुम्भाधारतयावस्थापनप्रकारकथनं ।

यत्तु पद्मपुराणादावेकेनैव घटेन घृतादिधेनुकथनं द्रोण-  
मात्रेण च तिलधेनुकथनं तदेतद्धेनुप्रकारात् प्रकारान्तराभि-  
प्रायेणेति कल्पतरुः । दानविवेकेन तु पलसहस्रपरिमाणः कुम्भ  
इति निर्णीतं, केचित्तु द्वादशपलाधिकानि पञ्चपलशतानि कुम्भ-  
माहुः । तच्च पलद्वयन्तु प्रसृतिमित्यादिना परिभाषायां दर्शितं ।

ततश्च यथाधिकारं व्यवस्थेति, वज्रपुराणे तु 'प्रथमा गुडधेनुः  
स्यादित्यादिकमभिधाय सप्तमी लवणधेनुस्तु दधिधेनुरथाष्टमी ।

नवमीतेन तैलेन गन्धैः प्रोक्ता तथापरा ।

रत्नैश्चान्ये महर्षय इति क्वचित् पाठः ।

कुम्भाः स्युरत्नधेनूनां द्रोणेनैव हि राशयः ।

सर्वाः समफलाः प्रोक्ता मध्यमीत्तमकन्यसाः ॥

स्वशक्तितो नृपश्रेष्ठ दरिद्रस्य चतुर्गुणाम् ।

कन्यसा सेखराणान्तु दरिद्राणां सदोत्तमा ॥

एतदेव विधानं स्यात् सर्व्वशब्द यशस्कृतः ।

गुडधेन्वादयोदेया उपरागादिपर्व्वसु ॥

कार्त्तिक्यान्तु तथा माघ्यां युगादिषु च पर्व्वसु ।

समुपोथ्य नरोदद्यात् सप्तम्यान्तु दिने रवेः ॥

दिनत्रयं तदाहारी याति विष्णोः परं पदम् ।

इह लोकेऽपि सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च ॥

अष्टमं लोकमाप्नोति मरणे स्मरणं हरेः ।

दशाव्वुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित् ।  
 न शोकदुःखमाप्नोति दौर्गत्यं जायते न च ॥  
 इति गुडधेन्वादिदानविधिः ।

अथ तिलधेनुदानम् ।

विष्णुधर्मात् ।

वशिष्ठ उवाच ।

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि केशवप्रीणनाय च ।  
 दत्त्वा भवति यस्याश्च नरेन्द्र विधिरुत्तमः ॥  
 यान्दत्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः पितृघ्नो गुरुतल्पगः ।  
 अगारदाहो गरदः सर्वपापयुतोऽपि वा ॥  
 महापातकयुक्तश्च संयुक्तश्चोपपातकैः ।  
 मुच्यते ह्यखिलैः पापैर्विष्णुलीकञ्च गच्छति ॥  
 अनुलिप्ते महीपृष्ठे वस्त्राजिनकुशावृते ।  
 धेनुं तिलमयीं कृत्वा सर्वरत्नैरलङ्कृताम् ॥  
 धेनुं द्राणेन कुर्वीत आढकेन तु वत्सकम् ।  
 सुवर्णशृङ्गीं रूप्यखुरीङ्गन्वघ्राणवतीं तथा ॥  
 कुर्याच्च शर्कराजिह्वां गुडास्यामविकम्बलाम् ।  
 इक्षुपादां ताम्रपृष्ठां शुचिसुक्ताफलेक्षणां ॥  
 प्रशस्तपत्रश्रवणां फलदन्तवतीं शुभाम् ।  
 स्रग्दामपुच्छां कुर्वीत नवनीतस्तनान्विताम् ॥  
 सितसूत्रशिरालाञ्च सितसर्षपरोमिकाम् ।  
 फलेर्मनीहरेर्भक्ष्यैर्मणिमुक्ताफलान्विताम् ॥

सितवस्त्रयुगच्छन्नां वण्टाभरणभूषिताम् ।  
 ईदृक्संस्थानसम्पन्नां कृत्वा श्रद्धासमन्वितः ॥  
 कांस्थोपदोहनां दत्त्वा केशवः प्रीयतामिति ।  
 या लक्ष्मीः सर्वदेवानां या च देवेष्ववस्थिता ॥  
 धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ।  
 देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया ॥  
 धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ।  
 विष्णोर्वर्क्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ॥  
 चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ।  
 चतुर्भुजस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्जनदस्य च ॥  
 या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ।  
 स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजान्तथा ॥  
 सर्वपापहरा धेनुरस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ।

वज्रिपुराणेत्ययं मन्त्रः ।

तिलाश्च पितृदेवत्या निर्भिताश्चेह गोसवे ।  
 ब्रह्मणा तन्मयी धेनु र्दत्ता प्रीणातु केशवमिति ॥  
 ततः प्रदक्षिणं कृत्वा पूजयित्वा प्रणम्य च ।  
 सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्तेत्युक्त्वा विसर्जयेत् ॥  
 अनेन विधिना दत्त्वा तिलधेनुं नराधिपः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥  
 यश्च गृह्णाति विधिवद्दीयमानां प्रमोदयेत् ।  
 दीयमानां प्रपश्यन्ति येच संहृष्टमानसाः ॥

तेऽप्यशेषावनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमाङ्गतिं ।  
 प्रशान्ताय सुशीलाय वेदव्रतधराय च ॥  
 धेनुं तिलमयीं दत्त्वा न शोचति कृताकृते ।  
 त्रिरात्रं यस्तिलाहारस्तिलधेनुप्रदो भवेत् ॥  
 एकाहमथ तानन्ति तद्गतेनान्तरात्मना ।  
 दानादिशुद्धपापस्य तस्य पुण्यकृतो नृपः ॥  
 चान्द्रायणादप्यधिकं कथितं तिलभक्षणम् ॥

वाराहपुराणे ।

ह्रीता उवाच ।

तिलधेनुं जलधेनुं रसधेनुञ्च पार्थिव ।  
 देहि शीघ्रं येन भवान्क्षुत्तृषावर्जितो दिवि ॥  
 रमते यावदादित्यस्तप्यते दिवि चन्द्रमाः ।  
 एवमुक्तस्ततो राजा विधानं पृष्टवानिदम् ॥  
 यथा भवेत्तिलधेनोस्तच्छृणुष्व नराधिप ।  
 चतुर्भिः सेतिकाभिस्तु प्रस्थ एकः प्रकीर्त्तितः ॥  
 ते षोडश भवेद्देनुश्चतुर्भिर्वत्सको भवेत् ।  
 द्रक्षुदण्डमयाः पादा दन्ताः पुष्पमयाः शुभाः ॥  
 नासा गन्धमयी तस्या जिह्वा गुडमयी तथा ।  
 पुच्छे स्रक्कल्पनीया स्यात् घण्टाभरणभूषिता ॥  
 ईदृशीं कल्पयित्वा तु स्वर्णशृङ्गीं प्रकल्पयेत् ।  
 कांस्यदोहां रूप्यखुरां पूर्वधेनुविधानतः ॥  
 तिलधेनुं ततो दत्त्वा द्वादशान्नियतः शुचिः ।

आत्मानन्तारयेद्गर्गन्नरकात्कामभागभवेत् ॥

'मेतिका कुडवः, सच द्वादशप्रसूतिपरिमितः ।

महाभारते ।

सुदक्षिणां काञ्चनचारुशृङ्गीं

कांस्योपदोहान्द्रविणीत्तरीयां ।

धेनुं तिलानानन्ददतो द्विजाय,

लोका वसूनां सुलभा भवन्ति ॥

तथा । धेन्वाः प्रमाणेन समप्रमाणं,

धेनुं तिलानामपिच प्रदाय ।

तथा । पानीयवापीञ्च यमस्य लोके,

न यातनां काचिदुपैति मर्त्यः ॥

तथा । गोमत्या विद्यया धेनुं तिलानामभिमन्त्रय यः ।

रसरत्नमयीं दद्यान्नापि शोचेत् कृताकृते ॥

गोमतीविद्यापि तत्रैव ।

तद्यथा । गावोमामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्गः पयोमुचः ।

सुरभ्यः सौरभेयश्च सरितः सागरं यथा ॥

गावः पश्याम्यहन्नित्यं गावः पशन्तु मां सदा ।

गावोस्माकं वयन्तासां यतोगावस्ततोवयम् ॥

एवं रात्रौ दिवा वापि समेषु विषमेषु च ।

महाभयेषु च नरः कीर्तयन्मुच्यते भयादिति ॥

आदित्यपुराणे ।

दरिद्रः खलु योदद्यात्तिलधेनुं विधानतः ।

गोमयेनोपलिप्याथ तत्र धेनुं समालिखेत् ॥



तिलैराकीर्य सर्वाङ्गं तिलधेनुं प्रकल्प्य च ।  
 खुरेषु चैव शृङ्गेषु देयं कनकमेव च ।  
 सचेलां दक्षिणां चैव ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 तिलधेनुं प्रयच्छेत्तु स्वर्गलोकञ्च गच्छति ।  
 पापैः सर्वैः प्रमुच्येत कर्मणा मनसा कृतैः ॥  
 तिलसंस्था च यावद्वै तावान् कोटिशतानि च ।  
 मोदते तत्र वर्षाणां वसुलोके न संशयः ॥  
 अथ मानुष्यमायाति कदाचित् कालपर्ययात् ।  
 धनधान्यसमृद्धे वै जायते महतां कुले ॥

इति तिलधेनुदानविधिः ।

पुलस्त्यउवाच । विधानं तिलधेनोर्यत्तच्छृण्व नराधिप ।  
 षोडशाटकमयीधेनुश्चतुर्भिर्वत्सको भवेत् ॥  
 इक्षुदण्डमयाः पादाः दन्ताः पुष्पमयाः शुभाः ।  
 नासा गन्धमयी तस्या जिह्वा गुडमयी तथा ॥  
 पुच्छे स्रक् कल्पनीया स्यात् घण्टाभरणभूषिता ।  
 ईदृशीः कल्पयित्वा तु स्वर्णशृङ्गौ प्रकल्पयेत् ॥  
 रौप्यखुरां कांस्यदोहां पूर्वधेनुविधानतः ।  
 एवंविधानां तां कृत्वा ब्राह्मणाय तु दापयेत् ॥  
 कृष्णाजिनस्थितां धेनुं वासोभिर्भूषितां शुभैः ।  
 सूत्रेण सूत्रितां कृत्वा पञ्चरत्नसमन्विताम् ॥  
 सर्वौषधिसमायुक्तां मन्त्रपूतान्तु दापयेत् ।  
 अन्नं मे जायतां मद्यः पानं सर्व्वरसांस्तथा ॥  
 कामान् मम्पादयास्माकं तिलधेनोर्द्विजार्पिता ।

गृह्णामि देवि त्वां भक्त्या कुटुम्बार्थं विशेषतः ॥  
 भरस्व कामैर्मां सर्वैस्तिलधेनो नमोस्तु ते ।  
 एवं विधानतो दत्ता तिलधेनुर्नृपोत्तमः ॥  
 सर्वकामसमावाप्तिं कुरुते नात्र संशयः ।  
 जलधेनुस्तथैवेह कुम्भे धेनुः प्रकल्पिता ॥  
 दत्ता तु विधिना कामान् सद्यः सर्वान् प्रयच्छति ।  
 धेनुश्च तत्त्वतोदत्ता पौर्णमास्यां नराधिप ॥  
 पितृंस्तारयते दुर्गान्नरकात् कामदा भवेत् ।  
 धृतधेनुस्तथा दत्ता विधानेन विचक्षणैः ॥  
 सर्वकामं समाप्नोति कुरुते कान्तिदा भवेत् ।  
 रसधेनुं तथा दत्त्वा कार्तिके मासि पार्थिव ॥  
 सर्वान् कामानवाप्नोति नित्यंसुगतिभाग्भवेत् ॥

इति पद्मपुराणोक्तः पञ्चधेनुदानविधिः ।

अगस्त्यउवाच । तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि दुर्गा येन प्रसीदति ।

अपि दुष्कृतकर्मापि यान्दत्त्वा निऋणो भवेत् ॥  
 प्रत्यक्षा येन देवी स्यात् राज्यपुत्रसुखावहा ।  
 भवति न चिरेणैव तां शृणुष्व नृपोत्तम ॥  
 देवदेवीमनुज्ञाप्य सुस्नातो विजितेन्द्रियः ।  
 पूजयेत् पुष्पगन्धाद्यैर्दीपधूपविचित्रकैः ।  
 हुत्वा हुताग्ने देवीं तथा द्रोणमयीं कुरु ॥

‘हुत्वा हुताग्ने देवी इति पूर्वोक्तहोमप्रकारेण देवीं प्रीणयित्वा’ ।

आटकेन भवेद्वत्स सर्व्वरत्नविभूषिता ।

हेमशृङ्गीरूप्यखुराङ्गन्धघ्राणां सुशीभनां ।  
 सुखं गुडमयं कार्यं जिह्वामन्नमयीं तथा ॥  
 कम्बला सूक्ष्मसूत्रन्तु पादा इक्षुमघ्रास्तथा ।  
 ताम्रपृष्ठं, भवेत्तस्या ईक्षणे मणिमौक्तिकैः ॥  
 चारुपत्रमयी कर्णौ दन्ताः फलमयास्तथा ।  
 नवनीतस्तनीं कुर्यात् पुष्पमालामयीं कुरु ॥  
 पुच्छन्तु मणिमुक्ताभिः फलैस्ताञ्च समर्चयेत् ।  
 सुभगम्भूयुगच्छन्नां चारुवस्त्रविभूषितां ॥  
 इष्टकसंस्थानसम्पन्नां कृत्वा यज्ञासमन्वितः ।  
 कांस्योपदोहनां दद्याद्देवी मे प्रीयतामिति ॥  
 मन्त्राभिमन्त्रितां कृत्वा तद्भक्त्या निवेदयेत् ।  
 यावन्ति तिलवस्त्राणां धातुमूलफलस्य च ॥  
 विद्यन्ते च रजोविन्दून् तावत् स्वर्गे वसेन्नरः ।  
 पितृन् विगतपापांश्च कृत्वा धस्ताद्गतानपि ॥  
 प्राप्य देव्याः शुभान् लोकान् स्थापयेदविचारणात् ।  
 तस्मिंस्तु रमते वत्स यावदाचन्द्रतारकौ ॥  
 तथा कालादिहायातो जायते पृथिवीपतिः ।  
 इहैव तेजःसम्पन्नो बहुपुत्रः सुखान्वितः ॥  
 पुनर्देव्यां रतो नित्यं, पूजयेद्दिधिनाचलं ।  
 प्राप्य योगशतैर्यत्तत् प्राप्नोति परमं पदं ॥  
 इति देवीपुराणीकस्तिलधेनुदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

अतः परंप्रवक्ष्यामि तिलधेनुविधिं क्रमात् ।

पूर्वाक्तमण्डलं कुर्याच्छिवपूजाञ्च पश्चिमे ॥

तस्याग्रे मध्यतो भूमौ पद्ममालिख्य शोभनं ।

वस्त्रैराक्षादितं पद्मं तन्मध्ये विन्यसेद्बुधं ॥

पूर्वाक्तमण्डलं, लिङ्गन्तुलापुरुषदानविहितमण्डलं तस्य मण्डलस्य पश्चिमे प्राङ्मुखः शिवः पूज्यः शिवस्य पुरतो मण्डलस्य मध्यभागे शालिचूर्णादिना पद्मं विलिख्य वस्त्रैराक्षाय तत्र तिल-पुष्पं न्यसेदित्यन्वयः ॥

त्रिलपुष्पन्तु कृत्वा तु हैमं पुष्पं विनिक्षिपेत् ।

विंशनिष्केण कर्त्तव्यं तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥

पञ्चनिष्केण कर्त्तव्यं-तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।

तिलपुष्पं, द्रोणादिपरिमिततिलराशिमयं,

पद्मिनी पुष्पं कृत्वा तत्र वस्त्राद्याकृन्ने हेमपद्मं न्यसेत्

तस्याग्रे कारये द्विद्वान् पद्मं तिलमयं शुभं ।

अर्जं द्रोणेन कर्त्तव्यमथ भारेण कारयेत् ॥

वस्त्रैराक्षाय तन्मध्ये स्वर्णपद्मं विनिक्षिपेदितिकामिकोक्तेः ।

तमाराध्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।

पद्मस्योत्तरदिग्भागे विप्रानेकादश न्यसेत् ॥

तानभ्यर्च्य विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।

आच्छाद्य उत्तमं शृङ्गं विप्रेभ्यो दापयेत् क्रमात् ॥

उष्णीषं च प्रदातव्यं कुण्डलैश्च विभूषयेत् ।

हेमाङ्गुलीयकन्दत्वा ब्राह्मणेभ्यो विधानतः ॥

एकादशैव वस्त्राणि तेषामग्रे प्रकीर्य च ।

तेषु वस्त्रेषु निक्षिप्य तिलखारीं पृथक् पृथक् ॥

कांस्यपात्रं शतपलं विभिद्यैकादशांशकं ।

इक्षुदण्डाश्च दातव्यास्तत्र तत्र पृथक् पृथक् ॥

गोशृङ्गे च हिरण्ये च द्विनिष्केण तु कारयेत् ।

राजतेन तु कुर्वीत खुरं निष्कद्वयेन तु ॥

एवं पृथक् पृथक् दत्त्वा तत्तिलेषु विनिक्षिपेत् ।

‘षोडशद्रोणा खारी, कांस्यपात्रं दोहनम् शतस्यैकादशांशकं-  
प्रत्येकं प्रत्येकं नवपलमित्यर्थः, तत्तिलेषु विनिक्षिपेदिति,

एवं हेमशृङ्गादीनि प्रत्येकं तिलखार्यां, निक्षिप्य स्वर्णशृङ्गा-  
द्युपेतास्तिलमध्ये धेनवः कल्पनीया इति रुद्रैकादशकमन्त्रैर्विप्रे-  
भ्यो दापयेत् ।

तथा पद्मस्य पूर्वदिग्भागे रवीन् द्वादश पूजितान् ।

एतेनैव तु मार्गेण तांश्च अद्वाप्तमन्वितः ॥

द्वादशादित्यमन्त्रेण दापयेद्देवमेव च ।

पूर्वदक्षिणदिग्भागे द्विजान् षोडश संस्थितान्

मूर्त्तिविद्येशैर्मन्त्रैश्च दापयेत् पूर्ववत् पुनः ।

अत्र पद्मोत्तरदिग्भागे एकादश विप्रा रुद्ररूपाः पूज्याः तभ्यः  
प्रागुक्तमेकादशधा स्थितं तिलखार्यादि देयं ।

मन्त्रस्तु ये देवासोदित्यैकादशस्थेत्यादिः ।

तथा पद्मस्य पूर्वदिग्भागे द्वादश विप्रानादित्यरूपानर्चयेत् ।  
तभ्योऽपि कांस्यपात्रं शतपलं द्वादशधा विभज्य पूर्ववत् सुवर्णं  
शृङ्गादियुतां प्रत्येकं तिलखारीं दद्यात् ।

मन्त्रश्च, यज्ञोदेवानामित्यादित्यलिङ्गकः ।

तथा पद्मस्य दक्षिणे भागे षोडश विप्रान् मूर्त्तिविघ्नेशरूपानर्चयेत् ।

मूर्त्तयोभवादिका अष्टौ ।

तद्यथा । भवः शर्व्वश्च रुद्रश्च पशुपत्युग्रसंज्ञकौ ।

महादेवश्च भीमश्च ईशानश्चाष्टमः स्मृतः ॥

‘विघ्नेशनामानि तु गणेशदाने वक्ष्यन्ते ।

तेभ्योऽपि शतपलं कांस्यपात्रं षोडशधा विभज्य पूर्व्ववत् प्रत्येकं सुवर्णशृङ्गाद्युपेतां तिलखारीन्दद्यात् ।

मन्त्रस्तु भवाय देवायेत्यादि-

प्रणवादिनमोन्तेन नाम्ना कर्त्तव्यः ।

यजमानेन कर्त्तव्यं सर्व्वमेतद्यथाक्रमम् ।

केवलं रुद्रदानं वा आदित्येभ्योऽथवा पुनः ॥

मूर्त्यादीनाञ्च वा देयं यथाविभवविस्तरम् ।

पद्मं विन्यस्य रजसा शेषं वा कारयेन्नृपः ॥

दक्षिणा च प्रदातव्या पञ्चनिष्केण भूषणम् ।

एतच्च पद्महारादि विघ्नेशदानान्तं सर्व्वं रुद्राद्यन्यतमोद्देश्यकं वा दानं मध्यपद्ममेकमेव वा कार्य्यं ।

सर्व्वत्र च मध्यपद्मं गुरवे देयम् ।

एवं कृत्वा विधानेन हेमाब्जं गुरवे ददेदिति वातुलोक्तेः ।

सर्व्वेष्वपि पक्षेषु भूषणं पञ्चनिष्कहेम्ना कार्य्यं शिवार्चा स्रपनं होमादि च प्राग्वत् ।

दक्षिणाचार्य्यत्विगादेः । तदुक्तं कामिके ।

पूर्व्ववन्मण्डपं कृत्वा कुर्याद्वै मण्डलान्वितं ।  
 तद्वत् पूजाञ्च होमञ्च स्नपनाद्यं तथैव च ॥  
 पञ्चाङ्गभूषणं पञ्चनिष्केणात्र प्रकल्पयेत् ।  
 दक्षिणां पूर्व्ववद्दद्यादनुक्तं पूर्व्ववद्भवेदिति ॥  
 इति लिङ्गपुराणोक्तः तिलधेनुदानविधिः ।  
 सप्तब्रीहिमयाः सप्त धेनवः परिकीर्त्तिताः ।  
 यथा तिलमयी धेनुस्तथैवैतास्तु कारयेत् ॥  
 यच्च ब्रीहिमयी धेनुर्गोधूमा सतिला परा ।  
 माघसुहृन्मयी चैव सप्रियङ्गुश्च सप्तमी ॥  
 उपस्करन्तु सर्वास्तु तिलधेनुवदौरितं ।  
 एतासामेव धेनूनामङ्गानि तिलधेनुवत् ॥  
 सप्तब्रीहिमयाः सप्त योददातीह मानवः ।  
 स याति परमं स्थानं वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥  
 ब्रह्महा च सुरापय तस्करी गुरुतल्यगः ।  
 धेनुदानेन पूतोऽसौ याति विष्णोः परम्पदं ॥  
 इति विश्वामित्रप्रोक्तः सप्तब्रीहिधेनुदानविधिः ।

अथ घृतधेनुदानविधिः ।

वशिष्ठ उवाच । तिलाभावे तथा दद्यात् घृतधेनुं यतव्रतः ।  
 येन भूप विधानेन तदिहैकमनाः शृणु ॥  
 वासुदेवं जगन्नाथं घृतक्षीराभिषेचनात् ।  
 संपूज्य पूर्व्ववत् पुष्पैर्गन्ध पुष्पादिभिर्नरः ॥  
 अक्षीरात्रोषितो नाम्ना अभिट्टय घृतार्चिषं ।  
 'घृतार्चिषे जगन्नाथाय देवाय नम इति मनुः ।

गव्यस्य सप्यिषः कुम्भं पुष्पमालादिभूषितं ।

कांस्यापिधानसंयुक्तं सितवस्त्रयुगेन च ॥

हिरण्यगर्भसहितं मणिविद्रुममौक्तिकैः ।

अत्र पलसहस्रपरिमाणः कुम्भः ।

द्वादशपलाधिकानि पञ्चपलशतानीति केचित् ।

तदेतत् परिभाषायामुपवर्णितं ।

कांस्यापिधानसहितं, कांस्यपात्रापिहितं ।

हिरण्यगर्भसहितं, मध्यवर्त्तिना हिरण्येन सहितमित्यर्थः ।

मणिविद्रुममौक्तिकैः सहितमिति शेषः ।

द्रक्ष्यष्टिमयान् पादान् खुरान् रौप्यमयांस्तथा ।

सौवर्णे चाक्षिणी कुर्यात् शृङ्गे चागुरुकाष्ठजे ॥

अत्र, सुवर्णादेरनुदितसंख्यतया यथा शक्ति विधानं ।

सप्तधान्यमये पार्श्वे पत्तोर्णेन च कम्बलं ।

कुर्यात्तुरुष्ककर्पूरैर्घ्राणं फलमयांस्तु तान् ॥

तद्वच्छर्करया जिह्वां गुडक्षीरमयं मुखं ।

पत्तोर्णं धौतकौशेयं, तुरुष्कः, सिद्धकः,

क्षौमसूत्रेण लाङ्गूलं रोमाणि सितसर्षपैः ।

ताम्रपात्रमयं पृष्ठं कुर्याच्छङ्कासमन्वितः ॥

ईदृक्स्वरूपां सङ्कल्प्य घृतधेनुं नराधिप ।

तद्वत् कल्पनया विद्वान् घृतवत्सं प्रकल्पयेत् ॥

तद्वद्वेनुवत्, खुरशृङ्गादियुक्तमित्यर्थः ।

सच धेनोश्चतुर्थभागेन कर्तव्यः ।

तच्च विप्रं महाभाग मनसैव घृताद्दिषं ।



कल्पयित्वा ततस्तस्मै प्रयतः प्रतिपादयेत् ॥  
 एतां ममोपकाराय गृह्णीष्व त्वं द्विजोत्तम ।  
 प्रीयतां मम देवेशो घृताक्षिः पुरुषोत्तमः ॥  
 इत्युदाहृत्य विप्राय दद्याद्भेनुं नराधिप ।

स्कन्दपुराणे ।

अयं मन्त्रः । घृतङ्गावः प्रसूयन्ते घृतं भूम्यां प्रतिष्ठितं ।  
 घृतमग्निश्च देवाश्च घृतं मे सम्प्रदीयतां ॥  
 विश्वामित्रः । घृतमग्निर्घृतं सोमस्तन्मयाः सर्वदेवताः ।  
 घृतधेनुप्रदानेन सर्वास्तुष्यन्ति देवता इति ॥  
 घृतरत्नं सुवर्णानां सम्यक् कल्पनया कृतं ।  
 दत्त्वेकरात्रं स्थित्वा तु घृताहारो नराधिपः ॥  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तथा दानफलं शृणु ।  
 घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्दमाः ॥  
 तेषु सर्वेषु लोकेषु सुपुण्येषूपजायते ।  
 पितुरुर्ध्वं नयेत् सप्त पुरुषास्तस्य वेऽप्यधः ॥  
 तांस्तेषु नृप लोकेषु स नयत्यस्तकल्मषः ।  
 सकामानामियं व्युष्टिः कथिता नृपसत्तम ॥  
 विष्णुलोकं नरा यान्ति निष्कामा घृतधेनुदाः ।  
 घृतमग्निर्घृतं सोमस्तन्मयाः सर्वदेवताः ॥  
 घृतं प्रयच्छता दत्ता भवन्त्यखिलदेवताः ।

सुवर्णमत्र दक्षिणा ।

अनुक्तदक्षिणेषु तस्य यथाशक्ति विहितत्वात् ।  
 इति विष्णुधर्म्मोक्ती घृतधेनुदानविधिः ॥

अगस्त्य उवाच । तिलाभावे प्रदातव्या सर्पिर्धेनुर्विजानता ।

स्नापयित्वा भवानीं च घृतक्षीरैर्यथाविधि ॥

पूजयेत् पुष्पमालाभिर्नैवेद्यैः सुमनोहरैः ।

आहरेत् सर्वद्रव्याणि उपकल्पेत तत्र तां ॥

गव्यस्य सर्पिषः कुम्भे पुष्पमालाविभूषिते ।

कांस्यपात्राया तया वस्त्रैश्चादयीत विधाय तां ॥

हिरण्यगर्भसहितां मणिविद्रुममौक्तिकैः ।

पादानिचुमयान् कुर्यात् कुर्याद्रौप्यमयान् शफान् ॥

हैमं चक्षुस्तथा शृङ्गे कृष्णागुरुमये शुभे ।

सप्तधान्यैश्च तत्पाश्वे पक्षोर्णेन च कम्बलं ॥

घ्राणं त्वगुरुकर्पूरैस्तनाः फलमयाः शुभाः ।

मुखञ्च गुडक्षीरेण सितां जिह्वां प्रकल्पयेत् ॥

‘सिता’ शर्करा । पुच्छं क्षौममयं कार्यं रोमाणि सितसर्षपैः ।

ताम्रपृष्ठं विचित्रन्तु ईदृग्रूपां मनोरमां ॥

विधिना घृतवत्सञ्च कुर्यात्तद्वर्णलक्षितं ।

एतैः कृत्वा तथा नत्वा पूजयित्वा विधानतः ॥

तद्भक्त्या प्रदातव्या मङ्गला शास्त्रपारगे ।

इमां ममोपकाराय गृह्णीष्व मदनुग्रहात् ॥

प्रीयतां नन्दिनी देवी मङ्गला चर्चिका उमा ।

इत्युक्त्वा चार्चयेद्देनुं कृत्वा नन्दां मनोनुगां ॥

अनेन विधिना देया सर्पिषो धेनुरुत्तमा ।

हिरण्यरत्नधेनुश्च प्रदेया विधिनामुना ॥

मुच्यते सर्वपापेभ्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

यत्र क्षीरवहा नद्यो यत्र सर्पिर्वहा ऋदाः ॥  
 पायसाः कर्दमा यत्र तस्मिन्नौके महीयते ।  
 तेषां स्वामित्वमाप्नोति मुदा परमया युतः ॥  
 दश पूर्वापरांस्तार्थ्य आत्मानं त्वेकविंशकं ।  
 भूयः पृथ्वीशतां याति इह लोके स मानवः ॥  
 सकामानामियं व्युष्टिर्ज्ञेनोस्तावदुदाहृता ।  
 देव्यालोकमवाप्नोति निष्कामो घृतधेनुदः ॥

इति देवीपुराणोक्ती घृतधेनुदानविधिः ।

गदाभावे तथा दद्यात् घृतधेनुं प्रयत्नतः ।  
 येन कार्या विधानेन तदिहैकमनाः शृणु ॥  
 आदित्यन्तु जगन्नाथं घृतक्षीराभिषेचनैः ।  
 संपूज्य पूर्ववत् पुष्पैर्गन्धपुष्पादिभिर्नरः ॥  
 अहोरात्रोषितो भूत्वा अभिषुत्य घृतार्चिषा ।  
 गव्यस्य सर्पिषः कुम्भं पुष्पमालाविभूषितं ॥  
 कांस्योपधानसंयुक्तं सितवस्त्रयुगेन च ।  
 हिरण्यगर्भसहितं मणिविद्रुममौक्तिकैः ॥  
 इक्षुयष्टिमयाः पादाः खुरा रौप्यमयास्तथा ।  
 सौवर्णे चाक्षिणी कुर्यात् शृङ्गे चागुरुकाष्ठजे ॥  
 सप्तधान्यमये पार्श्वे पत्तोर्येन च कम्बलं ।  
 कुर्यात्तुरुष्कपूर्णं घ्राणं फलमयांस्तनान् ॥  
 तद्वच्छर्करया जिह्वां गुडक्षीरमयंमुखं ।  
 क्षौमसूत्रेण लाङ्गूलं रोमाणि सितसर्षपैः ॥  
 ताम्रपात्रमयं पृष्ठं कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ।

ईदृक् सुरूपां सङ्कल्प्य घृतधेनुं नराधिपः ।  
 तद्वत्कल्पनया धेनोर्घृतवत्सं प्रकल्पयेत् ॥  
 तच्च विप्रं महाभाग मनसैव घृतार्चिषं ।  
 कल्पयित्वा ततस्तस्मै प्रयतः प्रतिपादयेत् ॥  
 इमां ममोपकाराय गृह्णीष्व त्वं द्विजोत्तम ।  
 प्रीयतां मम देवेशो घृतार्चिर्मिहिरोत्तमः ॥  
 इत्युदाहृत्य विप्राय दद्याद्धेनुं नरोत्तम ।  
 दत्त्वैकरात्रं स्थित्वा च घृताहारोनराधिपः ॥  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तस्य दानफलं शृणु ।  
 घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः ॥  
 तेषु लोकेषु नित्यं स सुपुण्येषु प्रमोदते ।  
 पितुरुर्द्धं नयेत्सप्तपुरुषांस्तस्य येऽप्यधः ॥  
 इति श्रीआदित्यपुराणोक्ती घृतधेनुदानविधिः ।

भविष्योत्तरे ।

घृतधेनुविधानेन नवनीतमयीशुभा ।  
 दातव्या नृपते धेनुर्यूनाधिक्यविवर्जिता ॥  
 मन्त्रः स एष निर्दिष्टो घृतधेनौ च यः स्मृतः ।  
 शृणु पार्थ महाबाहो प्रदानफलमुत्तमं ॥  
 घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः ।  
 घृतधेनुप्रदोयाति तत्र कामैः प्रपूजितः ॥  
 पितुरुर्द्धं नयेत्सप्त पुरुषास्तस्य येऽप्यधः ।  
 तान् श्रेष्ठेष्विह लोकेषु स नयत्यस्तकल्मषान् ॥

सकामानामियं व्यष्टिः कथिता नृपसत्तम ।  
निष्कल्मषं पदं यान्ति निष्कामास्तत्प्रदायिनः ॥

आह कात्यायनः ।

अलाभे योगवां दद्यात् घृतधेनुं यथाविधि ।  
दुर्गाणि तारितोधेन्या देवनद्यां प्रमोदते ॥  
घृतालाभे तु यो दद्यात्तिलधेनुं समाहितः ।  
सर्वकामवहा नद्यः स्तुं सेवन्ते दिवि स्थितं ॥  
तिलालाभे तु यो दद्याज्जलधेनुं समाहितः ।  
सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥  
घृतधेनुं नरो दद्यात्तिलधेनुं यथाक्रमं ।  
जलधेनुं यथा योवै शश्वन्नव्यवते दिवः ॥  
जितेन्द्रियाय शान्ताय वैष्णवाय यथाविधि ।  
धेनुंदत्त्वा घृतमयीं विष्णुसालोक्यमश्रुते ॥  
पितरं चैव धर्मात्मा पितामहमथापि वा ।  
घृतधेन्या परित्वाति सप्त सप्त च सप्त च ॥

इति घृतधेनुदानविधिः ।

अथ जलधेनुदानं

वशिष्ठ उवाच ।

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया ।  
देवदेवो हृषीकेशः सर्वगः सर्वभावनः ॥  
जलकुम्भं नरव्याघ्रं सुवर्णरजतान्वितम् ।  
रत्नगर्भमशेषैस्तु आस्यैर्दान्यैः समन्वितम् ॥

सितवस्त्रयुगच्छत्रं दूर्वापल्लवशोभितम् ।  
 कुष्ठ-मांसी-मुरो-शीर-वालका-मलकैर्युतम् ॥  
 प्रियङ्गुपत्रसहितं सितवस्त्रोपवीतिनम् ।  
 सच्छत्रं स उपानत्कं दर्भविष्टरसंस्थितम् ॥  
 चतुर्भिः संवृतं भूष तिलपात्रैश्चतुर्दिशम् ।  
 स्थापितं दधिपात्रेण घृतचौद्रवता मुखे ॥  
 उपोषितः समभ्यर्च्य वासुदेवं जलेश्वरम् । \*  
 पुष्पधूपोपहारैस्तु यथाविभवमादृतः ॥  
 सङ्कल्पा जलधेनुञ्च कुम्भान्तमभिपूज्य च ।  
 पूजयेद्वत्सकान्तद्वत् कुम्भं जलमयं बुधः ॥  
 एवं संपूज्य गोविन्दं जलधेनुं सवत्सकां ।  
 सितवस्त्रधरः शान्तो वीतरागोविमत्सरः ॥  
 दद्यात् द्विजाय राजेन्द्र प्रीत्यर्थं जलशायिनः ।  
 जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥  
 इति चीञ्चार्य्य भूनाथ विप्राय प्रतिपाद्यतां ।  
 अपक्वान्नाशिना स्थेयमहोरात्रमतःपरं ॥

जलकुम्भमित्यादि, कुम्भोऽत्र कलशः ।

सुवर्णरजतयोरनियतपरिमाणतया यथाशक्ति विधानं पञ्च-  
 रत्नानि धान्यानि च परिभाषायामुक्तानि अथ यद्यपि सामान्येनो-  
 पदेशः तथापि तत्सामान्यादितरेषु तथात्वमितिन्यायादितर-  
 धेनुवद्विरुद्धधर्मानुष्ठानं वेदितव्यं ततश्च सुवर्णस्य शृङ्गाकृतित्वं

रजतस्य खुराकृतित्वं, तिलपात्राणां ताम्रपात्रमयत्वं, दधिपात्रस्य  
कांस्यपात्रमयत्वं, चानुसन्धेयं तथा ध्यान्यानि पार्श्वद्वये, कुष्ठादीनि  
घ्राणदेशे, प्रियङ्गुपत्रं अवणे, यज्ञोपवीतं शिरःस्थाने स्थापयेत् ।  
वत्सोऽपि चतुर्थांशेन धेनुवत् कार्यः ।

कच्चित्तु पूजयेद्वत्सकं तद्वत् कृतं घृतमयं बुध इति पाठात्  
घृतजलयो विक्कलोऽवगम्यते, दानवाक्यन्तु पूर्ववत् दक्षिणा चात्र  
यथाशक्ति सुवर्णमिति ।

अनेन विधिना दत्त्वा जलधेनुं नराधिप ।  
सर्वान् कामानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः ॥  
शरीरारोग्यमावाधाप्रशमः सार्व्वकामिकः ।  
नृणां भवति दत्तायां जलधेन्वां न संशयः ॥  
इति विष्णुधर्मोक्ती जलधेनुदानविधिः ।

भानुरूवाच ।

जलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यथा ।  
देवदेवो मयूखेशः सर्व्वगः सर्व्वभावनः ॥  
जलकुम्भं समानीयेत्यादि विष्णुधर्मस्तुत्यार्थं, विशेषस्तु ।  
ततःसंपूज्यचादित्यं जलधेनुं सवत्सकाम् ॥  
दद्याद्विप्राय देवाग्रे प्रीत्यर्थं मिहिरस्य तु ।  
आदित्यस्य जगद्योनिः प्रीयतां मिहिरः सदा ॥  
इति चोच्चार्य्य तां गान्तु विप्राय प्रतिपादयेत् ।  
अनेन विधिना यस्तु जलधेनुं महामुने ॥  
सर्व्वान्नादानवाप्नोति यांस ध्यायति मानवः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः पितरं सपितामहं ।  
 प्रपितामहं यथापुर्व्वपुरुषाणां चतुष्टयं ॥  
 आत्मानं तनयं पौत्रं तदधस्ताच्चतुष्टयं ।  
 तारयेत् स मुनीन्द्रेह जलधेनुप्रदोनरः ॥  
 यश्च गृह्णाति विधिवत् तस्याप्येवस्विधाः कुले ।  
 चतुर्दश तथा चैव ददतश्चानुमोदतः ॥  
 दीयमानां प्रपश्यन्ति जलधेनुं च ये नराः ।  
 तेष्यशेषाघनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिं ॥  
 इति आदित्यपुराणोक्तो जलधेनुदानविधिः ।

अगस्त्य उवाच ।

तोयधेनुं शृणु ह्यस्य यथादेवी प्रसीदति ।  
 कुम्भं तोयसुसंपूर्णं रत्नवस्त्रयुगान्वितं ॥  
 समस्तबीजसंयुक्तं दूर्वापल्लवशोभितं ।  
 समस्तबीजानि, सर्वधान्यानि ।  
 दूर्वाक्षतदधिशङ्खकुष्ठामलकचन्दनैः ।  
 माल्यङ्कतसमायुक्तं तिलपात्रैश्च संयुतं ॥  
 दधिक्षीरहृतं पात्रं विधानेनोपकल्पयेत् ।  
 वत्सकं कल्पयेत्तस्यास्तद्वत्तोयमयंबुधः ॥  
 देवीमभ्यर्च्य विधिवत् सोपवासोऽथ नक्तवान् ।  
 देवीभक्ते प्रदद्याद्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥  
 जयारिसूदनो देवी देवानां भयनाशिनी ।  
 वेदमातर्त्वरं दुर्गे सर्वगे सुभगे नमः ॥



अनेन वत्समन्त्रेण नन्दानाम्नाभिमन्त्रयेत् ।  
 देवी मे प्रीयतां नित्यं यथोदितफला शिवा ॥  
 इति देवोपुराणोक्तो जलधेनुदानविधिः ।

### स्कन्दपुराणे ।

जलधेनुं च यो दद्यात्तस्य दानफलं शृणु ।  
 प्रपां सत्रं तड़ागं वा कूपं वापि सुपुष्कलं ।  
 कृत्वा कुम्भान् सुवर्णांश्च गन्धमाल्यैरलंकृतान् ॥  
 'प्रपा' पानीयशाला । 'सत्रशाला' सभाजनसमाश्रया ।  
 'सुवर्णान्, शोभनवर्णान् ।  
 पुष्पैश्च विविधाकारैरभ्यर्च्य द्विजसत्तमान् ।  
 भक्ष्यभीक्ष्यैः सुहृत्मानां तिलपात्राणि दापयेत् ॥  
 दक्षिणां पुष्कलां दद्यादेभ्यस्त्वाशंसयेत्ततः ॥

### एभ्यः द्विजेभ्यः ।

आपः शिवास्तु, सौम्याश्च तर्पयन्तु पितृन्मम ।  
 कामदाः कामदानाय भवन्त्विति च वै वदेत् ॥  
 एवं दत्त्वा तु तां धेनुं पुनः कृत्वा च वै तदा ।  
 आवाहयेत् प्रपां देवीं ब्रह्मलोकसमर्पिणीं ॥  
 तिलपात्राणि दत्त्वा च तथावस्त्रयुगं शुभम् ।  
 सुवर्णस्य च सान्निध्यं फलानि विविधानि च ॥  
 ततो दद्याच्छुचिः स्नातो ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ।  
 एवंविधानतो दत्त्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

विश्वामित्रः,

शरीरारोग्यमावाधाप्रशमः सार्वकालिकः ।

नृणां भवति दत्तायां जलधेन्वां न संशयः ॥

इति जलधेनुदानविधिः ।

अथ क्षीरधेनुदानं

विनीताश्च उवाच ।

क्षीरधेनुं प्रवक्ष्यामि तान्निबोध नराधिप ।

अनुलिप्ते महीपृष्ठे गोमयेन नरोत्तम ॥

गोचर्ममात्रमानेन कुशानास्तूर्य्य सर्वतः ।

तत्रोपरि महाराज न्यसेत कृष्णाजिनं बुधः ॥

तत्रोपरि कुण्डलीकां गोमयेन कृतामपि ।

क्षीरकुम्भं ततः स्थाप्य चतुर्थींशेन वत्सकं ॥

सुवर्णमुखशृङ्गाणि चन्दनागुरुकाणिच ।

प्रशस्तपत्रश्रवणां तिलपात्रोपरि न्यसेत् ॥

मुखं गुडमयं तस्या जिह्वा शर्करया तथा ।

फलप्रशस्तदन्ताञ्च मुक्ताफलमयेक्षणां ॥

इक्षुपादां दर्भरोमां सितवस्त्रलकं वलां ।

ताम्रपृष्ठां कांस्यदोहां पट्टसूत्रमयी तथां ॥

पुच्छञ्च नृपशार्दूलं नवनीतमयस्तनीं ।

स्वर्णशृङ्गां रौप्यखुरां पञ्चरत्नमयां भुवि ॥

चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्ष्वपि स्थापयेत् ।

सप्तव्रीहिममायुक्तां दिक्षु सर्वासु प्रक्षिपेत् ॥

एवं लक्षणसंयुक्तां क्षीरधेनुं प्रकल्पयेत् ।  
 आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥  
 धूपन्दीपादिकं कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 आच्छाद्यालक्ष्कृतं कृत्वा मुद्रिकाकर्णमात्रकैः ॥  
 पादुकोपानहं कृत्वा दत्त्वा दानं समर्पयेत् ।  
 अनेनैव तु मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रकल्पयेत् ॥  
 या लक्ष्मीः सर्वभूतानामित्यादि नरपुङ्गव ।  
 आप्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरधेनुं प्रसादयेत् ॥  
 गृह्णामि त्वां देवि भक्त्या ग्राहको मन्त्रमुच्चरेत् ।  
 एवं धेनुं प्रदायाथ क्षीराहारोदिनं चरेत् ॥  
 विरात्रन्तु पयोभक्षी ब्राह्मणो राजसत्तम ।  
 दीयमानां प्रपश्यन्ति ते यान्ति परमां गतिं ॥  
 एतां हेमसहस्रेण शतेनाथ स्वशक्तितः ।  
 शतार्द्धमथवाप्यर्द्धं, तथैवार्द्धं यथेक्षया ॥  
 दत्त्वा धेनुं महाराज शृणु तस्यापि तत्फलं ।  
 दिव्यं वर्षसहस्रन्तु रुद्रलोके महीयते ॥  
 पितृपितामहैः सार्द्धं ब्रह्मणीभवनं व्रजेत् ।  
 दिव्यं विमानमारूढो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥  
 क्रीडित्वा सुचिरं कालं विष्णुलोकं स गच्छति ।  
 द्वादशादित्यमङ्गाशैर्विनानैर्वरमण्डितैः ॥  
 गीतवादित्वनिर्घोषैरप्सरोगणसेवितैः ।  
 तत्रोपविष्टोऽसौ राजा विष्णुमायुज्यतां व्रजेत् ॥  
 य इदं शृणुयाद्राजन् पठेद्वा भक्तिभाविनः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तः क्षीरधेनुदानविधिः ।

अथ दधिधेनुदानं ।

विनीताश्च उवाच ।

दधिधेनेर्ग्रीहाराज विधानं शृणु साम्प्रतं ।

अनुलिप्ते महीभागे गोमयेन नराधिप ॥

गोचर्ममात्रन्तु पुनः पुष्पप्रकरसंयुतं ।

कुशैरास्तोर्य वसुधां क्षणाजिनकृतास्तराम् ॥

दधिकुम्भञ्च संस्थाप्य सप्तधान्यस्य चोपरि ।

चतुर्थांशेन वत्सन्तु सोवर्णमुखमंयुतम् ॥

प्रशस्तपत्रश्रवणां मुक्ताफलमयेक्षणांम् ।

चन्दनागुरुशृङ्गा च सुखं वै गन्धमालिम् ॥

जिह्वा शर्करया राजन् घ्राणं श्रीखण्डकं तथा ।

फलमूलमया दन्ताः सितसूत्रस्य कम्बला ॥

ताम्रपृष्ठा दर्भरोमा पुच्छं सूत्रमयं तथा ।

स्वर्णशृङ्गी रोप्यखुरा नवनीतमयस्तनी ॥

इक्षुपादां सुसंस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताम् ।

आकाशं वस्त्रयुग्मेन पुष्पगन्धैस्त पूजिताम् ॥

ब्राह्मणाय कुलीनाय साधुहताय धीमते ।

समाधियमयुक्ताय तादृशाय प्रदापयेत् ॥

पुण्ड्रदेशपवित्राय मुद्रिकाकर्णमात्रकैः ।

पादुकोपानहौ कृत्रं दत्त्वा मन्त्रमनुस्मरेत् ॥

दधिक्षात्रेतिमन्त्रेण दधिधेनुं प्रदापयेत् ।  
 एवं दधिमयीं धेनुं दत्त्वा राजर्षिसत्तम ॥  
 एकाहारो दिनं तिष्ठेद्भ्रा च नृपनन्दन ।  
 यजमानो वसेद्राजन् त्रिदिनं च द्विजोत्तम ॥  
 दीयमानां प्रपश्यन्ति तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।  
 दशपूर्व्वान् दशपरानात्मानञ्चैकविंशकम् ॥  
 विष्णुलोकमवाप्नोति यावदाहृतसंघ्नवम् ।  
 दाता च दापकश्चैव तेऽपि यान्ति परां गतिं ॥  
 यत्र मधुवहा नद्यो यत्र पायसकर्द्दमाः ।  
 मुनयो ऋषयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ॥  
 य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वापि मानवः ।  
 सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति ॥  
 इति स्कन्दपुराणीक्तो दधिधेनुदानविधिः ।

अथ मधुधेनुदानं ।

मधुधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्व्वपापप्रणाशिनीम् ।  
 अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥  
 धेनुं मधुमयीं कृत्वा संपूर्णघटपूरिताम् ।  
 तद्वच्चतुर्थभागेन यत्सकं परिकल्पयेत् ॥  
 सीवर्षन्तु मुखं कृत्वा शृङ्गाख्यगुरुचन्दनम् ।  
 पृष्ठं ताम्रमयं तस्य पुच्छं सूत्रमयं तथा ॥  
 पादास्त्रिचुमयाः कार्य्याः सितकम्बलकम्बलाम् ।  
 मुखं गुडमयं कृत्वा जिह्वा शर्करयान्विता ॥

मौक्तिकं नयने तस्या दन्ताः फलमयास्तथा ।  
 दर्भरोमधरा देवी रूप्यसुरविभूषिता ॥  
 अश्वत्थपत्रश्रवणां नवनीतमयस्तनीम् ।  
 सर्वलक्षणसंयुक्तां सप्तधान्यानि दापयेत् ॥  
 चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्द्दिक्षु च विन्यसेत् ।  
 आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन घण्टाभरणभूषिताम् ॥  
 कांस्योपदोहनोन्दत्वा गन्धपुष्पैस्तु पूजिताम् ।  
 अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥  
 संक्रान्तावुपरागे च सर्वकालमतन्द्रिता ।  
 द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तिर्दृष्टमात्रेण दापयेत् ॥  
 ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।  
 आर्यावर्त्तसमुत्पन्ने वेदवेदाङ्गपारगे ॥  
 तादृशाय प्रदातव्या मधुधेनुर्नरोत्तम ।  
 पुच्छदेशोपविष्टाय गन्धधूपादिपूजिताम् ॥  
 आच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन मुद्रिकाकर्णमात्रिकाम् ।  
 स्वशक्त्या दक्षिणां दत्त्वा वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥  
 उदकपूर्व्वन्तु कर्त्तव्यं पश्चाद्दानं समर्पयेत् ।  
 रसज्ञा सर्वदेवानां सर्वभूतहितेरता ॥  
 प्रीयन्तां पितृदेवाश्च मधुधेनो नमोऽस्तु ते ।  
 एवमुच्चार्य्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 अहं गृह्णामि त्वां देवि कुटुम्बार्थं विशेषतः ।  
 कामङ्गामदुषे कामान् मधुधेनो नमोऽस्तु ते ॥  
 मधुवातेति मन्त्रेण प्रदाप्या यतचेतसा ।

दत्त्वा धेनुं महाराज कृतकोपानहौ तथा ॥  
 एवं यः कुरुते भक्त्या मधुधेनुं नराधिप ।  
 दत्त्वा दानं पायसेन मधुना च दिनत्रयेत् ॥  
 ब्राह्मणोऽपि विराचन्तु मधुपायससंयुतः ।  
 एवं कृते तु यत्पुण्यन्तं निबोध नराधिप ॥  
 यत्र मधुवहा नद्यो यत्र पापसकईमाः ।  
 ऋषयोमुनयः सिद्धास्तत्र गच्छन्ति धेनुदाः ॥  
 तत्र भोगान् वरान् भुङ्क्ते ब्रह्मलोके स तिष्ठति ।  
 क्रोडित्वा सुचिरङ्कालं पुनर्म्मत्यमुपागतः ।  
 स भुक्त्वा विपुलान् भोगान् विष्णुलोकञ्च गच्छति ॥  
 दशपूर्व्वान् दशपरानात्मानञ्चैकत्रिंशकम् ।  
 नयेत् विष्णुमायुज्यं मधुधेनुप्रसादतः ॥  
 य इदं शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वापि मानवः ।  
 सर्व्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तो मधुधेनुदानविधिः ।

अथ रसधेनुदानं ।

विनीताश्व उवाच ।

रसधेनुं महाराज कथयामि समासतः ।  
 अनुलिप्ते सहीष्टे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥  
 रमस्य तु घटं राजन् सम्पूर्णमैक्षवस्य च ।  
 तद्वत् सङ्कल्पयेत् प्राज्ञश्चतुर्थांशेन वत्सकम् ॥  
 इक्षुदण्डमयाः पादा राजतक्षुरमंयुता ।  
 सुवर्णशृङ्गाभरणा वस्तपुच्छा घृतस्तनी ॥

पुष्पकम्वलसंयुक्ता शर्करामुखजिह्विका ।  
 दन्तः फलमवास्तस्याः पृष्टन्तास्त्रमयं शुभम् ॥  
 पुष्परोमा तु राजेन्द्र मुक्ताफलकृतेक्षणां ।  
 सप्तब्रोहिसमायुक्तां चतुर्दिक्षु सदीपिकान् ॥  
 सर्वोपस्करसंयुक्तां सर्वगन्धविभूषितां ।  
 चत्वारि तिलपात्राणि चतुर्दिक्षु निवेशयेत् ॥  
 ब्राह्मणे वेदविदुषे त्रिविद्यायाहिताग्नये ।  
 पुराणज्ञे विशेषेण साधुवृत्ताय धीमते ॥  
 तादृशाय प्रदातव्या रसधेनुः कुटुम्बिने ।  
 दाता स्वर्गमवाप्नोति सर्वपापविवर्जितः ॥  
 दाता वा ग्राहकोवापि एकाहं रसभोजनः ।  
 सोमपानं भवेत्तस्य सर्वैवफलं भवेत् ॥  
 दीयमानान्तु पश्यन्ति तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।  
 धेनुं च पूजयित्वाये गन्ध-धूपस्रगादिभिः ॥  
 पूर्वोक्ताये च मन्त्राश्च तानेव प्रयतः स्मरेत् ।  
 एवमुच्चा रयित्वा तु दीयते वैद्विजोत्तमे ॥  
 दशपूर्वान् परां चैव आत्मानं चैकं विंशकं ।  
 नयेत परमं स्थानं यस्मान्नावर्त्तते पुनः ॥  
 एषा ते कथिता राजन रसधेनुरनुत्तमा ।  
 ददस्व च महाराज पुण्ड्रश्लोकानवाप्नुहि ॥  
 य इदं पठते नित्यं शृणुयाद्वापि भक्तितः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तोरसधेनुदानविधिः ।



अथ शर्कराधेनुदानं ।

विनीताश्व उवाच ।

तद्वच्च शर्कराधेनुं राजन् कुर्यात् यथार्थतः ।  
 अनुलिप्ते महोष्ठे कृष्णाजिनकुशोत्तरे ॥  
 धेनुः शर्करया राजन् सदाभारचतुष्टयम् ।  
 उत्तमा कथ्यते सञ्ज्ञितुर्थ्यांशिनं वत्सकः ॥  
 तदर्द्धं मध्यमा प्रोक्ता चतुर्थ्यांशिन कन्यसा ।  
 तद्वत्सं प्रकुर्वीत चतुर्थ्यांशिन मानवः ॥  
 अथवाधेनुतः कुर्यादष्ट्यांशिन तु वत्सकम् ।  
 स्वशक्या कारयेद्देनुं यथात्मानं न पीडयेत् ॥  
 सर्व्वबीजानि संस्थाप्य चतुर्दिक्षु समन्ततः ।  
 सौवर्णमुखशृङ्गाणि मौक्तिकैर्नयनानि च ॥  
 गुडेन च मुखं कार्थ्यं जिह्वा पिष्टमयी तथा ।  
 कम्बलं पटसूत्रेण घण्टाभरणभूषिता\* ।  
 इक्षुपादा रौप्यखुरा नवनौतमयस्तना ॥  
 प्रशस्तपत्रश्रवणा सितचामरभूषिता ।  
 पञ्चरत्नसमायुक्ता दर्भरोमसमन्विता ॥  
 कांस्योपदोहना सम्यक् गन्धपुष्पैः समन्विता ।  
 इदृक्विधानसंयुक्ता वस्त्रैराच्छादितोपरि ॥  
 गन्धपुष्पैरलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 श्रोत्रियाय दरिद्राय माधुवृत्ताय धीमते ॥  
 वेदवेदाङ्गविदुषे विशेषेणाग्निहोत्रिणे ।

\* कण्ठाभरण संयुता इति पाठः पुस्तकान्तरे ।

अनुसूयवे प्रदातव्या न मत्सरयुताय वै ॥  
 अयने विषुवे पुण्ये व्यतिपाते च षण्मुख ।  
 येषु पुण्येषु कालेषु यदृच्छावापि दापयेत् ॥  
 सत्पात्रन्तु द्विजं दृष्ट्वा स्वागतं श्रोत्रियं गृहे ।  
 तादृशाय प्रदातव्या पूच्छदेशे निवेदयेत् ॥  
 पूर्वामुखस्थितोदाता अथवा तु उदङ्मुखः ।  
 धेनुं पूर्वमुखीकृत्वा वत्समुत्तरतो न्यसेत् ॥  
 दानकाले तु ये मन्त्रास्तान् पठित्वा समर्चयेत् ।  
 आच्छाद्य चैव तं विप्रं मुद्रिकाकर्णवेष्टकैः ॥  
 स्वशक्त्या दक्षिणां दद्यात् गन्धपुष्पं सचन्दनम् ।  
 धेनुं समर्पयेत्तस्य मुखञ्च न विलोकयेत् ॥  
 एकाहं शर्कराहारो ब्राह्मणस्त्रिदिनं वसेत् ।  
 सर्वपापहरा धेनुः सर्वकामप्रदायिनी ॥  
 सर्वकामसमृद्धस्तु जायते नात संशयः ।  
 दीयमानां प्रपश्यन्ति तेऽपि यान्ति पराङ्गतिम् ॥  
 य इदं शृणुयाद्भक्त्या पठति वापि मानवः ।  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तः शर्कराधेनुदानविधिः ।

अथ कार्पासधेनुदानविधिः ।

वराह उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि धेनुं कार्पासकीं शुभाम् ।  
 विश्वस्य गुह्यगुह्यर्थं ब्रह्मणा वांशुकङ्कृतम् \*

कार्पासमूलन्तच्चापि तेनासावुत्तमः स्मृतः ।  
 सा च कार्पासभारेण धेनुः श्रेष्ठा प्रकीर्तिता ॥  
 मध्यमा च तदर्धेन तस्याप्यर्धेन कन्यसा ।  
 पूर्ववद्वस्त्रधान्यञ्च हिरण्यञ्च तथैव च ॥  
 वत्सकन्तु चतुर्थांशे दानमन्त्रो विधीयते ।  
 कुर्वीत पूर्ववद्वत्सं वस्त्रधान्याद्यूपस्करम् ॥  
 पूर्ववदिति वराहपुराणोक्ततिलधेनुवदित्यर्थः ।  
 हेम कुन्देन्दुदेवेश क्षीराणव समुद्रवे ।  
 सोमप्रिये सुधेन्वाख्ये सौरभेयि नमोऽस्तुते ॥  
 दत्तेयमिन्दुनाथाय शशांकायामृताय च ।  
 अत्रिनेत्रप्रजाताय सोमराजाय वै नमः ॥

दानमन्त्रः ।

यस्त्वेवं परया भक्त्या ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।  
 स याति सोमलोकन्तु \* सोमेन सह मोदते ॥  
 नरोगो न ज्वरी कुष्ठो कुले तस्य प्रजायते ।  
 पुत्रदारसमोपेतो जीवेच्च शरदांशतं ॥  
 इति वराहपुराणोक्तः कार्पासधेनुदानविधिः ।

अथ लवणधेनुदानम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कृष्ण कृष्ण महाबाहो सर्व्वशास्त्रविशारद ।  
 कथयस्व हि दानानामुत्तमं यत् प्रकीर्तितम् ॥

येन दत्तेन दत्तानि सर्वाण्यपि भवन्त्युत ।  
 सर्वकामसमृद्धश्च सर्वपापक्षयो भवेत् ।  
 प्रायश्चित्तविशुद्धश्च तन्मे कथय सुव्रत ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि लवणस्यैह कल्पितां ।  
 गोमयेनोपलिप्ते तु दर्भसंस्तरसंस्थितां ॥  
 आविकञ्चर्म विन्यस्य पूर्वाशाभिमुखं स्थिताम् ।  
 वस्त्रेणाच्छादितां कृत्वा धेनुं कुर्वीत मध्यगां ॥  
 आढकेनैव कुर्वीत बहुवित्तोऽल्पवानपि ।  
 स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां इक्षुपादां फलस्तनीं ॥  
 कार्या शर्करया जिह्वा गन्धघ्राणवती तथा ।  
 समुद्रोदरजां शक्तिं कर्णौ च परिवेष्टयेत् ॥\*  
 शृङ्गे चन्दनकाष्ठाभ्यां मौक्तिके चाक्षिणी शुभे ।  
 कपोलौ सक्तुपिण्डाभ्यां यवानास्ये प्रदापयेत् ॥  
 कम्बलं पट्टसूत्रेण ग्रीवायां कृत्वा तथा ।  
 पृष्ठे वै ताम्रपात्रन्तु अपाने गुडपिण्डकाम् ॥  
 लाङ्गूले कम्बलं दद्यात् रसान् क्षौरप्रदेशतः ।  
 योनिप्रदेशे च मधु सर्वतस्तु फलान्वितां ॥  
 एवं सम्यक् परिस्थाप्य लवणस्य कृतां च गां ।  
 स्थापयेत् वत्सकञ्चापि चतुर्भागेन मानवः ॥  
 एवं धेनुं समभ्यर्च्य माल्यवस्त्रविभूषणैः ।

\* परिकल्पयेदिति पुस्तकान्तरे ।

ज्ञात्वा देवार्चनं कुर्याद्वाङ्मनानभिपूज्य च ॥  
 कृत्वा प्रदक्षिणङ्गान्तु पुत्रभार्यासमन्वितः ।  
 ब्राह्मणाय सुशीलाय वृत्तयुक्ताय वै नृप ॥  
 दद्यात् पर्वसु सर्वेषु मन्त्रेणानेन मानवः ।  
 लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः ॥  
 सर्वदेवीमयि देवि लवणाख्ये नमोऽस्तु ते ।  
 एवमुच्चार्य मन्त्रान्ते विप्राय प्रतिपादयेत् ॥  
 सम्यक् प्रदक्षिणं कृत्वा दक्षिणासहितं नृप ।  
 प्रदक्षिणा मही तेन कृता भवति भारत ॥  
 सर्वदानानि दत्तानि सर्वर्तकफलानि च ।  
 सर्वे रसाः सर्वमन्त्राः सर्वमेतच्चराचरं ॥  
 सौभाग्यञ्च परां वृद्धिं शरीरारोग्यसम्पदः ।  
 नृणां भवति दत्त्वा तु रसधेनुं न संशयः ॥  
 स्वर्गं च नियतं वासी यावदाहृतसंप्लवं ॥  
 पत्तोर्षकम्बलगलां लवणोदकेन  
 कृत्वा फलस्तनवतीमविचर्म पृष्ठे ।  
 दत्त्वा द्विजाय विधिवद्रसधेनुमेतां  
 लोकं गवां सकलसौख्ययुतं प्रयाति ॥  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तोलवणधेनुदानविधिः ।

अथ कर्पूरादिधेनुदानं ।

कर्पूरधेनुं वक्ष्यामि सर्वगन्धमयीं शुभां ।  
 यान्दत्वा सर्वगन्धास्तु प्रदत्ताः स्युर्महीपते ॥

चन्द्रग्रहे वायु भानोः कार्त्तिक्यां विषुवत्यथ ।  
 द्वादश्यामयने पुण्ये दद्यात् कर्पूरगां विभो ॥  
 ब्राह्मणाय दरिद्राय शीलहृत्तपराय च ।\*  
 भूमावास्तीर्थ्य नेत्रन्तु शङ्खशुक्ताम्बरं शुभं ॥  
 कार्या चतुष्पला धेनुः पलमात्रस्तु वत्सकः ।  
 अथवा पलिका धेनुर्वत्सः कार्यस्तु कार्षिकः ॥  
 सुवर्णशृङ्गा रौप्यक्षुरा पुच्छं कुङ्कुमसम्भवम् ।  
 मृगनाभिमया दन्ता ग्रन्थिपर्णमयं मुखं ॥  
 अक्षिणी सिद्धकमये कर्णौ चागुरुकाष्ठजौ ।  
 देवदारुमयं पुच्छं गुदं गुग्गुलुसम्भवं ॥  
 कुष्ठं कपोलकं प्रोक्तं उशीरं चर्म चैव तु ।  
 उदरे चन्दनं दद्यात् खुराग्रे नखमेव च ॥  
 एवं संकल्प्य कर्पूरान्धेनुं वस्त्रेण पूजितां ।  
 विप्रं संपूज्य कर्पूरां वस्त्रयुग्मेन चैव हि ॥  
 कर्पूरधेनुं विप्रेश गृहाण मां सुपूजितां ।  
 पुष्पगन्धस्थिता सा मे कमला प्रीयतामिति ॥  
 अनेनैव तु मन्त्रेण दानं विप्राय दापयेत् ।  
 दत्त्वा धेनुमिमां राजन् गन्धर्व्वाणां समीभवेत् ॥  
 कल्पत्रयं वसेत् स्वर्गे राजराजो भवेदिह ।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति गौरीलोके महीयते ॥  
 तथा स्वर्वकामप्रदा धेनुः शर्करायाः प्रकीर्तिता ।  
 सर्वपापहरा चैव तस्माद्दद्यात्समाहितः ॥

गुडधेनुवदत्रापि मन्त्रावाहनपूजनं ।  
 दत्त्वा फलमयीं धेनुं कामानां फलभागभवेत् ॥  
 तथा कास्तूरिकां धेनुं श्रद्धावित्तसमन्वितः ।  
 पात्रे दद्यान्नृपश्रेष्ठ मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥  
 इति विष्णुधर्मोक्तः कर्पूरादिधेनुदानविधिः ।

अथ सुवर्णधेनुदानं ।

श्रीभगवानुवाच ।

कथयामि रहस्यन्ते दानधर्मोपबृंहितं ।  
 सुवर्णधेनुसम्बन्धि सर्व्वपापोपशान्तिदं ॥  
 यद्वृक्षणापि राजेन्द्र विहितं विष्णुणा पुरा ।  
 तत्ते विस्तरतो राजन् कथयाम्यनुपूर्व्वशः ॥  
 सुवर्णस्य सुवर्णस्य शुद्धस्य परिकल्पितां ।  
 एकः सुवर्णशब्दः, हिरण्यवचनः, परः परिमाणवचनः ।  
 रौप्यवत्सकसंयुक्तां मुक्ताफलविभूषितां ।  
 प्रवालशृङ्गोपयुतां पद्मरागाक्षिशालिनीं ॥  
 घृतपात्रस्तनवतीं कर्पूरागुरुनासिकाम् ।  
 शर्करारसनोपेतां मृष्टान्नमुखसंमितां ॥  
 शङ्खशृङ्गान्तरां शुक्लिललाटस्थानकल्पितां ।  
 फलदन्तां वस्त्रयुग्मपाश्वरीं क्षौमसुकम्बलां ॥  
 इक्षुपादां नालिकेरश्रवणां गुडजानुकाम् ।  
 पञ्चगव्यापानवतीं कांस्यपृष्ठसमन्विताम् ॥  
 मुपट्सूत्रलाङ्गूलां सप्तधान्यसमन्विताम् ।

फलपुष्पसमोपेतां कृत्रोपानत्समन्विताम् ।  
 सुवर्षधेनुं विप्राय प्रतिपाद्येदृशीन्नरः ॥  
 हिरण्यरेताः पुरुषः पुराणः कृष्णपिङ्गलः ।  
 तप्तहेमकविः स्रष्टा विश्वात्मा प्रीयतामिति ॥  
 अनेनैव तु मन्त्रेण धेनोर्दानं प्रकीर्तितं ।  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यसंग्रयम् ॥  
 कुलानान्तु सहस्रन्तु स्वर्गं नयति तदुधः ।  
 किमन्यैर्व्वहुभिर्दानैः पर्याप्तं हेमधेनुना ॥  
 सुवर्षधेनुं दत्त्वा हि कृतकृत्यो भवेन्नरः ।  
 हिरण्यगर्भो भगवान् प्रीयतामिति कीर्त्तयेत् ॥  
 उपवासविशुद्धात्मा दद्यात् सोमरविग्रहे ।  
 रक्षः पिशाचास्तद्देहं न पश्यन्ति नराधिप ॥  
 कार्त्तिक्यां प्रयतो दद्याद्वादश्यां कार्त्तिकस्य तु ।  
 दत्त्वा तत्पदमाप्नोति यत्र गत्वा न शीचति ॥  
 इति विष्णुधर्मोक्तः सुवर्षधेनुदानविधिः ।

अगस्त्य उवाच ।

मनुना यं विधिं कृत्वा प्राप्ता लोका अनुत्तमाः ।  
 ब्रवीमि तदहं हेमधेनुदानविधिं नृप ।  
 शुभां हेममयीङ्गाच्च कारयेद्राजतान् खुरान् ॥  
 शुभां शुद्धसुवर्णैस्तु घटितान्, अत्र सुवर्षपरिमाणचतुर्थांश  
 वस्त्रनिर्माणादिरनुक्ताङ्गीपसंहारः, पूर्वोक्तसुवर्षधेनोरवगन्तव्यः ।  
 तां वस्तुप्राप्ततां कृत्वा प्राप्नयाल्लोकसुत्तमम् ।



विचित्रचित्रपुष्पैश्च गन्धधूपविलेपनैः ।  
 तथा क्षमापयेद्देवो ताङ्गान्तत्र समर्पयेत् ॥  
 देवि त्वदीयादादेशात्तवभक्तेषु दीयते ।  
 पुनस्तां विप्रराजाय दापयेद्विवभाविने ॥

शिवभाविने, शिवध्यायिने ।

अक्षय्यफलकामेन प्रायश्चित्तविशुद्धये ।  
 मनुना चीर्षमेतद्वै सम्पतेयु नराः किल ॥  
 सप्तपूर्वापरान्वंशान् रुद्रकिल्विषसंस्थितान् ।  
 उद्धृत्य वानयेद्वत्स देवीलोकमनुत्तमम् ॥  
 इति देवीपुराणोक्ती हेमधेनुदानविधिः ।  
 वन्निपुराणात् । सुवर्षधेनुश्चाप्यत्र सुवर्णाश्च चतुर्दश ।  
 सुनिर्णिक्तसुवर्णैश्च सप्तभिर्मध्यमा स्मृता ॥  
 चतुर्भिः कन्यसा प्रोक्ता चतुर्थंशेन वत्सकः ।  
 गुडधेनुविधानेन दत्ता सर्व्वफलप्रदा ॥

विश्वामित्रः ।

हिरण्यरेताःपुरुषः पुराणः कृष्णपिङ्गलः ।  
 रत्नहेमकविः स्रष्टा विश्वात्मा प्रीयतामिति ॥  
 हिरण्यगर्भोभगवान् प्रीयतामिति कीर्त्तयेत् ।  
 सुवर्णधेनुन्दत्त्वा च कृतकृत्योभवेन्नरः ॥

इति सुवर्ण धेनुदानविधिः ।

अथाह बृहद्गौतमः ।

धेनुं स्वर्णमयीं कुर्यात् पूर्वेण विधिना ततः ।

सुवर्णशृङ्गीं रत्नाढ्यां तथारौप्यखुरामपि ॥  
 तथा च तर्णकं कुर्यादष्टभागेन पूर्व्ववत् ।  
 ब्राह्मणं श्रुतसम्पन्नं वैष्णवं च कुटुम्बिनं ॥  
 आचारवन्तं धर्मिष्ठं द्विजशृङ्गणोद्यतं ।  
 गृहमाह्वय विधिवत् पूजयेत् पूर्व्ववच्च तं ॥  
 यथा विभवतोभक्त्या हेमः पूर्व्ववदेव हि ।  
 मन्त्रैस्तु वैष्णवैः सम्यक् पालाशसमिधस्तथा ॥  
 होमान्ते तां प्रदद्याच्च मन्त्रेणानेन मेहवान् ।  
 चक्रं सुदर्शनं यस्य राजतेजस्तथैव हि ॥  
 प्रमेहं हरतु क्षिप्र-विष्णुर्गरुडवाहनः ।

दानमन्त्रः । दानं प्रमेहरोगघ्नमेतत्कार्यं मनीषिभिः ।  
 कृतेनानेन शाम्यन्ति प्रमेहा दारुणा अपि ॥  
 अत्र पूर्व्ववदिति राजतद्वषभदानवदिति ज्ञेयं ।  
 इति प्रमेहघ्नसुवर्णधेनुदानविधिः ।

अथाह बौद्धायनः ।

सौवर्णीं गां प्रकुर्व्वीत पलेनार्धेन वा पुनः ।  
 वित्तशठं न कुर्व्वीत कुर्व्वन्नैवं फलं भवेत् ॥  
 रत्नशृङ्गीं रौप्यखुरां नानावस्त्रैरलङ्कृतां ।  
 ग्रहाणामुपरि स्थाप्य नव धान्यानि विन्यसेत् ॥  
 होमस्तु पूर्व्ववत्कार्यो गोविन्दप्रीतये हितः ।  
 एवं विष्णुप्रतद्विष्णुर्विष्णोर्नुकमितिक्रमात् ॥  
 समिदाज्यचरुं हुत्वा पूर्णाहुत्यन्तएव हि ।

ततस्तांतु शुची रोगी ब्राह्मणं वेदपारगं ॥  
 श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं कुलीनं धर्मवादिनं ।  
 वृद्धं ज्ञानीपसम्पन्नमनुद्विगकरं नृणां ॥  
 भक्त्या स्वयं समानीय पूजयेत् प्रीतिपूर्वकं ।  
 अङ्गुलीयकपात्राद्यै रूपानच्छत्रकैरपि ।  
 मन्त्रेणानेन तां पात्रे दद्याद्भोगी यतात्मवान् ॥  
 गोविन्दं मनसा ध्यायन् गवां मध्ये स्थितं शिशुं ।  
 बर्हापीडकसंयुक्तं वेणुवादनतत्परं ॥  
 गोपीजनैः परितृतं वन्यपुष्पावतंसकं ।

गोविन्द गोपीजनवत्सभेश  
 कंसासुरघ्न त्रिदशेन्द्रवद्य ।  
 गोदानतप्तः कुरु मे दयालो  
 अर्शोविनाशं क्षयितारिवर्गः ॥

दानमन्त्रः । दानेनानेन नियतमर्शसां जायते क्षयः ।  
 तस्मात् कुर्यात् प्रयत्नेन सुखार्थं ह्येतद्दर्शसौ ॥

इत्यर्शोघ्नसुवर्णधेनुदानविधिः ।

अथ वायुपुराणे ।

चतुर्विधा च या बन्ध्या भवेद्वत्सवियोजनात् ।  
 वक्ष्ये तस्याः प्रतीकारन्तत्स्वरूपं निबोध मे ॥  
 हिरण्येन यथा शक्त्या सवत्सां कारयेद्दृढां ।  
 धेनुं पलेन वत्सञ्च पादेन गुरुरव्रवीत् ॥  
 धेनुरौप्यसुरां रत्नं तस्याः पुच्छे नियोजयेत् ।

वण्टाङ्गले च बध्नीयात्सवसां प्राङ्मुखः शुचिः ॥  
 चन्दनागुरुकर्पूरैर्गन्धमालैः सुशोभनैः ।  
 उपचारैः षोडशभिर्नैवेद्यं पायसम्भवेत् ॥  
 मोदकं च तथा पुष्पं गुडं लवणमेव च ।  
 जीरकं तु सुविस्तीर्णं सूपं विण्मये दृढे ॥  
 धेनुरेकं प्रदातव्यं ब्राह्मणस्त्रोषु चैव हि ।  
 षड्दशैश्च दद्यात् तदनन्तरमेव च ॥  
 ब्राह्मणं सर्वशास्त्रार्थकुशलं धर्मवेदिनं ।  
 विद्याविनयसम्पन्नं शान्तं चैव जितेन्द्रियं ॥  
 अलोलुपं सर्वजनप्रियं कल्पवर्जितं ।  
 आहूय भक्त्या सम्पूज्य वस्त्राद्यैर्गन्धपुष्पकैः ॥  
 तेनैव कारयेत् पूजाभादृतो धेनुवत्सयोः ।  
 हीमं च कारयेत् तत्र समिदाज्यचरुत्कटम् ॥  
 सोमोधेनुमिति मन्त्रं समुच्चार्य ततः पुनः ।  
 प्राङ्मुखोऽपविष्टाय प्रदद्यात्तामुदङ्मुखः ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवत् पुष्टे हस्तं विधाय च ।  
 धेनुर्याङ्गिरसः सा तु वशिष्ठे सुरभी च या ॥  
 दुहिता या तत्रा भानोरब्धेष्ट वरुणस्त च ।  
 याश्च गावः प्रवर्तन्ते जनेन्द्रजनेषु च ॥  
 प्रीणन्तु ता मम सदा पुत्रपौत्रप्रदाः कुम्भं ।  
 प्रयच्छति दिवारात्रमविच्छेदञ्च सन्ततिः ॥

दानमन्त्रः । एवं दत्त्वा तु तद्दानं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

इति वस्य्यात्वहरसुवर्णधेनुदानविधिः ।

तथा । प्रस्त्रिन्नपाणिपादः स्यात् योहरेत रसादिकं ।

वक्ष्यामि तत् प्रतीकारं दानहोमादिकर्मणा ॥

पलाङ्गेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।

कुर्याद्वेनुं सुवर्णेन वत्सस्तत्पादतो भवेत् ॥

एवं कृत्वा तु तां धेनुं वस्त्रेणवेष्ट्य शोभनां ।

गुडस्योपरि संस्थाप्य पूजयेद्बन्धूपकैः ॥

गुडस्य च परीमाणं चत्वारिंशत्पलं भवेत् ॥

यद्वा तदर्द्धमेव स्याद्यथाविभवमेव वा ।

हव्यकव्यादि च घृतदधिकीरचतुष्टयं ॥

पादेष्वेकैकशः स्थाप्य पूर्वदक्षिणतः क्रमात् ।

शृङ्गाणि च पुनस्तस्याः कुङ्कुमेनानुलेपयेत् ॥

एवं विधाय तां धेनुं आचार्यः स्वर्णरूपिणीं ।

होमं समारभेत् कुण्डे स्थण्डिले वाथ पूजिते ॥

अग्निप्रणयनं कृत्वा ह्याचार्यः सर्ववेदवित् ।

धर्मज्ञो यज्ञवेदस्तु कुशलः क्रोधवर्जितः ॥

अनुद्वेगकरो नृणां पुराणार्थविदङ्गवित् ।

समिदाज्यतिलैश्चापि मन्त्रैरेभिः क्रमेण तु ।

आयं गौरिति मन्त्रेण समिद्धोमः प्रशस्यते ॥

शोभिद्यद्यदि मन्त्रेण आज्यहोमो बुधैः सह ।

तिलहोमो व्याहृतिभिरटोत्तरसहस्रकं ॥

एवं होमं च निर्वर्त्य निर्यातस्याभिषेचनं ।

अग्नेः पूर्वोत्तरे देशे स्थापयेत् कुम्भमव्रणं ॥

श्वेतेन वाससा चैव मृत्तिकां गुग्गुलं तथा ।

गोरोचना सम्भवे च पञ्चभङ्गसमिद्धते ॥  
 मन्त्रै रथापोहिष्टेति तिसृभिस्तन्तु रोगिणं ।  
 हिरण्यवर्णं इति च पावमानेन चैव हि ॥  
 शन्नोवातानुवाकेन शान्तिं प्रथममेव हि ।  
 कृत्वाभिषेचनं कुर्यात् शुक्लाम्बरधरस्य तु ॥  
 आहुतीनां च सम्पातैः पाणिपादौ च लेपयेत् ।  
 ततस्तां पूजयेद्देनुं रोगी गन्वाक्षतादिभिः ।  
 गावएव सुरभय इति मन्त्रेण भक्तिः ॥  
 आचार्यायाथ तां दद्यात् प्राङ्मुखं ह्युदङ्मुखः ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवत्पूजितायां न संशयः ॥  
 आदित्यस्य सुता यास्तु देवानां याश्च धेनवः ।  
 पितृणामपि यक्षाणां गन्धर्वाणां च सर्वशः ॥  
 यक्षाणां गुह्यकानां तु वशिष्ठसुरभिस्तथा ।  
 एतास्तुष्टा मम क्षिप्रमेवेनारस्याः प्रदानतः ॥  
 रसचौर्येण यज्जातं वैरुष्यं पाणिपादयोः ।  
 तत्सर्वं नाशयन्त्याशु धेनवः सर्वतोषिताः ॥  
 दानमन्त्रः । अनेन विधिना स्वर्णधेनुदानं करोति यः ।  
 पूर्वकर्मविपाकीत्यं दुःखं सर्वं प्रणश्यति ॥  
 दक्षिणां ब्राह्मणे दद्याद्यथाशक्त्याथ भक्तिः ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि बन्धून्पि च भोजयेत् ॥  
 स्वयं स्नात्वा च भुञ्जीत मृष्टाहारैस्तु संयतः ।  
 दानेनानेन नियतं पादप्रस्नेदजां रुजं ।  
 जयन्ति रोगिणः कार्यं पादप्रस्नेदिना ततः ॥

इति पादप्रखेदघ्नसुवर्णधेनुदानविधिः ।  
 अथ स्वरूपतो गोदानं महाभारते ।  
 दानानामिह सर्वेषां गवां दानं विशिष्यते ।  
 गावःश्रेष्ठा पवित्राश्च पावना जगदुत्तमाः ॥  
 ऋते दधिघृताभ्यां च नेह यज्ञः प्रवर्तते ।  
 तेन यज्ञमशेषं हि गोमूलं सम्प्रचक्षते ॥  
 गावो धिकास्तपस्विभ्यः सदा सर्वेभ्य एव च ।  
 तस्मान्महेश्वरो देवस्तदेताभिः सह स्थितः ॥  
 पयसा हविषा दध्ना शक्तताप्यथ चर्मणा ।  
 अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति बालैः शृङ्गैश्च भारत ॥  
 गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युतं ।  
 कीर्त्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव ॥  
 गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं परं ।  
 गावोलक्ष्म्याः सदा मूलङ्गोषु पाप्मा न विद्यते ॥  
 स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ ।  
 गावो यज्ञप्रणेत्रो वै तथा यज्ञस्य गौर्मुखं ॥  
 अमृतं ह्यक्षयं दिव्यं रक्षन्ति च वहन्ति च ।  
 अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः ॥  
 न गोदानात्परं दानं किञ्चिदस्तीति मे मतिः ।  
 सा गौर्न्यायार्जिता दत्त्वा कृत्स्नन्तारयते कुलं ॥  
 अमृतं वै गवां क्षीरमित्युवाच प्रजापतिः ।  
 तस्माद्ददाति यो धेनुममृतत्वं स गच्छति ॥

लिङ्गपुराणे । अम्यागाराणि विप्राणां देवतायतनानि च ।

पूज्यन्ते शक्तता यासां किं देयमधिकं ततः ॥  
 देवलः । विमानवरमारूढोदिव्याभरणभूषितः ।  
 योगन्तुं वाञ्छति स्वर्गं स गोदानं प्रयच्छतु ॥  
 दानमप्यधिकं धेनोर्विद्यते वा समम्भुवि ।  
 नियतं त्रिदशैर्वासः कल्पितोऽस्यास्तु विग्रहे ॥

भविष्यत् पुराणे ।

ब्रह्मोवाच ।

आदित्यदुहिता गौर्हि पृथीयं परिकीर्त्तिता ।  
 श्रेयोऽर्थे सर्वलोकानामुत्पन्ना क्रतुसिद्धये ॥  
 ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतं ।  
 एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरैकत्र तिष्ठति ॥  
 गोभ्यो यज्ञाः प्रवर्त्तन्ते गोभ्यो देवाः समुत्थिताः ।  
 गोभ्यो वेदाः समुद्गीर्णाः सषडङ्गपदक्रमाः ॥  
 शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मविष्णुसमाश्रितौ ।  
 शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥  
 शिरोमध्ये महादेवः सर्वभूतमयः स्थितः ।  
 ललाटाग्रे स्थिता देवी नासावंशे च घण्टमुखः ॥  
 कम्बलेश्वतरौ नागौ नासापुटमुपालितौ ।  
 कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुषोः शशिभास्करौ ॥  
 दन्तेषु वायवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः ।  
 सरस्वती च हंकारे यमयक्षी च गण्डयोः ।  
 सन्ध्याद्वयं तयोष्ठाभ्यां ग्रीवामिन्द्रः समाश्रितः ॥



रक्षांसि कक्षदेशे तु साध्याश्चौरसि संस्थिताः ॥  
 चतुष्पात् सकलोधर्मः स्वयं जङ्घासु संस्थितः ।  
 खुरमध्ये तु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पन्नगाः ॥  
 खुराणां पश्चिमाग्रेषु गणाह्वारसां स्थिताः ।  
 रुद्राश्चैकादश पृष्ठे वसवः सर्वसन्धिषु ॥  
 श्रोणीतटस्थाः पितरः सीमोलाङ्गूलमाश्रितः ।  
 आदित्यरश्मयोवालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः ॥  
 साक्षाद्गङ्गा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ।  
 क्षीरे सरस्वती देवी नर्मदा दधिसंस्थिताः ॥  
 हुताशनः स्वयं सर्पिर्ब्राह्मणानां गुरुः परः ।  
 अष्टाविंशतिदेवानां कीटगोरोमसु संस्थिताः ॥  
 उदरे पृथिवी ज्ञेया मण्डलवनकानना ।  
 चत्वारः सागराः पूर्या गवां ये तु पयोधराः ॥  
 एतद्भिः कथितं सर्वं यथा गोषु प्रतिष्ठितं ।  
 जगद्वै देवशार्दूल सदेवासुरमानवं ॥

स्कन्दपुराणे ।

तृणानि खादन्ति वसन्त्यरण्ये  
 पिवन्ति तीयान्यपरिग्रहाणि ।  
 दुहन्ति वाहन्ति पुनन्ति पापं  
 गवां रसैर्जीवति जीवलोकः ॥  
 तुष्टास्तु गावः शमयन्ति पापं  
 दत्तास्तु गावस्त्रिदिवद्वयन्ति ।

संरक्षिताश्चोपनयन्ति वित्तं  
 गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥  
 शष्पंसमश्नाति ददाति नित्यं  
 पापापहं मित्रविवर्द्धनं च ।  
 स एव चार्थः परिभुज्यते च  
 गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥  
 तृणानि शुष्कानि वने चरित्वा  
 पीत्वापि तोयान्यमृतं श्रवन्ति ।  
 यज्ञोमयाद्याश्च पुनन्ति लोकान्  
 गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥

हारीतः । बहुक्षीराश्च योगा वै ब्राह्मणायोपपादयेत् ।

उत्तारयेत् आत्मानं सप्त सप्त कुलानि च ॥

देवलः । सुशीलां लक्षणवतीं युवतिं वत्ससंयुतां ।

बहुदुग्धवतीं स्निग्धां धेनुं दद्याद्विचक्षणः ॥

वेदव्यासः । यश्चात्मविक्रयं कृत्वा गाः क्रीत्वा संप्रयच्छति ।

आत्मविक्रयतुल्यास्ताः शास्वतीः हृद्वकौशिकः ॥

तथा । संप्रामेष्वर्जयित्वा तु यो वै गाः सम्प्रयच्छति ।

यावतीः स्पर्शयेद्भावः स तावत्फलमश्नुते ॥

तावदिति पूर्वोक्ततावद्गोरोमसस्मित ।

‘संवत्सरं’ स्वर्गफलमित्यर्थः ।

यो वैद्यूते धनं जित्वा क्रीत्वा गाः संप्रयच्छति ।

स दिव्यमयुतं शक्र वर्षाणां फलमश्नुते ॥

‘अन्तर्जाताः, सुक्रयज्ञानलब्धाः

पणक्रीता निर्जिताञ्चौकजाश्च ।

कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागताश्च द्वारैरेतैर्गोविशेषाः प्रशस्ताः ॥

अन्तर्जिता गर्भिणी इति भारतपदप्रकाशकारः ।

सुक्रयलब्धाः यथामूल्यक्रयप्राप्ताः, पणक्रीताः भृतिलब्धाः, निर्जिता युद्धादिना ओकजाः, गृहजाताः कृच्छ्रोत्सृष्टाः पोषणाभ्यागता इति, व्याधादिकृच्छ्राक्रान्ताः सत्यः स्वामिना याख्यक्ताः स्वयं च पोषणं कृत्वा लब्धाः ।

रुष्टा दुष्टा दुर्वला व्याधिताश्च

न दातव्या याच मूल्यैरदत्तैः ।

क्षैशैर्विप्रं या फलैः संयुनक्ति

तस्यावीर्याद्याफलाद्यापि लोकाः ॥

मूल्यैरदत्तैः स्वीकृतेति शेषः ।

तथा । न कृशां पापवत्सां वा वन्ध्यांरोगान्वितां तथा ।

न व्यंगमपरिश्रान्तां दद्याद्वा ब्राह्मणाय वै ॥

यो दद्यादुपयुक्तार्थां जीर्णान्विनुञ्च निष्फलाम् ।

तमः संप्रविशेद्वाता द्विजं क्षेपेन योजयेत् ॥

ब्रह्मपुराणे ।

पीतोदकां जग्धलणां दुग्धक्षीषां निरिन्द्रियाम् ।

उन्मत्तामङ्गहीनाञ्च मृतवत्सां महाशनां ॥

केगवालपुरीषास्त्रिक्रव्यादां सन्धिनीं खलाम् ।

पुटधेनुं यमलसृन्नित्यं व्रणयितस्तनीं ॥

न दद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च सदोषं वृषभन्तया ।

पीतोदकां जग्धलणामिति, वृद्धत्वीपलक्षणपराम् ।

दुग्धचोषां, स्वकीयस्तनपायिनीं, महाशनाम्  
बहुभक्षां, पुटधेनुं वाल्यावस्थैव या गर्भिणी

विश्वामित्रः ।

नैकशृङ्गाञ्च निष्कृङ्गां स्फुटिताक्षीं चलत्सुराम् ।  
न दद्यात् त्रिस्तनीञ्चैव गां शुभामिव दापयेत् ॥

महाभारते ।

अम्बरीषोन्मेषां दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान् ।  
अर्घ्यदानि दशैकञ्च मराष्ट्रोऽभ्यपतद्विवम् ॥  
दत्त्वा शतसहस्रन्तु गवां राजा प्रसेनजित् ।  
सवत्सानां महातेजा गतीलीकाननुत्तमान् ॥  
तथा । प्रासादा यत्र सौवर्णाः शय्या रत्नोज्ज्वलास्तथा ।  
वराश्चाप्सरसो यत्र तत्र गच्छन्ति गोप्रदाः ॥  
गोप्रदोनरकनैति पयः पीत्वाम्बूजञ्जलम् ।  
विमानेनार्कवर्णेन दिवि राजन् विराजते ॥  
तच्चारुवेषाः सुस्निग्धः शतशीवरयोषितः ।  
रमयन्ति विमानस्थं दिव्याभरणभूषिताः ॥  
वेणूनां वल्लकीनाञ्च नूपुराणाञ्च निःस्वनैः ।  
हासैश्च हरिणाक्षीणां सुप्तः सन् प्रतिबुध्यते ॥

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वा  
स्तावन्ति वर्षाणि महीयते स्वः ।  
स्वर्गाच्चुपतश्चापि ततस्त्रिलोके  
कुले समुत्पत्स्यति गोमतां सः ॥

विष्णुः । गोप्रदानेन स्वर्गमाप्नोति दशधेनुप्रदोगीलोकं शत-  
प्रदश्च ब्रह्मलोकं ।

जाबालः ।

होमार्थमग्निहोत्रस्य योगान्दद्यादयाचिताम् ।

त्रिविधं पूर्णं पृथिवी तेन दत्ता न संशयः ॥

यान्नवल्काः ।

यथाकथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाधेनुमेव वा ।

अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥

अङ्गिराः । गौरेकस्यैव दातव्या श्रोत्रियस्य विशेषतः ।

सा हि तारयते पूर्वान् सप्त सप्त च सप्त च ॥

नन्दिपुराणे ।

अपात्रे सा तु गौर्दत्ता दातारन्नरकं नयेत् ।

कुलैकविंशत्यायुक्तं ग्रहीतारञ्च तारयेत् ॥

विधिना च यदा दत्ता पात्रे धेनुः सदक्षिणा ।

तदा तारयते जन्तून् कुञ्जानामयुतैः शतैः ॥

पात्राग्नाध्यात्मिका मुख्या सुशुद्धाश्चाग्निहोत्रिणः ॥

देवताश्च तथा मुख्या गोदानं ह्येतदुत्तमं ॥

महाभारते ।

वृत्तिग्लानं सोदति चाति मात्रम्

कथ्यार्थं चाहोमहेतोः प्रसृत्यां ।

गुर्वर्थं वा बालसंभृदये वा

धेनुन्द्याटेषकाली विशिष्टः ॥

प्रसुत्यां सौमयागे, ।

तथा न वधार्थं प्रदातव्या न कीनाशे न नास्तिके ।

गोजीवे न च दातव्या तथा गौः पुरुषर्षभ ॥

‘कीनाशी’हलवाहकः, ।

आत्रेयः । सौदते बहुभृत्याय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।

अतिथिप्रियाय दान्ताय देया धेनुर्गुडान्विता ॥

अकुलीनाय मूर्खाय शुब्धाय पिशुनाय च ।

हथ्यकथ्यपेताय गौर्न देया कथञ्चन ॥

अथ दानविधिः ।

विश्वामित्रः । प्राङ्मुखीं गामवस्थाप्य सवत्सान्तां सुपूजितां ।

पुच्छदेशे तु दाता वै स्नातो वज्रशिखी भवेत् ॥

उदङ्मुखस्तु विप्रः स्यात्पात्रलक्षणलक्षितः ।

आज्यपात्रं करे कृत्वा कनकेन समन्वितं ॥

निक्षिप्य पुच्छं तस्मिंस्तु घृतदिग्धं प्रगृह्य च ।

सतिलं विप्रपाणिन्तु प्रागग्रन्तु निधापयेत् ॥

सतिलं स कुशञ्चापि गृहीत्वा दानमाचरेत् ।

अनेनैव तु मन्त्रेण पात्रहस्ता जलं क्षिपेत् ॥

यज्ञमाधनभूता या विश्वस्याघप्रनाशिनी ।

विश्वरूपः परीदेवः प्रीयतामनया गवा ॥

अनुब्रज्य तु तां धेनुं ब्राह्मणेन समन्वितां ।

गोमतीन्तु तती विद्यां जपेत प्रयतः शुचिः ॥

उद्दिश्यथ वासुदेवं प्रीयतामिति चानघ ।

पात्रं मनसि सञ्चिन्त्य तोयमप्सु विनिक्षिपेत् ॥

जलशायी ब्रह्मपिता पद्मनाभः सनातनः ।

अनन्तभोगश्च यनः प्रीयतां परमः पिता ॥

गोमतीमाह यमः ।

गावः सुरभयोनित्वं गावोगुग्गुलमन्त्रिकाः ।

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत् ॥

अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमं ।

पावनं सर्वभूतानां रक्षन्ति च वहन्ति च ॥

हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ।

ऋषीणामग्निहोतृणां गावो होमप्रतिष्ठिकाः ॥

सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम् ।

गावः पवित्रं परमं गावो मङ्गलमुत्तमम् ॥

गावः सर्वस्य लोकस्य गावोधन्याः सवाहनाः ।

नमोगोभ्य श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ॥

नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः ।

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ॥

एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ।

अन्यापि गोमती, महाभारतीक्ता तिलधेनुदाने दर्शिता ॥

ततश्चानयोर्विकल्पानुष्ठानमिति ।

सर्वगोदानसाधारणं मन्त्रमाह वशिष्ठः ॥

घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्धो घृतोद्भवाः ।

घृतनद्यो घृतावर्त्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे ॥

घृतं मे हृदये नित्यं घृतं नाभ्यां प्रतिष्ठितं ।  
 घृतं मे सर्व्वतश्चैव घृतं मे मनसि स्थितम् ॥  
 गावोममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च ।  
 गावोमे सर्व्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥  
 इत्याचम्य जपन् सायं प्रातश्च पुरुषः सदा ।  
 यदङ्गा कुरुते पापं तस्मात्सपरिमुच्यते ॥

दक्षिणाचात्र सुवर्णं ।

यदाह वशिष्ठः ।

सुवर्णं दक्षिणामाहुर्गोप्रदाने महाफले ।  
 सुवर्णं परमं ह्यायुर्दक्षिणार्थं न संशयः ॥  
 गोप्रदानन्तारयते सप्त पूर्व्वान् नरांस्तथा ।  
 सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा तावद्दिगुणमुच्यते ॥  
 सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।  
 सुवर्णं पावनं प्राहुः परिमाणं परन्तथा ॥

अत्र सुवर्णशब्दस्य हिरण्यपर्यायत्वे यथाशक्त्यानुष्ठानं अपरे-  
 त्वाहुः सकृदुच्चरितसुवर्णशब्दावगतपरिमाणार्थपरित्यागानुपपत्तेः  
 सुवर्णशब्दस्य प्राहुरित्यादिक्रियाकर्म्मभूततया द्वितीयान्तत्वेन लि-  
 ङ्गविशेषनिर्द्धारणाच्च परिमाणार्थतैव न्यायेति एवं च सत्य-  
 नियतानुष्ठानप्रसङ्गभङ्गः तथापरिमाणपरन्तथेत्येतदपि समञ्जसं  
 स्यात् ।

अत्र केचित्त्रोदयन्ति ।

एतदेव विधानं स्यात्तएवोपस्कराः स्मृताः ।



विधानमेतद्धेनूनां सर्वासामपि पठ्यते ।

इति वचनात् प्रत्यक्षधेनोरपि सकलगुडधेनुधर्मप्राप्तौ शुक्ति-  
कर्णेक्षुपादादित्वमाचरणीयमिति तदसत् दशमी स्यात् स्वरूपत  
इति स्वरूपशब्द एव सवत्साङ्गोरूप धारिणीमुपकरणादिविहीना-  
न्येनुमवगमयन् शुक्त्यादिमयीं कर्णादिप्रतिकृतिकृतिं निवारयति  
सर्वशब्दश्च प्रकृतापेक्षोपि स्वरूपधेनुवर्जमवतिष्ठते तस्मात् तत्  
स्वरूपधेन्यागुडधेनोरितिकर्त्तव्यता कर्त्तव्येति वक्ष्यमाणसुवर्णशृ-  
ङ्गिकाविधिस्तु भिन्न एवेति सर्वमनवद्यम् ।

इति गोदानविधिः ।

अथ स्कन्दपुराणे ।

मवत्सां कांस्यदेहनां हेमशृङ्गीं रूप्यखुराम् ।  
दुकूलक्षौमवासितां शय्यास्तरणसम्पन्नाम् ॥  
बहुपूष्पफलैर्युतां ब्राह्मणान् तर्पयित्वा तु ।  
यो नरोगां प्रयच्छेत्तु गन्धमाल्यैरलङ्कृतां ।  
देवैरध्यामितां तां तु सर्वैस्तद्वद्वयेन तु ॥  
मृदुवन्धेन वध्नीयात्ततः स्रक्षेन्न रज्जुना ।  
कुशान् सुवर्णवीजानि तिलाः सिद्धार्थकास्तथा ॥  
प्रदद्यात्तान्ततोद्भिद्य मन्त्रेणानेन सुव्रत ।  
मर्त्यदेवमयीं दोग्ध्रीं मर्त्यलोकमयीं तथा ॥  
मर्त्यलोकनिमित्तान्तां मर्त्यदेवनमस्कृतां ।  
प्रयच्छामि महामत्त्वामन्त्रयाञ्च शुभामिति ॥

एवं स दत्त्वा योगान्तु यत्र यत्र प्रजायते ।  
 तत्र तत्र गता सा तान् जन्तून् स्तारयते भयात् ॥  
 सर्वलोकान्तरे गत्वा रमते च यथानरः ।  
 स तथा मानवीजातो गोसहस्री महाबलः ॥  
 रूपवान् धनवान् चैव बहुपुत्रश्च जायते ।

कात्यायनः ।

शीलोपपन्नां सवनोत्तरीयां  
 कांस्थोपदोह्यां कनकान्तशृङ्गीं ।  
 विप्राय दत्त्वा भगवन् प्रियाय  
 प्रयाति लोकानमृतान् सुपुण्यान् ॥  
 संवत्सः । योददाति शफैरौष्यैर्हेमशृङ्गीमरोगिणीं ।  
 सवत्सां वस्त्रसंयुक्तां सुशीलां गां पयस्विनीं ॥  
 यावन्ति तस्या रोमाणि सवत्साया दिवङ्गतः ।  
 तावतो वत्सरानाम्स्ते स नरोब्रह्मणोन्तिके ॥  
 देवलः । चामीकरमये शृङ्गे कृते रौप्यमयाः खुराः ।  
 कांस्थजं दोहनं पृष्ठं ताम्रं वस्त्रयुगान्विता ॥  
 पुष्पमालावृता धूपवण्टाचामरमण्डिता ।  
 दीयते पुच्छदेशेन श्रद्धया दक्षिणान्विता ।  
 दत्त्वेवं दत्तभोगाढ्योदिव्यस्त्रीवृन्दसंहृतः ।  
 गोवत्सरोमतुल्यानि वर्षाणि दिवि मोदते ॥

इति हेमशृङ्गीदानविधिः ।

## नन्दिपुराणे ।

योगां सुपरिपूर्णाङ्गीं हेमशृङ्गोमकोपनां ।  
सुशीलां राजतैः पादैश्चित्रवस्त्रसुसंवृतां ॥  
सलोहपातां कुतपे निविष्टचरणां तथा ।

कुतपोऽत्र नेपालकम्बलः ।

म दक्षिणां प्रदद्याद्वा सोऽक्षयं स्वर्गमाप्नुयात् ॥  
गधि रोमाणि यावन्ति प्रसूतिकुलसंस्थितः ।  
तावत्स्यद्दानि वसति स्वर्गे दाता न संशयः ॥

इत्यपरहेमशृङ्गीदानविधिः ।

एतच्छतगुणं पुण्यं कपिलादानतः स्मृतम् ।

अथ मत्स्यपुराणे ।

दग्धमौवर्णिके शृङ्गे खुराः पञ्चपलान्विताः ।  
पञ्चाशत्पलिकं कांस्यन्ताम्ब्रं वापि तथैव च ॥  
दाता स्यात् स्वर्गमाप्नोति यावदाहूतसंप्लवं ।  
'पञ्चपलानि' रौप्यस्येति विज्ञेयं ।

ताम्ब्रं पृष्ठे कांस्यं दीहनं ।

आच्छादनार्थं वामोयुगं सुवर्णदक्षिणेत्यपि बोद्धव्यं ।

इति कनकशृङ्गीदानविधिः ।

ब्रह्मपुराणे ।

गान्ध्यादिदूर्णाय विप्राय गृहमेधिने ।  
सुवर्णोत्तुङ्गशृङ्गी वस्त्रवण्टासमन्विता ॥

प्रत्ययां त्रिसमृद्धां तु ललाटतटतर्पणां ।  
 राजतकुत्रचरणां मुक्तालाङ्गूलभूषितां ॥  
 कांस्योपदोहां-लम्बाञ्च लवणादितृणोदकैः ।  
 गवां पुच्छं गृहीत्वा च ससुवर्णेन पाणिना ॥  
 गृहस्थो वेदविधिप्रोदापयेत् तत्प्रतिग्रहं ।  
 भोगसौख्यप्रदाञ्चैता गोमाता पापनाशिनी ॥  
 कृष्णा स्वर्गप्रदा ज्ञेया गौरौ च कुलवर्द्धनी ।  
 रक्ता रूपप्रदा ज्ञेया पीता दारिद्रघातिनी ॥  
 पुत्रप्रदा कृष्णसारौ नीला धर्मविवर्द्धनी ।  
 कपिला सर्वपापघ्नी नानावर्णा च मोक्षदा ॥

प्रत्यगा नववयस्का, त्रिसमृद्धा ग्रीलक्ष्मीरप्रसवगुणयुक्ता, लव-  
 णादितृणोदकैस्तृप्तेति सर्वदा लवणादिषु तुष्टेत्यर्थः ।

इति सुवर्णशृङ्गादानविधिः ।

आदित्यपुराणे ।

कृष्णाङ्गान्ददते यस्तु पट्टकुत्रां खलङ्कृतां ।  
 घण्टामालाकुलां कृत्वा पुष्पैश्चैवाप्यरुक्तां ॥  
 त्रिविवच्च द्विजातिभ्यो यमलोकं न पश्यति ।  
 आयुरारोग्यमैश्वर्यं दाता कामांश्च मानसान् ॥  
 श्वेताङ्गान्ददते यस्तु दिव्यं रत्नैरलङ्कृतां ।  
 घण्टामालाकुलां कृत्वा पुष्पैश्चैवाप्यङ्कृतां ॥  
 मुखे धूपः प्रदातव्यो घृतेनास्यञ्च पूरयेत् ।  
 सुवर्णशृङ्गाभरणा तथा रौप्यखुरा शुभा ॥

पटङ्गना शुभाच्चैव दातव्या ध्यानयोगिने ।  
 यस्तु दद्याच्च गां श्वेतां तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 जन्मप्रभृति यत् पापं मातृकं पैतृकं च यत् ।  
 कुलोद्धतस्य हस्तस्य तत्क्षणादेव नश्यति ॥  
 गान्ददानीह इत्येव वाचा पूयेत सर्व्वशः ।  
 पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥  
 नरकस्थाः प्रमुच्यन्ते सोमलोकं व्रजन्ति ते ।  
 गौरीं चैव प्रयच्छेत्, यस्तु गां वै नरः शुचिः ॥  
 अहोरात्रोषितश्चैव कृतशौचीनरः सदा ।  
 सुवर्णशृङ्गीं रौप्यसुरां मुक्तालाङ्गूलभूषितां ॥  
 घण्टामालाकुलां चैव गन्धपुष्पैरलङ्कृतां ।  
 कुतपञ्चास्तरेत् प्राज्ञो मुखे धूपं प्रदापयेत् ॥  
 भक्षभोज्यान्नपानेन ब्राह्मणान् भोजयेद्बुभान् ।  
 गान्ददानीह इत्येव वाचा पूयेत सर्व्वशः ॥  
 मातृकं पैतृकं चैव यच्चान्यद्भक्ष्यं भवेत् ।  
 पापञ्च तस्य तत् सर्व्वं दहत्यग्निरिवेव्यनम् ॥  
 वर्षकोटिमहस्रन्तु पुमान् स दिवि मोदते ।  
 दासीदासैरलङ्कारैस्तूयते सर्व्वजन्तुभिः ॥  
 अरोगश्चैव जायते तेजस्वी च भवेन्नरः ।  
 नोलवर्णाञ्च गान्दद्याद्दोर्ग्रीं शीलगुणान्विताम् ।  
 सुवर्णशृङ्गीं रौप्यसुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम् ॥  
 पटङ्गनां शुभां सोम्यां घण्टादामैरलङ्कृताम् ।  
 पञ्चरङ्गेण सूत्रेण गण्डेष्टनशीभिताम् ॥

रुद्रस्य प्रमुखे देया विष्णोश्च ब्रह्मणश्च ह ।  
गां ददानीह इत्येववाचा पूयेत सर्व्वशः ॥  
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।  
नरकस्थाः प्रमुच्यन्ते नीलां गां ददते तु यः ॥  
वर्षकोटिसहस्राणि लोके तिष्ठति वारुणे ।  
दधिक्षीरवहा नद्यो वर्त्तन्ते सर्व्वतः सदा ॥  
घृतशैलाः प्रपद्यन्ते नवनीतस्य पर्व्वताः ।  
कृषिभागी बहुधनो दुर्भक्ष्यश्च न पश्यति ॥

इति नानागोदानविधिः ।

महाभारते । समानवत्सां कपिलां धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् ।

सुव्रतां वस्त्रसम्पन्नां ब्रह्मलोके महीयते ॥

समानवत्सां समानवर्णवत्सां ।

रोहिणीन्तुल्यवत्सां च धेनुं दद्यात्पयस्विनीं ।

सुव्रतां वस्त्रसंवीतां इन्द्रलोके महीयते ॥

समानवत्सां शबलां धेनुं दत्त्वा\* पयस्विनीं ।

सुव्रतां वस्त्रसंवीतां सीमलोके महीयते ॥

‘शबला, कर्बुरा ।

समानवत्सां कृष्णान्तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीं ।

सुव्रतां वस्त्रसंवीतां अग्निलोके महीयते ॥

वातरेणुसुवर्णान्तु सवत्सां कामदोहिनीं ।

प्रदाय वस्त्रसंवीतां वायुलोके महीयते ॥

समानवत्सां धूम्रान्तु धेनुं दत्त्वा पयस्विनीं ।

सुव्रतां वस्त्रसंयुक्तां यमलोके महीयते ॥

अर्घ्यां हेमसवर्णान्तु सवत्सां कामदोहनाम् ।

प्रदाय वस्त्रसंवीतां वरुणं\* लोकमश्नुते ॥

अर्घ्यां, गौः, कामदोहनां अनायासदोहनाम् ।

हिरण्यवर्णां पिङ्गाक्षीं सवत्सां कामदोहनाम् ।

प्रदाय वस्त्रसम्बीतां कौवेरं लोकमाप्नुयात् ॥

पलालधूमवर्णान्तु सवत्सां कामदोहनाम् ।

प्रदाय वस्त्रसंवीतां पितृलोके महीयते ॥

सवत्सां पीवरीन्दत्त्वा सितकण्ठीमलङ्कृताम् ।

वेश्मदेवमसम्बाधं स्थानं श्रेष्ठं प्रपद्यते ॥

सितकण्ठीं कृष्णगलां ।

समानवत्सां गोरीन्तु धेनुन्दत्त्वा पयस्विनीं ।

सुव्रतां वस्त्रसंवीतां वसूनां लोकमश्नुते ॥

‘सुव्रता, सुखदोह्या ।

पाण्डुकम्बलवर्णान्तु सवत्सां कामदोहनाम् ।

प्रदाय वस्त्रसंवीतां साध्यानां लोकमश्नुते ॥

वत्सोपपद्मात्रीलाङ्गीं सर्व्वरत्नसमन्विताम् ।

गन्धर्वाप्सरसां लोकान् दत्त्वा प्राप्नोति मानवः ॥

गो.प्रदानरतोयाति पीत्वा जलदसञ्चयान् ।

विमानिनार्कवर्णेन दिवि राजन् विराजते ॥

तच्चारुवेषाः सुश्रोण्यः सहस्रं वरयोषितः ।

रमयन्ति नरश्रेष्ठं गोप्रदानरतनरम् ॥

इति समानवत्सगोदानविधिः ।

आदित्य पुराणे ।

कपिलां ये प्रयच्छन्ति चेलच्छन्नां स्वलङ्घिताम् ।

सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तानाङ्गूलभूषिताम् ॥

श्वेतवस्त्रपरिच्छन्नां घण्टास्वनरवैर्युताम् ॥

घण्टास्वनरवैः, घण्टाशब्दकोलाहलैः ।

सहस्रं योगवान्दत्त्वा कपिलाञ्चापि सुव्रत ।

सममेव पुरे प्राह ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः ॥

यावन्ति रोमकूपाणि कपिलाङ्गे भवन्ति हि ।

तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥

रुक्मशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम् ।

कांस्थोपदोहनां धेनुं दस्त्रच्छन्नामलङ्घिताम् ॥

दत्त्वा द्विजेन्द्राय नरः स्वर्गलोके महीयते ।

दशधेनुप्रदानेन तुल्यैका कपिला मता ॥

याज्ञवल्काः ।

हेमशृङ्गी शफैरौप्यैः सुशीलां वस्त्रसंयुतां ।

सकांस्थपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥

दातास्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान् रोमसंमितान् ।

कपिलाञ्चेत्तारयति भूयस्वासप्तमं कुलम् ॥

व्यासः । रुक्मशृङ्गीं रौप्यखुरां वस्त्रकांस्थोपदोहनाम् ।



सवत्सां कपिलान्दत्त्वा वंशान् सप्त समुद्धरेत् ॥  
 यावन्ति तस्या रोमाणि सवत्साया भवन्ति हि ।  
 सुरभीलोकमासाद्य रमते तावतीः समाः ॥

लोकोत्तरे ।

घण्टाचामरसंयुक्ता किङ्किणीजालमण्डिता ।  
 दिव्यवस्त्रसमायुक्ता हेमदर्पणभूषिता ॥  
 पयस्विनी सुशीला च तरुणी वत्सकान्विता ।  
 कपिलैवं प्रदातव्या शिवस्याग्रे विधानतः ॥

दानमन्त्रस्तु मत्स्यपुराणे ।

कपिले सर्वभूतानां पूजनीयासि रोहिणि ।  
 तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥  
 इति कपिलादानविधिः ।

कूर्मपुराणात् ।

दशसौवर्णिके शृङ्गे खुराः पञ्चपलान्विताः ।  
 पञ्चाशत्पलिकन्ताम्रं कांस्यं चैतावदेव तु ॥  
 वस्त्रन्तु त्रिगुणश्वेत्वा दक्षिणा च चतुर्गुणा ।  
 एतैरलङ्कृतां धेनुं घण्टाभरणभूषिताम् ॥  
 कपिलां विप्रमुख्याय दत्त्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।  
 द्विगुणीपस्करोपेता महती कपिला मृता ॥  
 दत्त्वा मा विप्रमुख्याय स्वर्गमोक्षफलप्रदा ।  
 सप्तजन्मकृतात्यापान्मुच्यते दशमंयतान् ॥

यानन्यान् प्रार्थते कामांस्तांस्तान् प्राप्नोति मानवः ।

अन्ते स्वर्गापवर्गौ च फलमाप्नोत्यसशयः ॥

इति कपिलादानविधिः ।

अथ देवतोद्देशेन गोदानं ।

लिङ्गपुराणे ।

दैवदक्षिणदिग्भागे धेनुः कार्या उदङ्मुखी ।

प्राङ्मुखं वत्सकं कृत्वा ब्राह्मणं च उदङ्मुखम् ॥

प्राङ्मुखो यजमानस्तु पूजयेद्ब्राह्मणं ततः ।

कोदादितिचमन्त्रेण गृह्णीयाद्ब्राह्मणः स्वयम् ॥

देवीऽत्र महेश्वरः ।

एवंविधानतो दत्त्वा याति दाता शिवालये ।

तत्र भुक्त्वाचयान् भोगानन्ते ब्रह्मैति शास्वतम् ।

देवीपुराणे ।

नीलां वा यदि वा श्वेतां पाटलां कपिलामपि ।

सदुग्धां वत्सलाञ्चैव सुखदोहां सुगान्धप ॥

आदाय विधिवद्देवीं पूजयेच्छुभपङ्कजैः ।

धूपन्तु पञ्चनिर्यासन्तुरुष्कागुरुचन्दनम् ॥

दत्त्वा तु मन्त्रपूर्वन्तु नैवेद्यमुपकल्पयेत् ।

पायसं घृतसंयुक्तं क्षामयेच्च तथा तु ताम् ॥

दित्राय शिवभक्ताय सवत्साङ्गां निवेदयेत् ।

सहेमवस्त्रकांस्याच्च महापुण्यमवाप्नुयात् ॥

यावत्तद्रोमसंख्यानं तावद्देव्या पुरम्बसेत् ।  
इहैव गतपापोऽसौ जायते नृपसत्तम ॥

विष्णुधर्मो मान्वाता उवाच ।

ब्राह्मणः प्रीणनार्थाय केशवस्य शिवस्य च ।  
यानि दानानि देयानि तान्याचक्ष्व द्विजोत्तम ॥  
येन चैव विधानेन दानं पुंसः सुखावहम् ।  
ऐहिकामुष्मिकाप्तिञ्च करोति न विहन्यते ॥

वसिष्ठ उवाच ।

गोदानमादौ वक्ष्यामि प्रत्यक्षक्रमयोगतः ।  
येनचैव विधानेन धेनुं नाधिकविस्तरम् ॥  
पुण्यन्दिनमथासाद्य स्नात्वातर्प्य पितृस्तथा ।  
कृतोपवासः सम्प्राश्य पञ्चगव्यं नरेश्वर ॥  
घृतक्षीराभिषेकञ्च कृत्वा विष्णीः शिवस्य च ।  
तमभ्यर्च्य यथान्यायं पुष्पादिभिरनुक्तमात् ॥  
उदग्मुखीं प्राङ्मुखीं वा गृष्टिं कृत्वा पयस्विनीं ।

‘गृष्टिः’ सकृत्प्रसूतेत्यर्थः ।

सपुत्रां वस्त्रसंबोतां सितयज्ञोपवीतिनीम् ।  
स्वर्णशृङ्गो रौप्यश्वरां सुवर्णीपरि संस्थिताम् ॥  
शक्तितोदक्षिणायुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
गावो ममायतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥  
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा धेनुं द्विजवरञ्च तम् ॥  
 इमां नः प्रतिग्रह्णीष्व धेनुर्दत्ता मया तव ।  
 स मे पापापनोदाय गोविन्दः प्रीयतामिति ॥

वक्त्रिपुराणे तु

अयमधिको मन्त्रः ।

या धेनुः काश्यपस्यासीदन्नेर्वा गौतमस्य च ।  
 साभिकामफला देवि इह लोके परत्र चेति ॥  
 एवमुच्चार्य तं विप्रं गोविन्दं नृप कल्पयेत् ।  
 अनुव्रजेत्तु गच्छन्तं पदान्यष्टौ नराधिप ॥  
 अनेन विधिना धेनुं यो विप्राय प्रयच्छति ।  
 सर्वकामसमृद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥  
 सप्तावरान् सप्तपरानात्मानञ्चैव मानवः ।  
 सप्तजन्मकृतात्पापान्मोचयत्यवनीपते ॥  
 पदे पदे ऽश्वमेधस्य गोसवस्य च मानवः ।  
 फलमाप्नोति राजेन्द्र दक्षाग्रैवञ्जगौ हरिः ॥  
 सर्वकामदुघा सम्यक् सर्वकालेषु पार्थिव ।  
 भवत्यशो पापहरा यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥  
 सर्वेषामिव पापानां कृतानामविजानता ।  
 प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तमनुतापोपहं हितम् ॥  
 सर्वेषामिव देवानामेकजन्मानुगं फलम् ।  
 हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥  
 ब्राह्मणैः क्षत्रियैश्चैव शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः ।

लोकाः कामदुषाः प्राप्ता दत्त्वैतद्विधिना नृप ॥  
 गोभ्योऽधिकं जगति नापरमस्ति किञ्चि-  
 द्दानम् पवित्रमिति शास्त्रविदोवदन्ति ।  
 ताः सम्प्रदैः सुरसदृश समीहमानै-  
 र्देया सदैव विधिना द्विजपुङ्गवेभ्यः ।

इति देवतोद्देशेन गोदानविधिः ।

अथ देवताभ्यो गोदानम् ।

स्कन्दपुराणे ।

शिवाय विष्णवे चापि यस्तु दद्यात्पयस्विनीम् ।  
 धेनुं स्नानोपहारार्थं स परं ब्रह्म गच्छति ॥

भविष्यत्पुराणे ।

सौरीं सूर्याय योदद्यात्तरुणीञ्च पयस्विनीम् ।  
 तेन दत्तं भवेत्सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥  
 'सौरी, सूर्यसुता धेनुरित्यर्थः ।

स्नानाग्निकार्यमुद्दिश्य मरुपां सुपयस्विनीम् ।  
 कुलीनां कपिलान्दत्त्वा दत्तं भवति गोशतम् ॥  
 य एवं गामलङ्कृत्य दद्यात् सूर्याय मानवः ।  
 सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ॥

तथा । योदद्यादुभयमुखीं सौरभेयीं दिवाकरे ।  
 सप्तद्वीपां महीं दत्त्वा यत् फलं तदवाप्नुयात् ॥  
 पादद्वयं शिरोर्ध्वञ्च यदा स्यादेव निर्गतम् ।  
 तदा सा पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ॥

अथ वृषभैकादशीदानम् ।

शिवधर्मात् ।

दश गावः स वृषभा वृषभैकादशी स्मृता ।  
शिवाय विनिवेद्यैवं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥  
रुद्रैकादशतुल्यात्मा बलभोगादिभिर्गुणैः ।  
शिवादिसर्वलोकेषु यथेष्टं मोदते वशी ॥

भविष्यत्पुराणे ।

दश गावः स वृषभा वृषभैकादशश्च ताः ।  
सूर्याय विनिवेद्येह यत्फलं लभते शृणु ॥  
द्वादशादित्यतुल्यात्मा अणिमादिर्गुणैर्युतः ।  
सौरादिसर्वलोकेषु यथेष्टं मोदते दिवि ॥

अथ वृषभाधिकगोशतदानं ।

शिवधर्मात्तरात् ।

वृषभं गोशतं दद्याच्छिवायातीव शोभनम् ।  
त्रिःसप्तकुलजैः सार्द्धं शृणु यत् फलमाप्नुयात् ॥  
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः\* ।  
अनेकयानसंस्थानैरसुरासुरपूजितैः ॥  
शतरुद्रवलोपेतो वीरभद्र इवापरः ।  
गत्वा शिवपुरन्दिव्यमशेषाधिपतिर्भवेत् ॥

भविष्यत्पुराणे ।

सवृषं गोशतं दत्त्वा भास्कराय नराधिप ।

\* सार्व्वभौमिकैरिति क्वचित् पाठः ।

त्रिः सप्तकुलजैः सार्द्धं शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥  
 सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्दिवाकर इवापरः ।  
 गत्वादित्यपुरं रम्यं क्रीडते सूर्यवनपः ॥  
 भुक्ता तु विपुलान् भोगान् प्रलये सर्वदेहिनाम् ।  
 मोहकञ्चुकमुत्सृज्य विशत्यादित्यमण्डलम् ॥  
 सर्वज्ञः सूर्यपरमः शुद्धस्वात्मनि संस्थितः ।  
 सर्वगः परिपूर्णत्वात् सूर्यवद्दीप्तिमान् भवेत्\* ॥

इति देवतागोदानविधिः ।

अथ विरात्रगोदानविधिः ।

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

हेमशृङ्गीं रोष्यखुरां मुक्तालाङ्गलभूषणाम् ।  
 अहताम्बरसंवीतां तथाकांस्योपदोहनाम् ॥  
 त्रिरात्रं स्थण्डिले सुप्ता त्रिरात्रं गोरसाशनः ।  
 तप्तान्तु तर्पिते दत्त्वा वासमा संवृते द्विजे ॥  
 मदक्षिणा महाभाग त्रिरात्रं गोरसैस्ततः ।  
 प्राणमन्धारणङ्गत्वा शिवलोके† महीयते ॥  
 यावन्ति धेनीरोमाणि तावद्वर्षाणि मानवः ।  
 दत्त्वैवं कपिलां विप्राः प्राप्नोत्यभ्यधिकं फलम् ॥

महाभारते ।

\* सूर्यवद्दीप्तिमापनुयादिति कश्चितपाठः ।

† गदा लोके इति कश्चितपाठः ।

तिस्त्रोरात्रीस्वद्विरूपीष्य भूमौ  
 तृप्ता गावः स्तुर्पितेभ्यः प्रदेयाः ।  
 वत्सैः पीताः सुप्रजाः सोपचारा  
 स्युहं दत्त्वा गोरसैर्वर्त्तितव्यं ॥

तथा । द्विजातिमभिसत्कृत्य श्वःकल्पमुपवेद्य च ।

प्रदानार्थं नियुञ्जीत रोहिणो नियतव्रतः ॥

श्वःकल्पमुपवेद्य प्रातःकाल उपस्थानं कर्त्तव्य इति ज्ञापयित्वा,  
 आह्वानञ्च प्रयुञ्जीत समङ्गे बहुले इति ।

प्रविश्य च गवां मध्यमिमां श्रुतिमुदाहरेत् ।

गौर्मे माता वृषभश्च पिता मे

दिवं शर्म मे प्रतिष्ठा प्रपद्ये ।

प्रपद्यैकां सर्व्वरीमुख्यगोषु

मुनिर्वाणौमुत्सृजे गोप्रदाने ॥

समतामेति वै गोभिः समसख्यः समव्रतः ।

एकात्पगमनात्सद्यः कल्मषात् द्विप्रमुच्यते ॥

उत्सृष्टवृषवत्सा हि प्रदेया सूर्य्यदर्शने ।

उत्सृष्टौ त्यक्तौ वृषवत्सौ यथा सा तथा,

ऊर्जस्विन्य ऊर्जमेधाश्च यज्ञे

गर्भो अमृतस्य प्रतिष्ठा क्षितौ

प्रवाहाः पुण्यभावाः प्राजापत्याः

सर्व्वमित्यर्थवादः श्रुतौहि सः ॥

गावोममैनः प्रमुदन्तु सौर्या

स्तथा सौम्याः स्वर्गयानाय सन्तु ।



आहता मे ददतश्चाश्रयन्तु ।  
 तथा मुक्ताः सन्तु सर्वांश्शिषो मे ॥  
 शेषोत्सर्गे कर्मभिर्देहमोक्षे  
 सरस्वत्यः श्रियसि सम्प्रवृत्ताः ।  
 यूयन्नित्यं पुण्यकर्म्मोपवत्यः ।  
 दिश त्वं मे गतिमिष्टां प्रपन्नाः ॥  
 या वै यूयं सोऽहमाद्यैकभावो ।  
 युष्मान् दत्त्वा चाहमात्मप्रदाता ॥  
 नमस्कृता मन एवोपपन्नाः ।  
 संरक्षध्वं सौम्यरूपोग्ररूपाः ॥  
 एवन्तस्याग्रे पूर्वमर्द्धं वदेहै ।  
 गवां दाता विधिवत् पूर्वदृष्ट्या ॥  
 प्रतिभूयाच्छेषमर्द्धं द्विजातिः  
 प्रतिगृह्णन् गोप्रदाने विधिज्ञः ॥

पूर्वमर्द्धं, यावैयूयमित्यादिकं ।  
 गां ददानीति वक्तव्यमर्थं मुञ्चावसुप्रदत् ।  
 उधस्या नमितव्याच वैष्णवीति च चोदनात् ।  
 नाम संकीर्तयेत्तस्या यथासंख्यं ययोत्तरं ॥  
 फलषट्त्रिंशदष्टौ च सहस्राणि च विंशति ।  
 एवमेतान् गणान् वृद्ध्वा गवादीनां यथा क्रमं ॥  
 गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमक्रमे ।

‘अर्घ्यं’ अर्घाहं, ‘उञ्चावसु, गोधनं प्रदत्,  
 प्रददत्, उधस्यं क्षीरं तद्युक्ता उधस्या

अष्टमे क्रमे, गवि दत्तायां गच्छन्त्यामष्टमे पदे ।

गोदः शीलां निर्भयश्चार्धदाता

नस्योतौ वै वसुदाता च कामी ।

उषस्योटाभारं नयश्च विद्वान् ।

विख्यातास्ते वैष्णवाश्चन्द्रलोकाः ।

गां वै दत्त्वा गोव्रती स्याच्चिरात्

निशां चैकां सम्बसेतेह ताभिः ॥

काम्याष्टम्यां वर्त्तितव्यं त्रिरात्रं

गवां रसैर्वा शक्तता प्रस्रवैर्वा ।

वेदव्रती स्याद्दृषभप्रदाने

वेदावाप्तिर्गोयुगस्य प्रदाने ॥

तथा, गवां विधि मासाद्य यज्वा

लोकानग्रान् विन्दते नाविधिज्ञः ।

वसुदा द्रव्यदाः ।

‘कामी, काम्यफलवान् ।

‘उषस्योटा, उषस्यावाहयिता गायत्र्या इत्यर्थः ।

‘काम्याष्टमी, रोहिणीयुक्ताष्टमी । रसैर्दध्यादिभिः ।

‘प्रस्रवैः, क्षीरैः ।

‘वेदव्रती, वेदव्रतफलवान् ।

‘गवांयज्वा, गोप्रदाता ।

कामान् सर्वान् पार्थिवानेकसंस्थान् ।

योवै दद्यात् कामदुग्धाञ्च धेनुं ।

सम्यक्तास्यर्हव्यकथौघवत्य  
 स्तासामुक्तं आयसं संप्रदानं ॥  
 न चाशिष्यायाव्रतायोपकुर्यात्  
 नाशान्ताय नच वक्रबुद्धये ।  
 गुह्याच्चयं सर्वलोकस्य धर्म्मा  
 नेमान् धर्म्मान्यत्र तत्र प्रकल्पयेत् ॥

इति त्रिरात्रगोदानविधिः ।

अथाह वृद्धगौतमः ।

धेनुं पयस्विनीं हृद्यां घण्टाभरणभूषितां ।  
 हेमशृङ्गीं रौप्यखुरां वामोभिर्वेष्टितां नरः ॥  
 नवधान्यैः समायुक्तामेकैकं द्रोणपञ्चकं ।  
 सहिरण्यां तु तां दद्यात् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥  
 अलोलुपाय शान्ताय धर्मज्ञाय विशेषतः ।  
 होमश्च पूर्व्ववत् कार्यः समिदाज्यचरुत्कटं ॥  
 धूर्व्वं वदिति रूप्यवृषभदानवदित्यर्थः ।  
 तस्मै हुतव्रतो दद्यात् पूजितायांगुलीयकैः ।  
 गां क्षणां क्षणरूपायमन्त्रेणानेन रोगवान् ॥  
 देवकीपुत्र चाणूरकंमारिष्टविनाशनः ।  
 नाशय ग्रहणीं क्षण गोपीजनमनोत्सवः ॥  
 दानमन्त्रः । कृतेनानेन दानेन ग्रहणीशान्तिमृच्छति ।  
 तस्मादितत्त कर्त्तव्यं ग्रहणीरोगिणा सदा ।  
 इति ग्रहणीहृदधेनुदानविधिः ॥

तथा । धेनुं पयस्विनीं दाता लोहितां हेमशृङ्गिकां ।

तथा रूप्यसुरां रक्तवस्त्रेण समलङ्कृतां ।

ब्राह्मणायाग्निवर्ष्माय दद्यात्सत्कृत्य मानवः ॥

पलेन वा पलार्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।

सुवर्णेन युतां शुभ्रां यदा स्वविभवेन तु ॥

द्विजोत्तमाय श्रेष्ठाय सर्वशस्त्रार्थवेदिने ।

धेनुन्तामृतिसंहृष्टे मन्त्रेणानेन भक्तितः ॥

गावामि हृदये सन्तु गावामि सन्तु पृष्ठतः ।

देवानायातु सुरभी कृपयासृग्दरं मम ॥

दानमन्त्रः ।

विनाशमत्यदोदानमपि दीर्घमसृग्दरम् ।

तेनेदं यत्नतः कुर्यादसृग्दरगदार्दितः ॥

इति असृग्दरनाशनधेनुदानविधिः ।

अथ वैतरणीगोदानं ।

आह व्यासः ।

आमन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्व्ववत् ।

तदभावे तु गौरेव नरकोद्धरणाय वै ॥

पूर्व्ववत्, सुवर्णशृङ्गिकाविधिना ।

तदा यदि न शक्नोति दातुं वैतरणीं तु गां ।

शक्नोऽन्यो ऽरुक् तदा दद्याच्छ्रेयोदद्यात् मृतस्य च ॥

अरुक्, रोगरहितः ।

अथ दानमन्त्रः ।

यमद्वारे महाघोरे\* कृष्णा वैतरणी नदी ।  
तां तर्तुं गां ददाम्येतां तुभ्यं वैतरलीमिति ॥

ब्रह्मवैवर्ते युधिष्ठिर उवाच ।

यमद्वारे महाघोरे या सा वैतरणी नदी ।  
किंरूपा किंप्रमाणा सा कथं सा गर्हिता किल ॥  
कथं तस्याः प्रमुच्यन्ते केषां वासस्तु सन्ततं ।  
केषां तथानुकूला सा एतद्विस्तरतोवद ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

या सा वैतरणी नाम यमद्वारे महानदी ।  
तस्याः प्रमाणं रूपं च शृणु सर्वभयावहं ॥  
शतयोजनविस्तीर्णा पृथुत्वे सा महासरित् ।  
अगाधानन्तरूपा सा दृष्टमात्रात् भयावहा ॥  
पूयशीणिततीया सा मांसकर्द्दमनिर्भिता ।  
कुम्भिभिः सङ्कुलं भयं वज्रतुण्डैरयोमुखैः ॥  
शिशुमारैश्च मकरैर्वज्रकर्चरिसंयुतैः ।  
अन्यैश्च जलजैर्घोरैर्युक्ता सा मर्मभेदिभिः ॥  
पतन्ति तत्र वै मर्त्यास्क्रन्दमानाः सुदारुणाः ।  
हा भ्रातः पुत्र तातेति प्रलपन्ती मुहुर्मुहुः ॥  
चिरमन्तर्निमज्जन्ति ग्लानिनं गच्छन्ति देहिनः ।  
चतुर्विधैः प्राणिगणैर्द्रष्टव्या सा महानदी ॥

तरन्ति तस्या दानेन अन्यथा तु पतन्ति ते ।  
 धार्मिका दानशीलाश्च तां तरन्ति नरोत्तम ॥  
 सानुकूला भवेद्येन नदी वैतरणी नृणां ।  
 तत् शृणुष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं युधिष्ठिर ॥  
 अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ।  
 अन्येषु पुण्यकालेषु दीयते दानमादरात् ॥  
 पाटलामथवा कृष्णां कुर्याद्वैतरणीं शुभां ।  
 सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यपात्रसुदोहनां ॥  
 कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्यसमन्वितां ।  
 कार्पासद्रोणशिखरे आसीनां ताम्रभाजने ॥  
 यमं हैमं प्रकुर्याद्वै लोहदण्डसमन्वितं ।  
 महामहिषमारूढमूढपाशङ्करे परे ॥  
 इक्षुदण्डमयं बद्धा उडुपं पट्टबन्धनैः ।  
 उडूपोपरि तां धेनुं सूर्यदेहसमुद्भवां ॥  
 कृत्वा प्रकाशयेद्विद्वान् कृत्वोपानहसंयुतां ।

सप्तधान्यानि द्रोणश्च, परिभाषायां व्याख्यातानि उडूपं क्षुद्र-  
 नौका ।

इममुच्चारयेत् मन्त्रं संगृह्णीदकमण्डलं ।  
 यमहारे महाघोरि दृष्ट्वा वैतरणीं नदीं ॥  
 तर्तुकामोददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं च गां ।

अधिवासनमन्त्रः ।

ओं विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेवपंक्तिपावन ।

सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी नदी ॥  
 दानमन्त्रः । धर्मराजं च विप्रं च धेनुं वैतरणीं तथा ।  
 सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 पुक्कं संगृह्य तद्धेनोरग्रे कृत्वा च ब्राह्मणं ।  
 धेनुके त्वं प्रतिक्षस्व यमद्वारे महालये ।  
 उत्तितीर्षुरहं देवि वैतरण्यै नमो नमः ॥

अनुव्रजनमन्त्रः ।

अनुव्रजेच्च गच्छन्तं सर्वं तस्य गृहे नयेत् ।  
 एवं कृते महीपाल सा रसरित् सुखदा भवेत् ॥  
 तरते च तया धेन्वा सा सरिज्जलवाहिनी ।  
 सर्वाह्लादानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषाः ।  
 रोगी तु रोगनिर्मुक्तः तथैवोपरमेत् स्मृतिः ॥  
 इतीदमुक्तं तव धर्मसूनोः  
 पुण्यं मया वैतरणीप्रदानं ।  
 शृणोति भक्त्या पठती ह सम्यक्  
 स याति विष्णोः पदमप्रमेयं ॥  
 इति वैतरणीधेनुदानविधिः ।

अथोभयतोमुखीदानं ।

स्कन्दपुराणे ।

प्रसूयमानां योगां च दद्यादुभयतोमुखीं ।  
 अथोक्तेन विधानेन स जातिस्मरतां लभेत् ॥

नन्दिपुराणे ।

यश्चोभयमुखीं दद्याद्वा विप्रे वेदवादिनि ।  
देवाय वाप्यभीष्टाय स कुलान्येकविंशतिः ॥  
समुद्भूत्य नरस्तिष्ठेन्नरकात् ब्रह्मणोऽन्तिके ।  
युगानि रोमतुल्यानि यदि श्रद्धापरोनरः ॥

याज्ञवल्करः । सवत्सारोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीं ।

दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूर्व्वेण विधिना ददत् ॥  
पूर्व्वेण विधिना, हेमशृङ्गीशफैरौष्यैरित्यादिना प्रत्यक्षधेनूक्तेन,  
विष्णुः ।

अथ प्रसूयमाना गौः पृथिवी भवति तामलङ्कृत्य समुवर्णां  
विप्राय दत्त्वा पृथिवीदानफलमाप्नोति ।

अत्र गाथा भवति ।

सवत्सारोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीं ।  
दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति श्रद्धावानः समाहितः ॥

महाभारते ।

यावदूर्ध्वप्रसूता गौस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ।  
पृथिवी तेन दत्ता स्यात्तादृशीं गां ददाति यः ॥  
देवलः । यावद्वत्समुखा योनौ नयायाद्गर्भनिष्कृतिः ।  
यावन्न जायते धेनुस्तावद्गूः सचराचरा ॥  
अलङ्कृत्योक्तविधिना सुवर्णत्रिपलान्विता ।  
दातव्या द्विपला मध्या पलाद्या कन्यसा मता ॥  
दत्त्वेमां पुरुषः स्वर्गे ब्रह्मत्यमरपूजितः ।



गोवत्सरोमतुल्यानि युगानौष्णितभोगभाक् ॥

मत्स्यपुराणे ।

रुक्मशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषितां ।

कांस्योपदोहनां राजन् सवत्सां द्विजपुङ्गवे ॥

प्रसूयमानां योदद्याद्दिनुं द्रविणसंयुतां ।

द्रविणं अत्र दक्षिणारूपं, तच्च भूरिदक्षिणा इत्यग्रेऽभिधाना-  
दनल्पं प्रदेयं ।

यावद्वत्सोयोनिगतीयावद्गर्भं न मुञ्चति ।

तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना ॥

प्रसूयमानां योदद्याद्दिनुं द्रविणसंयुताम् ।

ससमुद्रगुहा भूमिः सशैलवनकानना ॥

चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ।

यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप ॥

तावत् संख्यान् युगगणान् देवलोके महीयते ।

पितृन् पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् ॥

उद्धरिष्यत्यसन्देहो नरकाद्भूरिदक्षिणः ।

घृतक्षीरवहाः कुल्याः दधिपायसकर्दमाः ॥

यत्र तत्र गतिस्तस्य भवेच्चेप्सितकामदा ।

गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकस्य पार्थिवः ॥

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्ता

प्रतप्तजांबूनदतुल्यवर्णाः ।

महानितम्बस्तनमध्यवृत्ता\* ।

भजन्यजस्त्रं नलिनाभानेत्राः ॥

वराह पुराणे ।

सुवर्णशृङ्गीं यः कृत्वा रौप्ययुक्तां खुरेऽथ वा ।  
 ब्राह्मणस्य करे दत्त्वा सुवर्णं रौप्यमेव वा ।  
 कपिलायां स्तदापुच्छं ब्राह्मणस्य करेन्यसेत् ॥  
 उदकञ्च करे दत्त्वा वाचयेत् अङ्गयान्वितः ॥  
 सप्तमुद्रवना तेन सशैलवनकानना ।  
 रत्नपूर्णा भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥  
 पृथिवीदानतुल्येन दानेनैतेन मानवः ।  
 तारितैर्याति पितृभिर्विष्णुस्थं पदमव्ययं ॥  
 ब्रह्मस्वहारको गीष्ठाभ्रूणाहा पाकभेदकः ।  
 महापातकयुक्तोऽपि वञ्चको ब्रह्मदूषकः ॥  
 निन्दको ब्राह्मणानां च तेषां कर्माभिदूषकः ।  
 एवं पातकयुक्तोऽपि गवां दानेन शुद्ध्यति ॥  
 यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रसूतकनकावृतां ।  
 तद्दिने पायसाहारः पयसा वापि वाहयेत् ॥  
 सुवर्णस्य सहस्रेण तदर्द्धेनापि तामिति ।  
 तस्याप्यर्द्धं शतं वाथ पञ्चाशच्च ततोऽर्द्धकं ॥  
 यथा शक्त्या प्रदातव्यं वित्तशाठ्यविवर्जितं ।  
 इमां गृहाणीभयमुखीं भवां स्वाता-ममास्तु वै ॥  
 मम वंशविशुद्धस्य सदा स्वस्तिकरी भव ।  
 इरावती धेनुमती च जप्त्वा देवस्थानात्तदनन्तरं ॥  
 प्रतिगृह्णामि त्वां धेनुं कुटुम्बार्थे विशेषतः ।

स्वस्ति भवतु ते नित्यं रुद्रमातर्नमोनमः ॥

द्यौस्ते प्रतिददामि पृथिवी ते प्रतिगृह्णामि ।

क इदं कस्माद्देति जपेन्मन्त्रं वसुन्धरे ॥

विसृजेत् ब्राह्मणं देवि गाञ्च तस्य गृहं नयेत् ।

उभयशिरसं दद्यादित्यनुवृत्तौ च वनः ।

तस्याः प्रदानकाला प्रसवकालीनान्यं कालं प्रतीक्षते

व्यतोपात-विषुवा-यन-घडशीति-मुख-विष्णुपदी-ग्रहणान्ताः

सर्व्वे एव पुण्यकालाः तदैव यत्र चार्द्धप्रसूता तत्र स्नातो ब्राह्मणं  
ब्रूयात् शुत-शैल-सत्य-शीच-वृत्त-जातिक्रिया-द्यैर्गुणैरूपेतं च कालेन  
प्रणिपत्य ब्रूयाद् दहमतीवार्त्तोभीतोऽस्माद् दगाधादपारात् संसा-  
रणार्णवात् ममुत्तारयामि दशापरान् दशपरानात्मानञ्च च स्वामिन्  
भवन्तं दानपात्रमासाद्य म चानुग्रहवुद्ध्या नार्थलिप्सया गृह्णीत  
दाता च तामनुमन्त्रयेत् त्वं महीभवनिं विश्वदेनुः क इदं कस्माद्  
इति गृहीतायां दक्षिणेन पाणिना वत्समाकर्षयेत् गर्भे तु सखे-  
षामवेदमिति जपेत् निष्कान्तेऽग्निमुपसमाधाय देवान् पितृन्-  
नदीः पर्व्वतान् वनस्पतीन् दधोन्नागानोषधोस्तर्पयंस्तैस्तैर्मन्त्रैस्तेषां  
मन्त्रपदानि भवन्ति ये देवासो दिव्येकादशस्थाः उशन्तस्त्वानिधो  
महि इमं मे गङ्गेयमुने सरस्वति अर्द्रिभिः सुतोमतिभिश्च नोहिते  
वनस्पते शतवत्सो विरोह समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यादहिरिव-  
भोगैः पर्य्येति राहुं मधुवाताकृतायत इति मन्त्राः तदनु पार्थि-  
वोभिः पृथिवीं तर्पयेद्दलैर्द्यावापृथिवी पूर्वं चित्तं ये मही द्यौ  
पृथिवी च नः उर्व्वं पृथ्वी बहुले दरे अन्ते गौरोर्मिमाय सलिलानि  
तक्षतीत्यादिभिश्चतुरशीत्याज्याहुतीर्जुहोति ब्राह्मणान् भोजयेत्

स्वस्थयनं वाचयित अथास्य कर्मणी व्युष्टिमुदाहरन्ति अभक्ष्य-  
भक्ष्यमपेयपायिनं ब्रह्मघ्नं पितृघ्नं सद्यएव पुनानि उपाध्यायिनीं  
सुतां मित्रभार्यां मातरं मातृष्वसारं मातुलानीं भगिनीं  
भागिनेयीं शिष्यजायां धात्रीमन्यामप्यगन्यां यत्किञ्चिदशिरसंस-  
परिकरां ब्राह्मणाय दद्यात् परिकरीत्याः सुवर्णं रूप्यं रत्नादि  
जिवाणि ग्रामाणि वा धान्यानि वस्त्राणि खवणाद्याश्चन्दनाद्या  
गन्धाः शतं गवां तर्द्धमर्द्धं वा सर्वस्वस्या सहतया ब्राह्मणाय  
दद्यात् महापातक मुक्तये, विमुक्तये ।

इति उभयतो मुखीदानविधिः ।

अथ गोदानप्रसङ्गेन वृषभदानमप्यभिधीयते ।

तत्र स्कन्दपुराणे ।

उत्पाद्य सस्यानि तृणञ्चरन्ति

तदेव भूयःसकलं वहन्ति ।

नभारखिन्नाः प्रवदन्ति निश्चित

अहो वृषैर्जीवति जीविताज्ञः ॥

ब्रह्मपुराणे ।

पुरा निर्मितवान् ब्रह्मा वृषभं धर्मरूपिणं ।

श्वेतवर्णं चतुष्पादं सत्त्वैकगुणधारणात् ॥

धर्म इत्याह धर्मः स धर्मेण विधृताः प्रजाः ।

प्रजा धरत्ययं भूमौ धर्ममूर्तिर्वृषो यतः ॥

अतो वृषभदानेन दत्तं स्यात्सचराचरं ।

कृत्वा तत्पार्श्वतस्तत्र कृत्वापानहकम्बलं ॥

वृषं संपूज्य पुष्पाद्यैर्वित्तशठाट्टते नरः ।  
 अद्वया चैव योदद्यात्तन्नमुञ्चति धर्मराट् ॥  
 सर्वसस्यैः सुखैश्चैव दातारं योजयत्यसौ ।

आदित्यपुराणे ।

यो वै ददात्यनङ्गाहं सुशीलं साधुवाहिनं ।  
 उभयोः पार्श्वयोर्दत्त्वाच्छत्रोपानहकम्बलं ॥  
 शीलवेदाङ्गसम्पन्ने हृष्टे शिष्टे द्विजे नरः ।  
 पुष्टेच जन्मनक्षत्रे अयने विषुवेषु च ॥  
 दत्त्वा तस्य अनङ्गाहं सर्व्वरत्नैरलङ्कृतं ।  
 दत्त्वा तस्य अनङ्गाहं तस्मिन् स्थाने महामुने ॥  
 क्षत्प्रिपासाह्मितस्याग्निं अग्रतः प्रतिपद्यते ।  
 दत्त्वा प्रजापतेर्लीकान्विशोकः प्रतिपद्यते इति ॥

कण्ठं प्रलम्बगलकंवलं तथा  
 अनङ्गाहं ब्राह्मणायाथ धुर्य्यं  
 दत्त्वायुवानं वलिनं विनीतं ।  
 हलस्यवोढारमनन्तवीर्य्यं  
 प्राप्नोति लोकान्दशधेनुदस्य ॥

स्कन्दपुराणे ।

निवेद्य सङ्गुणोपेतमनङ्गाहं शिवाश्रये ।  
 दशधेनुप्रदानस्य फलं शोभनमाप्नुयात् ॥

बृहस्पतिः ।

वेदव्रतीस्यादृषभप्रदाने वेदावाप्तिर्गोयुतस्य प्रदाने ।

देवलः ।

वृषयुग्मं वृषं वापि दत्त्वा गच्छेत् सुरालयं ।  
 भुङ्क्ते मन्वन्तरं भोगान् द्विगुणान् युग्मलाङ्गली ॥  
 अनङ्गाहौ तु योदद्याद्विजे सीरेण संयुतौ ।  
 अलङ्कृत्य यथा शक्त्या सुवाहौ शुभलक्षणौ ॥  
 सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ।  
 वर्षाणि वसति स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥  
 यो ददाति वलीवर्द्धमुक्तेन विधिना शुभं ।  
 अव्यङ्गं गोप्रदानाच्च भुङ्क्ते दशगुणं फलं ॥

महाभारते ।

युवानमिन्द्रियोपेतं शतेन सह यूपं ।  
 गवेन्द्रं ब्राह्मणेन्द्राय भूरिशृङ्गमलङ्कृतं ॥  
 ऋषभं ये प्रयच्छन्ति श्रोत्रियाय परन्तप ।  
 ऐश्वर्यन्तेऽभिजायन्ते जायमानान् पुनः पुनः ॥  
 शतेन, स्त्रीगवीनामिति शेषः ।  
 भूरिशृङ्गं, सुवर्णशृङ्गं ।

यमः ।

दान्तन्धुरन्धरं दत्त्वा कृत्रीपानहसंयुतं ।  
 दशधेनुप्रदानाच्च यत् फलन्तत्समश्रुते ॥  
 भविष्योत्तरात् युधिष्ठिर उवाच ।  
 युष्मत्वाक्यामृतमिदं शृण्वानोऽहं जनार्दन ।  
 न तृप्तिमधिगच्छामि जातङ्गीतूहलं हि मे ॥

गोपतिः किल गोविन्दस्त्रिषुलोकेषु विश्रुतः ।

गोवृषराः प्रदानेन त्रैलोक्यमभिनन्दति ॥

तन्मे वृषभदानस्य फलं वैकथयाच्युत ॥

श्रीकृष्णउवाच ।

वृषदानफलं दिव्यं शृणु न कथयामि ते ।

पवित्रं पावनं चैव सर्वदुष्टोत्तमन्तथा ॥

दशधेनुप्रोऽनङ्घानेकैश्च धुरन्धरः ।

दशधेनुप्रदानाच्च वृषणक्तो विशिष्यते ॥

वृषभस्यापि पुष्टाङ्गो ह्यरोगः पाण्डुनन्दन ।

युवा भद्रः सुशीलश्च सर्वदोषविवर्जितः ॥

धुरन्धरः स्थापयति राजा एव कुलमहत् ।

व्राताः भवति संसारेनात्र कार्या विचारणा ॥

अलङ्घ्य वृषं शान्तं पुण्ये ऽङ्गि समुपस्थिते ।

रौप्यलाङ्गूलसंयुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं शृणुष्व वदामि ते ।

धर्मस्त्वं वृषस्यैव जगदानन्दकारकः ॥

अष्टमूर्त्तिरधिपः सन्तः पाहि सनातनः ।

दत्त्वैवं दक्षिणायुक्तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

सप्तजन्मकृतं पापं वाङ्मनःकायकर्मणा ।

तत्सर्वं विलयं याति गोदानसुकृतेन वै ॥

यानं पुण्यं संयुक्तं दीप्यमानं शुशोभितं ।

आरुह्य कामगन्धिव्यं स्वर्लोकमधिरोहति ॥  
 यावन्ति तस्य रोमाणि गोवृषस्य महौपते ।  
 तावद्वर्षसहस्राणि गवां लोके महौयते ॥  
 गोलोकादवतीर्णस्तु द्रुहलोके द्विजायते\* ।  
 सत्रयाजी महातेजाः सर्वब्राह्मणपूजितः ॥

आजस्विनं भरसहं दृढकन्धरञ्च  
 यच्छन्ति ये वृषमशेषगुणीपपन्नं ।  
 दत्तेन यद्भवति गोदशकेन पुण्यं  
 सत्यं भवन्ति भुवि तत्फलभागिनस्ते ॥

इति वृषदान विधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

हिरण्यवृषदानं च कथयामि समासतः ।  
 वृषरूपं हिरण्येन सहस्रेणाय कारयेत् ॥  
 तदर्द्धेनाथवा धीमांस्तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।  
 अष्टोत्तरशतेनापि वृषभं धर्मरूपिणं ॥

अत्र तु पात्रपरिमाणविशेषस्य हिरण्यस्य सहस्रादिसंख्यया-  
 व्यवच्छेदः कर्तुं न शक्यत इति पूर्वप्रक्रान्तनिष्कशब्देनाकाङ्क्षापूर्-  
 णीया लिङ्गपुराणोक्तदानेषु निष्कैरेव व्यवहारदर्शनाच्च ।

ललाटेकारयेत्पुण्ड्रमर्द्धचन्द्रं कलाकृतिं ।

स्फटिकेन तु कर्त्तव्याः खुराश्च रजतेन च ॥

पुण्ड्रं तिलकं, स्फटिकं, खुरा रजतेन विधेयाः,

\* द्विजोभवेदिति क्वचित्पाठः ।



ग्रीवान्तु पद्मरागेण ककुद्भोमेदकेन च ।  
 ग्रीवायां घण्टावलयं रत्नचित्रं तु कारयेत् ॥  
 वृषाष्कङ्कारयेत्तत्र किङ्किणीकृतपद्मगं ।  
 पूर्वोक्तदेशकाले च वेदिकोपरिमण्डले ॥

वृषाङ्गी, महेश्वरः ।

तन्मूर्त्तिलक्षणमाह विश्वकर्मा ।  
 त्रिनेत्रस्तु चतुर्बाहुर्जटामण्डलमण्डितः ।  
 शूलखट्वाङ्गवरदाभयपाणिर्महेश्वर इति ॥  
 पूर्वोक्तदेशकालइत्यत्र, देश-काल-कुण्ड-मण्डप-वेदिकादि-  
 लिङ्गपुराणोक्तं तुलापुरुषदानविहितं वेदितव्यं ।  
 वृषञ्च स्थापयेत्तत्र पश्चिमासुखमग्रतः ।  
 ईश्वरं पूजयेद्भक्त्या वृषारूढं वृषध्वजं ॥  
 वृषेन्द्रं पूज्य गायत्र्या नमस्कृत्य समाहितः ।  
 ओंतीक्ष्णशृङ्गाय विद्महे धर्मपादाय धीमहि तन्नोवृषः प्रची-  
 दयात्

इति वृषगायत्री ।

मन्त्रेणानेन संपूज्यो वृषो धर्मविवृद्धये ।  
 होतव्यञ्च घृताद्यैश्च यथाविभवविस्तरं ॥  
 वृषः सम्पूज्य दातव्यो ब्राह्मणेभ्यः शिवाय च ।  
 दक्षिणा चैव दातव्या यथावित्तानुसारतः ॥  
 एतद्यः कुरुते भक्त्या वृषदानमनुत्तमं ।  
 शिवस्यानुचरो भूत्वा सुचिरन्तत्र मोदते ॥

प्रत्यङ्मुखञ्च वृषभं शिवाग्रतःस्थापयेत् ।

शिवस्य तत्पश्चिमे स्थापनात् ।

तदुक्तं वातुले

वृषाङ्गे परितःकार्यं किङ्किणीवलयं शुभम् ।

ईश्वरं पूजयेत्पश्चात्पश्चिमान्दिशमास्थितं ॥

पूजयित्वा विधानेन वृषयागन्तु कारयेत् इति ।

शिवायचेति, चकारः समुच्चये ।

कामिकेत्वेकाग्निपक्षोपि ।

समिदाज्यचरूपे तमेकमग्निमथापिविति ।

दक्षिणादिकं प्राग्बत् ।

इति लिङ्गपुराणोक्तो हिरण्यवृषदानविधिः ।

अम्बरीष उवाच ।

यत्सूर्येण समाख्यातं दानं सर्वसुखावहं ।

ईश्वराणाञ्च निःस्नानां तस्मै व्याख्यातुमर्हसि ॥

वसिष्ठ उवाच ।

येनेश्वरो हरिद्रोवा करोति विधिना नृप ।

दानं सर्वगुणोपेतं तच्छृणुष्व यथा तथा ॥

भारादौ त्रिपलानाञ्च वृषं कृत्वा विधानतः ।

युतं धेन्वाथवा दद्याच्छक्तितो नृपसत्तम ॥

या मया धेनवः प्रोक्ता वृषास्तावन्त एव हि ।

हरये ता नियोज्याः स्युर्हराय च तथा वृषाः ॥

सर्वभावात्ततीराजन् तिलपात्राणि नित्यशः ।  
 सर्वपापविनाशाय दीयते नृपसत्तमः ॥  
 गोमयेन समालिप्ते पट्टवस्त्रसमावृते ।  
 वृषं हेममयं तत्र रौप्यं वा रत्नसंयुतं ॥  
 तस्य नीलमये शृङ्गे मौक्तिके चक्षुषी रदाः ।  
 द्वात्रिंशच्छुभवस्त्राणि विद्रुमौष्ठौ च नासिका ॥  
 मरकतं विनिर्दिष्टं कर्णौ वै हरिताश्मके ।  
 पद्मरागस्य वै पादा खुरा रौप्यमयाः शुभाः\* ॥  
 राजतानि च रोमाणि क्षौमवस्त्रेण कम्बलं ।  
 पादेन पुच्छमुद्दिष्टं सर्वेषामप्ययं विधिः ॥  
 वृषणैः स्फटिकस्यापि लिङ्गे मणिः प्रकीर्तितः ।  
 तथा धेनुर्यथानड्वान् सुवर्णस्य तु कारयेत् ॥  
 अभीष्टदेवतापूजां कुर्वीत तदनन्तरं ।  
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं द्विजाय निवेदयेत् ॥  
 योवृषायज्ञदानेऽभूच्छतानीकस्य निष्कलः ।  
 जातरूपमयं सोऽयं तारिता मां न संशयः ॥  
 एतस्य विभवादानं भक्त्या यः प्रतिपादयेत् ।  
 पृथुले वाप्यशक्ते वा तदनन्तफलं स्मृतं ।  
 निःस्त्रिवाप्येवमेवं हि कृत्वा दानमतन्द्रितः ॥  
 तत्फलं समवाप्नोति स्वल्पदानान्न संशयः ।  
 इति वज्रपुराणेऽहोमहवषदानविधिः ।

सनत्कुमार उवाच ।

आषाढपौर्णमास्यां तु कार्तिके वाथ फाल्गुने ।

अर्द्धानैर्जितक्रोधैर्देयमेतद्यथाविधि ॥

जाम्बूनदस्य शुद्धस्य पलैस्त्रिंशतिभिस्तथा ।

तदर्द्धमर्द्धेन तथा यथाशक्त्या पलैस्त्रिभिः ॥

ह्यभ्यामेकेन वा कार्यो वृषः सर्वाङ्गशोभनः ।

पलादूनो न कर्त्तव्यो दुःखशोकभयावहः ॥

मण्डपं कारयेद्व्यं परार्द्धापट्टनिर्मितम् ।

तन्मध्ये तन्दुलैः शुक्लैर्मण्डलं कारयेच्छुभं ।

ततः प्रभाते विमले समुत्थाय जितेन्द्रियः ।

शुक्लाम्बरधरःस्नातः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।

कृतनित्यक्रियः शुक्लमालारत्नविभूषितः ॥

नरो वा यदि वा नारी दिव्यभोगाभिलाषिणी ।

सितवस्त्रयुगच्छन्नं स्थापयित्वा ततो वृषं ॥

सौवर्णमण्डपे तस्मिन् सुवर्णैर्वहुभिश्चितं ।

चन्दनागुरुकर्पूरैः सुमनोभिस्तथा सितैः ॥

संपूजयेत्ततः सम्यक् मन्त्रैः पौराणसम्भवैः ।

नमस्ते जगदाधार प्रियः पुण्यकृतामसि ॥

त्वदिहीने जगत्स्मिन्नकश्चिच्छुभमश्रुते ।

नमस्ते धर्मराजाय वृषरूपधराय वै ॥

त्वं मामुद्धर देवेश दुर्गसंसारसागरात् ।

यशः कीर्त्तिर्द्धनं धान्यं यदन्यदपि संस्थितं ॥

तत्तत्पूज्यच्छ देवेश परत्र च शुभां गतिं ।

इति संपूज्य विधिवत्तं देवं वृषरूपिणं ॥  
 नैवेद्यं संस्तरे तत्र हविषा निश्चितं शुभं ।  
 कालोद्भवं मूलफलं सर्व्वं देवसमन्ततः ॥  
 हविषान्नेन भुञ्जीत भोजयित्वा ततो द्विजान् ।  
 सायाह्ने तु ततः कुर्यात्पुष्पगृहमनुत्तमं ॥  
 सितपुष्पैः शुभैर्गन्धैर्लब्धन्मधुकराकुलैः ।  
 फलमूलानि चान्यानि दीपाःशुक्लदशान्विताः ॥  
 घृतपर्णास्तु कर्त्तव्याः संप्रद्योतितमण्डपाः ।  
 रात्रौ जागरणं कार्य्यं देवदेवस्य सन्निधौ ॥  
 वारमुख्याः समा नार्य्यो गान्धर्वान् श्रुतिसौख्यदान् ।  
 गीतवादितशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च ।  
 नर्म्मालापैश्च नृत्यैश्च गमयेत्तां निशान्ततः ॥  
 अरुणोदयवेलायां समुत्थाय जितेन्द्रियः ।  
 पूजयित्वा द्विजांस्तत्र गोहिरण्यैर्नरोत्तम ॥  
 वृषरूपं ततो धर्म्मं प्रीयतां वृषभध्वज ।  
 इत्युच्चार्य्य परं मन्त्रमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥  
 दत्त्वा दानमिदं सम्यक् विधिनानेन पार्थिव ।  
 कुर्याद्द्विग्विजयं विप्रो वेदकर्म समाचरेत्\* ॥  
 वैश्यः समुद्रगमनं शूद्रः कर्म यथेप्सितं ।  
 फाल्गुन्यामथवा दद्याद्दानमेतन्नरोत्तम ॥  
 रौद्रं कर्म विनिर्द्दिष्टं ब्रह्मणा शङ्करस्य हि ।

इति गारुडपुराणोक्तः सुवर्ष-

वृषदान विधिः ।

अथ रूप्य वृषदानं ।

अथ कुष्ठहरं बल्ये वृषदानमनुत्तमं ।  
 यत्कार्यं कुष्ठरोगार्तैः शरीरसुखकारकं ॥  
 पलैस्त्रिभिस्तु कुर्वीत दाभ्यामेकेन वा पुनः ।  
 राजतं वृषभं शुभ्रं हेमशृङ्गखुरन्तथा ॥  
 महेश्वरेणोभया च कुर्वीत तमधिष्ठितं ।  
 सौवर्षे<sup>१</sup> प्रतिमे द्वेच पूर्वोक्तेन क्रमेण तु ॥  
 यथा विभवमानेन वित्तशठो न कारयेत् ।  
 पलाष्टके कांस्यपात्रे स्थापये ते विचक्षणः ॥  
 श्वेतपुष्पैरक्षताभिः श्वेतवस्त्रैरलङ्कृतम् ।  
 ब्राह्मणं विद्यासम्पन्नं स्वाचारं संयतेन्द्रियं ॥  
 सर्वशास्त्रप्रवक्तारं प्रतिग्रहपराङ्मुखं ।  
 दान्तं कुलीनं धर्मज्ञमनुद्देशकरं नृणां ॥  
 क्रोधलोभविहीनञ्च सर्वशास्त्रार्थकोविदं ।  
 गृहमाह्वय भक्त्या तं यथा विधि समर्चयेत् ॥  
 केयूरकटकैर्वस्त्रैर्माल्यैश्चैवाङ्गुलीयकैः ।  
 होमञ्च पूर्ववत् कुर्यात् मन्त्रैर्महेश्वरैस्तथा ॥  
 उदङ्मुखोपविष्टाय महादेवस्य सन्निधौ ।  
 प्राङ्मुखोऽधितो दद्यान्मन्त्रेणानेन धर्मवित् ॥  
 अष्टमूर्तिर्महेशानः कृपया वृषभध्वजः ।  
 श्वेतमौदुम्बरं सर्वमथवाचितमेव च ॥

त्वग्दीपजनितं यच्च मण्डलान्यथवानघ ।  
 सर्वं कर्म विपाकीत्यं पार्वतीनाथ सर्व्वग ॥  
 कुष्ठहा भव सर्व्वेश रक्ष मां पार्वतीपते ।  
 इति वायुपुराणोक्तो रूप्यवृषदान विधिः ।

आह बौधायनः ।

शुक्तपक्षस्य चाष्टम्यां द्वादश्यामथवा पुनः ।  
 पलेन कुर्याद्वृषभं सान्द्रलोम सुराजतम् ॥  
 हेमशृङ्गं सुवर्णाक्षं रत्नपुष्पशुभाननं ।  
 महेश्वरेणोमया च सौवर्णेन ह्यधिष्ठितं ॥  
 अथाविभवतस्तत्र परिमाणं विधीयते ।  
 उमामहेश्वररूपमतं निरन्तरोक्त वृषदानवदवधेयं ।  
 पलाशके ताम्रपात्रे वस्त्रेणविष्टा भक्तितः ।  
 देवस्यैकं वृषस्यैकं पार्वत्याश्चैकमेव हि ॥  
 श्वेतपुष्पै रक्षताभिः कुङ्कुमागुरुचन्दनैः ।  
 पूजयेन्मूलमन्त्रेण तिलहोमञ्च कारयेत् ॥  
 अष्टोत्तरशतं चाज्यमिश्रेण चार्थ्यकेण तु ।  
 आचार्य्यो वित्तसम्पन्नः स्वाचारः संयतेन्द्रियः ॥  
 सर्व्वशास्त्रार्थवक्ताच शान्तीदान्तस्तथैव च ।  
 धर्मप्रवीणोधिषणस्त्वनुद्देशकरोन्मृणाम् ॥  
 वृषदानप्रयोगज्ञो हरोमाभ्यामधिष्ठितम् ।  
 वृषभं घण्टिकोपेतं दद्याद्द्वैवेयभूषितम् ॥  
 उदङ्मुखोपविष्टाय महादेवस्य सन्निधौ ।

प्राङ्मुखो व्याधितो भक्त्यमन्त्रेणानेन संयतः ।  
 अष्टमूर्ते महेशान कृपया वृषभध्वज ।  
 उदुम्बरं वाजिनं वा दण्डमण्डलकन्तथा ॥  
 त्वग्दोषजनितं यच्च पूर्वकर्मविपाकिनः ।  
 इह कर्म्मोद्भवं वापि मातृदोषेण वा पुनः ॥  
 पितृदोषेण वा सर्वं रक्तदोषोद्भवं तथा ।  
 विनाशय शरीरोत्थं पार्वतीप्रिय शङ्कर ॥  
 वृषभस्य प्रदानेन उभाभ्याधिष्ठितस्य हि ।

दानमन्त्रः ।

ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि भक्त्या परमया युतः ॥  
 कृतेनानेन कुष्ठानि ब्रजन्ति विलयं ध्रुवं ।  
 तस्मात् कुष्ठाभिभूतानां करणीयमिदं जगुः ॥

इत्यपररौप्यवृषदानविधिः ॥

गारुडपुराणे ।

पलाशकेन रौप्येण कृत्वा वृषभमुत्तमं ।  
 मुक्ताफलैरलङ्कुर्यात् पद्मरागैः शुशोभनैः ॥  
 सुवर्णतिलकोपेतं चारुचामरभूषितं ।  
 गत्वा शिवालयं सम्यक् पूजां कृत्वा शिवे ततः ॥  
 रुद्राध्यायं जपित्वा तु सषडङ्गरहस्यकं ।  
 होमश्च शिवमन्त्रेण तिलाज्येन विधीयते ॥  
 अथाङ्गय द्विजवरं वेदवेदाङ्गपारगं ।



वस्त्रालङ्कारमाख्यायैः पूजयित्वा शिवं ततः ॥  
 उमापते त्रिलोकेश जगत्कारणकारणं ।  
 स्ववाहनप्रदानेन प्रीतोभव नमोस्तु ते ॥  
 मन्त्रेणानेन तन्दद्याद्विमदक्षिणयान्वितं ।  
 दानस्यास्य प्रदानेन शिवलोके महीयते ॥

इति तृतीयरूप्यवृषदानविधिः ।

स्कन्दपुराणे ।

रौप्यानङ्गाहदानेन नरो यानेन गच्छति ।  
 अक्षयान्नभते लोकानिन्द्रेण सह मोदते ॥  
 त्रिंशत्पलात् समारभ्य पलत्रितयमन्ततः ।  
 वृषं रूप्यमयं कृत्वा सर्व्वरत्नैरलङ्कृतं ॥  
 क्षौमवस्त्रपरिच्छन्नं धान्यविन्यासभूषितं ।  
 यथोक्तकाले पात्राय पवित्रायोपपादयेत् ॥  
 एवं कृत्वा नरोदानं सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।  
 दानमन्त्रमिमं प्राज्ञो दानकाले समुच्चेरेत् ॥  
 धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः ।  
 अष्टमूर्त्तैरधिष्ठानमतः पाहि सनातनः ॥  
 एवं ददाति यो भक्त्या कलधौतमयं वृषं ।  
 सर्व्वपापविनिर्मुक्तो देववद्विव मोदते ॥

इति चतुर्थरूप्यवृषदान विधिः ।

अथ भूमिदानाख्यमतिदानमारभ्यते तत्र महाभारते ।

भीष्म उवाच ।

अतिदानेषु सर्वेषु पृथिवीदानमुच्यते ।  
 अचलाह्वयया भूमिर्दोग्धुकामाननुत्तमान् ॥  
 दोग्धि वासांसि रत्नानि पशून् व्रीहियवांस्तथा ।  
 भूमिदः सर्वभूतेषु शाश्वतीरेधते समाः ॥  
 यावद्भूमेरायुरिति तावद्भूमिद एधते ।  
 न भूमिदानादस्तीह परं किञ्चित् युधिष्ठिर ॥  
 भूमिमेव ददुः पूर्वं ये भूमिं भुञ्जतेऽधुना ।  
 स्वकर्मणोपजीवन्ति नरा इह परत्र च ॥  
 य एतां दक्षिणां दद्यात् पृथिवीं पृथिवीपतिः ।  
 पुनश्च जननं प्राप्य स भवेत् पृथिवीपतिः ॥  
 संयामे वा तनुञ्छ्यात् दद्याद्वाः पृथिवीमिमां ।  
 इत्येतां क्षत्रवन्धूनां वदन्ति परमाशिषं ॥  
 पुनाति दत्ता पृथिवी दातारमिति सत्तम ।  
 अपि पापसमाचारं ब्रह्मघ्नमपि वानृतं ॥  
 सैव पापात् तारयति सैव पापात् प्रमुञ्चति ।  
 अपि पापकृतां राज्ञां प्रतिगृह्णन्ति साधवः ॥  
 पृथिवीं नान्यदिच्छन्ति पावनं ह्येतदुत्तमं ।  
 नामास्याः प्रियदत्तेति गुह्यं देव्याः सनातनं ॥  
 दानं वा पृथग्वादानं नामास्याः परमं शिवं ।  
 यः साधोर्भूमिमादत्ते न भूमिं विन्दते हि सः ॥

भूमिं दत्त्वा तु साधुभ्यो विन्दते भूमिमेव हि ।  
 यस्य विप्रानुशासन्ति साधोर्भूमिं सदैव हि ॥  
 न तस्य शत्रवी राज्ञः प्रशासन्ति वसुन्धरां ।  
 यत्किञ्चित् कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षितः ॥  
 अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन पूयते ।  
 येऽपि सङ्कीर्णकर्माणो राजानो रौद्रकर्मिणः ॥  
 तेभ्यः पवित्रमाख्येयं भूमिदानमनुत्तमं ।  
 अल्पान्तरमिदं शश्वत् पुराणा मेनिरे जनाः ॥  
 योयजेताश्चमेधेन दद्याद्वा साधवे मह ।  
 सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिमुक्तावसनि च ॥  
 सर्वमेतत् महीपाल ददाति वसुधान्ददत् ।  
 सागरान् सरितः शैलान् काननानि च सर्वशः ॥  
 सर्वमेतन्नरश्चैष्ठ ददाति वसुधां ददत् ।  
 ओषधीःक्षीरसम्पन्ना नगान् पुष्पफलान्वितान् ॥  
 काननान्युपशैलांश्च ददाति वसुधां ददत् ।  
 अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्वाच स्वाप्तदक्षिणैः ॥  
 न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्रुते ।  
 तपो यज्ञः श्रुतं शील-मलोभः सत्यवादिता ॥  
 गुरुदेवतपूजा च नातिवर्त्तन्ति भूमिदं ।  
 भर्तुर्निःश्रेयसे युक्तास्त्यक्तात्मानो रणे हताः ॥  
 ब्रह्मलोकगताः सन्तु नातिक्रामन्ति भूमिदं ।  
 यथा जनित्री क्षीरेण स्वपुत्रं भरते सदा ॥  
 अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ।

मृत्योर्वै किंकरो दण्डस्तापो वक्रैः सुदारुणः ॥  
 घोराश्च वारुणाः पाशा नोपसर्पन्ति भूमिदम् ।  
 पितृंश्च पितृलोकस्थान्देवलोकेऽथ देवताः ॥  
 सन्तर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुधरां ।  
 क्षिप्रमायाय चात्यर्थं वृत्तिग्लानाय सीदते ॥  
 भूमिं वृत्तिकरीं दत्त्वा सत्री भवति मानवः ।  
 यथा धावति गौर्वृक्षं चरन्ति सततं पयः ॥  
 एवमेव महाभाग भूमिर्भरति भूमिदम् ।  
 फालकृष्टां महीन्दत्वा सवीजां सफलामपि ॥  
 उद्यानं शरणं वापि तथा भवति कामदं ।  
 यथा चन्द्रमसोऽवृष्टिरहन्यहनि जायते ॥  
 तथा भूमिदत्तं दानं सस्ये सस्ये विवर्द्धते ।  
 अत्र गार्था भूमिदत्तां कीर्त्तयन्ति पुराविदः ॥  
 यां श्रुत्वा जामदग्नेयः दत्त्वा भूः कश्यपाय वै ।  
 नृपा ददति मामेव मां दत्त्वा मामवाप्स्यथ ॥  
 अस्मिन् लोके परे चैव ततश्चाजने पुनः ।  
 य इमां व्याहृतीं देव ब्राह्मणीं ब्रह्मसंस्थितां ॥  
 आहस्य क्रियमाणस्य ब्रह्मभूयं स गच्छति ।  
 कृत्यया वाभिग्रस्तानां दुरिष्टशमनं महत् ॥  
 प्रायश्चित्तं महीन्दत्वा पुनात्युभयतो दश ।  
 यो ब्राह्मण इमं वेद वेदवादन्तथैव च ॥  
 प्रकृतिः सर्वभूतानां भूमिर्वै शास्त्रती मता ।  
 अभिषिच्यैव नृपतिं आवयेदिसमागमम् ॥

यथा श्रुत्वा महीन्दद्यान्नादद्यात्साधुतश्च तां ।  
 स कुलीनः स पुरुषः स बन्धुः स च पुण्यकृत् ॥  
 स च दाता स विक्रान्तो यो ददाति वसुन्धरां ।  
 आदित्या इव दीप्यन्ते तेजसा भुवि मानवाः ॥  
 ददन्ति वसुधां स्त्रीतां ये वेदविदुषे द्विजे ।  
 यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले ॥  
 यथाकामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमार्जिताः ।  
 आदित्यो वरुणो विष्णुः ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥  
 शूलपाणिश्च भगवान् अभिनन्दन्ति भूमिदं ।  
 सौवर्णं यत्र प्रासादा वासोधाराश्च कामदाः ॥  
 गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र गच्छन्ति भूमिदाः  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।  
 बृहस्पतेश्च संवादमिन्द्रस्य च युधिष्ठिर ॥  
 इष्टा क्रतुशतेनाथ महता दक्षिणावता ।  
 मघवान् वाग्मिनां श्रेष्ठं पप्रच्छेदं बृहस्पतिम् ॥

इन्द्र उवाच ।

भगवन् केन दानेन स्वर्गतः सुखमेधते ।  
 यदक्षय्यमहार्थञ्च तं ब्रूहि वदताम्बर ॥  
 ब्रह्मकृत् स सुरेन्द्रेण ततो देवपुरोहितः ।  
 बृहस्पतिर्वृहत्तेजाः प्रत्युवाच पुरन्दरम् ॥

बृहस्पतिस्त्वाच ।

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानञ्च वृचहन् ।

ददाति यो महाप्राज्ञः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 न भूमिदानाद्देवेन्द्र परं किञ्चिदिति प्रभो ।  
 वशिष्ठमभिमन्यामि यथाप्राहुर्मनीषिणः ॥  
 पञ्च पूर्वादिपुरुषाः षट् येच वसुधाङ्गताः ।  
 एकादश ददद्भूमिं पवित्रातौह मानवः ॥  
 रत्नोपकीर्णं वसुधां यो ददाति पुरन्दर ।  
 स मुक्तः सर्वकलुषैः स्वर्गलोके महीयते ॥  
 महीं स्मृतां ददद्राजा सर्वकामगुणान्वितां ।  
 राजाधिराजो भवति तद्वद्दानमनुत्तमम् ॥  
 सर्वकामसमायुक्तां कास्यपि यः प्रयच्छति ।  
 सर्वभूतानि मन्यन्ते मान्ददातीति वासव ॥  
 सर्वकामदुष्ठां भूमिं सर्वकामपुरोगमां ।  
 ददातीह सहस्राक्षं स स्वर्गं याति मानवः ॥  
 मधु-सर्पिः-प्रवाहिन्यः पयो-दधि-वहास्तथा ।  
 सरितस्तर्पयन्तीह सुरेन्द्र वसुधाप्रदं ॥  
 भूमिप्रदानान्नृपतिर्मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ।  
 न हि भूमिप्रदानेन दानमन्यद्विशिष्यते ॥  
 पुण्यां मृदुरसां भूमिं यो ददाति पुरन्दर ।  
 न तस्य लोकाः क्षीयन्ते भूमिदानगुणार्जिताः ॥  
 सर्वथा पार्थिवेनेह सततं भूतिमिच्छता ।  
 भूदेया विधिवच्छक्र पात्रे सुखमभीप्सता ॥  
 अपि कृत्वा नरः पापं भूमिन्दत्त्वा द्विजातये ।  
 समुत्सृजति तत्पापं जीर्णान्वचमिवारगः ॥

सागराः सरितः शैलास्तोर्थानि विविधानि च ।  
 एतानि भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीं ॥  
 तस्मात् प्राप्यैव मेधावी दद्याद्विप्राय पार्थिव ।  
 न भूमिपतिना भूमिरधिष्ठेया कथञ्चन ॥  
 अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्या, यज्ञैः सदक्षिणैः ।  
 न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्रुते ॥  
 दाता दशानुगृह्णाति दश हन्ति तथा क्षिपन् ।  
 पूर्वदत्तां हरन् भूमिं नरकायोपगच्छति ॥  
 न ददाति प्रतिश्रुत्य दत्त्वा वा हरते तु यः ।  
 तौ च द्वौ वारुणैः पाशैस्तप्येते मृत्युशासनात् ॥  
 बिम्बाटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः ।  
 कृष्णसर्पास्तु जायन्ते ये हरन्ति वसुन्धरां ॥  
 पतन्त्यश्रूणि रुदतां दीनानामवसीदताम् ।  
 ब्राह्मणानां हृते चेत्रे हन्युस्त्रिपुरुषं कुलम् ॥  
 आहिताग्निं समादाय कृशभृत्यं प्रियातिथिं ।  
 वसुधां ये प्रयच्छन्ति नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥  
 तथा । इक्षुभिः सततां भूमिं यव-गोधूम-शालिनीं ।  
 गोष्ठावाहनसम्पूर्णं बहुवीर्यसमार्जितां ॥  
 बीजगर्भान्ददद्भूमिं सर्व्वरत्नपरिच्छदां ।  
 अक्षयाल्लभते लोकान् भूमिसत्वं हि तस्य तत् ॥  
 विधूय कल्मषं सर्व्वं राजा स्यात् सन्मतः सतां ।  
 लोके महीयते सार्द्धय्यो ददाति वसुन्धरां ॥  
 यथाप्सु पतितः शक्र स्नेहविन्दुः प्रसर्पति ।

तथा भूमिक्ततं दानं सस्ये सस्येऽभिवर्द्धते ॥  
 नृत्य-गीतपरा-नार्य्या दिव्यमालाविभूषिताः ।  
 उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र सदा भूमिप्रदन्नरं ॥  
 मोदते च सुखं स्वर्गे देवगन्धर्व्वपूजितः ।  
 यो ददाति महीं सम्यक् विधिनेह द्विजातये ॥  
 शतमप्सरसाञ्चैव दिव्यमालां विभूषितां ।  
 उपतिष्ठन्ति देवेन्द्र वृक्षलोके धराप्रदं ॥  
 उपतिष्ठन्ति भूतानि सदा भूमिप्रदन्नरम् ।  
 शङ्खं भद्रासनं कृत्रं धराश्वा वरवारणाः ॥  
 भूमिदानस्य पुण्यानि हिरण्यनिचयास्तथा ।  
 आन्ना सदाप्रतिहता जयशब्दे भवत्यथ ॥  
 भूमिदानस्य पुष्पाणि फलं स्वर्गः पुरन्दर ।  
 हिरण्यपुष्पाश्चौषधः कुश-काञ्चन-शादलाः ॥  
 अमृतप्रसवां भूमिं प्राप्नोति पुरुषो ददत् ।  
 नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति यन्नसमो गुरुः ॥  
 नास्ति सत्यपरो धर्म्मो नास्ति दानसमो निधिः ।  
 एतदाङ्गिरसीं कृत्वा वासवो वसुधामिमां ॥  
 वसुरत्नसमाकीर्णां ददावाङ्गिरसे तदा ॥  
 य इदं आवयेच्छास्त्रे भूमिदानस्य संस्तवं ।  
 न तस्य रक्षसाभ्यागो नासुराणां भवत्युत ॥  
 अक्षयञ्च भवेद्दत्तं पितृभ्यश्च न संशयः ।  
 देवलः । श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं प्रीतं भूमिदानं द्विजातिभिः ॥  
 तद्वत्वा पुरुषः स्वर्गे पूज्यते त्रिदशोत्तमैः ।



वाञ्छन्ति पितरोऽप्येवं स्वर्गलोके व्यवस्थिताः ॥  
 यद्यस्मत्कुलजः कश्चित् भवत्यवनिदानकृत् ।  
 नरकस्था मरुत्लोके स्वर्गस्थाः परमं पदम् ॥  
 यथा वयमतीता ये व्रजामस्तत्प्रभावतः ।  
 किमत्र चित्रं दातारं यत्समुद्धरते धरा ॥  
 प्रतियह्यहीतारमपि तारयति द्विजम् ।  
 न तद्यज्ञैर्व्रतैर्दानैर्दातृभिः फलमाप्नोते ॥  
 अपि यद्वत्तया भूम्या दण्डत्रितयमात्रया ।  
 यद्दानन्दीयते किञ्चित् परत्र स्यादिहैव हि ॥  
 भूदानेन पुनः सर्वदानानां प्राप्यते फलम् ।  
 ते धन्यास्ते सुकृतिनः कृतार्थास्ते न संशयः ॥  
 सत्पात्राय प्रदत्तं यैर्भूदानं विधिना नरैः ।

विष्णुधर्मोत्तरे हंसउवाच ।

हस्तमात्रन्तु यो दद्याद्भुवः पुरुषसत्तमः ।  
 तेनैव ध्रुवमायाति भूमिदानफलं नरः ॥  
 गोचर्ममात्रान्तान्दत्त्वा वसूनां लोकमाप्नुयात् ।  
 शाकभूमिं नरोदत्त्वा लोकमाङ्गिरसं लभेत् ॥  
 आरामभूमिं दत्त्वा च मारुतं लोकमाप्नुयात् ।  
 जलाशयार्थं यो दद्याद्धारुणं लोकमाप्नुयात् ॥  
 यस्य देवस्य वैश्वार्थं तस्य देवस्य सोऽश्रुते ।  
 उद्यानभूमिं दत्त्वा च गन्धर्वैः सह मोदते ॥  
 रत्नाकरभवं दत्त्वा शक्रलोके महीयते ।

अन्येषामाकरभुवं लोकानां यः प्रयच्छति ॥  
 तस्यापि गतिरुद्दिष्टा लोके हीताशने द्विजाः ।  
 धान्याकरभुवं दत्त्वा नागपृष्ठे महीयते ॥  
 अञ्जनाकरभूमिञ्च यः प्रयच्छति वै द्विजाः ।  
 पिहभिर्यमलोकस्थः पूज्यतेऽसौ नरोत्तमः ॥  
 लवणाकरभूमिञ्च सोमलोके महीयते ।  
 ओषधाकरभूमिञ्च अश्वलोके महीयते ॥  
 शिखीगस्यप्ररोहान्तु भुवं दत्त्वा नरोत्तमः ।  
 साध्यानां लोकमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।  
 इन्धनाकरभूमिञ्च वज्रिलोके महीयते ॥  
 सर्व्वदानभुवं दत्त्वा रुद्रलोके महीयते ।  
 केदारभूमिं धर्मज्ञोः यः प्रयच्छति धर्मतः ॥  
 महत्पुण्यमवाप्नोति ब्रह्मलोकञ्च गच्छति ।  
 इक्षुभूमि नरो दत्त्वा शालिभूमिमथापि वा ॥  
 सोमलोकमवाप्नोति सर्व्वकामांश्च विन्दति ।  
 गुल्मपुष्पलताकीर्ष्णां यो भुवं संप्रयच्छति ॥  
 विमाने नन्दनेसोऽथ क्रीडत्यप्सरसाङ्गणैः ।  
 पुष्पदं फलदं वृक्षं दधन्तीं पृथिवीं ददत् ॥  
 स्वर्गलोकपरिभ्रष्टो नगराधिपतिर्भवेत् ।  
 ब्राह्मणाय गृहं दत्त्वा वसूनां\* लोकमश्नुते ॥  
 सारामभूमिदो विप्रः क्रीडते नन्दने वने ।  
 ग्रामप्रदः स्यान्नृपतिः सम्प्राट् नगरदो भवेत् ॥

समग्रवसुधेशः स्याच्चक्रवर्ती च राज्यदः ।  
 स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुधरां ॥  
 अप्येकाङ्गुलमात्रां वा प्रमादान्नानमोहितः ।  
 बह्वन्यब्दसहस्राणि धर्मेऽपि पुरुषोत्तमः ॥  
 विष्ठायां कृमितामेति पितृभिः सहितस्तथा ।  
 खेराष्ट्रे परराष्ट्रे वा देवब्राह्मणसतकृतां ॥  
 चिरं नरकमाप्नोति हत्वा भूमिपतिर्भुवम् ।  
 भूमिं कृत्वा तु यः कुर्याद्देवब्राह्मणसान्द्रः ॥  
 स्वर्गलोकमवाप्नोति पुरुषोऽपि सुदारुणः ।  
 षष्टिर्वर्षसहस्राणि स्वर्गं वसति भूमिदः ॥  
 आकृत्ता चानुमन्ता च तावन्ति नरकं वसेत् ।  
 पक्षसस्यां वसुमतीं योऽलङ्घ्यत्य प्रयच्छति ॥  
 कामगेन विमानेन ब्रह्मलोकं स गच्छति ।

भविष्यत्पुराणे ।

निवर्त्तनसहस्रायां सर्वसस्यप्ररोहिणीं ।  
 दद्याद्भूमिं फलोपेतां भूमिदानन्तदुच्यते ॥  
 एकच्छत्रां महीं कृत्वा द्विजेभ्यः प्रतिपादयेत् ।  
 सम्पूर्णां यो नृपः कश्चित् भूमिदानन्तदुच्यते ॥

कूर्मपुराणे ।

गोचर्ममात्रं भूखण्डमधिकां वा स्वशक्तिः ।  
 त्रिधासदक्षिणं कृत्वा दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥  
 त्रिधासदक्षिणमिति, पूर्वोक्तैक-द्वि-त्रिसुवर्षैः सह-दक्षिण-  
 मित्यर्थः ।

वृहस्पतिः ।

अपि गोचर्ममात्रेण\* सम्यग्दत्तेन मानवः ।  
 धौतपापो विशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥  
 दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनम् ।  
 दश तान्येव गोचर्म ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥  
 यत्किञ्चित् कुरुते पापं पुरुषो लोभमोहितः ।  
 तत्सर्वं<sup>१</sup> भूमिदानेन क्षिप्रमेव विनश्यति ॥

कात्यायनः ।

मुच्यते ब्रह्महा गोघ्नः पितृघ्नो गुरुतल्पगः ।  
 भूमिं सर्वगुणोपेतां दत्त्वा पापात् प्रमुच्यते ॥

वृद्धवसिष्ठः ।

दशहस्तेन दण्डेन दशहस्तात् समन्ततः ।  
 पञ्चचाम्यधिकान्दद्यादेतन्नोचर्म कथ्यते ॥

मत्स्यपुराणे ।

सप्तहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्त्तनं ।  
 त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः ॥  
 मानेनानेन योदद्यान्निवर्त्तनशतम्बुधः ।  
 विधिनानेन तस्याश्च क्षीयते पापसंहतिः ॥  
 तदर्द्धमथवा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम् ।

\* गोकर्णमात्रेणेति पुस्तकान्तरे ।

भवनस्थानमात्राङ्गां सोऽपि पापात् प्रमुच्यते ॥  
 तथा । यत्किञ्चित् कुरुते पापं जन्मप्रभृति मानवः ।  
 अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति ॥  
 गवां शतं वृषश्चैको यत्र तिष्ठेदयन्त्रितः ।  
 तद्धि गोचर्ममात्रन्तु प्राहुर्व्वेदविदो जनाः ॥  
 अत्रचैतेषु गोचर्मप्रकारेषु उत्तममध्यमाधमभावेन व्यवस्था  
 वेदितव्या सुवर्णञ्चात्र दक्षिणा ।

यदाह माण्डव्यः ॥

न हि भूमेः परं वस्तु गोः सुवर्णाच्च किञ्चन ।  
 अतो भुवि गवि प्राज्ञैः सुवर्णं दक्षिणा मतेति ॥

भूमिदानमन्वस्तु ।

मत्स्यपुराणे ।

तथा भूमिप्रदानस्य कलानार्हन्ति षोडशीं ।  
 दानान्यन्यानि मे शान्ति भूमिदानाद्भवत्विह ॥

अत्रैव प्रयोगः ।

ओं अद्य अमुकस्मिन् काले अमुकस्मिन् देशे अमुकसगोत्राय  
 अमुकप्रवराय अमुकशर्मणे अमुकसगोत्रोहं अमुकप्रवरः अमुक-  
 शर्मा इमां भूमिं प्रियदत्तां विष्णुदेवतां अमुककामस्तुभ्यमहं  
 सम्पददे न ममेति सपुष्पं कुशतिलोदकं ब्राह्मणहस्ते निक्षिपेत्  
 तेन च मनसा भूमिं प्रदक्षिणीकृत्य प्रतिग्रहः कार्यः भूमिःसमीप

चेत्साक्षात् प्रदक्षिणीकुर्यात् ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि  
एतद्भूमिदानप्रतिष्ठार्थं एतत्सुवर्णं दक्षिणान्तुभ्यमहं सम्प्रददे  
न ममेति ।

विश्वामित्रः ।

गोचर्ममात्रां यः पृथ्वीं ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।  
सर्वदः स तु विज्ञेयः शक्रवद्विव मोदते ॥  
ग्रामं वा नगरं वापि विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति ।  
क्षेत्रं वा सस्यसम्पन्नं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

बृहस्पतिः ।

आस्फोटयन्ति पितरः प्रगल्पन्ति पितामहाः ।  
भूमिदोऽस्मत्कुले जातः सोऽस्माकन्तारपिथ्यति ॥

नन्दीपुराणे ।

दत्त्वाच भूमिं पुरुषः सश्रेयां सस्यमेदिनीम्\* ।  
सुमेध्यां रम्यसंस्थानां फलवृक्षमनोरमां ॥  
अनूपरामनावाधां पात्रे बहुगुणान्विते ।  
अप्येकपुरुषाधारां दत्त्वा भूमिं महात्मने ॥  
दशकल्पानि वसति स्वर्गे विगतपातकः ।

महाभारते ।

शीत-वाता-तपसहां गृहभूमिं सुसंस्कृताम् ।  
प्रदाय सुरलोकस्थः पुन्यान्तेऽपि न चाल्यते ॥

तथा । प्रादेशमात्रां भूमिन्तु योदद्यादनुपस्कृताम् ।  
 न स सीदति कच्छेण न च दुर्गाख्यपाश्रुते ॥  
 मुदितो राजते प्राज्ञः शक्रेण सह नन्दति ।  
 यावन्ति लाङ्गलमुखेन रजांसि भूमे-  
 र्भासाम्पते द्रुहितुरङ्गजरोमकाणि ।  
 तावन्ति शङ्करपुरे स युगानि तिष्ठेत्  
 भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः ॥  
 गन्धर्व-किन्नर-सुरा-सुर-सिद्ध-सङ्घै-  
 राधूतचामरमुपेत्य महद्भिमानं ।  
 सम्पूज्यते पितृपितामहबन्धुयुक्तः  
 शम्भोः पुरं व्रजति चामरनायकः स्यात् ॥  
 स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुधराम् ।  
 स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥

इति भूमिदानविधिः ।

तत्र शिवधर्मात् ।

यः शिवाय हलोपेतां सर्व्वसस्यप्ररोहिणीं ।  
 महीं महीपतिर्दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 यावद्दण्डा भवेद्भूमि र्भूयमाना समन्ततः ।  
 स तावत्कल्पसंख्यानं रूद्रलोके महीयते ॥  
 एवं सर्व्वत्र विज्ञेयं फलं दण्डप्रमाणतः ।  
 ग्रामं खेटं पुरं क्षेत्रं विषयादि निवेदयेत् ।

सर्वसस्यजलोपेतं सर्वबाधाविवर्जितम् ।  
 ग्रामं शिवाय योदद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं ग्रामदानेन यत्फलम् ।  
 सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्दिव्यस्त्रीकोटिसंयुतः ॥  
 संयुक्तः कोटिशोऽनेकैः सर्वकामसमन्वितैः ।  
 विमानैर्ग्रामदानेन त्रिसप्तकुलसंयुतः ॥  
 यथेष्टमैश्वरे लोके क्रीडते कालमक्षयम् ।  
 पुण्यं नगरदं तस्य ग्रामदानाच्छताधिकम् ॥  
 देशदानेन चात्यन्तं न शक्यं तत् प्रकीर्तितुम् ।  
 रत्ना-न्न-पान-गो-श्वा-द्यं सर्वं भूमौ प्रजायते ॥  
 तस्माद्भूमिप्रदानेन नरोभवति सर्वदः ।

इति शिवभूमिदानविधिः ।

वराहपुराणे ।

विष्णवे विषयं ग्रामं ग्रामार्द्धमपि शक्तिः ।  
 दत्त्वा क्रीडति वैकुण्ठोपकण्ठेषु निरत्ययम् ॥  
 राजराजेश्वरः श्रीमानरोगः सुभगः सुखी ।  
 विद्यानां पारदश्चैव जायते कीर्त्तिमानपि ॥  
 निवर्त्तनसहस्रं यो विष्णवे विनिवेदयेत् ।  
 सर्व्वगीर्वाणदेवेषु\* स क्रीडति युगावधि ॥  
 निवर्त्तनशतेनापि यः प्रीणयति केशवम् ।  
 शतयोजनविस्तीर्णं स राजा भूतले भवेत् ॥



अपि गोचर्ममात्रां यो ददाति हरयेभुवम ।  
 सप्तजन्मानि राजेन्द्र स श्रीमानभिजायते ॥  
 विष्णवे भोगमुद्दिश्य क्षेत्रं वा गृहमेव वा ।  
 यो ददाति स पुण्यात्मा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

इति विष्णवे भूमिदानं ।

भविष्यत्पुराणे ।

यः सूर्याय फलीपेतां सर्वसस्यप्ररोहिणीं ।  
 महीं महीपतिर्दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 भूभागाश्चैव यावन्तो भूतले भान्ति सत्तम ।  
 तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके\* महीयते ॥  
 एवं सर्वत्र विज्ञेयं फलं द्रव्यानुसारतः ।  
 ग्राम-खेट-पुर-क्षेत्र-विषयादि निवेदने ॥  
 सर्वसस्यफलीपितं सर्वशत्रुविवर्जितं ।  
 ग्रामं सूर्याय योदद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वव्रतेषु यत्फलं ।  
 सर्वदानेषु यत्पुण्यं ग्रामदानेन तल्लभेत् ॥  
 सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्दिव्यस्त्रीकोटिसंकुलैः ।  
 नानारत्नसमाकीर्णैः नानाकारसमन्वितैः ॥  
 विमानैर्यामदानेन त्रिःसप्तकुलसंवृतः ।  
 यथेष्टं सर्वलोकेतु क्रोडते कालमक्षयं ॥  
 पुण्यं नगरदानस्य ग्रामदानशतद्वयं ।

\* सूर्यलोके इति कचित्पाठः ।

देशदाने तदानन्तं फलमाहुर्मनीषिणः ॥

इति भानुभूमिदानं ।

अथ विद्यादानाख्यमतिदानमारभ्यते ।

तत्रादित्यपुराणे ।

त्रीणि तुल्यप्रदानानि त्रीणि तुल्यफलानि च ।

सर्वकामदुघा नूनं गावः पृथ्वी सरस्वती ।

नन्दिपुराणे ॥

यस्तु पुण्यपरो मर्त्योजिगीषुः कौर्त्तिसाधकः ।

सविधानेन वै दद्याद्विद्यां विविधकामदां ॥

नित्यं विद्याप्रदानं वै सर्वकामगुणाधिकं ।

यतेत पात्रे सन्त्यक्तं रहस्यं चैतदुत्तमं ॥

उद्दिश्य देवतां दत्तं प्रदानं यत्र कुर्वाचत् ।

तस्याः समस्तपुण्यस्य फलं केन निरूप्यते ॥

गारुडपुराणे ।

दानानामुत्तमन्दानं विद्यादानं विदुर्व्वधाः ।

आहुः समस्तविद्यानां श्रियमेवाधिदैवतं ॥

यथा वरिष्ठो देवानां विष्णुः कारणपुरुषः ।

यथा च योषित्प्रवरा कमला पङ्कजालया ॥

\*आहुर्व्वलवतां श्रेष्ठो यथाज्योतिष्मतां रविः ।

जलाशयानां प्रवरो यथायं सरितां पतिः ।  
 तथा विद्याप्रदः श्रेष्ठो गरीयांश्च गरीयसां ॥  
 पुण्यश्चापि स सर्वत्र यश्च विद्यां प्रयच्छति ।  
 ब्रह्मासुखसुखक्षेममाहुर्विद्याधनं धनं ॥  
 विद्ययामलया युक्तो विमुक्तिं याति संयमी ।  
 विद्यया च सुखं गच्छेद्विद्यया च परां गतिं ॥  
 विद्या प्रतिष्ठा भूतानां विद्यायोनिश्च देवता ।  
 तस्माद्विद्याप्रदो लोके सर्वदः प्रीच्यते बुधैः ॥

बृहस्पतिः ।

सहस्रमेव धेनूनां शतं चानडुहा समं ।  
 दशानडुत्समं यानन्दशयानसमो हयः ॥  
 दशवाजिसमा कन्या भूमिदानञ्च तत्समं ।  
 भूमिदानात्समं नास्ति विद्यादानं ततोऽधिकं ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

विद्या कामदुघा धेनुर्विद्या चक्षुरनुत्तमं ।  
 विद्यादानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥  
 विद्यावान् सर्वकामानां भाजनं पुरुषो भवेत् ।  
 तस्माद्विद्या हि ददता सर्वं दत्तं भवेद्विह ॥  
 पराध्यापनशक्तो हि पुरुषस्तु यदश्रुते ।  
 तपस्तत्परमन्तस्य ब्रह्मलोकसमं स्मृतं ॥  
 दानानामुत्तमं लोके तपसश्च तथोत्तमं ।  
 विद्यादानं महाभागः सर्वकामफलप्रदं ॥

देवीपुराणे ।

विद्याविवेकबोधेन शुभाशुभविचारणात् ।  
 विन्दते सर्वकामाप्तिं यस्माद्विद्या परा मता ॥  
 विद्यादानात्परं दानं त्रैलोकेऽपि न विद्यते ।  
 येन दत्तेन चाप्नोति शिवं परमकारणम् ॥  
 तथा सिद्धान्तमोक्षशास्त्राणि वेदाः स्वर्गादिसाधकाः ।  
 वेदाङ्गानौतिहासाश्च देया धर्मविवृद्धये ॥  
 गारुडं वालतन्त्रञ्च भूततन्त्राणि भैरव ।  
 शास्त्राणां पाठनादानान्मातरः फलदा नृणां ॥  
 ज्योतिषं वैद्यशास्त्राणि कलाः काव्यं शुभागमाः ।  
 दानादारोग्यमाप्नोति गान्धर्वं लभते पदं\* ।  
 विद्यया वर्त्तते लोको धर्माधर्मञ्च विन्दति ॥  
 विद्या तस्मात् सदा देया दृष्टादृष्टफलार्थिभिः ।

विष्णुधर्मोत्तरे ।

धर्मशास्त्रप्रदानेन धर्मेण सह मोदते ।  
 सिद्धान्तानां प्रदानेन मोक्षं प्राप्नोति वैदिकम्† ॥  
 शास्त्राणि दत्त्वा चान्यानि नरः स्वर्गं महीयते ।

नन्दिपुराणे ।

विद्याश्चतुर्दश प्रोक्ताः क्रमेण तु यथास्थितिः ।

\* फलमिति कचितपाठः ।

† मोक्षमाप्नोत्यसंशयमिति कश्चित् पुस्तके ।

षडङ्गाश्चतुरोविदा धर्मशास्त्रं पुरातनं ॥  
मीमांसा तर्कमपि च एता विद्याश्चतुर्दश ।

धर्मशास्त्रं, स्मृतयः ।

पुरातनं, पुराणम् ।

आसामेवान्तरोत्पन्नाः परा विद्याः सहस्रशः ।  
आयुर्वेदः सस्यवेदो बहुभेदः प्रकीर्तितः ॥

सस्यवेदः, कृषिशास्त्रं ।

सर्वात्मा चात्मविद्या च संसारभयनाशिनी ।  
सर्वदुःखान्तकरणी सर्वपापप्रणाशिनी ॥  
एता विद्याः समाख्याता बहुभेदोपभेदजाः ।  
कलाविद्यास्तथाचान्याः शिल्पविद्यास्तथापराः ॥  
शिल्पविद्या, प्रतिमादिनिर्माणशास्त्रं ।

सर्वा एता महाभागाः सर्वाः सर्वार्थसाधिकाः ॥  
मताश्च तारतम्येन विशिष्टफलसाधिकाः ।  
आत्मविद्या प्रधाना तु तथायुर्वेदसंहिताः ॥  
धर्माधर्मप्रणयिनी कलाः शिल्पार्थसाधिकाः ।  
सस्यविद्या च वितता एता विद्या महाफलाः ॥  
धर्माधर्मप्रणयिनी धर्माधर्मप्रसाधिका ।  
ययैको जीवति प्राणी कयापि किल कुतचित् ॥  
अप्रधानापि सा विद्या कुलानां शतमुद्धरेत् ।

अप्रधाना, अवान्तरविद्या ।

यापि साध्यवबोधत्वाद्विद्या वै यत्र कुत्रचित् ।

प्रयास्यत्यक्षयाल्लोकान्विधिना वाविधानतः ॥

अवबोधत्वादवबोधहेतुत्वात् प्रयास्यतीत्यन्तर्भावितो रथः  
तेन प्रयापयिष्यतीत्यर्थः ।

शिल्पविद्या नरोदत्त्वा यान्ति वै ब्रह्मणोऽन्तिकं ।

कलाविद्यां नरो दत्त्वा वैष्णवं लोकमाप्नुयात् ॥

कल्पमेकं न सन्देहः स्वर्गभोगसमन्वितः ।

सस्यविद्यां नरो दत्त्वा तृप्तिमान् कामसंयुतः ॥

प्रजापतिपुरं गच्छेन्नरकात्तारयेत् पितृन् ।

आयुर्वेदं नरोदत्त्वा लोकान् प्राप्नोति निर्मलान् ॥

अश्विनोर्दिव्यकामाद्यान् दिव्यमन्वन्तरं नरः ।

तर्कविद्यां नरो दत्त्वा वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥\*

मीमांसान्तु बुधे दत्त्वा शास्त्रमिन्दुपुरे वसेत् ।

धर्मशास्त्रं नरो दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥

दशमन्वन्तरात्मर्त्यस्तारयेन्नरकात् पितृन् ।

वेदविद्यां नरो दत्त्वा स्वर्गलोकत्रयं वसेत् ॥

आत्मविद्याञ्च यो दद्यात् तस्य सहस्रा न शक्यते ।

पुण्यस्य गदितुं सम्यगपि वर्षशतायुतैः ॥

एतावच्छक्यते वक्तुं यत्कल्पायुतमुत्तमं ।

सत्यलोके वसेन्नर्च्यो यत्र ब्रह्मा वसेत्प्रभुः ॥

अग्रे कं निरुज्जीकृत्य जन्तुं यादृशतादृशं ।  
 आयुर्वेदप्रभावेन किन्न दत्तं भवेद्भुवि ॥  
 शस्यवेदप्रसादेन सम्पन्नाः शस्यशालयः ।  
 किं न नाम कृतं तत्र पुण्यं भवति शाश्वतं ॥  
 मीमांसाशास्त्रमाहात्म्यं बुद्ध्वा वै वेदनिर्णयं ।  
 किं न नाम शुभं दातुर्यज्ञकर्मप्रवर्त्तनात् ॥  
 आत्मविद्या च पौराणी धर्मशास्त्रात्मिका च या ।  
 एता विद्यास्त्रयीमुख्याः सर्व्वदानक्रियाफलैः ॥  
 धर्मशास्त्रं नरो बुद्ध्वा यत्किञ्चिद्धर्ममाश्रयेत् ।  
 तस्य धर्मं शतगुणं धर्मशास्त्रप्रदस्य च ॥  
 पुराणास्थानविद्वांसः पितृदेवाञ्चने रताः ।  
 लोकान् सर्व्वान् कामपूस्त्रान् यान्ति सर्व्वशुभोदयात् ॥  
 पुराणविद्यादातारस्त्वनन्तफलभागिनः ।  
 आत्मविद्याप्रदातारो नरा धर्मसमाश्रयात् ॥  
 न पुन र्योनिनिरयं प्रविशन्ति दुरत्ययं ।  
 उत्तीर्णाः सर्व्वपापेभ्यः सपुत्रपशुवान्धवाः ॥  
 मुच्यन्ते निरयैर्धैरैरसंख्यैर्यातनात्मकैः ।  
 तथा । श्लोकं प्रहेलिकां गाथामन्यथा वा शुभाषितं ॥  
 दत्त्वा प्रीतिकरं याति लोकमप्सरसां शुभं ।

वाराहपुराणे ।

रामायणं भारतञ्च दत्त्वा स्वर्गं महीयते ।

पुराणं तर्कशास्त्रञ्च कन्दोलङ्कारलक्षणम् ॥

वेदमीमांसिकान्दत्त्वा शिवधर्मञ्च वै नृप ।  
 सप्तद्वीपपृथिव्याञ्च राजराजो भवेत्तु सः ॥  
 पाणिनीयं निरुक्तादिं वेदाङ्गं स्मृतयस्तथा ।  
 दत्त्वा ज्ञानमवाप्नोति वेदान्तञ्च विशेषतः ॥  
 नित्यं देयानि राजेन्द्र गावः पृथ्वी सरस्वती ।

इति विद्यादानप्रशंसा ।

अथ वेददानं तावन्निरूप्यते ।

आदित्यपुराणे ।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।  
 कार्यं न गोमहीवासतिलकाञ्च न सर्पिषां ॥

ब्रह्मदानं, वेददानं ।

यान्नवल्काः ।

सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः ।  
 तद्दत्त्तमवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतः ॥

महाभारते ।

यो ब्रूयाच्चापि शिष्याय धर्मं वा ब्राह्मीं सरस्वतीं ।  
 पृथिवीगोप्रदानाभ्यां स तुल्यं फलमश्नुते ॥

ब्राह्मी, वेदार्थानुगमा ।

तथा अधीत्यापि च यो वेदान् न्यायविद्यः प्रयच्छति ।  
 गुरुकर्मप्रशस्तीऽयं सोऽपि स्वर्गं महीयते ॥



विष्णुधर्मोत्तरे ।

वेददानादवाप्नोति सर्वयज्ञफलं नरः ।  
उपवेदप्रदानेन गन्धर्वैः सह मोदते ॥  
वेदाङ्गानाञ्च दानेन शक्रलोकमवाप्नुयात् ।

गारुडपुराणे ।

विद्यानाञ्च परा विद्या ब्रह्मविद्या समीरिता ।  
अतस्तद्दानतो राजन् सर्वदानफलं भवेत् ॥  
आयुःसमस्तविद्यानां वेदविद्यामनुत्तमम् ।  
अतस्तद्दातुरस्त्येव लाभः स्वर्गापवर्गयोः ॥

देवीपुराणे ।

वेदएव द्विजातीनां साधनं श्रेयसः परं ।  
अतःस्वाध्यापनाभ्यासात् परं ब्रह्माधिगच्छति ॥  
तमेव शीलयेत् प्राज्ञः शिष्येभ्यस्तं प्रदापयेत् ।  
तदभ्यासप्रदानाभ्यां तत् किं यन्नाधिगच्छति ॥  
अङ्गोपाङ्गसमायुक्तं यो वेद वेदकृत्स्नशः ।  
न स लिप्यति पापेन ददन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥

तथा मनुस्मृत्याम् ।

किं वेदरूपं मानञ्च उपाङ्गसङ्ख्याभेदतः ।  
अङ्गानि चैव वेदानां तन्नो ब्रूहि सनातन ॥

ब्रह्मोवाच ।

आंकारप्रभवा वेदा गायत्री वेदसम्भवा ।

षडङ्गास्ते समाख्याता सहोपाङ्गास्तथैव च ॥  
 कन्दोलक्षणसंयुक्ता मातृकागर्भजाः स्मृताः ।  
 एकएव भवेद्देदशतुर्वेदः पुनः कृतः ॥  
 शाखार्यमल्पयुक्तानां\* ग्रहणायातिविस्तरात् ।  
 सन्धिभक्ता मया वत्स ऋग्यजुःसामाथर्वकाः ॥  
 तत्र भेदास्तु ऋग्वेदे दशचैव प्रकीर्त्तिताः ।  
 आस्तया.† साङ्ख्यचर्चाश्च आवका चर्चकास्तथा ॥  
 आवणीयावक्रमाषाःषट्क्रमाःषडनुक्रमाः ।  
 दण्डाश्चेति समासेन पुनरेकैव पारणाः ॥  
 शाखाश्च त्रिविधा भूप शाकला-याष्क-माण्डुकाः ।  
 तेषामध्यापनं प्रोक्तं मण्डलानि च सप्ततिः ॥  
 चर्चानां परिसङ्ख्या तु चतुर्विंशच्छतानि च ।  
 ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ।  
 ऋचामशीतिः पादश्च एतत् पारणमुच्यते ।  
 ऋग्वेदे तु भवेत्संख्या यजुर्वेदस्य त्रयताम् ॥  
 षडशीतिर्विभेदेन मया भिन्नाः शिवाज्ञया ।  
 दशधा चरकास्तत्र करकाहारिद्रवीयाः,  
 कठाः प्राच्यठाश्चैव कपिष्ठलकठास्तथा ।  
 नारायणीयाः श्वेताः श्वेताश्वतरमैत्रायणाः ॥  
 पुनः सप्त विभेदेन मैत्रायण्याः प्रकीर्त्तिताः ।  
 मानवा दुन्दुभा वाराहा छागेया हारिद्रवीयाः,

शाखार्यमल्पयुक्तानामिति क्वचित्पाठः ।

† अस्तया इति क्वचित्पाठः ।

श्यामाः श्यामायनीयाश्च तेषामध्ययनमुच्यते ।

अष्टादशसहस्राणि पाठावेदविदोविदन् ॥

द्विगुणं पादपारीया स्त्रिगुणं क्रमपारगाः ।

षडङ्गानि यदाधीते स षडङ्गविदुच्यते ॥

शिञ्जाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषम् ।

षडङ्गानि भवन्त्येतान् उपाङ्गानि शृणुष्व भो ॥

प्रतिपदमनुपदं छन्दोभाषासमन्वितम् ।

मीमांसा-न्यायतर्कश्च उपाङ्गाः परिकीर्त्तिताः ॥

परिशिष्टाश्च संख्याता अष्टादश शृणुष्व तान् ।

यूपलक्षणं छागलक्षणं प्रतिष्ठा-नुवाकसंख्या-चरणव्यूह-आङ्ग-  
कल्पसूक्तानि परिषदमृग्यजुषमिष्टकापूरणं प्रवराध्यायी-

व्क्वशास्त्रं क्रतुसंख्या निगमा यज्ञपार्श्वहोतृकम् ।

व्रतञ्च प्रसवीत्यनकूर्मलक्षणसंयुतम् ।

कथिताः परिशिष्टास्तु द्वावनविंशतिसंख्यया ॥

कठानां पुनर्यान्याहुश्चत्वारिंशच्चतुर्थ्येतान् ।

प्राच्यादीच्या निरुह्याश्च वाजसनेयास्तु पञ्च च ।

दशभेदविभिन्नाश्च द्रष्टव्या मुनिपुङ्गव ॥

जाबालाबौधेयाकान्वामाध्यन्दिनाश्वशापेथाः ।

सुपायिनः कपालाख्याः पौण्ड्रवसावटिकाः ॥

परमा रविकाः पराशरा ऋद्धावौधायनीयाः ।

आयोध्या आयोधेयाश्च तेषामध्ययनानि च ॥

द्विसहस्रे शतन्यूने वेदे वाजसनेयके ।

ऋग्गणोयं प्रसंख्यातस्ततोऽन्यानि यजूंषि च ॥

एतत्प्रमाणं यजुषां हि केवलं ।

सखिलं ससुक्रियं परिसंख्यातं ब्राह्मणम् ।  
चतुर्गुणन्तु जानीयात्तैत्तिरीया द्विधा पुनः ॥  
ऋषयाः खाण्डिकेयाश्च खण्डिकाः पञ्चधा पुनः ।  
कालेया वीधायनीया हिरण्यकेशास्तथैव च ॥  
भारद्वाजापस्तम्बाश्च तेषां भेदाः प्रकीर्त्तिताः ।  
अध्ययनं सौप्तिकञ्चैव प्रवचनीयं तथापरम् ॥  
सामवेदस्तु विस्तीर्णः सहस्रभेदशः पुरा ।  
अनध्यायेष्वधीयन्ते तदा इन्द्रेण धीमता ॥  
वज्रेण निहताः शेषास्तान्वक्ष्ये शृणु सन्तम ।  
रामायणीयाः कौथुमास्तत्र भेदान् पुनः शृणु ॥  
रामायणीयाः सप्तैव सुग्राह्यास्तपताम्बर ।  
कालवेया महाकालवयालाङ्गलवैद्युताः ॥  
कौथुमानामपि सप्त असुरावानराश्रणाः ।  
प्रजालाह्वैनभृत्याश्च परियोग्याः परिकायनाः ॥  
अध्ययनमपि तेषां केषान्तु यथावत् कथितं शृणु ।  
अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ॥  
अष्टौ शतानि नवतीः दश सवालखिल्यकाः ।  
ससुपर्णाश्च प्रख्याश्च एतं सामगणं विदुः ॥  
अथो अथर्ववेदस्य नवभेदा भवन्ति हि ।  
पिप्पलादा वर्त्मदाश्च भूतायनाः कातयस्तथा ॥  
जज्ञला ब्रह्मवेदाश्च शौनको कनखी तथा ।  
वेदऋषिश्चौरविद्या तेषामध्ययनं शृणु ॥

पञ्चकल्पा भवन्ति ।

नक्षत्रकल्पोवैतानः संहिताविधिः आङ्गिरसं ।

शान्तिकल्पश्च अथर्वणी भवन्ति ह ।

सर्वेषामेव वेदानामुपवेदान् शृणुष्व तान् ।

ऋग्वेदस्यायुर्वेदो यजुर्वेदो धनुस्तथा ॥

सामवेदस्य गान्धर्वश्रयंशास्त्राण्यथर्वणः ।

ऋग्वेदस्यात्रेयं गोत्रं सोमं देवं विदुर्बुधाः ॥

काश्यपश्च यजुर्वेदं रुद्रदेवन्तु तं विदुः ।

सामवेदोपि गोत्रेण भारद्वाजः-पुरन्दरम् ॥

अधिदैवं विजानीयात् वैतानन्तु अथर्वणे ।

ब्रह्मदेवं विजानीयाद्रपाण्यस्मत् शृणुष्व भो ॥

ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षः प्रलम्बजठरः शुचिः ।

भक्तग्रीवः कुक्षितकेशश्मश्रुः प्रमाणेनापि वितस्ती ॥

पञ्चराजत मोक्तिकजोऽथ पूज्योवरप्रदो भक्तियुतो द्विजाय ।

यजुर्वेदः पिङ्गलाक्षःकशमध्यस्थूलगलकपोलस्ताम्नायतवर्षः,

कृष्णचरणः प्रसादेन् पददीर्घत्वेन,

चित्त्रे लिङ्गेऽथवा पूज्यः सर्वकामानवाप्नुयात् ।

सामवेदो नित्यं कृष्णचरणः प्रसादेन् पददीर्घत्वेन,

चित्त्रे लिङ्गेऽथवा पूज्यः सर्वकामानवाप्नुयात् ।

सामवेदो नित्यं स्रग्वी सुव्रतः शुचिः,

शुचिवासा क्षमी दान्तश्च महादण्डीकाचरणनयन ।

आदित्यवर्णो वर्षेन षडरत्निमातः,

ताम्रैवाथ मणौ देवः पूजितः शुभदो भवेत् ।

अथर्ववेदस्तीक्ष्मदण्डः कामरूपी विश्वात्मा विरक्तजड्वि-  
ज्वालः ।

क्षुद्रकर्मा शास्त्रकृती स्थायी नीलोत्पल वर्णीवर्णन स्वदार-  
तुष्टः ।

परस्त्रीष्ववशः पद्मरागे वाथ प्रपूजयेत् ।

सर्वकामानवाप्नोति अथर्वविहितानि च ।

य एतं नामरूपन्तु गोत्रवेदप्रमाणजम् ॥

वर्णं वर्णं च यो विद्यात् स पुण्यफलभागभवेत् ।

गारुडपुराणे ।

अथ दानविधिं वक्ष्ये रहस्यं परमं मतं ।

यं विधाय नरोधोरान्निरयान्नोपसर्पति ॥

आन्नायरूपाणि विधाय सम्यक्

हेमानि पूर्वोदितलक्षणानि ।

विशुद्धमानामणिभूषितानि

ऋगादिवेदक्रमतो निवेश्य ॥

ऋग्वेदादिलक्षणं, महाभूतघटदाने दर्शितं,

वासांसि देयानि यथाक्रमेण

पीतानि शुक्लान्यथ लीहितानि ।

नीलानिचैवं कुसुमानि दत्त्वा

संपूज्य गन्धाक्षतधूपदीपैः ॥

आमीदिमोदकयुतं घृतपायसञ्च,

सच्चौद्रमन्नमथ यूपघृतं क्रमेण ।

तेभ्यो निवेद्य प्रथितं विधिवत् प्रणम्य ।

सम्यक् प्रदक्षिणविधिं विदधीत विद्वान् ॥

तेषां पूजाविधिः कार्य्योगायत्र्या धीमताम्बर ।

व्याहृत्य व्याहृतीः कुर्यादावाहनविसर्जने ॥

मन्त्रैरेतैस्ततः कुर्यादमीषामनुमन्त्रणम् ।

ऋग्वेद पद्मपत्रात्त रक्ष रक्ष क्षिपाशुभम् ॥

शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि देहि मे हितमद्भुतं ।

यजुर्वेद नमस्तेऽस्तु लोकत्राणपरायणः ॥

त्वत्प्रसादेन मे क्षेमाः निखिलाः सन्तु सन्ततं ॥

सामवेद महाबाहो त्वं हि साक्षादधोक्षजः ।

प्रसादसुमुखोभूत्वा कृपयानुगृहाण मां ॥

अथर्वन् सर्वभूतानां त्वदायत्ते हिताहिते ।

शान्तिं कुरुष्व देवेश पुष्टिमिष्टां प्रयच्छत ॥

इति सम्प्रार्थ्य देवेशान् विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ।

प्रदद्यादेकमेकस्मिन् सुवर्णञ्चिपलान्वितं ॥

दद्यादेकपलोपेतमेकैकमिह दुर्वलः ।

अथ स्वशक्तितो वापि दानमेषां विधीयते ॥

एतदेव प्रमाणं स्यात्तेषां मूर्त्तिविनिर्भितौ ।

अनधीतवतो वेदान-वेददानविधिस्त्वयं ॥

सदाध्ययनयुक्तस्य शिष्याध्यापकमेव हि ।

स्वयं शुचिः शुचीन् विप्रान् प्रातःस्नातो यतेन्द्रियः ॥

दर्भानादाय पाणौ तु पाठयेत्तां तथाविधान् ।

अनध्यायान् परिहरन् नीचानश्रावयन्नपि ॥  
 एवं विधानतो यस्तु ऋचमेकां प्रयच्छति ।  
 त्रिवित्तपूर्णसम्पूर्णा तेन दत्ता मही भवेत् ॥  
 न तत् कल्पसहस्रेण गदितुं शक्यते फलं ॥  
 यद्वेददानादाप्नोति स्वल्पादपि महामते ।  
 यावन्ति वेदगीतानि पुण्यवेदव्रतानिच ॥  
 तावन्ति वेददानेन प्राप्नुयाद्वक्तिभावितः ।  
 उपाध्यायस्य यो वृत्तिं दत्त्वाध्यापयते जनं ॥  
 किं न दत्तं भवेत्तेन धर्मकामार्थदर्शितं ।  
 छात्राणां भोजनाभ्यङ्गं वस्त्रं भिक्षामथापि वा ॥  
 दत्त्वा प्राप्नोति पुरुषः सर्वकामान्न संशयः ।  
 विवेकी जीवितं दीर्घं धर्मकामार्थमाप्नुयात् ॥  
 सर्वमेव भवेद्दत्तं छात्राणां भोजने कृते ।

वज्रिपुराणे ।

प्रातरुत्थाय यो वेदान् वेदाङ्गमपि पाठयेत् ।  
 पृथिवीदानतुल्यं स्यात् फलं तस्य नृपोत्तम ॥  
 यो वृत्तिं पठमानानां करोत्यनुदिनं नृप ।  
 स यन्नफलमादत्ते दानाच्छादनभोजनैः ॥

भविष्यत्पुराणे ।

अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनो धनमाप्नुयात् ।  
 अविहान् विद्यां प्राप्नोति दुःखी दुःखात् प्रमुच्यते ॥  
 सदाध्ययनयुक्तस्तु परे ब्रह्मणि लीयते ।



इति वेददानविधिः ॥

अथ शास्त्रदानं ।

तत्र नन्दिपुराणे ।

शास्त्रे यस्माज्जगत्सर्वं संश्रितञ्च शुभाशुभं ।

तस्माच्छास्त्रं प्रयत्नेन दातव्यं शुभकर्मणे ॥

यमः । य इमां पृथिवीं दद्यात् सर्व्वरत्नोपशोभितां ।

दद्याच्छास्त्रञ्च विप्राणां तच्चैतानि च तत्समं ।

तत्सर्व्वरत्नोपशोभितं

पृथिवीदानं

एतानि पूर्व्वोक्तानि दानानि तदुभयं विद्यादानसममित्यर्थः ।

शास्त्रं चक्षुर्हि लोकानां स्वर्गमार्गप्रकाशकम् ।

शास्त्रेण धार्यते नूनं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

योजनानां सहस्रेऽपि वर्षकोटिशतेन च ।

सद्यस्तिरोहितं वस्तु शास्त्रं दर्शयितुं क्षमम् ॥

अतः शास्त्रात्परत्वास्ति त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।

संसारनिविडध्वान्तरणिस्तत्प्रकीर्तितम् ॥

दद्यादेतत्प्रयोगेण नरः सन्ततमादृतः ।

किं न दत्तं भवेत्तेन शास्त्ररत्नं ददाति यः ॥

तत्र सकलशास्त्रप्रधानतया धर्मशास्त्रप्रदानमेव तावदुच्यते ।

नन्दिपुराणे ।

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां चक्षुषी द्वे प्रकीर्त्तिते ।

काणस्तत्रैकया हीनी दाभ्यामन्यः प्रकीर्त्तितः ॥

तथा, धर्मशास्त्रं नरोदत्त्वा नाकपृष्ठे महौयते ।  
 दशमन्वन्तरान्मर्त्यस्तारयेन्नरकात् पितृन् ॥  
 आत्मविद्याच पौराणी धर्मशास्त्रात्मिका च या ।  
 तिस्रोविद्या इमामुख्याः, सर्व्वदानक्रिया फले ॥  
 धर्मशास्त्रं नरोबुद्धा यत्किञ्चिद्धर्ममाश्रयेत् ।  
 तस्य धर्मः शतगुणो धर्मशास्त्रप्रदस्य च ॥  
 अतः सदा बुधैर्ज्ञेयं\* धर्मशास्त्रं विचक्षणैः ।  
 न तस्य पुण्यसंख्यानं ब्रह्मापि गदितुं क्षमः ॥

अग्निपुराणे ।

कपिलानां सहस्रेण सम्यक् दत्तेन यत्फलं ।

तद्राजन् सकलं लेभे धर्मशास्त्रप्रदायकः ॥

तत्र धर्मशास्त्रप्रणेतृकथनद्वारा तदनु क्रममाहतुः शङ्क-  
 लिखितौ ।

स्मृतयो धर्मशास्त्राणि तेषां प्रणेतारोमनुः-

विष्णु-व्यास-दत्ता-ऋषि-त्रि-वृहस्प-त्युशन-आपस्तम्ब-वशिष्ठ-  
 कात्यायन-पराशर-व्यास-शङ्क-लिखित-सम्बर्त्त-गौतम-शातातप-  
 हारीत-यान्नवल्का-प्रचेत-सादयः । आदिशब्दाच्च बुध-देवल-  
 सोम-प्रजापति-वृद्धशातातप-पैठीनसि-कागलेय-च्यवन-मरीचि-  
 वत्स-पारस्कर-पुलस्त्य-पुलह-क्रतु-ऋथशृङ्गा-त्रेया-णां ग्रहणं ।

आह पैठीनसिः ।

तेषां मन्व-ऋषि-व्यास-गौतमो-लिखितो-यमः ।

वसिष्ठ-दक्ष-संवर्त्त-शातातप-पराशराः ॥  
 विष्णु-पस्तम्ब-हारीताः-शङ्खः कात्यायनोगुरुः ।  
 प्रचेता-नारदी योगी बौद्धायन-पितामही ॥  
 सुमन्तुः काश्यपो-बभ्रुः-पैठीनो व्याघ्र एव च ।  
 सत्यव्रतो भरद्वाजो गार्ग्यः कार्ष्णाजिनिस्तथा ॥  
 जावालिर्जमदग्निश्च लौगाक्षिः ब्रह्मसम्भवः ।  
 इति धर्मप्रणेतारः षड्त्रिंशदृषयः स्मृताः ॥

भविष्यत्पुराणे ।

षड्त्रिंशदतिरिक्ताः, स्मृतयः सन्तीति दर्शितं ।  
 अष्टादशपुराणेषु यानि वाक्यानि पुत्रक ॥  
 तान्यालोच्य महाबाहो तथास्मृत्यन्तरेषु च ।  
 मन्वादिस्मृतयो याश्च षड्त्रिंशत्परिकीर्त्तिताः ॥  
 तासां वाक्यानि क्रमशः समालोच्य ब्रवीमि त इति ।

आह मनुः ।

विष्णुः पराशरी-दक्षः संवर्त्त-व्यास-हारिताः ।  
 शातातपो वशिष्ठश्च यमा-पस्तम्ब-गौतमाः ॥  
 देवलः शङ्ख-लिलितौ-भरद्वाजोऽश्विनो-त्रयः ।  
 शौनको याज्ञवल्क्यश्च दशाष्टौ स्मृतिकारिणः ॥  
 तथा । भार्गवोनारदीया च वार्हस्पत्याङ्गिरस्यपि ।  
 स्वायम्भुवस्य शास्त्रस्य चतस्रः संहिता मताः ॥  
 अङ्गिराः । जावालि-नारदिकेतश्च स्कन्दो लौगाक्षि-कश्यपी ।  
 व्यासः सनत्कुमारश्च शतर्जु-र्जनक-स्तथा ॥

व्याघ्रः कात्यायनश्चैव जातूकण्ठः कपिञ्जलः ।  
 बौधायनः कणादश्च विश्वामित्रस्तथैव च ॥  
 उपस्रुतय इत्येताः प्रवदन्ति मनीषिणः ।  
 यमः । एतैर्यानि प्रणीतानि धर्मशास्त्राणि वै पुरा ॥  
 तान्येवातिप्रमाणानि न हन्तव्यानि हेतुभिः ।

स्कन्दपुराणे ।

स्मृतयोधर्ममूलं हि धर्मःसर्वार्थसाधनं ।  
 अतः स्मृतिषु दत्तासु सर्व्वद्रानफलं लभेत् ॥  
 एकमेव समुद्धृत्य प्राणिनं दुःखसागरात् ।  
 अनन्तफलमाप्नोति किं पुनर्ज्ञानदोर्बलम् ॥  
 किमतः स हि धर्म्मोस्ति किं वा ज्ञानं तथाविधं ।  
 अन्यद्वा तत्किमस्तीह यद्वा स्मृतिषु दृश्यते ॥  
 अतस्तासु प्रदत्तासु ज्ञानवानभिजायते ।  
 पारं प्राप्य च शास्त्राणां ब्रह्मलोके महीयते ॥

इति स्मृतिदानं ।

अथ पुराणदानं तत्र नारदीये ।

वेदाः प्रतिष्ठिता देवि पुराणैर्द्वात्र संशयः ।  
 विभेत्यल्पश्रुताद्देदी मामयं प्रतरिष्यति ।  
 इतिहासपुराणैश्च कृतोयं निश्चलः पुरा ॥  
 यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिभिः किल ।  
 उभाभ्यां यन्नदृष्टं हि तत्पुराणेषु गीयते ॥

## मत्स्यपुराणे ।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।  
 अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥  
 पुराणमेकमेवासीदस्मिन् कल्पान्तरेऽनघ ।  
 त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥  
 निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया ।  
 अङ्गानि चतुरो वेदाः पुराणन्यायविस्तराः ॥  
 मीमांसा-धर्मशास्त्राणि परिगृह्णात्मसात्कृतम् ।  
 मत्सरूपेण च पुनर्कल्पादावुदकार्णवे ॥  
 अशेषमेतत् कथितमुदकान्तर्गतेन च ।  
 श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रतिवेदश्चतुर्भुखः ॥  
 प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ।  
 कालेन ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततोऽनृपम् ॥  
 व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे\* ।  
 चतुर्लक्षप्रमाणेन हापरे हापरे सदा ॥  
 तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकैऽस्मिन् प्रभाष्यते ।  
 अद्यापि देवलोके तत् शतकोटिप्रविस्तरम् ॥  
 तदर्थोर्वी\* चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेदितः† ।  
 पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ॥  
 नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ।

\* सम्भवामि युगे युगे इति क्वचित् पाठः ।

† यद्यथावेति क्वचित् पाठः ।

‡ निवेष्टित इति क्वचित्पाठः ।

वाराहपुराणे ।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा ।  
तथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डेयञ्च सप्तमम् १ ॥  
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यन्नवमन्तथा ।  
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लिङ्गमेकादशं तथार ॥  
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दश्चात्र त्रयोदशम् ।  
चतुर्दशं वामनञ्च कौर्म्यम्पञ्चदशं तथार ॥  
मात्स्यञ्च गारुडञ्चैव ब्रह्माण्डमष्टादशं तथा\* ।

कालिकापुराणे ।

शैवं यद्वायुना प्रोक्तं वैरिञ्चिं वैष्णवं तथा ।  
यदिदं कालिकास्थञ्च मूलं भागवतं स्मृतम् ॥  
सौरञ्च नारदीयञ्च मार्कण्डेयञ्च वज्रिजम् ।  
वामनं कौर्म्यं मात्स्यञ्च सप्तदशञ्च गारुडम् ॥  
ब्रह्माण्डमष्टादशं ज्ञेयं पुराणञ्च न संशयः ।

सौरपुराणात् ।

यदुक्तं भानुना पूर्वं पुत्राय मनवे द्विजाः ।  
तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्व वदती मम ॥  
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।  
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणं ॥  
यत्नतोपपुराणानां लिखित्वा लक्षणं स्मृतं ।  
ब्राह्मं पुराणं तत्राद्यं संहिताभ्यां विभूषितं ॥

श्लोकानां दशसाहस्रं नानापुण्यकथायुतं ।  
 पाद्मं द्वितीयं कथितं तृतीयं वैष्णवं स्मृतं ॥  
 चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतं ।  
 ततो भागद्वयं प्रोक्तं\* भागद्वयविभूषितं ॥  
 चतुर्भिः पर्वभिः प्रोक्तं भविष्यं तदनन्तरं ।  
 मार्कण्डेयमथान्नयं नारदीयमतः परं ॥  
 दशमं ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशं स्मृतं ।  
 भागद्वयेन लिङ्गञ्च ततो वाराहमुत्तमं ॥  
 संयुक्तमष्टभिः खण्डैः स्कान्दश्चैवात्र विस्तरं ।  
 ततस्तु वामनं कौर्मं भागद्वयविराजितं ॥  
 मात्स्यञ्च गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च ततः परं ।  
 भागद्वयेन कथितं ब्रह्माण्डमभिसंज्ञितं ॥  
 खिलान्युपपुराणानि यानि चोक्तानि सूरिभिः ।  
 इदं ब्रह्मपुराणस्य खिलं सौरमनुत्तमं ॥  
 संहिताद्वयसंयुक्तं पुण्यं शिवकथाश्रयं ।  
 आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्यभाषिता ॥

कूर्मपुराणे ।

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु ।  
 आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परं ॥  
 तृतीयं नारदमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितं ।  
 चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितं ॥

दुर्व्वसितीक्ष्णमाश्चर्य्यं नारदीक्ष्णमतः परं ।  
 कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितं ॥  
 ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च ।  
 माहेश्वरं तथा शाम्बं सौरं सर्व्वार्थसञ्चयं ॥  
 पराशरोक्तं प्रवरं तथा भागवतं हयं ।  
 इदमष्टादशं प्रोक्तं पुराणं कौर्मिसंज्ञितं ॥  
 चतुर्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः ।

मत्स्यपुराणे ।

पाद्मे पुराणे या प्रोक्ता नरसिंहोपवर्णना ।  
 तत्राष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते ॥  
 नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते ।  
 नन्दीपुराणं तल्लोकैर्व्याख्यातमिति कीर्त्यते ॥  
 यत्र शाम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथा न कम् ।  
 प्रोच्यते तत्पुनर्लोके शाम्बमेव मुनिव्रताः ॥  
 एवमादित्यसंज्ञञ्च तत्रैव परिपठ्यते ।  
 अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत् प्रदृश्यते ॥  
 विजानीध्वं \* द्विज्येष्टास्तदेतेभ्यो विनिर्मितं ।  
 पञ्चाङ्गवत्पुराणं स्यादाख्यानमितरत् स्मृतम् ॥  
 सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च ।  
 वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पञ्चलक्षणं ॥  
 ब्रह्मविष्णुर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च ।



स संहारं प्रहृष्येत पुराणं पञ्चवर्णता ॥  
 धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्च परिकीर्त्यते ॥  
 सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धे च यत्फलं ।  
 सात्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥  
 राजसेषु च महात्म्यमधिकं ब्रह्मणोविदुः ।  
 तद्वदग्नेश्च माहात्म्यान्तामसेषु शिवस्य च ॥  
 सङ्कीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणाञ्च निगद्यते ।  
 तथा । अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ॥  
 भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपहंसितम् ।  
 लक्ष्णैकेन तत् प्रोक्तं वेदार्थपरिवृंहितं ॥  
 वाल्मीकिनापि यत् प्रोक्तं रामायणाख्यमुत्तमं ।  
 ब्रह्मणाभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरात् ॥  
 आहृत्य नारदेनैव वाल्मीकाय पुनः पुनः ।  
 वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनं ॥  
 एवं संपादाः पञ्चेते लक्ष्यास्तेषु प्रकीर्तिताः ।

मत्स्यपुराणे ।

ऋषय ऊचुः ।

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत विस्तरतः क्रमात् ।  
 दानं धर्ममशेषञ्च यथावदनुपूर्व्वशः ॥

सूत उवाच ।

इममेव पुरा प्रश्नं नोदितः पुरुषोत्तमः ।  
 यदुवाच सविज्ञात्मा मुनयस्तन्निबोधत ॥

पुराणानि दशाष्टौ च सांस्पृतं तदिहोच्यते ।  
 नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वंसृषिसत्तमाः ॥  
 ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।  
 ब्राह्मन्तद्दशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते ॥  
 लिखित्वा तच्च योदद्याज्जलधेनुसमन्वितम् ।  
 वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्रह्मलोके महीयते ॥  
 एतदेव यदापन्नमभूद्वैरग्नयञ्जगत् ।  
 तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत्पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥  
 पाद्मं तत् पञ्चपञ्चाशत्साहस्राणीह पठति ।  
 तत्पुराणं च योदद्यात्सुवर्णकमसान्वितम् ॥  
 ज्यैष्ठे मासि तिलैर्युक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।  
 वाराहकल्पवृत्तान्तं अधिकृत्य पराशरः ॥  
 यत्राह धर्मानखिलान् तद्युक्तं वैष्णवं विदुः ।  
 तदाषाढे च योदद्याद्दृतधेनुसमन्वितम् ॥  
 पौर्णमास्यां विपूतात्मा सपदं याति वारुणं ।  
 त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्पुराणं विदुर्व्रधाः ॥  
 श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत् ।  
 यत्र तद्वायवीयं स्याद्द्रुमाहात्म्यसंयुतम् ॥  
 चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ।  
 श्रावण्यां श्रावणे मासि गुडधेनुसमन्वितं ॥  
 योदद्याद्दधिसंयुक्तं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।  
 शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः ॥  
 यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः ।

वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥  
 सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये येस्युर्नरामराः ॥  
 तद्दृत्तान्तोद्भवं लोके तद्भागवतमुच्यते ।  
 लिखित्वा तच्च योदद्याद्देमसिंहसमन्वितं ।  
 पौर्णमास्यां प्रोष्ठपद्यां स याति परमं पदं ॥  
 अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रकीर्तितं ।  
 यत्राह नारदोधर्मान् बृहत्कल्याणितांस्त्रिह ॥  
 पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।  
 तदिदं पञ्चदश्यां तु योदद्याद्देमसंयुतं ॥  
 उत्तमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभं ।  
 यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्माविचारणं ॥  
 पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ।  
 परिलिख्य च योदद्यात्सौवर्णकरिसंयुतं ॥  
 कार्त्तिक्यां पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग्भवेत् ।  
 यत्तदीशानकल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ॥  
 वशिष्ठायाम्निना प्रोक्तमाम्नेयं तत् प्रचक्षते ।  
 लिखापयित्वा योदद्यात् हेमपद्मसमन्वितं\* ॥  
 मार्गशीर्षे विधानेन तिलधेन्वान्वितं तथा ।  
 एतत् षोडशसाहस्रं सर्व्वक्रतुफलप्रदं ॥  
 यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः ।  
 अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्पतिः ॥

\* हेमपद्मसमन्वितमिति कचित्पाठः ।

नवमे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणं ।  
 चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च ॥  
 भविष्यच्चरितप्रायं भविष्यत्तद्दिहोच्यते ॥  
 तत्पौषे मासि योदद्यात् पौर्णमास्यां विमत्सरः ।  
 गुडकुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥  
 रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।  
 सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यसंयुतं ॥  
 यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः ।  
 तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ।  
 पुराणं ब्रह्मवैवर्तं योदद्यान्माघमासि च ॥  
 पौर्णमास्यां स भयनं ब्रह्मलोके महीयते ।  
 यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः ॥  
 धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च ।  
 कल्पं तत्सैङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयं ॥  
 तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति ।  
 तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसात्मतां ॥  
 महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।  
 मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तम ।  
 चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ॥  
 विष्णुनाभिहितं चौख्यै तद्वाराहमिहोच्यते ॥  
 काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितं ।  
 पौर्णमास्यां मधौ दत्त्वा ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥

वराहस्य प्रसादेन\* पद्माप्नोति वैष्णवं ।  
 यत्र माहेश्वरान् धर्मानधिकृत्य च प्रसमुखः ॥  
 कल्पे तत्पुरुषे हृत्ते चरितैरुपहंसितं ।  
 स्कान्दनाम पुराणं तदेकाशीतिर्निगद्यते ॥  
 सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु पठ्यते ।  
 परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितं ॥  
 शैवञ्च पद्माप्नोति मकरोपगमे रवेः ।  
 त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः ॥  
 त्रिवर्गमभ्यधात्तत्र वामनं परिकीर्तितं ।  
 पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवं ॥  
 यच्छरदिषुवे दद्याद्वैष्णवं यात्वसौ पदं ।  
 यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले ॥  
 माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः ।  
 इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषीणां शक्रसन्निधौ ॥  
 सप्तदशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुसङ्गिकं ।  
 योदद्यादयने कुम्भं हेमकूर्मसमन्वितं ॥  
 गोसहस्रप्रदानस्य स फलं प्राप्नुयान्नरः ।  
 श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः ॥  
 मत्सररूपी च मनवे नरसिंहोपवर्णनं ।  
 अधिकृत्यात्रवीक्ष्य स कल्पवृत्तं मुनिव्रताः ॥  
 तन्माहात्म्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश ।  
 विष्णवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितं ॥

यो दद्यात् पृथिवी तेन दत्ता भवति वाखिला ।  
 यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाङ्गरुडोद्भवः ॥  
 अधिकृत्याब्रवीत् कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते ।  
 तदष्टादश चैकञ्च सहस्राणीह पठ्यते ॥  
 सौवर्ण-हेममिथुनसंयुक्तं विषुवे नरः ।  
 यो ददाति परां सिद्धिमाप्नोति शिवसन्निधिं ॥  
 ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः ।  
 तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं दिशताधिकं ॥  
 भविष्याणाञ्च कल्याणां श्रूयते यच्च विस्तरः ।  
 तद्ब्रह्माण्डपुराणन्तु ब्रह्मणा समुदाहृतं ॥  
 योदद्याच्च व्यतीपाति पक्षोर्णयुगसंयुतं ।  
 राजसूयसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥  
 हेमधेन्वा युतं तच्च ब्रह्मलोकफलप्रदं ।

सौरपुराणे ।

तदेव पुराणमधिकृत्याह ।

इयं पुण्यतमाख्याता संहिता पापनाशिनी ॥  
 वैवश्वताय मनवे कथिता रविष्ठा पुरा ।  
 दानमस्य पुराणस्य दानानामुत्तमं द्विजाः ।  
 योदद्याच्छिवभक्ताय ब्राह्मणाय तपस्विने ॥  
 यानि दानानि लोकेषु प्रसिद्धानि द्विजोत्तमाः ।  
 सर्व्वेषां फलमाप्नोति चतुर्दश्यान् संसयः ॥  
 अन्यान्यपपुराणानि सहस्ररण्यानि दर्व्वणि ।

लिखित्वा यः प्रयच्छेत्तु स विद्यापारगो भवेत् ॥  
 शिवधर्मादिशास्त्राणि यः प्रयच्छति पुण्यधीः ।  
 सोऽनन्तफलमाप्नोति शिवधर्मप्रकाशनात् ॥

ब्रह्मपुराणे ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां सारम्भारतमुच्यते ।  
 तदेकस्य प्रदानेन वेदशास्त्रप्रदो भवेत् ॥  
 रामायणं लिखित्वा तु यः समग्रं प्रयच्छति ।  
 तस्य प्रसन्ना भवति पद्मबन्धैः सरस्वती ॥

वल्गुपुराणे ।

पुराणं भारतं वापि रामायणमथापि वा ।  
 दत्त्वा यत्फलमाप्नोति न तत्तत्त्वं ह्यहमखैः ॥

कूर्मपुराणे ।

तदेव पुराणमधिकृत्याह ।

ब्राह्मी पौराणिकी चैवं संहिता पापनाशिनी ।  
 लिखित्वेमाञ्च यो दद्याद्द्वैशाखे मासि सुव्रत ॥  
 विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्य्यसमन्वितः ॥  
 भुक्ता तु विपुलान् भोगान् विद्यावान् धनवान् भवेत् ।

इति पुराणदानविधिः ।

अथ पुराणश्रवणदानं ।

तत्र महाभारते ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देवानि भारत ।  
 वाच्यमाने तु विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि ॥

स्वस्तिवाच्य विधानादौ ततः कार्यं प्रवर्त्तते ।  
 समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या तर्पयेद्द्विजान् ॥  
 आदौ तु वाचकं पूज्य रसगन्धसमन्वितम् ।  
 विधिवद्भोजयेद्राजन् मधुपायसमुत्तमं ॥  
 ततो मूल-फलप्रायं पायसं मधुसर्पिषी ।  
 आस्तिके भोजयेद्राजन् दद्याच्चैव गुडोदनम् ॥  
 अथ धूपैश्च पूषैश्च मोदकैश्च सन्वितं ।  
 सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद्द्विजान् ॥  
 आरण्यकैर्मूलफलैस्तर्पयेच्च द्विजोत्तमान् ।  
 आरण्यपर्वण्यासाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत् ॥  
 तर्पणानि च मुख्यानि धान्यमूलफलानि च ।  
 सर्वकामगुणोपेतो विप्रेभ्यस्तं प्रदापयेत् ॥  
 विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च ।  
 उद्योगे भरतयेष्ठ सर्वकामसमन्वितः ।  
 भोजनं भोजयेद्द्विप्रान् गन्धमाल्यैरलङ्कितान् ॥  
 भोक्षपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा पानमनुत्तमं ।  
 ततः सर्वगुणोपेतं अन्नन्दद्यात् सुसंस्कृतं ॥  
 द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्जितम् ।  
 शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा ॥  
 कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम् ।  
 विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग्दद्यात्संवृतमानसः ॥  
 शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडोदनैः ।  
 सधूपैस्तर्पणैश्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत् ॥



गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमित्रं प्रदापयेत् ।  
 त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेद्विधिवद्भिजान् ॥  
 कृतोदनं पुरस्तात् ऐषीके दापयेत् पुनः ।  
 ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात्संस्कृतं ॥  
 शान्तिपर्वणि च तथा हविष्यं भोजयेद्भिजान् ।  
 आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकं ॥  
 तथाश्वमनिवासे तु हविषा भोजयेद्भिजान् ।  
 मौशले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनं ॥  
 हरिवंशे तथा पार्थ पायसं चारुभोजनं ।  
 पारणे पारणे राजन् यथावद्भरतर्षभ ॥  
 समाप्य सर्वां प्रयतः संहितां शास्त्रकोविदः ।  
 शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिसंवृतं ॥  
 शुक्लाम्बरधरस्तत्र शुचिर्भूत्वा स्वलङ्कृतः ।  
 अर्चयेत् यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥  
 संहितापुस्तकान् रागात् प्रयतः सुसमाहितः ।  
 भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च कौतुकैर्विविधैः शुभैः ॥  
 हिरण्यञ्च सुवर्णञ्च दक्षिणां तत्र दापयेत् ।  
 देवताः कीर्तयेत्सर्वान् नरनारायणौ तथा ॥  
 ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलङ्कृत्य द्विजोत्तमान् ।  
 तर्पयेद्विविधैः कामैर्दानैरन्नादिकैस्तथा ॥  
 भुक्तवत्सु च विप्रेषु यथावत्सम्प्रचारयेत् ।  
 वाचकं भरतयेठ भाजयित्वा स्वलङ्कृतं ॥  
 ब्राह्मणेषु प्रसन्नेषु प्रसन्नास्तस्य देवताः ।

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ॥  
 ततो विवरणं कार्यं संहितानां भरतर्षभ ।  
 इतिहाससमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः ॥  
 संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारङ्गत्वा तु भारते ।  
 तेषां अश्वानि देयानि श्रुत्वा भारत भारतं ॥  
 ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति भक्त्या च भरतर्षभ ।  
 महादानानि देयानि यानानि विविधानि च ॥  
 गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्च सुमनोहराः ।  
 सर्व्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च ॥  
 भवनानि विचित्राणि भूमिवासांसि काञ्चनं ।  
 वाहनानि च देयानि हृद्या मत्ताश्च वारणाः ॥  
 शयनं शिविकाश्चैव स्पन्दनाश्च स्वलङ्कृताः ।  
 यद्यद्गृहे वरं किञ्चित् किञ्चिदस्ति महद्दसु ॥  
 तत्त देयं द्विजातिभ्य आत्मा दासाश्च सूनवः ।  
 अश्वया परया हृद्या क्रमशः पाठपारगाः ॥  
 शक्तिः सुमना भूत्वा सुश्रुतश्च विमत्सरः ।  
 एवं करोति यो विद्वान्दानं पर्व्वप्रतिष्ठितं ॥  
 सर्व्वयज्ञफलं प्राप्य स देवैः सह मोदते ।  
 यश्चानेन प्रकारेण भारतं आवयेन्नरः ॥  
 तद्विद्यादानमाहात्म्यात् लोकानुद्धरति ह्यसौ ।

इति पुराणश्रवणदानविधिः ।

अथ सर्व्वशास्त्रसाधारणदानविधिः ।

तत्र देवीपुराणे ।

विद्यादानं प्रवक्ष्यामि येन तुष्यन्ति मातरः ।  
 लिख्यते दीयते येन विधिना तं शृणु प्रभो ॥  
 तथा । शृण्वतां जायते भक्तिस्ततो गुरुमुपासते ।  
 स च विद्यागमान्वक्ति विद्यायुस्त्वाश्रितो नृप ॥  
 श्रीताडयत्रके सञ्चे समे पत्रमुसञ्चिते ।  
 विचित्रकञ्चिका पाश्वर्णे चर्मणा संपुटीकृते ॥  
 रक्तेन वाय कृष्णेन रुदुना रङ्गितेन च ।  
 दृढसूत्रनिबद्धेन एव विधिहतेन च ।  
 यस्तु द्वादशमाहस्तौ संहितामुपलेखयेत् ।  
 ददाति चाभियुक्ताय स याति परमाङ्गतिम् ॥  
 पूर्वोत्तरपूर्व देशे सर्व्ववाधाविवर्जिते ।  
 गोमयेन शुभेनैव कुर्यान्मण्डलकं बधः ॥  
 धनुर्हस्तप्रमाणेन शुभञ्च चतुरस्रकम् ।  
 तस्य मध्ये लिखेत्पद्मं सितरक्तमितादिभिः ॥  
 सर्व्वर्तुकामजेः पुष्पैर्भुषयेत् सर्व्वतो दिग्म् ।  
 विनानन्दापयेत् मूर्द्धि शुभञ्चित्रविचित्रितम् ।  
 पाश्वतोमितवस्त्रैश्च सम्यक् गोभां प्रकल्पयेत् ॥  
 कन्दुकैरङ्गचन्द्रैश्च दर्पणैश्चामरैस्तथा ।  
 घण्टाकिङ्किणिगज्जैश्च सर्व्वतश्चापकल्पयेत् ॥  
 तस्य मध्ये न्यसेद्यन्तं नागदन्तमयं शुभम् ।  
 अथः किञ्चिन्निबद्धन्तु ऊर्ध्वतोऽपि सुसंयुतम् ॥  
 गोभितं दृढवन्धेन बद्धं सूत्रेण बुद्धिमान् ।

तस्योर्ध्वं विन्यसेद्विद्वान् पुस्तकं लिखितं शुभम् ॥  
 आलिख्यमपि तत्रैव पूजयेद्विधिना ततः ।  
 निरुदकैस्तथा पुष्पैः क्लमिकौटविवर्जितैः ॥  
 चन्दनेन सदर्पेण भस्मना वावधूलयेत् ।

सदर्पेण, मृगमदसहितेन ।

धूपश्च गुग्गुलुर्देयस्तुरुष्कागुरुमिश्रितः ।  
 दीपमाला तथाचाग्रे नैवेद्यं विविधं पुनः ॥  
 स्वाद्यं पेयं सितं लेह्यं चूषम्बा विनिवेदयेत् ।  
 पूजयेच्च दिशां पालान् लोकपालान् यथाक्तम् ॥  
 कन्या स्त्रियश्च सम्पूज्य मातरः कल्पयेच्च वा ।  
 पुस्तकं देवदेवीश्च विप्राणां दक्षिणां तथा ॥  
 स्वशक्त्या चैव दातव्या नृपः पौरांश्च पूजयेत् ।  
 तथा सम्पूजयेद्ब्रह्म लेखकं आस्त्रपारगम् ॥  
 छन्दोलक्षणतत्त्वज्ञं सत्कविं मधुरस्वरम् ।  
 प्रनष्टं स्मरति ग्रन्थं श्रेष्ठं पुस्तकलेखकम् ॥  
 नाभिसन्ततिविच्छिन्नं नच श्लक्ष्णैर्न कर्कशैः ।  
 नन्दिनागरकैर्वर्णैर्लेखयेच्छिवपुस्तकम् ॥  
 प्रारभ्य पञ्च वै श्लोकान् पुनः शान्तिन्तु कारयेत् ।  
 रात्रौ जागरणं कुर्यात्सर्वप्रेक्षां प्रकल्पयेत् ॥  
 नट-चारण-नग्नैश्च देव्याः कथनसंभवैः ।  
 सर्वप्रेक्षां, सर्वप्रकारप्रेक्षणकं ।  
 प्रत्यूषे पूजयेत्तृतीयांस्ततः सर्वान्विसर्जयेत् ॥

एकान्ते सुमनस्केन विशुद्धेन दिने दिने ।  
निष्पाद्य विधिनानि स्वृत्ते नच शुभवासरे ॥

स्वृत्ते, शुभनक्षत्रे ।

ततः पूर्वोक्तविधिना पुनः पूजां प्रकल्पयेत् ।  
तथा विद्याविमानं तु सप्तपञ्चत्रिभूमिकं ॥  
विचित्रवस्त्रशोभाढ्यं शुभलक्षणलक्षितं ।  
कारयेत्सर्व्वं तोभद्रं किङ्किणीरवकान्वितं ॥  
दर्पणैरर्द्धचन्द्रैश्च घण्टा-चामरमण्डितं ।  
तस्मिन् धूपं समुत्क्षिप्य सुगन्धचन्दनागुरुं ॥  
तुरक्यं\* गुग्गुलं वत्स शर्करामधुमिश्रितं ।  
पूजयेत् पूर्व्ववत्सर्व्वान् कन्या-स्त्री-द्विजदुःखितान् ॥  
तथा तत्पुस्तकं वत्स विन्यसेद्विधिपूर्व्वकं ।  
एवं कृत्वा यथा विद्याः प्रीयन्तां मातरो मम ॥  
यस्यैव सत्तं तच्छास्त्रन्तं पुस्तं परिकल्पयेत् ।  
यस्यैव सत्तं यस्यैव देवस्य सत्तं सम्बन्धितं पुस्तं परिकल्पयेत्  
पुस्तकं तं देयं परिकल्पयेत् भावयेदित्यर्थः ।  
तथा तपस्विनः पूज्याः सर्व्वं शास्त्रार्थपारगाः ।  
शिवव्रतधरा मुख्या विष्णुधर्मपरायणाः ॥  
महता जनसङ्गेन रथस्थं दृढ़वाहनैः ।  
युवभिश्चाभितो नेयं यस्य देवस्य चागमं ॥

सामान्यं सर्वं तीर्थेषु\* मातृणां भवनेषु च ।  
 तस्मिन् पूजां तथा कृत्वा देवदेवस्य शूलिनः ॥  
 समर्पयेत् प्रणम्य शं प्रीयन्तां मातरो मम ।  
 सदाध्ययनयुक्ताय विद्यादानरताय च ॥  
 विद्यासंग्रहयुक्ताय कृतशास्त्राश्रमाय च ।  
 तेनैव वर्त्तते यस्तु तस्य तं विनिवेदयेत् ॥  
 जगद्धिताय वै शान्तिं सन्धाय वाचयेत्तथा ।  
 तेन तोयेन दातारं मूर्ध्नि सम्यक् निषेचयेत् ॥  
 शिवं वन्दे ततः शब्दमुच्चार्य जगतस्तथा ।  
 एवङ्गते महाशान्तिर्देशस्य नगरस्य च ॥  
 जायते नात्र सन्देहः सर्वं बाधाः शमन्ति च ।  
 अनेन विधिना यस्तु विद्यादानं प्रयच्छति ॥  
 स भवेत्सर्वलोकानां दर्शनादघनाशनः ।  
 मृतोऽपि गच्छति स्थानं ब्रह्म-विष्णुनमस्कृतम् ॥  
 सप्तपूर्वापरान् वंशान् आत्मनः सर्वमेव च ।  
 उद्धृत्य पापकलिलादिष्णुलोके महीयते ॥  
 यावन्ति पत्रसंख्यानि अक्षराणि भवन्ति हि ।  
 तावत् स विष्णुलोकेषु क्रीडते विविधैः सुखैः ॥  
 ततः क्षितिं समायातो देव्या भक्तिपरो भवेत् ।  
 समस्तभोगसम्पन्नो विदुषां जायते कुले ॥

नन्दिपुराणे ।

यदेतत् पुण्यमाख्यातं विद्यादानस्य साम्प्रतम् ।

देश-काल-विधिश्चैवाद्यान्-योगात्तथा बुधः ॥  
 प्राप्नोति कीटिगुणितं फलं विद्याप्रदानतः ।  
 गुरुमाराध्य यत्नेन विद्याव्याख्यानपारंगं ॥  
 शक्त्या भक्त्या प्रणामेन विद्यादानं समारभेत् ।  
 तथा । विद्या च मुख्या दानानां गुरुतोऽस्य विधिर्बुधः ॥  
 श्रुत्वा विद्याञ्च विधिवत् श्रद्धया भावितात्मना ।  
 सत्पात्रेभ्यस्तु तान्दद्याद्विशेषाङ्गुणशालिषु ॥  
 उपयोग्यञ्च यद्यस्य तत्तस्य प्रतिपादयेत् ।  
 सुरालयेषु सिद्धेषु यथाविभवविस्तरैः ॥  
 दातव्यास्तु प्रयत्नेन महापुण्यफलार्थिभिः ।  
 शुभे नक्षत्रदिवसे शुभे वापि दिनग्रहे ॥  
 लेखयेत् पूज्य देवेशान् रुद्रब्रह्मजनार्दनान् ।  
 पूर्व दिग्विजितो भूत्वा लिपिज्ञो लेखकोत्तमः ॥  
 निरोधिहस्तबाहुश्च मण्योपात्रावधारणात् ।  
 एकान्तस्योपकरणं यस्यासौ लेखकोत्तमः ॥  
 विद्याधारं प्रकुर्वीत हेमरूप्यमयं शुभम् ।  
 नागदन्तमयं वापि शुभदारुमयं तथा ॥  
 मनोज्ञमगुरुं रम्यं श्लक्ष्ण्यन्तप्रयोगजम् ।  
 सङ्कोचपत्रसंयुक्तं विकासेन समन्वितम् ॥  
 नागदन्तमयः, हस्तिदन्तनिर्मित इत्यर्थः ।  
 तत्र विद्यां विनिहितां कुर्यात् पुस्तकसंस्थिताम् ॥  
 कुर्याच्च पुस्तकं तस्य लिखेद्वाङ्गुलविस्तृतम् ।  
 शुभं श्लक्ष्णञ्च रम्यञ्च कृष्णं मेचकितञ्च वा ॥

अथवा रक्तपद्माभं मेचकालङ्कृतं शुभम् ।  
 कार्पाससूत्रग्रथितं नानागन्धाधिवासितम् ॥  
 मेचकालङ्कृतं, मयूरार्द्धचन्द्रालङ्कृतम् ।  
 मषीभिश्चापि नेकाभिश्चतुर्वर्णाभिरेव च ।  
 दृढस्तम्भनयुक्ताभिर्मेचकैश्चाप्यनेकशः ॥  
 स्तम्भनं, मषीस्थैर्यहेतु ।  
 लेखनीभिश्च दिव्याभिर्हमचित्राभिरेव च ।  
 बहिश्च वर्णं कुर्वीत पुस्तकस्य मनोरमं ॥  
 पीतैः रक्तैः कषायैर्वा सुनिबद्धं विचित्रितम् ।  
 रम्यं लघु सुविस्तीर्णं निग्रन्थिग्रन्थिसंयुतम् ॥  
 विद्याधारं ततोयन्त्रसंस्थितं पूर्वपुस्तकम् ।  
 गृहे मनोरमे गुप्ते सुधालेपितभित्तिके ॥  
 नानारागाङ्करोपेते शुद्धबिम्बमनोरमे ।  
 धूपामोदमनोज्ञे तु वितानकपरिस्तृते ॥  
 लेखको बुद्धिमान् स्नातः शुक्लपुष्पांबरोज्ज्वलः ।  
 सुवर्णमुक्ताकेयूरो मुद्रिकाशीभिताङ्गुलिः ॥  
 सुसमिद्धे मषीभाण्डे लेखनीशास्त्रसंयुते ।  
 आरभेत्तूर्यघोषेण पूजां देवान् पितॄंस्तथा ॥  
 ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्यादौ शास्त्रञ्च आवयेद्बुधः  
 श्रीकपञ्चकमादौ तु दशकं वापि लेखयेत् ॥  
 ततो नक्षत्रयोगेन द्वितीयेऽहनि तस्मिन्नेव ।  
 तादृशेनैव विधिना पुण्याहैः शुभसंयुतैः ॥  
 ततः समाप्ते शास्त्रे तु पुनः पुण्याहसंयुतम् ।



कुर्यात्तदहोरात्रे च पानभोजनवस्तुभिः ॥  
 उभयं वापि तल्लेख्यं समीकुर्याच्च वाचकम् ।  
 उभयं लेख्यं वाचयन् समीकुर्यादित्यर्थः ॥  
 जनाधिकैश्च संयुक्तं वर्णैर्भ्रात्रादिभिस्तथा ।  
 अनुस्वारविसर्गैश्च युक्तायुक्तैर्विचारयेत् ॥  
 शास्त्रं प्रकृतया युक्त्या पुनरुक्त्यं विशेषयेत् ।  
 जनार्थोक्त्या प्रसङ्गश्च छन्दयोग्यतया तथा ॥  
 सूत्रान्तरार्थबोधेन प्रश्नोत्तरविवेकतः ।  
 असूत्रत्वाच्च शास्त्रस्य समुदायार्थबोधतः ॥  
 प्रक्रान्तसूचनोद्देशैर्गदितैश्चोदितैरपि ।  
 बह्वर्थानाञ्च शब्दानां योग्यासत्तिं परीक्ष्य तु ॥  
 सर्वं शास्त्रावबोधेन कारकाद्यैरविप्लुतैः ।  
 कचिच्च शब्दं वर्ज्यैव प्रकृतार्थं निरूपयेत् ॥  
 छन्दसाच्चापि बुद्ध्वा तं वृत्तसंयोगमीप्सितम् ।  
 एवं विद्यां तु मेधावी शास्त्रं सत्कृत्य कृतस्त्रगः ॥  
 प्रदद्याद्विभवैर्दिव्यैः सुरायतनवेश्मसु ।  
 व्यक्तादेशलिपिन्यासं व्यक्तन्नागरमुच्यते ॥  
 व्यक्तदेशलिपिन्यासव्यक्तोद्देशानुसारिणी ।  
 लिपिपत्रन्यासे, अक्षरनिर्माणे स तथा ।  
 आरोप्य यानि रत्नाढ्ये शुभवस्त्रपरिष्कृते ।  
 घण्टाचामरशोभाढ्ये रत्नदण्डातपत्रिणि ॥  
 गजवाजिरथस्थं वा महाशोभसमन्वितम् ।  
 पुरतो गीतनृत्येन नानावाद्यरवेण च ॥

मङ्गलैर्वैदनिर्घोषैर्देवाय विनिवेदयेत् ।  
 नानारूपोपहारैश्च सम्पूज्य तु दिवौकसः ॥  
 दत्त्वा च पुस्तकं तत्र पितृणां धर्ममुद्दिशेत् ।  
 बान्धवानाञ्च हृद्यानां अनन्तफलमिच्छया ॥  
 ततोदत्त्वा विधानेन तां विद्यां शिवमन्दिरे ।  
 ततश्च भक्षयेद्विप्रान् रुद्रभक्तांश्च मानवान् ॥  
 यथाशक्ति च कर्त्तव्या उत्सवाः स्वेषु वेश्मसु ।  
 राज्ञा तु नगरे कार्या ग्रामे ग्रामाधिपैस्तथा ॥  
 गृहे गृहस्थैः कर्त्तव्य उत्सवो बन्धुभिः सह ।  
 स्नातैः शुक्लैः समालम्बैः स्रग्विभिः सुसमाहितैः ॥  
 प्रीतियुक्तैस्ततः आभ्यं शास्त्रं श्रद्धासमन्वितैः ।  
 वाचकं दक्षयेत्तत्र यथाविभवविस्तृतः ॥  
 गुरुञ्च भक्त्या मतिमान् यथाशक्ति ह्यमायया ।  
 ततः पुष्पैश्च धूपैश्च श्रावकान् सम्प्रपूजयेत् ॥  
 याचको ब्राह्मणः प्राज्ञः श्रुतशास्त्रो महामनाः ।  
 अभ्यस्ताक्षरविन्यासो वृत्तशास्त्रविशारदः ।  
 शब्दार्थवित् प्रगल्भश्च विनीतो मेधया पुनः ॥  
 गीतज्ञो वाक्यसुश्राव्यः स्वरोनाविलभाषकः ।  
 गुरुश्च धर्मवान् प्राज्ञः श्रुतशास्त्रो विमत्सरः ॥  
 विप्रः प्रकृतिसंशुद्धः शुचिः स्मितमुखः सदा ।  
 सुवृत्तो वृत्तशास्त्रज्ञः शब्दशास्त्रविशारदः\* ॥

अभ्यस्तशास्त्रसन्दोहः प्रकृतार्थप्रवर्त्तकः ।

वृत्तशास्त्रज्ञः, छन्दःशास्त्रवित् । प्रकृतार्थप्रवर्त्तकः,

प्रस्तुतार्थाभिधायिना प्रक्रमकृतव्याख्या-  
पौर्वापर्यार्थविष्टम्भी ।

अध्याय-सर्ग-विच्छेद-विभक्त्यर्थप्रयोजकः ।

शास्त्रार्थपदविज्ञीमान् पदश्लोकार्थबोधकः ॥

समुदायप्रकीर्णार्थमुख्यशास्त्रानुषङ्गजम् ।

अनक्षरञ्च हृदस्तु व्यपदिश्यार्थबोधकः ॥

प्रक्रान्तादिश्च शास्त्रार्थविभागपरिनिष्ठितः ।

कष्ठाभिमानगूढार्थभङ्गेन च विरोधकः ॥

अद्वेयवागनालस्यः श्रोतवृत्तप्रबोधकः ।

संस्कारैः संस्कृतां विद्यां प्राकृतैः प्राकृतामपि ।

आलापमानैर्व्याख्यानैर्यश्च शिष्यान् प्रबोधयेत् ।

दशाभिधानविन्यासैर्बोधयेच्चापि यो गुरुः ॥

स गुरुः स पिता माता स तु चिन्तामणिः स्मृतः ।

यः शास्त्रोपायमाख्याय नरकेभ्यः समुद्धरेत् ॥

कस्तेन सदृशी लोके बान्धवो भुवि विद्यते ।

यस्य वाग्रश्मिहृन्देन हृदयान्मथ्यते तमः ॥

महासंसाररजनीभवं सोऽर्को महाद्युतिः ।

नोद्धतेनास्य पारुष्येन च वैलीम्यमावहेत् ॥

न चास्य व्याधिदुःखेषु मलेष्वप्रीतिकृद्भवेत् ।

प्रसादयेत्तु कुपितं दुःखमग्नं समुद्धरत् ॥

रोगेभ्यश्चापि यत्नेन परित्राणेन चोद्धरेत् ॥  
 एवं व्याख्यां शुभां श्रुत्वा गुरुवक्तान्नरोत्तमः ।  
 विधेयं चिन्तयेद्यस्तु, परत्र हितकारणात् ॥  
 शृणुयात् अङ्गया युक्तः प्रयतोभिमुखोगुरोः ।  
 अनन्यसत्कथाक्षेपी निष्प्रमादो ह्यतन्द्रितः ॥  
 मृदुश्च संशये जाते पृच्छेद्वाक्यमुदीरयेत् ।  
 गुरुणा चोक्तमेकान्ते श्रद्धावान्वाक्यमाश्रयेत् ॥  
 एतत् कृतं स्वयं कुर्यात् सममिहाञ्जलान्वितः ।

एतत्कृतं, गुरुचेष्टितं ।

अप्रस्तुतकथाक्षेपं यः कुर्यादयतो गुरोः ॥  
 स ब्रह्महत्यामाप्नोति गुरुवाक्येष्वनिश्चयः ।  
 यश्च श्रुत्वान्यतः शास्त्रं संस्कारं चाप्य वाशुभं ॥  
 अन्यस्य जनयेत् कीर्त्तिं स गुरोर्ब्रह्महा भवेत् ।  
 विस्मारयेच्च व्यामोहाद्योऽपि शास्त्रार्थमुत्तमं ॥  
 स याति नरकं घोरमक्षयं भीमदर्शनं ।  
 यस्तु बुद्धा नरः शास्त्रं किञ्चित् कुर्यात् शुभाशुभं ॥  
 भवेद्धतगुणं तद्वै विज्ञानेभ्योरतस्य च ।  
 एवं विधानतो वाच्यं वाचकेन विपश्चिता ॥

तपः समात्मकं सर्वं स्वर्गादिफलसाधकं ।  
 शनैर्विबोध्य वै वाच्यमध्यात्मादि च यद्ववेत् ॥  
 क्रुद्धोक्तिर्युद्धसंक्षोभं धारावर्त्तन वाचयेत् ।

धारावर्त्तेन, वेगेन ।

सरागं ललितैर्वाक्यैर्वाचयेद्दसङ्गमे ॥  
 नानावृत्तानुरूपेण लालित्येन च वाचयेत् ।  
 सर्गाध्याये समाप्ते च कथापर्यन्त एव वा ॥  
 प्रशब्दशब्दसंयोगे कुर्यादिति विरामश्च ।  
 समाप्ते वाचके भीष्म ब्रूयादेवं विचक्षणः ॥  
 अवधार्य जगच्छान्तिमन्ते शान्त्युदकं सृजेत् ।  
 सुश्रुतं सुश्रुतं ब्रूयादस्तु वाख्यातमित्यदः ॥  
 लोकः प्रवर्त्ततां धर्मे राजावास्तु सदा जयी ।  
 धर्मवान् धनसंपन्नो गुरुश्चात्र निरामयः ॥  
 इति प्रोच्य यथा जातं गन्तव्यं च विभावितः ।  
 शिष्यैः परस्परं शास्त्रं चिन्तनीयं विचक्षणैः ॥  
 कथा-वस्तुप्रसङ्गेन नानाव्याख्यानभावनैः ।  
 युक्तिभिश्च चरेद्वाख्यां चिद्भैषापि स्वयंकृतैः ॥  
 एवं दिने दिने व्याख्यां शृणुयान्नियतो नरः ।

समग्रशास्त्रश्रवणेन पुंसः

श्रद्धाप्रधानं भवतीह चेतः ।

रागश्च शास्त्रात्मकमभ्युपैति

दोषाश्च नाशं निमिषेण यान्ति ॥

यथा कथञ्चित् शृणुयान्नशास्त्र-

मश्रद्धयाचेष्टितधर्मसङ्गः ।

ततः समाप्तावथ शास्त्रसर्गे

कथोदये चापि वितीतवृद्धिः ॥

शक्त्याच्चयेद्वादशकल्पमेवं

गुरुञ्च भक्त्या पितृवन्निकार्थी ।

एष विद्याप्रदानस्य प्रधानो विधिरुच्यते ।

अनेनैव विधानेन ब्राह्मणः शीलशालिनि ॥

प्रबोधयति धीयुक्ते युक्तज्ञे वेदवादिनि ।

विन्यसेत्तु शुभं शास्त्रं महापुण्यजिगीषया ॥

धनैर्वा विपुलेर्दत्तैर्गुरुं कृत्वा सुतपितम् ।

अध्यापयेद्भुभान् शिष्यान्भिजातान् सुमेधसः ।

एवं विद्याप्रदानं तु सर्व्वदानोत्तमं स्मृतं ॥

सर्व्वदा सर्व्ववर्णानां नरकप्लवमुत्तमं ।

अनेन विधिना दत्त्वा विद्यां पुण्यपरोनरः ॥

यत्फलञ्चाश्वमेधानां शतस्य सुकृतस्य च ।

राजसूयसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलं ॥

तत्फलं लभते मर्त्यो विद्यादानेन भाग्यवान् ।

सर्व्वसस्यसुसंपूर्णां सर्व्वरत्नोपशोभितां ॥

ब्राह्मणेभ्यो महीं दत्त्वा ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।

यत्फलं लभते मर्त्यो विद्यादानेन तत् फलं ॥

यावद्दक्षरसंख्यानं विद्यते शास्त्रसंश्रये ।

तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गे विद्याप्रदोभवेत् ॥

यावन्यः पङ्क्तयस्तत्र पुस्तके क्षरसंश्रिताः ।

यावच्चपत्रसंख्यानं पुस्तके विद्यते शुभं ॥

तावद्युगसहस्राणि सकुलो मोदते दिवि ।

तावतो नरकात् कुल्यानुद्धृत्य नयते दिवि ॥

यावच्च पातकान्तेन कृतं जन्मशतैरपि ।  
 तत्सर्वं नश्यते तस्य विद्यादानेन देहिनिः ॥  
 स जातोमनुजो लोके स धन्यः सच कौर्त्तिमान् ।  
 योविद्यादानसम्पर्कप्रसक्तः पुरुषोत्तमः ॥  
 यथाविभवतो दद्यात् विद्यां शाठ्यविवर्जितः ।  
 याति पुण्यतमान् लोकानक्षयान् भोगभूषितान् ॥

वज्रिपुराणे ।

अम्बरीष उवाच ।

गवां सुवहुधादानं भूमिदानं तथा मुने ।  
 ब्रह्माण्डादीनि सर्वाणि कथितानि त्वया मम ॥  
 इदानीं श्रोतुमिच्छामि विद्यादानफलं महत् ।  
 विधिवद्विविधं तद्वत्कथयस्व महामुने ॥

वाशिष्ठ उवाच ।

विद्यादानं प्रवक्ष्यामि यथातथ्यन्तवाधुना ।  
 यथादेयं फलं यच्च तत् शृणुष्व नृपोत्तम ॥  
 शुभेऽङ्गि शुभनक्षत्रे मण्डपं शुभवेदिकम् ।  
 चतुरस्रं वितानं वा कृत्वा तत्रोपलिपयेत् ॥  
 गोमयेनोपलिप्ते तु पुष्पप्रकरगोभिते ।  
 तत्र न्यस्यासनन्दिव्यं दिव्यगन्धाधिवासितं ॥  
 संस्थाप्य पुस्तकं तत्र धर्मशास्त्रस्य धीमतः ।  
 ब्राह्मणान् वेदसम्पूष्णान्छुन्दीलक्षणपारगान् ॥  
 लिखापयित्वा यत्नेन तत्समग्रं शुभाक्षरैः ।

चन्द्रसूर्यापरागे वा सङ्क्रान्त्ययनवामरे ॥  
 पुण्येहि तत् सुसम्पूज्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।  
 घृतधेन्वायुतं रत्नैर्हृद्याङ्गवते ततः ॥  
 शास्त्रसद्भावविदुषे वाचकेति प्रियम्बदे ।  
 तच्छास्त्रं शृण्वतां नित्यं जनानां नाशयत्यघं ॥  
 दातुस्तस्माद्भवेन्नैकफलन्तच्छृणु भूपते ।  
 यत्पुण्यं सर्वतीर्थानां विधिवद्यज्वनां तथा ॥  
 तत्पुण्यं समवाप्नोति विधिवच्छास्त्रदः पुमान् ।

वाराहपुराणे ।

विद्यादानविधिं वक्ष्ये यथातत्वेन ते पुनः ।  
 दत्तेन तत्फलं तस्य दातुरस्य समासतः ॥  
 उक्ते समारभेत्काले निम्नोन्नतविवर्जिते ।  
 सुसमे भूप्रदेशे च गोमयेनीपलेपयेत् ॥  
 पुष्पप्रकरमन्मन्त्रे गीतवाद्यममाकुले ।  
 अमलाञ्चतुरस्त्राभ्या चन्दनेनैव कारयेत् ॥  
 पुस्तकं तत्र संस्थाप्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ।  
 सौवर्णलेखनी कार्या मघीभागडच्च रौप्यकम् ॥  
 जयशब्दं समुद्घोष्य आरभेत्त्रैलोक्यं सुधीः ।  
 विनीतश्चाप्रमत्तश्च शास्त्रनिष्पत्तिमानयेत् ॥  
 ब्राह्मणस्य सुवृत्तस्य वाचकस्य विजल्पतः ।  
 अनेन विधिना दत्त्वा दातुरत्नस्य यत्फलम् ॥  
 तत्फलं कोटिगुणितं पुस्तकैकप्रदायकः ।



यत्पुण्यं तीर्थयातृणां यत्पुण्यं यज्वनां नृणाम् ॥  
 तत्पुण्यं कोटिगुणितं विद्यादाने न संशयः ।  
 कपिलानां सहस्रेण सम्यग्दत्तेन यत्फलम् ।  
 तत्फलं समवाप्नोति पुस्तकैकप्रदानतः ॥  
 अयात्यवित्तस्य अद्वावतो विद्यादानमभिधीयते ।

तत्र देवीपुराणे ।

आत्मवित्तानुसारेण विद्यादानङ्करीति यः ।  
 असाध्यं फलमाप्नोति आढ्यतुष्यं न संशयः ॥  
 स्त्री वानेनैव विधिना विद्यादानफलं लभेत् ।  
 भर्ता चैवानुज्ञाता विधवा च तमुद्दिशेत् ॥  
 विद्यार्थिने सदा दद्याद्दस्ताभ्यङ्गञ्च भोजनम् ।  
 कृत्रिकामुदकं दीपं यस्मात्तेन विना मही ॥  
 लेखनीघटितं तीक्ष्णा मषीपाचन्तु लेखनी ।  
 दत्त्वा तु लभते वत्स विद्यादानमनुत्तमं ॥  
 पुस्तकस्तरणं दत्त्वा सुप्रमाणं सुशीभनम् ।  
 विद्यादानमवाप्नोति सूत्रबद्धञ्च बुद्धिमान् ॥  
 यन्त्रकं त्वासनञ्चैव दण्डासनमथापि वा ।  
 विद्यावाचनशीलाय दत्तं भवति राज्यदं ॥  
 अञ्जनं नेत्रपादानां दत्तं विद्यापरायणे ।  
 भूमौर्गृहञ्च चेतञ्च स्वर्गराज्यफलप्रदं ॥  
 यस्य भूम्यां स्थितो नित्यं विद्यादानं प्रवर्त्तयेत् ।  
 तस्यापि भवति स्वर्गस्तत्प्रभावान्न संशयः ॥

नन्दिपुराणे ।

येपि पत्रं मषीपात्रं लेखनी सम्पुटादिकं ।  
लघुशास्त्राभियुक्ताय तेपि विद्याप्रदायिनां ॥  
यान्ति लोकान् शुभान् मर्त्याः पुण्यभाजो नराधिप ।

विष्णुधर्मोत्तरे ।

विद्यादानमवाप्नोति प्रदानात्पुस्तकस्य च ।  
शिल्पानि शिचयेद्यस्तु पौण्ड्रौकफलं लभेत् ॥  
शिल्पभाण्डप्रदानेऽपि तद्विद्यादानजं फलं ।  
अहितेषु प्रवृत्तस्य तथा कृत्वा निवारणं ॥  
विद्यादानफलं प्रोक्तं नात्र कार्या विचारणा ।  
पापवृत्तस्य च तथा दत्त्वा चैव परां मतिं ॥  
विद्यादानफलं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ।  
येन जीवति भाण्डेन तस्मै तद्भाण्डदायकः ॥  
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।

स्कन्दपुराणे ।

दरिद्रः स्वानुसारेण वित्तशाठ्यविवर्जितः ।  
कृत्वा विधिमिमम्भत्त्या विद्यादानफलं लभेत् ॥  
यस्य यावद्भवेदित्तं स तस्येहानुसारितः ।  
निवेद्य सुमहाभागैः शिवलोके महीयते ॥  
पुस्तकास्तरणं दत्त्वा सहस्रं तत्प्रमाणतः ।  
तदासनं वितानस्वा शिवलोके महीयते ॥

यावत्तद्वस्त्रसूत्राणां परिसंख्या समन्ततः ।  
 तावद्युगमहस्त्राणि महाभोगानवाप्नुयात् ॥  
 यः श्रोतृपर्णसमुद्भूतं निम्नखातं सुसञ्चयं ।  
 दद्यात्सम्पुटकं कृत्वा चर्मणावापि निर्मितं ॥  
 शिवज्ञानाभियुक्ताय तदध्ययनहेतुना ।  
 सुश्लक्ष्णं फलकं वापि विद्यादानफलं लभेत् ॥  
 यः मौवर्णं सुसम्पूर्णं सर्व्वरत्नोपशोभितं ।  
 सपिधानसुमञ्जसं विद्याकोशसमाश्रयं ॥  
 कारयेद्वापि रौप्येण ताम्रेण चतुरस्रकं ।  
 कांस्थारकूटलीहंश दारुवंशादिनिर्मितं ॥  
 सुकषायातिरक्तेन वर्मणाभिनवेन च ।  
 अन्तर्वह्निश्च मठयेत् विद्यादाननवं गृहं ॥  
 सुदृढं कटकोपितं दृढस्तम्भनिवेदनं ।  
 कुर्यात्तालकसंयुक्तं विद्यारत्नकरण्डकम् ॥  
 एवं वित्तानुसारेण कारयित्वा तु तं नृप ।  
 विद्यासिंहासनं तत्र सम्पूज्य विधिवहुधः ॥  
 तस्मिन् पुण्याहशब्देन विद्याकोशगृहं न्यसेत् ।  
 एवं यः शिवविद्यायाः कुर्यादायतनं शुभं ॥  
 समुक्तः पातकैः सर्व्वैर्विद्यादानफलं लभेत् ।  
 विद्यामण्डलकं कृत्वा विद्याव्याख्यानमण्डपे ॥  
 तत्राभ्यर्च्य शिवां विद्यां तद्ग्राह्यां शृणुयात्ततः ।  
 सोऽपि याति शिवस्थानं सर्व्वकामसमन्वितं ॥  
 अनेन विधिना ज्ञानं यः शृणोति प्रवर्त्ति च ।

स सम्प्राप्य श्रियं सौख्यं देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥

नन्दिपुराणे ।

इति विद्याप्रदानस्य महाभाग्यं प्रकीर्तितम् ।

श्रुत्वैतत्पातकैर्मुग्धैर्निर्यतं सप्तजन्मजैः ॥

देवीपुराणे ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विद्या देया सदा नरैः ।

इहैव कीर्त्तिमाप्नोति मृतोयाति पराङ्गतिम् ॥

यस्तु देव्या गृहे नित्यं विद्यादानं प्रवर्त्तयेत् ।

सभवेत्सर्वलोकानां पूज्यः पूज्यपदं व्रजेत् ॥

वाहाहपुराणे ।

ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ।

धर्माधर्मं न जानन्ति विद्यादानबहिष्कृताः ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विद्यादानं\* प्रयच्छति ।

चतुर्थ्यानि राजेन्द्र एकसप्ततियावता ॥

तावद्विष्णुपुरे राजन् क्रोडते कालमक्षयम् ।

क्षितिच्चागत्य कालान्ते राजराजोभविष्यति ॥

तेतायुगे धर्मपरो जायते च पुनः पुनः ।

कुले महति जातश्च स राजा धार्मिको भवेत् ॥

हस्त्यश्वरथदानानां दाता भोक्ता विमत्सरी ।

भोक्ता पुरवराणाञ्च देशानाञ्चैव कोटिशः ॥

\* प्रवर्त्तत इति कुचितपाठः ।

रूपसौभाग्यसम्पन्नो दीर्घायुर्निरुजोभवेत् ।  
 पुत्रपौत्रैः परिवृतो जीवेच्च शरदां शतं ॥  
 लेखके दक्षिणान्दद्याद्वस्त्रालङ्कारभूषणम् ।  
 शुक्लञ्च वस्त्रयुग्मञ्च दद्याच्छास्त्रसमन्वितम् ॥  
 लिखापयित्वा तच्छास्त्रं देयङ्गुणवते सदा ।  
 तपस्विने धर्मरते परिपालनतत्परे ॥  
 वस्त्रयुग्मेन संवीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत् ।  
 वाचकं पूजयेच्चैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥  
 क्षम्यतामिति वक्तव्यं लेखकः सुसमाहितः ।  
 अनेनैव विधानेन विद्यादानात्फलं लभेत् ॥

वज्रिपुराणे ।

वाजपेयसहस्रस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ।  
 तत्फलं समवाप्नोति विद्यादानान्न संशयः ॥  
 तस्माद्देवालये नित्यं धर्मशास्त्रस्य वाञ्छते ।  
 पठनङ्कारयेद्राजन् यदीच्छेद्धर्ममात्मनः ॥  
 गो-भू-हिरण्य-वासांसि शयनान्या-सनानि च ।  
 प्रत्यहन्तेन दत्तानि भवन्ति नृपसत्तमः ॥  
 धर्माधर्मं न जानाति लोकोऽयं विद्यया विना ।  
 तस्मात्सदैव धर्मात्मन् विद्यादानरतोभवेत् ॥  
 वेदशास्त्रे रहस्यानां यदि नैव नृपोत्तम ।  
 ततोन्नतमोन्धस्य कावस्था जगती भवेत् ॥  
 ब्रह्मादयः सुराः सर्वे ऋषयो दग्धकिल्बिषाः ।

मनुष्याः पितरश्चैव विद्यादाने प्रतिष्ठिताः ॥  
 चतुर्थ्युगानां राजेन्द्र एकसप्ततिसंख्यया ।  
 वेदशास्त्रप्रदः स्वर्गे पूज्यते सुरसत्तमः ॥  
 स तु कालादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः ।  
 हस्त्य-श्व-रथ-यानाढ्यो दाता भोक्ता त्वमत्सरी ॥  
 रूपसौभाग्यसम्पन्नो दौर्घायुर्निरुजः सुखी ।  
 पुत्रपौत्रैर्वृतः कालान्मोक्षं याति न संशयः ॥  
 दानं विशेषफलदं जगतीहनान्य-  
 द्विद्यां विहाय वदनाजकृताधिवासं ।  
 गो-भू-हिरण्य-गज-वाजि-रथादिसर्वं  
 तद्यच्छतां किमिति भूप भवेन्न दत्तं ।

इति विद्यादानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-  
 धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविरचिते  
 चतुर्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे  
 अतिदानप्रकरणं ॥

## दानखण्डम् अष्टमोऽध्यायः ।

— १० —

अथ दशमहादानान्युच्यन्ते ।

तत्तादृग्विमलङ्गुलं निरवधिविद्यानवद्याकृतिः  
सम्पत्कम्पितदन्यमैन्यनिवहामाधुर्यधुर्यागिरः ।

इत्यन्योन्यजिगीषयेव गुरुतां यस्मिन् भजन्ते गुणा-  
स्तेनायं विधिरुच्यते दशमहादानेषु हेमाद्रिणा ॥

तत्संग्रहश्लोकास्तु कूर्मपुराणे ।

कनकञ्च तिला-नागा-दामो-रथ-मही-गृहाः ।

कन्या च कपिला धेनुर्महादानानि वै दश ॥

तत्र प्रथमनिर्दिष्टतया सुवर्णदानमेव तावदुच्यते ।

वक्रिपुराणे ।

राम उवाच ।

क्रीधादिदं मया कर्म कृतं मुनिवरोत्तमाः ।

कथं तस्मादिमुच्येह पापात् प्राणिवधादिकात् ॥

इत्युक्ताः धर्मतत्त्वज्ञाः पापानाम्पावनं परं ।

दानञ्चैह सुवर्णस्य ते तमृचुर्महर्षयः ॥

एतत्पवित्रमतुलं सम्भूतमिह सुश्रमः ।  
 यन्मोर्वीजं परन्तेजो अपत्यं जातवेदसः ॥  
 महस्रं कार्तिकेयस्य रुद्रशुक्रममुद्रवं ।  
 पवित्रत्वात् सुरैः सर्वैर्धार्यते मुकुटादिषु ॥  
 अस्मिन् देवताः सर्वाः सुवर्णं च तदात्मकम् ।  
 तस्मात्सुवर्णं ददता प्रीताः स्युः सर्वदेवताः ॥  
 दगपूर्व्वान् परांश्चैव नरकात्तारयन्ति ते ।  
 सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति प्रीवाचिदं ब्रह्मर्षिभिः ॥  
 सर्वान्कामान् प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति काञ्चनम् ।  
 मरीचिर्भगवान् पूषं पितामहमुतोऽब्रवीत् ॥  
 यः सुवर्णं नरो नित्यं ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।  
 स चिरं विरजाविहान् देववद्दिवि मोदते ॥  
 सर्वेषामेव दानाजामिकजन्मानुगं फलम् ।  
 हाटकचित्तिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥  
 विद्यादानं सुवर्णं तु यो लोभान्न प्रयच्छति ।  
 स सीदति च पापेन वेष्टितो नरकं व्रजेत् ॥  
 कृत्वापि सुमहत्पापं जातरूपं ददाति यः ।  
 स मद्यस्तेन पापेन मुच्यते नात्र मंगयः ॥  
 एतत् कृत्वा तु शुद्धायै सर्वं देहि भार्गव ।  
 इत्युक्तो मुनिभिस्तेस्तु रामाधर्मभृताम्बरः ॥  
 प्रादात्सुवर्णं विप्रेभ्यस्ततः पापादिमुच्यते ।  
 तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र द्विजेभ्यो देहि काञ्चनम् ॥  
 विश्वक्सेनं समुद्दिश्य यदीच्छेद्दाम्बतीं गतिं ।



## ब्रह्माण्डपुराणात् ।

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ।  
 पवित्राणां पवित्रञ्च दानानां नात्र संशयः ॥  
 हिमवद्दुहिता पूर्वमुमा नाम पतिव्रता ।  
 पूर्वजन्मनि सा चासीद्दक्षस्य तनया सती ॥  
 दक्षकोपाच्च तत्याज सती चात्मकलेवरं ।  
 हिमवद्दुहिता जज्ञे लोके गौरीति विद्युता ॥  
 दत्ता तेनापि सा तस्मै प्रणिपत्य पिनाकिने ।  
 विवाहं कारयामास विधिवद्दुहितुस्तदा ॥  
 वैवाहिकेन विधिना जुहावाग्निं पितामहः ।  
 होमञ्च कुर्वन्तस्तस्य विकारी मन्मथो भवेत् ॥  
 रूपं दृष्ट्वा तदा देव्या रेतस्कन्धं महात्मनः ।  
 पद्माञ्च मृदितं तेन बहुधा समपद्यते ॥  
 तत्प्रीत्यन्ना महात्मानो वालखिल्या मरीचयः ।  
 अग्नी च शेषमपतत् चाभूद्दानलप्रभं ॥  
 जाज्वल्यमानन्दीत्या च अग्निमध्यगतं तथा ।  
 शशंमिरे ततोदेवा दृष्ट्वा पुत्रं विभावसोः ॥  
 जगद्गुहः शिरसा चैव पुण्यत्वात्ते पुटान्विताः ।  
 ऊर्ध्वं देवगन्धर्वा मुनयश्च यतव्रताः ॥  
 विभूषणञ्च ते देवा दृष्ट्वा पूर्त्तं विभावसोः ।  
 देवपत्न्यास्तथा चैतद्भूषणेषु न्ययोजयन् ॥  
 एवं सुवर्णमुत्पन्नं आग्नेयं ब्राह्ममेव च ।

पवित्रमपरं लोके सुवर्णेन समं क्वचित् ॥  
न विद्यते द्रव्यजातं दानं वा भूषणं तथा ।

अत्राहवृहस्पतिः ।

गृहादिके पुण्यफलं भवन्मृत्यानुमारतः ।  
तस्मात्सर्वप्रदानानां हिरण्यमधिकं स्मृतं ॥  
यथा मान्तनिकादीनां हेम्ना सम्पद्यते क्रिया ।  
तथा न गृहदानेन हिरण्यमधिकं ततः ॥

वेदव्यासः । सर्वान् कामान् प्रयच्छन्ति ये प्रयच्छन्ति काञ्चनं ।

एतद्भि भगवानत्रिः पितामहसुतोऽब्रवीत् ॥

पवित्रमथवा पुण्यं पितृणामक्षयञ्च यत् ।

सुवर्णं मनुजन्द्रेण मनुना सम्प्रकीर्तितं ॥

मनुः । भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।

सम्बर्त्तः । हिरण्यदीमहावृद्धिं दीर्घमायुश्च विन्दति ।

विष्णुः । सुवर्णप्रदोऽग्निसालोक्यमाप्नोति ।

वृहस्पतिः ।

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं

भूवर्णवो सूर्यमुताथ गावः ।

लोकास्त्रयस्तेन भवन्ति दत्ता

यः काञ्चनङ्गाञ्च महोञ्च दद्यात् ॥

विश्वामित्रः ।

यत्रास्ते लिखिता गेहे स्वर्णदानस्य संस्तुतिः ।

रक्षो भूतपिशाचाद्यास्तत्र पश्यन्ति पार्थिव ॥

देवोपुराणे ।

ज्ञात्वा मानं सुवर्णादिः पात्रेषु प्रतिपादयेत् ।

कामानिष्टानवाप्नोति विधि-श्रद्धासमन्वितः ॥

वसिष्ठः । तस्मादग्निमुखाः सर्वदेवता इति शशुमः ।

ब्राह्मणी हि प्रसूतोऽग्निरग्नेरपि च काञ्चनं ॥

तस्माद्यै वै प्रयच्छन्ति हिरण्यं सर्वदैवतं ।

तस्य वै वेधसो लोका गच्छतः परमां गतिं ॥

स्वलोके राजराज्येन सोभिषिचेत भार्गव ।

सुवर्णमित्यनुवृत्तौ कालिकापुराणे ।

पूतमेतत्परं पुण्यं पुरा कायेषु नित्यशः ।

धारयन्ति यतः सर्वे मङ्गलार्थमरोगतः ॥

अतः पापानि सर्वाणि पात्रेभ्यो विधिपूर्वकम् ।

दत्तं पुनाति काले च देशे च हरसन्निधौ ॥

श्रूयतां येन रामेण विधिना प्राक् तपोधन ।

प्रदत्तं काञ्चनं पूर्वं रैचोक्तेन महात्मना ॥

सर्वहेममयं यज्ञमिष्ट्वा विप्राः प्रतर्पिताः ।

हेमैराभरणैः पूज्य दत्तं फलशतं तथा ॥

भूय एवं तुलान्तेन स्वयमारोप्य यत्नतः ।

हेमद्वितीयपार्श्वे च द्विजातिभ्यो ददौ स्वयं ॥

भूगोपि तन्मयान्येव सूर्यपात्राणि तेन च ।

प्रभाषादिषु तीर्थेषु ब्राह्मणेभ्यो ददौ तदा ॥  
 गवाञ्च दशवर्ष्मिणां विप्रं कृत्वा पृथक् पृथक् ।  
 सहस्रं च सहस्रं च सवत्सानां सुरूपिणां ॥  
 बद्धा कम्बलमाक्रम्य पलान्येकादशैव तु ।  
 एकैकस्य पृथक्तेन दत्तं हेमन्तु तेन वै ॥  
 कारयित्वा सपद्मानि जातरूपमयानि च ।  
 भ्रमता तीर्थलिङ्गानां मूर्ध्नि दत्तानि तेन वै ॥  
 तन्मयाभरणैः पूज्यं शतशोऽथ सहस्रशः ।  
 सम्पूज्यं तर्पिता विप्रा भूयस्तेनैव मानद ॥  
 पद्माद्यैव पताकाश्च मालाद्यैव विशेषतः ।  
 रुद्रादीनां नियुक्ताश्च कारयित्वा गृहे गृहे ॥  
 उपवीतञ्च यष्टिश्च मेखला-पादुके तथा ।  
 लेखनीं मषीपात्रञ्च दत्त्वा विप्रेषु तेन वै ॥  
 मानसोपस्करङ्कृतस्त्रमासनन्यातन्मयम् ।  
 द्विजेभ्यश्चैव दत्तानि कारयित्वा सहस्रशः ॥  
 ग्रहाणां देवतानाञ्च कृत्वा रूपाणि भूरिशः ।  
 न्यस्तानि विधिवत्पूज्यं द्विजानाञ्चैव मन्दिरे ॥  
 काञ्चनौ रोदसीं पृष्ट्वा नगोदधिसमन्वितां ।  
 पुण्यौषधिवनैर्युक्तां ददौ विप्रेभ्य एव सः ॥  
 एवमाद्यैरनेकैश्च प्रकारैः कनकं पुरा ।  
 पापापनुत्तये दत्तं पात्रमासाद्य भूयशः ॥  
 श्रीमहाभारते पिण्डदानपरितुष्टस्वप्नदृष्टस्वपितृदत्तोपदेश-

कथने युधिष्ठिरं प्रति भौमवाक्यानि ।  
 वेदोपनिषदे चैव सर्वकर्मसु दक्षिणा ।  
 सर्वक्रतुषु चोद्दिश्य भूमिर्गावोद्यकाञ्चनम् ॥  
 ततःश्रुतिस्तु परमा सुवर्णं दक्षिणेति वै ॥  
 तदिदं सम्यगारब्धं त्वयाद्य भरतर्षभ ।  
 किन्तु भूमेर्गवाञ्चार्थं सुवर्णन्दीयतामिति ॥  
 एवं वयञ्च धर्मज्ञ सर्वेचास्मत्पितःमहाः ।  
 तारिता वै तरिष्यन्ति पावनं परमं हि तत् ॥  
 दश पूर्वान् दशैवान्यांस्तथातान् तारयन्ति ते ।  
 सुवर्णं ये प्रयच्छन्तीत्येवं मां पितरोऽब्रुवन् ॥

रामं प्रति वसिष्ठवाक्यानि ।

सर्वरत्नानि निर्मथ्य तेजोराशिसमन्वितम् ।  
 सुवर्णमेभ्योविप्रेन्द्र रत्नं परममुत्तमं ॥  
 एतस्मात् कारणाद्देवा गन्धर्वीरगराक्षसाः ।  
 मनुष्याश्च पिशाचाश्च प्रयता धारयन्ति तत् ॥  
 मुकुटैरङ्गदयुतैरलङ्कारैः पृथग्विधैः ।  
 सुवर्णं विभृतेरत्र विराजन्ते भृगूत्तम ॥  
 तस्मात्सर्वपवित्रेभ्यः पवित्रं परमं स्मृतम् ।  
 पृथिवीगाञ्च दत्त्वाऽहं तथान्यदपि किञ्चन ॥  
 विशिष्यते सुवर्णस्य दानं परमकं विभो ।  
 अक्षयं पावनञ्चैव सुवर्णमनुराजते ॥  
 प्रयच्छ द्विजमुख्येभ्यः पावनं ह्येतदुत्तमं ।

सुवर्णमेव सर्वत्र दक्षिणासु विधीयते ॥  
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति सर्वदास्ते भवन्त्युत ।

नन्दिपुराणे ।

कृष्णालाः पञ्चमाषास्तु माषैः षोडशभिः स्मृतम् ।  
सुवर्णमेकान्तदानादाता स्वर्गमवाप्नुयात् ॥  
तथा । तस्मात् स सर्वथा पात्रे दद्यात् कनकदक्षिणां ।  
अपात्रे पातयेद्दत्तं सुवर्णं नरकार्णवे ॥  
प्रमादतस्तु तन्नष्टं तावन्मात्रं नियोजयेत् ।  
अन्यथा स्तेययुक्तः स्याद्देस्मादत्ते विनाशिनि ॥  
दानार्थमेव तत् सृष्टं ह्यक्लिष्टं स्वर्गसाधनं ॥  
दानात्परं सुवर्णस्य विधिरेव न विद्यते ।  
सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा ॥  
एतत्पवित्रं परममेतत् स्वस्त्ययनं महत् ।  
दशपूर्वान् परान्वंशानात्मानञ्च विशांपति ॥  
अपि पापशतं कृत्वा दत्त्वा विप्रेषु तारयेत् ।  
सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति नराः शुद्धेन चेतसा ।  
देवतास्तेन सन्देहः समस्ता इति नः श्रुतं ॥  
अग्निर्हि देवताः सर्वाः सुवर्णं च हुताशनं ।  
तस्मात्सुवर्णं ददता दत्ताः स्युःसर्वदेवताः ॥  
अग्न्यभावे च कुर्वन्ति वज्रिस्थानेषु काञ्चनं ।  
सर्ववेदःप्रमाणज्ञाः श्रुतिशास्त्रनिदर्शनात् ॥  
ये त्वेनं ज्वालयित्वाग्निमादित्योदयनं प्रति ।

द्रव्यैर्व्रतमुद्दिश्य सर्वकामानवाप्नुयुः ॥  
 व्रतमुद्दिश्य, व्रतमनुमन्वायेत्यर्थः ।  
 सुवर्णदः स्वर्गलोके कामानिष्टान् समश्नुते ।  
 विराजोवरसम्बितः परियाति यतस्ततः ॥  
 विमानेनार्कवर्णेन भास्वरेण विराजितः ।  
 अप्सरोगणकीर्णेन भास्वता स्वेन तेजसा ॥  
 हंसवह्निगुक्तेन विमानेन नरोत्तम ।  
 दिव्यगन्धवहः स्वर्गे परिगच्छन्नितस्ततः ।  
 तस्मात् स्वशक्त्या दातव्यं काञ्चनं मानवैर्भुवि ॥  
 नातः परतरं लोके सद्यः पापविमोचनं ।  
 सुवर्णस्य तु शुद्धस्य स्वर्णं यस्तु प्रयच्छति ॥  
 ब्रह्मन्महत्सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।

स्कन्दपुराणे ।

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥  
 सुवर्णद्वितयं दत्त्वा अक्षयां गतिमाप्नुयात् ।  
 दत्त्वा सुवर्णस्य शतं द्विजेभ्यः अद्वयान्वितः ॥  
 ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते ।  
 प्रथमं सुवर्णशब्देन हिरण्यमभिधीयते  
 अपरेण तु तस्यैव शुद्धवर्णत्वं प्रतिपाद्यते  
 परिमाणविशेषः तृतीय इति ।

अत्र चायं दानवाक्यप्रयोगः ।

ओं अद्य अमुकस्मिन्देशे अमुकस्मिन् काले अमुकसगोत्राय  
अमुकशर्म्माणे ब्राह्मणाय अमुकसगोत्रः अमुकशर्म्मा इदं सुवर्णं  
अग्निदेवत्यं अमुकाय तुभ्यमहं संप्रददे नमम । ओं अमुकस-  
गोत्रायेत्यादि एतत् सुवर्णदानप्रतिष्ठार्थं इदं सुवर्णं दक्षिणान्तुभ्य  
महं संप्रददे न ममेति ।

सुवर्णदाने रजतं दक्षिणेति केचित् ।

अथञ्च दानमन्तः ।

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेम वीजं विभावसीः ।

अनन्त पुण्य फलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

कर्मपुराणे ।

पलैकं द्विगुणं वापि त्रिगुणं शक्त्यनुक्रमात् ।

कनकं स्यात् सुवर्णेन द्वाभ्यां त्रिभिः सदक्षिणं ॥

पलादधो वा तत् कुर्याद्दक्षिणा स्याद्यथारुचि ।

वित्ताधिक्यात्पलाधिक्यमिति न्यायनिदर्शनात् ॥

इति सुवर्णदानविधिः ।

आदित्यपुराणे ।

आदित्यादयसम्प्राप्ते विधिमन्त्रपुरस्कृतं ।

ददाति काञ्चनं यो वै दुःस्वप्नं प्रतिहन्ति सः ॥

ददात्यदितमात्रे यस्तस्य पाप्मा विलीयते ।

मध्याह्ने ददते रुक्मं हन्ति पापमनागतं ॥



ददाति पश्चिमां सन्धां यः सुवर्णं धृतव्रतः ।  
 ब्रह्म-वायुग्नि-सोमानां सालोक्यमुपयाति सः ॥  
 सुवर्णमक्षयान्दत्त्वा लोकांश्चाप्नोति पुष्कलान् ।  
 यस्तु संज्वलयित्वाग्निमादित्यादयनं प्रति ॥  
 दद्याद्देवैर्व्रतमुद्दिश्य सर्वान् कामान् समश्नुते ।  
 यन्देवमर्चयेत्तेन यस्य चैव प्रयच्छति ॥  
 तस्य लोके निवसति नित्यञ्चैव ददाति यः ।

व्रतमुद्दिश्य व्रतमनुसन्धायेत्यर्थः ॥

सुवर्णदः स्वर्गलोके कामानिष्टान् समश्नुते ।  
 विराजोवरमंवीतः परियाति यतस्ततः ॥  
 विमानेनार्कवर्णेन भास्करेण विराजितः ।  
 अप्सरीगणकीर्णेन भास्वता स्वेन तेजसा ॥  
 हंसवर्हणयुक्तेन कामगेन नरोत्तमः ।  
 दिव्यगन्धवहः स्वर्गं परिगच्छन्नितस्ततः ॥  
 तस्मात्स्वशक्त्यादातव्यं काञ्चनं मानवैर्भुवि ।  
 नातः परतरं लोके सद्यः पापविमोचनं ॥  
 सुवर्णस्य तु शुद्धस्य सुवर्णं यः प्रयच्छति ।  
 ब्रह्मन्यद्महत्स्वाणि स्वर्गलोके महीयते ॥

इति नित्यसुवर्णदानविधिः ।

वायुपुराणे ।

हेमदानमथो वक्ष्ये यद्भूतं रेतसा मम ।

अग्निगर्भं पवित्रञ्च आयुरारोग्यवर्द्धनं ॥  
 निष्कमात्रं पवित्रं वा तदर्द्धं पादमेव च ।  
 तण्डुलाटकसम्पूर्णं पात्रे पात्रान्तरे न्यसेत् ॥  
 अर्द्धाटकतिलैः पूर्णं तस्योपरिष्ठतान्वितं ।  
 तिलार्द्धमानतः पात्रं घृतेतद्धेम विन्यसेत् ॥  
 गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ तत्रितयं न्यसेत् ।  
 विप्रञ्च तद्विरणञ्च शम्भुं स्मृत्वा प्रपूजयेत् ॥  
 आत्मच्छायां हिरण्यञ्च तिलतण्डुलमेव च ।  
 विलोक्य दद्याद्विप्राय शिवः सम्प्रोयतामिति ।  
 दद्यादनेन विधिना नित्यं मास्ययनेपि वा ।  
 सम्वत्सरेचामावाश्यां मत्सायुज्यं परं यतः ॥  
 आयुरारोग्यसम्प्रोतिस्तस्मिन् काले भविष्यति ।  
 एवं सुवर्णदानेन नित्यं दद्यादनन्तकं ॥

इति हेमदानविधिः ।

कालिकापुराणे ।

अथायासविनिर्मुक्तो रुद्रोमाकलितं पदं ।  
 अनेन विधिना देही गदतोयाति मे शृणु ॥  
 गुञ्जान् गुञ्जार्द्धमात्रं वा नियतः प्रतिवासरं ।  
 कनकत्रयस्य लिङ्गे तु व्रजेत्तत्पदमुत्तमं ॥  
 सर्व्वसस्यवतीं दद्याद्देवादसौ वा जलान्वितां ।  
 रोहिणीं योहरायैव गच्छेत्सोऽपि पदञ्च तत् ॥  
 महादानानि च तथा पात्रयुक्तान्यसंग्रहः ।

दत्त्वा भोगांश्च मोक्षञ्च प्रयात्येव न संशयः ॥

अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं

भूर्वर्णवी सूर्यसुताश्च गावः ।

लोकत्रयन्तेन भवेत् प्रदत्तं

यः काञ्चनं गाञ्च महौञ्च दद्यात् ।

इति शिवसुवर्णदान विधिः ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

ऋषयःसत्रमासीना नैमिषारण्यवासिनः ।

उग्रश्रवसमासीनमपृच्छञ्छ्वीनकादयः ॥

तत्तोऽस्माभिर्युतानीह धर्माणि विविधानि च ।

वयमिच्छामहे भूयः श्रोतुन्दानमनुत्तमं ।

इत्येवमुक्तीमुनिभिः सूतपुत्रोमहामतिः ॥

उवाच दानमाहात्म्यं शतमानमिहाद्भुतं ।

नारदेन पुरापृष्टः परं मेष्टी चतुर्मुखः ॥

यदाह दानं तत्सर्वं प्रवक्ष्यामि द्विजोत्तमाः ।

ब्रह्मा उवाच ।

शृणुष्ववहितो दानं ब्रवीमि तव नारद ।

शतमानमिति प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनं ॥

आयुष्यं श्रीकरं पुण्यं आरोग्यं सन्ततिप्रदं ।

भुक्तिमुक्तिप्रदं सर्वस्वसर्वभाङ्गत्पकारणम् ॥

पुण्यकालेषु सर्वेषु चन्द्रमूर्यग्रहादिषु ।

नित्यं वा कारयेद्दानं जन्मर्क्षेषु विशेषतः ॥

पुण्यदेशेषु सर्वेषु गृहे देवालयादिषु ।

यत्र साधनसम्पत्तिस्तत्रदानं समाचरेत् ॥

गन्धेन भूमिं शकृता जलेन

आलिख्य मध्ये सिततन्दलेद्य ।

सरोरुहं केसरभूषणाढं

सकर्णिकं चाष्टदलं विलेख्य ॥

तस्मिन् हिरण्यं शतमानमात्रं

निधाय तस्योपरि तं विचिन्त्य ।

ब्रह्माण्मौशङ्कमलासनस्य-

माराध्य गन्धादिभिरादरेण ॥

विप्रं तथा वेदविदं विचिन्त्य

विरिञ्चिबुद्ध्या तु समर्चयित्वा ।

दद्यात् सुवर्णं शतमानमस्मै

सम्प्राप्यतामात्मभूरित्युदीर्य ॥

योऽसौदानं शतमानं हिरण्यं

दद्यादायुः सर्वमेवैति चोक्तं ।

अतः कुर्यान्नारदैतत्सकृद्वा

नित्यं मासं हायनं शक्तितावा ॥

जाम्बूनदं जातरूपं सुवर्णं काञ्चनं तथा ।

हिरण्यञ्चेति शक्त्या तु क्रमादेतानि नारद ।

इति शतमानदानविधिः ।

अथाह वीडाशनः ।

गतमानसक्षयेण सुवर्णेन मितञ्च यत् ।  
 तत्कांक्ष्ये निक्षिपेत्सम्यक् तिष्ठाटकसमन्विते ॥  
 कांक्ष्यपात्रपरीमाणं पलानामष्टकं विदुः ।  
 तिलानामृपरि स्थाप्य अक्षताः शुभ्रशालयः ॥  
 आवाहयित्वा देविशं द्युमणिं भानुमन्वयम् ।  
 मन्त्रमाल्यैः सुरभभिर्भो रक्तमाल्यैर्विशेषतः ॥  
 उल्लङ्घ्यै षोडशभि रर्चयेत्भानुमन्वयम् ।  
 अथाक्षरेण मन्त्रेण सावित्रेणातिभक्तितः ॥  
 दद्यात्सावित्रालिङ्गेन मन्त्रेण प्रणिपत्य तु ।  
 ब्राह्मणाय ततः पुत्रां कुर्याद्ब्रह्मन्वाक्षतैः शुभैः ॥  
 चन्द्रेण त्रिविधैः सम्यक् चकुटम्बाविरोधतः ।  
 तस्मै दान्ताय सत्कृत्य स्वाचारायात्मवेदिने ॥  
 प्राञ्जल्यैः स्वयंजोदयैः प्रयतमानसः ।  
 सन्निपत्यैव सज्ज्यां पापव्याधिविमुक्तये ॥  
 पद्मपात्रैः पद्मकरैः समाश्रय्यवाहनैः ।  
 गतमानसेन दत्तेन दृष्टः सर्वजगद्गुरुः ॥  
 इह जन्मनि यत्पापं अन्यजन्मनि यत् कृतम् ।  
 तत् प्रक्षयापत्ययाभ्यां तत्तत्रैव क्षपयत्वमौ ॥

दानमन्त्रः ।

ततः क्षमाप्य तं विप्रं प्रणिपत्य विमजयेत् ।  
 यथा पश्येत्सोभवति तथासर्वं प्रक्षययेत् ॥

इति पापरीगहरशतमानदानविधिः ।

वर्द्धिपुराणात् ।

इन्द्र उवाच ।

भगवन् सर्वमाख्यातं वृषदानक्रियाफलम् ।  
 वृच्छास्यन्यदहं पुण्यं सदाक्षयफलप्रदम् ॥  
 दानं त्रैलोक्यनाथस्य हरप्रीतिविवर्द्धनम् ।  
 तद्वदस्व मुने येन दत्तेनेशः प्रतुष्यति ॥  
 दिक्पालात्मा च सन्नित्यसदानन्दमयो हरिः ।  
 तत् कथं भगवन् भक्तो भवेद्वैममयो हरिः ॥  
 केन दानेन तपसा व्रतेन यज्ञेन वा ॥  
 मुच्यते पातकाह्वोरादाजन्ममरणान्तिकात् ।  
 कथं भवेन्नरः श्रीमान् धीमान् पुत्रो प्रतापवान् ॥  
 प्रमितायुस्तथारोग्यमकलैश्वर्यभाक् सुधीः ।  
 कस्य जन्मायुतान्तेऽपि दानम्यान्तीन विद्यते ॥  
 केन तत्पदमाप्नोति विपणैर्यत्पदमं पुमान् ।  
 श्रोतुमर्हसि वै ब्रह्मन् वैश्वं सत्यमे यदि ॥  
 तत् प्रमोदाखिलं दानन्तत्त्वसाचक्षुः के गुरो ।

ब्रह्मा उवाच ।

आनन्दा ब्रह्मणोरुपं नित्यं विदेपु गोचरे ।  
 सर्वत्रासोविभुः साक्षादानन्देन व्यवस्थितः ॥  
 तस्माद्दानमिदं पुण्यं देहानन्दनिधिं परम् ।

विप्रायाच्युतरूपाय बर्हथानन्दमुत्तमम् ।

दानेनानेन ते शक्र धातुत्रययुतेन च ॥

इन्द्र उवाच ।

विधानं ब्रूहि मे ब्रह्मन् दानस्यास्य महानिधेः ।

यथा देयं विंशपेण विष्णोरानन्दकारकम् ॥

ब्रह्मोवाच ।

पुण्यान्तिथिं प्राप्य तु पौर्णमास्यां

तथोपरागे शशिसूर्ययोर्वा ।

चतुर्यगादिष्वशनद्वये वा

प्रबोधने प्रस्वपनेऽथ विष्णोः ॥

कुर्यादथौदुस्वरमेव कुम्भं

हिरण्यभारेण यथात्मशक्त्या ।

तथाविधानञ्च सुराजतं स्या-

द्विरण्यभारेणनतु पूरयेत्तत् ॥

तद्वैतोर्द्धेन तद्वैतोवा

स्वशक्तितः स्तर्णपलेः शतेन ।

तद्वैमर्द्धेन तु वित्तशक्त्या

पलत्रयाद्वैमर्द्धमपि प्रकुर्यात् ॥

तत्ताम्रभागङ्गे कनकं निधाय

सवज्जनीलोत्पलपद्मरागं ।

समुक्तवैदूर्यमविद्रुमञ्च

तद्राजतं पात्रमधोमुखं स्यात् ॥

एवन्तु तं भद्रनिधिं सुविद्वान्  
 कृत्वासने प्रावरणीपयुक्ते ।  
 कुशीत्तरे दर्पणचामरादेः  
 सपादुकोपानहकचयुक्तं ॥  
 तत्क्षौमवस्त्रोत्तमयुग्मयुक्तं  
 संपूजयेन्मन्त्रवरैरथेतैः ।  
 आदौ तु पञ्चासृतमाद्यत्रिण्यं  
 संस्त्राप्य संसारहरं समर्थं ।  
 तथेश्वरं पावकमेव हुत्वा  
 आमन्त्रयेद्भद्रनिधिं ततस्तु ॥  
 श्रीखण्डकर्पूरमकुङ्कुमिन  
 पञ्चाक्षरं नाम त्रियः प्रलिख्य ।  
 नमस्तथोद्धारयुतं च पात्रे  
 तद्राजते प्येवमथार्चयेत् ॥  
 त्वया समस्तामरसिद्धयन्त्र  
 विद्याधरेन्द्रोरगकिंनरेन्द्रैः ।  
 गन्धर्व्वविद्याधरदानवेन्द्रै  
 र्युतं वृतं विश्वमिदं नमस्ते ॥  
 समस्तसंसारकरी त्वमेव  
 विभोः सदानन्दमयी च माया ।  
 समस्तकल्याणनिधिः समाधिः ।  
 हरिप्रिये भद्रनिधिर्नमस्ते ।

एवं पूज्य विधानेन ततो विप्रमथार्चयेत् ।



किरीटाङ्गदनिष्कायाकुण्डलाङ्गुलिभूषणैः ॥  
 अलङ्कृत्य हरिं यद्वत्पीताम्बरधरं ततः ।  
 पूजयेद्युतं ध्यात्वा मन्त्रेणानेन भक्तिमान् ॥  
 भूदेवोमोत्यतो नित्यं नित्यानन्दमयो हरे ।  
 हर मे दुष्कृतं क्षणं क्षपाकर नमस्तु ते ॥  
 भूदेव भगवद्वन्द्वे भवभङ्गकरेश्वर ।  
 भवभूतिकरजिष्णो प्रभविष्णुनेमोऽस्तु ते ॥  
 एव पूज्य हृदि ध्यात्वा तं दिवं विष्णुरूपिणं ।  
 ततोभद्रनिधिं दद्यात्तन्त्रेणानेन मानवः ॥  
 स्वर्गोच्चारणेनादौ वपुर्नाम महात्मनः ।  
 यत्रदर्भतिलैः सार्द्धमुदकं संपरित्यजित् ।  
 पितृमन्तारणार्थाय नित्यानन्दविबुधये ।  
 सञ्जीवौषधिनागाय विष्णोर्दीनंमया कृतं ।  
 तदनेन सरत्नेन धातुतययुतेन च ।  
 मर्त्तोमास्त्रयुक्तेन सादृशैर्पादुकेन च ।  
 आमनेन सकृच्चेण चामरीपानहेन च ।  
 सदानन्दविधानेन प्रौढतां विष्णुश्रीश्वरः ।  
 एवमुच्चार्य तन्त्रद्व्याहिजाय हरिरूपिणि ।  
 गोष्ठ्येन विधिना दद्याद्विमसंख्या न कीर्त्तयेत् ॥

प्रकीर्त्तिते कीर्त्तिगुणायुतं फलं

प्रशंसिते कल्पगणेन संगतः ।

इतादमान्याय न कीर्त्तयेत् सुधी

निधान मथ्य निर्हितं च यदस् ॥

एवंकृते स्यान्मनुजः कृतात्मा  
तपेनचा स्यात्तारणं कदाचित् ।  
प्रयाति विष्णुः पदमव्ययं तत्  
शिवात्मकानन्दमयं समंख्या ॥  
इति भद्रनिधिदानविधिः ।

तस्मिन्नेव पुराणे ।

मरुड उवाच ।

प्रभो प्रसीदाच्युत विश्वभावन  
प्रतापनिख्योसि सुरारितापन ।  
प्रयच्छ मे प्रश्नमहं करोमि यत्  
सुकुन्द तस्योत्तरमुत्तमं विभो ॥  
कथं जगन्नाथ जने निरन्तरं  
महोत्सवीस्या द्विजयो सुखी मदा ।  
सुसंपदानन्दपदोजरीमरो  
निरामयोयेन शुभेन तं दद ॥  
विभुस्तथाकर्ण्य वचां गरुत्मतः  
प्रसन्नरूपः प्रतिवाक्यमाह तं ।  
सुपुष्पयत् प्रष्टुमिदं त्वया कृतं  
शृणुस्व तत्तमाधु न दानतः परं ।  
इहाप्यमुष्मिन्नपि संभृतोनिधिः  
क्वचिन्न केनापि कदाचिदाप्यते ॥  
युगायुतैः कल्पशतायुतैरपि

प्रभुञ्जतोदातुरहीन हीयते ।  
 गतिञ्च यां यामपि याति दाता  
 योनिं तथासुत्र तथैह वापि ॥  
 तान्तामनुप्रेति तु दत्तमन्ते  
 सुयज्ञया यद्विजपुङ्गवेभ्यः ।  
 तस्मान्निधानं शृणु सर्व्वदानतः  
 प्रभावदं नित्यफलप्रदञ्च ॥  
 ऐश्वर्य्यदं मीक्षदमक्षयं य  
 दातु स्योभूतमनेकरत्नं ।

कारयेत्कार्तिकान्ते वा माघ्यां वा माघवेऽपि वा ।  
 अथने विषुवे वापि मन्वादिषु युगादिषु ।  
 चन्द्रसूर्यापरागे वा स्वशक्त्योदुस्वरङ्गटम् ॥  
 पिधानं राजतं तद्वत्मध्ये सौवर्णमुत्सृजेत् ।  
 नानारत्नवरापूर्णे नानानानाभिरावृतं ॥  
 हेमराजतताम्रोत्थैःसवित्तैरपि पूरितम् ।  
 नानानानगतामूर्द्धमयुतादपि शक्तितः ॥

एकीमानाशब्दाः बहुप्रकारवचनः

द्वितीयं ननिति महाराष्ट्रभाषायां नाणकं-  
 ततश्च नानारूपनाणकैः पूरयेदित्यर्थः ।  
 शक्त्याफलमहस्त्रेण गतेनाईगतेन वा ।  
 तद्वद्वाङ्मने वा राजन् पलाङ्गो न कारयेत् ।  
 कार्य्यन्तद्विजितं हेम्ना वित्तशायमकुर्व्वता ।  
 राजतेनाय तस्मिन् रत्नैर्वावस्वसंवृतं ।

धान्यन्नानोपरि स्थाप्यः कल्पोक्तैरर्चयेत् पदैः ।  
 पौराणिकं पुरस्कृत्य स्वयं वा तदनुज्ञया ॥  
 कृतक्रियोऽग्निमान्निधौ विष्णोरीशस्य वाण्डज ।  
 इमं समुच्चरेत्सन्त्वं कुशपाणिः प्रसन्नधीः ॥  
 श्रीं नमः सर्वदानन्दसर्वसम्पत्तिवर्द्धन ।  
 वर्द्धयास्मान् समृद्धेह आयुषा यशसा यिया ॥  
 नमस्ते ऽनन्तसन्तान सदानन्द सदोदय ।  
 सदोदितं कुश्वेह सन्तत्या मां धनायुषा ॥

नमो नमः पद्मनिधे धनेश  
 शतक्रतो गङ्गर नैर्ऋतेश ।  
 शमन्नयास्मद्दुरितं दुरिष्ट-  
 मभीष्टदो मे भव शङ्करेश ॥  
 नमो नमः पाशधराप्रमेय  
 नमोस्तु, रामाय भुनामधेय ।  
 नमः सखीराय हुताग्नाय  
 नमोस्त्वनन्ताय कजासनाय ॥  
 नमः सुरश्रेष्ठ हरोग्वराय  
 नमोऽस्तु साविति गिवे त्रिवेति ।  
 सरस्वति प्रीतिरतिक्रियेति  
 सतुष्टिः पुष्टिस्मृति-शान्ति-कीर्त्त ॥  
 सर्वाभराणां निधिरप्रमेय  
 त्वमेव पितृ-मुनि-रीश्वराणां ।

\* नानाधान्योपरिस्थाप्यइति क्वचित्पाठः ।

आधारभूतोसि चराचरस्य  
 विश्वस्य यस्मात् प्रणतोऽह्यतस्त्वां ॥  
 नमोस्तु सौन्दर्यनिधिः सुरेन्द्रः  
 नमोऽस्तु गान्धीर्यनिधिः समुद्र ।  
 नमो नमः कान्तिनिधान इन्दो-  
 स्तेजोनिधि त्वां प्रणतोऽस्मि भानो ॥

नमः पद्माय भद्राय नमस्ते स्वस्तिकाय च ।

नमः शंखाय मणये मणिभद्राय ते नमः ॥  
 नमो नन्दिविवर्त्ताय नन्दावर्त्ताय वर्त्तिने ।  
 नमः कटककर्णाय कण्ठावर्त्ताय ते नमः ॥  
 नमो नन्दप्रतिष्ठाय नमो हेमप्रियाय च ।  
 नमो हिरण्यगर्भाय नित्यानन्दाय ते नमः ॥  
 एवं पूज्य विधानेन नित्यानन्दनिधिं सुधीः ।  
 समिद्धार्थकदूर्वाभिः सकृगा-ज्जत-चन्दनैः ॥  
 तिललाजैः समं पुण्यं भूमावृदकमृत्सृजेत् ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवत्कल्पोक्तेन खगेश्वर ॥  
 अद्यैह पुण्यकालेऽस्मिन् विज देवा-ग्निसन्निधौ ।  
 गगःश्रेष्ठोऽभिष्टुङ्गार्थं मातापितृस्तथात्मनः ॥  
 पुराण-न्याय-सौमांसा-वेद-वादिभ्य एव च ।  
 नमो विद्याविधायिभ्यो नानागोत्रेभ्य एव च ॥  
 विप्रेभ्योऽनिकगर्भेभ्यो नित्यानन्दकरं परम् ।

अहं सम्प्रददे तेभ्यो नानानानावृतेन च ॥  
 सस्वर्णरौप्यताम्रेण सरत्नेन सवाससा ।  
 सोपस्क्रेण पुरुषो ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकः ॥  
 प्रीयतां निधिदानेन श्रीयन्नपुरुषोऽच्युतः ।  
 एवमुत्सृज्य उदकं विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥  
 संविभज्य यथाशास्त्रं न कञ्चिदपमानयेत् ।  
 महादानमिदं यस्मात्तस्मादेकोपि नार्हति ॥  
 अथान्ये केचिदिच्छन्ति समस्तविधिपारगाः ।  
 यज्ञदानव्रतानां वा सोऽप्येकोऽर्हति तद्गृहे ॥  
 एवं यः कुरुते दानं नित्यानन्दनिधेः परम् ।  
 एवं सम्प्रदमाप्नोति स संसारे निरन्तरम् ॥  
 दानानामप्यशेषाणामनन्तफलमुच्यते ।  
 नित्यानन्दविधानस्य प्रदानादपवर्गभाक् ॥  
 यथैवं सकृदत्रैव सदानन्दविधानकृत् ।  
 स करोत्यसकृद्राज्यमक्षये विधसः पदे ॥  
 यथा कथञ्चिदत्रेति स्वकर्मगुणमञ्जयः\* ।  
 तदाखिलमहोराज्यं प्राप्नोति व्रतमञ्जके ॥  
 पुनः स्वधर्मसंयुक्तो राज्यं कृत्वा सहानुगः ।  
 प्राप्नोति पदमैशानं नित्यमक्षयमव्ययं ॥  
 तस्मादेत्य पुनाराज्यं लभेत् वैद्याधरे पदे ।  
 आकल्पमप्यनल्पयोः श्रानिधानप्रदानतः ॥

पुनः प्रयाति कल्पान्ते वैष्णवं पदमव्ययं ।  
 गतापि योगिनो यत्र प्राप्नुवन्ति पुनः परं ॥  
 एतद्भद्रनिधानाख्यमाख्यातं वेनतेय ते ।  
 मया प्रोत्वा प्रयत्नेन\* किमन्यत् कथयामि ते ॥  
 नित्यानन्द निधिर्दानान्नित्यानन्दोऽभिजायते ।  
 यः कुर्यात् सोऽर्च्यतायुः स्याद्दीर्घसन्तानमाप्नुयात् ॥  
 यस्तु संकोत्तयेद्भक्त्या यः शृणोति समाहितः ।  
 मदीर्घमायुराप्नोति मुच्यते सर्व्वकिल्बिषैः ॥

इमं खगेन्द्र गदितं दयितं महतां  
 तव मयाइ ततमं शमनं त्वघमां ।  
 सुलभमवाप्य काञ्चनमिहाचरते  
 पदमुपैति वैष्णवमहो सुलभं ॥

इत्यनन्दनिधिदानविधिः ।

अथ स्कन्दपुराणे ।

यः प्रयच्छति विप्राय रजतं वापि निर्मलं ।  
 स विधूयाशु पापानि स्वर्गलोके महोयते ।  
 रूपवान् सुभगः शोभानिह लोके च जायते ॥

मत्स्यपुराणे ।

पितृणां राजतं पात्रं अथवा रजतान्वितं ।  
 शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत्पितृवज्जभं ।

\* प्रमदनेति कचित् प्रसक्तः अने ।

अमङ्गलञ्च यज्ञेषु देवकार्येषु वर्जितं ।  
रजतं दक्षिणामाहुः पितृकार्येषु सर्वदा ॥

इतिरजतदानविधिः ।

अथाश्वदानविधिः ।

तत्र स्कन्दपुराणे ।

अश्वं दस्तु प्रयच्छेद् वै हेमचिद्रं मुलक्षणं ।  
स तेन कर्मणा देवि गान्धर्वं लोकमश्नुते ।  
महाभारते । सर्वोपकरणपितं युवानं दीपवर्जितं ।  
योऽश्वं ददाति विप्राय स्वर्गलोके महीयते ॥  
तथा । यावन्ति रोमाणि ह्ये भवन्ति हि नरेश्वर ।  
तावतो वाजिदा लोकान् प्राप्नुवन्तीह पुष्कलान् ।

कालिका पुराणे ।

अश्वं वा यदि वा युग्मं शोभने वाद्य पादुके ।  
ददाति यः प्रदानं वै ब्राह्मणेभ्यः सुसंयतः ॥  
तस्य दिव्यानि दानानि रथा ध्वजपताकिनः ।  
दुष्टः पत्न्या न चैवेह भविष्यति कदाचन ॥

कर्मपुराणे ।

अश्वं तन्मत्तमथवा कनीयोमध्यमोत्तमं ।  
दद्याद्वित्तानुसारेण तारागणपरिच्छदं ॥  
तारागण इति तारानुकार्यश्वालङ्कारविशेषः ।  
शकैः पञ्चपलैरौप्यैः सुवर्णालङ्कृतं क्रमात् ।



सदक्षिणं सवस्त्रञ्च ब्राह्मणायाग्निहोत्रिणे ।  
स्वर्गदः प्राप्नुपात् स्वर्गमश्वमालोक्यमश्वदः ।  
यथा देगश्च कालश्च सर्वदानेषु शस्यते ॥

दानमन्त्रस्तु, मत्स्यपुराणे ।

उच्चैःश्रवास्त्वमश्वानां राज्ञां विजयकारकः ।  
सूर्यवाहं नमस्तुभ्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥  
कनीयस्त्वादितैर्विध्यं सुवर्णदानवदवधेयं ।

इत्यश्वदानं ।

गारुड पुराणे ।

ब्रह्महत्यादिपापानि उपपापानि यानि च ।  
तानि सर्वाणि नश्यन्ति हयमेधेन निश्चितं ॥  
न कलौ क्रियते यज्ञोह्यश्वमेधोऽपि गोमयः ।  
नरमेधोऽक्षता नारौ देवरात् पञ्चमन्ततिः ।  
गर्हितं ममकं ह्येतत् राजसूयं कमण्डलुः ॥  
अश्वमेधमखं यस्तु कलौ कर्तुमनौश्वरः ।  
अश्वदानन्तु तेनेह कर्त्तव्यं विधिपूर्वकं ॥  
विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।  
श्वेतमश्वं शुभं स्नातं हिमपर्याणभूषितं ॥  
रौप्यैस्तु कटकैः शुद्धैः करिदन्तोपशोभितं ।  
वज्रनेत्रं खरस्तास्रैः क्षौमपुच्छं सवासनं ॥  
शुभ्रेण पटकैर्नैव संवृतं स्वायुधान्वितं ।

धान्यरत्नोपरिस्थन्तु वडकक्षं सुपट्टकं ॥  
 एवं सुतेजसञ्चाश्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 सुरूपाय सुवृत्ताय विदुषे च सुवृद्धये ।  
 दातव्यो मन्त्रमुख्याय दातव्यो भास्कराय च ॥  
 मन्वादी च युगादी च अयने विपुवे तथा ।  
 चन्द्र-सूर्यग्रहे चैवमश्वं दत्त्वा सुखी भवेत् ॥

अथ पूजामन्त्रः ।

मार्त्तण्डाय सुवेगाय काश्यपाय त्रिमूर्त्तये ।  
 जगद्बीजाय सूर्याय द्विवेदाय नमस्तुते ॥  
 अत्र अमुकसगोत्रायेत्यादि इमं अश्वं सुवर्ष्मन्तिकालङ्कृतं  
 ललाटं ग्रैवेयकसुपर्याणान्वितं गन्धपुष्पाद्यलङ्कृतं रौप्यकटक-  
 रत्नोपशोभितं वज्रनेत्रं ताम्रखुरं क्षौमपुच्छं सुवासनं शुभ्रपट्ट-  
 कसंहतं स्वायुधान्वितं धान्यरत्नोपरिस्थितं वडकक्षं सुपट्टकं  
 स्वर्गकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे अमुकगोत्रायेत्यादि एतदश्वदान  
 प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं सुवर्ष्मं तुभ्यमहं सम्प्रददे ।

एवं समुच्चरेन्मन्त्रं कर्म्मदद्यात्तिलोदकं ।  
 महार्णवे समुत्पन्न उच्चैःश्रवमपुत्रक ॥  
 मया त्वं विप्रमुख्याय दत्तो ह्यसुखी भव ।  
 इमं विप्र नमस्तुभ्यं अश्वन्ते प्रतिपादितम् ॥  
 प्रतिगृह्णीष्व विप्रेन्द्र मया दत्तं सुगोभनम् ।  
 कर्णे समर्पणं कृत्वा विप्रहस्ते जलं क्षिपेत् ॥  
 पश्चादश्वपुरी गच्छेत् पदानां सप्तममतिं ।

आस्त्रं मनसि ध्यात्वा आलीक्य खगृहं व्रजेत् ॥  
 शैवसंस्तु यो दद्यात् फलं दशगुणं लभेत् ।  
 वडवाञ्च तथा दत्त्वा तुल्यमेव फलं लभेत् ॥  
 एवं कृते नरध्याघ्न सूर्यलोकां व्रजेन्नरः ।  
 ब्रह्महत्यादिपापानि तथान्यानि ब्रह्मण्यपि ।  
 तानि सर्वानि नश्यन्ति दत्त्वा ह्यश्वविधानतः ॥  
 त्रिंशत्पूर्वांस्त्रिंशदपरांस्त्रिंशच्चैव परावरान् ।  
 सम्यक् दत्त्वा श्वदःपुत्रो नरकादुद्धरेत्पितृन् ॥  
 नृत्यन्ति पितरः स्वर्गे वलन्ति च हसन्ति च ।  
 वाजिप्रदः कलौ जातस्ततो वैमानिका वयं ।  
 वाजिप्रदेन पुत्रेण उद्धृता नरकार्णवात् ॥  
 हयदानफलं क्षीतद्यज्ञोका अत्रया नृणां ।

इति श्वेताश्वदानविधिः ।

आदित्य पुराणे ।

दुर्धर्मा उवाच ।

दानधर्मास्त्वया देव प्रोक्ता विस्तरतो मम ।  
 अश्वानाञ्चैव नागानां दानञ्चैव दिवाकर ॥

भानुस्वाच ।

तपः शील-गुणोपेते पात्रे विदम्य पारगे ।  
 ममगे परिपूर्णोऽग्निहोत्रपरायणे ॥  
 परिपूर्णोऽमुदितमुदामीनममप्रभं ।

सुविभक्तं सुकेशन्तं सुखक्षामं सुशीभनं ॥  
 सर्वालङ्कारशोभाढ्यं दिव्यस्त्रगनुलेपितं ।  
 सर्वोपकरसैर्युक्तं सर्वलक्षणसंयुतं ॥  
 दन्तेषु मुक्तिकास्तस्य प्रवालमधरी-ष्ठयोः ।  
 दद्याद्वज्रन्तु नेत्राभ्यां वैदूर्यं चाप्यमंभवे ॥  
 हेमरूप्यञ्च हस्ताभ्यां ताम्रं पादेषु विन्यसेत् ।  
 अण्डजैर्नाण्डजैर्वस्त्रैर्विचित्रैः परिवेष्टयेत् ॥  
 सुगन्धैश्चैव गन्धैश्च पुष्पैश्चापि विभूषयेत् ।  
 वाहनाधिपतिं श्रोमान् यथेष्टं विनिवेदयेत् ॥  
 आदित्याभिमुखं कृत्वा ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।  
 विविधैर्भक्ष्यभोज्यैश्च बलिं तत्रोपकल्पयेत् ॥  
 भोजयेत् तत्र विप्रांस्तु सूर्यभक्तान्विशेषतः ।  
 प्रीयतां मिहिरो नित्यं भुक्त्वा चोत्थापयेत् द्विजान् ॥  
 अनेन विधिना कुर्यादश्वदानं महामुने ।  
 यावन्ति देहरोमाणि तस्य सृतिश्च यावती ।  
 तावद्युगसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥

इत्यपरोश्वदानविधिः ।

अथ शिवधर्मात् ।

शिवायाश्वमलंकृत्य यः पर्वणि निवेदयेत् ।  
 सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ॥

इति शिवाश्वदानविधिः ।

अथ तिलदानमुच्यते ।

आदित्यपुराणे ।

दुर्वासा उवाच ।

कथन्तिलाः समुत्पन्नाः कथञ्च अवतारिताः ।  
एवं मे संशयं देव केतुमर्हस्यशेषतः ॥

भानुरूवाच ।

शृणुष्वावहितो विप्र सर्व्वं वक्ष्याम्यशेषतः ।  
पुरा कृतयुगे विप्र पितरः सर्व्वं आगताः ॥  
तपश्चरन्ति विपुलन्तिलार्थं नात्र संशयः ।  
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु निराहारास्तपस्विनः ॥  
तपः कुर्व्वन्ति विपुलन्तिलार्थं मुनिमत्तमाः ।  
तदा परिवृताः सर्व्वे देवैश्चैव विशेषतः ॥  
प्रजापतिः पितृपतिः साक्षादेव पितामहः ।  
परितुष्टोऽस्मि वो दद्वि ब्रूत यच्चेष्टितं हि वः ॥

पितर ऊचुः ।

तिलान् दद महाभाग काङ्क्षितान् वै न संशयः ।  
तिलैर्व्विना न जीवामो नातिलस्तिष्ठते दिवि ॥

पितामह उवाच ।

गच्छध्वं वै तिलादत्ताः सर्व्वेषां वो हिजीत्तमाः ।  
परितुष्टाश्च पितरस्तिललाभात् प्रजापते ॥

तिलान् यस्तु प्रयच्छेत् पितृणाञ्च विशेषतः ।  
 अग्निष्टोमसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
 वैशाख्यां पौर्णमास्यां वा तिलान् चौद्रेण संयुतान् ।  
 यः प्रयच्छेद्विजायेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 कृषिभागी बहुधनो जायते नात्र संशयः ।  
 धर्मराजाय च तिलान् दत्त्वा चैवेह मानवः ।  
 यमलोकं न पश्यन्ति ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥  
 ज्येष्ठे मासि तिलान्दत्त्वा पौर्णमास्यां विशेषतः ।  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
 माघे मासि तिलान् यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ।  
 सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं न स पश्यति ॥  
 सर्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन् ।  
 न चाकामेन दातव्यन्तिलैः आर्द्रं क्रथञ्च न ॥  
 महर्षेः कस्यपस्येते गात्रेभ्यः प्रसृतास्तिलाः ।  
 ततो दिव्यङ्गताभावं प्रदानेषु तिलाः प्रभोः ॥  
 पौष्टिका रूपकाश्चैव तथा पापविनाशनाः ।  
 तस्मात्सर्वप्रदानेभ्यस्तिलदानं विशिष्यते ॥  
 आपस्तम्बश्च मेधावी शङ्खश्च लिखितस्तथा ।  
 महर्षिर्गातमश्वापि तिलदाने सदा रताः ॥  
 तिलहोमरता विप्राः सर्वे संयतमैथुनाः ।  
 सर्वेषामेव दानानां तिलदानं परं स्मृतं ।  
 अक्षयं सर्वदानानां तिलदानमिहोच्यते ॥

महाभरते ।

तिलाःपवित्रमतुलं प्रवदन्ति महर्षयः ।  
प्रदाने यत्फलं तेषां तन्मे ब्रूहि पितामह ॥

भीष्म उवाच ।

सर्वेषां मेव दानानां तिलदानं परं स्मृतं ।  
सर्वपापहरं तद्धि पवित्रं स्वर्गमेव च ॥

मत्स्यपुराणे ।

विष्णोर्देहममुद्भूताः कुशाः कृष्णतिलास्तथा ।  
धर्मस्य रक्षणायालमेतत् प्राहुर्दिवीकसः ॥

व्यासः ।

महर्षेः कस्यपस्यैते गात्रेभ्यः प्रसृताः पुरा ।  
ते च दिव्यं गता भावं प्रदानेषु तिलाः स्मृताः ॥  
तिला भक्षयितव्याश्च होतव्याश्च विधानतः ।  
विप्रेभ्यश्च प्रदातव्याः श्रेयस्कामैर्नरैरिह ॥

सम्बर्त्तः ।

नित्यं नैमित्तिके काम्ये तिलान् दत्त्वा स्वशक्तितः ।  
प्रजावान् पुत्रवान्नित्यं धनवान् जायते नरः ॥

वशिष्ठ उवाच ।

नित्यं दाता तिलानाञ्च नरः स्वर्गं महीयते ।

महाभारते ।

ददतो जुह्वतश्चैव हरतः प्रतिगृह्णतः ।  
 तिले तिले तिलद्रोणसौवर्णानां युधिष्ठिर ॥  
 अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनं ।  
 ब्राह्मणस्य च सम्बादं यमस्य च महात्मनः ॥  
 मध्यदेशे महाग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह ।  
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरिरधः ॥  
 विद्वांसस्तत्र भूयिष्ठा ब्राह्मणाश्चावसन् सदा ।  
 अथ प्राह यमः कञ्चित् पुरुषं कृष्णपिङ्गलं ॥  
 रक्ताक्षमूर्ध्वरोमाणं काकजंघाक्षिनासिकं ।  
 गच्छ त्वं ब्राह्मणं ग्रामं गत्वा ब्राह्मणमानय ॥  
 अगस्तिगोत्रं तं विप्रं नामतश्चापि शाल्वलिं ।  
 समे निविष्टं विद्वांसमध्यापकसमावृतं ॥  
 सामान्यमानयेथास्त्वं सगोत्रं तस्य पार्श्वतः ।  
 स हि तादृग्गुणित्वेन तुल्योऽध्ययनजन्मना ॥  
 आकृत्या च तथा वृत्तैः समस्तेनैव धीमता ।  
 तमानय यथोद्दिष्टं पूजा कार्या हितस्य मे ॥  
 स गत्वा प्रतिकूलं तच्चकार यमशामनं ।  
 तमाकृत्यानयामास प्रतिषिद्धोऽयं मे नयः ॥  
 तस्मै यमः समुत्थाय पूजां कृत्वा च धर्मवित् ।  
 प्रोवाच नीयतामेष सभामानीयतामिति ॥  
 एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन स द्विजः ।  
 उवाच धर्मराजन्तं निविष्टो गमनेन वै ॥  
 यो मे कालो भवेच्छेषस्ते वसेयं त्वया सह ।



यमउवाच ।

गच्छ विप्र त्वमद्यैव निलयं त्वं महामुने ।  
ब्रूहि वादं यथास्वेरं करवाणि किमत्युत ॥

ब्राह्मण उवाच ।

यत् कृत्वा सुमहत् पुण्यं स्वर्गं स्यां ब्रूहि तन्मम ।  
सर्वस्य हि प्रमाणं त्वं धर्माधर्मविनिश्चये ॥  
शृणु तत्त्वेन विप्रर्षे प्रदानविधिमुत्तमं ।  
तिलाः परमकं दानं पुण्यं चैवेह शाश्वतं ॥  
तिलाः पवित्रमतुलं प्रवदन्ति महर्षयः ।  
तान् प्रयच्छस्व विप्रेभ्यो विधिदृष्टेन कर्मणा ॥  
वैशाखां पौर्णमास्याञ्च अयने चोत्तरायणे ।  
तिला भक्षयितव्याश्च सदात्मात्मनश्च तैः ॥  
कार्यं सततमद्भिर्वै श्रेयःसर्वात्मना गृहे ।  
तिलान् आद्रे प्रशंसन्ति दानमेतदनुत्तमं ॥  
तिला नित्यं प्रदातव्या यथाशक्ति द्विजर्षभ ।  
नित्यदानात् सर्वकामफलं निर्वर्त्तयेत् पुनः ॥  
शृणु धर्म्मरहस्यञ्च यदद्य कथयामि ते ।  
तिलाः पवित्रमतुलं मा तेऽभूदत्र संशयः ।  
तिलेभ्यः प्राप्यते स्वर्गः स्वर्गान्मोक्षस्तथैव च ॥

विष्णुधर्म्म ।

तिला गावो हिरण्यञ्च अन्नं कन्या वसुधरा ।

दत्तान्वेतानि विधिवत्तारयन्ति महाभयात् ॥  
 तथा । मुलर्चगे शशधरे माघे मासि प्रजापते ।  
 एकादश्यां कृष्णपक्षे सोपवासो जितेन्द्रियः ।  
 द्वादश्यान्तु तिलान्दत्त्वा सर्वपापात् प्रमुच्यते ॥  
 तिलोदत्ती तिलस्त्रायी तिलहोमो तिलोदकी ।  
 तिलदाता च भोक्ता च षट् तिलाः पापनाशनाः ॥  
 असकृत् षट् तिली भूत्वा सर्वपापविवर्जितः ।  
 त्रिंशद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥

कूर्मपुराणे ।

कृष्णाजिने तिलान्दत्त्वा सुवर्णं मधु-सर्पिषौ ।  
 द्रोणैकं वाससाकृन्नं त्रिधा तद्वत्सदक्षिणां ॥  
 त्रिधेति हीन-मध्यमो-त्तमभेदेन द्रोणैकं द्रोणद्वितयं द्रोण-  
 त्रितयञ्चेति तद्वत् सदक्षिणमिति क्रमादेक-द्वि-त्रि-सुवर्णदक्षिणा  
 सहितमित्यर्थः ।

आहिताग्नौ द्विजे दत्त्वा सर्वन्तरति दुष्कृतं ।

इदञ्चात्र दानवाक्यं ।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि एवं कृष्णाजिनस्थितं सुवर्णं  
 मधुसर्पिर्पर्युतं वस्त्रकृन्नन्तितद्रोणं सर्वपापक्षयकामस्तुभ्यमहं सम्प्र-  
 ददे न ममेति । ओं अद्यअमुक सगोत्रायेत्यादि एतत्तिल-  
 दानप्रतिष्ठार्थमिदं सुवर्णं दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति ।

इति तिलदानविधिः ।

तस्मिन्नेव पुराणे ।

मृगं तिलमयं कृत्वा सुवर्णरजतान्वितं ।  
 दद्यात् कम्बलसंस्तोम् कृष्णमार्गाजिनेन वा ॥  
 सर्वकामममृडेन विमानेन दिवं व्रजेत् ।  
 कालक्षयादिहागत्य राजराजो भवेत् पुनः ॥

इति तिलमृगदानविधिः ।

स्कन्दपुराणे ।

तिलपात्राणि यो दद्याद्विप्रेभ्यः श्रद्धयान्वितः ।  
 अमावास्यां समामाद्य नियतः सुसमाहितः ॥  
 स पितृन्स्मरयित्वाशु नरकान्नरपुङ्गव ।  
 पितृलोकं समाप्नोति स चिरं सुखमश्नुते ॥

अत्रिः ।

तिलपात्रन्तु मय्यूर्णं यो दद्यात् सुसमाहितः ।  
 ध्रुवं स गच्छति स्वर्गं नरो वै नात्र संशयः ॥  
 यमः । तिलपात्रञ्च यो दद्यात् प्रत्यहं वाथ पर्वणि ।  
 सदर्शितुं सत्वभावात् हृदि कृत्वा जनाईनं ।  
 नाशयेत्त्रिविधं पापं धर्मस्य वचनं तथा ॥

ब्रह्मपुराणे ।

ताम्रपात्रं तिलैः पूर्मं प्रस्थमाद्वैर्द्विजाय तु ।  
 महिरण्यञ्च यो दद्याच्छुद्धा-वित्तानुसारतः ॥  
 सर्वपापविशुद्धात्मा लभते तु पराङ्गतिं ।

अत्रेदं दानवाक्यं ।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि इदं तिलपूर्णं ताम्रपात्रं म-  
सुवर्णं अशेषपापक्षयकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न मम ।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि एतत्तिलताम्रपात्रदानप्रति-  
ष्ठार्य इदं सुवर्णं दक्षिणां तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति ।

इति तिलपात्रदानविधिः ।

अथाह विष्णुः ।

ताम्रपात्रे तिलान् कृत्वा पले षोडशकल्पिते ।  
सहिरण्ये स्वशक्त्या वा विप्राय प्रतिपादयेत् ।  
नाशयेत् त्रिविधं पापं बाह्यनःकायसम्भवं ॥

कूर्मपुराणे ।

तिलपूर्णं ताम्रपात्रं सहिरण्यं द्विजातये ।  
प्रातर्दत्त्वा तु विधिवद्द्वयप्रं प्रतिहन्ति मः ॥  
तिलपात्रं त्रिधा प्रोक्तं कनिष्ठो-त्तम-मध्यमं ।  
ताम्रपात्रं दशपलं जघन्यञ्च प्रकीर्तितं ॥  
द्विगुणं मध्यमे प्रोक्तं त्रिगुणं चीत्तरे स्मृतं ।  
स्वर्णमेकं जघन्यन्तु द्विगुणं मध्यमे क्षिपेत् ॥  
त्रिगुणं चीत्तमे तद्वत् सुवर्णं परिकीर्तितं ।  
सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा सर्वपापक्षयो भवेत् ॥

इति महातिलपात्रदानविधिः ।

पितामह उवाच ।

शृणुध्वन्देवताः सर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।  
मुक्ता भवन्ति येनेह मानवा मातृजादृणात् ॥  
यज्ञं सौत्रामणिं कर्तुं यदि शक्तिर्न विद्यते ।  
महासरस्तथावापीं कूपं कर्तुञ्च दौर्धिकां ॥  
एवं कृते मातृऋणान्मुक्ती भवति मानवः ।  
सदक्षिणं कांस्यपात्रमथ दत्त्वा प्रमुच्यते ॥

ऋषय ऊचुः ।

भगवन् कांस्यपात्रस्य विधिं सम्यक् प्रकीर्तय ।  
यत् प्रमाणं यत्स्वरूपं यस्मिन् काले च दौष्यते ॥  
यादृशाय च दातव्यं दानमेतद्विजातये ।  
यादृशेन च दातव्यं न दद्याद्यादृशाय च ॥

पितामह उवाच ।

शुद्धकांस्यस्य पात्रस्य प्रमाणं पञ्चविंशतिः ।  
पलानामत्र निर्दिष्टं तिलानां प्रस्थसप्तकं ॥  
सुवर्णमाषाश्चत्वारः पात्रीपरि विधारयेत् ।  
वस्त्रेण वेष्टयेत् पात्रं प्रधानेन सुभक्तितः ॥  
स्नानं कृत्वा निम्नगादौ पितृन् देवांश्च तर्पयेत् ।  
ततोभिपूजयेच्छुभं शङ्करं हरिमिव च ॥  
गोमयेनाथ संलिप्य गृहमध्यञ्च सर्वतः ।  
लिखेत् पद्मं द्वादशारं कुङ्कुमेनाथ चन्दनैः ॥

ततोर्वाङ्गं स्थापयित्वा होमं कुर्याद्यवैस्तिलैः ।  
 तत्र पात्रं प्रतिष्ठाप्य पूजयेद्भक्तिसंयुतः ॥  
 गन्ध-चन्दन-पुष्पाद्यैर्धूप-दीपैश्च शोभितम् ।  
 ततो ब्राह्मणमाहूय बहुभृत्यं सुसंयतम् ॥  
 परस्त्रीवर्जं कं शान्तमलङ्कृत्य यथाविधि ।  
 दाम्भिकं वर्जयेन्नित्यं परस्त्रीरतिलालसम् ॥  
 क्षुद्रं मत्सरशीलञ्च ब्रह्मभ्रष्टमशौचकम् ।  
 पादौ प्रक्षाल्य विधिवन्मातृश्राद्धं समाचरेत् ॥  
 तत्र सम्पूजयेद्दिप्रं पुष्प-धूप-विलेपनैः ।  
 वस्त्राणि परिधाप्योऽसौ सुभव्यानि मृदूनि च ॥  
 अलङ्कृत्य यथाशक्त्या माघ्यां वा मृतवासरे ।

मृतवासर इति, यस्मिन् दिने माता मृता भवति समृत-  
 वासरः ।

ग्रहणे रवि-सोमाभ्यां संक्रान्तिषु युगादिषु ।  
 तथान्यदपि यदत्तं माघ्यामुद्दिश्य मातरम् ।  
 तदक्षयफलं सर्वं पुरा प्राह महेश्वरः ॥  
 जीवन्तीं भूषयेदस्त्रैर्भोज्यैरपि विभूषणैः ।  
 मृतामुद्दिश्य दातव्यं माघ्यां सर्वं स्वशक्तितः ॥  
 अमावास्यां यथा दत्तं पितृणाञ्च पुरा मया ।  
 यथा माघ्यां मया दत्ता मातृणां नात्र संशयः ॥  
 दत्तं जप्तं हुतं स्नानं विधिवत्तर्पणं कृतम् ।  
 तदक्षयफलं सर्वं जायते मुक्तिरेव च ॥

विप्रं सम्पूजयित्वा तु तत्पात्रं तस्य दापयेत् ।  
 प्रणम्य विधिवद्भक्त्या मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥  
 कांस्यपात्रं मया दत्तं मातुरावृणुकाङ्क्षया ।  
 भगवन्वचनात्तभ्यं यथा मुक्तिं स्तथा वद ॥  
 दशमासांश्च उदरे जनन्याः संस्थितेन मे ।  
 क्लेशिता वाक्यभावे च स्तनपानाद्विजोत्तमः ॥  
 गूथ-मूत्रादिसंलेपलिप्ता यच्च कृता मया ।  
 भवती वचनादय मम मुक्तिर्भवेद्विज्ञात् ॥  
 कांस्यपात्रं सुवर्णञ्च तिलान् वस्त्राणि दक्षिणां ।  
 मम धान्यं मया दत्तमृणान्मुक्तिर्भवेन्मम ॥  
 कांस्यपात्रप्रदानेन तत्त्वज्ञानं शरीरकम् ।  
 तथा हं प्रदानेन परमात्मानमचयम् ॥  
 आच्छादनन्तु ब्रह्माण्डं गुह्यमेतत्सनातनं ।  
 विप्राच्छादनदानेन परमात्मा सुपूजितः ॥  
 तिलसंख्याकृतं दुःखं जनन्या मम सेवितम् ।  
 तिलदानप्रभावेन कृतमुक्तो भवास्यहम् ॥  
 फलादिखचितं कृत्वा तज्जलेन विभूषितम् ।  
 एवमुत्क्रामतः पात्रं प्रदद्याद्ब्राह्मणाय च ॥  
 ब्राह्मणेन ततो वाच्यं जननीसम्भवाद्विज्ञात् ।  
 मुक्तस्त्वं पात्रदानेन महेश्वरवचो यथा ॥  
 दत्त्वा विप्रस्य प्राचन्तु हीमं कुर्यात् प्रयत्नतः ।  
 सोपस्करं सताम्बलं क्षमाप्य विप्रं विसर्जयेत् ॥  
 अन्येषामपि विप्राणां भोजनादि प्रदापयत् ।

भक्त्या शक्त्या ससम्मानं पूज्य विप्रान् प्रयत्नतः ॥  
 एवं कृते ततो देवाट्टणान्मुक्तिर्न संशयः ।  
 जननीसम्भवादस्मान्नान्यथा कचिदेव हि ॥  
 पुरामातृवधोद्भूतपापशङ्कितचेतसा ।  
 जामदग्न्येन रामेण प्रदत्तं कांस्यभाजनम् ॥  
 वशिष्ठस्तनयान् हत्वा विश्वामित्रेण धीमता ।  
 पुरा दानमिदं दत्तं पातकव्रतशान्तये ॥  
 अकृत्वा मातृवचनं पन्नगैः शाप संयुतैः ।  
 कैश्चिच्छृङ्गापरैर्भूत्वा माता पश्चात् प्रसादिता ॥  
 शापतो निष्कृतिं ब्रूहि न वाक्यं यत्कृतं तव ।  
 शापोभि भवते देवि नानृणानां दुरात्मनाम् ॥  
 कथयामास सा तेभ्यः कांस्यपात्रं सविस्तरम् ।  
 दत्त्वा दानं विनिर्मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥  
 भुजङ्गैस्तत् कृतं सर्व्वं मातृवाक्येन गर्हितैः ।  
 कांस्यपात्रप्रदानन्तु पापमुक्तस्ततोऽभवन् ॥  
 विधानं कांस्यपात्रस्य सर्व्वमेतन्मयोदितम् ।  
 अन्यथा किन्तरिष्यन्ति ऋणान्मातृसमुद्भवात् ॥

वशिष्ठ उवाच ।

इति श्रुत्वा ततो देवा कश्यपाद्या महर्षयः ।  
 प्रजग्मुः स्वान्यधिष्ठानि हर्षयुक्ता महीजसः ॥  
 इति ते सर्व्वमाख्यातं पात्रदानं महीपते ।  
 कुरु सर्व्वप्रयत्नेन मावज्ञां कचिदेव हि ॥



इत्यादित्य पुराणीक्तं कांस्यपात्रदानविधिः ।

आह यमः ।

मर्खपातकसङ्घातः कामतो वाप्यकामतः ।  
 शुद्धिं तस्य प्रवक्ष्यामि स्वर्गसाधनमेव च ॥  
 शुक्तैः कणैर्यथा लघ्वैर्द्वाविंशदङ्गुलीत्यतः ।  
 राशिस्तिलैः समे देशे कर्तव्यः पुरुषायतः ॥  
 यथाविभवविस्तारं यदि वा शक्तितो नरैः ।  
 प्रतिमाष्टाङ्गुला स्थाप्या सौवर्णी तत्र माधवी ॥

माधवमूर्त्तिस्तु, नारदीये ।

आरभ्य वामोडेकरादपसव्यक्रमेण तु ।  
 गङ्गं चक्रं गदां पद्मं दधानो माधवः स्मृतः ॥  
 क्षौद्रेण पयसा दध्ना घृतेनापूरयेद्वटान् ।  
 स्थापयेत्तत्र तं रुक्मं पुष्पस्त्रग्वस्त्रभूषितान् ॥  
 भक्त्या वाभ्यर्च्य तत्सर्वं ब्राह्मणे अत्रियेऽर्थिनि ।  
 दद्यात् माघेऽथ वैशाखे विषुवे चोत्तरायणे ॥  
 अज्ञानाद्यदिवा मोहाक्तोभावा जन्म-जन्मनि ।  
 अर्जितं यत्नया किञ्चिदुत्कृतं मधुसूदन ।  
 तत्सर्वं विलयं यातु दानेनानेन माधव ॥  
 गवन्मुञ्चायि तत्सर्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

इति तिलराशिदानविधिः ।

अथ महाभारते ।

यम उवाच ।

सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ।  
यद्वा लभते विप्र तद्दानं कथयामि ते ॥  
रहस्यं सर्वदानानां कथ्यमानं मया शृणु ।  
पुण्येऽस्मिन् भारते वर्षे देवानामपि दुर्लभम् ॥  
तिलपद्ममितिख्यातं सुरा-सुरनमस्कृतम् ।  
माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे द्विजोत्तम ॥  
गोमयं मण्डलं कृत्वा चतुरस्रं महामते ।  
नवं वस्त्रं समास्तीर्य कृष्णाजिनसमन्वितम् ॥  
द्रोणावरांस्तिलांस्तत्र निधाय बसनोपरि ।  
पद्ममष्टदलं कृत्वा शुभं तत् कर्णिकोपरि ॥  
निष्कत्रयं सुवर्णस्य स्थापयेच्च ततोपरि ।  
श्रीनिवासं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥  
ध्यायेच्चतुर्भुजं देवं प्रणतार्त्तिहरं हरिं ।  
हिरण्यगर्भममृतं श्रीगर्भं परतः परं ॥  
शङ्ख-चक्र-गदा-पाणिं पीतवाससमच्युतम् ।  
श्रीवत्साङ्गज्जगद्बीजं सर्वकारणकारणम् ॥  
कविं पुराणं विश्वेशं पुण्डरीकनिभेक्षणं ।  
आसीनं कर्णिकामध्ये सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥  
कृताञ्जलिपुटी भूत्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः ।  
पूजयेत्परमेशानं श्रद्धावित्तानुसारतः ॥

इन्द्रनीलमहानीलमणिमुक्ताफलादिभिः ।

आराधय यथाशक्या देवदेवं जनार्दनं ॥

गन्ध-पुष्पैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैश्च मनोरमैः ।

क्षीरात्रैर्घृतपक्कैश्च फलैर्दित्रैरनेकधा ॥

पुष्पाणां प्रकरैश्चैव गीत-नृत्यादिभिस्तथा ।

इत्यमाराध्य देवेशं ताम्बूलं विनिवेदयेत् ॥

पञ्चमौगन्धिकीपितं शङ्खापूतेन चेतसा ।

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं दध्याढकमतः परम् ॥

स्थापयेत्पार्श्वतस्तस्य धान्यपात्राणि षोडश ।

एवमाराध्य तत्पद्मं तिलद्रोणमयं शुभं ॥

एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं मथवा द्विज ।

तिलाहारी भवेत्पूज्यं सुपवाममथापि वा ॥

कुर्यात् स्वकार्यशुद्ध्यर्थं वासुदेवमनुस्मरन् ।

ततो दद्याच्च तत्पद्मं शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥

विज्ञातकुल-गोलाय ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।

जितेन्द्रियाय शान्ताय प्रसन्नायात्मवेदिने ।

राग-द्वेषविहीनाय वैष्णवाय विशेषतः ॥

एतद्गुणान्वितायैवं यथायोगं यथाक्रमं ॥

दातव्यं तत् प्रयत्नेन तिलपद्मं विधानतः ।

प्रियतां माधवो देव इत्युक्त्वा तमनुस्मरन् ॥

हिरण्यगर्भे देवेशे पद्मनाभे जनार्दने ।

हिरण्योक्तं गुणाधारं सर्वाधारधरेश्वर ॥

धनधान्यसमृद्धञ्च सर्वसम्पत्समन्वितम् ।

पत्रपौत्रादिसंयुक्तं दामो-दाम-समन्वितम् ॥  
 आरोग्यञ्च सुमन्त्रञ्च सर्वदुःखविवर्जितम् ।  
 कुरु मां परमोदारं भक्तोयमिति चिन्तयन् ॥  
 इत्थं प्रसाद्य देवेशं वासुदेवं मनातनं ।  
 दद्यात्तिलमयं पद्मं सर्वकामसमृद्धये ॥  
 ब्राह्मणश्चापि गृह्णीयाद्वाचयेत्तु प्रतियहं ।  
 कोदात् कम्मा अदादिति वैदिकं मन्त्रमुच्चेत् ॥  
 एवन्तिलमयं पद्मं द्योददाति विधानतः ।  
 सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति ॥  
 स्वयम्भवति पूतात्मा पितृनय पितामहान् ।  
 प्रपितामहांश्च धर्मात्मा तारयत्यखिलं कुलं ॥  
 धर्मार्थी धर्ममाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात् ।  
 मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥  
 पातकी मुच्यते पापात् पितृघ्नो गुरुतल्पगः ।  
 सर्वपापरतोवापि मुच्यते नात्र संशयः ॥  
 इच्छन्ति पितरः पुत्रान् पौत्रांस्तदंशसंभवान् ।  
 अस्मदंशभवः कश्चित्तिलपद्मं प्रदाच्यति ॥  
 यस्तु राजा धनपतिः समृद्धोतीव धार्मिकः ।  
 आराध्य विप्रं विधिना वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥  
 वाहनादिभौरत्नैश्च ग्रामक्षेत्रादिकैस्तथा ।  
 यत्फलं जायते तस्य द्विज दालपदस्य च ।  
 परिच्छन्नं भवेत्तन्तु नात्र कार्या विचारणा ॥  
 यस्त्विमं विविधदद्यात् तिलपद्मञ्च धार्मिकः ।

तस्य दानफलं यत्स्यान्न तस्यान्तोऽत्र विद्यते ॥

इति तिलपद्मदानविधिः ।

लिङ्गपुराणे ।

अथान्यत्परमं वक्ष्ये अल्पद्रव्यं महाफलं ।

द्रव्यमन्त्रोपसंयुक्ते कालेह्यस्य विधिः स्मृतः ॥

काल इति देशस्याप्युपलक्षणं तेन यत्र यदा च द्रव्यलाभ-  
सत्पात्रयोगौ तावैतस्य देशकालौ न पूर्वोक्तावित्यर्थः ।

सर्वत्र सर्वकाले च कर्त्तव्यमिह कथ्यते ॥

इतिकामिकोक्तत्वात् ।

गोमयालेपिते देशे अम्बराणि प्रकीर्य च ।

तन्मध्ये निक्षिपेद्दोमांस्तिलभारत्रयं शुभं ॥

पद्ममष्टदलङ्गृत्वा कर्णिकाकेसरान्वितं ।

दग्निष्केण तत् कार्यं तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ॥

तिलमध्ये न्यसेत्पद्मं पद्ममध्ये महेश्वरं ।

आराध्य विधिवद्देवं वामादीनि प्रपूजयेत् ॥

शक्तिरूपं सुवर्णेन त्रिनिष्केण तु कारयेत् ।

तासाञ्च परतः कार्या विदेशाः प्रविभागशः ॥

पूर्वोक्त हेममानेन विदेशानपि कारयेत् ।

तानभ्यश्च विधानेन गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥

पद्ममध्ये, महेश्वरमिति, सहस्रशतादिनिष्कनिर्मितं शि '

पद्ममध्ये विन्यस्य तदर्द्धमानहेमकृतां मनोन्मनीं शिवस्य वाम-  
भागे न्यसेत् । तदुत्तरे तदर्द्धेन कारयेत् मनोन्मनीमिति

कामिकोक्तेः ।

तत्परितोऽष्टौ वामादिशक्तीः पूजयेत् तद्यथा ।

वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काला विकरणी तथा ।

बालप्रथमनी देवी दमनीच यथाक्रममिति ॥

तद्वाह्ये विद्येशानर्चयेत् ते च यथा ।

अथानन्तश्च शूल्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः ।

एकरुद्रस्त्रिमूर्त्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखण्डिक इति ॥

पूर्वाक्तहेममानेन, त्रिनिष्केणेत्यर्थः । प्रविभागश्च इति, पूर्व-  
त्रापि सम्बध्यते तेन वामादिशक्तीनां विद्येशानाञ्च रूपं प्रत्येकं  
निष्कत्रयेण कार्यं, तत्र महेशरूपमुक्तं ।

ब्रह्माण्डदाने ।

मनोन्मनीवामादीनान्तु लिङ्गे ।

सर्वाश्च द्विभुजा देव्यो वालभास्करसन्निभाः ।

पद्मशङ्खधराः शान्ता रक्तस्रग्बस्त्रभूषिताः इति ॥

विद्येशानान्तु गणेशदाने वक्ष्यते ।

इत्यपरतिलपद्मदानं ।

वायुपराणात् ।

अथातः सस्रवक्ष्यामि तिलपद्मस्य लक्षणं ।

यत् कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संग्रहः ॥

विषुवे ग्रहणे वापि व्यतीपाते दिनक्षये ।  
 अथने जन्मनक्षत्रे कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥  
 एषु कालेषु देशेषु पुण्येष्वायतनेषु च ।  
 तिलानान्द्रोणमात्रेण नववस्त्रे सुशोभने ॥  
 पद्ममष्टदलं कुर्यात् कर्ष्णिकादलशोभिते ।  
 तस्मिन् पद्मं सुवर्सेन पलमात्रेण कल्पितं ॥  
 पलाईनाईपादेन कर्णिकोपरि शोभितं ।  
 विन्यसेत्तत्र देवेशमावाह्य शशिशेखरं ॥  
 पाण्डुराङ्गं चतुर्बाहुं कृत्तिवाससमीश्वरं ।  
 अर्चयेत् पुण्डरीकैश्च पद्मैर्वी शतपत्रकैः ॥  
 धूपञ्च गुग्गुलुं दद्यात् घृताक्तं परमेष्ठिनः ।  
 एवमभ्यर्च्य देवेशं कृत्वा चैव प्रदक्षिणं ॥  
 ततोविप्रं समाह्वय पुण्यकाल उपस्थिते ।  
 यथादेवं तथा विप्रमर्चयित्वा विधानतः ॥  
 मूलमन्त्रेण कर्त्तव्यं सर्वमेवार्चनादिकं ।  
 इमं मन्त्रं ततः प्रोक्त्वा तस्मै विप्राय दापयेत् ॥  
 एतत्तिलमयं पद्ममत्र संनिहितोद्हरः\* ।  
 एतत् प्रदानादनिशं शिवः संप्रीयतामिति ॥  
 यथासौ भगवान्देवः सर्वभूतान्तरस्थितः ।  
 तेन सत्येन मे पापं विलयं यातु सर्वतः ॥  
 एतं यस्तिलपद्मस्य विधानं सम्यगाचरेत् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति शिवमन्दिरं ॥  
तत्र कल्पशतं सार्द्धं शिववन्मोदते सुखं ।  
यत्किञ्चित् कुरुते पापं कर्मणा मनसा गिरा ।  
तिलपद्मप्रदानेन तत् सर्वं क्षयमेष्यते ॥

इति तृतीयं तिलपद्मदानं ।

आह बौधायनः ।

सौवर्णं कारयेत् पद्मं पलेनार्द्धपलेन वा ।  
यथा रजश्च मतिमान् दृष्टमष्टदलं शुभं ॥  
वित्तशायं न कुर्वीत भवेन्निष्फलमन्यथा ।  
द्रोणे तिलाधिके वापि ताम्रपात्रं जलावृतं ॥  
तस्य मध्ये तु तं पद्मं निदध्यात् कुङ्कुमान्वितं ।  
ब्राह्मणं श्रुतसम्पन्नं दरिद्रं चाग्निहोत्रिणं ॥  
आह्वय गन्धमाल्याद्यैर्विधिना चातिभक्तितः ।  
ततः स्वर्णमयं पद्मं दद्यान्मन्त्रेण संयुतं ॥  
खगःपूषा पतङ्गोऽसौ द्वादशात्मा त्रयीतनुः ।  
पद्मेनानेन दत्तेन प्रीतस्तरणिरस्तु मे ॥

दानमन्त्रः ।

कृतेनानेन मनुजो मूत्रकृच्छ्रात् प्रमुच्यते ।  
मूत्रकृच्छ्रातुरस्मादे तत् कुर्यात् प्रयत्नतः ।  
मूत्रकृच्छ्ररोगहरं तिलपद्मदानं ।



वायुपुराणे ।

क्षये तु राजतं पद्मं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 तिलाढकीपरि यत्तज्जलं कांस्यमये दृष्टे ॥  
 पलेनाथ तदर्द्धेन यथाशक्त्याथ वा कृतं ।  
 निधाय तत्र पद्मन्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 पद्मेन राजतेनेह प्रदानादचिनेत्रज ।  
 जातं कर्मविपाकेन क्षयं नाशय मे ऽनव ॥

दानमन्त्रः ।

कृत्वैवं क्षयरोगी तु शीघ्रं रोगात् प्रमुच्यते ॥

इति क्षयरोगहरं तिलपद्मदानविधिः ।

आह वीज्जायनः ।

सुवर्णेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।  
 पद्मन्तु कारयेच्छुभ्रं व्यक्तमष्टदलं शुभं ॥  
 मध्ये तु कर्णिकां कुर्याद्राजतेन च नालकं ।  
 पद्ममेवं विधं कुर्यात् स्थाप्यं द्रोणतिलोपरि ॥  
 वस्त्रेणावेष्ट्य परया भक्त्या प्रयतमानसः ।  
 ब्राह्मणं ज्ञानवृत्तस्थं स्वाचारं संयितेन्द्रियं ॥  
 पद्मदानप्रयोगज्ञं आदित्येऽहनि कारयेत् ।  
 आह्वय विप्रवर्य्यंतं पूजयेदस्त्रपूर्वकं ॥  
 आज्येन च तिलैर्हीमः कार्य्यद्याष्टोत्तरंशतं ।  
 पद्मे नावाहयेद्देवं भास्करं ग्रहनायकं ॥

एह्येहि भगवन् देव पद्मे ऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।  
त्रयीतनो द्वादशात्मन् सर्व्वप्राणिहिताय च ॥

आवाहनमन्त्रः ।

आवाह्य तस्मिन् देवैशं पूजयेद्रक्तचन्दनैः ।  
पुष्पैश्चरक्तरपरैः कुंकुमागुरुचन्दनैः ॥  
नैवेद्यं पायसं दद्यादलाभे क्षीरमेव च ।  
मन्त्रेणानेन विधिवद्दद्यात् पद्मं सिताम्बरं ॥  
भगवन् सूर्य्य भूतेश दुर्मणि लोकनायक ।  
रक्तवर्ष्मः प्रतापेन्द्र रक्तस्त्रैलोक्यपावनः ॥  
सत्पात्राय मया दत्तं मम जन्मनिचैव हि ।  
श्रीषधादि तु तत् सर्व्वं नाशमायात्त, दानतः ॥  
ततः प्रदक्षिणी कृत्य ब्राह्मणं विनयान्वितः ।  
पायसं गुडसंमिश्रं भोजनाय प्रदापयेत् ॥  
ततः स्नात्वा मङ्गलेन पुण्याहेन तु भक्तितः ।  
भर्त्तारं देववन्द्ये भुञ्जीत घृतपायसं ॥  
एवं कृतेन दानेन नाशं याति न संशयः ।  
संपन्नगौषधदानेन रक्तशूलमुपार्ज्जितं ॥  
रक्तशूलयुजा नार्य्या दानं कार्य्यमिदं ततः ।

इति रक्तशूलघ्नं तिलपद्मदानं ।

आह गीतमः ।

गवां यः पीडनं कुर्यान्नरो रोधनवन्द्यनैः ।

दद्रुरोगी सति कण्ड्युक्तो भवति सर्वदा ॥  
 वक्ष्यामि तत् प्रतीकारं पद्मदानादिकर्मणा ।  
 व्यावहारिकनिष्केण पद्मं कुर्यात् सुशीभनं ॥  
 नालञ्च राजतं कुर्यात्तदर्थेनापि कण्ठकं ।  
 मध्ये रत्नं प्रदातव्यं तदलाभे च मौक्तिकं ॥  
 श्रीगन्धकुङ्कुमाभ्याञ्च प्रक्षाल्य ह्यनुलेपयेत् ।  
 तण्डुलोपरि संस्थाप्य वस्त्रयुक्तं तिलेषुवा ॥  
 तेषामपि परिमाणं द्रोणवितयमिष्यते ।  
 तदलाभे इयं याञ्चमथवा स्वस्य शक्तिः ॥  
 उपचारैः षोडशभिरर्चयेत् मूलमन्त्रतः ।  
 आवाहयेच्च देवेशं भास्करं सूर्यमण्डलात् ॥  
 देव देव जगन्नाथ द्युमणे लोकपावन ।  
 लोकानां चक्षुःसूर्य त्वं पद्मेस्मिन् सनिधिङ्कर ॥

आवाहन मन्त्रः ।

एवमावाह्य सूर्यन्तं भानुं सर्वजनप्रियं ।  
 उपचारैः षोडशभिरर्चयेत् मूलमन्त्रतः ॥  
 होमञ्चापि प्रकुर्वीत आग्नेय्यान्दिशि तस्य तु ।  
 समिदाज्यतिलैः सम्यगाचार्यः सर्वशास्त्रवित् ॥  
 सूर्यन्तेचक्षुर्मन्त्रेण समिद्धोमं प्रकल्पयेत् ।  
 आज्यहोमं प्रकुर्वीत हंसः शुचिसदित्यपि ॥  
 व्याहृत्या च तिलैः होमं कुर्यात्त्वयुतसंख्यया ।  
 समिदाज्यैश्चाष्टगतमष्टाविंशतिमेव वा ॥

हुत्वा चाहुतिसम्पातान् पात्रे चास्मिन्विनिक्षिपेत् ।  
 तेन गात्राणि चाभ्यज्य दद्रुरोगार्हितस्य तु ।  
 अक्षिभ्यामनुवाकेन यथा लिङ्गञ्च वाससा ॥  
 मार्जयीताहतेनाथ दद्रुणो मुष्टिना तथा ।  
 सम्पूज्यानन्तरं भक्त्या नैवेद्यं पायसं क्षिपेत् ॥  
 दद्याद्रोगी तु तं पद्मं प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवत्पूजितायातिभक्तितः ॥  
 देवदेव जगन्नाथ देवरूप पगात्पर ।  
 जगतां परमानन्दकारक द्युमणे प्रभो ॥  
 प्रभाकर सुसप्ताश्व देवेशारुणसारथे ।  
 रोधनैर्व्वनैश्चैवं वैरूप्यं यच्छरीरके ॥  
 पूर्व्वकर्मविपाकेन दद्रुकल्कादिकश्मलं ।  
 पद्मदानेन तुष्टस्त्वं नाशयाशु शरीरके ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तं पद्मं दद्रुरोगविवर्जितः ।  
 विना कण्डुं विना कुष्ठं त्वग्दीपैश्च विवर्जितः ॥  
 जायते रूपवान् सद्य आदित्यस्य प्रभा यथा ।  
 जीवेद्वर्षशतं मर्त्यो धनधान्यसमन्वितः ॥  
 अनन्तरं ब्राह्मणेभ्यः पायसञ्च निवेदयेत् ।  
 एवं यः कुरुते दानं गौतमीयविधानतः ॥  
 रोगैरन्यैर्व्विमुक्तश्च मोदते भानुवद्भुवि ।  
 इति दद्रुरोगघ्नतिलपद्मदानविधिः ॥

अथ वायुपुराणे ।

स्वरोपघाती वाचाञ्च हर्त्ता मूकः प्रजायते ।  
 वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥  
 कुर्यात् स्वर्णमयं पद्मं पलार्द्धाद्वितर्द्धतः ।  
 यथाविभवतः सम्यग्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥  
 रक्तवस्त्रेण सखेष्ट्य ताम्रपात्रीपरि न्यसेत् ।  
 ताम्रपात्रपरीमाणं पलानामष्टकं विदुः ॥  
 यद्वा स्वविभवेनैव पूजयेद्रक्तचन्दनैः ।  
 तिलाढकीपरि स्थाप्य पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥  
 उपचारैः षोडशभिराचार्यः सर्वशास्त्रवित् ।  
 धर्मज्ञश्च विनीतश्च दयालुः सत्यवाक् शुचिः ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवत्प्राङ्मुखोऽलङ्कृतः शुचिः ।  
 ब्रह्मणः सदनं त्वं हि विष्णोरभिजनाभिजः ॥  
 अभिप्रीतिकरं भानोरग्निरुद्रस्य चैव हि ।  
 गृहाण पूजामेतां त्वं सर्वक्लेशविनाशकः ॥

पूजामन्त्रः ।

आग्नेय्यां दिशि वै होमः कर्त्तव्यमन्त्रपूर्वकः ।  
 समिदाज्यतिलैश्चैव सावित्राष्टाक्षरेण तु ॥  
 समिद्धोमं प्रकुर्वीत सर्वरोगप्रशान्तये ।  
 आज्यहोमश्च कर्त्तव्यश्चित्तमित्यनया ऋचा ॥  
 तिलानायातिद्वन्द्वेति व्याहृतीभिरथापि वा ।  
 अग्निरुत्तरतोभागे कलशस्थापनं भवेत् ॥

पूर्वाक्तेन विधानेन चाभिषेकादि कारयेत् ।  
 प्रनीतामोक्षपर्यन्तं कर्म कृत्वा प्रयत्नतः ॥  
 अतः स्नातः शुचिः श्वेतवस्त्रो रोगो तु भूषितः ।  
 तस्मै हुतवते पद्मं दद्यात् स्मृत्वा चतुर्मुखं ॥  
 देवानामथ सर्वेषां पद्मं त्वं प्रीतिकारणं ।  
 विशेषतो ब्रह्मणश्च सरस्वत्या हरेरपि ॥  
 यत् प्राग्वाचान्निरोधेन वैरूप्यं मम देहजं ।  
 अघभेदभवन्तीब्रन्दुःखं रोगाकरन्तथा ॥  
 तत्सर्वं नाशयन्त्वत्र ब्रह्मसूर्यशिवाग्नयः ।  
 त्रिदशादयो ये च देवा हविषन्तस्तथा भुवि ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तं पद्मं आचार्यायातिभक्तितः ।  
 पृष्ठतस्तमनुव्रज्य ह्यघभेदादिमुच्यते ॥  
 एवं पद्मोद्भवः प्राह नारदाय महात्मने ॥

इति मूकत्वहरतिलपद्मदानविधिः ।

अथ त्रिपद्मपञ्चकदानविधिः ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

अथ दानं प्रवक्ष्यामि त्रिपद्ममिति विद्युतं ।  
 आयुष्यं श्रीकरं पुण्यं आरोग्यं पापनाशनं ॥  
 माघमासे विशेषेण जन्मर्क्षेषु च कारयेत् ।  
 व्याधिग्रस्ते च दातव्यं दुःखप्रादुतदर्शने ॥

अथान्यथा भयं पश्येत्सर्व्वदोष प्रशान्तये ।  
 भूमौ गोमयलिप्तायां तिलैराढकसंमितैः ॥  
 पद्ममष्टदलं कृत्वा कर्णिकाकेसरान्वितं ।  
 तस्मिन्विधाय सौवर्णं ततः कृत्वा सरीरुहं ॥  
 वस्त्रेणावेष्ट्य गन्धाद्यैरर्चयेत् परमेष्ठिनं ।  
 विप्रं वैतानिकं धर्मशास्त्रज्ञं शान्तमानसं ॥  
 अभ्यर्च्य दापयेत्तस्मै मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।  
 सम्प्रीयतां मे भगवान् आत्मभूश्चतुराननः ॥  
 दानेनानेन सर्वात्मा जगत्स्रष्टा जगत्पतिः ।  
 तथान्यत्तत्तदुल्लेखेव तृतीयं लवणेन तु ।  
 विष्णवे श्याणवे चेति दानमन्त्रैर्विबोधयेत् ॥  
 सम्प्रीयतां मे भगवान् परमात्मा जगन्मयः ।  
 दानेनानेन विश्वात्मा परमः पुरुषोत्तमः ॥  
 सम्प्रीयतां मे भगवान् शङ्करः शङ्करोतु मे ।  
 दानेनानेन विश्वात्मा चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥  
 इतिमन्त्रान् समुच्चार्य दद्यादेतान् पृथक् पृथक् ।  
 जातरूपमयान् कृत्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥  
 एवं कृते तु यत्पुण्यं जायते द्विजपुङ्गवाः ।  
 न तद्वर्णयितुं शक्यं कल्पकोटिशतैरपि ॥  
 इत्याह भगवान् ब्रह्मा नारदाय महात्मने ।  
 उक्तं मयापि तत्सर्व्वं युष्माकं मुनिसत्तमाः ॥  
 अत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणां रूपनिर्माणं धान्यपर्व्वतवद्-  
 दृश्यं ।

इति त्रिपञ्चदानविधिः ।

वायुपुराणात् ।

तिलदानमथो वक्ष्ये दशधा देवि साम्प्रतं ।  
 रहस्यं सर्वपापघ्नं सर्वकल्याणकारकं ॥  
 जन्मर्क्षेषु चतुर्दश्यां कृष्णायाञ्च समाचरेत् ।  
 मन्त्रिधौ देवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ॥  
 चक्रे पञ्चरजःक्षिप्ते द्वादशारं सरोरुहं ।  
 दलैर्द्वादशभिर्युक्तं कृत्वा तस्मिन्नरञ्जकं ॥  
 अब्रणं तिलसम्पूर्णं विन्यस्याभ्यन्तरं शिवं ।  
 चन्द्राकारञ्च\* सौवर्णं मण्डले शक्रदेवते ॥  
 पूजयेन्नन्य-नैवेद्य-दीप-पुष्पैः-फलैस्तथा ॥

शक्रलक्षणं लोकपालप्रसङ्गेन ब्रह्माण्डदाने दर्शितं शक्र-  
 दैवतमण्डलं पार्थिवमण्डलञ्चतच्चतुष्कोणं विधेयं ।

धूपं सर्जरसं कृत्वा दद्यात्तं शिवयोगिने ।  
 भृगुन्यपति-रीशानः शक्ररूपौ तिलाग्रयः ॥  
 न्यासीत्यं पृथिवीजातं स मत्पापं व्यपोहतु ।  
 इति कृत्वा विनश्यन्ति पापानि क्षितिजानि च ॥  
 भोजने यानि हिंस्यन्ते स्थावराणि चराणि च ।  
 कण्डूतिवमने यानि शवमद्यादिगन्धयोः ॥



प्राणे प्राणे गवां गन्धे श्रोत्रियस्यातुरस्य च ।  
 पुनः शिवपुरे तिष्ठेद्यावदिन्द्राश्चर्द्दश ॥  
 इतरेष्वपि सर्वेषु विधिः साधारणः स्मृतः ।  
 विशेषेण च वक्ष्यामि तत्र तत्र शूचिस्मिते ॥

इति तिलारञ्जकदानविधिः ।

वायुपुराणात् ॥

तिलपीठमथो वक्ष्ये मारदारुमये शुभे ।  
 पीठे रत्निद्वयायामे तिलपूर्णं सभित्तिके ।  
 व्योमाधिपं गणेशानरूपिणं शिवमर्चयेत् ॥

गणेशरूपमाहात्रियः ।

चतुर्भुजोगजमुखो मूषकस्थश्च तुण्डिलः ।

विषाणं चाक्षसूत्रञ्च परशुं मातुलाङ्गकं

दधानोविघ्नराजः स्यादिति ॥

शुक्तेर्गन्धेश्व धूपश्च कर्पूरं धूपयेत्तथा ।  
 क्षौमे च वासमी दद्यात् पुस्तकं तत्र विन्यसेत् ॥  
 व्योमध्वनिपतिः शुम्भो गणनाथ तिलाश्रयः ।  
 व्योमशब्दश्रुतिप्राप्तं पापमीश व्यपीहतु ॥

इतिदत्तेऽस्य नश्यन्ति पापान्याकाशजानि च ॥  
 अनिवडकयोत्थानि परनिन्दाकथानि च ।  
 कूटमाक्षिसमुत्थानि पैशुन्यजनितानि च ।  
 वेदनिन्दा गुरोर्निन्दा तयोश्च अवग्रेन च ।  
 हन्ति पापान्यशेषाणि तिलपीठप्रदानतः ।  
 शिवलोके च कल्याणं मोदते दग्धपञ्च च ॥

इति तिलपीठदानविधिः ।

तस्मिन्नेव पुराणे ।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि तिलदानमनुत्तमं ।  
 पूर्वोक्तकल्पिते पीठे चतुःकुम्भपरिष्कृते ॥  
 आदर्शविमलं न्यस्य तत्र देवं मनोमयं ।  
 विष्णुरूपधरं शम्भुं विन्यस्य परितोन्यसेत् ॥

विष्णुरूपमुक्तं ।

नारदेन ।

तद्यथा । शङ्खचक्रगदापद्मधरो वामोर्ध्वाहुतः ।

विष्णुविधेयो भगवान् विशेषान्याममूर्त्तिश्चिति ॥  
 पीतवस्त्रयुगन्दित्रु चक्तादीन्यायुधानि च ।  
 पञ्चलोहप्रतिष्ठानि तुलसीभिः समर्चयेत् ॥  
 मनोमय नमस्तेऽस्तु साम्यरूप इवध्वज ।  
 मनस्कृत्यानि पापानि सर्वान्याशु विनाशय ॥  
 इति दत्तेऽस्य नश्यन्ति मानसानि कृतानि वै ।

परद्रोहप्रवृत्तानि कामलोभोद्भवानि च ॥  
 क्रोधजानि च सर्वाणि पापानि च विशेषतः ।  
 अवाच्यवाचने यानि अध्येयध्यानजानि च ॥  
 मदनोत्सवजातानि क्रोधोद्भूतानि यानि च ।  
 ध्यान्यावृत्तवृत्तानि नश्यन्ति सकलान्यपि ॥  
 शिवलोके वसेद्वर्षाण्यव्युदन् दश कामतः ॥

इति तिलादर्शदानविधिः ।

वायुपुराणात् ।

तिलकुम्भमथो वक्ष्ये कुम्भे पूर्ववदास्थिते ।  
 वारुणे मण्डले देवं वरुणाकारमर्चयेत् ।  
 श्वेतैः पुष्पैः फलैर्गन्धैः कर्पूरेण तु पूजयेत् ॥

वरुणलक्षणमुक्तं ।

ब्रह्माण्डदने ।

“वारुणं मण्डलं प्राप्य मण्डलं” तच्च अर्द्धवन्द्राकारं कर्त्तव्यं ।

पट्टमान् परितोन्यस्य ततोमन्त्रमिमं जपेत् ॥  
 नमोवरुणरूपाय रसाम्बपतये नमः ।  
 रसवारिनिमित्तानि यान्तु नाशमघानि मे ।  
 तिलकुम्भप्रदानेन प्रसीद परमेश्वर ॥  
 इति दत्ते विनश्यन्ति पापानि जलचारिणां ।  
 हिंसोद्भवानि स्नानेषु पानपाकेदगहने ॥  
 रसोपादानभक्षाणां अपेयानाञ्च वाञ्छया ।

श्रीषधञ्चापि देवेश सर्वमेध्यं भविष्यति ।  
शिवलोके वसेत्कल्पान् शतपञ्चदशावरान् ॥

इति तिलकुम्भदानविधिः ।

वायुपुराणात् ।

करकं तिलसम्पूर्णं मण्डले वज्रिदैवते ।  
शिवं वज्रिवदाधाय पूजयेत् करवीरकैः ।  
रक्तचन्दनगन्धेन निर्यासेन च धूपयेत् ॥  
'वज्रिदैवतमण्डलं' त्रिकोणं मण्डलमित्यर्थः  
'शिवं वज्रिवदिति' वज्ररूपिणं शिवमाधयेत्यर्थः ।

तद्ररुक्तं ।

ब्रह्माण्डदाने

निर्यासः, सर्जरसः ।

आदर्शञ्च ततोदयाहोपानाञ्च चतुष्टयं ।  
वज्रिरूपपतिः शम्भुर्वज्रिरूपो तिलाश्रयः ॥  
तेजोरूपकृतं पापं चाक्षुषञ्च व्यपोहतु ।  
इति दत्तेऽस्य नश्यन्ति पापान्यग्निकृतानि च ॥  
पाकहोमेषु काष्ठेषु हिंस्यन्ते यानि वज्रिना ।  
अङ्गारवनदाह्लादिसम्भवानि च यानि वै ॥  
विरुद्धकरणोत्थानि रूपयोगोद्भवानि च ।  
परदारपरद्रव्यपुत्रदर्शनजानि च ॥

शवादिदर्शनोत्थानि नेत्रदोषकृतानि च ।  
 य एवं कुरुते दानं शिवभक्त्या यतव्रतः ।  
 शिवलोके वसेद्भूप कल्पत्रयमशङ्कितः ॥

इति तिलकरकदानविधिः ।

वायुपुराणात् ।

अतः परमहङ्गारं नाम दानं वदामि ते ।  
 पूर्ववत् कल्पिते पीठे तिलानामुपरि न्यसेत् ॥  
 राजतं मण्डलं शुद्धं विश्वगष्टाङ्गुलायतं ।  
 तत्र देवमहंकारं पविशक्तिधराकृतिं ॥  
 विन्यस्य राजतानन्यान् कुमारान् परितोन्यसेत् ।  
 नैगमेशं विशाखञ्च कुमारं गुहमेव च ॥  
 'पूर्ववदिति, तिलपीठदानवदित्यर्थः ।  
 पविः वज्रं,  
 अहङ्कारश्च पुरुषाकृतिः द्विभुजो बज्रशक्तिधरोविधेयः ।  
 नैगमेषादिलक्षणमुक्तं विश्वकर्मेष्टिना ।  
 ततः स्कन्दग्रहा जाता दारुणा विकृताननाः ।  
 नैगमेषमुखाः शक्तिधरा दिवाहवस्तथेति ॥  
 कौमुभे वाससी दद्यात् घण्टाञ्च परितो न्यसेत् ।  
 कुङ्कुमं गन्धकाम्ब्यं स्यात्पुष्पञ्च करवीरजं ॥  
 अहङ्कारपति देव गुह्यरूप दुरन्तक ।  
 अभिमानकृतादोषात् सर्वस्मात्पाहि मां प्रभी ॥

इति दत्तेऽस्य नश्यन्ति यान्यहंकारजानि तु ।  
 पारुथस्त्रोनिषेध्यादिविप्रक्षत्रियजानि च ।  
 तानि सर्वाणि नश्यन्ति यानि कथं विलङ्घनैः ॥  
 अनात्मन्यात्मबुद्ध्या तु गृहक्षेत्रादिसङ्गमे ।  
 अन्यानि यानि पापानि तानि नश्यन्ति सर्वतः ॥  
 पापानि तानि नश्यन्ति शिवलोके वसेन्नरः ।  
 कल्पानां शतमेकञ्च नात्र कार्या विचारणा ॥

इति अहङ्कारदानविधिः ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलदानमनुत्तमं ।  
 यद्दत्त्वा पुरुषः स्त्री वा वैरिञ्चिं लोकमाप्नुयात् ॥  
 आयुरारोग्यदं पुण्यं सञ्जयापप्रणाशनं ।  
 शिवप्रोतिकरं नृणां पुत्रवृद्धिकरं शुभं ॥  
 रुद्रैकादशबुद्ध्या तु विप्रानेकादशान् सुधीः ।  
 प्राङ्मुखः प्रत्यगासीनान् गन्धादिभिरथार्चयेत् ॥  
 तिलप्रस्यद्वयं पात्रे प्रत्येकं निक्षिपेत्तथा ।  
 प्रत्येकं मण्डलं हैमं पात्रेषु विनिवेदयेत् ॥  
 पात्राणि चैवमाराध्य शिवबुद्ध्या यथाक्रमं ।  
 रुद्रैकादशमन्त्रैश्च दद्यादुदकपूर्वकं ॥  
 रुद्रैकादशमन्त्राः वक्ष्यमाणैर्नामभिर्नेमोन्त्रैश्चातिथ्याः ।

मृगव्याधश्च सर्वश्च नैर्ऋतिश्च महायशाः ।  
 अजैकपादह्रिर्बुध्नः पिनाकी च परन्तपः ॥  
 वहनोथेश्वरश्चैव कपाली च महाद्युतिः ।  
 स्थाणुर्भवश्च भगवान् रुद्रा एकादशा विदुः ॥

इति रुद्रैकादशतिलदानविधिः ।

तस्मिन्नेव पुराणे ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलगर्भमनुत्तमं ।  
 यत्संप्रदानान्मनुजो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥  
 अपमृत्युजयोपायो व्याधिनिर्म्भीक्ष्णक्षमः ।  
 तिलगर्भइतिख्यातो रहस्यः पापनाशनः ॥  
 यदा ग्रहोपरोधः स्याज्जन्मर्चस्यातिदारुणः ।  
 व्याधीनाञ्च रोगमुत्थाममुत्पातस्यापि चोदयः ॥  
 तिलगर्भस्तदा कार्यः सर्वदोषोपशान्तये ।  
 निमित्तानन्तरं कुर्यान्नैमित्तिकविधिक्रमं ॥  
 गोमथेलोपलिप्तायां चितावास्तोर्यं वाससी ।  
 शालीलामाङ्गकं मध्ये तदर्द्धन्तण्डुलं न्यसेत् ॥  
 तेषु पद्मं प्रविस्तीर्यमष्टपत्रं सुकर्णिकं ।  
 कर्णिकायां न्यसेत्पद्मं सौवर्णं शक्तितः कृतं ॥  
 नवरत्नानि तत्पद्मे निधातव्यानि यत्नतः ।  
 ततस्तद्बाह्यतः शुद्धान् तिलान् कुर्यात् समन्ततः ॥  
 गर्भवद्वाससा भूयः समास्तीर्य ततः शनैः ।  
 गर्भन्तं योनिमन्त्रेण समाधाय यथाविधि ॥

तत उपवेश्य पुरुषं कृष्णकृतसुमुष्टिकं\* ।  
 तस्याङ्गिषु न्यसेन्नन्त्रं मृत्युञ्जयमनुक्रमात् ॥  
 तच्च देवं विरूपाक्षमर्द्धचन्द्रविभूषणं ।  
 कल्पयित्वा च येत् मन्त्रं पञ्चत्रय्यभिरादरात् ॥

योनिमन्त्रः ।

यस्यै यज्ञियोगर्भा यस्यै योनिर्हिरण्यवीत्यादिवाजसनेयानां  
 प्रसिद्धः ।

मृत्युञ्जयन्यासमाह शौनकः ।  
 ताम्बकं यजामहे शिखायां,  
 न्यसेत् सुगन्धिं पुष्टिवर्धनमिति हृदये,  
 उर्वारुकमिव बन्धनादिति बाह्वोः,  
 मृत्योर्मुक्षीय मामृतादिति नाभौ,  
 पादे गुल्फे च जङ्घोरुजघने कटिभेदयोः ।  
 नाभौ कुक्षिद्वये पार्श्वे कक्षयोः कुचयोर्हृदि ॥  
 स्कन्धे कृक्काटिकायाञ्च कूर्परे मणिबन्धके ।  
 कनिष्ठानामिकामध्यातर्जन्यङ्गुष्ठपाणिषु ॥  
 कण्ठेऽथ चिबुक्ये वक्त्रे नामिकाकर्णचक्षुषि ।  
 ललाटे मूर्ध्नि चङ्गायां वस्त्रान् मन्त्रस्य विन्यसेत् ॥  
 इति, देवीपुराणोक्तौवा मृत्युञ्जयमन्त्रन्यासो गृह्यते,



स च गारुडपुराणोक्तनानारोगघ्नतुलापुरुषदाने द्रष्टव्यः ।

पञ्च ब्रह्माणास्तत्पुरुषादिमन्त्राः

तस्य मूर्ध्नि पुनः पद्मं सौवर्णं पूर्ववत् कृतं ।

विन्यसेद्वस्त्रमावेद्य तिलैरापूरयेत् पुनः ॥

तं गर्भमच्च येद्भूयश्चिन्तयित्वा मृतोद्भवं ।

अमृतश्राविणं चन्द्रं स्वेनमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥

ततः शतावृतं मन्त्रं मृत्युञ्जयमनुत्तमं ।

तत उदशपयेत्तस्मात् गर्भस्थानात् समाहितः ॥

पुनः संप्रोच्य वारुण्या पावमानीभिरेव च ।

पूर्वं देहविनिर्मुक्तः शंकरोऽस्मीति चिन्तयेत् ॥

ब्राह्मणाय विनीताय ज्ञानिने वीतमन्यवे ।

ब्रह्मनिधाय तत्सर्वं संप्रदद्यात्तिलादिकं ।

प्रोयतां भगवान् शम्भुश्चद्रमौलिरिति ब्रूवन् ॥

तत्र तिलगर्भउपवेशनं,

शङ्करोऽस्मीति च ध्यानमुत्थानं, समन्त्रकं । तिलादिदानं  
यजमानकर्तृकं । अन्यत सर्वमाचार्यः कुर्यात् ।

अनेन विधिना यस्तु तिलगर्भं समारभेत ।

अकालमृत्युर्न भवेत्तस्य नास्त्यत्र संशयः ॥

व्याधेनां विप्रसीतः स्यात्सहतामपि निश्चयः ।

ग्रहदोषाश्च नश्यन्ति प्रसीदन्ति ग्रहाः पुनः ॥

उत्पातानां प्रशान्तिश्च विविधानामपि क्षणात् ।

विविधानामपि भौमान्तरिक्षदिव्यानां ॥

तिलगर्भदानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-  
सकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रि-विरचिते-चतुर्वर्ग-  
चिन्तामणौ-दानखण्डे तिलगर्भदाना-  
न्तानि दानानि समाप्तानि ।

---

## दानखण्डम् नवमोऽध्यायः ।

प्रथममारभ्यते ।

अथ गजदानं ।

कूर्मपुराणे ।

दद्याद्भजं पुराणोक्तमूल्यं पञ्चशतानि वा ।

वित्तानुसारात् तत्रापि कनिष्ठोत्तममध्यमं ॥

पुराणोक्तं मूल्यमत्र हेममाषशतद्वयं तथास्वरूपगजदानेन  
सह वित्तानुसाराद्वैविध्यं तत्र स्वरूपगजदानं उत्तमः पक्षः  
पञ्चशतानीति मध्यमः, शतद्वयं कनीयानिति पञ्चशतानीत्यत्राह  
हेममाषाः संवध्यन्ते ।

रूप्यस्थूणालंकरणं तारागणविभूषणं ।

सदक्षिणं वित्तशक्त्या दत्त्वा विष्णुपुरं ब्रजेत् ॥

स्थूणा रज्जुः । तारागणो मौक्तिकादिस्तुतोगज ।

भूषणविशेषः ।

इति गजदानविधिः ।

अथ लिङ्गपुराणे ।

गजदानं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।  
 द्विजाय वाथ दातव्यं देवदेवाय वा पुनः ॥  
 गजन्तु लक्षणपितं हैमं वा राजतं तु वा ।  
 सहस्रनिष्कमातिण तदर्द्धनापि कारयेत् ॥  
 तदर्द्धार्द्धेन वा कुर्यात् सर्वलक्षणभूषितं ।  
 पूर्वाक्तदेशकाले च देवाय विनिवेदयेत् ॥  
 अष्टम्यां वा प्रदातव्यः शिवाय परमेष्ठिने ।  
 ब्राह्मणाय दरिद्राय श्रोत्रियायाहिताग्नये ।  
 शिवमुद्दिश्य दातव्यः शिवं संपूज्य पूर्ववत् ॥  
 पूर्ववदिति लिङ्गपुराणाक्ततुलापुरुषदानवदित्यर्थः ।  
 एतद्यः कुरुते दानं शिवभक्तिसमन्वितः ।  
 स्थित्वा स्वर्गे चिरं कालं राजा गजपतिर्भवेत् ॥

इत्यपरो गजदानविधिः ।

विष्णुसंहितायां ।

कक्षारज्जभिरायत्तं शुभामनमसन्वितं ।  
 सणिकाञ्चनमालाभिर्भूषितं कर्णवासुरैः ।  
 सूत्रखण्डेय पुष्पैश्च भूषितं द्यौषधैर्जितं ।  
 यथाक्ताभीषपत्रं वा यः प्रयच्छति दन्तिनं ।  
 ब्राह्मणाय दरिद्राय स्वर्गलोके महीयते ॥  
 कर्षाक्षयादिहागत्य महाराजागणाधिपः ।

सर्वपापविनिर्मुक्तोजायते नात्र संशयः ॥

अथ वातुलशास्त्रे ।

गजदानमथो वक्ष्ये संचेपाद्विधिना शृणु ।

द्विजानामेव दातव्यं देवानां प्रीतिकारकं ॥

यीकारं दण्डं धन्यं बलपुष्टिद्विर्द्धनं ।

रीसन्नं सन्ततिकारं जगदापहिलाशनं ॥

गजं सुलक्षणीयं शुद्धदेशसमुद्भवं ।

युवानं कृपयन्नात्रं सर्वाभरणभूषितं ॥

पूर्वाक्षदेशकालेच देवालयसमीपके ।

जानीय गजं राजानमैरावतकुलीद्वयं ।

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्विप्रमुखाय दापयेत् ॥

पुण्यान् तत्र कर्तव्यं शिवपूजा तथैवच ।

आचार्यपूजनं चान्न कर्तव्यं विधिपूर्वकं ॥

अथ महाभारते ।

हृन्मृगश्रेणयादीनि यः प्रयच्छति शक्तिः ।

द्विजाय सुविगिष्टाय सर्वाः प्रावाहिताग्ने ।

यत् फलं सलवाप्नोति तस्मै निगदतः शृणु ॥

पटिर्वर्षसहस्राणि पटिर्वर्षेणयानि च ।

भोगान् भुक्तासरपुरे राजा कालक्षयादिह ॥

इदं वातुलशास्त्रं ।

“अथ अनुक्रमगोवादेत्यादि ।

इमं हस्तिजं कक्षारज्जुस्त्रिरामनमहितं काञ्चनमानाकीर्णं  
चामरगन्धपुष्पाक्षतं प्रजापतिदेवतं अक्षयार्णवाजपथस्यजहं  
संप्रददे, नममेति, आ अद्य अमुकमग्रीवायेत्यादि । एतद्वस्तिदान  
प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं सुवर्णं तुभ्यमहं संप्रदद्रे न सदेति ।

इति हस्तिदानविधिः ।

अथाह वौडायनः ।

वाग्विरोधं गुरोः कृत्वा मुखरीगौ भवेन्नरः ।  
तस्य दानेन विहितः प्रतीकाराऽयमुच्यते ॥  
सौवर्णं राजतं ताम्रं पलेनार्द्धपलेन वा ।  
कारयेत् करिणं सौम्यं यथाविभक्तोऽथवा ॥  
तस्यैव कारयेदन्तौ शुश्रेण रजतेन तु ।  
पुच्छश्चा मोक्षिकैः कुर्याद्द्रुवाभ्यामक्षिणी तदा ।  
सस्येष्ट्य पीतवस्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।  
अर्चयेद्धान्यरागिस्थं धान्यं द्रोणपटकं मतं ॥  
श्रुतवृत्तापमपन्नं ब्राह्मणं संयतेन्द्रियं ।  
दान्तं कुलीनं धर्मिष्ठमनुद्देशकरं क्षुण्णं ॥  
आह्वय परया भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।  
पूजयेत् प्रयतो भूत्वा तेनैतत् कर्ष्य कारयेत् ॥  
समिद्राज्यतिलैस्त्रेण होमं चापि पयर्जयेत् ।  
अग्निनाज्जिं तप्राधाय शुभं चरति न क्रमात्  
मन्वा एते विनिर्दिष्टा इध आष्वत्थइत्यने ॥  
कृत्वा चैवाप्रणोम्यस्ततोहस्यर्चनं भवेत् ।

स्वाचान्तः कर्म कृत्वाथ प्रणीतामोक्षं तथा ॥

ततः शुक्ताम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।

तस्मै हुनवते दद्यात् करिणं तं सदक्षिणं ॥

मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय विशेषतः ।

सुप्रतीकगजेन्द्र त्वं सरस्वत्याभिषेचनं ॥

इन्द्रस्य वाहनं शश्वत्सर्वदेवेश पूजितं ।

दानेनानेन दत्तेन मुखरोगे विनाशय ॥

दानमन्त्रः ।

ब्राह्मणान् भोजयेदन्ते साङ्गं भुञ्जीत बन्धुभिः ।

इति मुखरोगहरगजदानविधिः ।

अथाह वृद्धगौतमः ।

पलेन वा तदर्धेन तदर्द्धार्धेन वा पुनः ।

कारयेद्वाहनं हेमं चतुर्दन्तं तु वारणं ॥

दन्ताः स्वर्णमयाः कार्य्या रत्नैर्नानाविधैर्युताः ।

सर्वाभरणसंयुक्तं करिणं चोपकारकं ॥

यत्तत्सर्वप्रदाने तु तस्य पार्श्वे समाहितः ।

उपचारैः षोडशभिरर्चयेत्तत्पुष्पकैः ॥

ततो ब्राह्मणमाह्वय सर्वशास्त्रार्थकीविदं ।

अतएव तोपमम्पन्नमनुद्वेगकरं नृणां ॥

भक्त्या संपूज्य वस्त्राद्यैर्होमं तेन च कारयेत् ।

मन्त्रैः पौराणिकैः सम्यक् मंहिताशास्त्रवीदितैः ॥

चत्वारोदिग्गजा ये च पुष्पदन्तादयश्च ये ।  
 सार्वभौमादयोयेच आहृत्वातोषयामि तान् ॥  
 समिदाज्यतिलैर्होमो गजस्य प्रीतये भवेत् ।  
 तस्मै हुतवते सम्यक् पृणिप्रौढ्यर्थमादृतः ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिर्वह्न्याङ्गतिममन्वितः ।  
 प्राङ्मुखस्य व्रणोचोदङ्मुखोऽङ्गस्य वाहनं ॥  
 ऐरावतश्चतुर्दन्तो गजानां नायकस्तु यः ।  
 दिग्दन्तिनां पूज्यतमो व्रणं क्षपयतु प्रभुः ॥  
 अनन्तरमनुव्रज्य तमाचार्य्यो मुदान्वितः ।  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा च स्वयंभुञ्जीत वाग्यतः ॥  
 एवं कृते व्रणावाधात् तत्क्षणादेव सर्पति ।  
 तेनैव व्रणिभिर्नूनं कार्य्यमारीग्यहेतवे ॥

इति व्रणघ्नगजदानविधिः ।

अथ देवताभ्यो गजदानं ।

शिवधम्नात् ।

निवेदयति योनागं भक्त्या स्वर्गाद्यलंजनं ।  
 शिवाय पर्व्वदिवसे तस्य पुण्यफलं वृत्तु ॥  
 स मत्तैरावतप्रस्थैर्गजैर्दुर्लभैः सुगोभनैः ।  
 प्रक्रीडति महायानैः गतमंस्थैरनेकशः ॥  
 कल्पकोटिमहस्त्राणि कल्पकोटिगतानि च ।



रुद्रलोके गतवान्ते भवेदिह सुराधिप ।  
 चतुर्युगसहस्रान्ते स्वर्गं प्राप्य नराधिपः ।  
 भवेदिन्द्रसमः शीमान् रूपवैख्यसमन्वितः ॥

इति शिवगजदानं ।

गारुडपुराणे ।

योजगन्निधये नागं प्रयच्छति महासतिः ।  
 भद्रजातिसमुद्भूतं पद्मनाभाय शक्तितः ।  
 कुप्यकं बलगीभाव्यं घण्टाचाजरभूषितं ॥  
 वरचाकुशमयुक्तं अनेकम्वर्णभूषणम् ।  
 नानामण्डनभूषितं चारुहिरिडमडम्बरं ॥  
 कृत्वा विष्णोर्महापूजां कार्त्तिकैकादशीदिने ।  
 द्वादश्यामर्पयेत्तत्तु देवदेवाय चक्रिणे ॥  
 त्रिलोकीनाय देवेन सर्वभूत कृपानिधे ।  
 गजदानेन तुष्टस्त्वं प्रयच्छ मम वाञ्छितं ॥  
 इत्यर्चय्याथ दत्त्वा तं प्रणिपत्य जगत्प्रभुं ।  
 सुरेन्द्रलोकपालाय क्रीडति कालसज्जयं ॥  
 वर्षावृद्धमहज्जगणि क्रीडित्वा मुचिरं दिवि ।  
 ततोभूलीकसामाद्य साव्येक्षोमी नृपोभवेत् ॥

इति विष्णुगजदानविधिः ।

आदित्यपुराणे ॥

निवेदयति योनागं भक्त्या स्वर्गाद्यलङ्कृतं ।

सूर्याय पर्व दिवसे तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 स सत्तेरावतद्रात्रौ गेजदुर्गः समीपजैः ।  
 प्रक्रीडति महादानैः मग्नं वै तदिक्रमः ।  
 सान्निध्यमनुयायां कृत्वा नश्यतिर्षद्विभू ॥  
 भुक्त्वा तु विष्णुनाम्नीनाम् पितृणां च शरीरैः ।  
 सृष्ट्विद्योसं कलासाय स तर्क्यते तदाश्रिते ॥

इति सूर्याजद्वाराविधिः ।

अथ दामोदरजं ।

तत्र वक्तिपुराणि ।

गृहदानं श्रुतं राजन् दामोदरं ततः शृणु ।  
 तव भक्त्या प्रपन्नानि सत्तारोग्यप्रदायकं ॥  
 चतुर्णीनाम्पुत्राणां हि गृहस्थः विदु उच्यते ।  
 गृहस्थान् गृहं राजन् गच्छति तु वरस्त्रियः ॥  
 अहिर्बुध्न्यसदृशो जगतामाद्यसर्गोत्पत्तिः ।  
 गृहहृत्पणवृत्तीनां नरकजन्तापरीविधिः ॥  
 अदृग्दृग्वापिकं ग्राममदानोक्तं यद्वृत्तं ।  
 अनाज्यभाजनं यच्च वृथा तदिति मे मतिः ॥  
 विभज्याभरणा दाया ददृहं समुदासने ।  
 तत्रान्ते पङ्कजकरा पत्नीः क्षीरिचमाप्रिताः ॥  
 न तदास्मि गृहे गीचं न सुखं यदावहारजं ।  
 यत्र कर्मकरी तास्ति सर्वकर्मिणो मदा ॥  
 किंकराणां हतं कर्म न करोतीह यद्वृत्तं ।

यदेका कुरुते दासी गृहस्थेन भृता सती ॥  
 बहुलीकाकुलीग्रामीदासीदासाकुलं गृहं ।  
 बुद्धिर्द्धमाकुला यस्य तस्य चेतः किमाकुलं ॥  
 यस्य भार्या गृहे दत्ता दासी कर्मण्यनुव्रता ।  
 भृत्याः सत्त्वाद्यतकरास्त्रिवर्गस्तत्र सिद्धाति ॥  
 यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ।  
 तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥  
 एतद्विचार्य हृदये दासीं दद्याद्विजातये ।  
 स्थिरनक्षत्रसंयुक्ते सौम्ये सौम्यग्रहान्विते ।  
 दानकालं प्रशंसन्ति सन्तः पर्वणि वा पुनः ॥  
 अलङ्कृत्य यथाशक्त्या वासीभिर्भूषणैस्तथा ।  
 ब्राह्मणाय प्रदातव्या मज्जे ण भक्तितस्तथा ॥  
 इयं दासी मया तुभ्यं योमती प्रतिपादिता ।  
 सदा कर्मकरी भोग्या यद्येष्टं भद्रमश्नुते\* ॥

इदमिह दानवाक्यं ।

ओं अद्य अमुकसगीतायेत्यादि इमां दासीं सुवर्णालङ्कार  
 वतीं गन्धपुष्पायलङ्कृतां अक्षयसुखप्राप्तिकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे ।  
 न ममेति ।

ओं अद्य अमुकसगीतायेत्यादि एतद्दासीदानप्रतिष्ठार्थं  
 दक्षिणामेतत् सुवर्णं तुभ्यमहं सम्प्रददे, न ममेति ।

पञ्चवर्षाधिका सा तु चत्वारिंशत्समावधिः ।

दासी द्विजाय दातव्या दासदानेऽप्ययं विधिः ।  
 दत्त्वा क्षमापयेत्पश्चाद्वाह्मणं वस्त्रकाञ्चनैः ॥  
 अनुगत्वा तु सीमायां द्विजं विसर्जयेत् ततः ।  
 एवं दत्त्वा महाराज कृतकृत्यो भवेत्पुमान् ॥  
 इह लोके परेचैव सप्तजन्मान्यखण्डितः ।  
 गृहकर्मकरीं दद्यात्तृणीं रूपशालिनीं ।  
 बहुद्रव्योपसंयुक्तां ग्रामवेश्मसमन्वितां ॥

दासीं समीक्ष्य बहुशो गृहकर्मदत्तां  
 यो ब्राह्मणाय कुलशौलवते ददाति ।  
 विद्याधराधिपतिभिस्त्वभिपूजितोऽसौ  
 मर्त्यः प्रयाति स्वजनैः सह विष्णुलोकं ॥

कूर्मपुराणे ।

दासीं दद्याद्यथाशक्ति मूल्यानालङ्कृतां शुभां ।  
 सुवर्णरजतैः साङ्गैः विधिवद्दद्यान्नुतां ॥  
 वित्तानुसारात्तां दत्त्वा विप्राय गृहमेधिने ।  
 मोदतेऽप्सरसां लोके यावत्कल्पयन्तव्यं ॥

इति दासीदानविधिः ।

अथ कालोत्तरे ।

योलंक्रत्य स्त्रियं शम्भोरुत्तमां विनिवेदयेत् ।  
 मोक्षमेधस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं लभेत् ॥

सुविनीतां स्त्रियं दासीं भृतकार्थं निवेदयेत् ।

नरमेवस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं लभेत् ॥

इति शिवाय दासीदानविधिः ।

अथ रथदानं ।

कूर्मपुराणे ।

रथं चतुर्व्वलीवर्द्धैरूढं धान्यावृतन्निधा ।

वित्तानुसारात् सर्व्वैश्च रथोपकरणैर्युतं ।

सदक्षिणञ्च विप्राय दत्त्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥

धान्यावृतमिति,

अष्टादशधान्यानि परिभाषायां व्याख्यातानि, त्रिधेति विद्वा-  
कसुवर्णदक्षिणानुसारादुत्तम मध्यम-कनिष्ठ-भेदेन त्रैविध्यं रथोप-  
करणानि युगयोक्तप्रतीदवरत्रादीनि ।

तत्र दानवाक्यं ।

अथ अमुकसगोत्रायेत्यादि चतुर्व्वलीवर्द्धैर्युक्तं अष्टादशधान्य-  
परिवृतं सकलस्त्रीपस्करयुतं एतं रथं विश्वकर्मदेवतं निरत्यय-  
स्वर्गादिमुखकामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति ।

अमुकसगोत्रायेत्यादि एतद्रथदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं  
सुवर्णं तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति ।

दानमन्त्रस्तु ।

स्कन्दपुराणे ।

रथाय रथनाथाय नमस्ते विश्वकर्म्मणे ।  
विश्वभूताय नाथाय अरुणाय नमो नमः ॥

गारुडपुराणे ।

गन्त्रीं तुरङ्गसंयुक्तां योददाति द्विजातये ।  
सर्वकामसमृद्धात्मा स राजा जायते भुवि ॥

गन्त्री नाम रथविशेषः ।

सचक्राख्यां युगोपितां मत्तवारणभूपितां ।  
आस्तीर्णैवचास्तरणां योक्तयुक्तां सकृवरां ॥  
युक्तां चतुर्भिस्तुरगैर्द्वाभ्यां वा शक्तितो युतां ।  
बलीवर्द्ध्युताञ्चापि द्विजाय प्रतिपादयेत् ॥  
पुण्येहि विप्रमाह्वय कृत्वा वस्तादिभूपितां ।  
मदिक्षणां यथाशक्त्या दद्यात् प्रयतमानसः ॥

दानमन्त्रः ।

गन्त्रीमिमां प्रयच्छामि विश्वकर्म्माधिदैवतां ।  
दानेनानेन भगवान् प्रीयतां मे परः पुमान् ॥  
एवं प्रदाय विधिवद्गन्त्रीं मन्त्रेण मानवः ।  
विमानेनार्कवर्षेण देववह्निवि मोदते ॥  
इह लोके भवेद्राजा बलवान् धर्मवत्सलः ॥

महाभारते ।

प्रदानं सर्वदानानां शकटस्य विशिष्यते ॥  
 एवमाह महाभागः शाण्डिल्यो भगवान् ऋषिः ।  
 शकटं दम्यसंयुक्तं यो दद्यात्तु द्विजातये ।  
 तस्य स्वर्गे विमानन्तु सर्वहेममयं शुभं ॥  
 दिव्याङ्गनाभिराकीर्णं सर्वरत्नविभूषितं ।  
 उपतिष्ठति विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदं ॥

इति रथदानविधिः ।

अथ रथदानप्रसङ्गेन शिविकादानमुच्यते ॥

वज्रिपुराणे ।

वसिष्ठ उवाच ।

शृणु चान्यत् महीपाल महादानमनुत्तमं ।  
 येन वै दत्तमात्रेण मुच्यते नरकार्णवात् ॥  
 मार्गशीर्षे शुभे पक्षे समुपोष्य हरेर्दिनं ।  
 माघफाल्गुनयोर्वापि वैशाखस्य शरत्तु च ।  
 द्वादश्यां हरिभक्त्यर्च्य कलशोपरिसंस्थितं ॥  
 शङ्ख-शार्ङ्ग-गदा-चक्र-धरं शक्त्या हिरण्मयं ।  
 शिविकां वक्रवंशोत्था-मृजुदारुमयीमथ ॥  
 आनीय सन्निधिं विष्णोः शुभच्छत्रसमन्वितां ।  
 सम्भूय च स तां भूषां जागरं तत्र कारयेत् ॥

विद्याभिजनमम्पन्नं विदग्धं\* शास्त्रवित्तमं ।  
 आज्ञासारं शुचिन्दत्तं कलत्रापत्यभूषितं ॥  
 प्रातः सभार्यमभ्यर्च्य वासोभिः कर्णभूषणैः ।  
 उपान-च्छूरिका-खड्गपट्ट-कञ्चक-वेणिका ॥  
 आदर्शस्थगिकापानपात्रञ्च कांस्यभाजनं ।  
 चत्वारी वृषभा देया धेनवश्च सुलक्षणाः ॥  
 शिविकावाहनानान्तु तथैव कृत्वधारिणः ।  
 वृत्तिर्देया तथात्रञ्च वर्षार्हं ब्राह्मणस्य च ॥  
 वर्षे वर्षे पुनर्देयं ब्राह्मणस्यैतदेव तु ।  
 वृत्तिरेव त्वमस्यत्ती वर्षे वर्षे पि वार्षिकी ॥  
 इहामुत्रातपत्राणं कुरु केगव मे प्रभो ।  
 कृत्रन्त्वत्प्रीतये दत्तं ब्राह्मणाय मया शुभं ॥  
 देव देव जगन्नाथ विश्वात्मन् दत्तयानया ।  
 प्रभो शिविकया देव प्रीतीभव जनाईन ॥

इति दानमन्त्रः ।

दत्त्वा तु ज्ञानविदुषे सपत्नीकाय पुत्रिणे ।  
 सुरापःस्तेनकृत् सङ्गी व्रह्महा गुरुतल्पगः ॥  
 शिविकादानमाहात्म्यात् मुच्यते पातकात् स्फुटं ।  
 पितृपक्षं मातृपक्षं पत्नीपक्षं तथैव च ।  
 आत्मानं बन्धुपक्षञ्च तारयेन्नरकार्णवात् ॥



भुक्ता तु विपुलान् भोगानिहामुत्रसुखप्रदान् ।  
सपत्नीकः सपितृको विष्णुसायुज्यमश्नुते ॥

इति शिविकादानविधिः ।

अथ क्रमप्राप्तस्य महादानस्यातिदानप्रकरणे निरूपित-  
त्वात् रथदानानन्तरं गृहदानमारभ्यते ।

तत्र सम्वर्त्तः ।

गृहदाता सुखी प्राज्ञो वितृष्णः सर्व्ववस्तुषु ।  
प्रज्ञा-सुख-वितृढ्वयार्थं पात्रे-देयमतोगृहं ॥

वृहस्पतिः ।

रसान्नोपस्करयुतं गृहं विप्राय योऽर्पयेत् ।  
न हीयते तस्य वंशः स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमं ॥

वेदव्यासः ।

सर्व्वकामैः सुसम्पूर्णं दत्त्वा वेश्म हिरण्मयं ।  
मुद्गलाय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महामतिः ॥  
सर्व्वरत्नं वृषाः दर्भा युवानोऽश्वाः प्रियाःस्त्रियः ।  
रम्यमावसथञ्चैव दत्त्वामुं लोकमास्थितः ॥

महाभारते ।

नैवेशिकं सर्व्वगुणोपपन्नं  
ददाति यद्यैव नरो द्विजाय ।

स्वाध्यायचारित्र्यागुणाय राज-  
स्तस्यापि लीकाः कुरुजाङ्गलेषु ॥  
वीजैरशून्यं शयनैरुपेतं  
दद्याद्गृहं यः पुरुषो द्विजाय ।  
मुख्याभिरामं बहुरत्नपूर्णं  
लभेदधिष्ठानवरं स राजन् ॥

तथा । यस्तु नैवेशिकं शुद्धं ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।  
त्रिंशत्कोट्योऽथ वर्षाणां स्वर्गलोके महौयते ॥  
ततोवतीर्णः कालेन मानुषं लोकमागतः ।  
नगराधिपतिः श्रीमान् राजराजोभवेत् ध्रुवं ॥

आह व्यासः ।

गृह-न्दीपप्रभोद्योत-शयना-सन-भाजनैः ।

उपस्करैश्च सम्पूर्णं सर्वधान्यप्रपूरितं ॥

सर्वधान्या-न्यक्तानि, उपस्कराः मञ्चक-तूलिकी-पधाना-सन-  
कांस्यादिभाजन-दीपिका-पेषणयन्त्रधान्यादिमानभागड-दण्डो-  
लूखल-मूषल-मृण्मयस्थाली-कलश-वारिधानी-शूर्प-व्यजन-च्छत्रो-  
पानह-खड्गासिपुत्रिका-सन्मार्जनी-गोवलीवर्दाश्च महिषी-तण्डुल-  
घृत-तैलपूर्णपात्र-दात्र-वस्त्र-चन्दनादिगन्धद्रव्य-ताम्बूलोपकरण-  
काष्ठ-चुल्ली-दास-दासीप्रभृतयः ।

ब्राह्मणाय दरिद्राय सुशीलाय ददाति यः ।

तथाध्ययनशीलाय शृणु तस्यापि दत्फलं ॥

देवैः पितृगणैर्युक्तो ब्रह्मर्षिमनुजर्षिभिः ।

तस्मा वर्षशतान्येव दशतिष्ठन्त्यनामयाः ॥  
 तस्मादिह समागत्य सप्तद्वीपाधिपोभवेत् ।  
 बहुप्रदो बहुधनो द्विजो वा वेदपारगः ॥

### गरुड़पुराणे ।

ऐष्टकं दारवं वापि मृगमयं वापि शक्तिः ।  
 सर्वोपस्करणेपेतं योदद्याद्विपुलं गृहं ॥  
 ब्राह्मणाय दरिद्राय विदुषे च कुटुम्बिने ।  
 क्रीडित्वा सुचिरं स्वर्गं मानुष्यं लोकमागतः ।  
 भवत्यव्याहतैश्वर्यः सर्वं कामसमन्वितः ॥

### कूर्मपुराणे ।

शक्तिः सर्ववित्तेन पूर्णं गृहमपि त्रिधा ।  
 सदक्षिणं द्विजे दत्त्वा ब्रह्मलोकं व्रजेन्नरः ॥  
 'सर्ववित्तेन, सर्वोपस्तरेणेत्यर्थः ।  
 'त्रिधा, पूर्व्ववदुत्तम-मध्यमा-दिभेदेन ।  
 ब्रह्मवैवर्त्तवङ्गिपुराणयोः,  
 न गार्हस्थात्परोधर्म्मा नैव दानं गृहात्परं ।  
 नानृतादधिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात्परः ॥  
 धनधान्यसमायुक्तं कलत्रापत्यसङ्कुलं ।  
 गौगजाश्वगणाकीर्णं गृहं स्वर्गाद्विशिष्यते ॥  
 यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।  
 एव गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति चाश्रमाः ॥

धर्म-मर्थञ्च कामञ्च मिथ्या य प्रथितं यशः ।  
 प्राप्तकामैर्नैर राजन् मदा मेव्यो गृहाश्रमः ॥  
 न गृहेण विना धर्म्मनार्थकामौ सुखत्र च ।  
 लोकयात्रा यशः स्वर्गः प्राप्यते राजसत्तम ॥  
 न स्वर्गे नापवर्गेषु न क्षान्तिश्चपि धामसु ।  
 प्रमार्थ पादौ यद्रात्रौ स्वगृहे स्वपतां सुखं ॥  
 दिनानि तानि गण्यन्ते यानि यान्ति गृहाश्रमे ।  
 अपि शाकम्पचानस्य स्वगृहे परमं सुखं ॥  
 इति मत्वा महाराज कारयित्वा सुगोभनं ।  
 भवनं ब्राह्मणे देयं महतीं भूतिमिच्छता ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ।

गृहं कृत्वा शुभस्तम्भं बहुचित्रं सुगोभनं ।  
 मप्रकारप्रतीलीकं कपाटार्गलयन्वितं ॥  
 सुधावलितं चतुरं विस्तीर्णगणगोभितं ।  
 शुभप्रवेश-निष्काश-सुपकार्यादिसंयुतं ॥  
 सत्तवारणगोभाटं गवाक्षादिविभूषितं ।  
 दत्त्वा द्विजातिमुख्याय न शोचति कृताकृते ॥

मत्स्यपुराणे ।

पक्षेष्टकामयं कृत्वा गैलजं वापि दारुजं ।  
 मृगमयं वापि भवनं शम्भलक्षणसंयुतं ॥  
 प्रभृतवलिपुष्पाढ्यं धेत्वा चैव समन्वितं ।

अर्जुनैः सरलैः सालैरन्यैश्चैव मनोरमैः ॥  
 तिम्रिषैः सर्जवृक्षैश्च कदम्बैः सह वज्रलैः ।  
 शुभस्थानसमुत्पन्नैर्वास्तुलक्षणसंयुतं ॥  
 स्थापनञ्च यथान्यायं भुमिश्चैव तु शोभनं ।  
 मार्जनं मिञ्चनं चैवं सन्तानीयेन कारयेत् ॥  
 मङ्गलानुपहारांश्च वास्तुविद्यादितांस्तथा ।  
 देवतापञ्चकं तत्र चत्वारिंशत्समन्वितं ।  
 पूजयित्वा यथान्यायं ततोदद्याद्गृहं गृही ॥  
 वास्तुलक्षणं, पञ्चचत्वारिंशद्देवता-

क्रमश्च तस्मिन्नेव पुराणे ।

एकाशीतिपदङ्गुला रेणुभिः कनकेन च ।  
 पश्चात्पिष्टेनानुलिप्सीत् सूत्रेणालोड्य सर्व्वतः ॥  
 दशपूर्वापरं रेखा दश चैवोत्तरायताः ।  
 सर्व्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया न० वका न च ॥  
 एकाशीति पदङ्गुला वास्तुवित्तर्ज्ज्ववास्तुषु ।  
 पदस्थान् पूजयेद्देवांस्त्रिंशत्पञ्चदशैव तु ।  
 द्वात्रिंशद्वाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्तयोदश ॥

अत्रैवं प्रयोगः ।

पूर्व्वन्तावदमध्य-श्लशाना-दिरहितामनूषरां शुभवर्णगन्धादि-  
 लक्षणाव्वितां चतुरस्रां प्रागुदक्प्रवर्णां भूमिं परीक्ष्य गोमयादि-

नरकायचेति क्वचित्पाठः ।

नोपलिप्य तत्र सुधालिप्तानि समान्तरालानि दशसूत्राणि पात-  
येत् तथैव दश दक्षिणोत्तरायतानि ततश्च नवकोष्ठकान् नव-  
पङ्क्तिषु सर्व्वमेकागोतिपदं मण्डलं पश्ययते, तत्र मध्यमकोष्ठ-  
नवकमुत्सृज्य नवकमेव पदं विदध्यात् तत्प्रस्थितञ्च पार्श्वस्थित  
कोष्ठद्वयाभ्यामेकीकुर्यात् आग्नेयान्त्वकमेव एवं दक्षिणपथि-  
मोत्तराणि त्रीणि त्रैश्विकीकृत्य कोणेष्वेकैकं परिशिष्य ब्रह्मस्था-  
नस्य परिधिं निष्पादयेत् वाञ्छतयेगानादिकोणेष्वेककोष्ठका-  
न्येव चत्वारि चत्वारि पदानि परिशिष्य प्राच्यादिदिक्तु कोष्ठकानि  
येणीभूतानि पञ्च पञ्च पदानि विदध्यात् ततश्च पञ्चचत्वारिंशत  
पदानि निष्पद्यन्ते ।

मध्ये नवपदस्वेकं चत्वारस्त्रिपदाः स्मृताः ।

विंशतिस्त्रिकपदिकास्तावन्तो द्विपदाः स्मृताः ॥

एवं प्रतिष्ठिता देवाश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ।

नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत ॥

ईशानकोणादिमृगान् पूजयेत् क्रमगेन च ।

शिखी चैवाथ पर्जन्या जयन्तः कुलिगायधः ॥

सूर्यः सत्योभगश्चैव आत्मागोवायुरेव च ।

पूषाथ वितथश्चैव गृह्णतयमावृभा ॥

गन्धर्वा भृङ्गराजश्च\* मृगः पितृगणस्तथा ।

दैवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च वारुणः ॥

असुरः<sup>†</sup> चैव गोषश्च पापयन्मावरीशकः ।

\* भृङ्गराजश्च इति क्वचित्पाठः.

† असुरः गोषपार्षाच्च गोमोहि सव्यण्वच्च इति क्वचित् पाठः

भक्ताटसोमनागौ च अदितिश्च दितिस्तथा ॥  
 फणावान् मुख्यभल्वाटौ सोमनागौ तथापरौ ।  
 अदितिश्च दितिश्चैव स्थाप्याः प्रणवनामभिः ॥  
 वहिर्द्वाविंशदेते तु तदन्तश्चतुरःशृणु ।  
 आपयैवाथ सावितो जयोरुद्रस्तथैव च ।  
 अर्थ्यमा सविता चैव विवस्वान् विबुधाधिपः ॥  
 मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ।  
 अष्टमस्त्वापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥

अत्र तावद्वात्रिंशत्पदे वहिःपरिधौ प्रथममीशानकोणे श-  
 शिनं संस्थाप्य प्रदक्षिणक्रमेण पर्जन्यादिदेवां स्थापयेत् तदन्त-  
 श्चतुर इति, पर्जन्यात् पश्चिमे एककोष्वके पदे आपः, आकाशात्  
 पश्चिमे सावित्रः दौवारिकात् पूर्वस्मिन् जयः, आपः पूर्वस्मिन्  
 रुद्र इति वहिः परिधिरन्तश्चतुरोदेवां स्थापयेत् परितो ब्रह्मण  
 इति, मध्यपदस्थितस्य ब्रह्मणः पुरस्तादर्थ्यमणं संस्थाप्य प्रदक्षिण-  
 क्रमेणाष्टौ देवान् स्थापयेत् ।

अथोपसंहरति ।

आपयैवापवत्सश्च पर्जन्योग्निर्दितिस्तथा ।  
 पदिकानान्तु वर्गायमेवं कोणेष्वशिषतः ॥  
 तन्मध्ये तु वहिर्विंशद्विपदास्ते तु सर्वतः ।  
 अर्थ्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा ।  
 ब्रह्मणः परितोदिक्षु त्रिपदाश्चैव सर्वतः ॥

पदिकानामित्यादि ।

अयमेकपदानां पञ्चानां देवानामौशनकोणे वर्गः संपद्यते  
एवमान्नेयादिकोणेष्वपि एकपदाः पञ्च देवता भवन्ति तन्मध्ये  
वहिरिति । काणमध्ये बाह्यपरिधौ विंगतिद्विपदा भवन्ति अत्र-  
मादयश्चत्वारस्त्रिपदा मध्ये ब्रह्मा नवपदइति एवं पञ्चचत्वारिंश  
देवान् गन्धर्वाद्यादिभिः पूज्य वास्तुविद्योक्तप्रकारेण गृह्यारम्भं  
कुर्यात् ।

तस्मिन्नेव पुराणे ।

वास्तौ परिचिते सम्यग्वास्तुगृहे विचक्षणः ।

वास्तूपशमनं कुर्यात्समिद्धिर्बालिकर्म च ॥

जीर्णोदारे तथाघाने तथाच नववर्षमनि ।

नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्त्तने ॥

द्वाराभिवर्त्तने तद्वत् प्रासादेषु गृहेषु च ।

वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः ॥

एकांगीतिपदं लिख्य वास्तुमध्ये तु पिटकैः ।

होमस्तिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके ॥

यवैः कृष्णतिलैश्चैव समिद्धिः क्षीरवृक्षजैः ।

पालाशैः खादिरेर्वापामागीदुस्वरसंभवं ॥

कुशदूर्वाभयैर्वापि मधुमर्षिः समन्वितैः ।

कार्यं स्तु पञ्चभिर्विप्रैर्विल्ववीजैरथापि वा ॥

होमान्ति भक्ष्यभोज्येस्तु वास्तुदेशे वस्तिं हरेत् ।

तद्विधिपनैवेद्यमिदं दद्याकर्मण तु ।

ईशकोणे घृताक्तन्तत् शिखिने विनिवेदयेत् ॥



ओदनं सोत्पलं दद्यात्पुष्पान्याय घृतान्वितं ।  
 जयन्ताय ध्वजं पीतं पैष्टं कूर्मञ्च विन्यसेत् ॥  
 इन्द्राय पञ्चरत्नानि पैष्टञ्च कुलिशन्तथा ।  
 वितानकञ्च सूर्याय धूपं सक्तुं तथैव च ॥  
 सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यान-दद्याद्भृशाय च ।  
 सङ्कल्पञ्चान्तरिक्षाय दद्यात् सक्तुं च वायवे ॥  
 लाजाः पूष्णे तु दातव्या वितथे चणकोदनम् ।  
 गृहक्षताय मध्वन्नं यमाय पिशितौदनं ॥  
 गन्धौदनञ्च गान्धर्वे भङ्गे मेघस्य जिह्विकां ।  
 दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णवलिं तथा ।  
 मृगाय यावकं दद्यात् पितृभ्यः कृशरांस्तथा ॥  
 सुग्रीवे पूषकान्दद्यात् पुष्पदन्ताय पायसं ।  
 कुशस्तम्बेन संयुक्तं तथापद्मञ्च वारुणे ॥  
 पैष्टं हिरण्मयं दद्यादसुराय सुरासवं ।  
 घृतौदनञ्च शिषाय यवान् पापयक्ष्मणे ॥  
 घृतलङ्ङकांस्तु रोगाय नागपुष्पं फणावते ।  
 भक्षं मुख्याय दातव्यं मुहौदनमतः परं ॥  
 भक्ताटस्थानके दद्यात् सोमाय मधुपायसं ।  
 नागाय शालिकं पिष्टं अदित्ये लोपिकास्तथा ॥  
 दितेस्तु पूरिकां दद्यादित्येवं बाह्यतोवलिः ।  
 क्षीरमापाय दातव्यं आपवत्साय वै दधि ॥  
 सावित्रे लङ्ङकान्दद्यात् समरीचं कुशीदकम् ।  
 सवितुर्गुडपूपाञ्च जयाय घृतचन्दनं ॥

विवस्वते पुनर्दद्याद्रक्तचन्दनपायसं ।  
 हरितालीवनं दद्यादिन्द्राय घृतसंयुतं ॥  
 गुडोदनन्तु मित्राय रुद्राय घृतपायसं ।  
 आमपक्तन्तथा मांसं देयं स्याद्राजयज्ञम् ॥  
 पृथ्वीधराय मांसानि कुष्माण्डानि च दापयेत् ।  
 शर्करापायमन्दद्यादर्घ्यम्ने पानमेव तु ॥  
 पञ्चगव्यं यवाथैव तिलाक्षतहविश्रुतं ।  
 भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत् ॥  
 एवं सम्पूजिता देवाः गान्तिं कुर्वन्ति ते मदा ।  
 मर्त्तृणां काञ्चनं दद्याद्ब्रह्मणे गां पयस्विनीं ॥  
 राक्षसानां बलिर्देयो मांसोदनममन्विता ।  
 ईशाने नागमातृभ्यश्चरुञ्च विनिवेदयेत् ॥  
 मांसोदनं सरुधिरं हरिर्द्रोदनमेव च ।  
 आग्नेयीन्दिशमाश्रित्य विदार्य विनिवेदयेत् ॥  
 दध्योदनं सरुधिरं मत्स्यखण्डैश्च संयुतं ।  
 पीतरक्तं बलिन्दद्यात् पूतना या तु राक्षसी ॥  
 वायव्ये पापराक्षस्यै मत्स्यं मांसं सुरामव ।  
 पायमञ्चापि दातव्यं स्वनान्ना सर्व्वतः क्रमात् ॥  
 नमस्कारानुयुक्तेन प्रणवाद्येन सर्व्वतः ।  
 प्राक्मांस्योदनं स्कन्दाय दक्षिणस्यां तथापरं ॥  
 कशरापालिकादानमर्थ्यम्ने मूलमन्वतः ।  
 मांसं सरुधिरं दद्यात् जृम्भकाय तु पश्चिमे ।  
 पिलिपिच्छये रक्ताक्तपिष्टानन्तरतोपि च ॥

भक्ष्यभोज्यैर्द्विगोशानां तन्मन्त्रैश्च बलिं हरेत् ।  
 सञ्जीमां पादसं साज्यं यथोक्तवन्त्यमश्ववे ॥  
 तदभावे तर्भृष्यैर्द्विधत्ततष्टतेर्वलिः ।  
 गोनयनापलिमायां मण्डलान् पूर्वतःक्षितौ ॥  
 गन्धादिपूर्वकं सर्वं भौतिकञ्च बलिं हरेत् ।  
 भूतेभ्योऽथ पितृभ्यश्च राक्षसेभ्यो नमो नमः ॥  
 पिशाचेभ्योऽथ मातृभ्यो गणेभ्यश्च पृथक् पृथक् ।  
 दिव्यान्तरिक्षभौमभ्यः प्रणवाद्यनमोन्तकैः ॥  
 ततः सर्वोपधिस्नानं यजमानस्य कारयेत् ।  
 दिक्षांस्तु पृत्रयेद्वक्त्या विचान्ये गृहमागताः ।  
 गतदास्तुपगमनं कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥  
 प्रामादं भवनो द्यानं प्रारम्भे परिवर्त्तने ।  
 पूर्ववत्प्रवेगश्च सर्वदोषोपगान्तये ॥  
 वास्तुपगमनं कृत्वा ततः सवेण वेष्टयेत् ।  
 रक्षोघ्नपावमानेन सूत्रेण भवनादिकं ॥  
 नृत्यमङ्गलवाद्ये च कुर्याद्वाह्मणवाचनं ।  
 यनेन विधिना यस्तु प्रतिमस्वत्सरं बुधः ॥  
 गृहे वायतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात् ।  
 नच व्याधिभयन्तस्य नच बन्धुधनक्षयः ।  
 जीविदधेगतं स्वर्गं कल्पमेकं वसेन्नरः ॥

अथ ब्रह्मवैवर्ते ।

कारयित्वा गृहान् रम्यान् ऋतुयस्वर्कसंग्रह्या ।

भवनाष्टादशत्रिंशत्तत्रचतस्रसंख्यया ॥  
 शक्या तद्विगुणान्येव शतं यावत्सहस्रकं ।  
 कुडास्तम्भगवाच्याद्यान्विचितान् बह्वभिमिकान् ॥  
 मप्राकारप्रतीलोकान् कपाटागल्यन्वकान् ।  
 सुधाधवलितान् रम्यान् विस्तीर्णाङ्गणवाटकान् ॥  
 ममधातुमयेर्भागैः पञ्चरत्नैः समन्वितैः ।  
 चर्मकाष्ठमयैर्हस्तिदन्तवस्त्रमयैस्तथा ॥  
 सुगन्धोपस्कराकीर्णान् वस्त्रापकरणान्वितान् ।  
 सर्वोपस्करसम्भारगणवल्ललराजितान् ॥  
 राजितांस्तृणपाषाणैः काष्ठमञ्जयमयूतान् ।  
 सर्वधान्यसमायुतैः कुशैश्च विराजितान् ॥  
 गो महिष्या श्व वृषभ प्रैथ दामाजनां चितान् ।  
 जेवारांमजलामन्नान् दृढान् हर्म्यपरांश्च शमान् ॥  
 मम्पूष्पाणि ममधान्यं च घृततैलगुडादिभिः ॥  
 तिल-तण्डुल-गाली जल-माष गंधममपैः ।  
 प्रियङ्गुयव-नीवार-निपाव राजमुद्गकैः ॥  
 मसूर-चणका वृत्तिसकुठककुलोत्थकैः ।  
 लवणा-द्रुक-खर्जूर-द्राक्षा जीरक-धान्यकैः ॥  
 त्रिङ्गु-कडुम-कर्पूर-स्नानद्रव्यैः मचन्दनैः ।  
 रुधिरापस्करपथ्यैश्चतुर्लागण्ड पधानकैः ॥  
 चूडीच्छेदन-मन्यान् भद्रामन कदम्बकैः ।  
 पिठरौ-लखल-स्याली-सपेदर्यण यन्त्रकैः ।  
 मपला-मि कुपाणी पदगड-कीदण्ड-महरैः ॥

गृह्यतापिकादर्बोद्विषलोष्टकहस्तकैः ।  
 चरकालकलोहीन्द्रदीपिकाग्निष्टिका घटी ॥  
 कुण्डनो पेष्पणी तद्वदुदकुम्भप्रमार्जनी ।  
 मञ्जूपालिञ्जरान्दीलमुख्योपस्करसंयुतान् ।  
 गक्त्या स्वर्णमहस्त्रेण गतेनार्द्धसंयुतान् ॥  
 यथागक्त्या रूप्ययुतान् कृतान् निर्मलचेतसा ।  
 इत्येवमादिमस्यूर्णान् गृह्यान् दद्याद्वितातिषु ॥

वह्निपुराणे ।

कर्तुं शन्द्रवलीपिते स्थिरनक्षत्रसंयुते ।  
 शुभेऽङ्गि विप्रकथिते दानकालः प्रशस्यते ॥  
 शुक्लपक्षे तृतीयायां पूर्णिमायामथापि वा ।  
 एवंसंभृतसम्भारं गृहं कृत्वा द्विजोत्तमान् ।  
 कुलगोलममायुक्तान् शतसंख्यान्निमन्त्रयेत् ॥  
 अधीतवेदशास्त्रज्ञान् पुराणस्मृतिपारगान् ।  
 गृहधर्मरतान् दान्तान् निस्वान् बहुकुटुम्बिनः ।  
 निराश्रयांस्तथारारजंस्तेभ्यो दत्तं महाफलं ॥  
 अलङ्कृत्य सपत्नीकान् वस्त्राभरणकुण्डलैः ।  
 कृत्वाग्नियजनं भूयोवास्तुं पूज्य विधानतः ॥  
 समञ्चरन्निदं दाता विदधीत गतस्मयः ।  
 जगदीशो गृहावासो गोविन्दः प्रीयतामिति ।

ब्रह्मवैवर्ते ।

गृहाङ्गणे कारयित्वा कुण्डमिकं समस्तुलं ।

गृहयज्ञः प्रकर्त्तव्यस्तृष्टिपुष्टिकरः सदा ॥

गृहयज्ञविधानन्तु, व्रतखण्डे विलोकनीयं ।

रक्षोघ्नानि च सूक्तानि पठेयुर्वाङ्मनास्ततः ।

वास्तोः पूजा प्रकर्त्तव्या दिक्पालानां वलिं क्षिपेत् ॥

ततः पुण्याहघोषेण ब्राह्मणास्तेषु वेश्मसु ।

प्रवेशयित्वा शय्यासु सभार्यासुपवेशयेत् ॥

यजमानस्ततः प्राज्ञः शुक्लास्वरधरः शुचिः ।

यद्यस्य विहितं पूर्वं तत्तस्मै प्रतिपादयेत् ॥

अत्रेदं दानवाक्यं ।

आं अद्य अमुकसगोवायेत्यादि इदं गृहं शयनामनभाजनो  
पस्करयुतं सर्वधान्यप्रपूरितं सर्वदैवतं अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्र  
ददे नममित्युक्त्वा इदं गृहं गृहाणेत्यादिवक्ष्यमाणमन्त्रं पठेत् ।

आं अद्यामुकसगोवायेत्यादि एतद्ब्रह्मदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणा-  
मिदं हिरण्यन्तुभ्यमहं सम्प्रददे नमसिति ।

दक्षिणासंख्या तु, शक्त्या स्वर्णमहस्त्रिणेत्यादिना दर्शितैव ।  
प्रतिग्रहीता स्वस्त्युक्त्वा कीदादितियजुर्वेदप्रमिदं मन्त्रमुदाहरेत् ।

इदं गृहं गृहाण त्वं सर्वोपस्करमयुतं ।

तव विप्र प्रमादेन ममास्वभिमतं फलं ॥

एवमेकैकगो दत्त्वा प्रणिपत्य समर्पयेत् ।

स्वस्त्युति ब्राह्मणैर्वाच्यं कीदादिति च पूजितैः ॥

बृहस्पतिस्मृतौ पुनरयं मन्त्रः ।

गृहं मम विभृत्यर्थं गृहाण त्वं द्विजोत्तम ।

प्रीयतां मे जगद्योनिर्वास्तुरूपी जनार्दन ॥

मत्स्यपुराणे ।

प्राप्ते दानदिने कार्य्यमैशान्यां हस्तसंमितं ।

चतुरस्रं समं कुण्डमेखलायोनिभूषितं ॥

पूर्वोत्तरे हस्तमिता च वेदी

गृहादिदेवेश्वरपूजनाय ।

अर्चाच्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानां

सूर्यस्य कार्य्यफलपुण्यगन्धैः ॥

ब्रह्मादिप्रतिमालक्षणमुक्तं तुलापुरुषे ।

हारेषु कार्य्याणि च तोरणानि

पत्रैरपि क्षीरवनस्पतीनां ।

मध्ये च संस्थाप्य च पूर्णकुम्भं

स्वर्गान्धधूपाम्बररत्नयुक्तं ॥

गृहोक्तिन विधानेन कृत्वा चाग्निमुखं ततः ।

गव्येन पयसा दिव्यं स्थालीपाकं चरुं श्रेष्ठं ॥

ततश्च तच्चैव चरुं जुहोमि

मध्यस्थिताभ्यो गृहदेवताभ्यः ।

बलिञ्च सम्यग्विधिसंप्रयोगात्

क्षीरेण धारापरितस्तु दद्यात् ॥

ब्राह्मणं अर्चयेत्पूर्वं परितुष्टं क्षमापयेत् ।

शय्यां दक्षिणभागे तु सोपधानां सदोषिकां ।

मितवस्त्रैश्च संकुन्नां लक्ष्मीनारायणान्वितां ॥

लक्ष्मीनारायणलक्षणं देवतादानप्रकरणे लक्ष्मीनारायणदाने,  
वक्ष्यते, तद्रूपञ्च सुवर्णमयं यथाशक्ति निर्माय,

सिताम्बरं कुण्डलहेमभूषितं

केयूर-कण्ठाभरणाभिरामं ।

पत्नीसमेतं च करे गृहीत्वा

दाता पठेन्नन्वमिमं गृहस्थः ॥

एह्येहि नारायण दिव्यरूप

सर्वामरैर्वन्दितपादपद्म ।

शुभाशुभानन्दसुधाम धीर

लक्ष्मीयुतस्त्वंहि गृहं गृहाण ॥

नमः कौस्तुभनाथाय हिरण्यकवचाय च ।

क्षीरोदार्यवसुप्ताय जगद्धात्रे नमो नमः ॥

नमोहिरण्यगर्भाय जगन्नाथाय वै नमः ।

चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः ॥

भूर्लीकप्रमुखालोकास्तुव देहे व्यवस्थिताः ।

नन्दन्ति यावत्कल्पान्तं तथा तस्मिन् भवान् गृही ॥

त्वत्प्रसादेन देवेश पुत्रैः पौत्रैर्युतो गृही ।

पञ्चयज्ञक्रियायुक्तो वसेदाचन्द्रतारकं ॥

एवमुक्त्वा तु देवेशं सपत्नीकं द्विजोत्तमं ।

तिलप्रस्थोपरिस्थायां शय्यायामुपवेश्य च ॥

वदेदिदं ततोवाक्यं सर्वधान्ययुतं त्विदं ।

सर्वोपस्करसंयुक्तं गृहं गृह्ण द्विजोत्तम ॥

ततोपकरणं सर्वं दाम्पत्यस्य निवेदयेत् ।



पादुको-पानह-च्छत्र-भूषणा-सन-भाजनैः ॥  
 सम्पन्नं चार्थसम्पन्नं गृह्योपस्करभूषणं ।  
 सर्वसम्पृम्भमेवास्तु पठित्वैवं निवेदयेत् ॥

ब्रह्मवैवर्ते ।

गृह्योपकरणैस्तुल्यां दक्षिणा भवनं विना ।  
 उपदेष्टुरपीकृन्ति तन्मूलत्वान्महर्षयः ।  
 सुयतीन् पूजयित्वा तु ततः स्वभवनं व्रजेत् ॥  
 दद्यादनेन विधिना ब्रह्मन्येकमथो गृहं ।  
 समं स्थानियमः कार्यः शक्तिरत्र नियामिका ॥  
 शीतवातातपहरं दत्त्वा तृणकुटीरकं ।  
 दद्यान् कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गं महीयते ॥  
 ऋग्निर्तं वा यजुर्मध्यसामस्वरविभूषिता ।  
 अच्यन्तमुखलब्धेन देया ब्रह्मपुरी प्रिया ॥  
 गो-भू-हिरण्यदानानि नियमाः संयमास्तथा ।  
 गृहदानस्य कौन्तेय कलां नार्हन्ति षोडशीं ॥

वज्रिपुराणे ।

एवं दत्त्वा गृहं राजन् सर्वोपस्करसंयुतं ।  
 नरोविष्णुपुरं याति सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥  
 तत्र कल्पवृक्षं भुङ्क्ता भोगान् देवैः सुदुर्लभान् ।  
 कालादिह समायातो राजा भवति धार्मिकः ॥  
 पुनर्विष्णुपुरं लब्ध्वा समजन्तानि पार्थिवः ।  
 रूपसोभाग्यमस्यन्नो दोषीयुर्निरूपद्रवः ॥

पुत्रपौत्रयुतोलक्ष्मा वियोगरहितः सुखी ।  
भवेन्नरो महाराज गृहं तस्मात् प्रदीयते ॥

मत्स्यपुराणे ।

य एवं सर्व्वसम्पन्नं पक्वेष्टं विनिदयेत् ।  
कल्पकोटिशतं यावत् ब्रह्मलोके महीयते ॥  
शैलजं दारुजं वापि योदद्याद्विधिपूर्व्वकं ।  
वसेत् क्षीरार्णवे रम्ये नारायणसमीपतः ॥  
मृगमयञ्चैव योदद्याद्गृहञ्चोपस्कुरान्वितं ।  
पुरेषु लोकपालानां प्रीत्या मन्वन्तरं वसेत् ॥  
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसङ्घै  
रमरचरसालावीज्यमानोऽस्योभिः ।  
पितृशतमपि बन्धून् पुत्रपौत्रप्रपौत्रा-  
नपि नरकनिमग्नांस्तारयेत्कणैव ॥  
दिव्यभोगांस्ततो भुक्त्वा राजराजो भवेद्भुवि ।  
नारायणबलीपेतो नारायणपरायणः ।  
नारायणकथासक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥

भविष्यत्पुराणे ।

यः कारयेत् सुदृढहर्म्यवतीं महार्थां  
सत्सेवितां द्विजपुरीं सुजनोपभोग्यां ।  
दिव्यास्योभिरभिनन्दितचित्तवृत्तिः  
प्राप्नोत्यसावनुपसम्पदमिन्दुमौलिः ॥

इति गृहदानविधिः ।

सुमन्तुरुवाच ।

मृगमयं दारुजं शैलं पक्षेष्टकमथापि वा ।  
 लत्वानन्तगृहंवापि यथाविभवसंभवात् ॥  
 सर्वोपकरणोपेतं सर्वधान्यसमन्वितं ।  
 सूर्यायेत्यं गृहं दत्त्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं

सूर्यगृहदानविधिः ।

महाभारते ।

तथा गवार्थं शरणं शीतवातहरं शुभं ।  
 आम्रममन्तारयित्वा कुलं भरतसत्तम ॥

स्कन्दपुराणे ।

यः कारयित्वा सुदृढं विस्तीर्णं सुममस्थलं ।  
 शीतवातातपहरं सिकताभिर्मृदुत्तरं ॥  
 शरीरकण्डूतिहरं स्तंभसंभारसंकुलं ।  
 भक्ष्यप्रकल्पितानेकलङ्घाधारवद्गङ्कं ॥  
 अतीक्ष्णाय सुखस्पर्शदामनीशङ्कुमङ्कुलं ।  
 हर्तुं धूमैश्च दंशादीन् प्रकुटासनमाश्रयं ॥  
 कृतकूपनिपानादिजलाशयनिवेशनं ।  
 अवकरतिरस्कारकारिकर्मकरान्वितं ॥

तृणोदकादिनिर्वाहक्षमकल्पितवृत्तिकं ।  
 एवंविधं महारम्यं प्राकारद्वारभूषितं ।  
 कृत्वा गृहं गवामर्थे यः पर्वणि निवेदयेत् ॥  
 स राजराजो भवति भाग्यारोग्यसमन्वितः ।  
 मृगभीलोकमामाद्य दिव्यभोगसमन्वितं ॥  
 क्रीडित्वा सुचिरं कालं ततोमानुष्यमागतः ।  
 धनरूपममायुक्तः कुले महति जायते ॥

इति गोगृहदानं ।

अथाश्वदानं ।

तत्र कालिकापुराणे ।

शङ्करात्परमं नान्यदतस्तस्मै विकल्पयेत् ।  
 यतोनामाश्वं वापि कृत्वा पक्वैश्चामयम् ॥

विकल्पः ।

निकल्पः ।

मृगौलं चारुनिर्वातं परिचारसमन्वितं ।  
 व्याख्यामण्डपसंयुक्तमामनैर्विविधैर्युतं ।  
 पुष्पाद्यानममायुक्तं सोदकं शङ्करालयं ।  
 ग्रामं दीपेन्मनाद्यर्थं प्रेक्षाणाञ्चैव चेतने ।  
 कौपीनोपानहाद्यर्थमाश्वये विनियोजयेत् ॥  
 ततोभ्यर्च्य यतोन् भक्त्या भोजयित्वा विगेषतः ।  
 व तैश्चैव प्रपूज्येष्टं भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥

प्रीयतां मे महादेव-चन्द्रमौलिर्महेश्वरः ।  
 इत्युक्त्वा पुण्यदिवसे दत्त्वाचैवात्र दक्षिणां ॥  
 अनेनाश्रयदानेन सर्वकामयुतो नरः ।  
 तस्मिंस्त्वमरलोकानां भोगान् गच्छेत्तदालयं ॥

तदालयं ।

गङ्गरालयं ।

शैवपुराणे ।

स्थावरं जङ्गमञ्चैव द्विविधं लिङ्गमुच्यते ।  
 प्रासादे स्थावरं कार्यं जङ्गमन्तु मठे हितं ॥  
 स्थावराज्जङ्गमं श्रेष्ठमिति प्राहुर्महर्षयः ।  
 दीक्षादिस्थापनञ्चैव ज्ञानक्रियाप्रकाशनं ॥  
 जङ्गमात्तु प्रवर्त्तेत तेनाधिक्यन्तु जङ्गमे ।  
 तस्माज्जङ्गमलिङ्गेभ्यो विद्यापीठस्य गुप्तये ॥  
 कारयित्वा मठं दिव्यं शुद्धशैलेष्टकामयं ।  
 गयनामनसंयुक्तं पुष्पारामादिशीभनं ।  
 अद्वयापरयोपितं पुण्यकाले समुत्सृजेत् ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते ।

मठदानमधिकृत्याह मार्कण्डेयः ।  
 यावत्कान्तिष्ठते भूमौ स मठे जनसेविते ।  
 तावद्वर्षप्रमाणेन कर्त्ता च शुभभाग्भवित् ॥  
 यः कारयेन्मठं शैलं शिवायतनमन्निधौ ।

स शैवं पद्मासाद्य कल्पायुतशतं वसेत् ॥  
 तस्मात्पुण्यक्षयादेतत् पृथिवीमीश्वरप्रियः ।  
 लभेद्दीर्घायुरारोग्यं सम्पदैश्वर्यसन्ततिं ।  
 चेतायुगे नृपाधीशः सहस्रक्रतुकुडवेत् ॥  
 विष्णोरायतने पुण्ये सन्निधौ कारयेन्मठं ।  
 यः सः स्यात्सकलैश्वर्यमम्पदामालयः सदा ॥

भगवतीपुराणे ।

विजयायैव कर्त्तव्यं पुण्याराममठादिकं ।  
 सजलं कारयेत्तस्मान्मठारामादिकं नरः ॥  
 कृत्वा मठं प्रयत्नेन शयनासनसंयुतं ।  
 पुण्यकाले द्विजेभ्योऽथ यतिभ्योवा निवेदयेत् ॥  
 सर्वान् कामानवाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥

ब्रह्मप्रोक्ते ।

मठ-म्पतिश्रयं वापि सर्वोपकरणैर्युतं ।  
 कारयित्वा द्विजातिभ्यः पुण्यकाले समुत्सजेत् ॥  
 तस्य पुण्यकृता लोका क्षीयन्ते न कदाचन ॥

अगस्त्यः ।

सर्वकाममवाप्नोति तस्य सम्पद्यते सदा ।  
 देवायतनकर्त्ता च ब्रह्मोनामाश्रयस्य च ॥  
 सचमण्डपकारीच क्रीडन् याति गृहोत्तमैः ।

## देवीपुराणे ।

प्रासादमण्डपगृहे मठे चित्रशिलातले ।  
 उदतो पट्टगालायां सर्वे सं पूजयन्ति ये ॥  
 स्वगामान्तर्जलोपेतं मठं भूमित्रयोच्छ्रितं ।  
 शान्तिधामाग्निप्रस्थेन विद्याकोशजपादिभिः ।  
 युक्तं देवाय दातव्यं सर्व्वकामप्रदायकं ॥  
 महापापारिणमनं समस्तभूमलापहं ।  
 राज्यायुःसुतमीभाग्यवर्द्धनं कीर्त्तनं तथा ॥  
 विजलं नैव कुर्वन्ति मठारामविवर्जितं ।  
 सर्व्वेषां विघ्नदं कर्तुं नृपलोकभयवहं ॥  
 तथा । देवायतनकोटिस्थं कुर्याद्विमाण्डभूषणं ।  
 एकं सर्व्वेश्वरं धाम कृतं तस्याधिकं फलं ॥  
 गङ्गोदके च यत्पुण्यं स्नात्वा च परिकीर्त्तितं ।  
 तत्पुण्यं स्वजनैः स्नाप्य तामीशानगतिं लभेत् ॥

## स्कन्दपुराणे ।

## मठदानमधिकृत्याह ।

यः कारयेन्महद्रस्यं सुवेदीमस्थितं मठं ।  
 पञ्चभीमन्विभीमं वा शिवज्ञानरतात्मनां ॥  
 गुह्यापवरकैर्युक्तं मन्त्रस्थानसमन्वितं ।  
 वास्तुविद्याविभक्तञ्च प्राकारपरिवारितं ॥  
 धूमनिर्गमनोपेतं पूर्व्वतः सत्रमण्डलं ।  
 गन्धपुष्पगृहं कार्य्यमैशान्यां मठमयुतं ॥  
 भाण्डागारञ्च कौर्वियां कोठागारञ्च वायवे ।

जलाशयश्च वारुण्यां वातायनसमन्वितं ॥  
समित्कुशेभ्यनस्थानमायुधानाञ्च नैर्ऋतौ ।  
अभ्यागतालयेष्वैव रम्यं शय्यासमन्वितं ।  
तोयाग्निदोपसम्भुतैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत् ॥  
गृहान्तराणि सर्वाणि सजलैः कदलीगृहैः ।  
पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत् ॥  
प्राकारश्च बहिर्द्दद्यात् पञ्चहस्तप्रमाणतः ।  
प्राकाराच्च बहिः कुर्यात् सर्वदिक्षु समन्ततः ॥  
दिव्यं शिवाग्र्यं रामं नानापुत्रोपशोभितं ।  
सर्वर्तु कुसुमोपेतं नानावृक्षसमन्वितं ॥  
प्रियङ्गुशिखराशोकपुत्रजीवकरिष्टकैः ।  
पुन्नागवकुलैश्चैव पाटलाबिल्वचम्पकैः ॥  
श्वेतमन्दारविजयेर्जातीतगरकुष्ठकैः ।  
सुवर्णश्वेतयूथीभिर्वर्ष्मास्तानकुरण्टकैः ॥  
करवीरैः कर्णिकारैर्नानावर्णैरनेकगः ।  
स्थानविन्यासचरितैः सन्मार्गाधारमयुतैः ॥  
वृक्षैर्बहुविधैर्युक्तं दिग्विदिक्षु जलान्वितं ।  
सितरक्ताञ्जकुसुमैर्नीलरक्तोत्पलैर्युतं ॥  
लतावितानगृहकैः क्वचित् क्वचिदवस्थितैः ।  
कदलैःस्तम्भखण्डैश्च दाडिमादौर्विराजितं ।  
इति कृत्वा बहिस्तस्य प्राकारं कारयेन्महत् ॥  
कपाटगोपुरोपेतं परिखावटमयुतं ।  
तृतीयाच्च पुरादूर्ध्वं विद्याव्याख्यानमण्डपं ॥



गवाक्षनिर्गमोपेतं विचित्रं परिकल्पयेत् ॥  
 पुराञ्च पञ्चमं कार्यं शिवस्य वसतीगृहं ।  
 षट्हस्तमष्टहस्तं वा दारुपट्टविनिर्मितं ॥  
 तत्र गृहारुशैलं वा स्थापयेद्विधिवच्छिवं ।  
 सर्वविद्याविधातारं सर्वज्ञं कुलमीश्वरं ॥  
 वृतं गिथप्रगिथैश्च व्याख्यानीयतपाणिकं ।  
 पद्मासनस्थं सुश्वेतं प्रसन्नवदनं गुरुं ॥  
 एवं शिवाश्रमं कृत्वा भक्त्या वित्तानुसारतः ।  
 तत्प्रतिष्ठां ततः कुर्यात् पूजालङ्कारलक्षणां ॥  
 विद्यादानोक्तविभवैः शोभां कृत्वा मठाग्रतः ।  
 पञ्चभिः पञ्चगव्यैस्तं स्थाप्यैशान्यान्दिशि क्रमात् ॥  
 स्नापयेद्गन्धतोयाद्यैः शिवशान्तपरिश्रुतैः ।  
 तृतीयोपैस्तमानोयं स्थापयेत् पुष्पमण्डपे ॥  
 ततश्चन्दनपुष्पाद्यैः पूजयित्वाधिवासयेत् ।  
 जप्त्वा पञ्चविधं स्तोत्रं शिवं विज्ञापयेत्ततः ॥  
 अद्याधिवासनं देव श्वः प्रतिष्ठा भवेत्तत्र ।  
 भक्तानामनुकम्पार्थं मान्निध्यमुपकल्पयेत् ॥  
 प्रातः संस्नाप्य देवेशं पूजयित्वा प्रवेशयेत् ।  
 पवित्रैः स्थापयेद्देवां पादादारभ्य पञ्चभिः ।  
 ततः सुगन्धगन्धाद्यैर्नित्यं शोध्यं शिवालयं ॥  
 शिवञ्च पूजयेत्पुष्पैः स्नानवस्त्रयुगान्वितैः ।  
 मग्नियस्तं प्रणम्येष्टं गुरुर्याख्यां प्रवर्त्तयेत् ॥  
 प्राङ्मुखो दङ्मुखो वापि पुत्राहर्षं शिवाग्रतः ।

ततः सम्पूजयेद्भक्त्या यजमानः स्वयंगुरुं ॥  
 दक्षिणाभिर्वित्तित्राभिर्भोजनाद्यैश्च पूजयेत् ।  
 निवेदयेत्ततः स्थानं सर्वेषां शिवयोगिनां ।  
 सर्वोपकरणोपेतं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥  
 एवं यः कारयेदाद्यः श्रीमच्छिवपुरं महत् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥  
 स्वर्गोत्रविंशकोपेतः सभृत्यपरिवारितः ।  
 पुत्रमित्रादिसंयुक्तः शान्तः पुरपरिच्छदः ॥  
 सुविचित्रैर्महायानैरसंख्यैः सर्वकामिकैः ।  
 शिववत् क्रोडते भोगैरणिमादिगुणैर्युतः ॥  
 ततः कालेन महता विद्यादानप्रभावतः ।  
 ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव प्रतिमुच्यते ॥  
 स्थपतिस्थापका वृक्षा वलीवर्द्धाश्च कर्मिणः ।  
 यान्ति रुद्रपुरं सर्वे तदध्यक्षाश्च ये नराः ॥  
 येचान्ये वृत्तिभृतकाः शिवायतनकर्मिणः ।  
 तेऽपि याति मृताः स्वर्गं शिवकर्मभानुभावतः ॥

भविष्यत्पुराणे ।

कारयित्वा दृढस्तम्भं शुभंपक्वेष्टकामयं ।  
 मठं कमठपृष्ठाभमाभासितदिगन्तरं ।  
 सुधानिलिप्तं गुप्तञ्च सुखशालाविराजितं ।  
 दद्यादनन्तफलदं शैववैष्णवयोगिनां ।

वाराहपुराणे ।

त्रिभौमं वा द्विभौमं वा कुर्यादथेकभूमिकं ।  
 मठं विचित्रशालाढ्यं विराजन्मत्तवारणं ॥  
 ध्यानाध्ययनहोमादिव्याख्यानस्थानभूषितं ।  
 सुधया वा शिलाभिर्वा सममक्षितभूमिकं ॥  
 विन्यस्तपुस्तकाधारभूतनूतनसङ्कुचं ।  
 नानाफलाकुलोद्यानराजिमण्डलमण्डितं ॥  
 निर्मलस्वादुपानीयसुमम्भृतजलाश्रयं ।  
 यतीनां पथिकानाञ्च निवाममुपसेदुषां ॥  
 पादुकोपानहच्छत्रकोपीनेन्यनवाससां ।  
 उपयोगिपदार्यानामन्येषामपि लब्धये ॥  
 ग्रामं वा विपुलं भूमिं प्रदद्याच्छ्रद्धयान्वितः ।  
 एवं समाश्रयं कृत्वा तापमानां हितावहं ॥  
 अन्येषामपि लोकानां दुःखिनामाश्रयार्थिनां ।  
 समाश्रयं प्रयच्छामि प्रीयतां मे जगन्निधिः ॥  
 एवं दत्त्वा महाराजन् सुविचित्रं समाश्रयं ।  
 अश्वमेधमहस्तस्य फलमाप्नोत्यसंशयं ॥  
 शिव विष्णुपुरे स्थित्वा तद्रूपबलविक्रमः ।  
 भोगानपि ब्रह्मन् भुक्त्वा परं निर्व्याणमृच्छति ॥  
 यः कारयेदितिविचित्रविशालशाल ।  
 मालाकुलं रुचिरकुड्य वितानयुक्तं ॥  
 दिव्याङ्गनापरिवृतोऽथ भवेन्मुरारेः ।  
 पागे भवार्णवजलस्य स मौख्यमेति ॥

इत्याश्रयदानं ।

अथ प्रतिश्रयदानं ।

तत्र भविष्यत्पुराणे ।

प्रतिश्रये सुविस्तीर्णं कारिते सजलेन्यने ।

दीनानाथजनार्थाय ततः किन्न कृतं भवेत् ॥

वल्गिपुराणे ।

कारयित्वा दृढस्तम्भं शुभं पक्वेष्टकामयं ।

प्रतिश्रयं सुविस्तीर्णं सुभूमिं लक्ष्णान्वितं ॥

सुधानुलिप्तं गुप्तञ्च सुखशालाविराजितं ।

दद्यादनन्तफलदं शैववैष्णवयोगिनां ॥

प्रतिश्रयं सुविस्तीर्णं सदन्नं सजलान्वितं ।

दीनानाथजनार्थाय कारयित्वा गृहं शुभं ।

निवेदयेत् पयिस्थेभ्यः शुभद्वारं मनोहरं ॥

देवीपुराणे ।

शक्र उवाच ।

पुरस्य पश्चिमे भागे दक्षिणेचोत्तरेऽयं वा ।

पूर्वे वा मध्यतोवापि ये कुर्वन्ति प्रतिश्रयं ॥

देवतास्तत्र काः स्थाप्याः का न स्थाप्या द्विजोत्तम ।

दिग्विभागगतां ब्रूहि म भवेद्येन शान्तिदः ॥

ब्रह्मवाच ।

दक्षिणीत्तरपूर्वेण पश्चिमेन सुरेश्वरः ।

अथ मध्यगतः शक्रः काश्चीत्यं तत्प्रतिश्रयः ॥

यत्र श्रान्ताश्च खिन्नाश्च विश्राम्यन्ति द्विजातयः ।  
 प्रतिश्रयस्य कर्त्तारः स्वर्गे तिष्ठन्ति ते चिरं ॥  
 तस्मात् प्रतिश्रयः कार्यो दृष्टादृष्टफलार्थिभिः ।  
 देवताधिष्ठितः शक्रः सर्वसौख्यप्रदो भवेत् ॥  
 देवतानान्त्यं प्रोक्तं चतुर्थी नोपपद्यते ।  
 महिषघ्नीं तथा यच्च नायकं चात्र कारयेत् ॥  
 महिषघ्नी भवेन्मध्ये ज्येष्ठस्थाने नचान्यथा ।  
 वामतो नायकः कार्यो दक्षिणे यच्चराट् तथा ॥  
 अथवा दिग्गता कार्या तत्रापि कथयामि ते ।  
 यद्द्वारं संमुखं तस्य देवीं तत्र प्रतिष्ठयेत् ॥  
 न यच्चं नायकं कार्यं द्वाराभ्यां मध्यतः स्थितं ।  
 एवं कृते फलं यत्तु वक्तुं तत्केन शक्यते ।  
 केवलं फलमेतस्य सुखं राज्यं यशः श्रियं ॥

यमः ।

आमनं पादशौचञ्च दीपमन्नं प्रतिश्रयं ।  
 ददात्यितानि यः पञ्च स यन्नः पञ्चदक्षिणः ॥  
 अन्नदः प्राणदोज्ञेयो रूपदीवस्त्रदः स्मृतः ।  
 स हि सर्वप्रदो नाम यो ददाति प्रतिश्रयम् ॥  
 अश्वमेधसहस्रस्य राजसूयशतस्य च ।  
 पुण्डरीकसहस्रस्य योगिष्ववसथीनरः ॥  
 विष्णुः प्रतिश्रयं तथा शय्यापादाभ्यङ्गश्च दीपकं ।  
 प्रत्येकदानेनाप्नोति गोप्रदानसमं फलं ॥  
 दत्तः आश्रमं च यतिर्यस्य विश्राम्यति मुहूर्त्तकं ।

\*किं तस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्योहि स स्मृतः ॥  
जन्मप्रभृति यत्पापं गृहस्थेन तु सञ्चितं ।  
निर्मार्जयति तत्सर्वं एकरात्रोषितोयतिः ॥  
तथा । तपोजपैः कृशीभूतो व्याधितोऽवसथार्हकः ।  
वृद्धोऽग्रहगृहीतश्च तथान्योविकलेन्द्रियः ॥  
नीरुजश्च युवाचैव भिक्षुर्नावसथार्हकः ।  
नीरुजश्च युवाचैव ब्रह्मचर्यादिनश्यति ॥  
ब्रह्मचर्यादिनष्टस्तु कुलं गोत्रञ्च नाशयेत् ।  
वसन्नवसथे भिक्षुर्मैथुनं यदि सेवते ॥  
तस्यावसथनाशस्य मूलान्यपि निवृण्वन्ति ।

वृहस्पतिः ।

आगतस्यासनन्दयाच्छान्तस्य शयनं तथा ।  
लपितस्य तु पानीयं क्षुधितस्य तु भोजनं ॥  
चक्षुर्दृष्ट्यान्मनोदयाद्वाचन्दयाच्च स्मृतां ।  
एष साधारणोधर्मश्चातुर्वर्ण्योऽब्रवीन्मनुः ॥  
प्रीयते स्वागतेनाग्निरामनेन गतक्रतुः ।  
पितरः पादशीचेन भोजनेन प्रजापतिः ॥

मनुविष्णुगतातपाः ।

येषामनश्नन्नतिथिःविप्राणां व्रजते गृहात् ।  
ते वै खरत्वमुष्ट्रत्वमश्वत्वं प्रतिपेदिरे ॥  
यस्य चैव गृहे विप्रोवसेत्कश्चिद्भोजितः ।  
न तस्य देवाः पितरः हव्यं कव्यञ्च भुञ्जते ॥

अतिथिर्यत्र वै ग्रामे भिक्षमाणः प्रयत्नतः ।

शते निरशनस्तत्र ब्रह्महत्या विधीयते ॥

अपि शाकम्पचानस्य शिलोष्णेनापि जीवतः ।

स्वदेशे परदेशे वा नातिथिर्विमना वसेत् ॥

एकरात्रन्तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।

अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते ॥

यमः ।

तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना ।

सोऽतिथिः सर्वभूतानां शेषानभ्यागतान्विदुः ॥

व्रतो यतिर्वैकरात्रं निवसन्नुच्यतेऽतिथिः ।

यस्मान्नित्यं नवसति तस्मात्तमतिथिं विदुः ॥

पर्वारण्यमावास्यादीनि उत्सवा विवाहादयः

तिथिस्तद्व्यतिरिक्ता दीपालिकाप्रतिपदादिः ।

एतान्यत्रविशेषप्राप्तिहेतूनि येन धर्मपरेण त्यक्तानि सोऽति-  
थिरित्यर्थः ।

गौतमः ।

असमानग्रामोऽतिथिरेकरात्रिकोऽधिष्ठत्सूर्योपस्थायीति ॥

‘एकरात्रिकः’ एकरात्रवसनशीलः ।

‘अधिष्ठत्’ सूर्यशब्दः सायङ्कालपरः ।

दत्तः । सुधावस्तूनि वक्ष्यामि शिष्टे च गृहमागते ।

मनश्चर्तुर्मुखं वाचं सौम्यन्दयाच्चतुष्टयं ॥

सुधावस्तूनि, अनायाससम्पद्यानि,

अभ्युत्थानमिहागच्छपूर्वालापः प्रियान्वितः ।

उपासनमनुव्रज्या कार्याख्येतानि यत्नतः ॥

‘उपासनं, समीपे स्थितिः ।

ईषदस्तूनि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च ।

पादशौचं तथाभ्यङ्गमाश्रयः शयनन्तथा ॥

ईषदस्तुत्वं, चात्पायाममाध्यत्वात् ।

किञ्चिद्रात्रौ यथाशक्तिर्नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥

मनुः ।

आसनाशनशय्याभिरङ्गिर्मूलफलेन वा ।

नास्य कश्चिदमेहे गन्तितोर्च्चितोऽतिथिः ॥

श्रीमार्कण्डेय पुराणे ।

कुर्यात् प्रतिययगृहं पथिकानां हितावहं ।

निजगेहैकदेशे वा साधून् पात्र्यान्निवासयेत् ॥

अक्षयं पुण्यमुद्दिष्टं तस्य स्वर्गापवर्गदं ।

सर्वकामसमृद्धोऽसौ देववद्वि मोदते ॥

इति प्रतिययदानं ।

अथ कन्यादानमुच्यते ।

तत्र लिङ्गपुराणे ।

कन्यादानं प्रवक्ष्यामि सर्वदानोत्तमोत्तमं ।

बृहस्पतिः ।

सहस्रमेव धेनूनां शतञ्चानडुहां समं ।

दशानडुक्षमं यानं दशयानसमो हयः ॥

\*दशयानसमा कन्या भूमिदानञ्च तत्समं ।



तस्मात्सर्वेषु दानेषु कन्यादानं विशिष्यते ॥

अत्रिः ।

बालुकायाः कृतोरागिर्यावत्सप्तर्षिमण्डलं ।

गते वर्षसहस्रे तु पलमेकं विशीर्यते ॥

अथ दृश्यते तस्याः कन्यादाने न विद्यते ॥

महाभारते ।

करन्धमस्य पुत्रस्तु मरुती नृपतिस्तथा ।

कन्यामङ्गिरमे दत्त्वा दिवमाशु जगाम ह ॥

राजा मितमहथापि वशिष्ठाय महात्मने ।

दमयन्तीं प्रियां दत्त्वा तया सह दिवङ्गतः ॥

मदिराश्वश्च राजर्षिदेत्त्वा कन्यां सुमध्यमां ।

हिरण्यहस्ताय गतो लोकान् देवैरभिटुतान् ॥

लोमपादश्च राजर्षिः शान्तां दत्त्वा सुतां प्रभुः ।

ऋष्यशृङ्गाय विपुलां सर्वकामैरयुज्यत ॥

कश्यपः ।

अग्निष्टोमातिरात्राणां शतं शतगुणं शतं ।

लभते कन्यकां दत्त्वा मन्त्रहोमैरलङ्कतां ॥

अनङ्गां सहस्राणां दशानां धुर्यवाहिनां ।

सुपात्रे विधिवद्दानं कन्यादानञ्च तत्समं ॥

देवलः ।

तिस्रः कन्या यथान्यायं पालयित्वा निवेद्य च ।

न पिता नरकं याति नारी वा स्त्रीप्रभूयिनी ॥

वशिष्ठः ।

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलं ।

हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलं ॥

संवर्त्तः ।

अलङ्घ्य तु यः कन्यां भूषणाच्छादनाशनैः ।

दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूज्यते वामवादिभिः ॥

वर्जपुराणे ।

कन्यां ये तु प्रयच्छन्ति यथाशक्त्या स्वलंकृतां ।

ब्रह्मदेयां द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥

कूर्मपुराणे ।

कन्यामलङ्कृतां वित्तशक्त्या दत्त्वा सकौतुकं ।

गौरीलोकमवाप्नोति विप्राय गुणशालिने ॥

नारदीयपुराणे ।

चतुर्णामायमाणान्तु गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते ।

गृहस्थाच्च गृहं श्रेष्ठं गृहाच्छ्रेष्ठा वरस्विदः ॥

तस्मात् कन्याप्रदानस्य नान्यदानैस्तुला स्मृता ।

अतः प्रदेया विद्वद्भिः कन्या सर्वार्थकाङ्क्षिभिः ॥

याज्ञवल्क्यः । पिता पितामहोभ्राता सकुल्या जननी तथा ।

कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

नारदः । पिता दद्यात् स्वयं कन्यां भ्राता वानुमते पितुः ।

मातामहो मातुलश्च सकुल्या वान्ववास्तथा ॥

माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्त्तते ।

तस्यामप्रकृतिस्थायां दद्युः कन्यां स्वजातयः ॥

स्कन्दपुराणे ।

आत्मोक्त्य सुवर्णेन परकीयान्तु कन्यकां ।  
धर्मेण विधिना दातुमसगोत्रोऽपि युज्यते ॥

विवाहाधिकारिणमाह मनुः ।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमं ।  
अविप्लुतब्रह्मचर्योऽगृहस्थाश्रममावसेत् ॥  
गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।  
उद्वहेत् द्विजोभार्यां सवर्णां लक्ष्णान्वितां ॥

याज्ञवल्क्योपि ।

वेदं व्रतानि वा पारव्रीत्वाप्यभयमेव वा ।  
अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्ष्ण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ॥

विश्वामित्रः ।

कन्यामलङ्घतां दत्त्वा समाहृत्य नराधिप ।  
विद्यार्थिने ब्राह्मणाय कन्यादानं तदुच्यते ॥

भविष्यत्पुराणे ।

कन्यामलङ्घतां दद्यादनादाय नराधिप ।  
द्विजाय वेदविदुषे कन्यादानं तदुच्यते ॥  
दद्याद्गुणवते कन्यां नग्निकां धर्मचारिणीं ।  
अपि नो गुणहीनाय नोपरुध्वाद्रजस्वलां ॥

तथा... कन्या देया श्रीत्रियाय ब्राह्मणाय तपस्विने ।

साक्षादधीतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे ॥

ब्रह्माण्डपुराणे ।

कन्यान्तु परया भक्त्या अलङ्कृत्य प्रयत्नतः ।

कुलोनाय सूरूपाय गुणज्ञाय विनिषतः ॥

कन्यां वरयमाणाय दद्यादेष विधिः स्मृतः ।

गारुडपुराणे ।

सगीलाय सुवृत्ताय सविद्याय तपस्विने ।

कन्या देया प्रयत्नेन नेतरस्मै कथञ्चन ॥

परिणियकन्यालक्षणानि तु ।

स्कन्दपुराणे ।

सूरूपां लक्षणेपितामव्यङ्गाङ्गो कुलोद्भवाम् ।

कन्यां भ्रातृमतोच्चैव धर्म्मार्थार्थी समुद्दिहेत् ॥

विशालनेत्रां समुखीं नीलकुञ्चितमण्डजाम् ।

आताम्रपाणिपादायां कम्बुग्रीवां सुमध्यमां ॥

विशालजघनाञ्चरुनितम्बस्थलभूपितां ।

अस्थूलगुल्फदगनां आश्यामाधरतालुकां ॥

अपिङ्गाक्षीमकपिलामम्बुरञ्चरणां शुभां ।

अस्थूलगण्डनामायां शस्तामाहुर्मनोपिणां ।

उद्दिहेत्तादृशीं कन्यां रोगदापविवर्जितां ॥

वर्जनीयकन्यानि

रूपणं ब्रह्मपुराणे ।

सहान्यपि समुदायि गोजाविधनधान्यतः ।

स्वोमस्वन्धे दशेमानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥  
 नानजातिसुपाषण्डसुजनोद्दिगकारिणां ।  
 ऋद्धामयमदावाच्यश्विविकुष्ठिकुलानि च ॥  
 यस्यास्तु न भवेद्भाता न च विज्ञायते पिता ।  
 नापयच्छेत् तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया ॥

अथाह मस्वर्तः ।

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नवमे नग्निका भवेत् ।  
 दशमे कन्यका प्रोक्ता द्वादशे वृषली स्मृता ॥

आहाङ्गिराः ।

अप्रातरजना गौरी प्राप्ते रजनि रोहिणी ।  
 अथञ्जनकताग्रामा कुचहोना तु नग्निका ॥

काश्यपः ।

नम्रवर्षा भवेद्गौरी दशवर्षा तु कन्यका ।  
 प्राप्त तु द्वादशे वर्षे कुमारीत्यभिधीयते ॥  
 र मकाले तु सम्प्राप्ते मामिभुञ्जीत कन्यकां ।  
 रजःकाले तु गन्धर्वाः शक्रस्तु कुचदर्शने ॥  
 तस्मादुदाहयेत् कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ।  
 विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायाः शस्यते बधैः ॥

अथाह मनुः ।

चतुर्दशवर्षायां प्रत्यहं च हिताहितान् ।  
 अष्टविमान् सप्तविजः स्त्रीविवाहान्निबोधत ॥  
 ब्राह्मी दश स्तथाचार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ।

गान्धर्वी राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोमतः ॥\*  
 चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान् प्रशस्तान् कवयोविदुः ।  
 राक्षसं क्षत्रियस्यैवमासुरं वैश्यगृह्ययोः ॥  
 पञ्चानाञ्च तयोधर्म्यां हावधर्म्यां स्थिताविह ।  
 पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्त्तव्यौ कथञ्चन ॥  
 पृथक् पृथक् विमिश्री वा विवाहौ पूर्व्वनोदितौ ।  
 गान्धर्वी राक्षसश्चैव धर्म्यां क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥

पैठीनसिः ।

गान्धर्वीसुरौ राजन्यस्य. राक्षसोवैश्यस्य. पैशाचः  
 शूद्रस्य, सर्व्वेषामार्षः प्रमाणम् ।

आह प्रचेताः ।

पैशाचः संस्कृतप्रसूतानां प्रतिलोमजानाञ्च ।

मनुः ।

योयश्चैषां विवाहानां मनुना कीर्त्तिती गुणः ।  
 सम्यक् शृणुत तं विप्राः सर्व्वं कीर्त्तयतो मम ॥  
 दश पूर्व्वान् परान्वंश्यानात्मानञ्चैकविंशकं ।  
 ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकल्मीचयत्येनमः पितृन् ॥  
 देवोद्गाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान् ।  
 अर्षोद्गाजः सुतस्त्रींस्त्रीन् षट्कं कायोद्गाजः सुतः ॥  
 ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्व्वेवानुपूर्व्वशः ।  
 ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टमन्मताः ॥

रूपमत्त्वगुणपेता धनवन्तो यशस्विनः ।

पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥

इतरेषु च शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।

जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्महिषः सुताः ॥

अनिन्दितैः स्त्रोविवाहैरनिन्या भवति प्रजा ।

निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्यान् विवर्जयेत् ॥

अथ तेषां लक्षणानि ।

तत्र विष्णुः ।

आह्वय गुणवते कन्यां कन्यादानं स ब्राह्मः ।

वैधायनः ।

श्रुतशाले विज्ञाय ब्रह्मचारिणे ऽर्थिने दयेति स ब्राह्मः ।

प्रचेताः ।

सवर्णाय नग्निकामुदकेन दद्यात् स ब्राह्मो विवाहः ।

व्यासः ।

आच्छाद्यालङ्कृतां कृत्वा त्रिः परिक्रम्य पावकं ।

नामगोत्रे समुद्दिश्य दद्याद्ब्राह्मोविधिस्त्वयम् ॥

मनुः ।

यज्ञे तु वितते सम्यक् कर्मकृत्विति ऋत्विजे ।\*

अलङ्कृत्य सुतादानं देवं धर्मं प्रचक्षते ॥

एकहोमिदं देवा वरादादाय धर्म्मतः ।

कन्याप्रदानं विधिवदार्षी धर्मः स उच्यते ॥

हारीतः ।

अनित्यमन्येरवितर्कयन् विधिवदस्त्रयुगं दत्त्वा अनया सह  
धर्मश्चर्यतामिति प्राजापत्यः ॥

मनुः ।

सहोभा चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य तु ।  
कन्यादानं समभ्यर्च्य प्रजापत्याविधिः स्मृतः ॥  
ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तिनः ।  
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्यादासुरीधर्म उच्यते ॥  
इच्छयान्त्वान्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।  
गान्धर्वः स च विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥  
हत्वा क्षित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।  
प्रमह्य कन्याहरणं राजसो विधिरुच्यते ॥  
सुप्तं\* मत्तां रहश्वद्वयं कृत्वा यत्नीयते ।  
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः ॥

अथ वल्किपुराणे ।

ब्राह्मेण तु विवाहेन यस्तु कन्यां प्रयच्छति ।  
ब्रह्मलोकं व्रजेत् क्षिप्रं ब्रह्माद्यैः पूजितः सुरैः ॥  
दैवेन तु विवाहेन यस्तु कन्यां प्रयच्छति ।  
भित्वा द्वारन्तु सूर्यस्य स्वर्गलोकञ्च गच्छति ॥  
गान्धर्वेण विवाहेन यस्तु कन्यां प्रयच्छति ।  
गन्धर्वलीकमामाद्य क्रौडते देववच्चिरम् ॥



शुक्लेन दत्त्वा यः कन्यान्तां पश्चात्सम्यगर्चयेत् ।

स किन्नरैश्च गन्धर्वैः क्रीडते कालमक्षयं ॥

भविष्यत्पुराणे ।

त्रिलेक्यं गोत्रनक्षत्रे राशिकूटादिकं शुभम् ।

मन्त्रेण समुह्यते च दद्याच्चैव यथाविधि ॥

उभयस्यापि पक्षस्य मनाभ्युदयपूर्वकम् ।

कुमार्यास्त्वष्टवर्षायाः शस्यते पाणिनीयनम् ॥

आह पैठोनमिः ।

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णसंपदिश्यते ।

असवर्णास्त्वयं ज्ञेयो विधिरुद्राहकर्मणि ॥

गरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया ।

वसनस्य दगा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥

ऋष्यशृङ्गः ।

वरगीत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् ।

नाम मङ्गीर्त्तयेद्विद्वान् कन्यायाश्चैव मेव हि ॥

तिष्ठेत्पञ्चमस्वोदाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् ।

मधुपर्काञ्चितां चेनां तस्माद्दद्यात् सदक्षिणां ।

उदपात्रं ततोऽष्टमं मन्त्रेणानेन दापयेत् ॥

गौरीं कन्यामिमां विप्रं यथाशक्ति विभूषितां ।

गोत्राय शर्मणि तस्मै दत्तां विप्रसमाययां इति ॥

इदमिह दानवाक्यं ।

आ तदा अमुकमगोत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्मणः प्रपौ-

त्राय, अमुकसगीत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्मणः पौत्राय,  
अमुकसगीत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुकशर्मणः पुत्राय, अमुकसगी-  
त्राय अमुकप्रवराय अमुकशर्मणे वराय, अमुकसगीत्रस्य अमुक-  
प्रवरस्य अमुकशर्मणः प्रपौत्रो, अमुकसगीत्रस्य अमुकप्रवरस्य  
अमुकशर्मणः पौत्री, अमुकसगीत्रस्य अमुकप्रवरस्य अमुक-  
शर्मणः पुत्री, अमुकसगीत्रां अमुकप्रवरां अमुकशर्मणानामि-  
माङ्गन्यां सालङ्कारां प्रजापतिदेवतां अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्र-  
ददे । एतत्कन्यादानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणमिदं हिरण्यं सम्प्रददे  
न ममेत्युच्चार्य दानमन्त्रं पठेत्, प्रतिग्रहीता तु प्रणवपूर्व-  
स्वस्त्योक्त्या कोदादिते मन्त्रमुदाहरेत् ।

भूमिं गावश्च दासीश्च वासांश्च च स्वशक्तिः ।

महिषोवाजिनश्चैव दद्यात्स्वर्णमणीनपि ॥

ततः स्वष्ट्यविधिना होमाद्यं कर्म कारयेत् ।

यथाचारं विधेयानि मङ्गल्यकुतुकानि च ॥

लिङ्गपुराणे ।

कन्यां लक्षणसम्यग्नां सर्वदोषविवर्जिताम् ।

मातापित्रोस्तु सखादं कृत्वा दत्त्वा धनं महत् ॥

आत्मोक्त्य तु संस्थाप्य वस्त्रं दत्त्वा नवं शुभम् ।

भूषणैर्भूषयित्वा च गन्धमाल्यैरथार्चयेत् ॥

निमित्तानि समीच्याथ गीतनक्षत्रकाटिकम् ।

उभयोश्चित्तमालीच्य उभौ संपूज्य यत्नतः ॥

दातव्या श्रोत्रियायैव ब्राह्मणाय तपस्विने ।

मात्तादधोतवेदाय विधिना ब्रह्मचारिणे ॥  
 दामोदामामनाद्यच्च भूषणानि विंशतः ।  
 क्षेदाणिच धनं वापि तथान्यानि प्रदापयेत् ॥  
 यावन्ति क्षन्ति रीक्षाणि कन्यायाश्च तनौ पुनः ।  
 तावद्वर्षमहस्त्राणि रुद्रलोके महीयते ॥

वह्निपुराणे ।

एवं दक्षन्ति ते कन्यां यथागच्छा स्वलङ्घितां ।  
 विवाहकानि संप्राप्ते यथोक्ते सदृशे नरे ।  
 क्रमानक्रमेण क्रतुगतमनुपूर्वं लभन्ति ते ॥  
 युष्मा कृताप्रदानश्च पितरः प्रपितामहाः ।  
 तिस्रः सर्वदापिभ्या ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥  
 तथा । न मन्वद्धारयितासां पूज्याश्च मततं गृहे ।  
 ब्रह्मादयो विशेषेण ब्रह्मभोज्यं सदा भवेत् ॥  
 अप्रजायाश्च कन्याया न भुञ्जीयात् कदाचन ।  
 दौहित्रस्य मुखं दृष्ट्वा किमर्थमनुशीचमि ॥  
 महासत्त्वतमाकोणीवास्ति ते नरकाद्वयं ।  
 ताणैस्त्वं सर्वदुःखेभ्यः परं स्वर्गमवाप्स्यसि ॥  
 दानितश्च तु दानेन नन्दन्ति पितरः सदा ।  
 यत् किञ्चित् कुरुते दानं तद्दानन्याय कल्पते ॥  
 इत्या कन्यां न गाचेन जुधिता ताडिता पिवा ।  
 नानादुःखाभिभूता वा तथैवाशरणा कृशा ॥  
 तदानीन् न चैवास्या आगताञ्चैव पोषयेत् ।

शोचन्ति यामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलं ।  
 न भुञ्जन्ति च यत्रैव निर्दहन्त्यप्रपूजिताः ।  
 तस्मादेताः सदाभ्यर्च्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥  
 भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सुतापुत्रस्तु सर्वदा ।  
 सन्तुष्टः स्यात्तथा पूज्यः स आर्द्धिपूषवेपु च ॥  
 यस्मिन्नेवं कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै भुवं ।  
 इह कीर्त्तिर्भवेत् स्वर्गः परत्र द्विजसत्तम ॥  
 तिलराशिः कृतोयावद्दिवाकरसमुच्छ्रितः ।  
 वर्षान्ते गृह्यते तस्मात् तिल एकस्तु यावता ॥  
 संचयं लभते तावद्ब्रह्मलोकस्य निश्चितं ।  
 शतगव्यूतिमानेन सञ्चितैर्द्विषरोमभिः ॥  
 विशीर्यते तुरालिङ्गं वर्षे कन्याप्रदस्तथा ।  
 तावत्स्वर्गं लभेत् यावत्सर्वलोम्नान्तु संचयः ॥  
 महीदातुश्च गोदातुः कन्यादातुश्च ये रथाः ।  
 कन्यादानानुगाः पश्चात्समं यान्ति त्रयोरथाः ॥  
 अयाचितप्रदातुश्च सत्यवादिन एव च ।  
 नित्यं स्वाध्यायशीलस्य समं यान्ति त्रयोरथाः ॥  
 कूकुदद्याश्वमेधो च प्राणदाता द्विजेषु च ।  
 समं यान्ति रथा ह्येते त्रयोवै नात्र संशयः ॥

अलङ्कृत्य कन्याप्रदाता 'कूकुदः' ।

कन्यादानं ददितुं यो ददाति परिष्कृतं ।

पूतं धर्ममवाप्नोति यथावदधिकल्पितं ।

\* न शोचन्ति चेति कश्चितपाठः ।

तस्मात् कन्या प्रयत्नेन दातव्या त्र्येय इच्छता ॥

स्कन्दपुराणे ।

वेवाहिकप्रदानं वा योददाति दयापरः ।

विमानेन विचित्रेण किङ्किणीजालमालिना ।

महेन्द्रभवने याति मेघ्यमानोऽप्सरोगणैः ॥

इति कन्यादानविधिः ।

अथ द्विजस्थापनं तत्र दत्तः ।

मातापितृविहीनन्तु संस्कारोदहनादिभिः ।

यः स्थापयति तस्यैव पुण्यसंख्या न विद्यते ॥

कालिकापुराणे ।

कारयित्वा तत्रोदाहं योत्रियाणां कुलेषु च ।

वेदवस्त्रोलवुत्तेषु द्विजेष्वेकादशस्तथा ॥

जातारुहाणि रम्याणि कुर्यादिकादशैव तु ।

कारयित्वा तु धान्यैश्च विविधैश्च प्रपूरयेत् ॥

दार्माणो जहिषोश्चापि शयनासनपादुकाः ।

भाजनानि विचित्राणि ताम्रमृण्मयकानि च ॥

पात्राणि भीजनार्थं च कृत्स्नस्त्रीपस्करञ्च यत ।

लोहञ्च कनकं चैव वस्त्राणि तु विधिपतः ॥

संभोज्यं मुसम्भारं तद्गृहेषु नियोजयेत् ।

योजयेच्चैव वृत्त्यर्थं शक्तिती वा यतं यतम् ॥

पयस्कं दधकं लाङ्गलानां निवर्त्तनयताईतः ।

विषयं कञ्जैः खिणं ग्रामं ग्रामाईमेव वा ॥

योजयेत्सोममूर्त्तिञ्च चिन्तितेषु द्विजेषु वै ॥  
 एकादशैव तास्तत्र दाम्पत्योमाहरात्मकाः ।  
 विचिन्त्य परया भक्त्या तद्गृहेषु प्रवेष्टयेत् ॥  
 ग्राहयेद्ग्नहोत्राणि प्रवेष्टयेत्तान् द्विजोत्तमान् ।  
 विधिपूर्वं यथान्यायमात्मनः श्रेयसे नरः ॥  
 अदृष्टकुलजानाञ्च विधिरेषां चिरन्तनः ।  
 शिवभक्त्या विभक्तानां द्विजानां कारयेत्सदा ॥  
 यश्च प्रेष्यान् द्विजान् मूढो योजयेद्व्यकव्ययोः ।  
 न भवेत्तत्फलं तस्य वैदिकोयं श्रुतिर्ध्रुवा ॥  
 यज्ञदानं व्रताद्यञ्च तीर्थयात्रादिकं च यत् ।  
 यस्त्वेवं कारयेज्जन्तुं तेन सर्वमनुष्ठितम् ।  
 स यात्यर्कसमानाभं विमानं रत्नमालिनम् ॥  
 आरुह्य तत्पदं पुण्यं सुरस्त्रीभिरलङ्कृतम् ।  
 विमानैश्चापरैर्दिव्यैः सहस्रैः परिवारितः ॥  
 सर्वलोकगतान् भोगान् भुक्त्वा तस्मिन् प्रपद्यते ।  
 ज्ञात्वा स्ववित्तसामर्थ्यं एकं चोहाहयेद्विजम् ॥  
 तेन प्राप्नोति तत्स्थानं शिवभक्तो नरोद्भवं ।  
 स्थानेन स्थानसम्प्राप्तिर्विधिदत्तेन जायते ॥

अथ राजस्थापनं ।

आदित्यपुराणे ॥

बृहस्पतिश्रुतौ च ।

भूमिपालं च्युतं राज्यात् यस्तु संस्थापयेत्पुनः ।

तस्य वासो मुनीन्द्रेह नाकपृष्ठे न संशयः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

भूपालं यंच्युतं राज्यात् स्वराज्ये स्थापयेत्पुनः ।  
 म याति शक्रसालोक्यं यावच्छक्राश्चतुर्दश ॥  
 तता मामुष्यमामाय राजा भवति धार्मिकः ।  
 तस्माद्दानं त्र्योविहोने दातव्यं भूतिमिच्छता ॥  
 त्र्योविहोनेषु यद्वत्तं तदनन्तं प्रकीर्तितं ।

तथा,

स्थानभ्रष्टस्य यः कुर्याद्भूयस्वारोपणं नरः ।  
 नाकलोकमवाप्नोति चिरन्तेनेह कर्मणा ॥

कन्यादानप्रसङ्गेन द्विजातिस्थापनमुक्तम् क्रमप्राप्तस्य कपिला-  
 दानस्य गोदानप्रकरणे निरूपितत्वात् पर्यवसितानि, दशमहा-  
 दानानीति ।

इति त्र्योमहाराजाधिराजत्र्योमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-  
 सकलविद्याविशारद-त्र्योहेमाद्रि-विरचिते चतु-  
 र्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डे दशमहा-  
 दानप्रकरणं ।

## अथ दशमोऽध्यायः ।



अथ कृष्णाजिनदानान्यभिधीयन्ते ।

यामन्यते सततमध्वरदीक्षणेषु  
क्षीमास्वरादपि मृदूनि मृगाजिनानि ।  
हेमाद्रिरेष तदशेषमशेषमुक्तं  
कृष्णाजिनप्रमुखदानविधानमाह ॥

तत्संग्रहस्तोकास्तु ।

सौरपुराणे ।

कृष्णाजिनं च महिषीं मेघीञ्च दशधेनवः ।  
ब्रह्मलोकप्रदायीनि तुलापुरुष एव च ॥

तत्र कृष्णाजिनदाने, यमः ।

गोभूहिरण्यमंयुक्तं मार्गमेकं ददाति यः ।  
सर्वदुष्कृतकर्मापि सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ॥

मरीचिः ।

कृष्णाजिनोभयमुखीं योदद्यादाहिताग्नये ।  
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥



कात्यायनः ।

कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी ।  
 ये प्रयच्छन्ति विप्राय न ते शोच्याः कृताकृते ॥  
 सर्वान् च लोकांश्चरति कामचारविहङ्गमः ।  
 आहृतमंप्रवं यावत् स्वर्गलोके महीयते ॥  
 कृष्णाजिनममन्दानं नचास्ति भुवनत्रये ।  
 प्रतिग्रहोपि पापीयानिति वेदविदोविदुः ॥  
 कृष्णाजिनन्तु योभक्त्या ब्राह्मणाय प्रयच्छति ।  
 स तिष्ठेद्देषणवे लोके यावच्चन्द्रार्कतारकं ॥  
 कृष्णाजिनन्तु यः पश्येद्दोयमानन्तु भक्तितः ।  
 सोपि पापैः प्रमुच्येत आजन्मजनितैरपि ॥  
 ब्राह्मणा पूर्व्वरूपन्तु कृष्णाजिनः॥ विनिर्मितम् ।  
 संमिदये च यागानां आढानाञ्च सुसिद्धये ॥  
 अङ्गोरूपं सितं तस्य कृष्णं रात्रिमयं वपुः ।  
 बहुरूपन्तु मन्थ्याया विज्ञेयं तन्नराधिप ॥  
 कृष्णाजिनस्य सामानि शुक्लानि च ऋचस्तथा ।  
 यज्रंपि बहुरूपाणि श्रुतिदेहश्चरेन्मृगः ॥  
 स्नेच्छया रमते यत्र स देशो याज्ञिकः स्मृतः ।  
 इतरे स्नेच्छदेहास्तु श्रुतिधर्मविवर्जिताः ॥  
 न जगणेन विना यज्ञो न आहुः न क्रिया क्वचित् ।  
 भवन्ति धर्मशास्त्राणि वेदकार्याणि पार्थिव ॥

॥ कृष्णाजिनमिति क्वचित् पाठः ।

तद्दानं सर्वदानानामधिकं श्रुतिकर्मणाम् ॥

आह विष्णुः ।

अथ वैशाखां पौर्णमास्यां कृष्णसृग्नाजिनं सखु रंसशृङ्गं  
रौप्यखुरं मुक्तालाङ्गलभूषितं कृत्वा आधिकेन च वस्त्रेण प्रसारिते  
प्रसारयेत् ततः स्तिलैः प्रच्छादयेत् सुवर्णनाभञ्च कुर्यादहतेन  
वामायुगेन प्रच्छादयेत् सर्व्वरत्नगन्धैश्चालंकुर्याच्चतस्र्यु च दिक्षु  
चत्वारि तैजसानि पात्राणि क्षीर-दधि-मधु-मर्पिः-पूष्पानि निधा-  
याहिताग्नये ब्राह्मणाय वामायुगप्रच्छादिताय दद्यात् ।

अत्र च गाथा भवन्ति ।

यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात् सखुरं शृङ्गमयुतं ।  
तिलैः प्रच्छाद्य वामोभिः सर्व्वरत्नैरलङ्कृतं ॥  
सममुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना ।  
चतुरन्ता\* भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥  
कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा हिरण्यं मधुमर्पिणी ।  
ददाति यस्तु विप्राय सर्व्वन्तरति दुष्कृतं ॥

मत्स्यपुराणे ।

मनुरुवाच ।

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिज्ञानं समानघ ।  
ब्राह्मणं च समाचक्ष्व तव मे संशयो महान् ॥

मस्य उवाच ।

त्रैगाखी पौर्णमासी च ग्रहणं शशिसूर्ययोः ।  
 प्रौर्णमासी तु या माघे आषाढौ कार्तिकी तथा ॥  
 उत्तरायणद्वादशी वा तस्यान्दत्तं महाफलं ।  
 आहिताग्निर्द्विजोयश्च तद्देयं तस्य पार्थिव ॥  
 यथा येन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ।  
 गोमयेनीपलिप्ते तु शुचौ देशे च वार्थिव ॥  
 आदाविव समास्तौर्था शोभनं वस्त्रमाविकम् ।  
 ततः समृद्धं सखुरमास्तरे क्षणमार्गणं ॥  
 कर्त्तव्यं कृत्स्नशृङ्गञ्च रौप्यन्दन्तं तथैव च ।  
 लाङ्गूलं मौक्तिकैर्युक्तं तिलच्छन्नं तथैव च ।  
 तिलैरात्मममङ्गत्वा वासमाच्छादयेद्बुधः ॥  
 तिलैस्तु, गिखरङ्गुलेति कचित्पाठः ।  
 सुवर्णनाभन्तत् कुर्यादलङ्कुर्याद्विशेषतः ।  
 रत्नैर्गन्धैर्यथाशक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत् ॥  
 कांस्यपात्राणि चत्वारि दिक्षु दद्याद्यथाक्रमं ।  
 मृगमयेषु च पात्रेषु पूर्वदिषु क्रमेण तु ।  
 घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दत्त्वा यथाविधि ॥

अत्र मरुत्तानि कांस्यपात्राणि चतसृषु दिक्षु विन्यसेत् अन्या-  
 नि च मृगमयानि पात्राणि घृत-क्षीर-दधि-मधु-पूर्यानि यथाक्रमं  
 पूर्वदिदिक्षु स्थापनीयानीति ।

पञ्चकस्य तथाशाखामव्रणं कुम्भमेव च ।

ब्राह्मोपस्थानकङ्कृत्वा शुभचित्तो निवेशयेत् ।

जीर्णवस्त्रेण पीतेन सर्वाङ्गानि च मार्जयेत् ॥

ब्राह्मोपस्थानकमिति दानप्रदेशाद्वाह्नि, उप समीपे स्थानं  
यस्य स तथेति कुम्भविशेषणं, मार्जयेदिति दानानन्तरं स्नात्वा  
जीर्णवस्त्रेण प्रच्छादयेदित्यर्थः ।

धातुमयानि पात्राणि पादेष्वस्य प्रदापयेत् ।

यानि काम्यानि पापानि मया लोभात् कृतानि वै ॥

लोहपात्रप्रदानेन प्रणश्यन्तु ममाशु वै ।

तिलपूर्णन्तु तत् कृत्वा वामपादे निवेशयेत् ॥

यानि पापानि काम्यानि कर्णात्थानि कृतानि च ।

कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा ।

मधुपूर्णन्तु तत् कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यमेत् ॥

एतत्पात्रद्वयं, पश्चिमपादयोः स्थापनीयं ।

परापवादपैशून्यात् पृष्ठमांसस्य भक्षणान् ।

तत्रोत्थितञ्च मे पापं ताम्रपात्रात् प्रणश्यतु ॥

कन्यानृतं गवाञ्चैव परदारप्रधर्षणं ।

रौप्यपात्रप्रदानेन क्षिप्रं नाशं प्रयान्तु मे ।

ऊर्ध्वपादे त्विमे कार्ये ताम्रस्य रजतस्य च ॥

ऊर्ध्वपादे, अग्रपादयोः एकवचनमत्राविवक्षितं ।

अत्र ताम्रपात्रं मधुपूर्णं, दक्षिणपादे रजतपात्रं, तिलपूर्णं-  
वामपादे स्थापनीयं ।

जन्मजन्मसहस्रेषु कृतं पापं कुवङ्किना ।

सुवर्णपात्रदानात्तत्राशयाशु जनार्दन ॥

एतच्च सवर्णपात्रमक्षतपूर्णं मध्यदेशे स्थापयेत् ।  
 हेममुक्ताविट्टमञ्च दाडिमं बीजपूरकं ।  
 प्रशस्तपत्रं श्रवणे खुरे शृङ्गाटकानि च ॥  
 एवं कृत्वा यथोक्तेन सर्व्वशाकफलानि च ।  
 तत्प्रतिग्रहविधिद्वानाहिताग्निर्द्विजोत्तमः ॥  
 स्नातो वस्त्रयुगलद्वयः स्नानशक्त्या चाप्यलङ्कृतः ।  
 प्रतिग्रहय तस्योक्तः दुष्कृद्देशे महीपते ॥  
 सुवर्णनाभिकं दद्यात् प्रीयतां वृषभध्वजः ॥

इदमिह दानवाक्यं ।

ओम् अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि इदं कृष्णाजिनं कुशोपरिगत-  
 कम्बलोपरि स्थितं, वस्त्रयुगप्रक्षादितितिराशिं, सुवर्णशृङ्गं, रौप्य-  
 खुरं, रौप्यदन्तं मुक्ताफललाङ्गूलं, सुवर्णनाभं पञ्चरत्नालङ्कृतं गन्ध-  
 पुष्पान्वितं चतुर्दिगवस्थितघृत-क्षीर-दधि-मधु-पूर्णपात्रचतुष्टय-  
 सहितं सकांक्षपात्रं शिवदेवतं अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे, न  
 ममेति, अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि एतत् कृष्णाजिनदानप्रतिष्ठार्थं  
 दक्षिणामिदं सुवर्णन्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति ।

अनेन विधिना दद्याद्यथावत् कृष्णमार्गणं ।

न स्पृश्यः स द्विजो राजन् चितियूपसमो हि सः ॥

दाने च आङ्काले च दूरतः परिवर्जयेत् ।

स्वगृहात् प्रेष्य तं विप्रं मण्डले स्थानमाचरेत् ।

तद्वस्त्रं कुम्भमहितं नीत्वा क्षेप्यं चतुष्पथे ॥

अहत, मपरिहितमप्रक्षालितं च वीतः, कृतपरिधानः ॥

दक्षिणासंख्यातु गरुडपुराणे ।

शतनिष्कसमीपेतं तदर्द्धार्द्धमथापि वा ।  
अतोऽन्यूनं न दातव्यमधिकं फलमूर्जितं ॥  
उत्तमन्तु शतेनैव मध्यमन्तु तदर्द्धतः ।  
तदर्द्धेन कनिष्ठन्तु देयं कृष्णसृगाजिनं  
न वित्तशायं कुर्वीत फलहानिस्तु कारणात् ॥

मत्स्यपुराणे ।

कृतेनानेन या तुष्टिर्न सा शक्या सुरैरपि ।  
वक्तुञ्च नृपतिश्चेष्ट तत्राप्युद्देशतः शृणु ॥  
समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।  
सर्वांस्तु लोकांश्चरति कामचारौ विहङ्गमः ॥  
आहृतसङ्गं यावत्स्वर्गमाप्नोत्यसंशयं ।  
न पितृपुत्रमरणं वियोगं भार्यया सह ।  
धनदेशपरित्यागं नचैवेहाप्नुयात् क्वचिन् ॥  
कृष्णाजिनं कृष्णसृगस्य चर्म  
दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहिताय ।  
यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्  
प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलन्तु ॥

वैष्णवपदाधिकारे ।

कालिकापुराणे ।

येऽपि रुक्मादेपाचे च हत्वा वस्त्रं ददन्ति व ।  
तिलद्वेष्टपमायुक्तं वस्त्रयुग्मिन वेष्टितं ॥

पलाङ्गीर्द्धमथाङ्गं वा वित्तमान् हेमसंयुतं ।  
 सूक्ष्मयुग्मेन वस्त्रेण अन्येनाक्षादयेद्विजं ॥  
 मोदकं चापरं रुक्मं सतिलं न्यस्य तत्करे ।  
 ततः कृष्णाजिनं दद्यात्तिलद्रोणान्वितञ्च यत् ॥  
 दत्त्वा तु भोजयेत्तत्र नत्वाचैव विसर्जयेत् ।  
 अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ॥  
 युगादौ वा प्रयच्छन्ति विधिना ये तु वै द्विजे ।  
 तेपि तत्पदमासाद्य दशांशं ब्राह्मणायुषः ॥  
 क्रीडन्ति विविधैर्भागेः कलारूपगुणान्विताः ।  
 अनेन च विधानेन दशद्रोणप्रदायकः ।  
 आब्रह्माण्डभवं कालं मोदते स पुरीक्षमे ॥  
 योघटं पयसा पूर्णं हेमपद्मनिर्वाजितं ।  
 संपूज्य वस्तयुग्मेन दद्यात्सोपि व्रजेत् ध्रुवं ॥

आदित्यपुराणे ।

वैशाख्यां पूष्णमास्यां च तिलदानं ददन्ति ये ।  
 कृष्णाजिनञ्च संपूष्णं प्रक्षाद्याष्टौ तिलस्य वै ॥  
 स्वर्णशृङ्गं रौप्यखुरं मुक्तालङ्गूलभूषितं ।  
 श्वेतवस्त्रयुगोपितं कृष्णचैलाद्यलङ्कृतं ॥  
 लोहभाजनचतुष्कञ्च घृतचौद्रेण पूरितं ।  
 दधिक्षीरं तथा चैव संपूष्णञ्च ततः परं ॥  
 परिक्षिते गुणाधारे ब्राह्मणे सुसमाहिते ।  
 अग्निहोत्ररते गान्ते देवद्विजपरायणे ॥

नित्यस्नाते शौचपरे सर्वशास्त्राद्यलङ्घृते ।  
 तस्मै तद्दीयते दानं कृष्णाजिनमनुत्तमं ॥  
 समद्वीपसागरां वै सशैलवनकाननां ।  
 पृथिवीं रत्नसंपूर्णां दत्त्वा भवति यत्फलं ।  
 उद्धृत्य नरकाद्वीरात् कुलान्येकीत्तरं शतं ॥  
 गच्छति ब्रह्मलोकञ्च विमानैश्चन्द्रमन्त्रिभैः ।  
 चामरैर्धूयमानस्य गीतवंशमनोरमैः ॥  
 अप्सरोभिः परिश्रुतः पताकाध्वजसङ्कुलः ।  
 जयघोषश्च क्रियते तस्याग्रे सुरकिन्नरः ॥  
 ब्रह्मलोकं ततः प्राप्य प्रविश्य च पुरीमिमां ।  
 सर्व्वरत्नोज्ज्वलां दिव्यां मुक्ताजालजिभूषितां ॥  
 प्रवालस्तम्भशीभाढ्यां मौर्व्वर्णालङ्कृतां मुने ।  
 विंशत्कोट्यस्तु लक्षाणि अशीत्यभ्यधिका पुरा ॥  
 सिंहासनोपविष्टस्तु श्वेतवस्त्रपरिच्छदः ।  
 वसते तत्र वै कालं यावदाहृतसंस्पृशं ॥  
 यदि मानुष्यमायाति कदाचित् कालपर्य्यये ।  
 चतुर्व्विंशदशैः जन्म जायते महताङ्गले ॥  
 रूपवान्वलवांश्चैव दीर्घायुः प्रियदर्शनः ।  
 वल्लभः सर्व्वनारोग्यं दाता भोक्ता तथैव च ॥

इति कृष्णाजिनदानविधिः ।

अथ वज्रिपुराणे ।

ब्रह्मा उवाच ।

विधिना केन दातव्या कृष्णाजिनयुतास्तिलाः ।



एतन्मे सर्वमाचक्ष्व यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥

यम उवाच ।

ग्रहणे अयनेचैव संक्रान्तौ सर्वपर्वसु ।  
 युगादिषु युगान्तेषु द्वादश्यान्नियतः शुचिः ॥  
 समुपोष्य समभ्यर्च्य केशवं कल्पापहं ।  
 द्वादश्यान्तु चतुर्दश्यां कृष्णाथान्तु विशेषतः ॥  
 संलिप्य गोमयेनाथ चतुर्हस्तप्रमाणतः ।  
 वस्त्राणि प्रस्तरेद्भूम्यामजिनं तत्र विन्यसेत् ॥  
 कृष्णैस्त्रिलैस्तु सञ्चक्रं कृत्वा तत्रोपरि न्यसेत् ।  
 मधुमर्पयितुं पात्रं हैमच्चौदुम्बरं तथा ॥  
 स्रवर्णं प्रक्षिपेत्तत्र पलं वा त्रिपलं शतं ।  
 शक्तितो दानमेवं हि भक्तिरेवात्र कारणं ॥  
 संक्राद्य तच्छुभैर्वस्त्रैः पात्रं यज्ञोपवीतिनं ।  
 कुम्भाद्याष्टौ तथा दिक्षु सवस्त्राः पात्रसंयुताः ॥  
 तांस्थाय हवनङ्कृत्वा विधिवत्प्रज्य केशवं ।  
 कृष्णाजिनं समभ्यर्च्य ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥  
 कृष्णोऽस्मि कर्मणा कृष्ण कृष्णाजिनमतस्त्रिलैः ।  
 कृष्णैर्युतं प्रतिच्छस्व कृष्णः सम्प्रयितामिति ॥  
 एवं दत्त्वा द्विजेभ्यस्तु दद्यात्पश्चाच्च दक्षिणां ।  
 तिलाहारा भवेत्तत्र ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥  
 एवं कृष्णाजिनन्दत्त्वा नरोविगतकल्मषः ।  
 पितामहान् समुद्रव्य स्वर्गं याति न संशयः ॥

तत्र भोगांश्चिरं भुक्त्वा पितृपितामहैर्वृतः ।

स नरीऽस्य प्रभावाद्भि याति विष्णोः परम्पदं ॥

इत्यपरकृष्णाजिनदानविधिः ।

अथ मध्यमकृष्णाजिनदानं ।

तत्र पुलस्त्यः ।

अथातः कृष्णाजिनदानविधिं वक्ष्यामः । कार्त्तिक्यां पौर्ण-  
मास्यां वैशाख्यां वा, चन्द्रसूर्यग्रहे विषुवत्ययनयोर्वा, कृष्णमृगा-  
जिनं सखुरं मशृङ्गं अत्रणं मनोहरं हिरण्यशृङ्गं रौप्यखुरं  
मुक्तालाङ्गूलभूषितं अन्तर्मांसस्वहिलोमं प्राक्योवं स्यात्, गोमय-  
लिप्तायां भुवि, कुतपानाविस्तोर्य तस्मिन्नाविकं वस्त्रं प्रसार्य,  
तस्मिन्नजिनं हिरण्यनाभं कृत्वा, तिलैः प्रच्छाद्य तद्रूपं कृत्वा  
वस्त्रयुगेन तिलान् प्रच्छादयेत् चतसृषु दिक्षु चत्वारि पात्राणि  
ताम्ररौप्यकांस्यसौवर्णीनि यथाशक्तितः पूर्वस्यान्दिशि क्षोर पूर्णं,  
दक्षिणस्यान्दिशि दधिपूर्णं, पश्चिमस्यान्दिशि घृतपूर्णम्, उत्त-  
रस्यान्दिशि क्षोद्रपूर्णं त्रिदध्यात्, चतसृषु दिक्षु चरस्त्रो गृष्टीर्निद-  
ध्यात्, पश्चिमे भागे सुसमिद्धमग्निं कृत्वा परिसमूह्य पर्युक्ष्य, परि-  
स्तोर्य प्रागग्रे दर्भे महाव्याहृतिभिस्तिलान् घृताक्तान् जुहुयात्,  
शूद्रस्य नमस्कारेणेति तत आहिताग्नये ब्राह्मणाय सर्वाङ्गसम्पूर्णा-  
य पात्रसंयुक्ताय विदुषे वस्त्रयुगोपच्छन्नायालङ्घिताय दद्यात् सर्व-  
गुणविशिष्टं कृष्णाजिनं ददामीति नाभिं स्पृशन्नदितये कृष्णाजिनं  
प्रतिगृह्णामीति असावपि गृह्णीयात्, प्रतिग्रहं वाचयेत् ।

अत्र हिरण्यशृङ्गमित्यादौ हिरण्यादिपरिमाणं यथारुचि  
वित्तशाठ्यरहितेनाचरणीयं । 'बहिलोमेति' 'उत्तरलोमेत्यर्थः'  
कुतपाः कुशाः । आविकं, वस्त्रकम्बलः । गृष्टिः, एकवारप्रसूता  
गौः । नाभिं स्पृशन्निति तिलमयीं सुवर्णाद्यलङ्कृतां नाभिं-दाता  
स्पृशन्नित्यर्थः । अदितये कृष्णाजिनमिति, प्रतिग्रहमन्त्रः । असा-  
विति प्रतिग्रहीता स्वनामीच्चारयन् पुच्छदेशे प्रतिगृह्णीयात् ।

विष्णुधर्मोत्तरे ।

कृष्णाजिनविधिं ब्रूहि मम माधव पृच्छतः ।  
अन्यान्यपि तु दानानि सर्वपापहराणि च ॥

श्रीभगवानुवाच ।

वेगाख्यां पौर्णमास्याञ्च कार्त्तिक्यां विषुवे तथा ।  
अयने ग्रहणे वापि दद्यात् कृष्णमृगाजिनम् ॥  
भूमौ गोमयलिप्तायां दर्भानास्तीर्थ्य मानवः ।  
तत्राविकं तथावस्त्रं प्रागग्रं च प्रसारितं ॥  
तस्मिन् कृष्णाजिनं भूप निर्मांसं सम्प्रसारयेत् ।  
प्राग्ग्रोवमुत्तरमुखं मण्डपं सखुरं तथा ॥  
स्वर्णशृङ्गं रौप्यखुरं मुक्तालाङ्गलभूषितं ।  
तिलैः संच्छाद्य कृष्णैस्तु यथाशक्त्या यथाविधि ॥  
मीवर्णं क्षीरपावन्तु पूर्वस्यान्दिशि दापयेत् ।  
राजतं दधिपावन्तु दक्षिणस्यान्निधापयेत् ॥  
ताम्रपावन्तु पूर्णं पश्चिमायां निधापयेत् ।  
शङ्खं सुनाभिं समुखं क्षीद्रपूर्णं तथोत्तरे ॥

चतसृषु तथा दिक्षु चतस्रो गृष्टिकाः क्रमात् ।  
 तत्स्वरूपन्तु राजेन्द्र तिलानाच्छाद्य वाससा ॥  
 पश्चिमे तु ततोभागे विधिना स्थाप्य पावकं ।  
 तिलान् घृताक्तान् जड्यात् व्याहृतिभिः समाहितः ॥  
 आहिताग्निं ततोविप्रमव्यङ्गाङ्गं सुपाठकम् ।  
 प्रवक्तारं याज्ञिकञ्च दातारं स्मृतिवित्परं ॥  
 सम्पूज्य वस्त्रयुग्मेन अलङ्कारैस्तु शोभितैः ।  
 दिशः सम्प्रोक्ष्य गायत्र्या तिलमिश्रेण वारिणा ॥  
 कृष्णाजिणं द्विजश्रेष्ठ सशिरो गृष्टिभिर्युतं ।  
 ददामि प्रतिगृह्णीष्व प्रीयतां धर्मराडिति ॥  
 नाभिं स्पृशंस्तन्निनयेत् प्रतिगृह्णात्वमाविति ।  
 अदितिर्द्वारिति जपेत् प्रणवेनादिना ततः ॥  
 मप्रणवं मन्त्रं प्रतिग्रहाद्यन्तयोः प्रतिग्रहीता जपेत् ।  
 गोभूहिरण्यसंयुक्तं मार्गमेतद्ददाति यः ॥  
 गोभूहिरण्यसंयुक्तमित्यत्र यथाशक्त्या गोभूहिरण्यं दक्षिणा ।  
 स सर्वपापकर्मापि सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ।

इति मध्यमकृष्णाजिनदानविधिः ।

अथ महाकृष्णाजिनदानम् ।

विष्णुधर्मीत्तरे ।

श्रीभगवानुवाच ।

मुण्डिते वा तु या प्रोक्ता प्रायश्चित्तं पुराभवत् ।

हत्यायां ब्राह्मणस्यैव तां प्रवक्ष्यामि मानद ॥

भूमिं प्राक्प्रवणां शुद्धां गोमयेनानुलेपयेत् ।  
 तस्यां हरितदर्भांस्तु घनानास्तीर्थं यत्नतः ॥  
 मध्ये कृष्णाजिनं राजन् नार्द्रं सर्वोद्भिकं दृढं ।  
 आस्तीर्थं शृङ्गमहितं प्राग्ग्रीवं शिरसा सह ।

केतितं ब्राह्मणं पूर्वं पातलचणलक्षितं ॥  
 केतितमिति, निमन्वितमित्यर्थः ।

प्रक्षाल्य पादौ तस्यैव दद्यात् कृष्णे तु वासमी ।  
 सौवर्णे कुण्डले देये कण्ठाभरणमेव च ॥  
 सौवर्णे कङ्कणे देये हस्ताभरणमेव च ।  
 स्रग्दामभिस्तु सम्पूज्य शृङ्गयोर्मध्यदेशतः ॥  
 प्राङ्मुखं ब्राह्मणं स्थाप्य मृगं सौवर्णशृङ्गिकम् ।  
 तिलैः प्रच्छादयेत् कृष्णैर्ब्राह्मणं शिरसा सह ॥  
 यदाशिरौ ब्राह्मणस्य मग्नं भवति भूभुज ।  
 जपेद्दे मूलमन्त्रन्तु गायत्रीं वा समाहितः ॥  
 पापं सञ्चिन्त्य चित्तेन हननं ब्राह्मणस्य तु ।  
 नाभिमात्रं समुद्रुत्य तिलैः सञ्छादयेत्पुनः ॥  
 सञ्छादिते पुनर्विप्रे जपेन्मन्त्रन्तु पूर्ववत् ।  
 पुनरुद्रुत्य विप्रन्तु नाभिमात्रन्तु पार्थिव ॥  
 पुनः सञ्छादयेत्तस्य शिरः कृष्णैस्तिलैस्तथा ।  
 त्रिकृत्वस्तु निमज्ज्यैवं दाता दद्यान्मृगाजिनम् ॥  
 पात्रं मनसि सञ्चिन्त्य तीर्थमप्सु विनक्षिपेत् ।  
 प्रीयतां विश्वकर्मा तु विश्वात्मा विश्वरूपधृक् ॥  
 एवं कृष्णाजिनं दत्त्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।

पापिष्ठः परमं स्थानं याति यत्र न शोचति ॥  
इति ते गुह्यमाख्यातं दानं सर्वाधनाशनं ।  
मुण्डितेन तु कृच्छ्राय ब्राह्मणे घातिते मति ।  
सहस्रं दक्षिणं दद्यान्नियतं ब्राह्मणाय तु ॥

इति महाकृष्णाजिनदानविधिः ।

अथ कृष्णाजिनप्रसङ्गेन मृगदानमुच्यते ।

आह बौधायनः ।

हरिणं कारयेत्ताम्रं धनन्तु दशभिः पलैः ।  
तदर्द्धेन तदर्द्धेन शृङ्गे रूप्यमये दृढे ।  
तण्डुलीपरि संस्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
आढकन्नितयं वापि तदर्द्धं वा स्वशक्तिः ।  
पादेषु चतुर्षु स्थाप्य कांस्यपात्रचतुष्टयम् ।  
वायुदैवतमन्त्रैश्च होमं तत्र प्रकल्पयेत् ॥  
समिदाज्यचरुं कृत्वा शतमष्टोत्तरं द्विज ।  
अष्टाविंशतिरेवाथ दानमन्त्रेण कारयेत् ॥  
वायो चरसि भूतानामन्तस्त्वं लोकपावन ।  
वाहनस्य प्रदानेन वातव्याधिं विनाशय ॥  
अनेन कृतमात्रेण यथोक्तेन विधानतः ।  
वातव्याधिविनिर्मुक्तो नौरुजः सुखमयुते ॥

इति मृगदानविधिः ।

वायुपुराणे ।

गुणैरलीकनिर्वन्धादपतन्त्वा भवेन्नरः ।

वक्ष्ये तस्य प्रतीकारं दानं होमादिसंयुतम् ॥  
 पलेनवा तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथ वा पुनः ।  
 कारयेद्धरिणं हैमं वायोर्वाहनमुत्तमं ॥  
 शृङ्गे च राजते कार्यं पर्वत्रयसमन्विते ।  
 तण्डुलोपरि संस्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 आढकवितयं यदा तदर्द्धं वाथ शक्तितः ।  
 पादेषु चतुर्षु स्थाप्य कांस्यपात्रचतुष्टयम् ॥  
 वायुदैवतमन्त्रैश्च होमं तत्र प्रकल्पयेत् ।  
 समिदाज्यचक्रं हृत्वा शतमष्टोत्तरं द्विजः ॥  
 आचार्यः सर्वशास्त्रज्ञः सर्वविद्यासु निष्ठितः ।  
 एतद्दानप्रयोगज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः ॥  
 अग्निरोशनदिग्भागे सुकुम्भं स्थापयेत्सधीः ।  
 नवरत्नानि देयानि अलाभे स्वर्गमेव तु ॥  
 निक्षिपेत् सृक्तिकां वापि रोचनाङ्गुलं तथा ।  
 चतुर्भिर्ब्राह्मणैश्चापि शान्तिकर्म प्रकल्पयेत् ॥  
 आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैर्हिरण्यादिभिरेव च ।  
 पवमानानुवाकेन देवस्यत्वितिचैव हि ॥  
 ततः पीठे समामौनमभिषिञ्चियुराट्टताः ।  
 वस्त्रेणावेष्टितं कुम्भमादाय चतुरा द्विजाः ॥  
 ततः शुक्लाम्बरधरो नरो शुक्लानुलेपनः ।  
 आचार्येण समं पृजां हरिणस्य प्रकल्पयेत् ॥  
 वायोःशतेन मन्त्रेण तस्मिन्नेनाथ वा पुनः ।  
 ततस्तं हरिणं दद्यात् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥

मन्त्रिणानेन विधिना आचार्यायाश्च भक्तिः ।  
 वायो चरसि भूतानामन्तस्त्वं लोकपावन ॥  
 प्राणा-पान-व्यानी-दान-समाना-द्यभिधानतः ।  
 अलीकं यत् कृतं देव पृथ्व्यन्मनि मारुत ॥  
 त्वं वेत्सि सर्वमेतद्वि परमात्मा यथैव हि ।  
 वाहनस्य प्रदानेन अपतन्त्वं विनाशय ॥  
 ब्राह्मणानां चतुर्णाञ्च यथाशक्त्या च दक्षिणा ।  
 आचार्यस्त्वहत्तं वामो गृहीत्वा शुक्लमेव तु ॥  
 तेन तस्य यथालिङ्गमङ्गानि विसृजेत्सुधीः ।  
 अक्षिभ्यामनुवाकेन यथालिङ्गं प्रयत्नतः ॥  
 दर्भाग्रमुष्टिनाचैव दर्भपिञ्जलकैरपि ।  
 हिरण्यवर्णाः शुचयः आपोहिष्टेति वै पुनः ॥  
 पवमानानुवाकेन आपो अस्मांस्तथैव च ।  
 अन्यैश्च पावनैस्मन्त्रैर्यजुर्भिलोकपृजितैः ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि यथाविभवतो नरः ।  
 एवङ्गृत्वा तु नियतमपतन्त्वाद्विमुच्यते ॥  
 आयुरारोग्यमम्यन्नः सुस्थोभवति मानवः ।  
 महाव्याधिषु चान्येषु दानमेतत् करोति यः ।  
 तत्तद्दोषैर्विनिर्मुक्तो नीरुजोभवति प्रभो ॥

इत्यपरमृगदानविधिः ।

अथ महिषोदानं ।

विश्वामित्रः ।

महिषीं सप्रजां राजन् क्षीरादयां युवतिं तथा ।



दत्त्वा चैव तु कार्त्तिक्यां धेनूपस्करसंयुतां ॥  
 दग्धधेनुप्रदानेन यत्फलन्तस्मिन्नुते ।  
 प्राप्नोति पुत्रपौत्रांश्च सूर्यलोकञ्च गच्छति ॥

भविष्योत्तरे ।

श्रीभगवानुवाच ।

महिषीदानमाहात्म्यं कथयामि युधिष्ठिर ।  
 पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वकामसुखप्रदं ॥  
 चन्द्रसूर्यग्रहे पुण्ये कार्त्तिक्यामयने तथा ।  
 शुक्लपक्षश्चतुर्दश्यां सूर्यमङ्गान्तिवासरे ॥  
 यदा वा जायते वित्तं चित्तञ्च कुरुनन्दन ।  
 तदैव देया महिषी संसारभयभीरुणा ॥  
 सुपयोधरा सुजवना सुशृङ्गो सुखुरा तथा ।  
 प्रथमप्रसूता तरुणी सुशीला दोषवर्जिता ॥  
 सुवर्णेशृङ्गतिलका घण्टाभरस्त्रभूषिता ।  
 रक्तवस्त्रावृता रम्या ताम्रदोहनिकान्विता ॥  
 पिण्डाकपिटकोपेता सहिरण्या च शक्तिताः ।  
 सप्तधान्ययुता देया ब्राह्मणे वेदपारगे ॥  
 पुराणपाठके तदज्योतिःशस्त्रविदे तथा ।  
 देया न वेदरहिते नवकप्रतिने क्वचित् ॥  
 द्रव्यैरेभिः समायुक्ता पुण्येऽङ्गि विधिपूर्वकं ।  
 दद्यात्सन्ते ण राजेन्द्र पुराणपठिते न तु ॥  
 इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ।

महिषीदानमहात्म्यात् मास्तु मे सर्वकामदा ॥

धर्मराजस्य साहाय्ये यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ।

महिषासुरस्य जननी या मास्तु वरदा मम ॥

दानमन्त्रः ।

दद्यात् प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणे तां पयस्विनीं ।

प्रतिग्रहः स्यूतस्तस्याः पृष्ठदेशे स्वयम्भवा ॥

अवेदं दानवाक्यं ।

ओं अद्य अमुकसगोत्रायेत्यादि इमां महिषीं प्रथमप्रसूतां तरुणीं सुवर्णशृङ्गीं, सुवर्णतिलकां सुवर्णभरणां वण्टाताम्र-  
दोहनकान्वितां पिण्याकपिटकीपेतां सप्तधान्यपुतां पादुकवतीं  
यमदैवतां अमुककामस्तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेत्युक्त्वा पूर्वाक्तं  
मन्त्रमुदाहरेत् ।

अमुकसगोत्रायेत्यादि एतन्महिषीदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणा-  
मिदं हिरण्यं तुभ्यमहं सम्प्रददे न ममेति ।

एवं दत्त्वा विधानेन ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ।

क्षमापयेत्ततोविप्रान् सुसंतुष्टो भवेति च ॥

अनेन विधिना दत्त्वा महिषीं द्विजपुङ्गवे ।

सर्वान् कामानवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥

या स्त्री ददाति महिषीं सा राजमहिषी भवेत् ।

महाराजः पुमान् राजन् व्यासस्य वचनं यथा ।

यज्ञयाजी भवेद्विप्रः क्षत्रियोविजयो भवेत् ॥

वश्यस्तु धान्यधनवान् शूद्रः सर्वार्थसंयुतः ।  
 तस्मान्नरेण दातव्या महिषी विभवे सति ॥  
 पुत्रपौत्रप्रपौत्रार्थमात्मनः शुभमिच्छता ।  
 दशधेनुसमां राजन्महिषीं नारदोऽब्रवीत् ॥  
 विंशधेनुसमां व्यासः सर्वदानोत्तमां कविः ।  
 मरिचिण ककुत्स्थेन धन्वमरिण गाधिना ॥  
 दत्ताः संस्कृत्य विप्रेभ्यो महिष्यः सर्वकामदाः ।  
 महिषीदानमहात्म्यं यः शृणोति सदा नरः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥  
 दुग्धाधिकां हि महिषीं नवमेघवर्णां  
 सन्तुष्टतर्ष्णकवतीं जघनाभिरामां ।  
 दत्त्वा सुवर्णतिलकां द्विजपुङ्गवाय  
 लोकद्वयञ्च जयतीह किमत्र चित्रं ॥

इतिमहिषीदानविधिः ।

अथ मेघीदानं ।

तत्र कश्यपः ।

योपि दद्याद्विज्ञात्र ब्राह्मणाय मनोरमां ।  
 माप्यग्निलोकमामाद्य भुङ्क्ते भोगान् सुशोभनान् ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

मेघोमशेषपापघ्नो दत्त्वा याति परं पदं ।  
 वारुणं लाकमाप्नोति दत्त्वा रभ्रं नरोत्तम ॥

भविष्योत्तरे ।

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु पार्थ परं दानं सर्वकिल्बिषनाशनं ।  
यदत्त्वा विविधं पापं सद्योविलयमृच्छति ।  
सुवर्म्शरीमां सौवर्णीं प्रत्यक्षां वा सुशोभनाम् ।  
सुवर्णतिलकोपेतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।  
कौशेयपरिधानाञ्च दिव्यचन्दनभूषिताम् ।  
दिव्यपुष्पोपहारान्तु सर्वधातुरसैर्युतां ॥  
सप्तधान्यसमायुक्तां फलपुष्पवतीं तथा ।  
शतेन कारयेत्ताञ्च सुवर्म्स्य प्रयत्नतः ॥  
यथा शक्त्याथवा कुर्याद्वित्तशायनं न कारयेत् ।  
अयने विषुवे पुण्ये ग्रहणे शशिसूर्ययोः ॥  
दुःस्वप्नदर्शनेचैव जन्मर्त्ते तिथिसंचये ।  
यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम् ।  
तदैव दानकालः स्याद्यतोऽनिव्यं हि जीवितं ।  
दद्यात्तीर्थे गृहे वापि यत्र वा रमते मनः ॥  
तत्र संस्थाप्य देवेशमुमया सह शङ्करम् ।  
ब्रह्माणं सह गायत्र्या सञ्चीकं श्रीधरं तथा ॥  
रत्या सह तथानङ्गलोकपालान् ग्रहानपि ।  
तान्तु पूज्य विधानेन गन्धपुष्पनिवेदनैः ॥

उमाशङ्कररूपमाह ।

विश्वकर्मा ।

चर्माश्वरश्चतुर्वर्हुः शूलखट्वाङ्गपाशधृक् ।

पृषाङ्गः शङ्करो गौरी वामीक्षङ्गे स्थिता भवेत् ॥

ब्रह्मगायत्रीरूपन्तु, पद्मपुराणीतब्रह्माण्डदाने द्रष्टव्यं ।

लक्ष्मीनारायणयोस्तु, हेमहस्तिरथदाने । रत्ननङ्गयोस्तु,  
कल्पपादपदाने, लोकपालानाञ्च, ब्रह्माण्डदाने, ग्रहरूपाणिच,  
ग्रहदानेषु वक्ष्यन्ते नानि च यथाशक्ति सुवर्षमयानि कर्त्तव्या-  
नीति ।

तदग्रे कारयेद्भोमन्तिलाज्येन महीतले ।

अलङ्कृत्य द्विजं शान्तं वासीभिः परिपूज्य च ।

तस्मिङ्गमन्त्रे ह्रींमञ्च कर्त्तव्योज्ज्वलितेऽनले ।

ततस्तांस्तिलकुम्भस्थान् लवणाभिमुखस्थितान् ।

पूजयित्वा विधानेन मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।

रोमस्त्वङ्मांसमज्जादौः सर्वोपकरणैः सदा ।

जगतः संप्रवृत्तोसि त्वामतः प्रार्थयेद्दिवं ।

वाङ्मनःकायजनितं यत्किञ्चिन्मम दुष्कृतं ।

तत् सर्वं विलयं यातु त्वद्दानमुपसेवितं ।

एवमुच्चार्य तां दद्याद्वाङ्मनाय कुटुम्बिने ।

दानवाक्यन्तु, महिषीदानवदवगन्तव्यं

केवलं महिषीस्थाने मेषीप्रयोग इति ।

नाभिभाषेत्ततोदत्त्वा न मुखञ्चावलीकयेत् ।

दुष्टप्रतिग्रहहतोविप्रो भवति पातकी ॥

नोर्स्यायुर्दक्षिणाहीना दातव्या नाविधानतः ।

दक्षिणा विधिना हीना दुःखशोकावहा भवेत् ॥

पुनः दत्तमिदं दानं गौर्या दत्तगृहस्थया ।

तेन शुभपतिर्लब्धः सर्वदेवनमस्कृतः ॥  
 इन्द्राण्या स्वर्णरोमाणां शतं दत्तं विधानतः ।  
 सर्वदेवपतिर्लब्धः साद्यापि दिवि मोदते ॥  
 नलेन दत्तमेतद्दि राज्यं कृत्वा दिवङ्गतः ।  
 रुक्मिण्याहं पतिर्लब्धः सौभाग्यमतुलं तथा ॥  
 दानस्यास्य प्रभावेण पुत्रा बहुवलान्विताः ।  
 अपुत्रोलभते पुत्रं अधनोलभते धनं ॥  
 दत्त्वा दानं शुभाङ्गान्तिं विपुलाञ्च तथा श्रियम् ।  
 य इमं शृणुयान्नित्यन्दानकल्पमनुत्तमम् ।  
 अहोरात्रकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥  
 मेघोमशेषकुलुषापहरातिशस्तां  
 दाने सदैव रसधातुयुतां सधान्यां ।  
 तामादरेण कुरुनन्दन देहि दत्त्वा  
 येनास्तपापतिमिरः सर्वितेव भामि ।

इति मेघोदानविधिः ।

अथ मेघदानम् ।

तत्र वौधायनः ।

अग्नेर्मान्द्यं भवेत्तस्य यस्तेताग्निविनाशकः ।  
 वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥  
 पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।  
 राजतं कारयेत् सौम्यमग्नेर्वाहनमुत्तमम् ।

सौवर्णाश्च सुराः कार्याः श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ।  
 श्वेतमाल्यैः श्वेतगन्धैर्धूपन्द्याम्भधूतकटम् ।  
 तण्डुलोपरि संस्थाप्य पुनस्तं पूजयेत् सुधीः ।  
 तन्दुलानां परीमाणं द्रोणद्वयमुदाहृतम् ॥  
 आग्नेय्यां दिशि होमश्च समिदाज्यतिलैरपि ।  
 आचार्येण विनीतेन सर्वशास्त्रार्थवेदिना ॥  
 बभ्रुचेनच कर्त्तव्यस्तत्र मन्त्रानिमान् शृणु ।  
 अग्निर्मूढति मन्त्रेण समिद्धोमः प्रशस्यते ॥  
 अग्नेनयेत्याज्यहोमोप्यग्निनाग्निस्तिलाक्षतैः ।  
 मन्त्राध्यायोक्तमन्त्रेण चाग्निसंस्थापनं भवेत् ॥  
 अग्नेः प्रागुत्तरे देशे शुभं कुम्भन्तु विन्यसेत् ।  
 प्रणीतामोक्षपथ्यन्ते कृते स्नानं विधीयते ॥  
 आपोहिष्टेत्यपि ऋचं हिरण्येति चतुर्ऋचं ।  
 पवमानानुवाकेन मार्जयेद्द्रोणिं ततः ॥  
 शन्नोदेव्यनुवाकेन शान्तिं चापि प्रकल्पयेत् ।  
 तस्मै हुतवते रोगी प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥  
 पूजिताय यथाशक्त्या दद्यात्तन्तु सदक्षिणं ।  
 देवानां योमुख हव्यवाहनः सर्वपूजितः ॥  
 तस्य त्वं वाहनं पूज्यदेवैः सेन्द्रेर्म्महर्षिभिः ।  
 अग्निमान्यं पूर्व्वकर्मविपाकोत्थन्तु यन्मम ।  
 वसव्वं नाशय क्षिप्रं जठराग्निं प्रवर्द्धय ॥

दानमन्त्रः ।

एवं विप्राय योदद्यादग्निर्वाहनमुत्तमम् ।

बलवानग्निमान्मर्त्यी जीवेद्वर्षशतं पुनः ।

ततःस्ववस्तुभिर्विप्रैः स्नात्वा भुञ्जीत मानवः ॥

इति मेषदानं ।

अथ क्रमप्राप्तानां दशधेनुदानानां प्रागभिहितत्वान्नेषी-  
दानप्रसङ्गादजादानमारभ्यते ।

अत्राह सुमन्तुः ।

प्रजापतिस्तपस्तप्ता प्रजामुत्पाद्य यत्नतः ।

यज्ञार्थं तत्सुतं कल्प्य पशुं यज्ञममुद्धृतौ ।

द्विरूपं त्रिपुरं श्लक्ष्णं कृष्णसारं युवानकं ।

असमाप्तेस्तु यज्ञानां मन्त्राणां पितृकर्मणां ।

तत्समं विहितं देवैस्तद्दानञ्च निगद्यते ॥

अजापालो महोपालो ह्यजादानैर्दिवङ्गतः ।

अयने विषुवेचैव युगादौ ग्रहणेषु च ॥

अमावास्यामजादानं पौर्णमास्याञ्च गस्यते ।

विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि विश्वामित्रेण निर्मितं ॥

सर्व्वरत्नोपसम्पन्नां सप्तधान्योपरि स्थितां ।

वस्त्रमाल्योपमालाञ्च भूषितां पशुजानकीं ॥

वज्रनेत्रां हेमशृङ्गीं ताम्रपृष्ठां सदीहनीं ।

समुतां रौप्यपादाञ्च कुक्षौ दद्यात्तिलोदकं ॥

गोदानवत् प्रयुञ्जीत मन्त्रेणानेन संयतः ।

मन्त्रवासे अजे श्लक्ष्णे यज्ञसंपत्करे शुभे ।

सृष्टा त्वं दह मे पापं जन्मान्तरगतैः कृतं ॥



दानमन्त्रः ।

एवं समुच्चरेद्भक्त्या द्विजहस्ते जलं क्षिपेत् ।  
 प्रीयतां यज्ञनाथाय वासुदेवाय वै नमः ॥  
 एवं प्रदक्षिणीकृत्य सूर्य्यसमवलोकयेत् ।  
 ततश्च गच्छेत् स्वगृहं हरिं संस्मृत्य मानवः ॥  
 ये बालत्वे कृताः पापाः कामतीवाप्यकामतः ।  
 यौवने वार्द्धकीन्मादे प्रसङ्गेनापि पातकं ॥  
 अजादानस्य माहात्म्यात् निष्पापीजायते नरः ।  
 पुत्रपौत्रसमायुक्तः सदाचारमतिचिरम् ।

महाभारते ।

अजामलङ्कृतां दत्त्वा वज्रिलोके महीयते ।  
 तमेव लोकमाप्नोति दत्त्वाजं विधिवन्नरः ।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति ये ये चेतसि संस्थिताः ॥

तथा ।

अजाविक्रञ्च महिषं दत्त्वा विप्राय शक्तिः ।  
 घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र यत्र स मोदते ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

उष्ट्रस्वा गर्हभम्बापि यः प्रयच्छति तु द्विजे ।  
 अजामुरभ्रं तुगरं यथा शक्त्या सदक्षिणं ॥  
 अलकां स समासाद्य यच्चेन्द्रैः सह मोदते ।  
 सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥

तस्मादजां प्रयच्छ त्वं ततः सर्वमवाप्स्यसि ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवदलङ्घ्य स्वशक्तिः ॥  
 त्वं पूर्वं ब्रह्मणा सृष्टा पवित्रा भवती परं ।  
 त्वत्प्रसूतोत्थिता यज्ञास्तस्माद्वान्तिकरी भव ॥  
 प्रतिगृह्णीत ताच्चैव पृष्ठदेशे द्विजोत्तमः ॥

दानवाक्यन्तु, महिषीदानवद्विज्ञेयं ।

एवं प्रदाय विप्राय सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 अश्वमेधफलं प्राप्य मोदते वैष्णवे पुरे ॥

इत्यजादानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-  
 सकलविद्याविशारद श्रीहेमाद्रि-विरचिते चतुर्वर्ग-  
 चिन्तामणौ दानखण्डे कृष्णाजिनादि-  
 दानप्रकरणम् ॥

## अथ एकादशोऽध्यायः ।

अथ देवतादानानि ।

ग्राहता यस्य यज्ञेष्वनवरतपरीरम्भसम्भोगलीला-  
शर्म स्वर्मानिनीनां कथमपि शिथिलीकृत्य तोकान्निवृत्ताः ।  
गोर्वाण्येणिमुख्यास्त्रिभुवनजयिभिर्यच्चरित्रैः पवित्रः  
धात्रोमासाद्य सद्यः स्वभवनगमनं विस्मिता विस्मरन्ति ॥  
विश्वोपकृतिशीलेन तेन हेमाद्रिशूरिणा ।  
क्रमेण देवतादानमिदानीमुपवर्ण्यते ॥

तत्र बौद्धायनः ।

सौवर्णं राजतं ताम्रं कारयेत् कांस्यतोपिवा ।  
यदार्कमूलकाष्ठेन विघ्नं विभवतीनरः ॥  
पुष्करं कल्पयेद्द्वैमं सौवर्णं लोचनद्वयं ।  
आशुञ्च कल्पयेत्तस्य यथा देवो विनिर्मितः ॥  
नागयज्ञेऽपवीतञ्च कल्पयेत्तस्य गुल्मवान् ।  
अनन्तरं तं वासोभिश्चन्दनागुरुपूजितं ॥  
महिरण्यं ब्राह्मणाय स्वशक्त्या पूजिताय तु ।  
कनहोमाय ग्रान्ताय सर्वशास्त्रार्थवेदिने ॥

मन्त्रेणानेन विधिवदक्षिणाभिमुखाय तु ।  
विनायक गणेशान सर्वदेवनमस्कृत ॥  
पाव्तेतोनन्दन मम गुल्फमाशु विनागय ।

दानमन्त्रः ।

कृतेनानेन दानेन निरागो जायते नरः ॥

इति विनायकदानविधिः ।

तथा ।

ब्राह्मणश्वामरीधिन ह्यपस्मारो भवेन्नरः ।  
वक्ष्ये तस्य प्रतीकारन्दानर्हामक्रियादिभिः ॥  
पलेनवा तदर्द्धन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।  
विनायकप्रतिकृतिं कुर्यात् स्वर्णेन शोभनां ॥  
राजतञ्च तथा नागमुपवीतं प्रकल्पयेत् ।  
पुष्करं पद्मरागेण हस्तं रत्नैः प्रकल्पयेत् ॥  
विनायकार्द्धमानेन चाखुन्देवस्य कल्पयेत् ।  
तस्याप्यङ्गैः प्रदेयानि रत्नानि विविधानि च ॥  
माणिक्येन प्रकुर्वीत चक्षुषौ तस्य शोभने ।  
पूर्वदक्षिणद्वयपङ्क्त्याद्वस्त्रैः षोडशभिर्दृढं ॥  
यद्वा द्वादशभिः कुर्यादष्टाभिर्वा प्रयत्नतः ।  
मण्डपस्य चतुर्भागां वेदिकामपि कल्पयेत् ॥  
रात्रौ विनायकस्यापि ह्यधिवामनमिष्यते ।  
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः माद्वेमाचार्यैः सर्वशस्तवित् ॥  
स्वयमेव हि आचार्यो धर्मज्ञः सत्यवाक् शुचिः ।

कुलीनो नच वृद्धश्च सर्वप्राणिहिते रतः ॥  
 रात्रौ जागरणं कृत्वा मध्यरात्रे बलिं हरेत् ।  
 मत्स्यमांसेन सहितं तथा क्षीरीदनेन च ॥  
 आचार्यः प्रयतोभूत्वा मन्त्रेणानेन संयतः ।  
 पूर्वस्यान्दिशि तं दद्याद्बलिं वै सार्वकामिकं ॥  
 आदित्या वसवीरुद्रा देवा भूतानि सर्वशः ।  
 सर्पाः पिशाचा डाकिन्यः शाकिन्यः पान्यदेवताः ॥  
 अप्समाराभिदैवञ्च वेताला नैर्ऋतास्तथा ।  
 बलिदानेन दत्तेन शान्तिं कुर्वन्तु सर्वशः ॥

बलिदानमन्त्रः ।

ततः प्रभाते विमले स्नात्वा स्वहतवाससः ।  
 भूषिताः कटकैः सम्यक् उपवीताङ्गुलीयकैः ॥  
 कुण्डानि दिक्षु चत्वारि मेखलासंभृतानि तु ।  
 कुर्यात्तेषु प्रकुर्वन्ति होममन्त्रैः स्वकैः सदा ॥  
 पूर्वस्मिन्वहृचः कुर्यात्समिदाज्यचरूत्कटं ।  
 विनायकं समुद्दिश्य गणानां त्वेति मन्त्रतः ॥  
 तत् पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धोमहि तन्नोदन्तो प्रचीदयात् ।  
 अध्वर्युर्दक्षिणे कुण्डे कुर्याद्भोमं समाहितः ।  
 छन्दोगः पश्चिमे वा पि तदैवत्येन होमयेत् ॥  
 आथर्वणशोत्तरे च कुण्डे होमं प्रकल्पयेत् ।  
 विनायकाय देवाय सर्वभूतहिताय च ॥  
 गाणपत्ये नियुक्ताय ह्रं फट् स्वस्ति स्वधा नमः ॥

समिदाज्यचरुं हुत्वा पूर्णाहुत्यन्तमेव हि ।  
 आचार्यः प्रतिमानां तु ब्राह्मणैः सह संयुतः ॥  
 आसने वेदिकामध्ये वितानादिसुशोभिते ।  
 तिलानामुपरि स्थाप्य गन्धमाल्यैः प्रपूजयेत् ॥  
 वस्त्रैर्नानाविधैः शुभ्रैः केयूरकटकादिभिः ।  
 उपचारैः षोडशभिर्नैवेद्याय च मोदकाः ।  
 यथा देवे तथा आचार्यं प्यलङ्कारादि कल्पयेत् ॥  
 आचार्यः परया भक्त्या गणेशाय प्रकल्पयेत् ॥  
 अपूपपादि तश्चान्यच्च कारयेत् भक्त्यादिकं ।  
 निवेद्य पार्वतीञ्चापि देवदेवं महेश्वरं ॥  
 पूजयेत् परया भक्त्या आचार्यं स्वयमेव हि ।  
 तथैव रोगवान् भक्त्या संपूज्य गणनायकं ।  
 गणानात्वेति मन्त्रेण तूष्णीं शूद्रस्तु पूजयेत् ॥  
 ततो मध्यन्दिने प्राप्ते प्रतिमां दक्षिणायुतां ।  
 मन्त्रेणानेन दद्याच्च स रोगी प्राङ्मुखः स्मर्य ॥  
 उदङ्मुखोपविष्टाय ब्राह्मणायतिभक्तिः ।  
 विनायक प्रपन्नार्त्तिहर विघ्नविनायक ॥  
 त्वं देवैः प्रथितः पूर्वं विघ्नविघ्नपरायणैः ।  
 ब्राह्मणश्वासरोधिने यज्जातं मम वैकृतं ॥  
 पृथ्वीकर्मविपाकेन ह्यपम्मारोन्मदादिकं ।  
 जाड्यं वाप्यथ वाधिर्यं नामिच्छं वाथ भाषिणं ।  
 त्वदच्चायाः प्रदानेन रोगमाशु विनाशय ॥

दानमन्त्रः ।

चतुर्णां ब्राह्मणानाञ्च यथा शक्त्या च दक्षिणां ।  
एवं कृत्वा गणपतेर्दानं मर्त्यः सुखौ भवेत् ॥

इति विनायकदानविधिः ।

सौवर्णं राजतं ताम्रं कांस्यपित्तलतोपि वा ।  
यद्दार्कमूलकाष्ठेन विभ्रं विभवतो नरः ॥  
पुष्करं कल्पयेद्देवं सौवर्णं लोचनद्वयं ।  
आखुञ्च कल्पयेत्तस्य पादेन च सुवर्णकं ॥  
नागाकारं चोपवीतं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ।  
तिलादृकद्वये वस्त्रयुग्मस्योपरि स्थापयेत् ॥  
भूमौ शुद्धप्रदेशे तु भक्त्या प्रयतमानसः ।  
वस्त्रेणावेष्टेय मतिवान् पूजयेत्तं विनायकं ॥  
चन्दनागुरुधूपैश्च कुङ्कुमेनोपलेपयेत् ।  
पूजयेद्वाहनं वापि यथा देवं तथैव हि ॥  
आचार्यस्तु तिलैर्हीमं कुर्यादष्टोत्तरं शतं ।  
गणानान्वेतिमन्त्रेण तथैवाज्याहुतीः क्रमात् ॥  
तस्मै हीमं कृतवते शान्ताय प्रयतात्मने ।  
धर्मशास्त्रप्रवीणाय वेदवेदाङ्गवेदिने ॥  
स्वाचारायातिगिष्टाय दक्षिणाभिमुखाय च ।  
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यान्तु सर्वमेतत् प्रकल्पयेत् ॥  
पूजयेत्तं तत्राचार्यं वस्त्रेण प्रयतः शुचिः ॥  
पृथक्कर्मविपाकेन इह कर्मकृतेन च ॥  
प्रीहगुल्मीदराष्ठौला उदरव्याधयस्तु ये ।

तत्सर्वं नश्यते तूष्णं दाने दत्ते न संशयः ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवद्भक्त्या परमया युतः ।  
 विनायक गणेशान सर्वदेवनमस्कृत ॥  
 पार्वतीनन्दन मम शमय व्याधिमौदरं ।  
 गुल्मं प्लीहानमठीलं व्याधिजातं यदौदरं ॥  
 तव दानेन महता युक्तेनाखुरतेन हि ।  
 नागयाशु महेशानपुत्र भक्तस्य च प्रभो ॥

दानमन्त्रः ।

एवं कुर्याद्दणपतिर्दानं व्याधिविमोचनं ॥

इति विद्वेशदानविधिः ।

अथ सरस्वतीदानम् ।

वायु पुराणे ।

वाग्विरोधं गुरीःकृत्वा भवेद्भद्रदवाक् नरः ।  
 तस्य वक्ष्ये प्रतीकारन्दानेन ऋषिभाषितं ॥  
 पत्नेनाथ तदर्धेन तदर्द्धार्धेन वा पुनः ।  
 सारस्वतीञ्च प्रतिमां कुर्याद्भजचतुष्टयां ॥  
 वरदञ्चाक्षमूर्त्तं च विभ्रतीं दक्षिणे करे ।  
 पुस्तकञ्चाभयं वामे दधानां हंसवाहनां ॥  
 अतिशुभ्रेण रौप्येण कूटस्वर्गेन वा भवेत् ।  
 आमनञ्च प्रकुर्वीत सौवर्णं पद्ममुत्तमम् ॥  
 तस्यापरि न संविश्य देवीं वागीश्वरीं पराम् ।



मुक्तादामभूषिताङ्गां शुक्लवस्त्रेण संयुतां ।  
 वागीश्वरेण मन्त्रेण पूजयेत् सिततण्डुलैः ॥  
 श्वेतपुष्पैः श्वेतगन्धैः संस्कृत्य विधिपूर्वकं ।  
 ब्राह्मणः सर्वशास्त्रज्ञः कुशलः सर्वसम्मतः ॥  
 मन्त्रवादप्रवीणश्च तेन होमश्च कारयेत् ।  
 पायसञ्जुहुयादष्टशतं शालिमयं तथा ॥  
 जुहुयात् समिधश्चापि तथाज्यश्च तिलानपि ।  
 मरस्वतीप्रेदमवदतिवा मन्त्र इष्यते ॥  
 कृते ब्रह्मोदासने तामाचार्याय निवेदयेत् ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।  
 सम्पूज्य ब्राह्मणं सम्यक् वस्त्रालङ्कारपूर्वकम् ॥  
 या वक्त्रे ब्रह्मणी देवी या सा वागीश्वरो परा ।  
 ब्रह्मविष्णुशिवैश्चान्यैः पूजिता सर्ववन्दिता ॥  
 तुष्टा भवतु दानेन दत्तेनानेन वाक्परा ।  
 वाग्विरोधं गुरोः कृत्वा यन्मिगद्भदभाषणं ।  
 तत् सर्वं क्षपय क्षिप्रं ब्राह्मी त्वं लोकपावनी ॥

तथा दानमन्त्रः ।

अनुज्ञाप्य ब्राह्मणं तं स्वयं भुञ्जीत मानवः ॥

इति स्वरस्वतीदानविधिः ।

तथा ।

स्वरीपवाती वाचाञ्च हर्ता मूकः प्रजायते ।

वक्ष्य तस्य प्रतीकारन्दानहोमैर्नरोत्तमः ॥

पलाङ्गेन तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।  
 रजतेन सुशुद्धेन कुर्यात् प्रतिकृतिं शुभां ॥  
 स्वरस्वतीं चतुर्हस्तां पाशाङ्गकमण्डलम् ।  
 तथैवाभयहस्ताञ्च श्वेतवस्त्रेण संयुतां ॥  
 श्वेतमाल्यैः श्वेतगन्धैर्मूलमन्त्रेण पूजयेत् ।  
 होमञ्च कारयेत् तत्र समिदाज्यचरुत्कटं ॥  
 सरस्वतिप्रेदमव इति मन्त्रश्च चोदितः ।  
 आचार्यः सर्वशास्त्रज्ञः स्वाचारः संयतेन्द्रियः ॥  
 धर्मज्ञः सत्यवादी च मेधावी सुपदस्तथा ।  
 एवंलक्षणसंयुक्तः सर्ववाचार्य इष्यते ।  
 प्रणम्य गृहमानीय पूजयेद्भक्तिपूर्वकं ।  
 एवं होमञ्च कृत्वा तु पूजयेच्च सरस्वतीं ।  
 सरस्वत्यै नम इति यथा लिङ्गन्तु मन्त्रतः ।  
 तस्मै हुतवते तान्तु देवीं दद्यात् सदक्षिणाम् ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।  
 सौम्ये देवि महाभागे सर्वदेवनमस्कृते ॥  
 पद्मामनगते सर्वजगतामार्त्तिहारिणि ।  
 स्वरोपघातान्मदीयन्तु प्रज्ञाजाड्यमपानुद ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु प्रकृतिं सरस्वत्याः प्रयत्नतः ।  
 स्वरोपघातजनितात् प्रज्ञाजाड्यादिमुच्यते ॥  
 मेधाकरमिदं दानं सर्वेषां च विशेषतः ।

विशेषश्चायमुदितोजपस्योपक्रमो भवेत् ॥  
 तदैतत् प्रथमं दानं कृत्वा जपमुपक्रमेत् ।  
 नैवेद्यं पायसन्दद्यात् स्वयन्तदुपयोजयेत् ॥  
 पूर्व्वेद्युरपवासञ्च कृत्वैवोपक्रमोभवेत् ।  
 कायशुद्धिश्च कर्त्तव्या यावतालवणोभवेत् ॥

इत्यपरसरस्वतीदानविधिः ।

अथ घण्टादानम् ।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे ।

गुरुणाह्वननुज्ञातो यो वेदाध्ययनं चरेत् ।  
 स प्रज्ञया विहीनस्तु संसारे जायते नरः ॥  
 वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं शुद्धकांस्यमयीं दृढां ।  
 गोभनां घाटयेद्घण्टां शुभरेखाविभूषिताम् ॥  
 पलैस्तु कुर्याद्विंशद्विंशतिंशद्विंशतिं तदर्द्धतः ।  
 सुस्वगन्तामतिशृङ्खलां पञ्चगव्येन धावयेत् ॥  
 श्वेतवस्त्रेण सम्बोतान्तगुडुलोपरि विन्यसेत् ॥  
 तगुडुलानां परीमाणन्द्रीणानान्तयमेव च ।  
 तदर्द्धमथवा ग्राह्यं परीमाणं स्वशक्तितः ॥  
 आचार्यः सर्व्वगास्त्रज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः ।  
 धर्मगास्त्रि च कुशलः स्वाचारः सञ्चितेन्द्रियः\* ।  
 आह्वय परया भक्त्या स्वयमेव गृहं गतः ॥

तेनैव कारयेत् पूजां घण्टायाः शास्त्रचोदितैः ॥  
 उपचारैः षोडशभिर्मन्त्रैः गणनेन भक्तितः ।  
 आवाहयेत्तु वागीशां घण्टायां परमेश्वरो ॥  
 एहोहि देवि सर्व्वेति घण्टायां सन्निधिं कुरु ।  
 सर्व्वमत्त्वोपकारी त्वं ज्ञानमुद्रेपरात्परि ॥

आवाहन मन्त्रः ।

एवमावाह्य तां घण्टां ब्राह्मणञ्चापि पूजयेत् ।  
 ब्रह्मयज्ञानमन्त्रेण घण्टां पूज्य तथाम्बरं ॥  
 मन्त्राध्यायोक्तमार्गेण प्रतिष्ठाप्याथ भक्तितः ।  
 होमं कुर्यात् प्रयत्नेन समिदाज्यतिलैरपि ॥  
 नैवेद्यं पायसन्दद्यात् देव्यै च ब्रह्मणे तथा ।  
 सरस्वतिप्रेदमिति मन्त्रः सर्व्वत्र सम्मतः ॥  
 तस्मै हुतवते दद्यात्तां घण्टां पूजिताय तु ।  
 मन्त्रे गणनेन विधिवद्भोगी पूर्व्वमुखः शुचिः ॥  
 उदङ्मुखोऽपविष्टाय सतीयामथ भक्तितः ।  
 गुरोरेवज्जया यच्च स्वाध्यायाध्ययनं कृतं ॥  
 सरस्वति जगन्मातर्जगज्जाड्यापहारिणी ।  
 मान्नाद्ब्रह्मकलत्रं त्वं विष्णुरुद्रादिभिस्तुता ॥  
 तन्ममाध्ययनीत्यन्नं जाड्यं हर वरानने ।  
 घण्टादानेन तुष्टा त्वं ब्रह्माणी लोकपावनि ॥  
 एवं दानञ्च दत्त्वा च तमाचार्य्यं क्षमाप्य च ।  
 अन्येभ्यः शक्तितोदद्याद्ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम् ॥

ततः स्ववन्धुभिः साङ्गं स्नात्वा भुञ्जीत मानवः ॥  
 एवं यः कुरुते दानं प्रज्ञाहीनो जडोऽथ वा ।  
 प्रज्ञावानजडोजन्तु र्जायते वाक्पतिर्यथा ।  
 जायते वाक्प्रवाहश्च, साक्षाद्भग्नप्रवाहवत् ॥

इति घण्टादानविधिः ।

अथ लक्ष्मीदानं ।

लिङ्गपुराणे ।

लक्ष्मीदानं प्रवक्ष्यामि महदैश्वर्यवर्धनम् ।  
 लूतादिब्रण्णनाशाय विशेषेण शिवोदितम् ॥  
 पूर्वोक्तमण्डपं कृत्वा वेदिकोपरिमण्डले ।  
 श्रीदेवीमतुलां कृत्वा हिरण्येन यथाविधि ॥  
 सहस्रेण तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।  
 अष्टोत्तरशतेनापि सर्वलक्षणसंयुतां ॥  
 मण्डले विन्यसेत्तन्मूर्तिं सर्वालङ्कारसंयुतां ।  
 तस्यास्तु दक्षिणे भागे स्थण्डिले विष्णुमर्चयेत् ॥

पूर्वोक्तिरिति, कुण्डमण्डप-मण्डलवेदिका-वितानादि-लिङ्गपुरा-  
 णोक्ततुलापुरुषविहितमिति वेदितव्यं, सहस्रादिसंख्याचात्र निष्कैः  
 परिपूरणीया, लिङ्गपुराणोक्तदानेषु प्रायशस्त्रैरेव व्यवहारदर्श-  
 नात् ।

लक्ष्मीलक्षणमुक्तं कल्पपादप्रदाने ।

अर्चयित्वा विधानेन श्रीसूक्तेन सुरेश्वरीं ।

अर्चयेद्विष्णुगायत्र्या विष्णुं विश्वगुरुं हरिं ॥

आराध्य विधिना सिद्धिं पूर्वतोहोममारभेत् ।

समिद्धत्या विधानेन आज्याहुतिमुपाचरेत् ॥

पृथगष्टोत्तरशतं होमयेद्वाह्मणोत्तमः ॥

श्रीसूक्तं, हिरण्यवर्णां हरिणीमित्यादि, विष्णुगायत्री तु लिङ्ग-  
पुराणएवोक्ता, नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः  
प्रचोदयात् इति, पूर्वाक्तमण्डले लक्ष्मीं विन्यस्य तस्या दक्षिणतः  
स्थण्डिले विष्णुदैवत्या गायत्र्या विष्णुदेवमाराध्य ततः पञ्चदश-  
र्चनं श्रीसूक्तेन यथाक्रमं षोडशोपचारैः श्रियं पूजयेत् आराध्य  
सिद्धिमिति, सिद्धिलक्ष्मीः ।

कामिके तु ।

श्रीमन्ते ण यजेत्तक्ष्मीं श्रीसूक्तेनाथ वार्चयेत् ।

पूर्ववद्विवपूजाच होमश्चैव विशेषतः ॥

एकहोमन्तु वा कुर्यात् प्रागुक्तविधिना गुरुः ।

सहस्रकलशायैश्च श्रियमर्च्य श्रियन्ददेदिति ॥

होमश्च श्रीसूक्तेनैव आहूय यजमानं तु तस्याः पूर्वदिशि-

स्थले ।

त स्मैतां दर्शयेद्देवीं दण्डवत् प्रणमेत् क्षितौ ।

प्रणम्य विष्णुं तत्रस्थं शिवं पूर्ववदर्चयेत् ॥

पूर्ववदिति लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषवदित्यर्थः ।

तस्या विंशतिभागस्तु दक्षिणा वै प्रकीर्त्तिता ।

तद्दशांशा तु दातव्या इतरेषां यथार्हतः ।

ततस्तान् भोजयेद्विप्रान् वेदवेदाङ्गपारगान् ॥

तस्या लक्ष्मीप्रतिमायाः विंशंशस्य समानतो ॥

अन्यद्वनं गुरवे दक्षिणां दशांशमानं प्रत्येकमृत्विग्भ्यः इत-  
रेभ्यो द्वारजापकेभ्योपि ऋत्विगर्धं ।

तदुक्तं वातुले ।

लक्ष्मीं प्रणम्य विद्वद्भाः श्रोत्रियेभ्यः समर्पयेत् ।  
तस्माद्विंशतिभागस्तु दक्षिणा देशिकस्य हि ॥  
तद्दशांशस्तु दातव्योजप्ता वेदविदाम्बरः ।  
पुण्याहवाचकानां तु पूर्वोक्तं दापयेत् तथा ॥

इति लक्ष्मीदानविधिः ।

अथ नारायणदानम् ।

ब्रह्मप्रोक्तं ।

यज्ञविघ्नकरोमर्त्यो जायते चान्ववृद्धिमान् ।  
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारन्दानहोमादिकर्मणा ॥  
कुर्यात् स्वर्णमयीं मूर्तिं शुभां नारायणस्य तु ।  
व्यावहारिकनिष्काभ्यामेकेनाथ तदर्द्धतः ॥

नारायणलक्षणमुक्तं,

हेमहस्तिरथदाने ।

प्रक्षाल्य पञ्चगव्येन स्थापयेत् कुङ्कुमोपरि ।  
ज्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य गन्धमाल्यैः समर्चयेत् ॥  
उपचारैः षोडशभिराचार्यो वैष्णवः शुचिः ।  
सर्वेगाम्नाथेन च त्वज्ञो ब्रह्मविद्यासंनिष्ठितः ॥

होमञ्च कारयेत्तत्र ह्याग्नेय्यां दिशि शास्वतः ।  
 ममिदाज्यतिलैश्चैव मूलमन्त्रेण वै समित् ॥  
 आज्यं नारायणायिति तिलान् व्याहृतिभिर्हुनेत् ।  
 रोगी तथार्चयेद्देवं नारायणमनामयं ।  
 मूलमन्त्रेण विधिवन्नेवेद्यं चरुरिष्यते ।  
 नमोन्तं नाम सोङ्कारं मूलमन्त्रः प्रकीर्त्तितः ॥  
 ततस्तां प्रतिमान्दद्यात् प्राङ्मुखाय हृद्दङ्गुखः ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवद्भक्त्या परमया युतः ॥  
 नारायण जगन्नाथ गङ्गचक्रगदाधर ।  
 पूर्वजन्मनि यज्ञादेर्विघ्नाद्यद्वैकृतं मम ॥  
 अन्ववृद्धिमहारोगं दानेनानेन तोषितः ।  
 चक्रहस्त गदापाणि शमयाशु जगत्पते ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तं देवं क्षमाप्य ब्राह्मणं ततः ।  
 विप्राणां भोजनं दद्यात् स्नात्वा भुञ्जीत बन्धुभिः ॥  
 एवं कृत्वा समाप्नोति नीरोगत्वं नरोभुवि ।  
 आरोग्ययुक्तो नित्यं स सुचिरं सुखमधत्ते ॥  
 इति नारायणमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ गोपालमूर्त्तिदानं ।

तथा ।

नक्तान्म्यं जायते तस्य योगवां नयनद्वये ।



करोति शूलप्रक्षेपं तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिं ॥  
 विष्णोः श्रीगोपवेषस्य यथा शक्त्या च भक्तितः ।  
 सुवर्णेन प्रतिकृतिं वेणुवादनतत्परां ।  
 वर्हापीडकसंयुक्तां द्विभुजामूर्ध्वसंस्थितां ॥  
 कारयित्वा शुभाकारां प्रक्षाल्य शुभवारिणा ।  
 वस्त्रेण वेष्टयित्वाथ गन्धमाल्यैः समर्चयेत् ।  
 तण्डुलोपरि संस्थाप्य यथा विभवतः स्वयं ॥  
 पूजाञ्च मूलमन्त्रेण कुर्याद्देवस्य भक्तितः ।  
 आचार्यः सर्वशास्त्रज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः ॥  
 एवंभूतं समानीय तेन पूजां प्रकल्पयेत् ।  
 होमं चैव प्रकुर्वीत समिदाज्यतिलैरपि ॥  
 इदं विष्णुः प्रतद्विष्णुर्विष्णोर्नुकमितिक्रमात् ।  
 मन्त्राध्यायोक्तमार्गेण चाग्नेः संस्थापनं भवेत् ॥  
 प्रणीतामोक्षपर्यन्तं कृत्वा देवं प्रपूजयेत् ।  
 देवस्य दद्यान्नेवेद्यं हविः सर्व्वं समन्ततः ॥  
 अष्टोत्तरशतेनापि मूलमन्त्रेण वै श्रुतं ।  
 जुहुयादथ रोगी तु प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः ॥  
 शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धमाल्यानुलेपनः ।  
 सदक्षिणां च तान्दद्यात् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवन्नमस्कृत्यातिभक्तितः ॥

गोविन्द गोपीजनवल्लभेश

कंसासुरघ्न त्रिदशेन्द्रवन्द्य ।

गोवर्धनाद्रिप्रवरैकहस्त

संरक्षिता शेषगवामनीक ॥  
 गोचक्षुषां चातिनिरोधजेन  
 पापेन मे नाशय आन्ध्यमेतत् ।  
 त्वदीयदानेन सुहृष्टरूपं  
 नक्तान्ध्यमेतत् समुपाकरोतु ॥

दानमन्त्रः ।

एवं कृत्वा प्रतीकारं गोपवेषधरस्यतु ।  
 तत् क्षणादेव हि सुखी जायते नात्र संशयः ॥

इति गोपालमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ वराहदानं ।

भविष्योत्तरात् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

दानमादिवराहस्य कथयामि युधिष्ठिर ।  
 धरण्यां यत् पुरा प्रोक्तं वराहवपुषा मया ॥  
 पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वदानोत्तमोत्तमं ।  
 महापापादिदोषघ्नं पूजितं मुनिसत्तमैः ॥  
 देयं सङ्क्रमणे भानोर्यहणे द्वादशीतिथौ ।  
 यज्ञीत्सर्वविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ॥  
 यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितं ।  
 तदैव तस्य कालः स्यादध्रुवं जीवितं यतः ॥  
 कुरुक्षेत्रादितीर्थेषु गङ्गाद्यासु नदीषु च ।

गोष्ठे देवालये वापि रम्ये वाथ गृहाङ्गणे ॥  
 देयं पुराणविधिना ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।  
 अव्यङ्गाय शुशीलाय वेदवेदाङ्गवादिने ॥  
 देशं कालञ्च पात्रञ्च यथावत्ते मयोदितं ।  
 शृणु दानविधिं पुण्यं सर्वपापहरं परं ॥  
 पूर्वोत्तरप्लवां भूमिं गोमयेनोपलेपयेत् ।  
 कुशैरास्तीर्य तां पार्श्वे प्रणवात्तरमन्वितैः ॥  
 उपरिष्ठात्तिलैस्तेषां वाराहं परिकल्पयेत् ।  
 द्रोणैश्चतुर्भिः सम्पूर्णन्तर्द्वेनाथ वा पुनः ॥  
 आदकेनापि कुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।  
 सुवर्णेन खुरौ कार्य्यो भुजौ चक्रगदान्वितौ ॥  
 राजतीङ्गारयेदंष्ट्रां पद्मरागविभूषितां ।  
 शङ्खञ्च स्थापयेत् पार्श्वे वनमालां हिरण्मयीं ॥  
 पुष्पैर्वा कारयेद्विद्वान् पादौ रौप्यमयौ तथा ।  
 दंष्ट्रायलग्नवसुधां सौवर्णीं कारयेच्छुभां ।  
 सर्वधान्यरसोपितां वस्त्रालङ्कृतविग्रहां ॥  
 द्रोणादिलक्षणं मुक्तं, परिभाषायां ।

पृथुलक्षणञ्च धरादाने द्रष्टव्यं ।

प्रच्छाद्य वस्त्रे देवेशं वराहं सर्वकामदम् ।  
 गोमराजिङ्गुलैः कृत्वा गन्धपुष्पै रथार्चयेत् ॥  
 नवग्रहमखः कार्य्यो होमश्चात्र तिलैः स्मृतः ।  
 एवं संस्थाप्य विधिवत्ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥

वराहा शेषदुष्टानि सर्वपापफलानि च ॥  
 मर्द्दं मर्द्दं महादंष्ट्रं भास्वत्कनककुण्डल ।  
 शङ्खचक्रासिहस्ताय हिरण्याक्षान्तकाय च ॥  
 दंष्ट्रोद्धृतचित्तिपते त्रयोमूर्त्तिमते नमः ।  
 इत्युच्चार्य नमस्कृत्य त्रिकृत्वा तु प्रदक्षिणं ॥  
 ततस्तं ब्राह्मणे दद्याद्यथालङ्कारविग्रहम् ।  
 प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पादयोः परमर्षिभिः ॥  
 अनेन विधिना दत्त्वा वराहं दक्षिणान्वितम् ।  
 आचार्यमथ संपूज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥  
 एवं दत्त्वा महोनाथ वराहं सर्वकामदं ।  
 यत्फलं समवाप्नोति पार्थ तत् केन वर्ण्यते ॥  
 सर्वदानेषु यत् पुण्यं सर्वकृतुषु यत् फलं ।  
 तत् फलं समवाप्नोति दत्त्वा देवं जनार्दनं ॥  
 यथा समुद्धृता देवी वराहेण वसुधरा ।  
 तथा कुलं समुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥  
 ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीणां शूद्रजनस्य च ।  
 एतत्साधारणं दानं शैववैष्णवयोगिनाम् ॥  
 विप्राय वेदविदुषे नृवराहरूपं  
 दत्त्वा तिलानपि सुवर्णमयं सुवस्त्रं ।  
 उद्धृत्य पूर्वपुरुषान् सकलतमित्रः  
 प्राप्नोति विष्णुभुवनं सुरमिद्वजुष्टं ॥

इति वराहदानविधिः ।

अथ नरसिंहदानम् ।

कालिकापुराणे ।

नृसिंहं चाथ रौक्मन्तु कृत्वा चतुर्भुजं विभुं ।  
 ताम्रपात्रे प्रतिष्ठाप्य रौप्ये दंष्ट्रे प्रकल्पयेत् ॥  
 चक्षुषी पद्मरागेण नखानां विद्रुमास्तथा ।  
 पुष्परागं भ्रुवोर्देशे कर्णयोर्हरीकावुभौ ॥  
 नृसिंहरूपन्तु विष्णुधर्म्मोत्तरात् ।  
 कार्य्यस्तु भगवान् विष्णुर्नरसिंहवपुर्हरः ।  
 पीनस्कन्ध-कटि-ग्रीवः कृशमध्यः कृशोदरः ॥  
 मिंहासनो नृदेहश्च नीलवामाः प्रभान्वितः ।  
 अलीढस्थानसंस्थानः सर्वाभरणभूषणः ॥  
 ज्वालमालाकुलमुखोज्ज्वलत्केसरमण्डलः ।  
 हिरण्यकशिपोर्वक्षःपाटयन्खरैः खरैः ॥  
 देवजानुगतः कार्य्यो हिरण्यकशिपुस्तथा ।  
 देवश्च शङ्खचक्राभ्यां भूषितोर्ध्वकरद्वयद्विति ॥  
 गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्जागरन्तत्र कारयेत् ।  
 राजवर्त्म च वैदूर्यं इन्द्रनीलं सुमस्तके ॥  
 कृत्वा रूपमिदं रम्यं तत्पात्रं मधुना बुधः ।  
 पूरयेत् खण्डमिश्रेण तत्र देवं पुनर्न्यसेत् ॥  
 वस्त्रयुग्मेन संच्छद्वं आसने विनिवेशयेत् ।  
 नैवेद्यं कल्पयेद्दद्यां भक्ष्यैर्नानाविधैर्बुधः ॥  
 वितानोपरि संयुक्तं पुष्पदामभिरर्चयेत् ।

गन्धपुष्पैस्तथाधूपैर्जागरं चार्च्य कारयेत् ॥

कृत्वा समस्तमेतत्तु हरये पूर्ववद्देत् ।

यत्किञ्चित् प्राग्विनिर्दिष्टं कुर्यात् सर्वमिहापि तत् ॥

प्राग्विनिर्दिष्टमिति वैष्णवमन्त्रेण पूजनं, मूलमन्त्रेण अष्टो-  
त्तरशतं तिलाज्यहोमः द्वादशेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सद्क्षिणमन्नदान-  
मिति ।

कार्त्तिक्यां वाथ वैशाख्यामाश्रित्य द्वादशोमथ ।

कृत्वा विधिमिमं सम्यक् नूनं तत्पदमश्रुते ॥

अरण्ये वाथ संग्रामे तत्स्करैर्द्रष्टृभिर्वृते ।

न भयं जायते तस्य सकृद्यस्वे तदाचरेत् ॥

विदार्थ्य चापदो घोरान् धनमायुः प्रयच्छति ।

सन्ततिं चैव रूपञ्च सौभाग्यञ्च मनोरथान् ॥

एवं भवति यत् पुण्यं नृसिंहाकृतिदानतः ।

तेन विष्णोः पदं प्राप्य तत्र क्रीडन्ति देहिनः ॥

एतत् श्रुत्वा महत् पुण्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

धनमायुर्विवर्धेत आब्रकस्य विशेषतः ।

आब्रके दक्षिणान्दयाकृत्या चात्मविभूतये ॥

इति नृसिंहदानविधिः ।

अथ लक्ष्मीनारायणदानम् ।

तत्र बौद्धायनः ।

लक्ष्मीनारायणं रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ।

लक्ष्मीनारायणरूपमुक्तं कामिके ॥

पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथ वा पुनः ।  
 पद्मासनगतं कुर्याद्देवदेवं चतुर्भुजं ॥  
 दक्षिणाधःकरे पद्मं शङ्खमूर्ध्वकरे न्यसेत् ।  
 वामोर्ध्वे च भवेच्चक्रं लक्ष्मीपृष्ठे करोऽपरः ॥  
 वामोत्तङ्गगता लक्ष्मीरत्नपात्रकरा भवेत् ।  
 दक्षिणश्च भुजोदेव्याः पृष्ठे देवस्य चक्रिण इति ॥  
 गरुडं राजतं कुर्याद्देवदेवस्य वाहनम् ।  
 पक्षौ च तस्य सोवर्णा सोवर्णीचैव नासिका ॥  
 वस्त्रैरत्यन्तरुचिरैः परिधाप्यातिकौतुकम् ।  
 मुक्तादामपरिचिप्तं चन्दनागुरुलेपितम् ॥  
 अर्चयेत् कुसुमैर्युग्मं लक्ष्मीनारायणात्मकं ।  
 प्रसन्नं रमणीयञ्च गरुडोपरिसंस्थितं\* ॥  
 ततो विप्रं समाह्वय सुशीलं लक्षणान्वितम् ।  
 आचारवन्तं धर्म्मज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥  
 प्रतिग्रहनिवृत्तञ्च श्रुतिस्मृतिपथे स्थितं ।  
 स्वयं भक्त्या समानीय पूजयेद्वस्त्रकुण्डलैः ॥  
 कुङ्कुमागुरुकर्पूरैरुपवीताङ्गुलीयकैः ।  
 पूर्वोक्तेन विधानेन होमं तत्र तु कारयेत् ॥  
 मन्त्रेणानेन तन्दद्यात् सर्वलोक नमस्कृतम् ।

लक्ष्मीपते देवकिनन्दनेन

क्षीराब्धि शायिन् वचसामगम्य ।

\* गरुडस्योपरिस्थितमिति कचित् पाठः ।

गोविन्ददामोदर वातरक्तं ।

विनाशयाशु क्षपितारिवर्गं ॥

दानमन्त्रः ।

लक्ष्मीनारायणस्यैवं मूर्त्तिं दत्त्वातिभक्तितः ॥

आरोग्यवान् सुखी नित्यं जायते नात्र संशयः ।

इति लक्ष्मीनारायणमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ गरुडदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणे ।

सौवर्णं राजतं वापि गरुडं कारयेत् सुधौः ।

ताम्रेण वा य पलतः स्वशक्त्या वापि नारद ॥

नासिकां स्वर्णमयीं कुर्यात् कुर्यान्नेत्रद्वयं तथा ।

गरुडमूर्त्तिलक्षणन्तु, तिथिदानप्रकरणस्थितैकादशौविहित

गरुडदाने विलोकनीयम् ।

श्वेतवस्त्रेण सखेद्य ताम्रपात्रोपरि स्थितम् ।

चन्दनागुरुकर्पूरैः श्वेतमाल्यैर्विशेषतः ॥

पूजयेत्परया भक्त्या गायत्र्या गरुडाह्वयम् ।

होमं कुर्याच्च तत्रैव समिदाज्यतिलैस्तथा ॥

ब्राह्मणः सर्वशास्त्रार्थकुशलोनिर्मलात्मवान् ।

वैष्णवो धार्मिकः शान्तः स्वाचारः सज्जितेन्द्रियः\* ॥

तत् पुरुषाय विद्महे पक्षिराजाय धीमहि तन्नः सुपर्णः

प्रचोदयात् ।

\* संयतेन्द्रिय इति कचित्पाठः ।



तत् पुरुषाय विद्महे वायुवेगाय धीमहि तन्नोऽमृतमयनः प्रचो-  
दयात् ।

तत् पुरुषाय विद्महे वैनतेयाय धीमहि तन्नोऽस्तार्क्ष्यः प्रचो-  
दयात् ।

समिदाज्य तिलानान्तु मन्वा एते यथा क्रमम् ।

ततः शुक्लाम्बरधरः\* शुक्लगन्धानुलेपनः ॥

यजमानः स्वयं भक्त्या शुचिः प्रयतमानसः ।

ब्राह्मणाय प्रदद्यात्तं हृदि नारायणं स्मरन् ॥

मन्त्रेणानेन सम्पूज्य वस्त्राद्यैश्च स्वशक्तिः ।

विहङ्गराज पक्षीश्च सुपर्णीतिनय प्रभो ॥

सर्पाशन वियद्रत्न पूर्वजन्मनि यत् कृतं ।

देवद्रव्यापहरणं तेन यद्वैकृतं मम ॥

विनाशयाशु मे सर्व्वं श्रीनारायणवाहन ।

ततो निष्कल्मषा भूत्वा नीरुजो जायते नरः ॥

सप्तजन्मकृतात्पापात् यस्माज्जातं हि वैकृतं ।

ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या स्वशक्त्या तु विशेषतः ॥

इति गरुडदानविधिः ।

अथाह वृद्धगौतमः ।

कामलो भक्तचौरः स्यात्तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिं ।

कुर्याच्च गतमानाभ्यां विष्णोर्वाहनमुत्तमं ॥

सुवर्णनातिशुद्धेन पक्षयोर्मौक्तिकद्वयम् ।

\* शुक्लाम्बरधर इति कश्चितपाठः ।

नाशिकायां तथा वज्रमुत्तरीयञ्च राजतम् ॥  
 एवं कृत्वा गरुत्मन्तं घृतद्रीणोपरि न्यसेत् ।  
 श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य श्वेतमाल्यैः समर्चयेत् ॥  
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो वैष्णवीधर्मपाठकः ।  
 ब्राह्मणस्त्वर्चितोभक्त्या यजमानेन शक्तितः ॥  
 उपचारैः षोडशभिर्हिजमभ्यर्चयेत्तथा ।  
 आग्नेय्यां दिशि होमश्च कर्त्तव्यः स्थण्डिले शुभे ॥  
 समिदाज्यन्तिलैस्तत्र पलाशसमिधोपि च ।  
 मन्त्रोगरुडगायत्री समित्वाज्यञ्च कीर्त्तिता ।  
 तिलहोमोव्याहृतिभिः कार्यः स्निष्टकृतं यजेत् ॥

गरुडगायत्री प्रागभिहिता ।

स्थापयेद्व्रणं कुम्भं सितवस्त्रेण वेष्टितम् ।  
 निक्षिपेन्नवरत्नानि मृत्तिकां रोचनां तथा ॥  
 अश्वस्थानाङ्गजस्थानाहल्मीकालङ्कृतात् ऋदात् ।  
 पञ्चत्वक्पल्लवानि स्युः पूरयेत्तीर्थवारिणा ॥  
 तेनाभिषेकं कुर्वीत आपोहिष्टादिभिः क्रमात् ॥  
 हिरण्यवर्णेति ऋचा पवमानेन चैव हि ।  
 ततः स्नात्वा शुची रोगी विष्णोर्वाहनमुत्तमम् ॥  
 सदक्षिणं मुदा युक्तः प्राङ्मुखाय निवेदयेत् ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवदाचार्याय ह्यदङ्गुखः ॥  
 श्रीकृष्ण परमानन्द जगतः परिपालक ।  
 पूर्वजन्मनि यत्पापं भक्तचौर्यं मया कृतं ॥

तेनावामन्तु वैरूप्यं तन्मयं ह्यतिदुःसहं ।  
 कामलीयमिमं देव तव वाहनदानतः ॥  
 विनाशयाशु मे कृष्ण जगतां पालकोह्यसि ।

दानमन्त्रः ।

एवं गरुडदानन्तु कृत्वा मर्त्यः सुखी भवेत् ।  
 आचार्यं भोजयित्वा च प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

इत्यपरगरुडदानविधिः ।

अथ पद्मपुराणे ।

जन्मान्तराक्षिरोधेन जायते ह्यक्षिवेदना ।  
 पन्थामि तत्प्रतीकारं ब्रह्मणा भाषितं पुरा ॥  
 पत्नेन कार्येडेस्त्रा गरुडं विष्णुवाहनम् ।  
 राजतौ च तथा पत्नी रत्नैर्नदौ सुविस्तृतौ ॥  
 कर्त्तव्यश्चाक्षियुगलं माणिक्याभ्यां प्रकल्पयेत् ।  
 पादयोः स्वर्णकटकं रत्नाभ्यां परिकल्पयेत् ॥  
 यैवेयकं स्वर्णमयं योवायामपि विन्यसेत् ।  
 नामिकां वज्रवैदूर्यं मौक्तिकीपरि कल्पयेत् ॥  
 वस्त्रैर्नानाविधैर्नदमलङ्कृत्य शुभाकृतिं ।  
 स्थापयेत्पुगतोविष्णोः प्रीत्यर्थं च नगाधिपम् ॥  
 गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैः पूजयेद्ब्राह्मणीत्तमः ।  
 वेदवेदाङ्गकुगलो ब्रह्मविद्यासुनिष्ठितः ॥  
 हामथ तव कर्त्तव्या मन्त्रैस्तद्वाचकैः शुभैः ।

यद्वा गरुडगायत्रा समिदाज्यतिलादिभिः ।  
 अग्नेः प्रतिष्ठा कार्या तु स्वगृहोक्तविधानतः ॥  
 गरुडगायत्री प्रथम गरुडदाने दर्शिता ।  
 पुण्याहवाचनं कार्यं ब्राह्मणैर्व्वेदपारगैः ॥  
 तस्मै हुतवते दद्याच्छौरिप्रीत्यर्थमादृतः ।  
 भक्त्या संपूज्य विधिवत् केयूरकटकादिभिः ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राञ्ज, खायाक्षिरोगवान् ॥  
 देवदेव जगन्नाथ लक्ष्मीप्रिय परात्पर ।  
 वाहनस्य प्रदानेन तुष्टः कर्मविपाकजं ॥  
 अक्षिरोगं जगन्नाथ नारायण जगन्मय ।  
 पुष्पं वा पटलं वापि वातरक्तमथापि वा ।  
 रक्तं वाप्यथ नक्ताभ्यं तथान्यद्बुद्धादिकम् ॥

दानमन्त्रः ।

ततो विसृज्य विप्रेन्द्र शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः ।  
 स्नात्वा विप्रान् भोजयित्वा सुखी भवति मानवः ॥

इति गरुडमूर्त्तिदानविधिः ।

अथोमामहेशदानं ।

आह बौधायनः ।

ब्राह्मणाङ्गानि योहिंस्याद्दुर्गो भवेत्तु सः ।  
 तस्योपशमनं वक्ष्ये सुवर्णेन तु कारयेत् ॥  
 तदर्धेन तदर्धेन तदर्द्धार्धेन वा पुनः ।

उमामहेश्वरं रूपं वृषभेण त्वधिष्ठितं ।  
 चतुर्भुजन्तु द्विभुजामुमां कुर्याद्विचक्षणः ॥  
 एकवक्त्रो भवेत् शम्भुस्त्रिनेत्रश्च महाभुजः ।  
 अक्षमालां त्रिशूलञ्च तस्य दक्षिणहस्तयोः ॥  
 देवीपृष्ठगतश्चैको वरदश्चापरः करः ।  
 वामोत्सङ्गगता देवी शिवपृष्ठैकपाणिका ॥  
 वृषभोराजतश्चात्र कार्थीघण्टादिसंयुतः ।  
 स्वयत्क्रिया वित्तगाठान्तु कुर्वतोनिष्फलं भवेत् ॥  
 तत्राप्यागोप्य देवेशं उमया सहितं प्रभुं ।  
 वस्त्रे माल्ये स्तयागन्धैर्मूलमन्त्रेण पूजयेत् ॥  
 ततो ब्राह्मणमाह्वय दरिद्रं धर्मकीविदं ।  
 श्रुतवृत्तीपसम्पन्नं शान्तञ्चैवात्मवेदिनम् ।  
 वस्त्राङ्गुलीयकैस्तस्य पूजां भक्त्या प्रकल्पयेत् ॥  
 होमञ्च कारयेत्तेन समिदाज्यतिलैरपि ।  
 मन्त्रश्च रुद्रगायत्री सर्व्वत्रेति विनिश्चयः ॥

रुद्रगायत्री तु लिङ्गपुराणे ।

सर्व्वग्वगाय विश्वहे शूलहस्ताय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् ।  
 यदा त्वाम्बकेनैव समिधोजुहुयात् सुधीः ।  
 कद्रुद्रायैतिमन्त्रेण जुहुयादाज्यमादृतः ॥  
 तिलांश्च मूलमन्त्रेण सर्व्वत्रैवं क्रमोभवेत् ।  
 तथा ब्रह्मोदासनान्ते मिथुनं ब्राह्मणाय तु ॥  
 वृषभोपरि तिष्ठन्तं भक्त्या तु विनिवेदयेत् ।

मन्त्रेणानेन विधिवद्द्रुमी जितात्मवान् ॥  
कैलाशवासी भगवान् उमया सहितः परः ।  
भगनेत्रहरोद्द्रुमीगमाशु व्यपोहतु ॥

दानमन्त्रः ।

ततश्च ब्राह्मणं सम्यक् प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।  
ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥  
एवं दत्त्वा महादानन्दद्रुमीगमादिमुच्यते ।

इति उमामहेश्वरदानविधिः ।

अथ रुद्रमूर्त्तिदानम् ।

वायुपुराणे ।

अन्नचौरी भवेद्यस्तु सोऽकस्माज्जायते क्लृप्तः ।  
वक्ष्ये तस्य प्रतीकारं दानहीमाभिषेचनैः ॥  
पलेनवा तदर्द्धेन तदङ्गनाथवा पुनः ।  
सुवर्णेन प्रतिकृतिं कुर्यात् रुद्रस्य भक्तितः ॥  
यदा विभवसारेण त्रिनेत्रं चतुराननं ।  
चतुर्बाहुम्यानपरं उपविष्टं सुखासने ॥  
व्याघ्रचर्मपरीधानं नागयन्त्रोपवीतिनम् ।  
श्वेतवस्त्रेण संवेद्य तण्डुलीपरि विन्यसेत् ॥  
तण्डुलानां परीमाणं द्राणानान्तु चतुष्टयं ।  
यदा स्वविभवेनैव तत्र पूजां प्रकल्पयेत् ॥  
गन्धमाल्यै सुरभिभिः श्वेतैर्नानाविधैरपि ।

उपचारैः षोडशभिराचार्यैः सर्वशास्त्रवित् ॥  
 मूलमन्त्रेण सर्वञ्च कार्यं पूजादिकञ्चरेत् ।  
 होमश्च तत्र कर्त्तव्यः स्थण्डिले सुपरिष्कृते ॥  
 मन्वाध्यायोक्तमार्गेण चाग्निः संस्थापनं भवेत् ।  
 समिदाज्यतिलैर्मन्त्रानिमांस्तत्र प्रकल्पयेत् ॥  
 चाम्बकं कद्रुद्राय वामदेवइति क्रमात् ।  
 संख्याचाष्टोत्तरशतं प्रत्येकमिह गृह्यते ॥  
 हुत्वा हुत्वा च सम्पातान् पात्रे कृत्वा विधानतः ।  
 अग्नेः पूर्वोत्तरे देशे स्थापयेत् सकलं दृढं ॥  
 वाससा वेष्टयित्वा च पञ्चपल्लवसंयुतं ।  
 अश्वस्थानात् गजस्थानादह्वीकात् सङ्गमाद्भुदात् ।  
 प्रक्षेप्तव्या मृत्तिका च रोचनां गुग्गुलुं तथा ॥  
 तेनाभिषेकं कुर्वीत होमान्ते च गुरुः स्वयं ।  
 आपोहिष्टादिभिस्तद्वद्विरण्यादिभिरेव च ॥  
 पवमानानुवाकेन शन्नीवाकेन चैव हि ।  
 गरीगाभ्यञ्जनं कार्यं सम्पातैकेन सर्वशः ॥  
 ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्तमाल्यानुलेपनः ।  
 यजमानः शुचिर्भूत्वा देवेशं पूज्य भक्तितः ॥  
 मूलमन्त्रेण च पुनस्तस्मै हुतवतेऽर्चिते ।  
 दद्यात्तां देवदेवस्य प्रतिमां शङ्करस्य तु ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुख्यं ह्युदङ्मुखः ।  
 देवदेव मन्त्रेणान वृषभध्वज शङ्कर ॥  
 अन्नचौर्येण यत् पापं कृतं जन्मान्तरे मया ।

तेन यज्जनितं कार्श्यमसह्यं मम देहजं ।  
तव दानेन दत्तेन पीनोऽस्मि रक्ष पापिनं ।

दानमन्त्रः ।

एवं यो विधिनानेन शङ्करप्रतिमान्नरः ।  
ददाति विप्रवर्याय स कार्श्यादिप्रमुच्यते ॥  
पुण्याहवाचनं कृत्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।

इति रुद्रमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ दक्षिणमूर्त्तिदानं ।

वायुपुराणे ।

श्रूयतां परमं गुह्यं दानं सर्वोत्तमोत्तमं ।  
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि देवदेवस्य शुलिनः ॥  
सर्वेषामिव पापानां येन नाशः प्रजायते ।  
पापानां निष्कृतिः प्रोक्ता मुनिभिः शास्त्रदर्शिभिः ॥  
तपोहीमजपप्राया सा हि कार्या प्रयत्नतः ।  
एतत्तु सर्वपापानां प्रायश्चित्तमनुत्तमं ॥  
महापातकदोषेषु पातके चीपपातके ।  
अन्येषामपि दोषाणां निष्कृतिः परिवर्त्तते ॥  
पलत्रयेण देवेश सुवर्णस्य प्रकल्पयेत् ।  
ईशानं दक्षिणामूर्त्तिं सर्वज्ञं लोकसाक्षिणम् ॥  
गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ विन्यस्य पङ्कजं ।  
नानारजोभिस्तन्मध्ये पुण्डरीकं न्यसेत्ततः ॥



तत्कर्णिकायां देवेशमर्चयेद्देमरूपिणम् ।  
 सर्वज्ञं सर्वगं शान्तं सर्वकारणकारणम् ॥  
 सर्वदेवनमस्कृत्यं सर्ववेदान्तवेदिनम् ।  
 सर्ववेदान्तवेद्यञ्च भक्तवत्सलमच्युतम् ॥  
 पापेभ्यनमहावह्निं संसारार्णवतारणम् ।  
 करुणौघमहामिथुं चन्द्रमौलिं महेश्वरम् ॥  
 वरदानाभयकरं सर्वार्हञ्च महार्णवन् ।  
 एवं मच्चिन्त्य देवेशमर्चयेत् ब्रह्म पङ्कजैः ॥  
 श्वेतेर्विकसितैः पद्मैः सितवन्दनवारिणा ।  
 कर्पूरविडमगुरुनूपार्थञ्च निवेदयेत् ॥  
 क्षौमे च वाससो दद्यात् पायसञ्च निवेदयेत् ।  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा निवेद्य परमात्मने ॥  
 आत्मानमर्चयित्वा तु ततोविप्रं समर्चयेत् ।  
 वेदवेदाङ्गविदुषं शान्तं शिवपरायणं ॥  
 ज्ञाननिर्दग्धकर्मणं नित्यनैमित्तिके रतं ।  
 तमेव देवं सङ्कल्प्य पूजयित्वा विधानतः ।  
 प्रणिपत्य तु तं देवं ततोमन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 भगवन् सर्वभूतज्ञ सर्वज्ञाश्रितशङ्कर ।  
 त्वत्प्रसादेन मे शेषं पापं नश्यतु सर्वतः ॥  
 यत्पापं वाङ्मनःकायसम्भवं मम शङ्कर ।  
 तव रूपप्रदानात्के विलयं यान्तु सर्वतः ॥  
 अग्रे पापे निराचारे त्वमेव शरणङ्गते ।  
 मयि सर्वोघनाशन दयाङ्कुर महेश्वर ॥

इत्यामन्त्रा ततोदद्याच्छिवः सम्प्रीयतामिति ।  
 क्रियाकलापमखिलमात्मानं मलसञ्चयम् ॥  
 सर्वं निवेदयेत्तस्मै विश्वरूपाय शम्भवे ।  
 अनेन विधिना यस्तु प्रदद्यात् सर्वनिष्कृतिं ॥  
 तस्य सर्वाणि पापानि त्रिनश्यन्ति न संशयः ।  
 यथा नश्यन्ति सूर्यस्य सन्निधौ सकलन्तमः ॥  
 तथा शिवप्रदानेन सर्वं पापं विनश्यतु ।  
 यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुते क्षणात् ॥  
 तथायं भगवान् शम्भुः शरणागतदुष्कृतं ।  
 सर्वधर्मविहीनस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 अपिचेत्स्यात् स सर्वेभ्यः पापेभ्यः कृतमानसः ।  
 सर्वं शिवप्रवेनेनैव वृजिनं सन्तरिष्यति ॥  
 तस्माद्यः सर्वमुत्सृज्य शरणं याति शङ्करम् ।  
 भक्त्या परमया तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥  
 जीवती हि भवेत्पापमवश्यं मानुषात्मनः ।  
 तस्य पापस्य वै नास्ति प्रायश्चित्तं विना क्षयः ॥  
 तस्मात् कुर्यात् प्रयत्नेन निष्कृतिं प्रतिवत्सरं ।  
 अनित्यं जीवितं यस्मात् सम्पदारोग्यमेव च ।  
 नरकोत्तारणं कार्यं तस्मादात्महितेच्छया ॥

इति दक्षिणामूर्त्तिदानविधिः ।

अथ परशुदानम् ।

वायुपुराणात् ।

ऋषय ऊचुः ।

समोरण नमस्तुभ्यं यत्प्रोक्तं भवता व्रतात् ।  
 प्रायश्चित्तमशेषेण तदस्माभिर्द्वौकृतम् ॥  
 वक्तुमर्हसि भूयोऽनः प्रसादसुखं प्रभो ।  
 यत्तु मानसिकम्पायं बुद्धिपूर्वम् सुरोत्तम ॥  
 वक्तुमर्हसि दानेन तस्य पापक्षयोभवेत् ।

वायुरुवाच ।

मनसोदुर्विचारत्वाद्बहुत्वाच्च तपोधनाः ।  
 अवश्यमेव भवति महतामपि निश्चयः ॥  
 विना दानेन भूयोऽपि नरकाय प्रवर्तते ।  
 तस्मात्तस्य क्षयोपायं दानं वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥  
 उपपातकसंयुक्तं येन पापं विनश्यति ।  
 अष्टम्यां कृष्णपक्षस्य पूर्वार्द्धे शालितण्डुलैः ॥  
 भारतयेण कुर्वीतरूपं वस्त्रेण शूलिनः ।  
 चतुर्विहन्तिनेत्रञ्च सुखासीनं सरोरुहे ॥  
 तस्य दक्षिणहस्ते तु सुवर्णं पलनिर्मितम् ।  
 परशुं कल्पयित्वा च ततः सम्प्रति पूजयेत् ॥  
 मन्त्रे परशुहस्ताय मन्त्रेणाराधनं भवेत् ।  
 त्रिल्वपत्रैः कुशैश्चापि पूजयेत् परमेश्वरम् ॥  
 परशुञ्च पृथक् पुष्पै रत्नैरभ्यर्च्य शान्तधीः ।

पृथक्तं शिवभक्तञ्च ब्राह्मणं वेदपारगं ।  
 अर्चयित्वा यथा पूर्वं ततो मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 नीललोहित देवेश सर्वपापभयापह ।  
 परशुव्यग्रहस्तस्त्वं तवाहं शरणं गतः ॥  
 यन्मया मनसा पापं कृतमाजन्मनःप्रभो ।  
 तत्सर्वं क्षपयाशेष विभीपरशुदानतः ॥  
 अनेन सर्वपापानि मानसानि विनाशय ।  
 मयि दीने दयां देव दर्शयाद्य प्रसादतः ॥  
 इत्युक्त्वा तं द्विजेन्द्राय परशुन्तण्डुलादिकम् ।  
 त्रिवेदवेदकलशं भूमिदेवं द्विजोत्तमं ॥  
 इत्युक्तं परशीर्दानं मानसाघविनाशनं ।  
 यद्यत्करोति मनसा पापमाजन्मनः पुरा ॥  
 निष्कृतिस्तस्य पापस्य दानमेतत् प्रयत्नतः ।  
 मासि मासि ततोदेयं दानमेतत्तपोधनाः ।  
 वत्सरे वत्सरे वाणि सर्वदोषापनुत्तये ॥

इति परशुदानविधिः ।

अथ शूलदानं वायुपुराणात् ।

ऋषय ऊचुः ।

समीरणं जगत् प्राणं पवमानक्रियाविभी ।  
 वक्तुमर्हसि नोदानं येन पापं व्यपीहति ॥  
 कर्मणा मनसा वाचा यदबुद्धिकृतं भवेत् ।

पापं तस्य क्षयोपायं वक्तुमर्हसि नः प्रभो ॥  
 यस्माद्भोगादृते नास्ति क्षयः पापस्य कर्मणः ।  
 करदण्डेन वाचाथ प्रायश्चित्तेन वा पुनः ॥  
 राजदण्डः प्रकाशस्य पापस्य कथितः पुरा ।  
 अबुद्धिपूर्वं यत्पापं अज्ञानाच्च महीपते ॥  
 निष्कृतिर्न कृता यस्य तस्य वैवस्वतः प्रभुः ।  
 तस्मात्तस्य क्षयोपायो वक्तव्यश्चरताम्बर ॥

वायुरूवाच ।

अहं वः कथयिष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।  
 या निष्कृतिस्तु पापानां कृतानां प्रज्ञया विना ॥  
 यत्पाशुपतमाख्यातमस्त्वं देवस्य शूलिनः ।  
 तस्य प्रदानात्सकलं तत्पापं सम्प्रणश्यति ॥  
 कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामष्टभ्यां वा सिते तरे ।  
 कुर्याद्वादशनिष्केण त्रिशूलं जघ्णान्वितं ॥  
 युगान्तकरणं घोरमघविह्वं सनक्षमम् ।  
 नानारजोविरचिते चक्रे षडारभूषिते ॥  
 नाभौ निधाय सम्पूर्णं तिलानां ताम्रनिर्मितं ।  
 पावमादृकसंमानं तत्र शूलं न्यसेत्पुनः ॥  
 कुर्यात्तेनैव मन्त्रेण तस्य पूजामनुक्रमात् ।  
 विरूपाक्षश्च तत्पार्श्वे कमलोपरि पूजयेत् ।  
 अघोरेभ्योपि मन्त्रेण पूजान्ते प्रणिपत्य च ॥  
 अघोर मन्त्रस्तु लिङ्गपुराणे ।

ओं अघोरिभ्यो घोरिभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च सर्व्वतः सर्व्वेभ्यो  
नमस्तेस्तु रुद्ररूपेभ्य इति ।

विप्रश्च ज्ञानिनन्तद्वत्संपूज्य मुनिपुङ्गवाः ।  
प्रदक्षिणं ततो गत्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
भगवन् भगने त्वघ्न दक्षयज्ञविमर्द्दन ।  
तवायुधप्रदानान्मे पापं नश्यतु शङ्कर ॥  
युगान्ते येन लोकानां त्वमन्तकविनाशनं ।  
विदग्धन्तन्मयाप्येतत्तेन पापं प्रणाशय ॥  
येन दग्धं क्षणार्द्धेन त्रिपुरं सुरदुर्जयं ।  
तेन पाशुपतेनाशु मम पापं प्रणाशय ॥  
यद्वद्धि कृतं पापं मम चाज्ञस्य मानसं ।  
तत्सर्व्वं क्षयमभ्येतु तव शूलप्रदानतः ॥  
इत्यामन्वा ततो दद्याच्छूलं तस्मै द्विजातये ।  
यदात्मनः कृतं पापमज्ञानाद्यत्पुरा भवत् ॥  
निष्कृतिस्तस्य सर्व्वस्य शूलदानमिदं मतं ।  
अवश्यं कुरुते पापमज्ञानान्मानवीयतः ।  
वर्षे वर्षे ततो दद्यात्तस्य तस्यापनुत्तये ॥

इति शूलदानविधिः ।

आह वौडायनः ।

अतः परं विपाकीत्यं सर्व्वं शूलविनाशनं ।  
दानं यद्वृक्षणा प्रीकृन्तस्यक् कथशाम्यहं ॥  
मौवर्णं राक्षसं वापि शूलं कर्मात्त एतन्नतः ।

यथावित्तानुसारेण पलाईनाथवा पुनः ॥  
 ताम्रेणाथायसा वापि खदिरेणाथवा पुनः ।  
 महादेवप्रहरणं यथा तद्वत् प्रकल्पयेत् ॥  
 रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य रक्तचन्दनचर्चितं ।  
 रक्तमाल्येन संवेष्ट्य तिलानामुपरि न्यसेत् ॥  
 तिलानान्तु परीमाणन्द्रीणं वाथ तदर्द्धक ।  
 तदर्द्धं वा यथाशक्त्या पूजयेद्वाङ्गणः शुचिः ॥  
 अर्घ्यादि मूलमन्त्रेण षोडशैवोपचारकान् ।  
 क्रियाविद्वाङ्गणं पूज्य कर्त्ता होमं प्रकल्पयेत् ॥  
 शूलस्य दक्षिणे पार्श्वे दक्षिणाग्निः\* प्रणीयते ।  
 समिदाज्यतिलान् हुत्वा पुरुषस्येति वै समित् ॥  
 ताम्रस्वकेन च मन्त्रेण आज्यहोमं प्रकल्पयेत् ।  
 यतइन्द्रेण च तिलान् शत्रुः शान्तिं प्रकल्पयेत् ॥  
 तेनोदकेन वा मिञ्चेच्छूलिनं रोगिणं नरं ।  
 ततो हुतवते शूलं संपूज्य च स्वशक्तितः ॥  
 दद्यात्सदक्षिणन्तन्तु प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ।  
 मन्त्रेणानेन परया भक्त्या सर्वपरं स्मरन् ॥  
 त्वं शूलं ब्रह्मणा सृष्टं त्वं पुराणं विनाशकम् ।  
 दैत्यानां दानवानाञ्च शङ्करस्यायुधं सदा ॥  
 कुन्तिस्थमय पार्श्वस्थमथवा पृष्ठसङ्गतं ।  
 शूलं विनाशय त्वं मे महादेवेन धारितं ॥

\* स्थितिरेऽग्निमिति कचित्पाठः ।

ततः स्नात्वा च भुञ्जीत ब्राह्मणैर्वन्धुभिः सह ।  
शूलहिंसासमुत्पन्नां वेदनामाशु माशयेत् ॥

इत्यपरशूलदानविधिः ।

अथ सूर्यमूर्त्तिदानम् ।

आह वृद्धगौतमः ।

बिभ्रामयति योमूढानौषधादिप्रयोगतः ।  
भ्रामणं जायते तस्य देहिनीतीव दुःसहम् ॥  
वक्ष्यामि तत्प्रतीकारन्दानहोमादिकर्मणा ।  
व्यावहारिकनिष्कैस्तु त्रिभिर्होभ्यामथापि वा ॥  
एकेन वा स्वशक्त्या च सूर्यप्रतिकृतिं शुभां ।  
कुर्याद्विहस्तामूर्द्धन्तु पद्मद्वयसुभूषितां ॥  
रथोपरि स्थितां रक्तवाससा समलङ्कृतां ।  
कुङ्कुमेनाङ्कितां सम्यक् रत्नमाल्यैरलङ्कृतां ॥  
स्नापितां पञ्चगव्येन ताम्रपात्रोपरि न्यसेत् ।  
पात्रस्य च परीमाणं तिलानामष्टकं विदुः ॥  
तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा यथा विभवतो भवेत् ।  
पात्रन्तिलानामुपरि विन्यसेद्दर्भसंस्तृते ॥  
एवं भूतान्तु तां मूर्त्तिं आचार्यः पूजयेत् सुधीः ।  
गन्धमाल्यैः सुरभिभिर्हंसः शुचिःषडिलृचा ॥  
उपचारैः षोडशभिर्नैवेद्यं पायसं क्षिपेत् ।  
आग्नेय्यां दिशि होमश्च कर्त्तव्यः शुभमौष्मभिः ॥



समिदाज्यतिलैश्चैव मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमं ।  
 चित्रं देवानां तच्चक्षुरुदत्यज्ज्ञातवेदसं ॥  
 यदस्य कर्मणश्चेति स्विष्टकृद्धीमइथ्यते ।  
 अग्ने रुत्तरतोभागे कलशस्थापनं भवेत् ॥  
 अभिषेकादिकं सर्वं शान्तिकर्मपुरःसरं ।  
 सुखामनीपविष्टस्य कर्त्तव्यं ब्राह्मणैः शुभैः ॥  
 प्रणौतामीक्षपर्यन्तं ब्रह्मोवासनमेव च ।  
 ततः स्नातः शुचिर्हृष्टः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥  
 शुक्लमाल्यैः शोभितश्च आचार्याय ह्युदङ्मुखः ।  
 प्राङ्मुखोऽपविष्टाय दद्यात् प्रतिकृतिं शुभां ॥  
 सहस्रकिरणो देवः खगः पूषा गभस्तिमान् ।  
 सर्वदेवमयो ब्रह्म जगच्चक्षुस्त्वयीतनुः ॥  
 ओषधादिप्रयोगेण पुरा यद्भ्रामणं कृतं ।  
 विप्राणां पादमभ्यर्च्य यद्भूतं भ्रमणं मम ॥  
 प्रतिमायाः प्रदानेन तृष्टो देवो बृहस्पतिः ।  
 भ्रमणं देहगं सर्वं वासुदेवोऽप्यपोहतु ॥

### दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तद्दानमाचार्यायातिभक्तितः ।  
 आसीमान्तादनुब्रज्य प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥  
 अन्तेभ्योऽपि ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्कृत्या च दक्षिणां ।  
 एव दानं पुरा प्रोक्तं दत्त्वा मर्त्याऽतिभक्तितः ।  
 यत्तु कर्मविपाकीत्यत्र भ्रमत्यक्ता मर्त्यो भवेत् ॥

इति सूर्यमूर्त्तिदानविधिः ।

तथा ।

ब्राह्मणं घातयेद्यस्तु स कुठौ जायते नरः ।  
 वक्ष्यामि तत् प्रतीकारं सूर्यदानं विधानतः ॥  
 पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः ।  
 सूर्यप्रतिकृतिं कुर्यात् कदलीञ्चैव सन्निधौ ॥  
 कुठोपहतदेहानां शान्त्यर्थं कारयेद्बुधैः ।  
 सुवर्णेन पलार्द्धेन पत्रपुष्पैरलङ्कृतं ॥  
 सूर्यस्तु हिभुजः कार्योराजते च रथे स्थितः ।  
 रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य कुङ्कुमेनानुलेपयेत् ॥  
 रश्मान्तु श्वेतवस्त्रेण श्वेतपुष्पैश्च चन्दनैः ।  
 तण्डुलोपरि संस्थाप्य नानाफलममन्वितं ॥  
 तण्डुलानाम्परीमाणन्दोणमात्रं प्रकीर्तितं ।  
 श्रुताध्ययनसम्पन्नं ब्राह्मणं शान्तमानसं ॥  
 सर्वविद्यासु कुशलं दरिद्रं चाग्निहोत्रिणं ।  
 गृहमाह्वय भक्त्या तं पूजयेद्वस्त्रमाल्यकैः ॥  
 ततो हीमं प्रकुर्वीत समिदाज्यतिलाक्षतैः ।  
 लाजाश्च मधुना मिथ्याहृत्वा चाष्टोत्तरं गतं ॥  
 मन्त्रेण चैव गायत्र्या दुर्गाग्रहाधिदेवताः ।  
 जुहुयाच्च ततोभक्त्या समिदाज्यचरुनपि ॥  
 तथैव ह्याज्यसंपतेरक्षिता इत्यनेन तु ।  
 समञ्जनं प्रकुर्वीत यथा लिङ्गं गरीरके ॥

शत्रोदेव्यनुवाकेन शान्तिं कुर्याद्विशेषतः ॥  
 तस्मै हुतवते रोगी दद्यात् भक्तिं पुरःसरम् ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखाय ह्युदङ्मुखः ॥  
 आदित्य सूर्य्यं द्युमणे सर्वरोगविनाशक ।  
 सहस्रकिरणाऽम्भोजबन्धो तिमिरनाशन ॥  
 द्वादशाक्षं स्त्रयीदेहं जगच्चक्षुर्दिवाकर ।  
 पूर्वकर्मविपाकीत्यं कुष्ठमाशु विनाशय ॥

इति सूर्यप्रतिकृति दानमन्त्रः ।

कदली सर्वदेवानां मातृणां सर्वशर्मादे ।  
 लक्ष्म्या शया च पार्वत्या देवकन्याभिरेव च ॥  
 मावित्या रश्मयाचैव कार्यार्थं पूजिता पुरा ।  
 अङ्गप्रत्यङ्गजं सर्वं कुष्ठजातमपानुद ॥

कदलीदानमन्त्रः ।

ततः स्नात्वा च भक्ष्योक्तं ब्राह्मणैर्व्वधुभिः सह ॥

इत्यपरं सूर्यमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ वज्रिमूर्त्तिदानं ।

तत्र बीजायनः ।

सर्वर्णेनाथ ताम्रेण कुर्यात् प्रतिकृतिं बुधः ।  
 वज्रे विभवसारेण पलेनार्द्धेन वा पुनः ॥

षड्विलचणन्तु लोकपालप्रसङ्गेन ब्रह्माण्डदाने दर्शितम् ।

तथा, ज्वालाकुलां रक्तचन्दनेन विलेपितां ।  
 रक्तवस्त्रेण सम्ब्रीतां मेघस्थोपरि संस्थितां ।  
 रक्तमाल्यैस्तु सञ्चन्नां मुक्तादामपरिष्कृतां ।  
 कनकाचलवर्णाभां द्वादशार्कनिभां शुभां ।  
 ब्रह्मचर्यान्विते विप्रे कर्मनिष्ठे ऽग्निहोत्रिणि ।  
 अङ्गुलीयकवस्त्राद्यैर्भूषिते तां निवेदयेत् ॥  
 मन्त्रेणानेन विधिवदग्निप्रीत्यर्थमादृतः ।  
 चैतारूपोऽग्निरीडास्त्वमन्तश्चरसि वै नृणां ।  
 त्वं वेत्थ प्राक्तनं पापमतीसारं विनाशय ।  
 एवं कृत्वा नरः सम्यगतीसारं व्यपोहति ।  
 नौरुजः सुसुखी नित्यं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥

इत्यग्निमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ कालपुरुषदानं ।

भविष्योत्तरे ।

युधिष्ठिर उवाच ।

दानान्यन्तानि मे कृष्ण कथयस्व यदुत्तमम् ।  
 मङ्गल्यानि पवित्राणि सर्वपापहराणि च ॥  
 संसारमागरीत्तारहेतुभृतानि माधव ।  
 धर्माधर्म परिज्ञाने त्वदन्योनेह कश्चन ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

दानानि बहुरूपाणि कथितानि मया तव ।  
 पुनरेव प्रवक्ष्यामि यद्यस्ति तव कौतुकं ॥  
 कथितानि मया तुभ्यं कथयिष्याम्यहं तव ।  
 महतार्थेन मिदगन्ति प्रयच्छन्ति महत् फलं ।  
 कास्यादानविधिः पार्थ क्रियमाणी यथातथं ।  
 फलाय मुनिभिः प्रोक्तो विपरीतो भयाय च ॥  
 ज्ञेयं निष्कगतं पार्थ दानेषु विधिरुत्तमः ।  
 मध्यमस्तु तदर्धेन तदर्धेनाधमः स्मृतः\* ॥  
 मेधाञ्च कालपुरुषे तथान्येषु महत्सु च ।  
 एवं वृत्ते रथेऽण्डे च धेनीः कृष्णाजिनस्य च ॥  
 अगस्त्यापि कृष्णोयं पञ्चमौर्वर्णिकोविधिः ।  
 अतीप्यन्त्येन योदद्यात् महादानं नराधिप ।  
 प्रतिगृह्णाति वा तस्य दुःखशीकावहं भवेत् ।  
 पुण्यन्दिनमयासाद्य मूमिभागे ममे शुभे ।  
 चतुर्दश्यां चतुर्थ्याम्वा विष्ट्याम्वा पाण्डुनन्दन ॥

विष्टिः भेद्राकरणं ।

पुमान् कृष्णतिलैः कार्थ्यीरौष्यदन्तःसुवर्णदृक् ।  
 सुवर्णादिपरीमाण, मत्र यथाशक्ति सम्पादनीयं ॥  
 खड्गाद्यतकरीदोर्धोजवाकुसुमकुण्डलः ।

रक्ताम्बरधरः स्रग्वी शङ्खमालाविभूषितः ।  
तीक्ष्णसिपुत्रीबन्धेन विसृग्दारिकटीतटः ॥\*

असिपुत्री, च्छुरिका ।

उपानयगयुक्ताङ्घ्रिः कृष्णकम्बलपार्श्वगः ।  
गृहीतमांसपिण्डश्च वामे करतले तथा ॥  
एवंविधं पुमान् कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।  
यजमानः प्रमदात्मा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्नैवेद्यं विनिवेद्य च ।  
सर्वं कलयसे यस्मात् कालस्वन्तेन चीचसे ॥  
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्वीसि सुव्रत ।  
पूजितस्त्वं मया भक्त्या पार्थिवश्च तथासुखं ॥  
तद्ब्रूयते तव विभो तत्कुरुष्व नमोनमः ।  
एवं संपूजयित्वा तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
ब्राह्मणं प्रथमं पूज्य वासीभिर्भूषणैस्तथा ।  
दक्षिणां शक्तितो दद्यात् प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥  
दक्षिणां पूर्वोक्तां निष्कादिकां ।

अनेन विधिना यस्तु दानमेतत् प्रयच्छति ।  
नच मृत्युभयं तस्य नच व्याधिकृतं भवेत् ॥  
भवत्यव्याहतैश्वर्यं सर्ववाधाविवर्जितः ।  
देहान्ते सूर्य्यभवनं भित्वा याति परं पदं ॥  
पुण्यक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः ।

सत्रयाजी श्रिया युक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥

संपूज्य कालपुरुषं विधिवद्विजाय

दत्त्वा शुभाशुभफलोदयहेतुभूतं ।

रोगातुरे सकलदोषमयेऽत्र देहे

देही न मोहमुपगच्छति तत् प्रभावात् ॥

इति कालपुरुषदानविधिः ।

अथ कालचक्रदानं ।

मृत्युञ्जयात् ।

चक्रं रौप्यमयं कृत्वा मुक्तारश्मिमयात्मकं ।

कृत्वा मूर्ध्नि शरच्चन्द्रं रश्मिमध्यान्तरस्थितं ॥

त्वङ्गामानि तु रौप्याणि गात्रेषु च समन्ततः ।

एवं ध्यानवतस्तस्य सचन्द्रः कृष्णतां व्रजेत् ॥

ततोऽप्यनन्तरं पश्चात् स्थित्वा विप्रप्रदक्षिणं ।

तं गृहीत्वा व्रजेदूरं अदृष्टत्वमपि व्रजेत् ॥

स्वयञ्चामृतसंघातपूर्णकायस्थितिस्थितः ।

कालचक्रमिदं नाम्ना दानं मृत्युविनाशनं ॥

इमन्ते राजतं चान्द्रं रश्मिजालसंमाकुलं ।

अपमृत्युविनाशाय ददामीति समुच्चरन् ॥

सुवर्णं दक्षिणायुक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

एवं कृते विनश्येत अपमृत्युर्न संशयः ॥

ततस्तस्मात्सदा देयमपमृत्युभयान्वितैः ।

ज्वरादिरोगग्रस्तैर्वा मच्चापत्पतितैरपि ॥

ततो गृह्योक्तविधिना स्थापयेज्जातवेदसं ।  
जुहुयात् कालनाम्ना तु शतमष्टोत्तरन्तिलैः ॥  
ततस्तु भोजयेद्भक्त्या विप्रान् द्वादशसंख्यया ।  
स्वयमक्षारलवणं भुञ्जीत सकृदेवहि ।  
एवं कृते नरोनूनं चिरंजीवेन्न संशयः ॥

इति कालचक्रदानविधिः ।

अथ यमदानं ।

मृत्युञ्जयात् ।

लोहपात्रस्थितं कांस्यं तत्र पद्मन्तु राजतं ।  
तस्मिन् कालेश्वरः स्वर्णैः पुरुषाकारताङ्गतः ॥

यमरूपमुक्तं ।

ब्रह्माण्डदाने ।

वस्त्रालङ्कारसंयुक्तो भयदास्त्राणि सर्व्वतः ।

त्रिलोहाकारपुरुषैः कालदूतैश्च पार्श्वतः ।

भयदास्त्राणि खड्गच्छुरिकादीनि त्रिलोहं ताम्र कांस्य-पित्त-  
लास्यं कालदूताः, पुरुषाकृतयो दण्डहस्तास्त्रयः ।

कृत्वा च महिषं पृष्ठे तन्द्याद्यममालपन् ।

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां करोति विधिना तु यः ।

स मुच्यते ध्रुवं नाशाहत्वा घृतघटोत्तरं ॥

यममालपन्निति महिषपृष्ठस्थित लोहपात्रो परिस्थित कांस्य



पात्रनिविष्ट पद्मार्कटं यमं ददामौत्युच्चारयन्नित्यर्थः घृतघटस्य  
उत्तरे दक्षिणास्थाने यस्येति दानविवेककारः अपरेतु सुवर्ण-  
दक्षिणेति ।

इति यमदानविधिः ।

अथोदकुम्भदानं ।

शौनकीयात् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

भगवन् केन दानेन तपसा केन कर्मणा ।  
अप्राप्य नरकं घोरं स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ॥  
नरकेषु विपच्यन्ते जन्तवः सततं मुने ।  
अल्पायासिन देवर्षे परिहारोस्ति चिद्वद ॥

सूतउवाच ।

एवमुक्तोऽयं भगवान् मार्कण्डेयेन धीमता ।  
उवाच नारदोदानमल्पवित्तं महाफलं ॥  
मार्कण्डेय शृणु खेदं ब्रह्मविष्णोः पुरातनम् ।  
तदाह भगवाच्छ्रुत्वाऽहोः पृष्टस्तयोस्तथा ॥  
अयतामुदकुम्भाख्यं दानं वक्ष्यामि सुव्रतौ ।  
यत् कृत्वा पुरुषः स्त्रोत्रा न याति नरकं क्वचित् ॥  
स्वर्गं यशस्य-मायुष्य-मार्गस्य पापनाशनं ।  
मम प्रीतिकरं पुण्यं युवयोश्च प्रियं तथा ॥

वैशाख्यां पीर्णमास्याञ्च कार्त्तिक्यामथ तद्दिने ।  
 स्वजन्मदिवसे कार्यं दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ।  
 भूमौ गोमयलिप्तायां उदकुम्भं न्यसेद्दधः ॥  
 पुष्पैः फलैश्च संवेष्ट्य वस्त्रेण मितरुपिणं ।  
 विधानेन तिस्रोर्मिश्रं गुण्डं तत्रैव निक्षिपेत् ॥  
 धर्मराजं न्यसेद्देवं सोवर्णं शक्तितः कृतं ।  
 समुत्तं द्विभुजं देवमासीनं दण्डहस्तकं ॥  
 वरदं कृपया युक्तं भक्तानां हितकारिणं ।  
 एवं सप्तघटान् कृत्वा गन्धादिभिरग्राह्यैः ॥  
 विप्रेभ्यो दापयेत् कुम्भानेभिर्मन्त्रै यथाक्रमं ॥  
 यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।  
 वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥  
 एवमाराध्य तान् कुम्भान् दद्यादुदकपूर्वकं ।  
 प्रीयताम्भगवानेवमन्वाति समुदाहरेत् ॥  
 एवं कुम्भप्रदानेन देव देवः स तुष्यति ।  
 कर्त्ता कारयिता स्वर्गं प्राप्नोतीति न संशयः ।  
 न याति नरकं घोरं न प्राप्नोत्यशुभं क्वचित् ।  
 यमस्वरूपी भगवान् प्रीती भवति तस्य वै ।  
 यः कुम्भदानं विप्रेभ्यो ददाति च यथाविधि ।

इत्युदकुम्भदानविधिः ।

अथ मकरदानं ।

तत्र बौधायनः ।

कुर्यात् मकरं सम्यगाजतं ताम्रमेव च ।  
 पलत्रयेण द्वाभ्यां वा यद्वैकेन शुभाकृतिं ॥  
 पुष्के रत्नानि दद्यानि कटिं रूप्येण कारयेत् ।  
 नेत्रे स्वर्णमये कार्ये जिह्वा कार्या प्रकल्पयेत् ॥  
 पादयोः प्रक्षिपेत्तत्र घृतपात्रे पुरोद्वयोः ।  
 कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य चन्दनागुरुचर्चितं ।  
 ताम्रेऽथ जलपात्रेऽथ स्थापयेन्मकरं शुभं ।  
 ब्राह्मणं वृत्तसम्पन्नं वृद्धं दान्तमलोलपं ।  
 वस्त्रैः कटककेयूरैः पूजयेद्भुलीयकैः ।  
 ह्रीमो वारुणदैवत्यैर्मन्त्राध्यायोक्तमार्गतः ।  
 ततस्त्वौदरिके विप्रे मकरन्तं निवेदयेत् ।  
 जलाधिदेव देवेश पश्चिमाशापते विभो ।  
 उदरव्याधिनाशं मे कुरु दानेन तोषितः ।

इति मकरदानविधिः ।

अथ धनदमूर्त्तिदानं ।

वायुपुराणे ।

दग्निद्वी जायते मर्त्यो दानविघ्नं करोति यः ।  
 ऐश्वर्यं जायते येन कर्मणा तच्छृणुष्व मे ।  
 पलाञ्चिनं तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथ वा पुनः ।  
 धनदस्य प्रतिष्ठां कुर्यात् स्वर्णमयीं शुभां ।  
 विभुजां वाहनोपेतां नयनानन्दकारिणीं ।

धनदलक्षणं धान्य पर्वत दानेद्रष्टव्यं ।  
 शङ्खपद्मनिधिभ्याञ्च युक्तान्तां पार्श्वयोर्द्वयोः ।  
 श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य तण्डुलोपरि विन्यसेत् ॥  
 तण्डुलानां परीमाणं भवेद्द्वौणचतुष्टयं ।  
 तदर्धं वा तदर्धं वा वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥  
 श्वेतमान्यैस्तथा गन्धैरनुलिप्य प्रपूजयेत् ।  
 आग्नेय्यां दिशि होमश्च समिदाज्यतिलैर्भवेत् ॥  
 मन्त्रोराजाधिगजायेत्येष योज्यः सलिङ्गकैः ।  
 व्याहृत्या तिलहोमश्च कर्त्तव्यो धनकाङ्क्षिभिः ॥  
 आचार्यः सर्वशास्त्रज्ञो विनीतः सर्वमस्मतः ।  
 महाकुलप्रसूतश्च धर्मज्ञः सत्यवाक् शुचिः ॥  
 कारयेद्दर्शनं तेन धनदस्यातिभक्तितः ।  
 तद्देवत्येन मन्त्रेण सच कामीश्वरो भवेत् ॥  
 तस्मै होमं कृतवते प्रदद्यात् प्रतिमानु तां ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवत् प्राङ्मुखः क्षुद्रश्चुखः ॥  
 उत्तराग्रापते देव कुबेर नरवाहन ।  
 पद्मशङ्खनिधीनां त्वं पतिः श्रीकण्ठवल्लभः ॥  
 दानाद्येन यथा प्राप्तं दारिद्र्यं मम दुःखदं ।  
 तत्सर्वमात्मदानेन पापमाशु विनाशय ॥

दानमन्त्रः ।

एवं कुबेरदानं यः करोति विधिपूर्वकं ।  
 धनदेन समीमर्त्यस्ततः क्षणादेव जायते ॥

इति धनदमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ नागदानं ।

तत्र वृद्धवौडायनः ।

मर्पेस्तु यः खादयति स विसर्पी भवेन्नरः ।  
 दानेनोपशमः कार्थ्योहोमेन च विशेषतः ॥  
 पलेन वा तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथ वा पुनः ।  
 कुर्यान्नागं सुवर्णेन फणापञ्चकसंयुतं ॥  
 भाणिक्यानिच देयानि प्रत्येकं फणपञ्चके ।  
 रत्नं पुच्छे तथा देयं वज्रे लोचनयोस्तथा ॥  
 एवं कृत्वा शुभं नागं कुङ्कुमेन तु लेपयेत् ।  
 रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य ताम्रपात्रोपरि न्यसेत् ॥  
 पात्रस्य च परीमाणं पलानामष्टकं विदुः ।  
 उपचारैः षोडशभिरर्चयेन्नागमुत्तमं ॥  
 आचार्यैः सर्वशास्त्रज्ञैर्धर्मशास्त्रपरायणैः ।  
 त्रीमत्रापि प्रकुर्वीत समिदाज्यतिलैः शुभैः ॥  
 नमोस्तु मर्पेभ्य इति त्रिभिर्मन्त्रैर्यथाक्रमं ।  
 अष्टोत्तरमहस्रन्तु अष्टोत्तरशतन्तु वा ।  
 प्रष्टाविंशतिरेवाथ परिज्ञाणं पृथग्भवित् ॥  
 हत्वा चाहृतिसंपातैः पात्रेचैकौकृते स्वयं ।  
 पात्रशोभानिनाभ्यज्य शीगिरन्तु विसर्पिणं ॥  
 ऋग्भिस्तु मर्पेराज्ञोभिर्भूमिर्भूम्नादिभिः क्रमात् ।  
 स्वस्यो घ्यामौ भवति गात्राणामप्यरोगतः ॥

गुग्गुलुञ्च सुगन्धिञ्च पत्रिदारु च निक्षिपेत् ।  
 प्रकल्प्य कलशं कुर्यादभिषेकं जलैः शुभैः ।  
 श्रीं नमः सर्पेभ्य इति चाद्वैस्तन्निष्कैरपि ।  
 हिरण्यवर्णाः शुचयः पवमानानुवाकतः ॥  
 आपोहिष्टामशइति शत्रोवात इतीरयेत् ।  
 उतमादिताङ्गकचिरं लिम्बेद्गुरुचन्दनैः ॥  
 ततः शुक्ताम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।  
 ततः समर्चयेद्यत्नाद्भस्मपष्पाक्षतादिभिः ॥  
 सपदेवत्यमन्त्रेण आचार्यापि समर्चयेत् ।  
 अनन्तं सर्पराजन्तमाचार्याय निवेदयेत् ॥  
 याधत्ते पृथिवीं कृत्स्नां मणिलवनकाननां ।  
 क्षीराब्धौ यस्य शय्या च वासुदेवस्य गार्ङ्गिणः ॥  
 स्वोयदानेन नागोऽसौ तुष्टोऽधिमपोहत् ।  
 वैसर्पिकविकारं मे वाग्दोषजनितं तथा ॥  
 रक्तदोषोद्भवं वापि मातृतः पितृतोपि वा ।  
 अङ्गप्रत्यङ्गसम्भृतं विकारं मे व्यपोदतु ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तं नागमाचार्याय सदाक्षण ।  
 भूमौ प्रणम्य शिरसा जनैः शतपट्टं व्रजेत् ॥  
 आचार्येण हानज्ञात स्वर्गजं प्रविशितं मर्ध्ना  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा च सदा भूयः प्रयच्छेत् ॥

इति नागदानविधिः ।

अथात्मप्रतिकृतिदानं ।

भविष्योत्तरात् ।

कृष्ण उवाच ।

आत्मप्रतिकृतिर्नाम यन्नोक्तं कस्यचित्पुरा ।  
 तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि दानं मानविवर्द्धनं ॥  
 दानकालः सदा तस्य मुनिभिः परिकीर्तितः ।  
 पुण्यैः पुण्यदिनं पार्थ प्राप्यते जीवितेचले ॥  
 हेमीं प्रतिकृतिं भव्यां कारयित्वा ततोऽनृप ।  
 अभीष्टवाहनगतामिष्टालङ्कारसंयुतां ।  
 अभीष्टलोकसहितां सर्वोपस्करसंयुतां ॥  
 अभीष्टलोकसहितामिति, प्रियजनसहितामित्यर्थः ।  
 तत्र पटपटीवस्त्रैश्चादितां स्रग्विभूषितां ।  
 कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्गीं कर्पूरागुरुवासितां ॥  
 स्त्री चेद्ददाति शयने शयितां कारयेत् स्वयं ।  
 यद्यदिष्टतमं किञ्चित् तत्सर्वं पार्श्वतो न्यसेत् ॥  
 उपकारकरं स्त्रीणां पुरुषाणाञ्च यद्वेत् ।  
 तत्सर्वं स्थापयेत्पार्श्वं स्वयं सञ्चिन्त्य चेतसि ॥  
 एतत् सर्वं मेलयित्वा स्वे स्वे स्थाने नियोजयेत् ।  
 पूजयित्वा लोकपालान् यद्वाञ्च देवीं विनायकं ॥

देवोग्रहेनात्र दुर्गोच्यते, विनायकमाहवर्थात्  
ततः शुक्लाम्बरः स्नात्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।

इममुच्चारयेन्मन्त्रं विप्रस्य पुरतः स्थितः ॥

आत्मनः प्रतिमा चेयं सर्वोपकरणैर्युता ।

सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता ॥

आत्मा शम्भुः शिवः शौरिः शक्रः शिवगणैर्युतः ।

तस्मादात्मप्रदानेन मम चात्मा प्रसीदतु ॥

इत्युच्चार्य ततोदद्याद्वाङ्मणाय युधिष्ठिर ।

ब्राह्मणस्याथ गृह्णाति कोदादिति च कीर्त्तयन् ॥

कोदादिति, वाजमनेयप्रसिद्धमन्त्रग्रहणं ।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

विधिनानेन राजेन्द्र दानमेतत् प्रयच्छति ।

यः पुमानथवा नारी शृणुयत् फलमाप्नुयात् ॥

मार्द्धं वर्षशतं दिव्यं सर्वलोकैः सुरैर्हृतः ।

अभीष्टफलदानेन चाभीष्टफलभागभवेत् ॥

यत्रैवोत्पद्यते जन्तुः प्राप्तकर्मक्षयक्षणं ।

तत्रैव सर्वकामानां फलभाक् स भवेन्नृप ॥

इष्टवन्धुजनैः मार्द्धं न वियोगं कदाचन ।

प्राप्नोति पुरुषोराजन् स्वर्गञ्चानन्तमश्रुते ॥

यथात्मनः प्रतिकृतिं वरवाहनस्यां

हैमीं विधाय धनधान्यममाकुलाञ्च ।

सोपस्कृतां द्विजवराय ददाति भक्त्या

चन्द्रार्कवद्विवि विभाति स राजराजः ॥



इत्यात्मप्रतिकृतिदानविधिः ।

अथाश्विनोद्दानं ।

ब्रह्माण्डपुराणे ।

अथापृच्छन्मनयः सूतसूनुं  
तदारण्ये नैनिषे सविणःस्ते ।  
उग्रश्रवः परिपृच्छामहे त्वां  
कथं विद्वान् शमयेद्भोगपौङ्गं ॥  
एवं पृष्टोमुनिभिः सूतसूनु  
मुवाचेदं दानमाहात्मा मत्त ।  
शृणुध्वं वः कथयिष्यामि दानं  
यत् कृत्वासौ मुच्यते गीगपृगैः ॥  
अभीष्टमिद्विर्भवतीह कर्तु-  
रायुष्यमागीय्य मुपैति चाश्रया ।  
उग्राणि सर्व्वाणि शमं प्रयान्ति  
श्रियं तथा प्राप्नुयाद्येन दाता ॥  
स्वर्भानुना यस्मिन्ने चन्द्रसूर्ये  
राश्यन्तरे संक्रमे वायु भानोः ।  
यस्ते गीगैस्त्रिविधेचाङ्गते वा  
मनोनिव्यं रमते यव भूमौ ॥  
तस्मिन् कुर्यादाश्विनं नाम दानं

शुचीं देशे गोमयेनोपलिप्ते ।  
 वेदीद्वये हस्तमात्रे समन्तात्  
 कृत्वा तिलैस्तण्डुलैराटकाख्यैः ॥  
 तत्र देवावश्विनौ जातरूपौ  
 प्रत्यङ्मुखौऽभ्यर्चयित्वा जातरूपौ ।  
 जातरूपौ स्वर्णमयी अश्विनौ  
 तल्लक्षणमुक्तां,

विष्णुधर्मात्तरे ।

द्विभुजौ देवभिपजां कर्त्तव्यौ चारुलाचनौ ।  
 तयोरोपधयः कार्यादिव्या दक्षिणहस्तयोः ॥  
 वामयोः पुस्तको कार्या दर्शनीयौ तथा द्विज ।  
 एकस्य दक्षिणे पार्श्वे वामे चान्यस्य यादव ॥  
 नारीयुगं प्रकर्त्तव्यं सूरूपञ्चारुदर्शनं ।  
 तयोश्च नामनी प्राक्ते रूपसम्पत्तयाकृतिं ॥  
 रत्नभागुं करे कार्य्यं चन्द्रशुक्लाखरे तथेति ॥

गन्धर्वस्त्रैः पुष्पधूप प्रदीपैः  
 प्रदक्षिणं देवमुख्यौ च कृत्वा ।  
 पुष्पाञ्जलिं तौ प्रदत्ते, प्रणम्य  
 अभ्यर्च्य विप्रद्वयमादरेण ॥  
 प्रत्येकमेकान्तं हिरण्यरूपं  
 दद्यात्, तस्यादकपृथ्वीमत्र ।  
 समीरयन्मन्दमथ क्रमेण

दाता समाधाय मनः प्रासन्नं ॥  
 नासत्यदस्त्रौ युवयोर्हिरण्य  
 रूपप्रदानान्ममशान्तिरस्तु ।  
 यथायुवां देवभिषग्भवेतां  
 तथाच मे रोगशमाय देवौ ॥

इत्यश्विदानविधिः ।

अथ चन्द्रसूर्यदानं ।

विष्णुधर्मोत्तरात् ।

भगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानं राजन्नराधिप ।  
 यद्वत्त्वा तु वली राजा शक्रराज्यमवाप ह ॥  
 शक्रश्च बलिनोराज्यं दत्त्वा पुनरवाप ह ।  
 चन्द्रसूर्योपरागे च विषुवे अयने यथा ॥  
 हादश्यां चन्द्रक्षये च वैशाख्यां पुत्रजन्मनि ।  
 कार्तिक्याञ्च महामाघ्यां सप्तम्यां जयायान्तथा ॥  
 चन्द्रादित्यौ च दातव्यौ सूर्यः सौवर्णउच्यते ।  
 शुद्धस्य रजतस्यैव मण्डलं हिमरोचिषः ॥  
 हादश्याङ्गुलवृत्तन्तु उभयोरपि मण्डलं ।  
 वृत्तौ पद्मसमाकारौ मध्येचैव तु कर्णिकां ॥  
 भानुन्ताम्रमये पात्रे घृतपूर्णं तु निक्षिपेत् ।  
 सोमं शङ्खे क्षीरपूर्णं उपरि स्थापयेद्बुधः ॥

सूर्यन्तु रक्तकुसुमैः सोमं शुक्लैस्तथैव च ।  
 आदित्याय तु धूपं वै सुगन्धैश्चैव दापयेत् ॥  
 सोमस्य गुग्गुलीदेयोगन्धः शुक्लस्तथैव च ।  
 कुङ्कुमं तु पतङ्गाय दीपञ्चैव घृतेन तु ॥  
 एवं संपूज्य यत्नेन चन्द्रादित्यौ पृथक् कृतौ ।  
 अमृतमूर्त्तये सोम नमोन्तेनैव पूजयेत् ॥  
 खखोल्कायेति वै सूर्यं नमोन्तेन पुनः पुनः ।  
 आह्वय ब्राह्मणं भक्त्या वेदवेदाङ्गपारंगं ॥  
 कुटुम्बिनं दरिद्रञ्च आहिताग्निं तथैव च ।  
 रक्तेन वाससाच्छाद्य कुङ्कुमनानुलिप्य च ।  
 संपूज्य पुष्पधूपैश्च द्विजं सूर्यमिवापरं ॥  
 रविविम्बं चन्द्रविम्बं घृतस्थन्तु निरीच्य वै ।  
 समर्पयेद्ब्राह्मणाय मन्त्रेणानेन भूमिप ॥  
 रूक्मञ्च पुरुषञ्चैव पर्णं पुष्करमेव च ।  
 त्रयो तु विद्या माङ्गा तु यस्याङ्गं विश्वरूपिणः ॥  
 स वै चण्डिकरोदेवः प्रीयतां विप्र माचिरं ।  
 एवमुच्चार्य भानुन्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 क्षीरजं देवदेवञ्च द्विजराजं तथैव तु ।  
 अमृतमूर्त्तिं शीतांशुं ददामि च द्विजोत्तम ॥  
 गायत्र्याचैव सूर्यस्य ग्रहणं जायते विभो ।  
 सोमन्तरत्नमन्दोयं जपन् शुद्धेन चेतसा ॥  
 एवं चन्द्र-रविन्दत्वा बली राज्यमवाप ह ।  
 सर्वान्तेन तु दत्तस्याद्योदयाच्चन्द्रभास्करी ॥

सर्वन्तेन कृतं-राजन् सर्वन्तेन च सं-श्रुतं ।  
 सर्वं दक्षिण्या यष्टं संसारे तु नरोत्तम ।  
 पूज्यते सिद्धगन्धर्वैर्ऋषिभिर्देवदानवैः ॥

इति चन्द्रादित्यदानविधिः ।

अथ ध्वजपाशदानं ।

आह बौद्धायनः ।

ध्वजं पाशं पल्लकेन कुर्यात्तु रजतेन वै ।  
 पलार्द्धेनाथवा शुद्धस्फटिकोपममादृतः ॥  
 रत्नैर्मरकतैः सम्यक्-वज्रमङ्गेषु सर्वतः ।  
 कुम्भश्च स्थापयेत्तत्र तिलानां द्रोणपञ्चकं ॥  
 कुम्भस्योपरि संस्थाप्यो ध्वजपाशश्च शोभनः ।  
 महिरण्यं दयन्तत्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 वस्त्रेणावेष्टयेत् कुम्भं गन्धमाल्याक्षतार्चितं ।  
 श्रुतवृत्तैः समृद्धाय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥  
 वरुणस्य तथा वायोः प्रीत्यर्थं विनिवेदयेत् ।  
 नमः पाशभृते तुभ्यं नमो ध्वजधराय ते ॥  
 जलाधिपतये तुभ्यं वायोः सर्वजनप्रियः ।  
 युवयोः प्रीतये दत्तौ ध्वजपाशौ सुराजतौ ॥  
 श्वासकासौ हरेतां मे प्रीतौ सर्वजनाग्रयौ ।  
 एवं कृत्वा श्वासकासौ नीरीगस्तत्क्षणात् भवेत् ॥

इति ध्वजपाशदानविधिः ।

अथ ब्रह्मविष्णुमहेश्वरदानम् ।

लिङ्गपुराणे ।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि सर्व्वदानोत्तमोत्तमं ।  
पूर्व्ववद्देशकाले च मण्डपे वा विधानतः ॥  
प्रपायां कूटमध्ये वा स्थण्डिले शिवसन्निधौ ।  
पूर्व्व-विष्णु-समाराध्य पद्मयोनि-ततः परं ॥  
मन्त्राभ्यां विधिना ताभ्यां प्रणवादिनमोन्तकं ।

अत्र पूर्व्ववक्त्रेण लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदानविहितं कुण्ड-  
मण्डपादि सर्व्वमुपसंगृह्यते तत्रैतस्य तत्प्रकरणे पठितत्वात् ।  
'प्रप्राकूटौ' मण्डपविशेषौ ।

उक्तमण्डपविशेषे, स्थण्डिलं विधाय शिवसन्निधौ  
ब्रह्मविष्णू पूजयेदित्यर्थः शिवसन्निधावित्यनेनैव शिवप्रति-  
माकरणमपि गम्यते ।

तथाचोक्तं कामिके ।

मण्डलान्तःशिवं हैमं पार्श्वयो ब्रह्म-केशवौ ।  
तानुद्दिश्य प्रदातव्यं श्रोत्रियेभ्यो धनं बहु ॥  
उत्तमन्त्रिमहस्त्रन्तु मध्यमन्त्रिमहस्त्रकं ।  
महस्त्रं कन्यमं प्रोक्तं समामात् प्रोच्यते मया ।  
पूर्व्ववच्छिवपूजा च ऋत्विगाचार्य्यदक्षिणा ॥

मन्त्राभ्यामिति वक्ष्यमाणाभ्यामुभाभ्यां विष्णुब्रह्माणी पूजयेत्  
प्रणवादिनमोन्तकमिति क्रियाविशेषणं ।

नारायणाय विद्महे वामुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचीदयात् ।

वृहद्वृहणभेदाय ब्रह्मणे धनदाय ते ।

शिवाय हरये स्वाहा स्वधा-वौषट्-वषट्-नमः ॥

इति विष्णुब्रह्ममन्त्रौ ।

शिवस्य तु, जप्ता रुद्रा इति वक्ष्यति ।

पूजयित्वा विधानेन पञ्चाङ्गोमं समारभेत् ॥\*

सर्वद्रव्यं च होतव्यं हाभ्यां कुण्डे विधानतः ॥

जप्ता रुद्रास्तु नियतः शिवैकगतमानसः ।

ऋत्विजो हो तु कर्त्तव्या गुणाढ्यो वेदपारगौ ॥

तानुद्दिश्य यथान्यायं विप्रैर्भ्यो दापयेदनं ।

गतमष्टोत्तरन्तेभ्यः पृथक् पृथगनुत्तमं ॥

वस्त्राभरणमयुक्तं यथाविभवविस्तरं ।

गुरुश्च ऋत्विजो चैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥

तेषां पृथक् पृथक् दद्याद्भोजयेद्ब्राह्मणानपि ॥

शिवाग्निना च कर्त्तव्या स्नपनादि यथाक्रमं ॥

सर्वद्रव्यमित्यादि, सर्वद्रव्यं लिङ्गपुराणोक्ततुलापुरुषदाने निरूपितं, हाभ्यां कुण्ड इति, हाभ्यामृत्विग्भ्यां एकस्मिन् कुण्डे होतव्यमित्यर्थः, तानुद्दिश्येत्यादि, तान् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरानुद्दिश्य प्रतिदैवतं

ऋत्विगाचार्य्यतिरिक्तेभ्यो विप्रेभ्यः पृथगककशो अष्टोत्तरशत-  
संख्यं धनं दापयेदित्यर्थः अत्रानुपात्तजातिपरिमाणविशेषेऽपि  
धनशब्देन, सर्वत्र बहुशोनिष्काणां प्रक्रान्तत्वात्तैरेव अष्टोत्तरशतं  
सम्पूर्णीयं । गुरुथेत्यादि, एकोगुरुः द्वौ ऋत्विजौ तेभ्यो ब्रह्मविष्णु-  
महेश्वरान् सुवर्णमयान् विधाय दद्यात् । तेषां लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्ड  
दाने तेभ्यो दक्षिणादानं ब्राह्मणभोजनं स्वस्तिवाचनञ्च कार्य्यं,  
देशिकं पूर्व्ववत् संपूज्य ऋत्विजावपि पूजयेत् ।

पुण्याहवाचकान् विप्रान् पूर्व्ववत् पूजयेद्बधः ।

इति वातुलोक्तेः ।

एवं कृतेन लभते सर्व्वयज्ञफलं नरः ।

सर्व्वान् कामानवाप्नोति निर्व्वीणं चाधिगच्छति ॥

इति ब्रह्मविष्णुमहेश्वरदानं ।

अथ त्रिमूर्त्तिदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

स्ततउवाच ।

अष्टच्छन्मनयः सर्व्वे नैमिषारण्यवासिनः ।

उग्रश्रवमसामीनं रोमहर्षणमादरात् ॥

उक्तानि भवतास्माकं दानानि विविधानि च ।

मूर्त्तिदानञ्च नोक्तं वै त्वया ब्रह्मविदाम्बर ॥

कदा वा कुत्र वा कार्य्यं यथा वा धर्ममाधनं ।



बृहि त्वं सर्वधर्मज्ञ दानशुश्रूषवोवयं ॥  
 इत्येवमुक्तो बलिभिः शौनकप्रमुखस्तथा ।  
 उवाच दानमहात्म्यं मुनीनां सूतनन्दन ॥  
 शृण्वन्तु मुनयः सर्वं दानं सर्वार्थसिद्धिदं ।  
 सर्वपापहरं यच्च मङ्गल्यं सर्वमुक्तिदं ॥  
 पुरा देव युगे देवः प्रोवाच मधुसूदनः ।  
 स्वनाभिकमलस्थाय विरिञ्चये महात्मने ॥  
 तथाहमपि वः सर्वं वदामि शृणुतानघाः ।  
 तिमूर्त्तिदानं दानानामुत्तमोत्तममुच्यते ॥  
 विपुवत्ययने वापि चन्द्रसूर्यग्रहादिषु ।  
 नित्यं वा पञ्चदश्याञ्च जन्मर्क्षेषु समाचरेत् ॥  
 देवालये नदीतीरे पुण्येष्वायतनेषु च ।  
 गृहे वा कारयेद्दानं पञ्चभूमिः शुचिर्भवेत् ॥  
 चतुरस्रां समां भूमिं गोमयेनोपलेपयेत् ।  
 तत्राक्षताभिर्विकिरेत् पुष्पाञ्जलीन् समन्ततः ॥  
 तत्रैकहस्ता द्विहस्ता वा त्रिगुणदैर्घ्यतः स्मृता ।  
 त्रिवेदिका भवेत्तिर्यक् श्वेततण्डुलमिश्रिता ।

ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान् मुरारि  
 हिरण्यमास्तत्र निवेशनीयाः ।  
 चतुर्भुजाः स्वायुधभूषणाढ्या  
 किरीटिनश्चापि यथा क्रमेण ॥  
 ब्रह्मादिलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।  
 स्नानार्थपाद्याचमनीय वस्तु

गन्धादिभिस्तानभिपूज्य भक्त्या ।  
 प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः ।  
 प्रणम्य चोदास्य ततःप्रदद्यात्  
 प्रत्येकमेवं बहुदानपूर्वम् ॥  
 संपूज्य दातव्यमनुक्रमेण  
 त्वया जगत्सृष्टिकृता स्वमतत् ।  
 त्वमेव सर्वस्य पितामहोऽमि  
 त्वमेव कर्त्ता जगतां विकर्त्ता ॥  
 त्वमेव धाता जगतां विधाता  
 त्वत्सम्प्रदानादनघो यथाहं ।  
 त्वया च सायुज्यमुपैति देव  
 तथा कुरु त्वं शरणं पपन्ने ॥  
 मयि प्रभो देववरप्रसादं  
 त्वया जगत्ह्याप्तमिदं समस्तं ।  
 त्वं विष्णुरित्येव वदन्ति सन्तः  
 त्वत्स्थानि सर्वाणि वदन्ति देव ॥  
 स्वया धृतं विश्वमनन्तमूर्त्तं  
 त्वत्संप्रदानादनघो भवामि ।  
 यथा जगत् कारणकारणेश  
 तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने ॥  
 मयि प्रभो देववर प्रसादं  
 त्वया मराणाममृतं विधाय ॥  
 हालाहलं संहतमेव यस्मात्

तथासुराणां त्रिपुरञ्च दग्धं ।  
 एकेषुणा लोकहितार्थमीश  
 त्वद्रूपदानादहमप्यशेषं ॥  
 दोषैर्विसृक्तांस्तु गणान् प्रपद्ये  
 तथा कुरु त्वं शरणं प्रपन्ने ।  
 मयि प्रभो देववर प्रसादं  
 इत्येव मुक्ता विधिवद्दाति ॥  
 स याति सायुज्यमथ तिमूर्त्तिः  
 यः कारयेद्दिप्रवराय तस्मै ।  
 सुवर्णसंख्यागणितं हिरण्यं  
 दद्याच्च वासीयुगमादरेण ॥  
 तथा कृतेऽयं लभते फलं तत् ।

इति तिमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ त्रिपुरुषदानविधिः ।

मृत्युञ्जयात् ।

सुवर्णरत्तिकानाञ्च शतेनैकेन शक्तितः ।  
 कार्योर्व्रह्माथ विष्णुश्च शङ्करश्च तथैवच ।  
 पलद्वादशमानेन पीठं लोहेन कारयेत् ।  
 देवानां स्थापनार्थाय चक्रवर्त्यरिमण्डलं ।  
 तत्र ब्रह्मादयः स्थाप्या यमदूतं पुरीन्यसेत् ।  
 चतुर्भुजश्चतुर्बाहुः पद्महस्तः पितामहः ।  
 शङ्खरोहिभुजः शूली वृषारूढस्त्रिलोचनः ।

विष्णुश्चतुर्भुजश्चक्रो गदागरुडवाहनः ।  
 यमदूतः पाशपाणिर्दण्डवान् विरुताननः ।  
 स तु लोहमयः कार्थ्योभौती वडडवाग्रतः ।  
 ततो विधाय देवानां पृजां पुष्पफलादिभिः ।  
 यजमानः करे खड्गं गृहीत्वा निशितं नवं ।  
 इदं शिरश्चिन्नघ्नीति दूतस्यास्य दुरात्मनः ।  
 इत्युच्चार्य शिरश्चित्वा दूतस्य यमदिङ्खः ।  
 ततश्चतुर्भिविप्रैस्तु कार्यं ब्राह्मणवाचनं ।  
 ततो ब्रह्मादिदेवानां दानं कुर्यात् प्रयत्नतः ।  
 देवालये गृहे वापि तीर्थे वान्यत्र कुत्रचित् ॥  
 ब्राह्मणाय तु तान् दद्यात् दिव्याङ्गाय च शीलिनः ।  
 सुवर्मादक्षिणायुक्तान् ब्रह्मादोननुपूर्वशः ।  
 अपमृत्युभयात् तस्ती योदद्याद्देवतात्रयं ।  
 तस्य मृत्युर्विनश्येत् दानादस्मान्न संशयः ।  
 मृत्युना गृह्यमाणोपि जीवत्येव नरः स्फुटं ॥  
 चामौकरप्रतिकृतिद्वितयं विधाय  
 ब्रह्मादिदानमिह यः पुरुषः करोति ।  
 रोगान्निरस्य संकलानपि दुर्निवारान्  
 त्रैवापमृत्युभयमेति नरः कदाचित् ॥

इति पुरुषत्रयदानविधिः ।

अथ चतुर्भुक्तिदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

ऋषयः सत्रमासौना नैमिषारण्यवासिनः ।  
 उग्रश्रवस-मासीनं पप्रक्षुर्मुनिसत्तमाः ।  
 रोमहर्षणसूनु त्वं सर्वज्ञानमहार्खवः ।  
 इत्युक्तोमुनिभिः सूतः प्रोवाच वदताम्बरः ।  
 यथाह भगवान् ब्रह्मा नारदस्य पितामहः ।  
 शृणु नारद भद्रन्ते दानं सर्वाघनाशनं ।  
 धर्मशुश्रूषवः सर्वं वयन्त्वत्तो महामते ।  
 अनायासेन केनेवं संसाराब्धिं समुत्तरेत् ॥  
 नरः प्रवूहि दानं वा व्रतम्बा श्रुतमेव वा ।  
 इत्युक्तोमुनिभिः सूतः प्रोवाच वदताम्बरः ।  
 यथाह भगवान् ब्रह्मा नारदस्य पितामहः ।  
 शृणु नारद भद्रन्ते दानं सर्वाघनाशनं ।  
 चतुर्भूतिविधानन्तत् स्त्रीणां मङ्गल्यकारणं ।  
 धन्यमारोग्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदं ।  
 पुत्रदं श्रीकरं पुण्यमभीष्टफलदं शुभं ।  
 सर्वेषु पुण्यकालेषु चन्द्रसूर्यग्रहादिषु ।  
 देवागारादिदेशेषु गृहे वा दानमाचरेत् ।  
 चतुरस्रां समां भूमिं लिप्तां-गोमयवारिणा ।  
 चतस्रस्तत्र लेखाः स्युः प्राच्योदीच्यश्च ताः समाः ।  
 नव कोष्ठानि तत्र स्युः कोणकोष्ठानि वज्रयेत् ।  
 तत्र तेषु च मूर्त्तींश्च चतुर्दिक्षु निवेशयेत् ।  
 प्रागाद्युत्तरपर्यन्तं जातरूपमयीः शुभाः ।  
 श्वेततण्डुलपद्मेषु पुष्पवत्सु निवेशयेत् ।

पुरतो वासुदेवञ्च सङ्कर्षणमतः परं ।  
 प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च चतुर्भूर्त्तिं यथाक्रमं ।  
 शङ्खचक्रगदापाणिं पीतवाससमच्युतं ।  
 श्रीवत्साङ्गचतुर्वर्हं केयूरमुकुटोज्ज्वलं ।  
 नीलाम्बरधरं देवमनन्तं मुशलायुधं ।  
 सङ्कर्षणं चतुर्वर्हं कटकादिविभूषणं ।  
 प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च शङ्खचक्रगदाधरौ ।  
 पीतश्वेताम्बरधरौ केयूरादिविभूषितौ ।  
 एवं कृत्वा चतुर्भूर्त्तिं चतुर्वर्हं समर्चयेत् ।  
 पलस्यार्हात् सुवर्सेन यथाशक्ति विनिर्मितं ।  
 प्रागाद्यत्तरपर्यन्तं देवानामर्चनक्रमः ।  
 स्वस्वमन्त्रेण देवानामाराधनमनुक्रमात् ।  
 स्नानं वासोयुगं चार्घ्यपाद्यमाचमनीयकं ।  
 गन्धसुमनसौ धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।  
 धारात्रयं शुद्धेजले स्ताम्बूलञ्च निवेदयेत् ।  
 परितोलोकपालांश्च गन्धादिभिरथार्चयेत् ।  
 त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।  
 उद्वास्य विप्रानाराध्य दद्यान्मन्त्रमुदीरयेत् ।  
 नमोस्तु वासुदेवाय जगतां पतये नमः ।  
 तव सङ्कीर्त्तनाद्दानाद्ध्रेयः स्यात्तु सदा मम ।  
 सङ्कर्षण नमस्तेऽस्तु जगत्स्थित्यन्तकर्म्मणे ।  
 तव देव प्रदानेन सर्वपापहरं भवेत् ।  
 प्रद्युम्नायाखिलेणाय भक्तानां दुःखहारिणे ।

नमोऽस्तु देवदेवाय भक्तानामार्त्तिहारिणे ।  
 सदा नमोऽस्तु जगतः सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे ।  
 अनिरुद्धाय देवाय विष्णवे परमात्मने ।  
 यदि दद्याच्चतुर्मूर्त्तिं श्रद्धायुक्तस्तु नारद ।  
 नारौ वा पुरुषोवापि यथोक्तं फलमश्रुते ।  
 इत्याह नारदायैवं ब्रह्मालोकपितामहः ।  
 यथा ममापि तत्सर्वं अब्रवन्मुनिसत्तमाः ।

इति चतुर्मूर्त्तिदानविधिः ।

अथ आयुष्करदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

सूतउवाच ।

अथ दानं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।  
 आयुष्करमिति प्रोक्तमारोग्यं सर्वसिद्धिदं ।  
 यत्र साधनसिद्धः स्यात्तत्र दानं समाचरेत् ।  
 मूढौ गोमयलिप्तायां दक्षिणीत्तरतः शुभं ।  
 निधाय तत्र पाणिभ्यां पृष्ठांनि सिततण्डुलैः ।  
 चत्वारि तेषु हेमानि मण्डलानि निवेशयेत् ।  
 सौवर्णांश्च ततो देवानर्चयेच्च यथाक्रमं ।  
 पूर्वमात्मभवं तत्र विष्टरश्वसंयुतं ।  
 कृत्तिवामसमौगानं वज्रपाणिं शतक्रतुं ।

आत्मभूर्ब्रह्मा, विष्टरश्वा विष्णुः ईशानः शिवः प्रमिदः एतेषां  
लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, एते च यथाशक्ति सुवर्णमया विधा-  
तव्याः ।

गन्धादिभिरथाभ्यर्च्य दक्षिणोत्तरतः क्रमात् ।

प्रत्येकमेकं विप्रेभ्यो दद्यादाराध्य भक्तितः ।

तं तं देवमिति ध्यात्वा मन्त्रानेतानुदाहरेत् ।

संप्रीयतां मे भगवानात्मभूरित्युदीरयेत् ।

संप्रीयतां जगद्गर्वापी भगवान् विष्टरश्वाः ।

संप्रीयतां मे भगवान् कृत्तिवासा इति ध्रुवं ॥

संप्रीयतां मे भगवान् वज्रपाणिः शतक्रतुः ।

एवमाह पुरा ब्रह्मा नारदाय सुरर्षये ।

प्रोक्तं मयापि तत्सर्वं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः ।

इत्यायुष्करदानविधिः ।

अथ पञ्चमूर्त्तिदानं ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

अथ दानं प्रवक्ष्यामि पञ्चमूर्त्तिरिति श्रुतं ।

यत्कृत्वा पुरुषः स्वी वा सर्वमिदमवाप्नुयात् ।

यत्पापं मनसा वाचा कर्मणा च पुरा कृतं ।

जन्मान्तरसहस्रेषु तन्नाशं याति सर्वतः ।

यथा हेतुं पुरा देवो नारदाय महात्मने ।

पृष्टस्तेनापि भगवानजयोनिः पितामहः ॥

तथाहमपि तत्सर्वं युष्माकं मुनिपुङ्गवाः ।



प्रवक्ष्यामि महादेवं पञ्चमूर्तिरिति श्रुतं ॥  
 शृणुष्व त्वं च देवर्षे दानं सर्वाधनाशनं ।  
 दानमारोग्यमायुष्यं श्रीकरं भुक्तिमुक्तिदं ॥  
 चन्द्रसूर्यग्रहे वायु विषुवत्ययनादिषु ।  
 सर्वेषु पुण्यकालेषु गृहे वायतनेषु च ।  
 आचार्यं वरयेद्विप्रं तस्यानुज्ञामवाप्य च ।  
 विद्याविनयसम्पन्नं सर्व्वन्तेनैव कारयेत् ।  
 लेपयेत्तु समां भूमिं गोमयेनोदकेन च ॥  
 चतस्रस्त्रय रेखाः स्युः प्राच्योदीच्यस्तु ताः समाः ।  
 त्रिहस्तमात्रास्ताः सर्वास्तत्र स्युर्नवकोष्ठकाः ॥  
 तत्र पञ्चैव संग्राह्या चतुष्कोणानि वर्जयेत् ।  
 तेषु पञ्चसु कोष्ठेषु प्रत्येकं कमलं न्यसेत् ॥  
 श्वेततण्डुलपुञ्जेषु अष्टपत्रं सकर्णिकं ।  
 तेषु तण्डुलपद्मेषु पञ्चमूर्त्तीर्निवेशयेत् ॥  
 सुवर्णनिर्मिताः पञ्च मूर्त्तीः कृत्वा विधानतः ।  
 ईशं सौवर्णमासीनं केयूरमुकुटोज्ज्वलं ॥  
 चतुर्बाहुमुदाराङ्गं कटकादिविभूषितं ।  
 दक्षिणे परशुं हस्ते सव्ये तु मृगपोतकं ॥  
 अभयं दक्षिणे सव्ये शूलं नेत्रत्रयं न्यसेत् ।  
 सद्योजातं वामदेवमघोरं पुरुषं तथा ॥  
 सुवर्णेनैव कुर्वीत प्रदानादर्हमानतः ।

सद्यं पश्चादुत्तरे वामदेवं

तथा चान्यदक्षिणे चाप्यघोरं ।

सद्यं, सद्योजातमित्यर्थः

तच्छब्दीक्तं पुरुषं पूर्वं कीष्टे ॥  
 तेषां मध्ये चैव मौशानमेव  
 स्नानं वस्त्रं चार्घ्यपाद्याचमनीयं ।  
 गन्धं पुष्पं धूपदीपौ हविष्यं  
 अभ्यर्चिताः पञ्चमूर्त्तिः क्रमेण ॥  
 मन्त्रैः पञ्च ब्रह्माभिर्मानपूर्वं  
 संपूज्य चैवं त्रिधिनोदितेन ।  
 सव्यादिदेवांश्च यथा क्रमेण  
 सद्योजातादिलक्षणमुक्तं  
 लिङ्गपुराणीकृतिलपर्वतदाने,

पञ्च ब्राह्मणाः सद्योजातादि

मन्त्राः, तैत्तिरीयाणां प्रसिद्धाः ।  
 ते नैव विप्रेण च सर्वमेतत्  
 कृत्वैव दानं स्वयमेव कुर्यात् ॥

दानकाले तु संप्राप्ते दाता नारी नरोथ वा ।  
 स्नापितो गुरुणा तेन मन्त्रपूतैः कुशोदकैः ॥  
 अभ्यर्च्य विप्रङ्गन्थाद्यैर्मन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥  
 प्रत्येकमेका दातव्या देवमूर्त्तिरनुक्रमात् ।  
 नमोस्तु सद्योजाताय भवाय भवसङ्गिने ॥  
 भवभङ्गो भवेन्मह्यन्तव रूपप्रदानतः ।  
 सोमाय वामदेवाय शिवाय शिवरूपिणे ॥  
 सदा मे शिव मेवास्तु तव रूपप्रदानतः ।

नमोघोराय घोराय जगत्संहतिकर्मणे ॥  
 शरणं त्वां प्रपन्नोहमशङ्कं मम शङ्कृत् ।  
 पुरुषाय पुराणाय हराय वरदाय च ॥  
 तस्य रूप प्रदानाम्ने श्रेयसे स्तु नमोऽस्तु ते ।  
 ईशानोजगतामीशो देवानामभयङ्करं ॥  
 रक्ष त्वं शेषभूतानामीशो मां शरणं गतं ।  
 त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥  
 प्रणिपत्य ततोदद्यादेभिर्मन्त्रैर्यथाक्रमं ।  
 मध्यमङ्गरवे दद्यादन्यस्मै वा प्रदापयेत् ॥  
 दक्षिणाङ्गरवे दद्यात् सुवर्णञ्चैव वाससी ।  
 एतन्नरोथवा नारी नारदेह समाचरेत् ॥  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।  
 इत्येव मृषयोदानं नारदाय चतुर्मुखं ॥  
 यथोवाच तथा प्रोक्तं मया वै पञ्चमूर्त्तिकं ।

इति पञ्चमूर्त्तिदानविधिः ।

अथ दिग्दानं ।

विष्णुधर्मीत्तरात् ।

कार्त्तिक्यामग्निदेवे भे विष्णोर्ब्रह्मान्तकस्य वा ।  
 प्राच्यादि कुर्वीत दिग्द्युतस्रः पृथिवीयुताः ॥  
 स्त्रीवेषाश्चैव कर्त्तव्याः पूर्णकुम्भकराः शुभाः ।  
 गोरूपा पृथिवी कार्या सर्वलक्षणसंयुता ।

कृत्वा कमलसंस्थानाः सुवर्णद्वितयेन तु ॥  
 पूजयित्वा द्विजान् पञ्च सुवस्त्राभरणैस्ततः ।  
 ताम्रपात्रं दत्ते कृत्वा कदल्याः पीठसंयुताः ॥  
 योददाति प्रदत्ता स्यात् पृथिवी तेन पार्थिव ।  
 पितरः पितृलोकस्था देवलोके दिवौकसः ॥  
 संप्रीणयन्ति तं तुष्टा वसुपुत्रधनेप्सितैः ।  
 अमापमन्नं भुञ्जीत दत्तैर्द्विधिपूर्वकं ॥

इति दिग्दानविधिः ।

अथ पञ्चदेवत्यदानं ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

अथ दानं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनयोऽमलाः ।  
 पञ्चदेवत्यमित्युक्तं नारदाय स्वयम्भवा ॥  
 शरीरारोग्यमायुष्यं श्रीकरं पापनाशनं ।  
 यत् कृत्वा पुरुषः स्त्री वा मर्त्यमायुरवाप्नुयात् ॥  
 पुण्यकालेषु मर्त्येषु जन्मर्क्षेषु विशेषतः ।  
 पुण्यदेशे गृहे वाथ नित्यं वा दानमाचरेत् ॥  
 दुःस्वप्नाद्भुतदृष्टो तु मर्त्यदोषप्रशान्तये ।  
 दानमेतत्समं कुर्याच्छ्रद्धया परया युतः ॥  
 स्नात्वा कुशोदकेः प्रातर्होतवासाः प्रसन्नधीः ।  
 संपूज्य विप्रं विद्वांसन्तस्यानुज्ञामवाप्य च ॥  
 अग्निः सोमश्च वरुणस्तथा देवी सरस्वती ।  
 अग्निं विष्णुरिति प्रीतो ब्राह्मणाः पञ्च देवताः ॥

अग्न्यादिलक्षणमुक्तम्, ब्रह्माण्डदाने ।

सरस्वती लक्षणमुक्तं सरस्वतीदाने ।

अग्निविष्णोस्तु लक्षणमपराजितेनोक्तं ।

अग्निविष्णू प्रकर्त्तव्यौ कमले युगपत्स्थितौ ।

तत्र शुक्पाणि रग्निस्तु साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥

गदापद्मधरो विष्णुः शङ्खचक्रगदास्तथेति ।

एताः पञ्च समुद्दिश्य विप्रानाराध्य दापयेत् ॥

प्रत्येकं वाससी शुभे ससुवर्णे यथा क्रमं ।

संप्रीयतामयं देवो भगवान् सीमइत्यपि ॥

तत्रोपदेष्ट्रे विप्राय तत् समां दक्षिणां ददेत् ।

पुण्याहं स्वस्तिमृद्विच्च वाचयेत्पञ्चभिर्द्भिर्जैः ।

तेषामपिच दातव्या दक्षिणा च यथार्हतः ॥

इति पञ्चदैवत्वदानविधिः ।

अथ लोकपालाष्टकदानं ।

लिङ्गपुराणात् ।

लोकपालाष्टकं दिव्यं साक्षात्परमदुर्लभं ।

सर्वसंपत्करं गुह्यं परचक्रविनाशनं ॥

स्वदेशरक्षणं नित्यं गजवाजिविवर्द्धनं ।

पुत्रवृद्धिकरं पुण्यं गोब्राह्मणहितावहं ॥

पूर्वोक्तदेशकाले तु वेदिकोपरिमण्डले ।

मध्ये शिवं समभ्यर्च्य यथान्यायं यथाक्रमं ॥  
 दिग्विदित्तु प्रकर्त्तव्यं स्थण्डिलं वालुकामयं ।  
 अष्टौ विप्रान् समाह्वय वेदवेदाङ्गपारगान् ॥  
 जितेन्द्रियान् कुलोद्भूतान् सर्वलक्षणसंयुतान् ।  
 शिवाभिमुखमासीनानहतेष्वम्बरेषु च ॥  
 वस्त्रैराभरणैर्दिव्यैर्लोकपालान् स्वमन्त्रकैः ।  
 गन्धैः पुष्पैः सधूपैश्च ब्राह्मणान्यार्चयेत् क्रमात् ॥

अत्र कुण्डमण्डलमण्डपवेदिकाविधानादि लिङ्गपुराणोक्त  
 तुलापुरुषदानवद्देदितव्यं अग्निकार्यमत्र शिववेदिकायाञ्च परितः  
 स्थण्डिलाष्टकं विधाय तत्र यथाशक्ति स्वर्णनिर्मितान् अष्टौलोक  
 पालान् शिवाभिमुखान् नूतनवस्त्रेष्वामीनान् संस्थाप्य वस्त्राद्यैः  
 संपूज्य ब्राह्मणान्यार्चयेत् ।

लोकपाललक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

पूर्वतोहोमयेदग्नौ लोकपालाष्टमन्त्रकैः ।  
 समित्पृताभ्यां होतव्यमग्निकार्यक्रमेण तु ॥  
 एवं हुत्वा विधानेन ब्राह्मणान्वेदपारगान् ।  
 यजमानः समाह्वय सर्वाभरणभूषितान् ॥  
 कृत्वा तान् पूजयित्वाथ द्विजेभ्यो दापयेद्दनं ।  
 पृथक् पृथक् स्वमन्त्रैश्च दशनिष्कञ्च भूषणं ॥  
 दशनिष्केण वस्त्राद्यमामनं कम्बलं पृथक् ।  
 स्नापनं तत्र कर्त्तव्यं शिवस्य विधिपूर्वकं ।  
 दक्षिणा च प्रदातव्या यथाविभवविस्तरं ॥

अग्निकार्यक्रमः अग्निमुखादि पूर्याहुत्यन्तः, कामिकेतु एक-  
स्मिन् स्थण्डिले वायु कुण्डे वा होममाचरेत् । वातुले हि शक्रानु-  
पूर्वदिग्भागे देशिकोहोममाचरेत् ।

लोकपालाष्टमन्त्रैस्तु पृथगष्टोत्तरं शतं ।

समित्पृष्टताभ्यां होतव्यमन्त्रे पूर्याहुतिं ददेत् ॥

दशनिष्क्रेणैति, तान् लोकेशान् विप्रान् यजमानोर्चयित्वा  
प्रत्येकं दशनिष्कमितं भूषणं तत्सम्मितहिरण्यात्मकदक्षिणया सह-  
वस्त्रादि च दद्यात् दक्षिणाचेति, गुरुदक्षिणा,

सा च यथा विभवं देया ।

कामिके तु ।

दक्षिणा दशनिष्का स्याद्भूपणैश्च समन्विता ।

वातुले तु गुरुनवमिभ्यः

प्रत्येकं शतनिष्का दक्षिणीक्ता ।

एतद्यः कुरुते दानं लोकेशानान्तु भक्तितः ।

लोकेशानं स्थिरं स्थित्वा स्थानेषु स सुखं नरः ।

कल्पं शिवपुरे स्थित्वा सार्वभौमो भवेद्भुवि ॥

इति लोकपालाष्टकदानविधिः ।

अथ ब्रह्माण्डपुराणात् ।

शृणु नारद भद्रन्ते दानं सर्वाधनाशनं ।

मर्म्ममङ्गल्यमायुष्यमारीर्यं श्रीकरं शुभं ॥

दानानामुत्तमं ह्येतत्सर्वमिदिकरं परं ।  
 करोति दानं नारो वा मायुज्यं ब्रह्मणी व्रजेत् ॥  
 विषुवत्ययने राहोर्ग्रहणे चन्द्रमर्थयाः ।  
 अन्येषु पुण्यकालेषु जन्मर्क्षेषु विशेषतः ॥  
 देवालये नदीतीरे गृहे वा दानमाचरेत् ।  
 पुण्यदेशेषु सर्वेषु पुराणीकेषु नारद ॥  
 चतुरस्यां समां भूमिं लिप्त्वा गोमयवारिणा ।  
 षट्करञ्चाष्टहस्तम्बा दश द्वादश वा करान् ॥  
 प्राच्योदीच्य कर्त्तव्या रेखाश्चतसृकाः समाः ।  
 नव कीष्ठानि तत्र स्युः श्वेततण्डुलपुञ्जकैः ॥  
 सितैरष्टदलै र्युक्तान् कमलान्विन्यसेकुम्भान् ।  
 जातरूपभयं देवं जगत्कर्त्तारमव्ययं ।  
 तेषां मध्यमकीष्ठे तु कमलं विनिवेशयेत् ॥

कमलस्थं ब्रह्माणं ।

इन्द्रमग्निं यमश्चैव निर्ऋतिं वरुणं तथा ।  
 वायुं सोमञ्च रुद्रञ्च प्रागादिषु यथाक्रमं ॥  
 जातरूपमयान् देवानष्टौ स्वायुधसंयुतान् ।  
 विपला वा सुवर्णात्तु यथाशक्ति विनिश्चितान् ।  
 ब्रह्मणीभिर्मुखान् सर्वान् सर्वेषु विनिवेशयेत् ॥  
 जातरूपमयान्, हिरण्मयान्, ब्रह्मणी लीकपालानाञ्च लक्षण  
 मुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।  
 प्रत्येकं त्रामसाविश्य संप्रोच्य कुशवारिणा ।



योऽसौ कारयिता विप्रस्त्वे वसेत्तत् समाचरेत् ॥

दानकाले तु संप्राप्ते दाता स्नात्वा कुशोदकैः ।

प्रसन्नचित्तवदनः परमेष्ठिपुरोगमान् ॥

स्वनाममन्त्रै रभितो नमोन्तै

राराध्य गन्धादिभिरादरेण ।

विप्रांस्तथाभ्यर्च्य यथाक्रमेण

संप्रीयतां मे त्वयमेव मुक्ता ॥

योऽसौकारयिता विप्रस्तस्मै दद्यात्तु दक्षिणां ।

सुवर्णसंख्यागणितं हिरण्यञ्चैव वाससी ॥

प्रोक्तान्तु देवर्षिदानं लोकपालाह्वयं मया ।

क्रमान्यच्छोतुमिच्छा ते तदिदं वद साम्प्रतं ॥

इति लोकपालदानविधिः ।

अथ रुद्राष्टकदानं ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

शृणु देव मुने गुह्यन्दानं सर्व्वार्थदं नृणां ।

रुद्राष्टकमितिख्यातं तत्पत्नीपुत्रसंयुतं ॥

मध्ये चतुर्भस्त्रोपेतमिति ते भगवान् हरिः ।

यथाह पूर्व्वं तत्तत्त्वं वदामि तव नारद ॥

रुद्रो भवश्च सर्व्वश्च ईशः पशुपतिस्तथा ।

भौम उग्रो महादेव एते रुद्राः प्रकीर्त्तिताः ॥

जटिलाश्चर्मवसनाः सर्व्वे खट्वाङ्गशूलिनः ।

तेषां भार्याश्च पुत्राश्च नामतः कथयामि ते ॥  
 सौवर्चला-ङ्गवादाच विकेयीच शिवा तथा ।  
 स्वाहा दिशा च दीक्षा च रोहिणी च तथा क्रमात् ॥  
 ताश्च स्त्रीवेषधारिण्यः सर्वाभरणभूषिताः ।  
 रुद्रपत्न्य इमाद्याष्टौ पुत्राश्च ऋणु नारद ॥  
 शनैश्चरश्च शुक्रश्च लोहिताङ्गो मनोजवः ।  
 वसन्तः स्वर्गः सन्तानोबुधश्चैव यथा क्रमं ।  
 ते वालवेषाः कर्त्तव्याः शिखिनो दण्डपाणयः ॥  
 पुण्यकाले तु सम्प्राप्तिं नित्यम्वा भूतिमिच्छता ॥  
 जन्मर्त्तुषु विशेषेण दातव्यं मुनिसत्तमः ॥  
 चतुरस्रां ममां भूमिं लिप्त्वा गोमयवारिणा ।  
 चतस्रस्तत्र रेखाः स्युः प्राक्तित्यक्चैव सर्वतः ॥  
 हस्तमात्रं द्विहस्तम्वा नवकोष्ठसमन्वितं ।  
 स्थण्डिलं तत्र पद्मानि तण्डुलैश्च प्रकल्पयेत् ॥  
 ब्रह्माणं मध्यमे कोष्ठे, सौवर्णं विनिवेदयेत् ।  
 छन्दोदेवीञ्च तत् पार्श्वे तदर्द्धेन प्रकल्पयेत् ॥

छन्दोदेवीञ्च, गायत्रीं

तयोर्लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने,

सौवर्णानष्टौरुद्रांश्च ब्रह्मार्द्धेन विनिर्मितान् ।  
 प्रागाद्युत्तरपूर्वांश्च परितः परिकल्पयेत् ॥  
 तस्याप्यर्द्धेन सौवर्णान् प्रत्येकं रुद्रपार्श्वतः ।  
 तेषां देवीञ्च पुत्रांश्च कल्पयित्वाञ्चयेत् पुमान् ॥

स्वस्वमन्त्रेण पूजा स्यात् नमस्कारयुतेन च ।  
 ब्रह्मादीन् पूजयेद्बन्ध-पुष्प-धूप-प्रदौ-पकैः ॥  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा प्रणम्य च यथा क्रमं ॥  
 प्रत्येकमेकं प्रागादीन् विप्रान् संपूज्य दापयेत् ।  
 पूजयित्वापदेशारं दद्यान्मन्त्रेण मध्यमं ॥  
 प्रीयतां भगवान् ब्रह्मा परमेष्ठी पितामहः ।  
 एवं रुद्राष्टकोपेतं दानं दद्याद्यथाविधि ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिमवाप्स्य च ।  
 आयुरारोग्यमयुक्तः पुत्रवान् धनवान् सुखी ।  
 भुक्ता भोगान् यथेच्छञ्च स्वर्गं मोक्षञ्च विन्दति ॥

इति रुद्राष्टकदानविधिः ।

अथ ग्रहदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

सूत उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानं सर्वार्थमिद्धिदं ।  
 पुरुषो वायवा नारो स्वर्गं मोक्षञ्च विन्दति ॥  
 नक्षत्र-ग्रह-पीडासु दुःस्वप्नाद्भुत दर्शने ।  
 निमित्तानन्तरं कार्यं नैमित्तिकमिति स्थितिः ॥  
 यथाह नारदायैवं ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 तथाहमप्यशेषं वी वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः ॥

ब्रह्मीवाच ।

ग्रहदानमथो वक्ष्ये सर्वसिद्धिकरं परं ।

सर्वशान्तिकरन्त्राणां सर्वपापप्रणाशनं ॥  
 विषुवत्ययने राहुग्रहणे शशिसूर्ययोः ।  
 जन्मर्त्तं सोमवारि वा पञ्चदश्यां तथैव च ॥  
 पुण्यकालेषु सर्वेषु पुण्यदेशे विशेषतः ।  
 ग्रहदानन्तु कर्त्तव्यं नित्यं त्रयोऽभिकाङ्क्षिणा ॥  
 हस्तमातां द्विहस्ताम्बा त्रिहस्ताम्बाश्च नारद ।  
 चतुरस्यां ममां भूमिं गोमयेनानुलेपयेत् ॥  
 रेखाः प्राच्य उदीच्यश्च स्युश्चतस्रस्तथा समाः ।  
 नवकोष्ठेषु पञ्चानि विन्यसेत् श्वेततण्डुलैः ॥  
 आदित्य-चन्द्रमा भीमो बध-जीव मितार्कजाः ।  
 राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकसुखावहाः ॥  
 एषां हिरण्यरूपाणि कारयित्वा यथाविधि ।  
 त्रिनिष्केणाश्रवा कुर्यात् यथाशक्त्या पृथक् पृथक् ॥  
 आदित्यं मध्यमे कोष्ठे दक्षिणे ऽङ्गारकं न्यसेत् ।  
 उत्तरे तु गुरुं विद्यात् बधमुत्तरपूर्वके ॥  
 भार्गवं पूर्वतो न्यस्य सोमं दक्षिणपूर्वके ।  
 पश्चिमे ऽकेसुतं न्यस्य राहुं पश्चिमदक्षिणे ॥  
 पश्चिमोत्तरतः केतुं मन्निवेश्य यथाविधि ।  
 तद्वर्गं गन्धपुष्पाद्यैरर्चयेत् स्वस्वमन्त्रकैः ॥  
 दान शूद्रोऽथवा कुर्यात् स्त्री वा तत्र तु नारद ।  
 भूलेपनादि यत् कार्यं सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥  
 स्नानकाले तु सम्प्राप्ते स्नात्वा तिलकुशादकैः ।  
 प्रयतो यजमानस्तु धौतवस्त्रः प्रमन्त्रधौः ॥

अञ्चयित्वा स्वयं दद्यादहस्करमुखान् ग्रहान् ।

प्रत्येकमेकं विप्रोऽसौ स्वस्वमन्त्रमुदीरयेत् ॥

पद्मामनः पद्मकरोद्दिवाहुः

पद्मद्युतिः समतुरङ्गवाहः ।

दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी

मयि प्रसादं विदधातु देव ॥

श्वेताम्बरः श्वेतविभूषणश्च

श्वेतद्युतिर्दण्डधरोद्दिवाहुः ।

चन्द्रोऽमृतात्मा वरदः किरीटी

श्रेयामि महां विदधातु देव ॥

रक्ताम्बरो रक्तवपुः किरीटी

चतुर्भुजोमेषगमोगदामृत ।

धरासुतः शक्तिधरश्च शूली

मदा मम स्याद्वरदः प्रशान्तः ॥

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी

चतुर्भुजोदण्डधरश्च हारी ।

चर्मामिधृक् सोमसुतः मदा मे

मिन्हाधिरूढीवरदो वधश्च ॥

पीताम्बरः पीतवपुः किरीटी

चतुर्भुजोदेवगुरुः प्रशान्तः ।

दधाति दण्डञ्च कमण्डलुञ्च

तथाक्षत्रं वरदोऽस्तु मङ्गलं ॥

श्वेताम्बरः श्वेतवपुः किरीटी

चतुर्भुजोदैत्यगुरुप्रशान्तः ।  
 तथाक्षसूत्रञ्च कमण्डलुञ्च  
 जयञ्च विभ्रद्वरदोस्तु मह्यं ॥  
 नीलदातिः शूलधरः किरीटी  
 गृध्रस्थितस्त्राणकरोधनुष्मान् ।  
 चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रशान्तो  
 वरप्रदो भैस्तु स मन्दगामी ॥  
 नीलाश्वरोनीलवपुः किरीटी  
 करालवक्त्रः करवालशूलो ।  
 चतुर्भुजश्चर्मधरश्च राहुः  
 सिंहासनस्थीवरदोस्तु मह्यं ॥  
 धूम्रोहिवाहुर्व्वरदीगदाभृत्  
 गृध्रासनस्थो विकृताननश्च ।  
 किरीट-केयूर-विभूषिताङ्गः  
 मदास्तु मे केतुगणः प्रशान्तः ॥

इत्युक्त्वा दापयेत् सर्वान् आदित्याद्यात्रवग्रहान् ।  
 पुरुषोवाथ नारी वा यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥  
 मध्यमं गुरवे दद्यादन्यच्चै वा प्रदापयेत् ।  
 अथ वा दक्षिणा देया सुवर्णं वामसौ शुभे ॥

सप्तउवाच ।

इत्याह भगवान् ब्रह्मा नारदाय महात्मने ।  
 तथाहमब्रुवं दानं यस्माकं मुनिसत्तमाः ॥

इति नवग्रहदानविधिः ।

अथ सम्पत्करदानं ।

ब्रह्माण्ड पुराणे ।

अथापरं दानमहं ब्रवीमि  
 शृण्वन्तु सर्वे मुनयः समेताः ।  
 सम्पत्करं दानमतीव पुण्यं  
 यस्मिन् कृते सम्पदोऽभ्येति जन्तुः ॥  
 यथा पुरा ऋषये नारदाय  
 जगत्कर्त्ता चाब्रवीद्दानमेतत् ।  
 आयुष्करं रोगहरन्तु पाप-  
 विनाशनं नाशकरं त्वघानां ॥  
 स्वर्गापवर्गो कुलपुत्रवृद्धिं  
 त्रियं तथा प्रददामीष्टसिद्धिं ।  
 हिरण्यदः प्राप्नुयाद्दीर्घमायु-  
 रित्यब्रवीदात्मभून्नारदाय ॥  
 अतः स्वर्णं द्विजवर्गहस्ते  
 दातव्यमेवात्महितं मुनीन्द्राः ।  
 कालेषु सूर्यग्रहणादिकेषु  
 तारिषु जन्मत्रितयेषु कार्यम् ॥  
 देशेषु देवायतनादिकेषु  
 ग्रहेषु वा रमते यत्र कुत्र ।  
 स्नात्वा प्रातस्तिनमिष्यैः कृगोदकैः

शुचिर्भूत्वा धौतवासाः प्रयत्नः ॥

संकल्प्य विप्रं विदुषं गुरुञ्च  
संगृह्य तस्यानुमतेन कार्य्यं ।

गव्येन भूमिं शकृता जलेन  
चालेपयेद्विशतिहस्तमात्रां ॥

तत्रैव रेखाञ्चतुरः समाःस्यः  
प्राच्यश्च तिर्यक्च यथोपदिष्टं ॥

नव कोष्ठानि तत्र स्युस्तेषु पूर्णानि तण्डुलैः ।  
निधातव्यानि पात्राणि वासोभिरभिवेष्ट्य च ॥  
पलस्यार्वाक् त्रिनिष्कोर्ध्वं यथाशक्ति विनिर्मितां ।  
दक्षिणोत्तरतो देवान् जातरूपमयान् न्यसेत् ॥

पाश्चात्यकोष्ठत्रितये तु मित्रं  
तथा च देवं वरुणञ्च सोमं ।  
चतुर्ध्वं खं मध्यमकोष्ठकेषु  
जगत् पतिं विष्णुमुमापतिञ्च ॥

दिवाकरं वृत्रहणञ्च वज्रिं  
संपूज्य सर्वान् विधिवत् क्रमेण ॥

अत्र मितलक्षणमाह विश्वकर्मा ।  
पद्मगर्भे समः कार्य्योमित्रः कमलसंस्थितः ।  
अजोऽतुलोविनालान्तविकचाम्भोजधृक् प्रभुः ॥

वरुणादिलक्षणमुक्तं ।

ब्रह्माण्डदाने ।



अभ्यर्त्तुं विप्रानपि गन्धवस्त्रैः  
 पयकं च दातव्यमनुक्रमेण ।  
 सम्प्रीयतां मेलयमेव मुक्त्वा  
 ततोदद्यात् सोदकपूर्वमत्र ॥  
 एकस्य चैकञ्च हिरण्यरूपं  
 प्रणामपूर्वं परिणीय सर्वान् ।  
 पात्राणि वासः परिधाय चैव  
 मतगङ्गलं सहिरण्यञ्च दत्त्वा ॥  
 अभोष्टमिदं सलभित सर्व-  
 मायुषमारीग्यमुपेति चाग्र ।  
 अथोपदेष्टुं गुरवे सुवर्णं  
 वामीयुगं दानममञ्च दद्यात् ॥  
 विप्रेस्तथावाचयेत् स्वस्तिवाच्यं  
 ततोदद्याद्दक्षिणां वाचकेभ्यः ॥

इति सम्पत्करदानविधिः ।

अथ दशावतारदानं ।

तत्र विश्वामित्रः ।

दानानामुत्तमं दानं हैमं विष्णोः स्वरूपकं ।  
 तस्मात् पुण्यार्थिना देया हैमो विष्णोः स्वरूपिका ॥  
 मत्स्यः कूर्मवीराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः ।  
 रामो रामश्च लणश्च बुद्धः कल्को च ते दश ॥  
 वामे गङ्गा गङ्गा दत्ते द्विभुजो मत्स्यरूपधृक् ।

नराङ्गिर्मत्स्यरूपो वा मत्स्यरूपो जनादेनः ॥

एतदेव कृष्णलक्षणं मत्स्यपदस्थानि कृष्णपदप्रवेशे सति ।

मधुपिङ्गलवर्णी च चतुर्विधायैर्धृतं ।

नराङ्गं शूकरास्यञ्च मनाक्पोनं समीपणं ॥

श्रीर्वासकूर्परस्या तु धरानन्ता पदानुगौ ।

एतद्रूपधरं देवं वराहं भक्तिमुक्तिदं ॥

ज्वलदग्निममाकारं सिंहवत् नराङ्गकं ।

दंष्ट्राकरालवदनं ललज्जिह्वं समीपणं ॥

वृत्ताक्षं जटिलं क्रुद्धमालौढं पीनवत्तमं ।

अभेद्यतीव्रनखरं वामीरुक्तदानवं ॥

तद्वदक्षोदारयन्तं कराभ्यां नखरैर्भृशं ।

गदाचक्रधरं हाभ्यां नरसिंहं जगत्प्रभुं ।

कुण्डोच्छ्रवधरो दिदीर्घामनः परिकीर्तितः ॥

क्षत्रान्तकरणं घोरमुदङ्गन् परशुं करे ।

जामदग्न्याः प्रकर्त्तव्यो रामोरीपाकणेक्षणः ॥

युवा प्रसन्नवदनः सिंहस्कन्धो महाबलः ।

आजानुवाहुः कर्त्तव्यो रामो बाणधनुर्धरः ॥

शङ्खचक्रधरः कार्यो नीलोत्पलदलकृषिः ।

रुणोदीर्घदिविवाहय मर्वदैव्यक्षयंकरः ॥

कषागवस्त्रमंत्रोतः स्कन्धममक्तचोवरः ।

पद्मामनस्यो दिभुजोऽध्यायी वृद्धः प्रकीर्तितः ॥

खड्गोद्यतकरः क्रुद्धो हयारूढो महाबलः ।

मेच्छोच्छेदकरः कल्को दिभुजः परिकीर्तितः ॥

यथाशक्त्या प्रकुर्वीत सुवर्णेन विजानता ।  
 ममेन षोडशेनैव समान्येतानि कारयेत् ॥  
 यथाशक्त्या प्रकुर्वीत सुवर्णेन विजानता ।  
 वित्तानुरूपतो राजन् तुल्यमाढ्यदरिद्रयोः ॥  
 संपूज्य नामभिस्तैस्तु पुष्पधूपनिवेदनैः ।  
 भक्तिनम्रः प्रणम्याथ निवेद्यः अङ्गया ततः ॥  
 आह्वय ब्राह्मणान् राजन् पादौ प्रक्षाल्य यत्नतः ।  
 उपवेश्यामने सर्वान् चन्दनेनानुलेपयेत् ॥  
 सुगन्धैः कुसुमैश्चैव धूपैर्दीपैस्तथैव च ।  
 आकाश वस्त्रयुग्मैश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥  
 अयने विषुवे वापि हादश्यान्तु विशेषतः ।  
 उपोष्यैकादशीं कार्यं धर्मकार्यञ्च सर्वशः ॥  
 अन्यथा नरकं यातीत्येव माह पितामहः ।  
 ग्राहका विष्णुरूपाश्च अर्ह्यतविमत्सरः ॥  
 एकैकं देवरूपन्तमेकैकस्य समर्पयेत् ।  
 अथवा विदुषः सर्वान् दद्यात्संपूज्य मानवः ॥  
 नानृतेपि\* कदाचिच्च दद्यात्पाषाण्डिने तथा ।  
 देवरूपं मया विप्र कारितं काञ्चनं शुभं ॥  
 तद्गृहाण प्रदानेन प्रीयतां विश्वरूपधृक् ॥  
 एतदुच्चार्य विप्रस्य हस्ते तोयं क्षिपेत् स्वयं ।  
 प्रदक्षिणा ततो देया संपूज्य प्रविशेद्गृहं ॥  
 अस्य दानस्य माहात्म्यं वदाम्येकमुखः कथं ।

सहस्रास्यः शतास्थी वा यदि शक्तोभिभाषितुं ॥  
 उद्देशतः प्रवक्ष्यामि भक्तानां भक्तिवृद्धये ।  
 दशावतारतीराजन् विष्णोरैक्यं स गच्छति ॥  
 क्षीरे क्षारं यथाक्षिप्तं पयः संहरते ऽनलः ।  
 तथा विष्णोः स दाता वै ऐक्यं याति न संशयः ॥  
 ब्रह्महा च सुरापथ तस्करी गुरुतल्पगः ।  
 यथा मुञ्जादिषीकान्तस्तथा पापात् प्रमुच्यते ॥  
 महस्त्रैव जन्तूनामुडरेत्स इदं जगत् ।  
 तस्मात् प्रयच्छ राजेन्द्र विप्रेभ्या विष्णुरूपकान् ॥  
 येन सर्वस्य दानस्य फलं प्राप्नोति सत्यरं ।  
 न तत्तपोभिरत्युग्रैर्विहितैः प्राप्यते फलं ॥  
 विष्णोर्दशावताराणां दानेन यदवाप्यते ॥

यः काञ्चनेन शुभलक्षणलक्षिताङ्ग-  
 विष्णोः स्वरूपदशकं विधिवत् विधाय ।  
 दद्याद्विजेषु जगदेव हि तेन दत्तं  
 यस्माज्जगन्मयवपुर्विभुरेष देवः ॥

इति दशावतारदानविधिः ।

अथ विश्वामरदानं ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानं विश्वामराह्वयं ।  
 यत् कृत्वा पुरुषः स्त्री वा ब्रह्मलीकमवाप्नुयात् ॥

सर्वपापक्षयकरं सर्वपापविमोचनं ।  
 स्वर्गं यशोदं मयुष्यं श्रीकरं पुत्रवृद्धिदं ॥  
 अभीष्टफलदन्तृणां दुःस्वप्नाद्भुत दर्शनं ।  
 ग्रहशान्तिकरं-पित्र्य भुक्तिमुक्तिप्रदायकं ॥  
 यदाह भगवान् ब्रह्मा नारदाय-सुरर्षये ।  
 यथाहं कृपया पूर्वं पिता मे रोमहर्षणः ॥  
 वैश्वदेवमिति प्रोक्तं दानानामुत्तमोत्तमम् ।  
 तदहं वः प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥

ग्रस्ते चन्द्रराहुणा वा पि सूर्ये  
 तथायने विषुवे जन्मतारे ।  
 व्यतीपाते त्रिविधे चाद्भुते वा  
 दुःस्वप्ने वा पञ्चदश्यां च कुर्यात् ॥  
 कृते पापे निःकृतिस्तस्य चैत-  
 द्रये जाते निर्भयार्थं च कुर्यात् ।  
 ग्रस्ते रोगैर्बहुभिः श्रूयमाणे  
 नित्यं कुर्यात् वैश्वदेवं तु दानं ॥  
 देवागारे स्वगृहे नन्दने वा  
 नदीतीरे रमते यत्र तत्र ।  
 विप्रं गुरुं वेदपुराणदत्तं  
 संगृह्य तस्यानुमतेन कार्यं ॥  
 विनायकं विप्रमुखेन देयं  
 संपूज्य दानं विधिना समस्तं ।  
 गन्धेन भूमिं शक्तता जलेन

विलिप्य नीत्वा दशहस्तमानां ॥  
 तत्रैव लेखाश्चतुरः समन्तात्  
 प्राच्यश्च तिर्यक् च भवन्ति तत्र ।  
 नवात्र कोष्ठानि भवन्ति तेषु  
 सकर्णिकानष्टदलान् सरोजान् ॥  
 कृत्वा सितैराढकतण्डुलैश्च  
 संवेशयेत्तेषु हिरण्यदेवान् ।  
 विश्वांश्च देवांश्चरचापपाणी-  
 नष्टौ समस्तान् द्विभुजान् विधाय ॥  
 मध्ये महेन्द्रं मुकुटादियुक्तं  
 वज्रायुधं शक्तिधरन्निवेश्य ।  
 हारादिकेयूरयुतं प्रशान्तं  
 विश्वामराणामधिकं हिरण्यात् ॥  
 सिंहासनस्थं जगतामधीशं  
 गतकृतं दैत्यहनं सुरेन्द्रं ॥

तेषां नामानि तु वायुपुराणात् ।

क्रतुर्दक्षो-वसुः सत्यः कालः कामचराचरौ ।  
 पुरुषवाद्रवश्चैव विश्वे देवा दश स्मृताः ॥  
 आङ्घ्रिष्वेव प्रयोगोस्ति तेषां मन्त्रिमयोद्भयोरिति ।  
 प्रागादिमध्यान्त मनुक्रमेण  
 सर्वं करोत्यासनाधार्चनान्तं ।

संप्रोक्ष्य कूर्चेण कुशोदकेन  
 ऋचा तथा यजुषा वारुणेन ॥  
 वस्त्रैर्यावेष्टा च वासवाय  
 वासोयुगं सम्परिधाय चाग्रं ।  
 प्रत्यङ्मुखान् प्राङ्मुख एव सर्वा-  
 नाराध्य दातव्यमथ क्रमेण ॥  
 विप्रेण वा गुरुणा सर्वमेतत्  
 कृत्वा मन्त्रविधिना वैश्वदेवं ।  
 उक्तान् देवानर्चयित्वा यथोक्तं  
 दाता स्नात्वा तिलमिश्रैः कुशोदकैः ॥  
 पुष्पाञ्जलिं प्रदक्षिणाञ्चैव सार्द्ध-  
 मभ्यर्च्य देवानथ पुष्पगन्धैः ।  
 धूपप्रदीपैश्च यथा क्रमेण  
 प्रत्येकमेकञ्च यथा हिरण्यं ॥  
 सम्प्रोयतां भगवान्मेतिचीकृत्वा  
 दद्याद्दष्टौ प्रेरितः सोदपूर्व्वं ।  
 पठन्मन्त्रं गुरवे मध्यमञ्च  
 सम्प्रोयतां मम चाप्यत्र देवः ॥  
 संप्रोयतां भगवान् वज्रपाणिः  
 संप्रोयतां भगवान् दैत्यहन्ता ।  
 एवं कृत्वा पञ्चभिर्विप्रवर्यैः  
 पुण्याहञ्च स्वस्तिमृद्धिं च वाच्यं ॥  
 एतद्दानं गुरवे दक्षिणाञ्च

विश्वे देवाः प्रीणयन्त्यस्य विप्राः ॥

इति विश्वामरदानविधिः ।

अथ साध्यदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ॥

सूत उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानं मुनिवरोत्तमाः ।  
साध्यदानमिति प्रोक्तं दानानामुत्तमोत्तमं ॥  
यथाह भगवान् पूर्वं पिता मे रोमहर्षणः ।  
तथाहञ्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्वं शौनकादयः ॥  
आचार्यवरणादीनि सर्वं वै वैश्वदेववत् ।  
तथैव हेमान् कुर्वीत साध्यान् द्वादशमंस्थया ॥

वायु पुराणे ।

ब्रह्मणीय सुखात् सृष्टा यथा देवाः प्रजिप्सया ।  
सर्वे मन्त्रशरीरास्ते स्थिता मन्त्रन्तरेष्विह ॥  
तथा । ब्रह्मगापेन ते जाताः पुनः स्वायम्भुवे जिताः ।  
स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः ॥  
ताममे हरयोनाम वैकुण्ठे रैवतेऽन्तरे ।  
साध्याश्च चाक्षुषे नाम्ना कन्दजा जज्ञिरे सुराः ॥  
धर्मपुत्रा महाभागाः स्वाध्यायां द्वादशमराः ।  
मनीनुमन्ता प्राणश्च नरोपानश्च वीर्यवान् ॥



चित्तिर्ह्योनयश्चैव हंसोनारायणस्तथा ।  
प्रसवीश्र विभुश्चैव स्वाध्या द्वादश जज्ञिरे ॥

स्कन्दपुराणे ।

साध्याः पद्मासनगताः कमण्डल्वक्षसूत्रिणः ।  
धर्मपुत्रा महात्मानो द्वादशामरपूजिताः ॥

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

वैश्वदानवदेवात्र साध्यदाने विधिः स्मृतः ।  
दानेचाभ्यर्चनं मन्त्रः श्रूयतां च विशेषतः ॥  
साध्येभ्यश्चेतिचोक्तावै देवेभ्यश्च नमस्तथा ।  
संप्रीयतां मे भगवन् साध्यादेवा इति ब्रुवन् ॥  
एवं दद्यात् विप्रेभ्योमध्यमं गुरवे तथा ।  
एतत् कृत्वा तु पुरुषो नारी वा दानमादृता ।  
वैश्वदेवे च यत् प्रोक्तं फलं तत्सर्व्वमाप्नुयात् ॥

इति साध्यदानविधिः ।

अथ द्वादशादित्यदानं ।

ब्रह्माण्डपुराणात् ।

शृणु नारद भद्रन्ते दानमादित्यसंज्ञितं ।  
यद्योक्तं लोकगुरुणा विष्णुना प्रभविष्णुना ॥  
कर्तुः पापहरं पुण्यमायुष्यं श्रीकरं शुभम् ।  
आरोग्यं सर्व्वमाङ्गल्यं दुःस्वप्नाद्भुतनाशनं ॥

सर्वशान्तिकरं ह्येतत् सर्वसिद्धिफलप्रदं ।  
 चक्षुष्यं\* सर्वरोगघ्नं भुक्तिमुक्तिफलप्रदं ॥  
 विषुवत्ययने राहुग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।  
 जन्मर्चे सौरवारे वा पञ्चदर्शकसंक्रमे ॥  
 समस्यां वाथ नक्षत्रे सावित्रे ऽद्भुतदर्शने ।  
 दुःस्वप्नदर्शने कुर्याद्दानमादित्यसंज्ञितं ॥  
 देवालये नदीतीरे तडागे वरुणालये ।  
 अन्येषु पुण्यदेशेषु देवदानं समाचरेत् ॥

आलिप्य वै द्वादशहस्तदैर्घ्यां  
 क्षितिं तथा गोमयसंयुताङ्गिः ।  
 तस्मिन् सितैः स्तण्डुलपुञ्जकैश्च  
 विस्तारयेद्द्वादश पङ्कजानि ॥  
 प्रादेशमात्राणि शुभानि तानि  
 सकर्मिकान्यष्टदलेषु तेषु ।  
 हिरण्यरूपाणि रवेर्निधाय  
 यथाक्रमादुत्तरतोपवर्गः ॥

तेषां लक्षणमुक्तं ।

ब्रह्माण्डदाने ।

प्रत्यङ्गं खान् प्राङ्गं ख एव देवां  
 स्तद्वर्षं गन्धादिभि रर्चयित्वा ।

दद्यादपूपं सद्यतं गुडाक्तं  
 वस्त्रै रथावेष्ट्य यथाक्रमेण ॥  
 प्रत्येकमेकं द्विजपुङ्गवाना-  
 माराध्य गन्धादिभिरादरेण ।  
 संप्रीयतामित्यप्यथ च क्रमेण  
 प्रत्येक मुच्चार्य तदीयनाम ॥  
 धाताच मित्रश्च ततः परेण  
 मार्त्तण्डनामा च तथार्थ्यमा च ।  
 शक्रश्च देवोवरुणस्तथासौ  
 भगो विवस्वान् नवम स्तथैषां ॥  
 आदित्यनामा सविता तथान्य  
 स्वष्टा तथैकादशमश्च तेषां ।  
 विष्णुस्तथाद्वादशमश्च मन्त्रै-  
 राराधयेद्देववरान् द्विजांश्च ॥  
 पुरा देवऋषेर्दानं प्रोक्तं कमलयोनिना ।  
 तथा मयापि युष्माकं प्रोक्तं मुनिवरोत्तमाः ॥

इत्यादित्यदानविधिः ।

अथ देवगणेशदानं ।

प्रह्लाण्डपुराणात् ।

अथाष्टकुम्भनयः सूतसूनुं  
 तदारण्ये नैमिषे सत्रिणस्ते ।  
 उग्रश्रवाः परिपृच्छामहे त्वां

कथं मर्त्योमुच्यते रोगपूगैः ॥  
 तथा पृष्टोमुनिभिः सूतसूनु-  
 र्वाचेदं प्रीतिपूर्व<sup>१</sup> तदानीं ।  
 यथा पुरा ऋषये नारदाय  
 जगत् कर्त्ता चाब्रवीद्दानमेतत् ॥  
 शृणुन्तु यूयं मुनयः समेता  
 वदाम्यहं देव गणेशदानं ।  
 आयुष्यमारोग्यमनन्तमुक्ति  
 मभीष्टसिद्धिं प्रददाति कर्त्तुः ॥  
 कालेषु सूर्यग्रहणादिकेषु  
 तारिषु जन्मत्रितयेषु कार्यं ।  
 देशेषु देवायतनादिकेषु  
 गृहेषु वा रमते यत्र तत्र ॥  
 विप्रं गुरुं वेदपराणदत्तं  
 मंगृह्य तस्यानुमतेन कार्य<sup>२</sup> ।  
 गव्येन भूमिं शक्तता जलेन  
 विलेपयेद्विशति हस्तमात्रां ॥  
 षट् दक्षिणे प्रागपि वेदरेखा-  
 स्तिर्य्य कृत्तुं तैस्तण्डुलपुञ्जकैश्च ।  
 तस्मिन्विचित्राणि सरोरुहाणि  
 कृत्वाष्टपत्राणि दशाय पञ्च ॥

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेऽश्विमरुतस्तथा ।

साध्या देवास्तथा चैव सप्तमीगण उच्यते ॥

द्वौ द्वौ गणेभ्यः सप्तभ्यश्चतुर्दश सुरोत्तमान् ।

जातरूपमयान् कृत्वा कमलेषु निवेशयेत् ॥

मध्ये महेन्द्रं द्विभुजं हिरण्यं

हिरण्यरूपादधिकं गणानां ।

वज्रायुधं दैत्यहनं किरीट-

केयूरहारादिविभूषितञ्च ॥

प्रत्यङ्मुखान् प्राङ्मुख एव देवान्

आदित्यवस्त्रादि यथा क्रमेण ।

स्वनाममन्त्रैश्च नमोन्तरूपै-

राराधयेदुत्तरतो पर्वर्गे ॥

षट् दक्षिणे इत्यादि दक्षिणोत्तरायताः षट् रेखाः कृत्वा  
प्राक्पश्चिमायताश्चतस्रश्च विधाय पञ्चदशकोटानि सम्पादयेत् ।

तेषु तावन्ति तण्डुलमयानि कमलानि कृत्वा वक्ष्यमाणान्  
देवान् स्थापयेत् ।

तत्र आदित्यवसुलक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने, रुद्रलक्षणमुक्तं  
विश्वचक्रे, एतेषां नामानि च तुलापुरुषदाने, विश्वदेवलक्षणं  
तत्रामानि च विश्वामरदाने, मरुतां लक्षणं नामानि च मरु-  
दाने । साध्यानां साध्यदानइति ।

ततो महेन्द्रं जगतामधीश-

माराधयेद्देवगणैः समितं ।

संपूज्य तस्मै गुरवे च देयं

वामोयुगं काञ्चनभूषणानि ॥

ततस्त्वमौ भक्षणभक्षिताङ्गः

संवेष्टिती वस्त्रयुगेन विप्रः ।  
 समर्चयेद्देवगणेशं मुख्या-  
 स्तुतीं हीमं प्रारभेद्देवतानां ॥  
 स्नानं वस्त्रं चार्घ्यं पाद्या-चमनीयं  
 गन्धं पुष्पं धूपं दीपौ हविष्य ।  
 दद्यादेषां मध्यमं देवदेवं  
 समर्चयेद्विधिना शास्त्रजेन ॥  
 अग्निं समाधाय समुह्य दर्भः  
 परिस्तरेद्राज्यमथो गृहीत्वा ।  
 सत्कृत्य दर्वीं विधिना घृतेन  
 प्रत्येकमेकञ्च दशाहुतीनां ॥  
 हुत्वा गणेभ्यश्च तथा हुतीनां  
 शतं तथा दश वा प्यत्र हुत्वा ।  
 इन्द्रस्य हीमं विधिना समाप्य  
 शेषास्तथा व्याहृतिभिः समस्ताः ॥  
 इत्येव मेतद्गुरुणैव कार्यं  
 दाता स्वयं दानमथात्र कुर्यात् ।  
 स्नात्वा वासौ गुरुणा प्रोक्षितश्च  
 कुशोदकैः पावमानैर्यजुर्भिः ॥  
 प्रत्येकमेकं द्विजपुङ्गवाना-  
 माराध्य दातव्यमनुक्रमेण ।  
 प्रदक्षिणं देवगणैश्च साङ्गं  
 कृताञ्जलिं पुष्पयुतं च दत्त्वा ॥

सम्प्रोयतां मेत्ययमेव चोक्ता  
 ददेत्सर्वांश्चोदकपूर्वं मत्त ।  
 ततस्त्रिदं गुरवे दापयित्वा  
 विप्रैः स्वस्तिं पञ्चभिर्वाचयेच्च ॥  
 दत्त्वा तेषां दक्षिणां वाचकानां  
 ततो विप्रान् पूजयेद्द्वै गुरुञ्च ।  
 तथा चैवं देवदानञ्च कृत्वा  
 ततः सर्वं मुच्यते रोगपूगैः ॥  
 कृत्वा चासौ देवगणेशदान-  
 मायुष्य-मारोग्यमुपैति चाग्रं ।  
 भुक्त्वा भोगानैहिकान् पुष्कलांश्च  
 ततोगच्छेद्ब्रह्मलोकं विशालं ॥

एवं पुरा गणेशाख्यं दानं मुनिवरोत्तमाः ।  
 उक्तं देवर्षिभिश्चैव ब्रह्मणा वा स्वयम्भवा ॥

इति देवगणेशदानविधिः ।

अथ निम्नाभदानं ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

सूतउवाच ।

अथापरं दानमहं प्रवक्ष्ये  
 शृणुन्तु सर्वे मुनयः समेताः ।  
 यथा पुरा ऋषये नारदाद्य

जगत्कर्त्ता पद्मयोनिस्त्ववोचत् ॥

यत् कृत्वा वै पुरुषोवाथ नारी

फलं चेष्टं लभते चोभयत्र ।

आयुश्च सर्वं लभतेऽथ रोगे

विमुच्यते चन्द्रमुपैति लोकं ॥

कालेषु सूर्यग्रहणादिकेषु

संक्रम्यते तत्र च दानमेतत् ।

निग्नाभमंजन्तु तथैव कुर्या-

देशेषु देवायतनादिकेषु ॥

गृहेषु वा रमते यत्र तत्र

द्विजाय निग्नाभमनुं प्रदद्यात् ।

वैतानिकं वेदपुराणदत्तं

संगृह्य विप्रं गुरुमादरेण ॥

तेनैव सर्वं विप्रेण कारयेच्चैव मादृतः ।

यजमानः स्वयं कुर्याद्दानं निग्नाभमंजितं ॥

क्षितौ गोमयलिप्तायां दक्षिणीत्तरतः समं ।

दश पञ्च च पद्मानि कारयेत् श्वेततण्डुलैः ॥

मण्डलानि यथाशक्ति ह्यैरण्यानि प्रकल्पयेत् ।

मण्डलवितयं तेषु प्रतिपद्मं निवेशयेत् ॥

आयुरादीनि तत्त्वानि शरीरे सन्ति यानि वै ।

तानि ध्यात्वा य गन्धार्द्यैरर्चयेत्तान्यमन्त्रकैः ॥

आयुरादीनि, श्रोत्रप्रभृतीनि, श्रोत्रं आयुरिति श्रुतेः ।

तेषां मनुक्रमश्च ब्रह्माण्डपुराणे



श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चैवात्र पञ्चमं ।  
 गन्ध-स्पर्शौ रूप-रसौ गन्धश्चेति क्रमादमी ॥  
 आकाशः पवन-स्तेजो-जलं पृथ्वी त्यनुक्रमात् ।  
 इति पञ्चदशेमानि तत्त्वानि मुनयो विदुरिति ॥  
 विप्रानभ्यर्च्य दत्तव्यं प्रत्येकं च यथा क्रमं ।  
 निग्नाभदानमन्वास्तु गुरुणा वाचयेच्च तान् ॥  
 पञ्चभिर्गुरुणा माद्वै वाचयेत् स्वस्तिवाचनं ।  
 दक्षिणां च गुरोर्दद्यात् सुवर्णं चैव वाससी ॥  
 अथ वा पद्मयुगलमेकैकस्यापि दापयेत् ।  
 मन्त्रं वा गुरवे दद्यात् संकल्प्य यत्रवाचनं\* ॥  
 यद्येकं गुरवे दद्यात् बहुभ्यश्चेतरान् ददेत् ।  
 अभोटमिदं लभते कर्त्ता दानेन वानघ ॥

इति निग्नाभदानविधिः ।

अथ गणेशदानमुच्यते लिङ्गपुराणे ।

गणेशं सम्प्रवक्ष्यामि दानं पूर्वोक्तमण्डपे ।  
 सम्पूज्य देव देवेशं लोकपालसमावृतम् ॥  
 विघ्नेश्वरान् यथाशास्त्रं सर्वाभरणभूषितं ।  
 दशनिष्केण वै कृत्वा सम्पूज्य विधिना ततः ॥

अत्र कुण्ड-मण्डप-मण्डल वेदिकावितानादि लिङ्गपुराणोक्त  
तुला पुरुषविहितं वेदितव्यं ।

देवदेवेशं महेश्वरं मौवर्णं लोकपालं युतं ।  
मस्यूज्य परितोष्टदित्तु विघ्नेशानर्चयेदिति ॥  
ममकोटिमन्त्रात्मकविघ्नगणानामोशत्वात्

अत एव गणेशाः ।

ते च यथा । अथानन्तश्च गृह्यश्च शिवश्चाप्येकैवकः ।  
एकरुद्रस्तिमूर्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखण्डक इति ॥  
शिवोक्तविघ्नेश आत गणेशाः  
ते च प्रत्येकं दशनिष्कैर्विधेयाः ।

तदुक्तं कामिके ।

दशनिष्कसुवर्णेन निर्मितांश्च पृथक् पृथक् ।  
स्वकीयावरणे चैतान् गन्धपुष्पादिभिर्गुरुः ।  
प्रधाने जुहुयादौशं विघ्नेशानष्टदित्तु चेति ॥  
तेषां लक्षणान्तु लक्षणसमुच्चयात् ॥  
कुण्डी पाशाङ्गुलं घण्टां गूलं च वामबाहुके ।  
शक्तिर्वज्राक्षमालामिचक्राणि दक्षिणे क्वचित् ॥  
द्वीपचर्मधरोऽञ्जस्यो नागयज्ञीपवीतवान् ।  
एकाग्रः पञ्चवक्त्रो वा चाक्षो जटेन्दुभृद्विवः ॥  
अनन्ताद्याश्चतुर्दिक्षु रक्तनीलसितारुणाः ।  
कोणेषु चैकरुद्राद्याः सितामृगनीललीहिताः ॥  
सर्वे चाष्टभुजा योज्याश्चतुर्गस्या जटान्विताः ।  
शिवायुधधराभ्यन्ताः सृण्वसिभ्यां विना क्वचित् ॥

दिग्बर्णा जटिलास्त्यक्ताः परत्रिशूलधारिणः ।

पुटाञ्जलिकराः सर्वे विघ्नेशाश्चैकवक्त्रकाः ॥

लोकपाललक्षणमुक्तं, ब्रह्माण्डदाने ।

अष्टदिक्ष्वष्टकुण्डेषु पूर्व्ववह्नीममाचरेत् ॥

पञ्चावरणमार्गेण पारम्पर्य्यक्रमेण च ।

पूर्व्ववदिति, लिङ्गपुराणोक्ततुला पुरुषवदित्यर्थः ।

सप्तविप्रान् समभ्यर्च्य कन्यामेकां तथोत्तरे ।

दापयेत् सर्व्वतन्त्राणि स्वैः स्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात् ॥

दत्त्वैवं सर्व्वपापेभ्योमुच्यते नात्र संशयः ॥

पञ्चब्रह्माद्यैः पञ्चावरणैर्युक्तस्य शिवस्यार्चनं मध्ये प्रधान  
कुण्डे होमश्च दिक्कुण्डेषु तु विघ्नेशानामात्मीयपञ्चावरणैर्गुरुपर-  
म्परोपदिष्टैर्युक्तानां होमः ईशानादिसप्तदिक्षु सप्तविप्रानुत्तरस्यां  
दिशेकां कन्यामभ्यर्च्य कन्याष्टमेभ्यो विघ्नेभ्यः स्वस्वमन्त्रेण सर्व्व  
तन्त्राणि सर्व्वतन्त्रमयान्विघ्नेशान् दद्यादित्यर्थः ।

दापयेत् सर्व्वविघ्नेशानिति पाठः ।

तेभ्यः प्रदद्याद्विघ्नेशान् स्वस्वमन्त्रैरनुक्रमादिति-

कामिकीक्तेः ।

पञ्चावरणपूजा तु वायुसंहितोक्ता ग्राह्या ।

परीक्ष्य भूमिं विधिवद्बन्धवर्णैरसादिभिः ॥

मनोभिलषिते तत्र वितानविनताम्बरे ।

सुलिप्ते च महीपृष्ठे दर्पणीदरसन्निभे ॥

प्राचीमत्पादयेत् पूर्व्वशास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ।

एकहस्तं द्विहस्तं वा मण्डलं परिकल्प्य तु ॥  
 अलिखेद्विपुलं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकं ।  
 रक्तचूर्णोदभिर्गुणैर्यथासम्भवमश्रुतैः ॥  
 प्रतिवारुणसंयुक्तं बहुगोभाममन्वितं ।  
 दलेषु सिद्धयः कल्प्याः केसरिषु मग्नकितः ॥  
 रुद्रा वामाङ्गद्वयस्त्वष्टो पर्व्वीति परितः क्रमात् ।  
 कर्णिकायान्तुः वैरुध्यं वोजेषु नव शक्तयः ॥  
 कन्दे शिवात्मकोधर्मा नाले ज्ञानं शिवाश्रयं ।  
 कर्णिकोपरि वाग्नेयं मण्डलं सौरमैन्दवं ॥  
 शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वतयमतः परं ।  
 सर्व्वामनोपरिमुखं विचित्रकुसुमान्वितं ॥  
 परयोमावकाशं च विद्ययातीव भासरं ।  
 परिकल्प्यासनं मूर्त्तिमावाह्य परमेश्वरं ॥  
 पञ्चवर्णस्वभार्गणं पूजयेदस्वया सह ।  
 शुद्धस्फटिकमङ्गाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिं ॥  
 विद्युद्वलयमङ्गाशं जटामुकुटभूषितं ।  
 दिव्यायुधवरेयुक्तं दिव्यगन्धानुलेपनं ॥  
 शाटून् लक्ष्मीवसनं किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजं ।  
 रक्तपद्मदलप्रस्थपादपङ्क्तितालाधरं ॥  
 मञ्जुलक्षणसंपदं सर्व्वभरणभूषितं ।  
 पञ्चवक्त्रं दशभुजं चन्द्रखण्डशिख्यामणिं ॥

\* वैराग्यमिति एतकालं पाठ

† रामादय इति कश्चित् पाठ

अत्यपूर्वमुखं सोम्यं बालाकसदृशप्रभं ।  
 विलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरं ।  
 दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभं ॥  
 भृकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्ततिलोचनं ।  
 दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षं स्फुरिताधरपद्मवं ॥  
 उत्तरं\* विद्रुमप्रस्थं नीलालकविभूषितं ।  
 सविलासचिन्तयनं चन्द्राभरणशेखरं ॥  
 पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्वलं ।  
 अतीवसौम्यमुत्फुल्ल लोचनत्रितयोज्वलं ॥  
 दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्वलं ।  
 चन्द्रेखाधरं सोम्यं मन्दस्मितमनोहरं ॥  
 पञ्चमं स्फटिकप्रस्थमिन्दुरेखासमुदलं ।  
 सव्ये च नागनाराच-घण्डापाशाङ्कुशोज्वलं ॥  
 निवृत्याजानुसम्बद्धमानाभिश्च प्रतिष्ठया ।  
 आकण्ठं विद्यया तददाललाटे तु शान्तया ॥  
 तदूर्ध्वं शान्त्यतीताख्यकलया वरया तथा !  
 पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात् कलापञ्चकविग्रहं ॥  
 ईशानमुकुटं देवं पुरुषाख्यं पुरातनं ।  
 अघोरहृदयन्तद्वहामगुह्यं महेश्वरं ॥  
 सद्यमाद्यञ्च तन्मूर्त्तिमष्टत्रिंशत्कलामयं ।  
 मातृकामयमौशानं पञ्चब्रह्ममयन्ततः ॥

त्रिंकाराख्यमयं चैव हंसं गक्त्या समन्वितं ।  
 पञ्चाक्षरमयं देवं षडक्षरमयन् वा ॥  
 अङ्गषट्कयुतं चैव जातिषट्कसमन्वितं ।  
 तथेच्छाभिकया गक्त्या समारूढकमण्डलु ॥  
 ज्ञानाख्यया दक्षिणतो वामतश्च क्रियाख्यया ।  
 तत्त्वत्रयमयं साक्षाद्विद्यामूर्त्तिं सदागिवं ॥  
 मूर्त्तित्वेनैव सङ्कल्पा सकलीकृत्य च क्रमात् ।  
 सम्पूज्य च यथान्यायमर्घान्तं मूलविद्यया ॥  
 मूर्त्तिमन्त गिवं साक्षाच्छक्त्या परमया सह ।  
 तत्रावाह्य महादेवं सदासदाक्तिवर्जित ॥  
 पञ्चोपचारणं कृत्वा पूजयेत्परमेश्वरं ।  
 ब्रह्मभिश्च षडङ्गैश्च तथा सात्त्विकया पि च ॥  
 प्रणवेन गिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात् ।  
 शान्तेन च तथान्यैश्च देवमन्त्रैश्च कृत्स्नशः ॥  
 पूजयेत्परमं देवं केवलेन गिवेन वा ।  
 सदादिमुखमीशानं कृत्वाश्च स्नपनं विना ॥  
 पञ्चावरणपूजान्तु प्रारभेत् यथाक्रमं ।  
 तत्रादौ गिवयोः पार्श्वे दक्षिणे वामतः क्रमात् ॥  
 गन्धाद्यैरर्चयेत्पूज्यं देवौ हेरम्बपद्ममुखौ ।  
 ततो ब्रह्माणि परित इगानादि यथाक्रमं ॥  
 सगक्तिकानि सद्यान्तं प्रथमावरणे यजेत् ।  
 षडङ्गान्यपि तत्रैव हृदयादीन्यनुक्रमात् ॥  
 गिवस्य च गिवायाश्च वामादिषु समर्चयेत् ।

तत्र वामादिकान्\* रुद्रानष्टौ वामादिशक्तिभिः ।

अर्चयेद्वा न वा पश्चात् पूर्वदिपरितः क्रमात् ॥

पङ्कजानि वामादिरुद्राश्च तत्रैव दर्शिताः ।

हृदयञ्च शिरश्चैव शिखा वर्मच नेत्रकं ।

स्वस्ति\*मल्येवमुक्तानि षडङ्गानि मनोषिभिः ॥

वामो-ज्येष्ठस्तथारुद्रः कालोविकरणस्तथा ।

बलविकरणश्चैव बलप्रथमनस्तथा ।

सर्वभूतस्य दमनस्तादृशाश्चाष्टशक्तयः ॥

प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ।

अनन्तं पूर्वदिक्पत्रे गत्वा सह शिवोत्तमं ॥

तत्रैवोत्तरदिक्पत्रे एकनेत्रं समर्चयेत् ।

एकनेत्रञ्च तच्छक्तिं पश्चादौशानदिग्दले ॥

त्रिमूर्तिं तस्य शक्तिञ्च पूजयेद्गनिदिग्दले ।

यौकण्डं नेर्हते पत्रे तच्छक्तिं तस्य वामतः ।

अथैव मारुते पत्रे शिखण्डौशं समर्चयेत् ॥

प्रथमावरणे चेज्या न वा ते चक्रवर्त्तिनः ।

तृतीयावरणे पूज्याः शक्तिभिश्चाष्टमूर्त्तयः ॥

अष्टासु क्रमशोदिक्षु पूर्वदिपरितः प्रभोः ।

भवः गर्वस्तृशेशानोरुद्रः पशुपतिस्तथा ।

उग्रोभीमोमहादेव इत्यष्टौमूर्त्तयः क्रमात् ॥

\* वामादिकानितिक्रचितपाठः । एवं = २७८ २८ पदे च सर्वत्र वामस्थाने राम इति पाठ एव काले

\* अथ मल्येवमुक्ताः पुस्तकालये

अन्तरान्तरतथैषां महादेवादयः क्रमात् ।  
 शक्तिभिः सह संपूज्यास्तत्रैकादशमूर्तयः ॥  
 महादेवः शिवोरुद्रः शङ्करानीललोहितः ।  
 ईशानो विजयोभीमो देवदेवोभवाद्भवः ।  
 कपालीशश्च कथ्यन्ते तथैकादशशक्तयः ॥  
 तत्प्राप्तौ प्रथमं पूज्या वाङ्मयादि यथाक्रमं ।  
 देवदेवः पूर्वपतमौशान्यामग्निगोचरे ॥  
 भवाद्भवस्तयोर्मध्ये कपालीशस्ततः परं ।  
 तस्मिन्नावरणे भूयोवृषेन्द्रं पुरतोयजेत् ॥  
 नन्दिनन्दक्षिणे तस्य महाकालं तथोत्तरे ।  
 शास्तरं वज्रिदिक्पत्रे मातृदक्षिणदिग्दले ॥  
 गजास्यं नैऋते पत्रे षण्मुखं वारुणे ततः ।  
 ज्येष्ठां वायुदले गौरीमुत्तरे चण्डमैश्वरे ॥  
 शास्त्रनन्दोशयोर्मध्ये मुनीन्द्रं वृषभं यजेत् ।  
 महाकालस्योत्तरतः पिङ्गलं तु समर्चयेत् ॥  
 शास्त्रमातृमहस्य मध्ये भृङ्गीश्वरन्ततः ।  
 मातृविघ्नेशमध्यतु वीरभद्रं समर्चयेत् ॥  
 स्कन्दविघ्नेशयोर्मध्ये यजेद्देवीं सरस्वतीं ।  
 ज्येष्ठाकुमारयोर्मध्ये महामोदीं समर्चयेत् ॥  
 गणाम्नाचण्डयोर्मध्ये देवीं दुर्गां समर्चयेत् ।  
 तत्रैवावरणे भूयः शिवानुचरमंहतिं ॥  
 रुद्रप्रथमं भृवाख्यां विविधाञ्च स्वशक्तिकां ।



शिवाद्याः सखीवर्गं च यजेत् ध्यात्वा समन्ततः ॥  
 एव ततोऽयावरणे वितते पूजिते मति ।  
 चतुर्थावरणं ध्यात्वा बहिस्तस्य समञ्चयेत् ॥  
 भानः पूर्वदले पूज्यादक्षिणे चतुराननः ।  
 रुद्रोऽवरुणदिक्पत्रे विष्णुरुत्तरदिग्दले ॥  
 चतुर्णामपि देवानां पृथगावरणान्यथ ।  
 तत्पूजानन्तरं कुर्यात्तच्छ्रास्तीक्तप्रकारतः ॥  
 अथवा भानुसम्यर्चा प्रथमावरणे यजेत् ।  
 तस्यात्मनि षडेवादौ दीप्ताद्याभिश्च शक्तिभिः ॥  
 दीप्ता सन्ना जया भद्रा विभ्रुति विर्मला क्रमात् ।  
 अमोघा विद्युता चैव पूर्वदिपरितः स्थिताः ॥  
 द्वितीयावरणे पूज्याश्चतस्रो मूर्त्तयः क्रमात् ।  
 पूर्वोत्तरपथ्यन्ताः शक्तयश्च ततः परं ॥  
 आदित्योभास्करो भानूरविश्वेत्यनुपूर्वशः ।  
 अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चैवं विवस्वतः ॥  
 विस्तारात् पूर्वदिग्भागे सुतावा\* दक्षिणे स्थिताः ।  
 बोधनी पश्चिमे भागे आप्यायेदुत्तरे पुनः ॥  
 उषां प्रभान्तथा प्रज्ञां सन्ध्यामपि<sup>१</sup> ततः परं ।  
 ईशानादिषु कोणेषु द्वितीयावरणे यजेत् ॥  
 सोममङ्गारकश्चैव बध्नं बृहिसताम्बरं ।  
 बृहस्पतिं बृहद्भिर्भागे वन्तेजसोर्निधिं ॥

\* सुतावा इति वृत्तिरिति पाठः

सोमसमर्पितकृतिरिति पाठः

गनैश्चरन्तथा राहू केतुं धृम्भं भयंकरं  
 समन्ततीयजेदेतांस्तृतीयावरणे क्रमात् ॥  
 अथवा द्वादशादित्यान् द्वितीयावरणे यजेत ।  
 तृतीयावरणे चैव राशीन् द्वादश पृजयेत् ॥  
 ममममगणां चैव वहिरस्य समन्ततः ।  
 ऋषोन् देवांश्च गन्धर्वांन् पन्नगा आप्सरीगणान् ॥  
 ग्रामण्यश्च तथा यत्तं जातुधानांस्तथा हयान् ।  
 ममहृन्दोजयाश्चैव बालखिल्यांश्च पृजयेत् ॥  
 एवं त्रयावरणं देवं समम्यच्चादिवाकरं ।  
 ब्रह्माणमर्चयेत् पश्चाच्चिभिर्गावरणैः सह ॥  
 हिरण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजं दक्षिणे ततः ।  
 कालं पश्चिमदिग्भागे पुरुषञ्चोत्तरे यजेत् ॥  
 हिरण्यवर्णः प्रथमोब्रह्मा कमलसन्निभः ।  
 कालोजाल्याञ्जनप्रण्यः पुरुषः स्फटिकोपमः ॥  
 त्रिगुणोराजसश्चैव तामसः सात्विकस्तथा ।  
 चत्वारण्यते क्रमगः प्रथमावरणे स्थिताः ॥  
 द्वितीयावरणे पृज्याः पृष्ठादिपरितः क्रमात् ।  
 मनत्कुमारः मनकः मनन्दश्च मनातनः ॥  
 तृतीयावरणे पश्चादर्चयेत् प्रजापतीन् ।  
 अष्टौ पूर्वास्त पृष्ठाच्चिन् प्राक् पश्चादुत्तरं क्रमात् ।  
 दक्षी-रुचि भृगुश्चैव मरीचिश्च ततोऽङ्गिराः ।  
 पौलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरत्रिश्च कश्यपः ॥  
 वसिष्ठश्चेति विख्याताः प्रजानां पतयस्त्विम ।

श्रीमत्त्रिशूलमैशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे ।  
 परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत् ॥  
 नैऋते तु यजेत् खड्गं पाशं वरुणगोचरे ।  
 अङ्गुशं मारुते भागे पिनाकञ्चोत्तरे यजेत् ॥  
 एवमावरणं चैवं संपूज्यानन्तरं वह्निः ।  
 पश्चिमाभिमुखं रौद्रे क्षेत्रपालं समर्चयेत् ॥  
 सर्वावरणदेवानां वहिर्वा पश्चिमे य वा ।  
 पञ्चगोमातृभिः सार्द्धं महोत्तपुरतीयजेत् ॥  
 नन्दा सभद्रा सुरभी सुशीला सुमनास्तथा ।  
 पञ्च गोमातरस्त्वे ताः शिवलोके व्यवस्थिताः ॥  
 ततः समन्ततः पूज्याः सर्वा वै देवयीनयः ।  
 खेचरा ऋषयः मित्रा देव्या यक्षाश्च राक्षसाः ॥  
 अनन्ताद्याश्च नागेन्द्रा नागैस्तत्र कुलीङ्गवैः ।  
 डाकिनी-भूत-वेताल-प्रेतभैरव-नायकाः ॥  
 पातालवासिनश्चान्ये नानायोनिषु सम्भवाः ।  
 नद्यः समुद्रा गिरयः काननानि सरांसि च ॥  
 पद्मवः पक्षिणावृक्षाः कौटाद्याः क्षुद्रयीनयः ।  
 नराश्च विविधाकारा मृगाश्च क्षुद्रयीनयः ॥  
 भुवनान्यन्तरगण्डस्य ततो ब्रह्माण्डकोटयः ।  
 बहिरण्डानि मंथ्यानि भुवनानि महाधिपैः ॥  
 ब्रह्माण्डधारका रुद्रा दशदिक्षु व्यवस्थिताः ।  
 यज्ञाणं यज्ञमादित्यं यहा गार्ग्यं ततः परं ॥  
 यत् किञ्चिदर्थं शब्दस्य वाक्यं चिदचिदात्मकं ।

तत्सर्वं शिवयोः प्रान्ते बुद्धा सामान्यतो यजेत् ॥  
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे चिन्त्याः स्मितमुखस्तथा ।  
 मादरं प्रेक्ष्यमाणाश्च देवं देवीञ्च सर्वदा ॥  
 इत्थमावरणान्यर्च्य कृत्वाप्यन्तेमशान्तये ।  
 पुनरभ्यर्च्य देविं पञ्चाक्षरमुदीरयेत् ॥  
 निवेदयेत्ततः पञ्चाक्षरयोरमुतोपमं ।  
 सरमयञ्जनं शुद्धं\* पट्टाकारं महाचक्रं ॥  
 द्वात्रिंशद्दादकैर्मुख्यमध्यमं† त्वादकावरं ।  
 भाधयित्वा यथा सम्पत् यद्वया विनिवेदयेत् ॥  
 ततो निर्वद्य पानोयन्ताम्बूलञ्चोपवंगकैः ।  
 नोराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत् ॥  
 योगोपयोगिद्रव्याणि विशिष्टान्येव साधयेत् ।  
 वित्तगाठं न कुर्वीत बुद्धिमान् विभवे मति ॥  
 शिवस्योपेक्षकस्यापि व्यङ्गञ्चाप्यनुष्ठितः ।  
 न फलन्त्येव काम्यानि कर्माणीति मतां कथा ॥  
 तस्माच्छाठ्यमुपेक्षाञ्च त्यक्त्वा सर्वाङ्गयोगतः ।  
 कुर्यात् काम्यानि कर्माणि फलमिदं यदिच्छति ॥  
 इत्थं पूजां समाप्याथ देवं देवीं प्रणम्य च ।  
 भक्त्या पूजां समाधाय ततस्तोत्रमुदीरयेत् ॥  
 ततस्तोत्रजपस्यान्ते त्वष्टोत्तरशतं वरं ।  
 जपेत् पञ्चाक्षरीं विद्यां सहस्रोत्तरमृत्सुकः ॥

\* सर्वं पट्टप्रकारमिति कचिन् पाठः ।

† मध्यममिति कचिन् पाठः ।

\*दद्यात् पूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चात् यथा कर्म ।  
 यत्रोदयं यथायद्दं सदस्यानपि पूजयेत् ॥  
 तत उवाच देवेशं सर्वेश्वरगैः सह ।  
 मण्डलं गुरवे दद्यादांगीपकरणैः सह ॥  
 शिवायिबेभ्यो दद्याद्वा सर्वा एवानुरूपतः ।  
 अथ वा तद्विवाद्यैव शिवक्षेत्रे समर्पयेत् ॥  
 शिवार्जो वा यजेद्देवं होमद्रव्यैस्तु सप्तभिः ।  
 नक्षत्रैर्वा यथापूर्वं सर्वावर्णदेवताः ॥  
 ण्य योगेन्द्रोनाम त्रिषु लोकेषु विद्युतः ।  
 तस्मादभ्यधिकः कश्चिदांगीमि भुवने कचित् ॥  
 न तदास्मिन् जगत्यास्मिन्नसाध्यं यदनेन तु ।  
 गङ्गिकं वा फलं किञ्चिदांगुलिकमथापि वा ॥  
 ददमस्य फलं नेदमिति नेप नियम्यते ।  
 येना रूपस्य कृतस्य यदिदं श्रेष्ठमाधकं ॥  
 इदन्तु गक्यते वक्तुं पुरुषेण यदर्थ्यते ।  
 चित्ताङ्गिणिवैतदात्तत्तेन प्राप्नोति फलं ॥

इति गणेशदानविधिः ।

अथ मरुदान ।

ब्रह्माण्ड पुराणात् ।

पश्चातः सप्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिनक्षमाः ।

मरुदानमिति प्रोक्तं सर्वपापप्रणाशनं ॥

पुरा देवयुगे देवी ब्रह्मा लोकपितामहः ।  
 ऋषिणा नारदेनेदं पृष्टः प्रावाच नारदं ॥  
 युगं नारद भद्रस्ते दानं सर्वफलप्रदं ।  
 यद्यत् कामयते दाता तत्तत् फलनुपाश्रिते ॥  
 पुण्यजालेषु सर्वेषु जन्मार्चषु दिशिषतः ।  
 पुण्यदेशेषु सर्वेषु गृहे वा दानमाचरेत् ॥  
 देवा एकोनपञ्चाशत् देवन्द्रममतेजसः ।  
 भ्रातरः पुरुङ्गतस्य मरुतः सूर्यवर्चसः ॥  
 किरीट हारः केयूर कटकादिविभूषिताः ।  
 वङ्गचर्मधरा नित्यं शक्रस्यानुचराः सदा ॥  
 तेषां तु प्रतिरूपाणि जातरूपेण कारयेत् ।  
 तेषां दानानि तत् सर्वं विप्रेणैव समाचरेत् ॥  
 शुचां देशे समां भूमिं लिप्य गोमयवारिणा ।  
 दक्षिणोत्तरतोविद्यज्जिह्वाः षट् तत्र ताः समाः ॥  
 प्रागिकादशलेखाः स्युः पञ्चाशत्कोष्ठमुच्यते ।  
 चतुरस्राः समाः सर्वे हस्तत्रितयमस्मिताः ॥  
 कोष्ठे मध्यमवीथ्यां वै पठे चोत्तरतः स्थितं ।  
 इन्द्रमामनमित्युक्तमितरे मरुतस्तथा ॥

कोष्ठेषु सर्वेषु मरीरूहाणि  
 कृत्वा मिते स्तण्डुल मण्डलेन च ।  
 पद्मानि देवामनमारभेत

संस्थापयेत्तेषु यथाक्रमेण ॥

अत्र दक्षिणीत्तरतो रेखाषट्कमालिख्य पूर्वपश्चि  
मायताभिरेकादशरेखाभिः

पञ्चाशत्कीष्टनिष्पत्तिः स्यात्

तत्र मध्यमवीथ्यां, उत्तरतः पष्ठे कीष्टके ।

इन्द्रामनं उत्तरे अवशिष्टकीष्टकाः,

मरुतामामनं मरुत्रामानि तु

वायु पुराणात् ।

ततस्तेषाम् नामानि मातापित्रोः प्रचक्रतुः ।

तदिधेः कर्मभिश्चैव मरुतान्ती पृथक् पृथक् ॥

शक्रज्योतिस्तथादित्यः चित्रज्योतिस्तथापरः ।

मल्यज्योतिश्च ज्योतिष्मान् मल्यहा ऋतपास्तथा ॥

प्रथमीयं गणः प्रीक्तो द्वितीयन्तु निबोधत ।

ऋतजित्स्त्वजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा ॥

अन्तिमित्रो ह्यमितश्च दूरेमित्रस्तथा परः ।

गण एष तृतीयस्तु तृतीयोयन्निबोधत ॥

ऋतःमल्यो ध्रुवोधर्त्ता विधर्त्ताश्च विधारय ।

धरुणश्च तृतीयेतु चतुर्थं मे निबोधत ॥

ध्वान्तश्च धनितश्चैव सभरश्च तथा गणः ।

इष्टुक्षामः परुषश्चैव अन्याष्टुक्षाम एतनः ॥

संमिताः समष्टुक्षामः प्रतिष्टुक्षाम वै गणः ।

मरुतेन्द्रः सभरसः तथादेवविशिपरः ॥

वज्रश्च वानवर्त्मानस्तथान्योमान्प्रीविगः ।

दैत्यदेवाः समाख्याताः सप्तैते सप्तका गणाः ।

एतेह्येकीनपञ्चाशन्मरुतोनामतः स्मृता इति ॥

प्रागादिपूर्वोत्तरमत्र चैवं

सर्वाणि कृत्यानि च कारयित्वा ।

वस्त्रैश्चादिद्य कुशोदकैश्च

संप्रोक्ष्य तस्मिन्नुत्तैर्यजुर्भिः ॥

मध्ये महेन्द्रस्त्रिगुणेन हेम्ना

वज्रायुधः शक्तिधरः किराटो ।

हारादिकैयूरविभूषिताङ्गो

देवाधिपौलीकपतिः प्रशान्तः ॥

कार्यं इति अध्याहार्यं

अभ्यर्च्य देवान् मरुतश्च पूर्व

मनन्तरं विप्रवरांस्तथैव ।

प्रत्येकमेव प्रददेत्तेषां

प्रदक्षिणं चोत्तरपूर्वमेव ॥

प्राप्ते शुभे पुण्यकाले च दाना

स्नात्वा ततस्तिलमिश्रैः कुशोदकैः ।

प्रदक्षिणं पुष्पगृहोत्तमस्तः

कृत्वा तु विप्रेण सहैव सर्वान् ॥

प्रणम्य पुष्पाञ्जलिना च सर्व

प्रदापयेद्देवगणं क्रमेण ॥

प्रत्येकमेवं द्विजपुङ्गवानां

प्रणम्य सत्त्वं समुदाहरेद् ॥



दुर्गतिं देवं मरुतान्त्यैकं  
 नयि प्रभो देव कुरु प्रमादं ।  
 तव प्रमादादघनागनं मे  
 शोवर्णकृपास्तु, मदा मरेशाः ॥  
 इत्यवमुक्ता मरुतः प्रदाय  
 ततोमहेन्द्रं प्रददेच्च देवं ।  
 यः कारयेद्विप्रवरस्तु तस्मै  
 स्वस्ताति विप्राय पुरोभिवाय ॥

ततः संपूज्य गुरवे दक्षिणाञ्च यथोचितान्  
 अस्तिवाचकविप्राणां दक्षिणाञ्च यथार्हताः ॥  
 तेलोक्तराजो जगतामधोगो  
 देवाधिपो दैत्यगणाभिहन्ता ।  
 यस्यामि मन्त्रं प्रददातु देवो  
 देवाग्रजीवञ्चधरः प्रशान्तः ॥  
 इत्युच्चायै ततो दद्याद्विं वज्रधरं हरिः ।  
 पुत्रायामपि शक्तस्य मन्त्र एव प्रकीर्त्तितः ॥  
 य एवं कुरुते दानं मरुतास्विधिपूर्वकं ।  
 स सर्वकामसंपन्नो देववद्विषि मोदते ॥  
 ययोक्तं ब्रह्मणा वेदं नारदाय सरपये ।  
 तथा मयापि वः सर्वं प्रोक्तं वै मुनिमत्तमा ॥

इति मरुदानविधिः ।

अथ भुवनप्रतिष्ठाविधिः ।

भविष्योत्तरात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रतिष्ठा शाश्वती केन दानेन मधुसूदन ।  
इह लोके परे चैव कीर्त्तिः स्यादङ्गता तथा ॥  
मद्गतिञ्च यथा यान्ति सर्वे पितृपितामहाः ।  
मन्ततिश्चाक्षया लोके विभवश्चापि पुष्कलः ॥  
स्थापनं सर्वदेवानां कथं स्याद्यदुनन्दन ।  
तदाचक्ष्व महाभाग दानेन नियमेन वा ॥

श्रीकृष्णउवाच ।

माधु पृष्टं त्वया राजन् लोकानामुपकारकं ।  
शृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यं परममुत्तमं ॥  
भुवनानां समामेन प्रतिष्ठा कथयामि ते ।  
देवासुरास्तथा नागा गन्धर्वा यक्ष-राक्षसाः ॥  
प्रेताः पिशाचा भूताश्च स्थापिताश्च न संग्रयः ।  
कारकस्यानुकूले तु मूर्हर्त्तं विजये शुभे ॥  
पुण्ये तिथौ गिवे ऋत्रे दिने सौम्यग्रहान्विते ।  
सप्तहस्तं पटं कृत्वा चतुरस्रं सुसंहतं ॥  
भिन्नाङ्गं सुदृढं शुद्धं शुद्धस्फटिकवच्चमं ।  
तस्मिन् सर्वाणि राजेन्द्र भुवनानि लिखापयेत् ॥  
चतुर्वर्णकमानोय विचित्रं चित्रकर्माणि ।  
युवानं व्याधिरहितं भव्यं चित्रकरं शुभं ॥  
संपूजयित्वा यत्नेन पुष्पवासो विभूषणैः ।

तस्मिन् कर्मणि युञ्जीत पठमानो द्विजोत्तमैः ।  
 गङ्गभेरीनिनादैश्च गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।  
 पुष्पाञ्जयत्रीपैश्च ब्राह्मणान् पूज्य यत्नतः ।  
 आचार्यैरपि सपूज्य वानोभिर्भूषणैस्तथा ।  
 प्रारम्भं कारयेद्राजन् पठे तस्मिन् यथोदितं ।  
 पौराणं विधिमास्थाय भुवनानि यथाक्रमं ।  
 मध्ये लिखापयेद्राजन् जम्बूद्वीपं सविस्तरं ।  
 तत्र मध्ये स्थितीमेरुर्ध्वरोरुपरि देवताः ।  
 दिशासु लोकपालानां पुर्यांऽष्टौ सुरसंयुताः ।  
 सप्तद्वीपवती पृथ्वी सप्तचैव कुलाचलाः ।  
 सागराः सप्त एवात्र नद्योऽह्वयाः स सिन्धवः ।  
 पातालाः सप्त वा चैव सप्तस्वर्गदिभूतयः ।  
 ब्रह्म-विष्णु-शिवादीनां भुवनानि यथाक्रमं ।  
 ध्रुवमार्गस्तथादित्यो ग्रहतारागणैर्वृतः ।  
 दिव-दानव-गन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।  
 ऋषयो मुनयो-गावो-देवमातर-एव च ।  
 सुपत्नीत्याश्च विहगा नागाश्चैरावतादयः ।  
 दिग्गजाष्टकमत्रैव लेखयेद्रत्नमण्डितं ।  
 एवं विधं पठं राजन् कारयित्वा सुशीभनं ।  
 दशोत्तरेण पयसा एतत् सर्वं समावृतं ।  
 तत्तेजसावृतं भूमीमहतीयेण सर्व्वशः ।  
 तेजस्तुवायुना वायुराकाशेन समावृतः ।  
 भू-आदिना तथाकाशं भूतादिमहता तथा ।

अव्यक्तेन महांश्चैव व्याप्नो नै बुद्धिलक्षणः ।  
 अव्यक्तान्तमसा व्याप्तं तमश्च रजना तथा ।  
 रजः सत्वेन संव्याप्तं त्रिधा प्रकृतिरुच्यते ।  
 एवमावरणोपेतं ब्रह्माण्डमखिलं नृप ।  
 पुरुषेणावृतं सर्वं सवाह्याभ्यन्तरं तथा ॥  
 एतत्सर्वं पटस्यन्तु कृत्वा चित्रमयं सुधीः ।  
 कार्त्तिक्यामयने चैव विपुवे ग्रहणे तथा ॥  
 पूजयेद्येन विधिना तत्समाप्तेन मे शुणु ।  
 पूर्वतोमण्डलं चान्य दिचित्रं कारयेद्बुधः ॥  
 नव कुण्डानि चत्वारि चतुरस्त्राणि कारयेत् ।  
 द्वौ द्वौ नियोजयेत्तेषु ब्राह्मणौ वेदपारगौ ॥  
 यज्ञोपकरणोपेतौ वस्त्राभरणभूषितौ ।  
 हेमं कुर्युर्यतात्मानोऽः सोनिनः सर्व एव ते ॥  
 नामधेयैः पटस्थानां मन्त्रै रीङ्गारपूर्वकैः ।  
 यजमानस्ततः सर्वं सर्वालङ्कारभूषितः ॥  
 आचार्येण समं कुर्यात्पूजामग्रे पटस्य तु ।  
 पुष्पैर्वस्त्रैः समभ्यर्च्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥  
 ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि कुवनानोह यानि तु ।  
 तानि सन्निहितान्यत्र पूजितानि भवन्तु मे ॥  
 ब्रह्मा विष्णुस्तथारुद्रो ह्यादित्या वसवस्तथा ।  
 पूजितास्तु प्रतिष्ठानु भवन्तु सततं मम ॥

एवं समूज्य विधिवत् कृत्वाचैव प्रदक्षिणं ।  
 भस्त्रान्नाविधांश्चैव नैवेद्यं तत्र दापयेत् ॥  
 गङ्गतर्प्यनिनादैश्च जागरं कारयेत्ततः ।  
 ब्रह्मवीर्यैर्विचित्रैश्च गीतमङ्गलनिःस्वनैः ॥  
 पुनः प्रभाते विमले स्नात्वा शुचिरलङ्कृतः ।  
 पूज्यं विधानेन पुनः सम्पूज्य तं पटं ॥  
 ऋत्विक् पूजान्ततः कृत्वा गोगतेन विचक्षणः ।  
 अथ वा गोयुगन्त्यादेकैकस्याप्यलङ्कृतं ॥  
 उपानही तथाच्छतं गृहोपकरणानि च ।  
 यद्यदिष्टतमं हविर्होतृर्दद्याद्विचक्षणः ॥  
 ततः प्रकल्पयेदानं नागयुक्तमलङ्कृतं ।  
 अक्षभे वाजिसंयुक्तं पताकाध्वजमालिनं ॥  
 महत्सं दक्षिणान्दत्त्वा ततस्त्वारोपयेत्पटं\* ।  
 ब्राह्मणं वा रथेनाथ नयेद्देवालयं बुधः ॥  
 तत्र संस्थापयेन्नोत्वां गन्धैः पुष्पैश्च पूजयेत् ।  
 तत्रापि दद्यान्नैवेद्यं कुर्याच्चापि महोत्सवं ॥  
 यस्मिन्नायतने तस्य प्रतिष्ठा क्रियते नृप ।  
 पूजा तत्रापि महती कर्त्तव्या भूतिमिच्छता ॥  
 चन्द्रातपन्तु घण्टाश्च ध्वजाद्यन्दापयेत्क्षुधीः ।  
 यथागन्ध्या च राजेन्द्र गुरुं गौरवयन्नुप ॥  
 अभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् ।

दीनान्धकृपणानाञ्च भोजनञ्चानिवारितं ॥  
 तस्मिन्नहनि दातव्यं मित्रस्वजनवन्धुषु ।  
 अनेन विधिना यस्तु यद्दधानो-जितेन्द्रियः ॥  
 कुर्यान्नरो वा नारी वा प्रतीष्टां सार्वभौमिकीं ।  
 स्थापितन्तु भवेत्तेन त्रैलोक्यं सचराचरं ॥  
 कुलञ्चोत्तारितन्तेन सपुत्रेण युधिष्ठिर ।  
 यावच्च देवतागारे पटस्तिष्ठति पूजितः ॥  
 तावच्चास्या तदा कीर्तिस्त्रैलोक्ये प्रतिमर्षति ।  
 दिनानि कीर्तिर्यावन्ति मर्त्यलोकेषु गीयते ॥  
 तावद्धर्ममहस्राणि सूर्यलोके महीयते ।  
 गन्धर्वैर्गीयमानस्तु अप्सरीगणसेवितः ॥  
 वसेत हृष्टमनसा यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।  
 पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजराजोऽभिजायते ॥  
 पुत्रपौत्रवृत्तः शोमान् दीर्घायु-रतिधार्मिकः ।  
 दशजन्मानि राजेन्द्र जायते हतकण्ठकः ॥  
 शीस्तस्य जायते नित्या तेजश्याव्याहतश्रुति ।  
 बलस्त्वृद्धिर्जनन्यान्यं पुत्रपौत्रं तथोत्तमं ॥  
 एतत्कृष्णमवाप्नोति कृत्वा तत् सुरमत्तमः ।  
 कीर्तिस्तु प्रथिता तस्य बलञ्चापि महद्भवेत् ॥  
 अपराण्यपि जन्मानि सप्त राजा भवत्यसौ ।  
 पश्चाद्यतिकुले भूत्वा निर्व्वाणं प्राप्नुते परं ॥  
 अस्मात्परतरं नास्ति त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।  
 एतत् कृत्वा तु मनयो लेभिरे परमं पदं ॥

एतस्यैव प्रभावेण पुराणाश्चक्रवर्त्तिनः ।  
 तथाविधं पदं लब्ध्वा लोके कीर्त्तिर्व्यिते निरे ॥  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मान्वं परिपृच्छसि ।  
 नारी वा पुरुषो वापि प्रतिष्ठाभौवनीन्तु यः ॥  
 प्रकरोति विधानेन कृतकृत्यो भवेद्भुवं ।  
 धर्मञ्च वर्द्धयति\* धर्मशतानि धत्ते  
 प्रसादयति पापमपाकरोति ।  
 विख्यापयेच्च भुवनेषु विशेषनिष्ठां  
 तन्नास्ति यत्र कुरुते भुवनव्रतिष्ठां ॥

इति भुवनप्रतिष्ठाविधिः ।

अथ कल्पदानं ।

मत्स्यपुराणे ।

कल्पानुकीर्त्तनं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनं ।  
 यस्यानुकीर्त्तनादेव वेदपुण्येन युज्यते ॥  
 प्रथमः श्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः ।  
 वामदेवस्तृतीयस्तु ततो रथन्तरोपरः ॥  
 रौरवः पञ्चमः प्रोक्तः षष्ठः प्राण इति स्मृतः ।  
 सप्तमोऽथ बृहत्कल्पः कन्दर्पोऽष्टम उच्यते ॥  
 नवमोऽथ नवमः प्रोक्त ईशानो दशमः स्मृतः ।

व्यान एकादशः प्रोक्तः तथासारस्वतीपरः ॥  
 चयोदश उदानस्तु गारुडीश्च चतुर्दशः  
 कूर्मः पञ्चदशोज्ञेयः पौर्णमासी प्रजायते ॥  
 षोडशी नारसिंहस्तु समानस्तु ततः परः ।  
 आग्नेयोऽष्टादशः प्रोक्तः सीमकल्पस्तथा परः ॥  
 मानवी विंशतिः प्रोक्तस्तत्पुमानिति चापरः ।  
 वैकुण्ठ-स्थापरस्तद्वज्रक्ष्मीकल्पस्तथापरः ॥  
 चतुर्विंशस्तथा प्रोक्तः सावित्रीकल्पसंज्ञकः ।  
 पञ्चविंशतिर्मे घोरी वाराहस्तु ततोपरः ॥  
 सप्तविंशोऽथ वैराजी गौरीकल्पस्तथापरः ।  
 माहेश्वरस्ततः प्रोक्ता त्रिपुरी यत्र धातितः ॥  
 पितृकल्पस्तथा ते तु या कुह्वर्रक्ष्णः स्मृता ।  
 इत्ययं\* ब्रह्मणीमामः सर्वपापप्रणाशनः ॥  
 आदावेव हि माहात्म्यं यस्मिन् यस्य विधीयते ।  
 तस्य कल्पस्य तन्नाम विहितं ब्रह्मणा पुरा ॥  
 यस्तु दद्यादिमान् कृत्वा हैमान् पर्वणि पर्वणि ।  
 ब्रह्मविष्णुपुरे कल्पं मुनिभिः पूज्यते दिवि ॥  
 सर्वपापक्षयकरं कल्पदानं यतोभवेत् ।  
 मुनिरुपांस्ततः कृत्वा दद्यात् कल्पान् विचक्षणः ॥  
 मुनिरुपान् मुन्याकारान्, मुनिलक्षणमुक्तं



ब्रह्माण्डदाने ।

इति कल्पदानविधिः ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-  
सकलविद्याविगारदश्रीहेमाद्रिविरचिते चतुर्वर्गचिन्ता-  
मणौ दानखण्डे देवतादानप्रकरणं ।

---

अथ कालविशेषेण दानविशेषा अभिधीयन्ते ।



अभ्यर्चन् विधिनातिथीन् विरचन् नक्षत्रयोगान् तिथीन्  
वारस्वारमुदारमङ्गलगुरुप्रोतिर्वृधं प्रोणयन् ।

विभ्राणः पृथ्मित्रमण्डलमदामङ्गान्तिकान्तं गृहं  
माधु योकरणप्रयोगकुशलो हेमाद्रिरेव चित्तो ॥

तेनाथ तिथिवारर्क्षयोगेषु करणेषु च ।

मङ्गान्त्यादिषु कालेषु क्रियते दानसंग्रहः ॥

तत्र तिथिदानानि तावदच्यन्ते ।

विष्णुधर्माक्षरे ।

प्रतिपद्यथ पुष्पाणां द्वितीयायां घृतस्य च ।

पञ्चम्यान्तु फलानां वै षष्ठ्यां स्नानस्य मानद ॥

सप्तम्याञ्चाप्यपूपानामष्टम्याञ्च गुडस्य च ।

कुल्माषस्य नवम्याञ्च दशम्यां भोजनस्य च ॥

एकादश्यां सुवर्णस्य द्वादश्यां वसनस्य च ।

त्रयोदश्यान्तु गन्धानां सितायास्तदनन्तरं ।

दानञ्च परमानस्य पञ्चदश्यां महाफलं ॥

भविष्योत्तरे ।

श्रीकृष्णविरचिते ।

तिथिदानमिदानीं कथयामि युधिष्ठिर  
मर्त्यपापप्रशमनं सर्वविघ्नविनाशनं ॥  
मानसं वाचिकं वापि कर्मजं सदृशमर्थवत् ।  
सर्वं प्रशममायाति दानेनानन्दं पाण्डव ॥  
आशुते कार्थिके चैव वैशाखे फाल्गुने तथा  
मितपक्षे तु तदानं दातव्यं पट्टिवर्जितं ॥  
दत्तं यथा मनायथ पात्रप्राप्तिस्तथैव न ।  
दानकालः सदैवैव कथितस्तत्त्वदर्शिभिः ॥  
तथैवायतने गोत्रे गृहे वा निवृत्तात्मवान् ।  
गृहदाति नरद्वयं तदानक्यायः कल्पते ॥  
प्रतिपादसु द्विजान् पूज्य पूजयित्वा प्रजापतिं  
सौवर्णभरविन्दं च कारयित्वाष्टपत्रकं ।

प्रजापतिलक्षणमङ्गं,

ब्रह्माण्डदाने ।

ब्रह्मा श्रीदुखरे पात्रे सुगन्धघृतपरिते ।  
पुष्पैर्धूपैः पूजयित्वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥

श्रीदुखरं ताम्रपात्रं ।

एतेन विधिना दत्त्वा कमल कमलालयं ।  
दंष्ट्रानां लभते कामान् निष्कामो ब्रह्ममात्मतां ।

वज्रि पूज्य दितोयाया भुभुव स्वरिति क्रमान  
तिलाज्यन यत जुत्वा दत्त्वा प्रणाहुति ततः ।  
वेद्यानरन्तु मोवर्गं स्थापयेत्ताम्रभाजने ।  
गुडाज्यपूरिति राजंस्तावत्पुष्पघटापरि ।  
पूजयित्वा वस्त्रमालाभेद्यभोज्यनेत्रयोः ।  
ततस्त ब्राह्मण दद्यात्तु वज्रिभ्यो प्रीयतामिति ॥

वेद्यानरन्तुसामुद्र

ब्रह्माण्डदाने ।

यात्रजीवकृतास्यापायश्च्युते नात्र मगधा ।  
मृती वज्रिपुर याति प्राचिद नारदोमृतिः ।  
दृतायायां महाराज गोधा स्वर्णभया कुभा ।  
स्थापयेत्ताम्रपात्रे तु लवणापरि वेगयेत् ।  
जीरकं कदुखण्डश्च गुडं पाणेषु दापयेत् ।  
रक्तवस्त्रयुगकच कुङ्कुमेन विमर्षित ।  
पुष्पधूपैः सनेवेशं पूजयित्वा द्विजावये ।  
दत्त्वा यत फलमाप्नोति पात्रे ततः कदु खण्डेन ॥  
प्रासादा यत्र मोवर्गो गद्य पायसकट्टमा ।  
गन्धर्वा ऋषयो यत्र तत्र ते यान्ति मानवाः ।  
स्वर्गादावर्गो समारि मलय मधुरो भोजनः ।  
दाता भोज्या बहुयुता य एतेन समर्पितः ।  
नारी वा तद्गौर्यैका भवतीति न संशयः ॥

७. ममालं मानं ममकाकर पठ

८. वज्रि पम्पुद्वयमिति पुष्पक करे पाठ

९. मम दामदति कवितपाठ

वह्निपुराणे ।

योददाति द्विजेभ्यस्तृतीयायामुपानहौ ।  
 वैशाखे शुक्ले पक्षे तु सकृत् करकान्वितं ।  
 न तस्य मानसोदाहोमर्त्यलोकेऽभिजायते ॥  
 सर्व्वव्याधिविनिर्मुक्तः श्रियं पुत्रांश्च विन्दति ।  
 कालादिह यदायाति मम लोके द्विजोत्तम ॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां द्विजोत्तम ।  
 यद्ददाति नश्येन्न तदन्नयं ममश्रुते ।  
 विर्गघेण तु दानेन भक्षितानां प्रकीर्तितं ॥

आह विष्णुः ।

वैशाखे मासि तृतीयायामुपोषिती अक्षतैर्वासुदेवमभ्यर्च्य  
 तान्येव च कृत्वा सर्व्वपापेभ्यः पृथोभवति यच्चास्मिन्नहनि प्रयच्छति  
 तदन्नयमाप्नोतीति ।

भविष्यत्पुराणे ।

माघमासे तृतीयायां गुडस्य लवणस्य च ।  
 दानं यद्यस्करं राजन् स्त्रोणान्तु पुरुषस्य च ॥  
 गुडिन तुष्यते नूनं लवणेन चतुर्भुजः ।  
 गुडपृजा तु दातव्या मासि भाद्रपदे तथा\* ॥  
 तृतीयायां पायसिन वामदेवस्य प्रीतये ।  
 वारिदानं प्रशस्तं स्यान्मोदकानान्तु भारत ॥

वैशाखे मामि राजेन्द्र तृतीयायाञ्च चन्दनैः ।  
 वारिणा तुष्यते विप्रो-मोदकैर्भीम एव हि ॥  
 दानन्तु चन्दनस्यैह पद्मयोनावसंगयः ।  
 या त्विषा कुरुगार्हूल वैशाखे मामि वै त्रियिः ॥  
 तृतीया सा क्षया लोके गोवर्णिर्गभिनन्दिता ।  
 सुपात्राय महाबाहो भृगिचन्द्रश्च सुव्रत ।  
 कलघौतं तयात्रश्च घृतं वारिपि विगेषतः ॥

चन्द्रं सुवर्णं, कलघौतं रुप्यं.

अस्यां दत्तं त्वक्षयं स्यात्तेनेय मक्षया स्मृता ।  
 यत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदिवा बहु ।  
 तत्सर्वमक्षयं याति तेनेयमक्षया स्मृता ॥  
 यस्यां ददाति करकान्\* वारिपात्रमभिव्रितान् ।  
 स याति पुरुषोवीर लोके वै हेममालिनः ॥

भविष्योत्तरे ।

चतुर्थ्यां वारणं हेमं पलाद्वेन्तु गोभनं ।  
 कारयित्वाङ्गयत् तैलद्रोणापरि न्यसेत् ॥  
 यस्त्रैःपुष्पैः पूजयित्वा नैवेद्यं विनिवेद्य च ।  
 ततस्तु ब्राह्मणे दद्याद्भोगैः प्रीयतामिति ॥

\* रभिव्रिता इति क्वचित्पाठ

\* लोकान् वै हेममालिन इति क्वचित् पुष्पके पाठ

वारिपात्रे न क्वचित्पाठ

कार्यारम्भेषु सर्वेषु तस्य विघ्नं न जायते ॥  
 वारणः सतजन्मानि भवन्ति मद्विद्वलाः ।  
 वारणेन्द्रं समारूढस्त्रिलोकविजयी भवेत् ॥

अत्र च ।

श्रावणे कात्तिकेचैत्रइत्यादितिथिदानारम्भेऽभिहितोमास-  
 नियमः सर्वेषु भविष्योत्तरोक्ततिथिदानेषु वेदितव्यः ।  
 पञ्चम्यां पन्नगं सर्वस्वर्गेनैकेन कारयेत् ।  
 क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत् ॥  
 द्विजं सम्पूज्य वासीभिः प्रणिपत्य क्षमाप्य च ।  
 द्रुह लोके परे चैव दानमेतत् सुखावहं ॥  
 नागोपद्रवविद्रावि सर्वदुष्टनिबर्हणं ।  
 प्रायश्चित्तं तथा प्रोक्तं नागदष्टस्य शम्भुना ॥  
 षष्ठां शक्तिसमीपितं कुमारं शिखिवाहनं ।  
 कारयित्वा यथाशक्त्या हैममालाविभूषितं ॥

कुमारलक्षणमभिहितं

विष्णुधर्मोत्तरे ।

कुमारः षण्मखः कार्यः शिखण्डकविभूषितः ।  
 रक्ताम्बरधरः कार्यः मयूरवरवाहनः ॥  
 कुक्कुटय तथाषण्ठा तस्य दक्षिणहस्तयोः ।  
 पताका वज्रयन्त्रो च शक्तिः कार्या च वामयोरिति ॥  
 तगङ्गलङ्कोणशिखरे वासीभिः पूज्य शक्तिः ।

नमस्कृत्य ततो-दद्याद्वाङ्मणाय कुटुम्बिने ॥  
 इह भूतिञ्च सम्प्राप्य प्रेत्य स्वर्गे महीयते ।  
 शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणो ब्रह्मलोकभाक् ॥  
 सप्तम्यां भास्करं चैव स्मूज्य ब्राह्मणमुत्तमं ।  
 दद्यादलङ्कृतश्रीवं सपर्याणं सदक्षिणं ॥

दानमन्त्रस्तु ।

अश्वदाने द्रष्टव्यः ।

सूर्यलोकमवाप्नोति सूर्येण सह मोदते ।  
 गन्धर्वस्तुष्टिमाप्नोति दत्तेऽश्वे समलङ्कृते ॥  
 अष्टम्यां वृषभं श्वेतमव्यङ्गाङ्गन्धर्वम् ।  
 सितवस्त्रयुगच्छन्नं घण्टाभरणभूषितं ॥  
 दद्यात् प्रणम्य विप्राय प्रीयतां वृषभध्वजः ।  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा आगारान्तमनुव्रजेत् ॥  
 दानेनानेन नृपते शिव लोको न दुर्लभः ॥  
 वृषस्कन्धेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश ॥  
 तस्माद्वृषभदानेन दाता भवति भारतः ॥  
 नवम्यां काञ्चनं सिंहं कारयित्वा स्वशक्तितः ।  
 मुक्ताफलाष्टकयुतं नीलवस्त्रावगुण्ठितं ॥  
 दद्याद्देवी मनुस्मृत्य दुष्टदैत्यनिवर्हणीं ।  
 द्विजातये प्रदायेत्तथं सर्वान् कामान् समश्नुते ॥  
 कान्तारवनदुर्गेषु चौरव्यालाकुले पथि ।  
 हिंसकाश्च न हिंसन्ति दानस्यास्य प्रभावतः ॥



मृतोद्वोपुर्न याति पूज्यमानः सृगासुरैः ।  
 पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य राजा भवति धार्मिकः ॥  
 दशम्यां नृपशार्दूल दत्त्वाशाः स्वर्गनिर्मिताः ।  
 लवणे च गुडे जीरनिष्पाविषु तिले प्यथ ॥  
 गन्धवये तण्डुलेषु माषाणामुपगिस्थिताः ।  
 संपूज्य वस्तुष्वप्याद्यै द्विजाय प्रतिपादयेत् ॥

आशा दिशः ।

तामां लक्षणमुक्तं ।

आशादशमीव्रजे ।

तद्यथा । स्त्रीरूपाद्याधिदेवस्य शस्त्रवाहननिष्क्रिता इति-  
 पूर्वादिक्रमेण गत्यादेरधिदेवस्य शस्त्रादिभिः शिङ्क्रिता-  
 इत्यर्थः गत्यादीनामपि शस्त्र वाहनानि ब्रह्माण्डदाने द्रष्टव्यानि ।

आशाः स्वाशा सदा मनु सिद्धतां मे मनोरथः ।

भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति ॥

पूजादानमन्त्रः ।

अनेन विधिना यस्तु पुमान् स्त्रीवाथ वा पुनः ।  
 निर्वापयति राजेन्द्र तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 इह लोकेनवाप्यायात् प्रेत्य स्वर्गे महीयते ।  
 मफलास्तस्य सर्वाशा याः काश्चिन्मनसि स्थिताः ॥  
 ततः स्वर्गादिहाभ्येत्य कुले महति जायते ।  
 एकादश्यां गरुत्मन्तं कारयित्वा हिरण्यमयं ॥

यथा शक्त्या ताम्रपात्रे दृतस्योपरिपूजितं ।  
 पञ्चान्यभिरते विप्रे गुरवे प्रविशेषतः ॥  
 दत्त्वा किं बहूनोक्तेन विष्णुलोके महीयते ।  
 गरुत्मनो रूपमक्तं विष्णुवर्मात्तरे ॥  
 तार्क्ष्यामरकतप्रख्यः कौशिकाकारनाभिकः ।  
 चतुर्भुजस्तु कर्त्तव्या वृत्तनेत्रमखस्तथा ॥  
 भूस्थजानृद्धेजानृथ पक्षद्वयविभूषितः ।  
 प्रभामंस्था तु मौवर्णिकलापेन विवर्जितः ॥  
 कृत्वन्ते पूर्णकुम्भञ्च करयोस्तस्य कारयेत् ।  
 करद्वयं तु कर्त्तव्यं तथा विरचिताञ्जलिः ॥  
 विष्णुः पुरश्चेत् काव्यो मौ द्विभुजोरचिताञ्जलि रिति ।  
 गां वृषं महिषो हेमसप्तधान्य मजाविकं ॥  
 वडवां गुडरमान् सर्वान् तथा बहुफलान्यपि ।  
 पुष्पाणि च पवित्राणि गन्धांश्चाञ्चावचान् वनान् ॥  
 सैलयित्वा यथा भक्त्या वस्त्रराक्राय तां नवैः ।  
 द्वादश्यां द्वादशैतानि ब्राह्मणीभ्यो निवेदयेत् ॥  
 एकस्य वा सहाराज दत्तं फलं तन्निशामय ।  
 एषां दानमन्तास्तद्दान प्रकरणेषु गवेषणीयाः ॥  
 इह कीर्त्तिं परां प्राप्य भुक्त्या भागान् यथेप्सितान् ।  
 ततो विष्णुपुरं याति सैष्यमानीऽप्सरीगणैः ॥  
 कर्मक्षयादिहागत्य राजा भवति धार्मिकः ।  
 यज्ञयाजो दानपतिर्जीविञ्च शरदांगतं ॥

विवर्जिता क्वचित्पाठः

यावणे कार्तिके चैत्रे वैशाखे फाल्गुने तथा ।  
शुक्लपक्षे प्रदातव्यमेतच्छ्रेयो विवर्द्धनं ॥

विष्णुधर्मात्तरे ।

द्वादश्यां चैत्रशुक्लस्य चित्रवस्त्रप्रदीनरः ।  
अन्नयं फलमाप्नोति नागलोकं च गच्छति ॥  
वैशाखमासि द्वादश्यां रुक्मदानं तथैव च ।  
कृत्वापानहयोर्दानं ज्येष्ठे मासि महीभुजः ॥  
स्वास्तौर्णां शयनं दत्त्वा प्रीणयेद्भोगशायिनं ।  
आषाढशुक्लद्वादश्यां श्वेतद्वीपे महीयते ॥  
यावणे वस्त्रदानेन विष्णुलोके महीयते ।  
गौडः प्रयाति गौलीकं मासि भाद्रपदे द्विजाः ॥  
प्रीणयेदश्वगिरिममश्वन्दत्त्वा तथाश्विने ।  
विष्णुलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते स्वकं ॥  
नरसमवस्त्रदानेन कार्तिके दिवमाप्नुयात् ।  
प्रदानं लवणस्यैव मागेगीर्षे मन्त्रफलं ॥  
धान्यानां च तथा पीपे दारुणां च तथात्तरैः ।  
फाल्गुने सर्वगन्धानां द्वादश्यां दानतः सुखी ।  
एवं यत्रोक्तदानेन दाता स्वर्गे महीयते ।

वाराहपुराणे ।

मागेगीर्षीत्य वैशाखो द्वौ मासौ मम वल्लभौ ।  
यनयोर्मसयोद्युस्तु द्वादश्यां नियतात्मवान् ॥

द्वादशानां तु विप्राणां योद्दति त्रसन्धरे ।  
 एकैकस्य तु गां त्रैष्टां सर्वापस्करसंयुतां ॥  
 वस्त्रोपानयगे चैव कर्णालङ्कारणव च ।  
 आतपत्रं पादुके च अङ्गुलीयकमिव च ॥  
 विलिप्य चोपवीतं च मां ध्यायन् भक्तिसंयुतः ।  
 दद्यादगर्तौ पञ्चानां तयाणां च द्वयोरथ ॥  
 अगर्तौ त्वय वैकस्मिन्वेदवदाङ्गपारगे ।  
 अक्रोधने व्रतस्ये च आयितेषु विर्गपतः ॥  
 मार्गगौर्ष यत्रा देवि वैशाखे मामि योनरः ।  
 दद्यादनेन विधिना तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 मन्त्रन्तराणां कोट्यास्त दग मम च पञ्च च ।  
 मङ्गरिरगतयास्ते सर्व्वे हं हविर्वर्जितः ॥  
 यद्यपि स्युर्ग्रहाः सर्व्व सृष्टिं लिङ्गे गनैश्चरः ।  
 सर्व्वे ते मां स्यतां यान्ति द्वादश्यां विधिना मुना ॥

### कर्मपुराणे ।

एकादश्यां निराहरी द्वादश्यां पुरुषोत्तमं ।  
 अर्चयेद्वाङ्मणमुखे गर्कराष्टनप्रायसैः ॥  
 एषा तिथिर्वैष्णवी स्यात् द्वादशी शुक्ल पक्षके ।  
 तस्यामाराधये देवं पयस्त्रेण जनार्दनं ॥  
 यत् किञ्चिदेव भोगानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ ।  
 दौशते विष्णुमेवापि तदनन्तफलप्रदं ॥  
 तस्मादस्यान्तिशो देवं भट्टमन्नं शुभार्थिभिः ।

विष्णुः ।

पौष्पां च समतीतायां कृष्णपद्मादृश्यां सोपवासस्तिलैः स्नात  
स्तिलोदकं दत्त्वा तिलैर्वासुदेवमभ्यर्चयतानिव हुत्वा भुक्त्वा च सर्व-  
पापेभ्यः पूतो भवति माघ्यां समतीतायां कृष्णद्वादशीं सश्रवणां  
प्राप्य वामदेवाग्रतो महावर्त्तिद्वयेन दीपदानं दद्यात् दक्षिण-  
पार्श्वे महारजतरक्तेन समग्रेण वामसा तैलतुलामष्टाधिकां दत्त्वा  
वामपार्श्वे श्वेतेन समग्रेण वामसा घृततुलामष्टाधिकां दद्यात्  
एतत् कृत्वा यस्मिन्नाष्ट्रे ऽभिजायते यस्मिन्देशे यस्मिन् कुले तत्रो  
ज्वली भवति ।

दक्षिणपार्श्वे इत्यादिना महावर्त्तिद्वयमेव कथयति महा  
रजतरक्तेन कौसुमरक्तेन तुलापलगतं ।

यमः ।

माघान्धकारद्वादश्यान्तिलैर्हुत्वा हुताशनं ।  
तिलान्दत्त्वा च विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

आवणे शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां प्रीतये नृप ।  
गोप्रदानेन गोविन्दो यत्पूर्वं कथितं तव ।  
फलं तत्सर्वमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥

भविष्योत्तरात् ।

स्नापयेद्वाङ्गान् प्रातस्तयोदश्यान्त्ययोदश ।  
तानाच्छाश्वनवैर्वस्त्रैर्गन्धपुष्पैश्चाञ्जयेत् ॥

भोजयेदपि मृष्टान्नं दक्षिणां विनिवेदयेत् ।  
यथाशक्त्या हेमखण्डान् धर्मात्मा प्रीयतामिति ॥  
धर्मराजाय कालाय चित्रगुमाय मृत्यवे ।

क्षयाय क्षयरूपाय अन्तकाय यमाय च ॥

प्रेतनाथाय रौद्राय तथा वैवश्वताय च ।

महिषस्थाय चित्राय नामानोत्थं तयोद्वेग ।

उच्चार्य यद्वयायुक्तः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

यः करोति महाराज पूजामेतां मनोरमां ।

यमाय स सुखं मर्त्येऽस्थित्वा व्याधिविवर्जितः ॥

यममार्गगतं दुःखं पश्चान्नाप्नोत्यसौ पुमान् ।

न पश्यति प्रेतपुरं\* पितृलोकञ्च गच्छति ॥

पुण्यक्षयादिहाभ्येत्य स सुखी नीरुजो भवेत् ।

तथा माहेयं सशुभं कुम्भं चतुर्दश्यात् पयोभृतं ॥

कर्षकेन च संयुक्तं कुर्यात्सद्वस्त्रसंयुतं ।

घण्टाभरणशोभाढ्यं वृषभेण समन्वितं ।

यो दद्यात्क्विवभक्ताय ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥

माहेयं, मृगमयं पयोभृतं दुग्धपूर्णं कर्षकेन संयुक्तं कर्षपरि-

माणेन हेम्ना संयुक्तं ।

दद्यात् कुम्भं महेमानं भूताया दुग्धसंभृतमिति—

वातुलोके ।

एतद्वत्त्वा नग्येष्ठ शिवलोके महीयते ।

तत्र स्थित्वा चिरं कालं क्रमादेत्य महीतलं ॥

आराग्यधनसंयुक्तः कुले महति जायते ।

सर्वकामसमृद्धात्मा यावज्जन्मगतव्यं ॥

कूर्मपुराणे ।

यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनं ।

आराधयेद्द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः ॥

कृष्टस्यां विगेषेण धार्मिकाय द्विजातये ।

स्नात्वाभ्यञ्जो यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः ॥

प्रोयतां मे महादेव दद्याद्द्रव्यं स्वकीयकं ।

मर्त्यपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिं ॥

द्विजमुखे आराधयेदिति

शिदप्रोतये द्विजांस्तद्वानेन तर्पयेदित्यर्थः ।

द्रव्यं, गो-भृ-हिरण्यादि ।

अथ विष्णुधर्मोत्तरे ।

संप्राप्य चैवमामस्य शुक्तपञ्चदशीं नरः ।

चित्त्वं वस्त्वयुगन्त्यात्मोपवासो जितेन्द्रियः ॥

ब्राह्मणांश्च नमस्कृत्य मौभाग्यन्तेन वाप्रयात् ।

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान् पञ्च सप्त वा ॥

जौद्रयुक्ते स्तिलैः कृष्णैर्वीजयेद्यदि वेतरैः ।

प्रोयतां धर्मराजिति यदा मनसि वर्त्तते ।

यावज्जीवकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥

ब्राह्मणान् वाचयेदिति स्वस्तिवाचनं कारयेदित्यर्थः ।

क्षौद्रयुक्तैः सधुमन्त्रितैः कृष्णतिलैः इतरेरिति शुक्लतिलैः

ब्राह्मणान् प्रौढयेदिति शेषः ।

तस्मिन्नेव यथा काले सखरं कृष्णसार्गकं ।

तिलः प्रकृष्टाद्य वाम भिः सर्व्वगद्गेरत्वं कृतं ॥

यादद्यात्तिन दत्ता स्यान्मन्त्री सवनकालिना

एतद्विधिविस्तरस्तु कृष्णाजिनदाने द्रष्टव्यः ।

आच यमः ।

त्रैगाव्यामिव विधिवद्भोजयित्वा ब्राह्मणान् ददन् ।

त्रिगात्रमुपितः स्नात्वा कृष्णं प्रयतः शुचिः ॥

गौरान् वा द्रवि वा कृष्णांस्तिलान् क्षौद्रेण संयुतान् ।

दत्त्वा ददन् विप्रेषु तानिव स्वस्ति वाचयेत् ॥

प्रौढतां धर्मराजिति पितृन् देवांश्च तर्पयेत् ।

यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव मुञ्चति ॥

अयुतायतञ्च तिष्ठेत् स स्वर्गलोकि महीयते ।

सार्धं तु न पश्येत्, न च पापेन लिप्यते ॥

जावानः ।

शृतात्रमुदकम्भञ्च त्रैगाव्यां च विगेषतः ।

निर्दिष्टेन धर्मराजाय गोदानफलमाप्नुयात् ॥

शृतात्रं, पक्वात्रं ।

सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सम पञ्च नः ।

तर्पयेद्दृढपात्रैस्तु ब्रह्मज्ञानं व्यपोहति ॥



महाभारते ।

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु तिलान् दत्त्वा द्विजातिषु ।  
तिला भक्षयितव्यास्तु, सदात्वालभनञ्च तैः ।  
कार्यं सततमिच्छतिः श्रेयः सर्वात्मना गृहे ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

सांप्रवामस्तथा ज्येष्ठे पूर्णे तुलसीलक्षणे ।  
उपानहो तथा कृतं दत्त्वात्यन्तं सुखी भवेत् ॥  
आषाढ्यामन्नदानेन प्राप्नोत्यन्नं तथा बहु ।  
जलधेनुप्रदानेन यावण्यां स्वर्गमाप्नुयात् ॥  
गोदानं प्रोष्ठपद्यां वा पौर्णमास्यां महाफलं ॥  
आश्वयुज्यां कांस्यपात्रं दत्त्वा पूर्णं द्विजातये ।  
समुवर्णं तथा दत्त्वा दीप्तोजास्त्वह जायते ॥  
कार्तिक्यां चन्द्रवर्णाभं अन्यवर्णमथापि वा ।  
रत्नैर्गन्धैस्तथा धान्यैर्वौजैर्वस्त्रैस्तथैव च ॥  
कृत्वा चोक्तमथोच्चाणं दत्त्वा दीपं समन्ततः ।  
चन्द्रोदये नरोदत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
कान्तारे यममार्गे तु तेनासौ ब्रजते सुखं ।  
प्राप्नोति पुत्रपौत्रांश्च सूर्यलीकं च गच्छति ॥  
मार्गशीर्षे तथा मासि पूर्णे शिशिरदीधितौ ।  
महारजतरक्तेन वासमा तु महीपते ॥  
आज्याय कांस्यपात्रे तु कृत्वा सोमं समाहितः ।

महारजतरक्तेन, कुसुम्भरक्तेन, चन्द्रलक्षणं, वारदानेषु पुर-  
स्ताद्वक्ष्यते ।

लवणस्य तु मुख्यस्य संपूर्णं कृष्णमार्गकं ।

मुख्यस्य लवणस्येति, सैन्धवस्येत्यर्थः ।

दत्त्वा सुवर्णनाभन्तु तस्मिन्नेव दिजातये ।

सौभाग्यरूपलावण्ययुक्ती भवति मानवः ॥

गौरमर्षपकल्केन पीपे उच्छादितो नरः ।

उच्छादित, उद्वर्तित इत्यर्थः ।

न चात्रणेन कुम्भेन सोभिषिक्तश्च तत्परः ।

विरूपितस्तथा स्नातः सर्व्ववीजयुतैर्जलेः ॥

विरूपित, अपनोतस्नेहः ।

गन्ध-रत्न-फलोपेतैर्घृतेन तदनन्तरं ।

सौवर्णञ्च ततः कृत्वा तत् प्रदद्याद्विजातये ॥

सुवर्णमध्ये घृतेनाभिषिक्त इत्यन्वयः ।

तदिति, कुम्भादिकं प्रकृतद्रव्यं परामृष्यते ।

घृतेन स्नापितं विष्णुं शक्त्या संपूजयेत्ततः ।

घृतं च जुहुयादङ्गी घृतं दद्याद्विजातये ॥

कर्त्तुं वस्त्युगन्ध्यात्मोपवासः समाहितः ।

कर्मणानेन धर्मज्ञः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥

माध्यां कृत्वा तिलैः श्राद्धं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ।

स्वास्तांर्णं शयनं दत्त्वा फाल्गुन्यां ब्राह्मणाय च ।

रूपद्रविणसंयुक्तां भार्यां पञ्चवतीं तथा ॥

पञ्चवतीं, बह्वतरजातियुक्तां ।

नरः प्राप्नोति धर्मज्ञः श्रियञ्चैव यथोत्तमां ।

तथा । नार्थ्यपि भर्तारं नात्र कार्या विचारणा ॥

पौर्णमासीषु चैत्रीषु मासर्क्षसहितासु च ।

एतेषामेव दानानां फलं दशगुणं भवेत् ।

महत्पूर्वासु तास्विव फलमक्षय मश्रुते ॥

मामनक्षत्रसहितायां पौर्णमास्यां यदा गुरुवारस्तदा तस्या  
महत्पूर्वतेति ।

मामर्क्षसहिता जीवे महापूर्वा तु पूर्णिमेति विष्णुधर्मो-  
त्तरोक्तेः ।

आह विष्णुः ।

मार्गशीर्षे पञ्चदश्यां शुक्ले सृगशिरोयुक्तायां च चूर्णितलवणस्य  
सुवर्णनाभप्रस्थमेकं चन्द्रोदये ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् अनेन कर्म-  
णा रूपसौभाग्यवानभिजायते, पौषी चेत् पुण्ययुक्ता स्यात्तस्यां  
गौरसर्षपकल्केनोक्तादितशरीरोगव्यष्टतपूर्णकुम्भेनाभिषिक्तः सर्वा-  
पादिभिः सर्वगन्धैः सर्वजैश्च स्नातः घृतेन च भगवन्तं वासु-  
देवं स्नापयित्वा पुष्प-गन्ध-धूप-दीप-नैवेद्यादिभिश्चाभ्यर्च्य वैष्णवैः  
शाक्तैर्वार्हस्पत्यैश्च मन्त्रैः पावकं हुत्वा सुवर्णेन घृतेन ब्राह्मणं  
स्वस्तिवाचयेद्दामोयुगं कर्त्तुं दद्यादनेन कर्मणा पुण्यति, माघी-  
मघायुक्ताचेत्स्यात्तस्यान्तिलैः आङ्गं कृत्वा पूतो भवेत् भोजनार्थं  
आङ्गं तिलान् दत्त्वा सर्वजनप्रियो भवति, फाल्गुनी फाल्गुनी-  
भिर्युताचेत्तस्यां ब्राह्मणाय सुसंस्कृतं स्वास्तीर्णशयनं निवेद्य  
भार्या मनोज्ञां पञ्चवतीं द्रविणवतीं चाप्नोति, नार्थ्यपि भर्तारं,

चैत्री चित्रायुताचित्तस्यां चित्रवस्त्रदानेन सौभाग्यमाप्नोति,  
वैशाखां पौर्णमास्यां ब्राह्मणसप्तकं चौद्रयुक्तैस्तिलैः सन्तर्प्य धर्म-  
राजानं, प्रीणयित्वा पापेभ्यः प्रतोभवति, ज्यैष्ठी ज्येष्ठायुताचित्तस्यां  
कृत्रोपानत्प्रदानेन नगराधिपत्यमाप्नोति, आषाढ्यामाषाढायु-  
तायामन्नपानदानेन तदेवाक्षय माप्नोति, श्रावण्यां श्रवणयुतायां  
जलधेनुमन्नवासोयुगान्वितां दत्त्वा स्वर्गलोकमवाप्नोति, प्रौष्ठपद्या-  
न्तद्युक्तायां गोदानेन सर्वपापविनिर्मुक्तो भवति, आश्वयुज्या-  
मश्विनीगते चन्द्रमसि घृतपूर्णभाजनं सुवर्णयुतं विप्राय दत्त्वा  
दीप्ताग्निर्भवति, कार्तिकीचिद् कृत्तिकायुक्ता स्यात्तस्यां सित-  
मुन्माणमन्यवर्णे वा गणाङ्गोदये सर्वसस्य, रत्न-गन्धोपेतं द्वीप-  
मध्ये ब्राह्मणाय दद्यात् कान्तारभयं न पश्यति ।

भविष्योत्तरे ।

पौर्णमास्यां वृषोत्सर्गं कारयित्वा विधानतः ।

चन्द्रं रजतनिष्पन्नं पलिनैकेन शोभनं ।

पूजयेद्गन्धं कुसुमैर्नवेद्यं विनिवेद्य च ॥

चन्द्ररूपलक्षणान्तु, पुरस्ताद्धारदानप्रकरणे विलीकनीयं ।

दद्याद्विप्राय सत्कृत्य वासीलङ्कारभृषणैः ।

मन्त्रेणानेन राजेन्द्र तं निबोध मयोदितं ॥

क्षीरोदार्वसम्भूत तैलोक्याङ्गणद्वीपक ।

उमापतिशिरीरत्नं शिवायाश्च नमोनमः ॥

दानेनानेन नृपतिर्भ्राजते चन्द्रवद्विधि ।

अप्सरोगेभिः परिवृतोद्यावदाहृतसंघ्रवं ॥

स्कन्दपुराणे ।

तिलपात्राणि द्योदद्याद्विजेभ्यः शुद्धमानसः ।  
अमावास्यां समासाद्य कृष्णानां सुसमाहितः ॥  
स पितृंस्तर्पयित्वा तु अक्षयं नरपुङ्गवः ।  
पितृलोकं समाप्नोति चिरं च सुखमेधते ॥

कृष्णानां, तिलानामिति शेषः ।

कूर्मपुराणे ।

अमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने ।  
यत् किञ्चिद्देवदेवेशं दद्यादुद्दिश्य शङ्करं ॥  
प्रौढतामोश्वरः सोमो महादेवः सनातनः ।  
सप्तजन्मकृतं पापं तत्कृष्णादेव नश्यति ॥

सोम, उमासहितः ।

भविष्योत्तरे ।

दानान्यमूनि विधिवत् प्रतिपत्क्रमेण  
यच्छन्ति ये द्विजवराय विशुद्धसत्त्वाः ।  
ते ब्रह्म-विष्णु भुवनेषु सुखं विहृत्य  
पश्चाद्भवन्ति भुवि भूपवराः सुरूपाः ॥

इति तिथिदानानि ।

अथ युगादितिथिदानं ।

भविष्योत्तरात् युधिष्ठिर उवाच ।

पुनर्मे ब्रूहि देवेश त्वद्भक्त्या भावितात्मनः ।  
कथ्यमानमिहेच्छामि शुभं धर्ममिदं भक्तम् ।  
यत्राणुरपि दत्तोहि जप्तं वा समहद्भवेत् ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु पाण्डव ते वच्मि रहस्यं देव निर्मितं ।  
यन्मया कस्यचिन्नोक्तं सुप्रियस्यापि भारत ॥  
वैशाखमासस्य तु या तृतीया  
नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।  
नभस्य मासस्य च कृष्णपक्षे  
तयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥

वैशाखतृतीया, या शुक्लपक्षजा  
माघपञ्चदशी, कृष्णपक्षजेत्यबधेयं ।  
वैशाखस्य तृतीया या समा कृतयुगेन तु ।  
त्रेतायुगेन च समा नवमी कार्तिके तु या ॥  
तयोदशी नभस्ये तु द्वापरेण समा मता ।  
माघे पञ्चदशी राजन् कलिकालादिरुच्यते ॥  
एताश्चतस्रो राजेन्द्र युगानां प्रभवाः स्मृताः ।  
युगादयस्तु कथ्यन्ते तेनैताः सर्वस्मृतिभिः ॥  
उपवासस्तपोदानं जपहोमक्रियादिषु ।  
यदासु क्रियते किञ्चित्सर्व्वं कोटिगुणं भवेत् ॥  
वैशाखस्य तृतीयायां श्रीसमेतं जगद्गुरुं ।

नारायणं पूजयेथाः पुष्प-गन्धादिलेपनैः ।

वस्त्रा-लङ्कारसम्भारैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥

श्रीसमेतं नारायणं, लक्ष्मीनारायणं,

तद्रूपं तु देवतादानप्रकरणस्थित लक्ष्मीनारायणदाने द्रष्टव्यं ।

ततस्तस्याग्रतो धेनुर्लवणस्याढकेन तु ।

कार्या कुरुकुलश्रेष्ठ चतुर्भागेन वत्सकः ॥

अविचर्मोपरि स्थाप्य कल्पयित्वा विधानतः ।

शास्त्रोक्तक्रमयोगेन ब्राह्मणाय प्रदापयेत् ॥

श्रीधरः श्रीपतिः श्रीमान् श्रीशः सम्प्रोयतामिति ।

अनेन विधिना दत्त्वा धेनुं, विप्राय भारत ।

गोमहस्रदशगुणं प्राप्नोतीह न संशयः ॥

तथैव कार्त्तिके मासि नवम्यां नक्तभुक् नरः ।

स्नात्वा नदीतडागेषु देवखातेषु वा पुनः ॥

उमासहायं वरदनीलकण्ठमथार्चयेत् ।

पुष्पधृपादिनैवेद्यैरनिन्द्यं शङ्करं शिवं ॥

उमामहेश्वरलक्षणमुक्तं, देवतादानप्रकरणस्थित उमामहेश्वरदाने ।

धेनुं तिलमयीं दद्यात् पुराणोक्तविधानतः ।

अष्टमूर्त्तिर्नीलकण्ठः प्रीयतामिति कीर्त्तयेत् ॥

यदत्र प्राप्यते पुण्यं पार्थ तत् केन वर्ण्यते ।

दत्त्वा तिलमयीं धेनुं शिवालोकमवाप्नुयात् ॥

तयोदशी नभस्ये या कृष्णं तस्यां-समर्चयेत् ॥

कृष्णरूपमुक्तं, विष्णुधर्म्मोत्तरे ।

कृष्णयक्रधर कार्या नीलोत्पलदलद्युतिः ।

द्विवाहुः सौम्यवदनः-कुण्डलाभ्यामलङ्कृत इति ॥

पितृभ्योन्नप्रदानेन मधुना च तथैव च ।

भोजयेद्वाह्मणान् भक्त्या वेदवेदाङ्गपारगान् ॥

पितृनुद्दिश्य दातव्या भवत्सा कांस्यदोहना ।

प्रत्यक्षा गौर्महाराज तरुणी सुपयस्विनी ॥

पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

प्रोयताङ्गीप्रदानेन इति दत्त्वा विमर्जयेत् ॥

कृतेनानेन राजेन्द्र यत् पुण्यं प्राप्यते नृभिः ।

तत् केन गणितुं याति वर्षकोटिशतैरपि ॥

पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च धनं समहदीप्सितं ।

इह प्राप्नोति पुरुषः परत्र च शुभां गतिं ॥

पञ्चदशान्तु माघस्य पूजयित्वा पितामहं ।

गायत्र्या सहितं देवं वेदवेदाङ्गभूषितं ॥

ब्रह्मणी वेदाङ्गानां च, लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने ।

गायत्रीलक्षणन्तु पद्मपुराणीक ब्रह्माण्डदाने ।

गायत्री वेदमूर्तिस्तु, महाभूत घटदाने ।

नवनीतमयीं धेनुं फलैर्नानाविधैर्युतां ।

सहिरण्यां भवत्साञ्च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

कीर्तयेत् प्रोयतामत्र पद्मयोनिः पितामहः ।

यत् स्वर्गं यच्च पाताले यन्मर्त्यं किञ्च दुर्लभं ॥

तदवाप्नोत्यसन्दिग्धं पद्मयोनिः प्रसादतः ।

यानि चान्यानि दानानि दत्तानि सुबह्वन्यपि ॥

युगादिषु महाराज अत्रयानि भवन्ति हि ।



अल्पमल्पं हि यत् किञ्चित् प्रदद्यान्निर्द्वन्द्वोऽपि सन् ॥

अक्षयञ्च भवेत् सर्व्वं युगादिषु न संशयः ।

वित्तानुसारे स्वं ज्ञात्वा विभवं पार्थिवोऽपि सन् ।

अनुसारेण वित्तस्य असाध्येन समाधिना ।

भूहिरण्यं गृहं वासः शयनान्यासनानि च ।

कुत्रोपानयुगानि स्थः प्रदेयानि द्विजातिषु ॥

एवं दत्त्वा यथा शक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि ।

पथाङ्गञ्जीत मुमहत् वाग्यतः स्वजनैः समं ॥

यत् किञ्चिन्मानसम्पापं वाचिकं कायिकन्तथा ।

तत्सर्व्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात् ॥

प्रगीयमानो गन्धर्वैः स्तूयमानः सुरासुरैः ।

रमते वाक्ष्यं कालं स्वर्गलोके न संशयः ॥

यद्दोष्यते किमपि कोटिगुणं तदाहुः

स्नानं जपोहवनमक्षयमेव सर्व्वं ।

स्यादक्षयासु युगपूर्व्वतिथीषु राजन्

व्यामादयोमुनिवराः समुदाहरन्ति ॥

इति युगादिदानविधिः ।

अथ वारदानानि ।

तत्र स्कन्दपुराणे ।

आदित्यादिषु वारेषु सहिरण्याः सदैव तु ।

यः प्रयच्छति तन्मूर्त्तिस्तस्य तुष्यन्ति वै ग्रहाः ॥

दद्यादादित्यमादित्ये सोमं सोमे कुजं कुजे ।  
एवं वृधादौऋते तु राहु-केतु-शनैश्चरान् ॥

ब्रह्मपुराणे ।

यहान् स्वर्गमयान् कृत्वा यो विप्रेभ्यः प्रयच्छति ।  
तद्दिनेषु यथा गत्वा सर्वान् कामान् स विन्दति ॥

तेषां लक्षणमुक्तं ब्रह्माण्डदाने\* ।

पद्मामनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।  
ममाश्वः ममरज्जुश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥  
श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः ।  
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्त्तव्यो वरदः शशौ ॥  
रक्तमाल्याम्बरधरः शक्ति-शूल-गदा-धरः ।  
चतुर्भुजो मेघगमो वरदः स्याद्दरासुतः ॥  
पोतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारदलद्युतिः ।  
खड्ग-चर्म-गदा-पाणिः सिंहस्थो वरदो ब्रुधः ॥  
देवदैत्यगुरुस्तद्वत्पोतश्वेतौ चतुर्भुजौ ।  
दण्डिनौ वरदौ कार्य्यौ मात्तमृच-कमण्डलू ॥  
इन्द्रनीलद्युतिः शूलो वरदो गृध्रवाहनः ।  
वाणवाणामनधरः कर्त्तव्योऽर्कसुतः सदा ॥  
करालवदनः खड्ग-चर्म-शूलो वरप्रदः ।

\* मत्स्यपुराणे दशि कचिन् इति पाठः ।

नीलः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥

धूम्रा द्विवाहवः सर्व्वे गदिनो विकृताननाः ।

गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥

सर्व्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः ।

स्वाङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्व्वे शतमष्टोत्तरं सदा ॥

अष्टावादित्यादयः शतं केतव इत्युभयेष्वष्टोत्तरशतं, एकोत्तर-  
शतं केतव. एको वा केतु रिति केचित्, तत्र पक्षद्वये नवोत्तर-  
शतेन देवताप्रतिमा विधेयाः, स्वाङ्गुलेन, यजमानाङ्गुलेन, एतेषां  
दानमन्त्रा ग्रहदाने द्रष्टव्याः प्रह्वप्रोक्तेः, आदित्यवारे सुवर्णमय-  
मादित्यं कृत्वा रक्तवस्त्रं पद्मरागं च ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत्,  
कपिलां वा सूर्यलोके सर्व्वान् कामानवाप्नोति, निष्कामी मोक्षं  
सोमदिने राजतं सोमं शङ्खं वा, मङ्गलदिने सौवर्णं मङ्गलं  
रक्तं धुरन्धरं वा, वृधे सौवर्णं वृधं ज्ञानप्राप्तयेदद्यात्, गुरुदिने  
सौवर्णं बृहस्पतिं पीतं वा वस्त्रं प्रदद्यात्, शुक्रदिने राजतं शुक्रं  
श्वेतं हयं वा तत्प्रीतये दद्यात्, शनैश्चरे सौवर्णं शनैश्चरमिन्द्र-  
नीलयुतं क्षणाङ्गास्वा तत्प्रीतये दद्यात्, तस्मिन्नेव दिने राहु-  
मायमेन समन्वितं दद्यात्, केतून् च्छागसमन्वितान् तत्प्रीतये-  
दद्यात्. अत्र राहुकेतवोऽपि सौवर्णा एव, एवं विशेष दानेन  
सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।

अथाह यमः ।

आदित्यवारे विप्राय हिरण्यञ्च सदैव तु ।

यः प्रयच्छति पूर्वं हि तस्य तुष्यति वै यमः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

लवणाज्यगुर्दोपेतमपूपं सूर्यवासरे ।  
 स हिरण्यं नरो दत्त्वा न रोगैरभिभूयते ॥  
 एवं विधञ्चेद्दिने दत्त्वा सौभाग्यमाप्नुयात् ।  
 काष्ठदानं भोमदिने गत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥  
 बुधैः क्रीडनकानाञ्च दानं बालेषु शस्यते ।  
 जौवाङ्गि वस्त्रदानेन परान्तुष्टिं\* समश्नुते ॥  
 सर्व्वं वरंतत-प्राप्नोति शुक्रे दत्त्वा रतिस्त्रियः ।  
 अभ्यङ्गं सौरदिवसे दत्त्वा जीवितमाप्नुयात् ॥

इति वारदानानि ।

अथ नक्षत्रदानानि ।

तत्र महाभारते ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतो मे भवतो वाक्यादन्नदानस्य यो विधिः ।  
 नक्षत्रयोगस्येदानीं दानकल्पं ब्रवीहि मे ॥

भीष्म उवाच ।

अत्राप्युदाहरन्तीम मितिहासं पुरातनं ।  
 देवक्याश्चैव मन्वादां देवर्षेर्नागदस्य च ॥

हारकायामनुप्राप्तं नारदं देवदर्शनं ।  
 पप्रच्छेमं वद प्रश्नं देवकी धर्मदर्शिनी ॥  
 तस्याः सम्पृच्छमानाया देवर्षिर्नारदस्तथा ।  
 आचष्ट विधिवत्सर्वं यत्तच्छृणु, विशांपते ॥

नारद उवाच ।

कृत्तिकासु महाभागे पायसेन ससर्पिषा ।  
 सन्तर्प्य ब्राह्मणान् साधून् लोकान् प्राप्नोत्यनुत्तमान् ॥  
 रोहिण्यां पाण्डवश्रेष्ठ माषैरत्नेन सर्पिषा ।  
 पयोनुपानद्वातव्यमानृण्यार्थं द्विजातये ॥  
 दोग्ध्रीं सवत्सान् नरो नक्षत्रे सोमदैवते ।  
 दत्त्वा दित्यविमानस्थः स्वर्गं प्राप्नोत्यनुत्तमं ॥

सोमदैवतनक्षत्रं, मृगशीर्षं ।

आर्द्रायां कृशरन्दत्त्वा तिलमिश्रं समाहितः ।  
 नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्वतान् ॥  
 पूर्णं पुनर्वसौ दत्त्वा घृतपूर्णं सुपाचितं ।  
 यशस्वी रूपसम्पन्नो बह्वने जायते कुले ॥  
 पुष्पे तु काञ्चनन्दत्वा कृतं चाकृतमेव च ।  
 अनालोकेषु लोकेषु सोमवत्स विराजते ॥

कृतं, घटितं ।

अकृत, मघटितं ।

अश्लेषामु तथा हृष्यं वृषभं वा प्रयच्छति ।

स सर्वभयनिर्मुक्तः शास्त्रवानभिजायते ॥

मघासु तिलपूर्णानि वर्द्धमानानि मानवः ।

प्रदाय पशुमांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजायते ॥

फाल्गुनीपूर्वसमये ब्राह्मणानामुपोषितः ।

भक्ष्यान् फाणितसंयुक्तान् दत्त्वा मौभाग्यमुच्छति ॥

घृत-क्षीरसमायुक्तं विधिवत् पष्टिकौदनं ।

उत्तराविषये दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ।

यद्वा प्रदीयते दानमुत्तराविषये नरैः ॥

सदा फलमनन्तञ्च भवतीह विनिश्चयः ।

फाल्गुनीपूर्वसमये, पूर्वाफाल्गुनीसमय इत्यर्थः ।

फाणितं, गुडविकारः, उत्तराविषये, उत्तराफाल्गुनीसमय इत्यर्थः ।

हस्ते हस्तिरथं दत्त्वा चतुर्युक्तमुपोषितः ।

नरस्तरति दुर्गाणि क्षुरधारांश्च पर्वतान् ॥

चतुर्युक्तं, चतुर्भिर्हस्तिभिर्युक्तं ।

चित्रायां वृषभं दत्त्वा पुण्याङ्गङ्गां च भारत ।

चरत्यप्सरसां लोके रमते नन्दने वने ॥

पुण्याङ्गं गामिति शुभलक्षणलक्षितशरीरं धेनुमित्यर्थः ।

लिङ्गपराणे ।

सर्वात्मना च सवनं देयं पानीयमोदनं ।  
 एतत् सुदुर्लभतरं परलोके नराधिप ॥  
 तस्मात् कृपाञ्च वाप्यञ्च तडागानि प्रपास्तथा ।  
 कर्त्तव्यानि यथा शक्त्या नरैरात्महितैषिभिः ॥  
 ग्रामे वा नगरे वापि मार्गे वा तोयवर्जिते ।  
 यः प्रपाङ्कारयेद्रम्यां स पुण्यां गतिमाप्नुयात् ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् ।

प्रपां पथि शुभां कृत्वा नाकलोके महीयते ।  
 प्रपास्थानं शुभं कृत्वा स्थानमाप्नोति शाश्वतं ॥  
 तस्य स्थानस्य संस्कारात् फलवृद्धिः प्रक्रीर्त्तिता ।  
 तत्रोपलेपनं कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 रज्जुं दत्त्वा प्रपास्थाने गोदो भवति मानवः ।  
 वारिधानीं तथा दत्त्वा तदेव फलमाप्नुयात् ॥  
 कुम्भप्रदानाद्भवति सदा पूर्णमनोरथः ॥  
 प्रपायाञ्च तथा दत्त्वा पुरुषं परिचारकं ।  
 सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ॥  
 वर्द्धमानानि यो दद्यात् प्रपायां द्विजसत्तमाः ।  
 त्रिविधां वृद्धिमाप्नोति तेजसा यशसा श्रिया ॥  
 लवणस्य प्रदानेन रसान् प्राप्नोति शाश्वतान् ।  
 तत्र हरितदानेन गवां लोकमवाप्नुयात् ॥  
 फलप्रदानेन तथा वज्रिष्टोमफलं लभेत् ।

सत्तूनाञ्च प्रदानेन गोशतस्य फलं नरः ।  
 गोरसानां प्रदानेन गोलोकं समवाप्नुयात् ॥  
 शय्याञ्च विविधाः कृत्वा प्रपायामासनानि च ।  
 स्वर्गलोकमवाप्नोति वस्त्राणां नात्र संशयः ॥  
 तत्र वर्ज्जं तथा कृत्वा शीतत्राणाय मानवः ।  
 कायाग्निदीप्तिप्राकाशं सौभाग्यञ्च तथाप्नुयात् ॥  
 इन्धनानां प्रदानेन रिपुभिर्नाभिभूयते ।  
 तत्रोपयोगिभाण्डानां दानात् स्वर्गमवाप्नुयात् ।  
 इन्द्रलोकमवाप्नोति ताम्बूलादिप्रदानतः ॥

भविष्योत्तरे ।

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रपादानस्य माहात्म्यं वद देवेश किञ्चन ।  
 कथं देया कदा देया दानं तस्याञ्च किं फलं ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैव महीक्षवे ।  
 पुण्येऽङ्गि विप्रकथिते ग्रहचन्द्रवलान्विते ॥  
 मण्डपं कारयेद्द्विद्वान् घनच्छायं मनोरमं ।  
 पुरस्य मध्ये पथि वा चैत्यवृक्षतलेऽथवा ॥  
 सुशीतलतलं रम्यं विचित्रासनसंयुतं ।  
 तन्मध्ये स्थापयेद्भवान् मणिकुन्दांश्च शोभनान् ॥



आकालमूलान् करकान् वस्त्रैरावेष्टिताननान् ।  
 ब्राह्मणे शीलसम्पन्ने भृतिं दत्त्वा यथोदितां ।  
 प्रपापालः प्रकर्त्तव्यो बहुपुत्रपरिच्छदः ॥  
 पानीयपानादयान्तान् यः कारयति मानवान् ।  
 एवं विधां प्रपां कृत्वा शुभेऽङ्घ्रि विधिपूर्वकं ॥  
 यथाशक्त्या नरश्रेष्ठ प्रारब्धे भोजयेद्विजान् ।  
 ततश्चोत्सर्जयेद्विद्वान्मन्त्रेणानेन मानवः ॥  
 प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता ।  
 अस्याः प्रदानात् पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः ॥

इदमिह दानवाक्यं ।

अद्यादि मासचतुष्टयं यावत् चीन् वा हौ वा एकमेकं वा  
 इमां प्रपां पानीया-न्न-व्यञ्जनादि सहितां त्रिंशद्वर्षकोटिपरिमित-  
 कालभोग्यइन्द्रलोकप्राप्तिकामी मर्त्यलोके चतुर्वेदब्राह्मणत्वकामः-  
 सर्वभूतेभ्योऽहमुत्सृजामीति ।

अनिवारितं ततो देयं जलं मासचतुष्टयं ।  
 त्रिपञ्चम्बा महाराज जीवानां जीवनं परं ॥  
 गन्धाढ्यं सुरसं शीतं शोभने राजते स्थितं ।  
 प्रदद्यादप्रतिहतं मुखञ्चानवलोकयन् ।  
 प्रत्यहं कारयेत्तस्यां भोजनं शक्तितोद्विजान् ॥  
 अनेन विधिना यस्तु ग्रीष्मे तापप्रणाशनं ।  
 पानीयमुत्तमं दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥  
 कपिलाशतदानस्य सम्यग्दत्तस्य यत् फलं ।

तत्पुण्यफलमाप्नोति सर्वदेवैः सुपूजितः ॥  
 पूर्णचन्द्रप्रतीकाशं विमानमधिरुह्य सः ।  
 याति देवेन्द्रनगरं पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥  
 त्रिंशत्कोट्यो हि वर्षाणां यच्च-गन्धर्व्वसेवितं ।  
 पुण्यक्षयादिहागत्य चतुर्व्वेदो द्विजो भवेत् ।  
 ततः परं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभं ॥

सुस्वादुशीतमलिला क्लमनाशनौ च  
 प्रान्ते पुरस्य पथि पार्थ सराजभूमौ ।  
 यस्य प्रपा भवति सर्व्वजनोपभोग्या  
 धर्मोत्तरः स खलु जीवति जीवलोके ॥

इति प्रपादानविधिः ।

अथ जलाशयनिर्माणं ।

तत्र कूपस्य तावदुच्यते ।

विष्णुधर्मोत्तरे ।

उदकेन विना वृत्तिर्नास्ति लोकद्वये सदा ।  
 तस्माज्जलाशयाः कार्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥  
 अग्निष्टोमसमः कूपः सोऽश्वमेधसमो मरौ ।  
 कूपः प्रवृत्तपानीयः सर्व्वं हरति दुष्कृतं ॥  
 कूपकृत् स्वर्गमासाद्य सर्व्वान् भोगानुपाश्रुते ।  
 तत्रापि भोगनैपुण्यं स्थानाभ्यासात्प्रकीर्तितं ॥

## स्कन्दपुराणे ।

अवटं यो नरः कुर्यादपां पूर्णं सुशोभनं ।  
 दद्यात् सुब्राह्मणेभ्यस्तभोजयित्वा यथाविधि ॥  
 अष्टाभिः सुविचित्राभिः पताकाभिरलङ्कृतं ।  
 पितृंस्तरेत पञ्चाशतं\* दत्त्वा च नरोत्तम ।  
 यात्यप्सरःसुगीतेन वरुणस्य सलोकतां ॥

## नन्दिपुराणे ।

यो वापीमथवा कूपन्देष्टे तीयविवर्जिते ।  
 खानयेत् स नरो याति स्वर्गं प्रेत्य शतं समाः ।  
 देवैरेकत्वमतुलं तृणाक्षुद्धजितः सदा ॥

## आदित्यपुराणे ।

सेतुबन्धरता ये च तीर्थे शौचरताश्च ये ।  
 तडागकूपकर्तारो मुच्यन्ते ते तृषाभयात् ॥

## विष्णुः ।

अथ कूपकर्तुस्तत्प्रवृत्ते पानीये दुष्कृतार्थं<sup>१</sup> विनश्यति ॥  
 तडागकुत्रित्यतस्मि वारुणं लोक मश्रुते ।

जलप्रदः सदा तस्मि भवति ।

तत् प्रवृत्ते, तस्मात् कूपात् प्रवृत्ते ।

तथा ।

कूपारामतडागेषु देवतायतनेषु च ॥

पुनः संस्कारकर्त्ता च लभते मूलिकं फलं ॥

देवीपुराणे ।

कूपारामं यथा शस्तं कर्त्ता लोके प्रजायते ।

तथा कुर्यात् सुरयेष्ठ यथा शोभायतं भवेत् ॥

पूर्वमाश्रित्य कर्त्तव्यं तस्योत्तरपथेऽपि वा ।

न पूर्वव्यत्ययं कुर्यान्न च देवालयान्नाहात् ॥

कृतं भयप्रदं लोके तथात्ताग्निभयं जलं ।

वायव्यं वापि देवस्य भयदं जायते कृतं ॥

आह गर्गः ।

कुर्यात् पञ्चकरादूर्ध्वं पञ्चविंशत्करावधि ।

कूपं वृत्तायतं प्राज्ञः सर्वभूतसुखावहं ॥

इति कूपनिर्माणविधिः ।

अथ वापीनिर्माणं ।

विष्णुधर्मोत्तरे ।

यमलोकं प्रपश्यन्ति न जलाशयकारिणः ।

अतः कुर्यात् प्रयत्नेन सुरूपं भूप कूपकं ।

कूदशपसमा वापी तथा च परिकीर्त्तिता ॥

## देवीपुराणे ।

कूपः पञ्चकरादूर्ध्वं यावद्द्वर्गस्तदुद्भवः ।  
 वापी दण्डमयादूर्ध्वं दशवर्गा नृपोत्तमैः ॥  
 कर्त्तव्या सर्वतोत्तारा द्वित्रिचैकमथापि वा ।  
 विज्ञा सम्भद्रकच्चान्ये वृत्ता वा चायथा तथा ॥  
 अस्त्रा वा चार्द्धचन्द्रा वा धेनोश्चक्रसमाकृतिः ।  
 कर्त्तव्या द्रव्यसारेण गोपथा सर्वकामदा ॥  
 वेदाष्टमध्यगोत्सारा करसार्द्धा यथा भवेत् ।  
 कूपोवा शीलयष्टी वा देया नेमौ यथा दृढा ॥  
 भवने काष्ठपाषाणैरूर्ध्वपीठसमुच्छ्रया ।  
 सुवृद्धा तोरणीपेता गणनाथगृहाचिता ॥  
 नागयच्चगृहैर्देव्याभूषिता क्रीडिताकुला ।  
 वापी भद्रा सुरश्रेष्ठ सर्वकामप्रदा नृणां ॥  
 भद्रा पद्मा शुभा कान्ता विजया मङ्गला तथा ।  
 जया योक्ता भवेदापि नृपादीनां शुभावहा ॥  
 वृत्तायता चतुरस्त्रा वाप्यः साधारणा मताः ।  
 शेषा काम्याधिकारेण कूपोत्तः शुभावहः ॥

## नन्दिपुराणे ।

यो वापीमग्निसाक्ष्येण विधिवत् प्रतिपादयेत् ।  
 कोणेषूदककुम्भस्थान् समुद्रानर्च्य यज्ञया ॥  
 चतुरश्रचतुरन्ता तु तेन दत्ता मही भवेत् ।  
 तत्सन्निधौ द्विजानर्च्य विधिवत् पानभोजनैः ॥

स याति वारुणं लोकं दिव्यकामसमन्वितं ॥

अथ भद्रातङ्गागनिर्माणं ।

तत्र यमः ।

तङ्गागे यस्य पानीयं सततं खलु तिष्ठति ।  
स्वर्गलोकगतिस्तस्य नात्र कार्या विचारणा ।  
तङ्गागकर्त्ता वसति स्वर्गे युगचतुष्टयं ॥  
यत्र विप्रोऽथ गौरेका पायिनी सलिलं क्वचित् ।  
तङ्गागन्तादृशं कृत्वा स्वर्गे दशयुमान् वसेत् ॥

महाभारते ।

देवा मनुष्याः पितरो गन्धर्वो-रग-राक्षसाः ।  
स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयं ॥  
कुलं सन्तारयेत् सर्व्वं यस्य खाते जलाशये ।  
गावः पिवन्ति सलिलं साधवश्च नराः सदा ॥  
तङ्गागे यस्य गावस्तु पिवन्ति तृषिता जलं ।  
मृग-पक्षि-मनुष्याश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥  
यत्पिवन्ति जलं तत्र स्नायन्ते विश्रमन्ति च ।  
तङ्गागदस्य तत्सर्व्वं प्रेत्यानन्दाय कल्पते ॥

तथा ।

वर्षारान्ने तङ्गागे तु सलिलं यस्य तिष्ठति ।  
अग्निहोत्रफलं तस्येत्येवमाहुर्मनीषिणः ॥

वसन्तकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति ।  
 अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्रुते ॥  
 निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति ।  
 वाजपेयसमन्तस्य फलं महर्षयो विदुः ॥

### विष्णुधर्मीन्तरे ।

कृत्वा तडागञ्च तथा वारुणं लोकमश्रुते ।  
 दशवर्षसहस्राणि कल्पमात्रं द्विजोत्तमः ।  
 ततोऽपि पुण्यमाप्नोति तडागकरणात् पथि ॥  
 मरौ तडागे पानीयं यस्य तिष्ठति वै द्विजाः ।  
 विमानेनार्कवर्णेन ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥  
 प्रावृट्कालेऽपि पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति ।  
 अग्निष्टोमफलन्तस्य पुरुषस्य प्रकीर्तितं ॥  
 द्वादशाहफलन्तस्य शिशिरे यस्य तिष्ठति ॥  
 वाजपेयफलन्तस्य वसन्ते यस्य तिष्ठति ।  
 अश्वमेधफलन्तस्य निदाघे यस्य तु द्विजाः ॥  
 सस्यानां सेचनार्थाय नदीवाहे तथा कृते ।  
 अन्नदः पानदश्चैव प्राणदश्च तथा भवेत् ।  
 भागौरथस्य लोकानां समवाप्नोत्यसंशयः ॥  
 पानीयशोधनं कृत्वा ऋदे देवविनिर्गमते ।  
 पुरुषः फलमाप्नोति दशगोदानजं द्विजाः ॥  
 दारुपाषाणरचितं सुखसेव्यं जलाशयं ।  
 पुराणं मानवः कृत्वा नाकलोके महीयते ॥

प्रणालकरणात्तत्र तृप्तिमाप्नोत्यनुत्तमां ।  
 महत्पुण्यं मवाप्नोति नाकलीके महीयते ॥  
 स्ववाहुखातं यः कुर्यात्तडागं मतिमान्नरः ।  
 तत् फलमाप्नोति कर्त्ता राजसूयाश्वमेधयोः ॥  
 परस्तु पुण्यं यः कुर्यात् किञ्चित्तस्य जलाशये ।  
 पुण्यांशभागी भवति सोऽपि यस्य जलाशयः ॥

प्राप्नोति तृप्तिं परमां मनुष्यो  
 लोकां स्तथा तान् सलिलाधिपस्य ।  
 जलाशयेत्येऽपि कृते द्विजेन्द्रा  
 तस्मात्तु लोकं सलिलं नृलोकं ॥

अथ हारीवन्धः ।

देवीपुराणे ।

ब्रह्मोवाच ।

देव्यः शस्ताः सुरश्रेष्ठ सर्वकामप्रसाधिकाः ।  
 तासां समुपभोगार्थं जलपात्राणि कारयेत् ॥  
 हारीवन्धादिकाः शक्र पुष्करिण्यो नगाः शुभाः ।  
 तलखातं तडागं तु विपाली पौष्टिकी मता ।  
 शोभाढ्या दीर्घिका प्रोक्ता चतुरस्ता तु वापिका ॥  
 कूपाः पादविहीनाश्च सपादा तीरणान्विताः ।  
 शक्रसावन्धकरणाभिरन्ती भ्रिण्टिका मता ॥  
 गिरेरन्तर्गता हारा सस्फोटं हरकन्तथा ।  
 चक्रमर्द्दः सचलको अर्गला चितिमान्तिमः ॥



वज्रनागमधोगामी न सिद्धान्ति कदाचन ।  
 होलात्मा च तथा चक्र सुखसाध्याः प्रकीर्त्तिताः ॥  
 उत्तमाधममध्या सा स्वल्पबुद्धा सुखग्रहः ।  
 दैर्घ्याच्च वन्धागाया तु साधमा परिकीर्त्तिता ॥  
 शतसहस्रपर्यन्ता द्विदण्डाष्टद्विदण्डिका ।  
 हारौ श्रेष्ठाधमा तात बहुवन्धा च या भवेत् ॥  
 सिकतापङ्कसंच्छिद्रा संप्रजा परिवर्जयेत् ।  
 शुभाहि दैर्घ्यात् विस्तारं मित्रावन्धं समाचरेत् ॥  
 त्रिपञ्चचाष्टपर्यन्तः श्रेष्ठो वन्धः प्रकीर्त्तितः ।  
 शतद्वयं शुभा पाली कराणां सप्तधाधमा ॥  
 दिस्तारः कथितः शास्त्रे पालीवन्धस्य पण्डितैः ।  
 प्राकारकूटनलिका पुटकां पृष्ठसञ्चयं ॥  
 पृष्ठमार्गं भवेद्वन्धधर्मचन्द्रं सकम्बलं ।  
 भूजिह्वाललते शक्र सास्थानन्तीयसंयमः ॥  
 पाषाणघटितं वहमघटं विस्वकाष्ठजं ।  
 शिलास्तञ्च निवदन्तु पृथुविस्तीर्णसञ्चितं ॥  
 वज्रसन्धानसंयोगं समवादान्तकम्परं ।  
 कथाकालसहं विद्वान् कुक्षिघातन्तु कारयेत् ॥  
 न मध्यह्नये खाते कम्बले वापि दापयेत् ।  
 महादीषकरं तत्तु हारीकर्तुर्भयप्रदं ॥  
 प्रयत्नः कुट्टने कार्यो मृत्तिका कूर्चनादिकं ।  
 नलिकासु प्रदातव्यं लोहं मुश्लघटितं ॥  
 समाप्तिपर्ययं यावदुपलान् खातयेन्नृपः ।

अन्यथा न भवेद्वाटा स्रवेद्दोषकरी भवेत् ॥  
 पालीन्तस्माद्दृढां कुर्याद्ब्रह्मपृष्ठां न घटितां ।  
 कर्मवृषभकस्यादिहेमच्चादौ विनिक्षिपेत् ॥  
 प्रारम्भेऽस्या महापूजा श्येनकादिषु कारयेत् ।  
 वारुणं नागदेवन्तु यागमन्त्रजपं सदा ॥  
 आनिष्पत्तिं तु कर्त्तव्यमन्यथा भयदं भवेत् ।  
 व्रातुराश्रजने शक्र दारी च न दृढा भवेत् ॥  
 दृष्टार्थं प्रतिरूपाणि तदा लिङ्गं विनायकं ।  
 शक्तिः पूर्वाणि कुर्वीत महालक्ष्मीर्यथा पुरे ॥  
 शुभदा भवने लोके नन्दातीयं शिवं तथा ।  
 आगमन्तोरणं वापी कूपम्बा समहोरगं ॥  
 दारीवन्धेषु कर्त्तव्यमुत्सर्गं गोप्रदानिकं ।  
 गोसहस्रं शुभं देयं महीं हेमच्च दक्षिणां ॥  
 श्येनकं नागयज्ञञ्च दारीवन्धे सदा शुभं ।  
 चतुस्तोरणसंयुक्तं पताकादिविभूषितं ॥  
 उत्सर्गं विहितं दार्यामन्यथा न शुभोदकं ।  
 शकटेन वलिर्देयः पशुपातपुरःसरं ॥  
 स्फुरन्तं नागहृदयं मन्त्रं तत्र प्रयोजयेत् ।  
 संपूर्णं जायते सर्व्वं न्यूनाधिककृतञ्च यत् ॥  
 फलञ्च हयमेधस्य यत्कृतस्य भवेदिह ।  
 समग्रं लभतेतस्य दारीवन्धे कृते सति ॥  
 इह कीर्त्तिः शुभं सर्व्वं विशत्रश्च भवेन्नृप ।  
 दारीवन्धप्रकर्त्तारो नन्दन्ति प्रजया सह ॥

तडागं नलकोपेतं परिदाहसमन्वितं ।  
 देवतारामसंयुक्तं सर्वकामप्रदायकं ॥  
 द्वारीवन्धे सुविस्तीर्णे परिदाहशुभः सदा ।  
 अन्यथा न भवेच्छक्र दृढत्वं पालिवन्धनं ॥  
 मध्ये पाल्याः सुविन्यासं जलमार्गं जलावहं ।  
 शैलं पक्वेष्टकं वापि कार्यं क्रोडायै भूभृतां ॥  
 शीला क्षुरोपणे कुर्यान्नलकं शोभनं तथा ।  
 सोपानपालिका कार्या विस्तीर्णा स्नान-भोजने ॥  
 शोभाधिकेन संयुक्ता कूर्चे कार्यया यथा विधि ।  
 वन्धपृष्ठे दृढोवन्धः कार्यः कालसहस्तथा ॥  
 एवं पुण्यमवाप्नोति स्थैर्यकालवशात् कृते ।  
 वाजिमेघः क्रतुर्यद्वत् सोपि पुण्यप्रदो भवेत् ॥  
 द्वारीवन्धस्तदा तात पुण्यदो जायते नृणां ।  
 पुण्यात्स सिद्धयते तच्च नन्दादीनां निवेशयात् ॥  
 जयन्त्यादितडागादि अष्टौ पापहराणि च ।  
 तेषु द्वारी भवेच्छ्रेष्ठा देवा-रामसमन्विता ॥  
 कूप-वापी-जलोपेता पुत्रायुःकीर्त्तिदा सदा ।  
 सा परिग्रहसंस्थानं भूपतेर्मानकल्पिता ॥  
 पुरपत्तनदेवानां सिद्धार्थं जायते शुभा ।  
 सरित्पिङ्गालयैर्या न विष्णुक्रान्ता वसुन्धरा ॥  
 सौभाग्यद्वारीवन्धस्य जलवेष्टाष्टकभ्रमा ।  
 पितृदेवमनुष्याणां तज्जलं त्वभिन्दितं ॥  
 पावनञ्जायते शक्र अन्यथा निष्फलं मतं ।

अनुत्सर्गितद्वारीषु अपेयं सलिलं भवेत् ।  
 तस्माच्चोत्सर्गिकं पेयं वर्षासूक्तजनं शुभं ॥  
 तत्पूर्वा चोत्तरे संस्था ऐशान्यां पूर्वगापि वा  
 दक्षिणे चैव लिङ्गन्तु शिवास्या शुभदा सदा ॥  
 पश्चिमे सुभगा नाम तां यथोत्तरतस्तथा ।  
 न कुर्याद्याम्ये नैर्ऋत्यामानेय्यान्तु शुभार्थिनः ॥  
 प्रदक्षिणेन पूर्वस्थां रोपितव्यं शुभं सदा ।  
 अन्यथा कलहोद्दिगं मृत्युम्वा लभते कृतौ ॥  
 तस्माद्राज्यायुःशुभदं पुनस्तत्तिवर्द्धनं ॥  
 पश्चिमोत्तरपूर्वेण आरामं जायते कृतं ॥  
 द्वारीवन्धशिरोपेतं शक्तिभिर्नायकैर्युतं ।  
 तदा कूपजला-रामभूषितं सर्वकामदं ॥  
 एवं विधं पुरोपेतं ब्रह्मसूर्यान्तकान्वितं ।  
 कुर्याद्यः सुरशादूलं स लभेदौषितं फलं ॥  
 इह कोर्त्तिं शुभान् पुत्रान् परत्र परमाङ्गतिं ।  
 द्वारीवन्धात् फलं ब्रह्मन् हयमेधसमं भवेत् ॥  
 समस्तपातकोच्छ्रित्तः कृते भवति देववत् ।  
 तस्मान्नपेण कर्त्तव्यं विधिना द्वारिगं जलं ॥  
 समन्त्रं शास्त्रदृष्टेण कर्मणा सफलं भवेत् ।  
 श्येनकादेस्तथापूजा नागाङ्गं हृदयं जपेत् ।  
 द्वारीवन्धप्रसिद्धार्थं अन्यथा न लभेत् कृतं ॥  
 यतः पुण्यैस्तु सिद्धेयत द्वारीवन्धः सुरोत्तमः ।  
 अतः पुण्यविधिः कार्यो जपहोमव्रतादिकः ॥

देशरोगीकसङ्कार्थं शिवस्यादेशतः शुभं ।  
 नागानां द्वारिसिद्ध्यर्थं नन्दाकूपं भवेत् कृतं ॥  
 तर्ह्यपुण्या भवेद्द्वारी किन्तु संदेहसाधना ।  
 कृता विशीर्यते कालात्तस्मात् कार्या सदा दृढा ॥  
 देशपश्चिमयाम्यस्थं तत्कर्तुर्मृत्युदं भवेत् ।  
 जपं पश्चिमपूर्वैश्च रति-पुत्र-धनप्रदं ।  
 याम्य-सौम्यगतं दण्डं पत्नीधनविनाशनं ॥  
 यक्षवारुणगन्धद्र-शय्यायुःपुत्रदं गतं ।  
 पूर्वोत्तरगतं देयं सुखदं धनदं मतं ॥  
 पश्चिमे सङ्गतं नन्दं धनकोशविवर्धनं ।  
 जलवायुगतां हेमां हेमदश्च भवेन्ननं ॥  
 रक्षोवायुगतं काकानुच्चाटं कुरुते धनं ।  
 अग्निवारुणिकं दाहं दहनं कीर्त्तिवर्धनं ॥  
 देशदाहगतं पापं धनतापकरं तथा ।  
 वायुदाहगतं तेजो धनहेमगजापहं ॥  
 एवं लक्षणमाश्रित्य कर्त्तव्या नाम घाटिकाः ।  
 शुभावहा सदा कर्त्तुराज्यायुःसुतपत्तिकाः ॥  
 वैरपत्ये सदा लोके धनं कर्त्तुर्भेदावहं ।  
 नृपराष्ट्रे जने दोषान्नहन्त्यादिधिना शुभं ॥  
 सरुद्रां कारयेद्द्वारीं गणनाथसमन्वितां ।  
 जयञ्च विजयङ्कार्यं सुष्टु कुर्यात् सराष्ट्रकं ॥  
 नागाख्यं हृदयं जम्बा प्रस्फुरत् स्थापने शुभं ।  
 मेना विवाहदेव्यश्च तर्पितव्याः पथःत्रतैः ॥

वस्त्रैर्नानाविधैर्गन्धैः फल-धूप-गणादिभिः ।  
 कार्यो महोत्सवो वाट्यां पालीवन्वट्टदार्धिभिः ।  
 दानं देयं सदा शक्र नृपराद्भुखावहं ॥  
 गोदानं भूमिदानञ्च कन्यादानं सुरोत्तम ।  
 हारीवन्धे प्रदातव्यमेकं कीटिगुणं भवेत् ॥  
 गजा-श्व-रत्न-दानञ्च अन्नदानं प्रयत्नतः ।  
 हारीवन्धेषु दातव्यं सर्वं कीटिगुणं भवेत् ॥  
 गोमेधे नरमेधे च हयमेधे तथा मखे ।  
 पुण्यं यज्जायते शक्र हारीवन्धे ततोऽधिकं ॥  
 वापी-कूप-तडागानि देवता-यतनानि च ।  
 एतानि वृत्तिधर्मेषु शुभानि फलदानि च ॥  
 दीनान्धऊर्ध्वभौरूणां दानं देयं यथाविधि ।  
 एकं कीटिगुणं पुण्यं जायते नात्र संशयः ॥  
 एतत्ते कथितं शक्र हारीवन्धस्य यत् फलं ।  
 प्रादुर्भावन्तु देवीनां क्षेपान्माहात्म्यं कीर्तितं ।  
 शिवदूत्यास्तथा सम्यक्प्रादुर्भावं समङ्गलं ।  
 यः शृणोति नरः सम्यक्सर्वं पुण्यफलं भवेत् ॥  
 कूपा-राम-तडागादि प्रपाद्यग्निं प्रतिश्रयं ।  
 सर्वे साधिष्ठितं वत्स अनन्तफलदायकं ॥  
 यः कुर्याद्धारिषन्धानां तडागानां शतं तथा ।  
 सर्वेश्वरजलं कृत्वा लभेत्पुण्यन्ततोऽधिकं ॥  
 शिव-सूर्य-हरि-ब्रह्म-संयुक्तं सर्वकामदं ।  
 आद्यामूर्त्तिः परा ह्येषा व्यापिनी मन्त्रमन्त्रगा ॥

सर्वेषां सर्वदेवत्वं ब्रह्माद्यैः परिवारितं ।  
स्थापितं जायते शक्र सर्वावभयनाशनं ॥

इति हारीवन्धविधिः ।

अथ तड़ागादि प्रतिष्ठा ।

मत्स्यपुराणे ।

सूत उवाच ।

जलाशयगतिं विष्णुमुवाच रविनन्दनं ।  
तड़ागा-राम-कूपानां वापीषु नलिताषु च ॥  
विधिं पृच्छामि देवेश देवतायतनेषु च ।  
के तत्र ऋत्विजः कार्य्या वेदी वा कीदृशी भवेत् ॥  
दक्षिणावलयः कास्तु स्थानमाचार्यमेव च ।  
इत्यादिकानि शस्तानि सर्व्वमाचक्ष्व तत्त्वतः ॥

मत्स्य उवाच ।

शृणु राजन् महाबाहो तड़ागादिषु यो विधिः ।

वह्निपुराणे ।

शुभे दिने शुभनक्षत्रे मुहूर्त्ते तु भवैद्यदा ।  
वापी-कूप-तड़ागानां तस्मिन् काले विधिः स्मृतः ॥  
संपूर्णे तु कृते कर्त्तुः संपूर्णा स्थर्म्मनोरथाः ।  
कर्कटे पुत्रलाभस्तु सौख्यन्तु मकरे भवेत् ॥  
मीने यशो-र्थलाभस्तु कुम्भे च सुवह्मदकं ।

वृषे च मिथुने वृद्धिर्वृश्चिके निर्जलं भवेत् ।  
पितृहृत्पिस्तु कन्यायान्तुलायां शास्वती गतिः ॥  
सिंहे मेषोधनुर्नाशं जलस्य द्विज यच्छति ।

मत्स्यपुराणे ।

मावपक्ष शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।  
पुण्येऽङ्गि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनं ॥  
प्रागुदक्प्लवणे देशे तडागस्य समीपतः ।  
चतुर्हस्तां शुभां वेदीं चतुरस्रां चतुर्मुखीं ॥  
तथा षोडशहस्तः स्यात् मण्डपश्च चतुर्मुखः ।  
वेद्याश्च परितो गर्त्ता रत्निमात्रा त्रिमेखला ॥  
नवसप्ताथवा पञ्च योनिर्व्यक्रा नृपात्मज ।  
वितस्त्रिमात्रा योनिः स्यात् षट् सप्ताङ्गुलविस्तृता ॥  
गर्त्ताश्च तत्र शस्ताः स्युः स्वर्णोच्छ्रितमेखला ।  
सर्वतः सर्ववर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुता ॥  
अश्वत्थो-डुम्बर-प्लक्ष-वट-शाखाकृतानि तु ।  
मण्डपस्य प्रति दश द्वाराण्येतानि कारयेत् ॥  
शुभास्तत्राष्टहीतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै ।  
अष्टौ तु जापकाः कार्य्या ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥  
सर्वलक्षणसंपन्ना मन्त्रवन्तो जितेन्द्रियाः ।  
कुलशीलसमायुक्ताः स्थापकस्य द्विजोत्तमः ॥  
पुण्येऽङ्गि शुभलग्नादौ ब्राह्मणानाञ्च वाचनं ।

परिभाषायां द्रष्टव्यः :



तत्रोत्सर्गपूर्वदिवसे तडागाद्युत्सर्गं करिष्य इति विहित  
संकल्पो यजमानो वृद्धिश्राद्धमाभ्युदयिकं विधाय ब्राह्मणवाचनं  
कुर्यात् ।

वास्तूपूजा चात्र कर्त्तव्या ।

यतस्तदकरणे मत्स्यपुराणे दोषः श्रूयते ।

वास्तूपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यतीति ॥

तत् प्रकारस्तु गृहदाने दर्शितः ।

हस्तादिलक्षण मुक्तं परिभाषायां ।

गर्त्ताः, कुण्डानि ।

तानि च चतसृषु दिक्षु चत्वारि, ऐशान्यां पञ्चमं, आचार्य्य-  
कुण्डमिति पञ्च कुर्यात् ।

पताकास्तु, प्राच्यादिप्रदक्षिणदिग्विदिक्षु पीत रक्त-कृष्ण-  
नीलाञ्जननिभशुक्ल-कृष्ण-हरित-सर्ववर्णाः कार्याः ।

ध्वजस्तु किङ्किणीकालङ्कृतः ।

आचार्य्यप्रमुखान् पञ्चविंशतिब्राह्मणान् अमुकोऽर्थयन्ने नाहं  
यत्ने, तत्र मे त्वमृत्विग्भवेत्यादि दत्त्वा मधुपर्केणाभ्यर्चयेत् ।

प्रतिगर्त्तेषु कलशो यज्ञोपकरणानि च ।

व्यजने चासने शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तरे ॥

ततस्त्वनैकवर्णाः सर्वलवः प्रतिदैवतं ।

आचार्य्यः प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः ॥

अरत्निमात्रोऽयूपः स्यात् चीरवृक्षविनिर्मितः ।

यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भृतिमिच्छता ॥  
हेमालङ्कारिणः कार्याः पञ्चविंशतिर्ऋत्विजः ।  
कुण्डलानि च हैमानि केयूर-कटकानि च ॥

तथा ।

अङ्गलीयं पवित्राणि वासांसि विविधानि च ।  
दक्षयेच्च समं सर्वान् आचार्य्यं द्विगुणं पुनः ॥  
दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत् प्रियं ।  
सौवर्णं कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुण्डुभी ॥  
ताम्रौ कुलोरमण्डूकौ वायसः शिशुमारकः ।  
एवमासाद्य तान् सर्वानादावेव विशंपते ॥  
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।  
सर्वेष्वध्वदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥  
यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।  
पश्चिमं द्वारमाश्रित्य प्रविशेद्यागमण्डपं ॥  
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निखनेन च ।

प्रतिगर्त्तेत्यादि, प्रतिकुण्डमासनद्वयं ताम्रपात्रद्वयं विष्टरद्वयं  
व्यजनं वस्त्रं स्रक्चन्दनादिभूषितं पञ्चरत्नगर्भकलशञ्च स्थाप-  
येत् । यज्ञोपकरणानि, पवित्रच्छेदन-प्रौक्षणीपात्र-प्रणीतापात्र-  
स्थाली-सुक्-सुवे-भ्रवर्हिः-समिदाज्य-प्रभृतीनि तथा स्थापयिष्य-  
माण-देवतार्घवलीन् नानावर्णगन्धधूपदीपमाल्यानि क्षीरहृक्ष-  
निर्मितं यूपञ्चोपकल्पयेत् तच्च यूपं-देवतावलिहरणानन्तरं पूर्व-  
कुण्डान् प्राच्यान्दिशि दर्भानक्षतानि चावटे प्रक्षिप्य निखनेत्,

डण्डभ-राजिल-कुलीर-कर्कटक-कूर्मादींश्च पञ्चरत्नगर्भायां सुवर्ण-  
पात्राणि निक्षिप्य स्थापयेत्\* । एवमन्यदपि प्रकृतोपयोगि-  
कर्म्मार्न्नात् पूर्वमेवासादयेत् ।

सर्वौषधः, परिभाषायां दर्शिताः ।

रजसा मण्डलं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् ।

षोडशारन्ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्भुजं ॥

चतुरस्रञ्च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनं ।

वेद्याश्चोपरितः कृत्वा ग्रहांल्लोकपतींस्तथा ॥

विन्यसेन्नान्ततः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः ।

भूषादीन् स्थापयेन्मध्ये वारुणं मन्त्रमाश्रितः ॥

ब्रह्माणञ्च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद्बुधः ।

विनायकञ्च विन्यस्य कमलामम्बिकां तथा ॥

शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत्ततः ।

पुष्पभक्षफलैर्युक्तमेवं कृत्वाधिवासयेत् ॥

कुम्भांश्च रत्नगर्भांस्तान् वासोभिरभिवेष्ट्य च ।

गन्ध-पुष्पैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः ॥

एतद्वसत तान् ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयेत् ।

वह्मचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ ॥

सामगौ पश्चिमे स्थाप्यौ उत्तरेण त्वथर्वणौ ।

उदङ्मुखौ दक्षिणतो यजमान उपाविशेत् ॥

रजसेत्यादि, रजसा तण्डुलादिचूर्णेन ।

तत्प्रकारस्तु परिभाषायां दर्शितः ।

\* कक्षपयेदिति कश्चित् पाठः ।

ग्रहान्, आदित्यादीन् अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता-सहितान् ।  
लोकप्रभृतीन्, इन्द्रप्रभृतीन् ।

तेषामावाहनादिविधिः तुलापुरुषे द्रष्टव्यः ।

भूषादीन्, मकरादीन् ।

कमलां, लक्ष्मीं, अम्बिकां, दुर्गां ।

तानिति, कुण्डसमीपस्थान् कलशान् ।

पूर्वकुण्डे बह्वृचौ होतारौ स्थापयेत् ।

दक्षिणादिकुण्डेषु यथावेदं होतृनुपवेश्य जाप-दक्ष-हार-  
पालानामेष एव क्रमो वेदितव्यः ।

यजध्वमिति तान् ब्रूयाद्वोटकान् पुनरेव तु ।

उत्कृष्टमन्त्रजप्येन तिष्ठध्वमिति जापकान् ।

एवमादिश्य तान् सर्वान् प्रयुज्याग्निञ्च मन्त्रवत् ॥

जुहुयाद्धारुणैर्मन्त्रै राज्ञश्च समिधं तथा ।

ऋत्विग्भ्यश्चैव होतव्या वारुणैरेव सर्व्वशः ॥

ग्रहेभ्योविधिवद्ब्रुत्वा तच्चेन्द्राग्निराय च ।

मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद्विष्वक्कर्म्मणे ।

जुहुयादाचार्य्य इतिशेषः ।

वारुणमन्त्राः ।

तत्वायामि ब्रह्मणा वन्द्यमान इति पञ्च ।

त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वानिति द्वे ।

इमं मे वरुण शुधीति च ।

होमसंख्या तु समिदाज्ययोरष्टोत्तरशतं विधाय ग्रहादिभ्यस्तु  
प्रत्येकमष्टाविंशतिराहुतयोहोतव्याः ।

ग्रहादिमन्त्रास्तु, तुलापुरुषेऽभिहिताः ।

विश्वकर्म्ममन्त्रः ।

रौद्रसूक्तं इमारुद्रायेत्यादि, पावमानन्तु मङ्गलसूक्तं ।

रात्रिसूक्तञ्च रौद्रञ्च पावमानन्तु मङ्गलं ।

जपेरन् पौरुषं सूक्तं पूर्वतो जुहुयात् पृथक् ॥

रात्रिसूक्तं, रात्रिवाख्य दायतो इत्यादि ।

कनित्तदज्जनुषमित्यादि पुरुषसूक्तं प्रसिद्धं सूक्तं ।

शक्रं रौद्रञ्च सौम्यञ्च कौष्माण्डं जातवेदसं ।

सूरसूक्तं जपेरंस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः ॥

शक्रं सूक्तं, इन्द्रनौ विश्वतस्य रीत्यनुवाकोदुधनुशक्रमिति  
लिङ्गकं । रौद्रसूक्तं इमारुद्रा यःस्थिरधन्वन इभि षट् ।

ऋचः, सौम्यसूक्तं सोमो धेनु मिति षट् ऋचः ।

कौष्माण्डसूक्तं यद्देवादेवहेडनमिति चत्वारो ।

अनुवाकाः, जातवेदससूक्तं यस्त्वाहदाकीरिणेत्यनुवाकः  
सूरसूक्तं सूर्योदेवीमिति षट् ।

ऋचः एतानि सूक्तानि तैत्तिरीयाणां प्रसिद्धानि ।

वैराजं पौरुषं सूक्तं सौवर्णं रुद्रसंहिता ।

शैशवं पञ्च निधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च ॥

वामदेव्यं बृहत्सौम्यं रौरवं सौरथन्तरं ।

गवां व्रतं विकर्णञ्च रक्षोघ्नञ्च यशस्तथा ॥

गायेति सामगा राजन् पश्चिमद्वारमाश्रिताः ।

वैराजं पिवासौममिन्द्रेत्यत्र प्रसिद्धं ।

सौपर्णानि उत्छेदभिश्चुता मधमित्यत्र, चीणि, सामानि  
रुद्र संहिता ।

आवोराजानमित्यादिप्रसिद्धं ।

शैवं, उच्चाते जातमन्धस इति प्रसिद्धं ।

पञ्च निधनं वा, वाम देव्यं कयानश्चित्रेत्यत्र प्रसिद्धं ।

गायत्रन्तु प्रसिद्धं ।

ज्येष्ठ सामानि चीण्याश्च दोहानि वामदेव्यं ग्रामे गेयं बृह-  
त्सामत्वामिह वामह इति प्रसिद्धं ।

सौम्यं सोमव्रतं सन्ते पयांसौति प्रसिद्धं ।

रौरवं पुनानः सोमेत्यत्र प्रसिद्धं ।

रथन्तरं अभित्वा सूरनो तुम इति प्रसिद्धं ।

गवां व्रतं त्वमन्यत प्रथम मितिहे सामनी, विकर्णं विभ्रा-  
डित्यत्र प्रसिद्धं ।

रक्षोघ्नं, यशः समेष्टहृदिन्द्रायेत्यत्र प्रसिद्धं ।

आथर्वण्याश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा ।

जपेरन् मनसा देवान् आश्रिता वरुणं प्रभुं ॥

पूर्व्वेद्यु रभितो रात्रावेवं कृत्वाधिवासनं ।

गजा-श्व-रथा-वल्मीक-सङ्गम-ऋदगोकुलात् ॥

मृदमानीयकुण्डेषु प्रक्षिपेच्चत्वरान्तथा ।

रोचनाञ्च प्रसिद्धार्थान् गन्धान् गुग्गुलमेव च ।

स्रपनं तस्य कर्त्तव्यं पञ्चभङ्गसमन्वितैः ।

पूर्वं कर्त्तुं श्रीहामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः ॥

रोचनां गोरोचनां ।

सिद्धार्थाः, श्वेतसर्षपाः ।

पञ्चभङ्गाः,

अश्वत्थो-डुम्बर-प्लक्ष-वट-चूत-स्य पक्ष्वाः ।

अभिषेकमन्त्राः, तुलापुरुषे द्रष्टव्याः ।

अभिषेकस्तु, द्वितीयदिवसे विधेयः ।

शक्रादि देवताः, सर्वा ब्रह्म विष्णु महेश्वराः ।

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु प्रयच्छन्तु धनानि च ।

नारायणो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः ॥

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च ऋद्धिं यच्छन्तु ते सदा ।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥

गन्धर्वाः किन्नरा यक्षाः सिद्धा विद्याधरोरगाः ।

अभिनन्दन्तु ते सर्वे नद्यः सागरपर्वताः ॥

वेदशास्त्रपुराणानि मीमांसा-च्छन्द-आगमाः ।

वृहत्कथादिका श्रान्त्याः कथाः सर्वाः सुभप्रदाः ।

गायत्री चैव सावित्री शची लक्ष्मीः सरस्वती ।

मृडानी मातरः सर्वा भवन्तु वरदाः सदा ॥

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो वृधो जीवः सिताकजः\* ।

ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥

\* बुधजीवसितार्कजा इति पुस्तकाकारे पाठः ।

इन्द्रो वह्निर्यमश्चैव निऋतिर्वरुणस्तथा ।  
 वायुः कुवेर ईशानोदिकपालाः पान्तु सर्वदा ॥  
 संवत्सरा-यने मासास्तिथिर्व्वाराश्च नाडिकाः ।  
 मुहूर्त्तान्यभिषिञ्चन्तु नक्षत्राणि दिवानिशं ।  
 इत्येवं रुद्रकुम्भेन कर्त्तारमभिषिञ्चयेत् ॥  
 एवं कृत्वा समिदाज्यविधियुक्तेन कर्मणा ।  
 ततः प्रभाते विमले सञ्जाते वा गवां शतं ॥  
 ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्ठ्यथवा पुनः ।  
 पञ्चाशहाथ षट्त्रिंशत् पञ्चविंशति वा पुनः ॥

एता गावो दक्षिणा भवद्गाः सम्पादिताः कर्माङ्गदेवताः  
 प्रीयन्तामित्युदकपूर्वं दद्यात् ।

ततः साम्बत्सरैः प्रोक्ते शुद्धे लग्ने सुशोभने ।  
 वेदशास्त्रैः सगाम्बव्यैर्वाद्यैश्च विविधैः शुभैः ॥  
 कनकालङ्कृतां कृत्वा तत्र गामवतारयेत् ।  
 सामगाय च ता देया ब्राह्मणाय विशाम्पते ॥

अथञ्चामुमन्त्रणमन्त्रः ।

इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व ।  
 शुद्धपूतो अमृतः सन्तु नित्यं ।  
 मान्तारयन्ती कुरु तीर्थभिषेकं ।  
 लोकालोकन्तरते तार्थ्यतेति ॥

तत्पुच्छाग्रे यजमानः संलग्नस्तरेत् ।  
 जलाशयश्च त्रिवृता सूत्रेण परिवेष्टयेत् ।



पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्वितां ॥  
 ततो निक्षिप्य मकरं मत्स्यादींस्तांश्च सर्वशः ।  
 धृताक्षतुर्भिर्विप्रैश्च वेद-वेदाङ्गपारगैः ॥  
 महानदीं जलोपेतां दध्य-क्षत-विभूषितां ॥  
 उत्ताराभिमुखीं-न्युजां जलमध्ये तु कारयेत् ॥  
 आथर्वणेन साम्ना च पुनर्न्नामित्यृचेति च ।  
 आपोहिष्टेति मन्त्रेण क्षिप्वागत्य च मण्डपं ॥

आथर्वणं सामा शन्नां देवीरभिष्टये इत्यत्र प्रमिद्धमरण्यगेयं  
 तथाश्रयं, जलाशयः सर्वोपयोगित्वेन सर्वेभ्यो भूतेभ्यो मयोत्सृ-  
 ज्यत इतित्यागं कुर्यात् ।

पूजयित्वा सदस्यांस्तु वलिं दद्यात्समन्ततः ।  
 पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः ॥  
 चतुर्थीकर्म्म कर्त्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः ।  
 दक्षिणा राजशार्ङ्गूल वरुणं संस्मरंस्ततः ॥  
 कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च ।  
 ऋत्विग्भ्यस्तु समन्दत्वा मण्डपं-विभजेत्पुनः ॥  
 हेमपात्रीञ्च शय्याञ्च स्थापकाय निवेदयेत् ।  
 ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा ॥  
 भोजयेच्च यथाशक्त्या पञ्चाशद्वाथ विंशतिं ।  
 एवमेव पुराणेषु तडागे विधिरुच्यते ॥  
 कूप-वापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च ।  
 एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च ॥  
 मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात् प्रासादो-द्यानभूमिषु ।

अथञ्च शक्तिवर्द्धन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा ।  
 स्वल्पेऽध्वेकाग्नित्कार्यं वित्तशाउग्राहते नृभिः ॥  
 प्रावृत्काले स्थितन्तोयमग्निष्टोमसमं स्मृतं ।  
 शरत्कालस्थितं यत्स्यात् तदुक्तफलदायकं ॥  
 वाजपेया-तिरात्राभ्यां हेमन्त-शिशिरस्थितं ।  
 अश्वमेधसमं प्राहुर्व्वसन्तसमये स्थितं ।  
 ग्रीष्मे च यत् स्थितन्तोयं राजसूयाद्विशिष्यते ॥

एतान्महाराज विशेषधर्मान्  
 करोति योर्थानथ शुद्धबुद्धिः ।  
 स याति रुद्रालयमाशु पूतः  
 कल्पाननेकान् दिवि मोदते च ॥  
 अनेन लोकांश्च महस्तपादीन्  
 भुक्त्वा परार्द्धहयमङ्गनाभिः ।  
 सहेति विष्णोः परमं पदं यत्  
 प्राप्नोति तद्योगवलेन भूयः ॥

एवमयं साधारणस्तडागादि प्रतिष्ठाविधिरुक्तः विशेषस्तु  
 शाखाविभेदेन पुरस्ताद्वक्ष्यते ।

तत्राविरुद्धधर्माणामेकत्रोपसंहारेण प्रतिष्ठानुष्ठानमादरणीयं  
 विरुद्धधर्मसम्बन्धे तु स्वशाखोक्तमनुष्ठेयमिति ।

अथ वज्रिपुराणे ।

द्विज उवाच ।

( १२८ )

वारुणेष्टिर्यथा वेदे प्रोक्ता यादृक् स्वयम्भवा ।  
मोहो न जायते येन तत्सर्वं ब्रूहि मे विभो ॥

यम उवाच ।

सुदिने शुभनक्षत्रे प्राग्विप्रानुपवेशयेत् ।  
ब्रीह्यावाह्य च ऋग्वेदसंवत्सरोसि वै यज्ञः ।  
आवोराजेति सम्मानि अयं मेह्यैत्यथर्वणा ॥  
पूर्वं पाद्यन्तु वै दद्यादिदं विष्णुरितीत्यर्चा ।  
आप्त्वावहन्तु हरय इत्यर्घ्यं संप्रदापयेत् ॥  
ततश्चाचमनीयञ्च विष्टरोस्वीतिविष्टरं ।  
कांस्यपात्रां मधु चाज्यं कुकुरोसीतिमन्त्रितं ॥  
त्रिःसंप्राश्य तथाचात्मन्मन्त्रादापः पुनन्त्रिति ।  
दद्यात् स्थपतये चैवं सदसस्पतिमित्यूचा ॥  
ततस्तं ब्राह्मणा ब्रूयुः कस्वायुनक्ति कर्मणः ।  
शाकुनेन ततो वश्यं स्थालीपाकं समारभेत् ॥  
लौकिकाग्निं पुरस्कृत्य लोकोहि वलवान् यतः ॥  
श्रोत्रिये गामनङ्गाहं हन्यात् किन्न समाचरेत् ।  
चक्षुषी पूर्वं तो हुत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरं ॥

चक्षुषी आज्यभागौ,

दद्यात् पूर्णाहुतीं पूर्णां गर्भाधानादिकं ततः ।  
कुर्यात्पञ्चभिखातं च वरुणं वारिसादृशं ।

ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा अग्निकुण्डं नयेत्पुरा ॥  
 अग्निं दूतं वृणीमह इत्यतो दक्षिणं नयेत् ।  
 वीतिहोत्रं त्वाकरेति अग्निं दूतञ्च पश्चिमे ॥  
 तं नो त्वामुत्तरं पश्चात् अग्नयायाहि वीतये ।  
 एवमुत्पाद्य तं वक्त्रिं चक्षुषी व्याहृतीं हुनेत् ॥  
 वारुणैरेव मन्त्रैश्च पृथक्कुण्डे च पञ्चकं ।  
 वरुणः प्रावृताभुवमिमं मे वरुणं तथा ॥  
 उदुत्तममितिहाभ्यां ऋजुनीतीति वा ततः ।  
 सोमं राजानमित्याहुश्चरुं प्राच्यं हि वारुणं ॥  
 हुत्वा पूर्णाहुतिं दत्त्वा यूपं तद्वरुणं न्यसेत् ।  
 संपूज्य वारुणे कुम्भे शाकलं होममाचरेत् ॥  
 ब्रह्मणो ब्रह्मजज्ञानमतोदेवेति विष्णवे ।  
 शम्भवे सम्भवायेति चातारमिति जिष्णवे ॥  
 त्वमग्ने रोहिताश्वाय यमाय त्वेति मे हिज ।  
 एष ते निऋते चैव वरुणस्य यादः पतेः ॥  
 वातोवायतिवाताय कुविदाङ्गमुदक्पतिः ।  
 ईशानमस्य ईशस्य ग्रहाणां शृणु साम्प्रतं ॥  
 आकृष्ण इति सूर्याय इमं देवेति इन्द्रवे ।  
 कुजायेत्यग्निमूर्ध्वान्त उद्बुद्धश्चन्द्रसूनवे ॥  
 गुरोर्बृहस्पतेत्याहुः शुक्रायान्नात्परिश्रुतः ।  
 शन्नीदेवी तु सोरिस्तु कयान इति राहवे ॥  
 केतुं क्षण्णन्नकेतोस्तु विश्वायुर्विश्वकर्म्मणे ।  
 भूतायत्वेति भूतेभ्यो क्षेत्रस्येति च भूपतेः ।

रक्षोघ्नैश्चैव मन्त्राणि कृत्वा तैः क्रमशोनृप ॥  
 शतं शतसहस्रम्वा तिलास्तत्र पृथक् पृथक् ।  
 समिद्धिस्तु यवैर्वापि दत्त्वा पूर्णाहुतिं पुनः ॥  
 सर्वभोगोपकाराय शान्तिं कृत्वा द्विजोत्तमः ।  
 चरन्तु अपयेत् पक्ता वारुणं सर्वकामदं ॥  
 वारुणैरेव होतव्यं वरुणाय नियोजयेत् ।  
 कूर्णाहुतिं ततो दत्त्वा कुण्डे कुण्डे यथाविधि ॥  
 वरुणञ्च नमेत्तच्च सयादीभिः समन्वितं ।  
 उल्लुङ्गेत्तत्र घेनूनां शतमेवार्धमेव वा ॥  
 बह्वनामप्यभावे तु एकां रत्नै रलङ्कृतां ।  
 देव-पितृ-मनुष्येभ्यः पुच्छे तस्यास्तिलोदकं ॥  
 दत्त्वा निवेदयेत्पश्चात् सर्वालङ्कारभूषितां ,  
 ऋत्विग्भ्यो गुरवे पूर्व्वं त्रिगुणां दक्षिणां सदा ॥  
 स्नायादवभृथेनाथ पुत्र-भार्या-सुहृदृतः ।  
 प्रदद्यादक्षिणान्तेभ्यो यथाशक्त्या तथा गवां ॥  
 एवं यः कुरुते राजन् वारुणेष्टिं प्रयत्नतः ।  
 स पूर्व्वपितृभिर्युक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥  
 एवमेतन्मया ख्यातं यदुक्तं वज्रिना पुरा ॥

इति वारुणेष्टिः ।

वह्वचपरिशिष्टात् ।

अथातो वारुणविधिं वापीयन्नं व्याख्यास्यामः

पुण्ये तिथिकरणे शुभे नक्षत्रे प्राचीं दिशमास्थाय प्राक्-  
 प्लवणे उदक्प्लवणे वा उदकसमोपेऽग्निमुपसमाधाय वारुणं चरुं  
 अपयित्वा आज्यभागान्तं कृत्वा आज्याहुतीर्जुहुयात् । समुद्र-  
 ज्येष्ठा इति प्रत्यृचं । ततो हविषा अष्टाहुतीर्जुहुयात् तत्वायामि  
 ब्रह्मणा वन्द्यमान इति पञ्च, त्वं नोऽग्ने वरुणस्य विद्वानिति द्वे,  
 इमं मे वरुणः शुधीहवेति च स्विष्टिक्तं नवमं नव वै प्राणा  
 प्राणा वा आपस्तस्मादानवभिर्जुहीति\* मार्जनान्ते धेनुमवतार-  
 येत् । अवतार्यमाणान्तामनुमन्त्रयेत् इदं सलिलं पवित्रं कुरुष्व  
 अशुद्धः पूतो अमृतः सन्तु नित्यं भावयन्तो सर्व्वतीर्थाभिषिक्तं  
 लोकालोकान्तरते तीर्थतेचेत्यनेन पुच्छाये यजमानः स्वयं लग्नः  
 आचार्य्येणान्वारध्वा उत्तीर्थ्य आपो अस्मान्मातरः शुश्र्वयन्त्वपरा-  
 जितायां दिश्य त्थापयेत् ।

सूक्ष्मा भगवती भवतीह भूया इति, यदि सा हिं करोति  
 तदा हिं कृण्वती वसुमती वसूनामिति जपेत् । तां सचेलकण्ठां  
 काञ्चनशृङ्गीं ताम्रपृष्ठां वृषप्रजां रौप्यखुरां कांस्योपदोहां विप्राय  
 सामगाय दद्यादितरा वा शक्त्या दक्षिणां आचार्य्याय देयेति ततः  
 उत्सर्गं कुर्यात् देवपितृमनुष्याः प्रीयन्तामित्युत्सृज्य इति आह  
 शौनको यजमानो ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयेत् ।

अथ वृक्षारोपणं ।

तत्र महाभारते ।

स्थावराणाञ्च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्त्तिताः ।

वृक्ष-गुल्म-लता-वल्क-त्वक्-सारास्तृणजातयः ॥

एतास्तु जात्या वृक्षाणां तदारोपे गुणोऽस्ति मे ।

कौत्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव शुभं फलं ॥  
 अतीतानागतौ चोभौ पितृवंशी च भारत ।  
 तारयेद्दत्तरोपी च तस्माद्दृक्षांश्च रोपयेत् ॥  
 पुष्पैः सुरगणान् वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितृन् ।  
 क्वायया चातिथीन्तात पूजयन्ति महीरुहाः ॥  
 किन्नरो-रग-रक्षांसि देव-गन्धर्व-मानवाः ।  
 तथा महर्षयश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान् ॥  
 पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान् ।  
 वृक्षदं पुत्रवद्दृक्षास्तारयन्ति परत्र च ।  
 तस्मात्तडागे रोप्या वै वृक्षाः श्रेयोर्थिभिः सदा ॥  
 पुत्रवत्परिपात्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः शुभाः ।

अथाह विष्णुः ।

वृक्षारोपयितुर्वृक्षाः परलोके पुत्रा भवन्ति ।  
 वृक्षप्रदस्य वृक्षः प्रसूनैर्देवान् प्रोणयन्ति, फलैश्चातिथीन्,  
 क्वाययाभ्यागतान्, दैवे वर्ष उददकेन पितृन् !

पद्मपुराणे ।

अपुत्रस्य च पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते ।  
 यच्छन्ति रोपकेभ्यस्ते सत्तीर्थ-तर्पणादिकं ॥  
 सत्तीर्थ-पुत्रकृतं तर्पणादि तस्यादिजन्यं फलं रोपकस्य प्रय-  
 च्छन्तीत्यर्थः ।

यत्रे नापि च राजेन्द्र पिप्पलारोपणं कुरु ।

स तु पुत्रसहस्राणामेकएव करिष्यति ॥

पुत्रसहस्राणां कर्तव्यमिति शेषः

धनी वाञ्छत्यवृत्तेण ह्यशोकः शोकनाशनः ।  
 लक्ष्मी यज्ञपतिः प्रोक्तश्चिञ्चा चायुःप्रदास्मृता ॥  
 जम्बूकी कन्यदा प्रोक्ता भार्यादा दाडिमी तथा ।  
 अरलू रोगनाशाय पलाशो ब्रह्मादस्तथा ॥  
 प्रेतत्वं जायते पुंसः रीपवेद्यो विभीतकं ।  
 अङ्गुल्ले कुलवृद्धिः स्यात् खदिरे चाप्यरोगता ॥  
 निम्बप्ररोपकी यस्तु तस्य तुष्टी दिवाकरः ।  
 श्रीवृक्षे शङ्करो देवः पाटलायान्तु पार्व्वती ॥  
 शिंशपायामप्सरसः कुन्दे गन्धर्व्वसत्तमाः ।  
 तिलिन्डीके दासवर्गी वकुलो दृश्यदस्तथा ॥

श्रीवृक्षः, विल्वः ।

तिलिन्डीकोवृक्षः, अम्लः ।

पुण्यस्त्रीदायकश्चैव चन्दनः पनसस्तथा ।  
 सौभाग्यदश्चम्पकश्च करीरः पारदारकः ।  
 अपत्यनाशदस्तालो नादीशः कुलवर्द्धनः ॥  
 बहुभार्यानारिकेली द्राक्षा सर्वाङ्गसुन्दरी ।  
 रतिप्रदा तथा केली मोचको शत्रुनाशकः ॥

मोचकः, शाल्मलिः ।

इत्यादयस्तथा येऽन्ये येनोक्तास्तेऽपि दायकाः ।  
 प्रतिष्ठान्ते गमिष्यन्ति ये नरा वृक्षरोपकाः ॥

भविष्यत् पुराणे ।



वरभूमिरुहाः पञ्च नतु कोष्ठरुहा दशः ।  
 पतेः-पुष्पैः फलैः सूनैः कुर्वन्ति पितृतर्पणं ॥  
 बहुभिर्वत सञ्जातैः पुत्रैर्द्वैर्भार्थवर्जितैः ।  
 वरमेकः पथि तरुयत्र विश्रमते जनाः ॥  
 प्राणिनः प्रीणयत्यस्माच्छाखा-वल्कल-पल्लवैः ।  
 पुष्पच्छदा सुतनवः पुष्पैर्देवान् फलैः पितृन् ॥  
 पुष्प पत्र-फल-च्छाया-मूल-वल्कल-दारुभिः ।  
 धन्या महीरुहा येषां विफला यान्ति नार्थिनः ॥  
 पुत्राः संवत्सरस्यान्ते श्राद्धं कुर्वन्ति मानवाः ।  
 प्रत्यहं पादपाः पुष्टिं यथेष्टां जनयन्ति हि ॥  
 न ततकरोत्यग्निहोत्रमसाध्यं योषितां सुतैः ।  
 यत्करोति घनच्छायः पादपः पथि सेवितः ॥  
 सुच्छाया च सुपुष्पा च सुफला पुष्पवाटिका ।  
 कुलयोषिव भवति भर्तृलोके इयानुगा ॥  
 अशोकपल्लवकरा तिलकालङ्कृतानना ।  
 सर्वापभोग्या वेश्येव वाटिका रतिदायका ॥  
 सदा स सखी भवति सदा दानं प्रयच्छति ।  
 सदा यज्ञं स यजते यो रोपयति पादपं ॥  
 अश्वत्थमेकं पिचुमर्द्धमेकं  
 त्र्यग्रोधमेकं दग्धं चिञ्चिणीकं ।  
 कपित्थं विल्वामलकीत्रिपञ्च  
 पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येत्\* ॥

\* अश्वत्थमेकं पिचुमर्द्धमेकं द्वौ चम्यकौ दोनय केशरांश्च सप्ताथ तालाग्रवमारि  
 केषान् पञ्चाम्रवापी नरकं न पश्येदिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

प्रतिश्रयाश्रान्तममाश्रयित्वा-  
दमी च सत्रं फलदा वभुक्षवे ।  
अपत्यमेते परलोकहेतो-  
र्विमृश्य तत् कि-तरवीन रोपिताः ॥

न खानिता पुष्करिण्यो रोपिता न महीरुहाः ।  
मातुर्योवनचोरेण तेन जातेन किं कृतं ॥  
छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे ।  
फलन्ति च परार्थेषु न स्वार्थैकपरा द्रुमाः ।  
अतो द्रुमाः सदा रोप्याः सर्वकाममसृज्ये ॥

इति वृक्षारोपणफलं ।

अथ वृक्षदानं ।

स्कन्दपुराणे ।

यस्तु वृक्षं प्रकुरुते छाया-पुष्प-फलोपगं ।  
पथि दिव्ये नरः पापात् सन्तारयति वै पितॄन् ।

नन्दिपुराणे ।

मार्गशीर्षे तु यो दद्याच्छायाविटपमंकुलं ।  
सकुल्यास्तरुखण्डेषु महेन्द्रोद्यानवैश्वसु ।  
विनोद्यन्ते सरोवृन्दैर्देववच्च युगार्चुदं ॥

मार्गशीर्षे, अध्वमुखे ।

दद्यादि यत्र वृक्षमिति शेषः ।

( १३० )

फलवृक्षश्च यो दद्याद्वर्त्ममुद्दिश्य मानवः ।  
स सर्वकामलप्तात्मा गच्छेद्वरुणमन्दिरं ॥

महाभारते ।

देवेभ्योऽथ द्विजातिभ्यो यो दद्यात् फलदं द्रुमं ।  
स पीयूषभुजां लोके सेव्यमानो वरोरुभिः ॥  
क्रीडते देववत् कालमनन्तं पूर्वजान्वितः ।  
सहकारद्रुमन्दत्वा किन्नरैः सह मोदते ॥  
याति दत्त्वा द्विजे जम्बूमम्बिकायाः सलोकतां ।  
वारुणं नारिकेलेण खर्जूरेण च धानदं ॥  
पूगद्रुमप्रदानेन लोकं सारस्वतं व्रजेत् ।  
याति चन्द्रमसो लोकं दत्त्वा पनसभूरुहं ॥  
चिञ्चाप्रदानतो याति रुचिरं लोकमाश्विनं ।  
कपित्थ-दाडिमा-म्रात-कदल्या-मलकीतरून् ॥  
दत्त्वा नक्षत्रलोकेषु सुखमश्नाति मानवः ।  
अन्येषामपि वृक्षाणां सुमनःफलशाखिनां ।  
प्रदानतो नरो याति परमैश्वर्यसम्पदं ॥

तथा ।

पुण्योपगम्बाथ फलोपगम्बा  
यः पादपं-स्पर्शयते द्विजाय ।  
स स्त्रीसमृद्धं वहुरन्नपूषं  
प्राप्नोत्यथन्नोपनतं गृहं वै ॥

अथ कदलीदानं ।

आह वीधायनः ।

कारयेत् कदलीं-दिव्यां पर्णैः सर्वत्र संवृतां ।  
 फलपूगेन संयुक्तां सुवर्णस्य फलेन तु ॥  
 यथाविभवतः कुर्याद्वस्त्रेणावेष्ट्य सूत्रकैः ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेच्चापि भक्षैर्नानाविधैः शुभैः ॥  
 होमञ्च कारयेत्तत्र पूर्ववद्ब्राह्मणेन च ।  
 हिरण्यगर्भइत्यादितस्त्रिङ्गैः प्राङ्मुखेन तु ॥  
 तस्मै तां कदलीन्दद्याद्वस्त्रालङ्कारपूर्विकां ।  
 पूजिताय दरिद्राय वृत्तिस्थायाल्मवेदिने ।  
 धर्मज्ञाया-तिदान्ताय मन्त्रेणानेन तां क्षयी ॥  
 हिरण्यगर्भपुरुष परात्पर जगन्मय ।  
 रश्मादानेन देवेश क्षयं क्षपय मे प्रभो ॥

दानमन्त्रः ।

पुण्याहवाचनं कार्यं ब्राह्मणैर्व्वेदपारगैः ।  
 शिशैरिष्टैर्व्वन्धुभिश्च सह भोजनमाचरेत् ॥

अथ न्यग्रोधदानं ।

तथा ।

ब्रह्माः शस्त्रेण येऽपि स्युर्व्विषदिग्धेन संयुगे ।  
 तेऽपि शुद्धाः प्ररीहन्ति यथा प्रोक्तन्तु वायुना ॥

सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमथापि वा ।  
 पलद्वयेन चैकेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ॥  
 न्ययोधवृक्षं कुर्वीत स्कन्धशाखाभिरन्वितं ।  
 वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य स्कन्धे स्कन्धे पृथक् पृथक् ।  
 हरिद्रापुष्पके स्थाप्य ब्राह्मणाय नियोजयेत्\* ॥  
 उत्तराशापते देव कुर्वेत् नरवाहन ।  
 नाडीव्रणं नाशयाशु न्ययोधस्य प्रदानतः ॥

दानमन्त्रः ।

अथाश्वत्थदानं ।

वायुपुराणे ।

भवेत् स्फुटितपादस्तु योऽभिहिंस्याइनस्यतीन् ।  
 दानेन तत्प्रतीकारं प्रवक्ष्यामि यथोदितं ॥  
 पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।  
 अश्वत्थवृक्षं कुर्वीत स्कन्धशाखामन्वितं ॥  
 माणिक्य-वज्र-वैदूर्यैः स्कन्धमध्ये स्वलङ्कृतं ।  
 वस्त्रे णावेष्ट्य सर्वत्र धान्यस्योपरि विन्यसेत् ॥  
 आचार्यैः सर्वशास्त्रज्ञो धर्मशास्त्रसुनिष्ठितः ।  
 वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञो यज्ञकर्मणि निष्ठितः ।  
 पूजितो वस्त्रमात्याद्यैरश्वत्थं पूजयेच्छुभं ॥

अश्वत्थे वो निषदनमितिमन्त्रेण संयुतः ।  
उपचारैः षोडशभिर्होमं कुर्यादनन्तरं ॥  
समिदाज्यतिलैर्मन्त्रैर्यदौषधयद्रप्यति ।  
निम्नतिनामवतीभिस्तान्येव इति च त्रिभिः ॥  
अश्वत्थ इति मन्त्रेण हुनेत् स्विष्टकृतं तथा ।  
अष्टोत्तरशतं हुत्वा अष्टाविंशतिमेव वा ॥  
सम्पाताज्येन पादौ द्वौ सक्तौ कुर्याच्च रोगिणः ।  
सर्पत्वक् कूर्मयुक्तेन निशाचूर्णेन चैव हि ॥  
प्रयाताइति मन्त्रैश्च चतुर्दशभिरेव च ।  
कुर्याच्च कलशैः स्नानं मन्त्रैरेभिः समाहितः ॥  
इदं विष्णुः प्रतद्विष्णुर्विष्णोर्नुकमिति क्रमात् ।  
तथाचौषधिसूक्तेन स्नातः शुक्ताम्बरः शुचिः ॥  
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य वृक्षं नारायणात्मकं ।  
मन्त्रेणानेन भक्त्या तमाचार्याय निवेदयेत् ॥  
पिप्पलावृक्षराडेव ह्यग्निगर्भस्त्वमेव हि ।  
प्रभुर्व्वनस्पतीनाञ्च पूर्व्वं जन्मनि यत् कृतं ॥  
हिंसनं यत् कृतं यच्च वैरूप्यं पादयोर्मम ।  
नाशयाशु च मे क्षिप्रं त्वं दानेनातितोषितः ॥

दानमन्त्रः ।

अश्वत्थमेवं दत्त्वा तं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ।  
पुनः स्नात्वा तु भुञ्जीत ब्राह्मणैर्वन्धुभिः सह ॥

अथाह वृद्धगीतमः ।

वृक्षच्छेत्ता वृथा यस्तु स नाडीव्रणवान् भवेत् ।  
 वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं सर्वलोकाहिताय तु ॥  
 सोवर्णं कारयेद्वृक्षमश्वत्थं स्कन्धशीभितं ॥  
 पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।  
 कुर्याद्रूप्यमयं सूत्रं तेन तं परिवेष्टयेत् ॥  
 तण्डुलोपरि संस्थाप्य पूजयेदुपचारतः ।  
 अश्वत्थे वो निषदनमिति मन्त्रेण चोदितः ॥  
 आचार्यो धर्मशास्त्रज्ञो वेदवेदाङ्गपारगः ।  
 पुराणज्ञस्तथाशान्तो यज्ञविद्यासुनिष्ठितः ॥  
 तेनैव कारयेत् पूजामाह्वय स्वयमेव हि ।  
 होमञ्चापि प्रकुर्वीत समिदाज्यतिलैरपि ।  
 अग्नेः संस्थापनं कार्यं मन्त्राध्यायोक्तमार्गतः ॥  
 यदहं वाजयन्नेष समिद्धीमे प्रकीर्तितः ।  
 आज्यं नाष्टादिको ग्राह्यो व्याहृतिभिस्त्रिंशद्भुतैः ॥  
 ईशानदेशे कलशस्थापनं शास्त्रतो भवेत् ।  
 तेनाभिषेकं कुर्वीत आपोहिष्ठादिमन्त्रकैः ॥  
 ग्रहशान्तिश्च कर्त्तव्या ब्राह्मणैर्व्वेदपारगैः ।  
 ततो नाडीव्रणीं स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥  
 उदङ्मुखः प्राङ्मुखाय आचार्याय निवेदयेत् ।  
 मन्त्रेणानेन विधिवत् पूजितायाङ्गुलीयकैः ॥  
 वनस्पतीनां प्रवरोविष्णुरूपोऽतिपूजितः ।  
 तस्य प्रदक्षिणं सर्वं नमस्यः सर्वदेहिनां ॥  
 सर्वकामार्थवृद्धौ स प्रीतो भवतु दानतः ।

वृथावृक्षच्छेदनेन नाडीव्रणं तदात्मनः ।

सर्वं विनाशय क्षिप्रं वृक्षाणां प्रवरोह्यमि ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तद्दानं सुखी नाडीव्रणी भवेत् ।

अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दद्याच्छक्त्या च दक्षिणां ।

नमस्कृत्य तथाचार्यं शनैः शतपदं व्रजेत् ॥

ततः स्नात्वातिहृष्टश्च ब्राह्मणानपि भोजयेत् ।

शिष्टेरिष्टैर्वन्धुभिश्च स्वयम्भुञ्जीत वाग्यतः ॥

अथाम्बतरुदानं ।

आह वृद्धगौतमः ।

विद्वधिः फलहर्ता स्यात् मनुष्यो ब्राह्मणस्य तु ।

वक्ष्यामि तत्प्रतीकारं दानहोमादिभिः पुनः ॥

पलाङ्गेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः ।

यथाविभववतो वापि कुर्यादाम्बतरुं शुभं ॥

स्निग्धन्तथैव शाखाभिः सर्व्वतः संवृतं शुभं ।

श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य फलैरपि सुकल्पितं ॥

गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य तण्डुलोपरि वेष्टितं ।

तण्डुलानां परीमाणं द्रोणानाञ्च चतुष्टयं ॥

तदर्द्धमथवा ग्राह्यं तथाविभवतो नरैः ।

आचार्योऽथ विनीतस्तु सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥



धर्मज्ञः सत्यवादी च कुलीनो लोकसम्मतः ।  
 आहूय परया भक्त्या तेन पूजादि कारयेत् ॥  
 वनस्पतेरशनायेत्येतया पूजनादिकं ।  
 आग्नेयां दिशि होमश्च समिदाज्यतिलैर्भवेत् ॥  
 मन्त्राश्च शास्त्रतो दृष्टा जातावावतुमित्यपि ।  
 तिलहोमो व्याहृतिभिरष्टोत्तरसहस्रकं ॥  
 यदहंवायुमन्त्रेण आज्यहोमः प्रशस्यते ।  
 ग्रहशान्तिश्च कर्त्तव्या स्वष्टहोक्तविधानतः ॥  
 हुत्वा हुत्वा च सम्पातान् पात्रेऽन्यस्मिन्निधापयेत् ।  
 तेन विद्रुधिरोगं मे सम्यगाज्यप्रदानतः ॥  
 अग्नेरुत्तरतो भागे कलशस्थापनं भवेत् ।  
 भद्रासनोपविष्टस्य अभिषेकश्च कारयेत् ॥  
 ततः शुक्ताम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।  
 सौवर्णमाम्बरवृक्षन्तं प्रदद्यात् प्राङ्मुखाय तु ॥  
 गन्धवस्त्रैः पूजिताय रोगी स्वयमुदङ्मुखः ।  
 आम्र त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वं प्राणिहिताय तु ॥  
 वृक्षाणामादिस्मृतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः ।  
 फलचौर्येण यत् प्राप्तं वैरूप्यं पूर्वजन्मनः ।  
 सौवर्णवृक्षदानेन तुष्टा सर्वाश्च देवताः ॥  
 विद्रुधीनां शरीरोस्थं बाह्यमभ्यन्तरं तथा ।  
 विनाशयन्तु सकलं स्वास्थ्यं कुर्वन्तु मे सदा ॥

दानमन्त्रः ।

एवं दत्त्वा तु तद्दानं माचार्यायातिभक्तिः ।  
शनैः शतपदं गत्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥  
अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दद्यात् शक्त्या च दक्षिणं ।  
ब्राह्मणान् भोजयित्वाथ स्वयम्भूञ्जीत वन्धुभिः ॥

इति वृक्षदानविधिः ।

नन्दिपुराणे ।

क्रीडारामन्तु यः कुर्यादुद्यानं पुष्पसंकुलं ।  
तोयाश्चमसमायुक्तं गुप्तं फलसमृद्धिमत् ।  
स गच्छेच्छुद्धिरपुरं वामस्तत्र युगत्रयं ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

पुष्करउवाच ।

उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्राग्भार्गवोत्तम ।  
उदुम्बरश्च याम्येन सौम्येनाश्वत्थ एव च ॥  
एते कर्मणि नेष्यन्ते दक्षिणादिक्समुद्भवाः ।  
समीपजाताश्च तथा वर्ज्याः कण्टकिनी दुर्माः ॥  
वामभागे तथोद्यानं कुर्याद्वासगृहाच्छुभं ।  
वायव्ये प्राक्किलांस्तत्र मृद्वीकान्तांश्च पुष्पितान् ॥  
ततस्तु रोपयेद्दृक्षान् प्रयतः सुसमाहितः ।  
स्नातो दुग्धमध्याभ्यर्च्य ब्राह्मणांश्च शिवं तथा ॥  
ध्रुवानि पञ्च वायव्यं हस्तं पुष्यं सवैष्णवं ।

तत् सर्वमिति कचित् पाठः ।

( १३१ )

नक्षत्राणि तथामूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे ॥  
 उद्यानमजलं राम नाभिरामं यदा तदा ।  
 प्रवेशयेन्नदीवाहान् पुष्करिण्यश्च कारयेत् ॥  
 संस्कार्यमुद्भिदन्तोयं कूपाः कार्य्याः प्रयत्नतः ।  
 हस्तोमघा तथामैत्रमाप्यं पुथ्यं सवासवं ॥  
 उत्तरात्रितयं राम तथापूर्व्यां सफाल्गुनी ।  
 जलाशयसमारम्भे प्रशस्तं वारुणं तथा ॥  
 संपूज्य वरुणं देवं विष्णुं पर्जन्यमेव च ।  
 कल्पयित्वा द्विजान् कामैस्तदारम्भपरोभवेत् ॥  
 अथोद्याने प्रवक्ष्यामि प्रशस्तान् पादपान् द्विज ।  
 अरिष्टा-शोक-पुन्नाग-शिरीषाः-सप्रियङ्गवः ॥  
 पनसाशोककदलीजम्बूलकुचदाडिमाः ।  
 मङ्गल्याः पूर्व्वतोराम रोपणीया गृहेषु वा ॥  
 कृत्वा बहुत्वमेतेषां रोप्याः सर्व्वे वनान्तरं ।  
 शास्त्रलिं कोविदारश्च दर्जयित्वा विभीतकं ॥  
 दमनं देवदारुश्च पलाशं पुष्करन्तथा ।  
 न विवर्ज्यस्तथा कश्चिद्देवोद्याने विजानता ॥  
 तत्रापि बहुला कार्य्या मङ्गल्यानां द्विजोत्तम ।  
 सायं प्रातश्च घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ॥  
 वर्षाकाले भुवः शोषे सेतुव्या रोपिता द्रुमाः ।  
 उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमा षोडशान्तरं ॥  
 स्थानात् स्थानान्तरं कार्य्यं हृत्पाणं द्वादशान्तरं ।  
 अभ्यासजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परं ।

अव्यक्तमिन्द्रसूक्ष्मत्वाद्भवन्ति सफला विज ॥  
 तेषां व्याधिसमुत्पत्तौ शृणु राम चिकित्सितं ।  
 आदौ संशोधनन्तेषां किञ्चिच्छस्त्रेण कारयेत् ॥  
 विडङ्गघृतपङ्काक्ताः सेचयेच्छीतवारिणा ।  
 फलनाशे कुलट्यैश्च माषैर्दुग्धैस्तिलैर्यवैः ।  
 शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्व्वदा ॥  
 आविका-ज-शक्तञ्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ।  
 गोमांसमुदकं चेति सप्तरात्रान्निधापयेत् ॥  
 उत्सेकं सर्व्ववृक्षाणां फलपुष्पादिद्विदं ।  
 रङ्गतोयोषितं वीजं रङ्गतोयाञ्च सेचितं ॥  
 तद्रङ्गपुष्पं भवति यौवने नात्र संशयः ।  
 मत्स्यगन्धसान्नु सेकेन वृद्धिर्भभति शाखिनां ।  
 अतः प्राधान्यतो वक्ष्ये द्रुमाणां दोहदान्यहं ॥  
 मत्स्योदकेन शीतेन आम्नाणां सेकदृश्यते ।  
 मृद्वीकानां तथाकार्थस्त्वनेन रिपुसूदन ॥  
 पक्वासिद्धुचिरं चैव दाडिमानां प्रशस्यते ।  
 तुषो देयश्च भव्यानां मद्यञ्च वकुलद्रुमे ॥  
 विशेषात् कामिनीवक्त्रसंसर्गात् गुणञ्च यत् ।  
 प्रशस्तञ्चाथ श्लोकानां कामिनीपदताडनं ॥  
 शृगालमांसतोयेन नारङ्गीत्योदकैर्हितं ।  
 मधुयष्टादकं चैव वदराणां प्रशस्यते ॥  
 गुडोदकं सगोमांसं करकाणां प्रशस्यते ।  
 क्षीरासवेन भवति सप्तपर्णीमनोहरः ॥

मांसप्लुतोवसामज्जासेकः कुरुवके हितः ।  
 पूतिमत्स्याहितं पूतिकार्पासफलमेवच ॥  
 अहिमेदस्य सेकोऽयं पाटलेषु च शस्यते ।  
 शृगालमत्स्यमांसाभ्यां चम्पकेषु च दापयेत् ॥  
 फले लतानां क्षीरेण रुधिरिण च शस्यते ।  
 कपित्थविल्वयोः सेकं गुडतोयेन कारयेत् ॥  
 जातीनां मल्लिकायाश्च गन्धतीयं परं-हितं ।  
 तथाकुप्यतजातीनां कूर्ममांसमशस्यते ॥  
 खर्जूरनारिकेलानां वंशस्य कदलस्य च ।  
 लवणेन सतोयेन सेको वृद्धिकरः स्मृतः ॥  
 विडङ्गतण्डलोपेतं मत्स्यमांसं नरोत्तम ।  
 सर्व्वेषामविशेषेण दोहदं परिकल्पयेत् ॥

एवं कृते चारुफलाः सुपुष्पाः  
 सुगन्धिनोव्याधिविवर्जिताश्च ।  
 भवन्ति नित्यन्तरवः सुरम्या-  
 श्विरायुषः स्वादुफलान्विताश्च ॥

देवीपुराणे ।

अनूपे सजले स्थाने पुमान् देवेऽयं वा जले ।  
 आरामं-रोपयेत्प्राज्ञो विधितृष्टेन कर्मणा ॥  
 अनूपे, अतिस्निग्धे ।  
 सजले जलाशयसहिते ।

कालं देशं तथा पात्रं वीजं बीजक्रियाविधिः ।

तथाफलसमं सृष्टमेवमारोपितं भवेत् ॥  
 फलपुष्पविशुद्धस्य विशुद्धं सर्वसंस्कृतं ।  
 धर्मकामार्थमोक्षादिसाधने हन्यतेऽन्यथा ॥  
 विधिव्यत्ययवोजादिभूषिते भूपरिग्रहे ।  
 कुलादिभिः सुरयेष्ठ यजमानो विनश्यति ॥  
 पानं, वीजवापेयं । आर्येचार्यवीजक्रियाविधिः,  
 अङ्गरजननसमर्थवीजकरणप्रकारः ।  
 विधिव्यत्ययो, विधेरन्यथाकरणं ।

आरामं सहकारादेर्न शुद्धङ्कारयेत् क्वचित् ।  
 चिताज्वलन संलग्ने चितिवल्मीकदूषिते ।  
 सहकारवनं कृत्वा याति कर्त्ता यमालयं ॥  
 गृहात्परोधवा तात स्थिते संरोपिते तथा ।  
 प्रतिपक्षं भवेत्तत्र च्छिन्द्याद्वा हितमिच्छता ॥  
 अश्वत्थवटप्लक्षादिश्रौदुस्वर्यो विदिक्स्थिताः ।  
 जगतो भयदा यस्मात्तस्मात्तान् छेदयेन्मने ॥  
 रोपयेद्विल्व-वीरा-स्रकपित्थ-कपिलार्जुनान् ।  
 दाडिमौ वीजपूरञ्च उदगाघाद्रुमात्परे ॥  
 प्लक्षाः प्राच्यां सदा रोप्याः सकासनसधन्वनाः ।  
 कदम्बो वायवे तालो विल्वाशोकौ च सर्वगौ ॥

वीरः, भङ्गातकवृक्षः ।

कपिला, शिंशपा ।

असनः, वीजकः, बायव्ये, वायुदिग्भागे ।

मयन्दी माधवी रन्धा क्रीडास्थाने निवेशयेत् ।  
 जाती-नेपालिका-कुन्द-तगरा-गन्धमल्लिका ।  
 शुभाय कथितास्तात व्यत्ययाद्भयदा यतः ॥  
 पूर्व्वेण सुसमारामन्तथाचोत्तरतोऽथवा ।  
 पश्चिमे धनदं प्रोक्तं वायव्यां कीर्त्तिवर्द्धनं ॥  
 न कुर्य्युर्याम्यनैर्ऋत्ये ये चाग्नेये शुभार्थिनः ।  
 अन्यथा कलहोद्देगं मृत्युम्वा लभते कृती ॥  
 तस्माद्राज्यायुःशुभदं पुत्रसन्ततिवर्द्धनं ।  
 पश्चिमोत्तरपूर्व्वेण आरामञ्चायते कृतं ॥  
 अथवारामजान् दोषान् चामुण्डा शामयेत् कृतान् ॥  
 महाभयं महालक्ष्मोर्ग्रहकृत्यं यथोत्थितं ॥

ग्रहकृत्यं ग्रहपीडा ।

पुष्प-पद्म-फलानाञ्च वीजरेणुसमाः समाः ।  
 कर्त्ता देवसभावासं विधौ शाल्यविधौ वधः ॥

तथा ।

एवं यथोदितां भूमिं शुद्धां पुत्रसमाहितौ ।  
 परिगृह्य यथादेवं वनमालं शिखिध्वजं ॥  
 सोमञ्च नागराजञ्च ततः कुर्यात्परिग्रहं ।  
 यद्बीजं मन्त्ररहितं गर्भाधानादिवर्जितं ॥  
 वासितं सहकारादि यद्बीजं मन्त्रवर्जितं ।  
 तज्जातं वापकाराय तथा जायेत वैकृतं\* ॥  
 शङ्करायेतिमन्त्रेण इत्थंनु पञ्चमन्त्रवित् ।

चास्त्रकेन तु राजेन्द्र बीजं भवति शीभनं ॥  
 अविधौ कूपवाप्यादिखननोत्तरणं च यत् ।  
 कुर्वन्ति सहकारादिरोपणन्तु नराधमाः ।  
 फलं तेषां लभेत्तेषामिह चान्ते अधोगतिः ॥  
 येऽशुद्धाः शुद्धविधिना कुर्वन्ति वनरोपणं ।  
 ते आत्मनृपलोकानां महासंशयकारकाः ॥  
 कूपा-राम-तडागादि-प्रपा-वापी-प्रतिश्रयं ।  
 सर्वेशाधिष्ठितं वत्स ह्यनन्तफलदायकं ।  
 वृक्षान् पञ्च समारोप्य शिवधाम प्रपद्यते ॥  
 ये च पापा दुराचाराः शीतरुच्छेदकारिणः ।  
 तेऽथ पाच्यादिनरके पच्यन्ते ब्रह्मणोदिनं ।  
 मृतास्ते जीवमानास्तु ब्रह्मघ्नाः कीर्त्तिता भुवि ॥  
 तस्मिन् देशे भयं नित्यं राजानो न चिरायुषः ।  
 न च नन्दत्ययं लोको यत्र शीतचच्छेदनं ॥

इत्यारामरोपणम् ।

अथ वृक्षप्रतिष्ठा ।

मत्स्यपुराणे ।

ऋषय ऊचुः ।

पादपानां विधिस्तत्र यथावद्विस्तरादहम् ।  
 विधिना केन कर्त्तव्यं पादपोद्यापनं वृधैः ।  
 ये च लोकाः स्मृतास्तेषां वा निदानं वदस्व नः ॥



सूतउवाच ।

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु ।  
 तद्भागविधिवत् सर्वमासाद्य जगतीश्वर ॥  
 चत्विग्मण्डपसम्भारमाचार्यश्चापि तादृशः ।  
 पूजयेद्वाङ्मणांस्तद्वद्देवस्तानुलेपनैः ॥  
 सर्वौषध्युदकैः सिक्तान् पिष्टालक्तविभूषितान् ।  
 वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य वासाभिरभिवेष्टयेत् ॥  
 सूच्या सोवर्ण्या कार्य्यं सर्वेषां कर्णवेधनं ।  
 अञ्जनञ्चापि दातव्यं तद्वद्देवशलाकया ।  
 फलानि सप्त चाष्टौ वा कालधीतानि कारयेत् ॥

कालधीतानि रूप्यमयानि ।

प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यान्तानघिवासयेत् ।  
 धूपोत्र गुग्गुलुः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान् ॥  
 सर्वधान्यकृतान् कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः ।  
 कुम्भान् सर्वेषु सर्वेषु स्थापयित्वा नरेश्वर ॥  
 सहिरण्यनशेषांस्तान् कृत्वा वलिनिवेदनं ।  
 यथावत्लोकपालानामिन्द्रादीनां विधानतः ॥  
 वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्य्यो द्विजातिभिः ॥  
 ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणां ।  
 सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीं ।  
 पयस्विनीं वृक्षमध्यादुसृज्ये द्वामुदङ्मुखीं ॥  
 ततोभिषेकमग्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।

ऋग्यजुः साम-मन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तदा ।  
 तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्यात्प्राङ्मण्डपपुङ्गवाः ॥  
 स्नातः शुक्ताम्बरधरो यजमानः प्रपूजयेत् ।  
 गोभिर्विभवतः सर्वाङ्गुलिजः सुसमाहितः ॥  
 हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयैः पवित्रकैः ।  
 वासोभिः श्वलैश्चैव तथोपस्करपादुकैः ॥  
 क्षीराभिषेचनं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयं ।  
 होमश्च सर्पिषा कार्यो यवकृष्णतिलैस्तथा ॥  
 पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽङ्गि तथोत्सवः ।  
 दक्षिणा च पुनस्तद्वद्देया तत्रापि शक्तितः ॥  
 यद्यदिष्टतमं किञ्चित्तत्तद्दद्यादमत्सरः ।  
 आचार्ये<sup>१</sup> द्विगुणं दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥  
 अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्दत्तोत्सवं वृ<sup>२</sup> ॥  
 सर्वान् कामानवाप्नोति पदञ्चानन्त्य मश्नुते ॥  
 यश्चैकमपि राजेन्द्र वृत्तं संस्थापयेन्नरः ।  
 सोऽपि स्वर्गे<sup>३</sup> वसेद्राजन् यावदिन्द्रायुतत्रयं ॥  
 भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद्रागसंमितः ।  
 परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभां ॥

इति वृत्तप्रतिष्ठाविधिः ।

अथ तरुपुत्रदानविधिः ।

मत्स्यपुराणे ।

दशकूपसमा बापी दशवापीसमो द्रुमः ।

दशद्रुमसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः ॥

नन्दिपुराणे ।

तरुपुत्रं तु यः कुर्याद्विधिवदङ्गिसन्निधौ ।

स महापातकैर्मुक्तः समुद्रतुल्य कुलत्रयं ।

नरकेभ्यो नरीयाति प्रजापतिपुरं शुभं ॥

स्कन्दपुराणे ।

इत्येवं रुद्रमहिषी भूमिरुहसुतस्तव ।

श्रुत्वा पतिं त्रिलोकेशमिदमाह पतिव्रता ॥

भगवन् केन विधिना विधीनां सारसागर ।

पुत्रप्रतिकृतिर्वृक्षः क्रियते चन्द्रभूषण ॥

सलीलामिति सर्वज्ञः पृच्छन्ती विधिमुत्तमं ।

महादेवो महादेवीमिदं वचन मब्रवीत् ॥

देवि नागेन्द्रनासोरु नागेन्द्रगतिगामिनि ।

शृणुष्व येन विधिना गृह्यतेऽवनिजः सुतः ॥

अवनिजोवृक्षः ।

स्वपुत्रार्थं भूमिरुहं ग्रहीष्यामीति पार्ष्वती ।

सोपवासा भवेन्नारी शुचिवस्त्रा शुचिव्रता ॥

ततश्चैव सहस्रांशावस्तुशृङ्गगते रवौ ।

उदिते विमले चापि तथादाविन्दुसन्निभे ॥

विप्रानामन्त्रयेद्रात्रौ पावनान् वेदवादिनः ।

विप्राग्निमन्त्रयित्वा तु शुचिवस्त्रा शुचित्रता ॥  
 शयीत सनमस्कारा सदर्भां भूमिमाश्रिता ।  
 गमयित्वा तथा रात्रिं सवितर्युदितेऽपि च ॥  
 भक्ष्यभोज्यं समादाय व्रजेद्यत्र भवेत्तरुः ।  
 ततस्तं स्नपयित्वा तु सातपत्रं सभूषणं ॥  
 तन्तरुन्तरुणीकृत्य ततश्चायानुगामिनं ।  
 यज्ञोपपन्नमवन्तान् भोजयित्वा द्विजांस्ततः ।  
 पुण्याहं कारयित्वा तु ऋत्विजा चाथवात्मना ॥  
 तप्तानां ब्राह्मणानां वै चैतत्ते कृत्यमात्मनः ।  
 निवेद्य कृतमुद्दिश्य सद्भावेन परेण तु ॥  
 अपुत्रा भगवन्तोऽहं पुत्रप्रतिकृतिं तरुं ।  
 ग्रहीष्यामि ममानुज्ञां कर्तुमर्हथ सत्तमाः ॥  
 ततस्तैरभ्यनुज्ञातं तन्तरुन्तरुणाकृतिं ।  
 भूमिदेवसमक्षं वै गृह्णीयात्तनयं प्रिये ॥  
 भूमिदेवसमक्षं, ब्राह्मणाग्रतः ।  
 अनेन विधिना यस्तु गृहीततरुपुत्रकः ।  
 पितॄणां निरयस्थानां मधुधारां स वर्षति ॥  
 गृहीतो विधिनानेन शुभभूमिरुहात्मजः ।  
 शुभे सुखाय भवति विपरीतेन दुःखदः ॥  
 न पुत्राणां शतं वापि पीनश्रोणिपयोधरे ।  
 एकोभूमिरुहः श्रेष्ठः पुत्रत्वे कल्पितः सुतः ॥  
 इत्येवं तन्मयापृष्टमिष्टं दृष्टान्तपारिणि ।  
 यथाभूमिरुहः पुत्रोविशिष्टः कोष्ठजैः सुतैः ॥

ततः शोकापहा देवी तमशोकं विभाविनी ।  
 अलञ्चकार संहृष्टा ह्यलङ्कारैः पृथग्विधैः ।  
 आतपत्रच्च तस्याग्रे मुक्ताभवनभास्करं ॥  
 उच्छ्रयामास गिरिजा मयूराङ्गरुहैः सह ।  
 नानावर्णेन चाप्यस्य चन्दनेन सुगन्धिना ॥  
 आमूलात् प्रददौ देवी करपङ्कानितस्ततः ।  
 जाम्बूनदमयैश्चापि पदै रत्नविराजितैः ॥  
 सर्वतोभूषयामास तमशोकतरुप्रियं ।  
 तस्य शाखाप्रशाखासु मुक्तादामानि पार्वती ॥  
 आबबन्ध सतैर्भाति नक्षत्रैरिव भास्करः ।  
 तथा वासोयुगेनापि तमशोकं गुहारणी ॥  
 वासयामास लोकानां जननी पुत्रलालसा ।  
 ततो नमेरुणा चारु गुग्गुलं घृतमेव च ॥  
 समवाययुतं धूपञ्चामरं धूपनार्चितं ।  
 ततः शङ्खनिनादेन देवतूर्थरवेण च ॥  
 नन्दिनाथ समानीता ब्राह्मणा ब्रह्मणःसमाः ।  
 वाचयामास पुण्याहं दत्त्वा गाः स्वर्णमेव च ॥  
 ततः पुण्याहघोषान्ते आशीर्वादस्यचोभयोः ।  
 अनुमान्य पति-देवीं सृष्टीं-श्चाप्रीणयंस्तदा ॥

ब्रह्मवैवर्ते

श्रीभगवानुवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वृक्षस्योद्यापने विधिं ।

सर्वपापप्रशमनं सर्वाशुभविनाशनं ॥  
 अपुत्रया पुरा पार्थ पार्वत्या मन्दराचले ।  
 अशोकः शोकशमनः पुत्रत्वे परिकल्पितः ॥  
 जातकर्मादिकास्तस्य याः क्रियाः कुलवृद्धिमान् ॥  
 चकारात्रिपुराणोक्ताः शृणुष्वैव युधिष्ठिर ॥  
 स तु वालो घनदलस्तथैव मृदुपल्लवः ।  
 शीतवातातपसहः संस्कार्यस्तरुणस्तरुः ॥  
 स्त्रीनामा कण्टकी कुञ्जः-कीटखातसकोटरः ।  
 नोद्वाप्यः पादपः सर्वः शिष्टानां योनः सम्मतः ॥  
 आलवाले सुविहिते शुभे वार्धचतुष्किको ।  
 शोधयित्वा तमुद्देशं सुलिप्तङ्गारयेत्ततः ॥  
 ततश्चोद्यापनं पार्थ पादपानां प्रशस्यते ।  
 शुभेऽङ्गि विप्रकथिते ग्रहनक्षत्रसंयुगे ॥  
 पताकालङ्कृतं वृक्षं पूर्वैर्दुरधिवासयेत् ।  
 रक्तवस्त्रैः समाच्छाद्य रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ॥  
 पिष्टाद्यैः स्नापितं स्वर्णसर्वौषध्या च पादपं ।  
 स्थापयेत् पूर्वकलशांश्चतुर्दिक्षु विचक्षणः ॥  
 पल्लवालङ्कृतमुखान् सितचन्दनचर्चितान् ।  
 सितवस्तयुगच्छेवान् समाल्यान् रत्नगर्भिणः ॥  
 पताकालङ्कृताः सर्वे कार्यास्तत्त्रिधौ द्रुमाः ।  
 मूलविन्यस्तकलशा रक्तसूत्रैश्च वेष्टिताः ॥  
 रक्तपीतसितच्छेदचर्चिताः सुमनोरमाः ।  
 कलधौतमयान्यत्र फलानि दश पञ्च च ॥

ताम्रपात्रसवौजानि सरत्नान्यधिवासयेत् ।  
 तूर्थमङ्गलघोषेण चतुर्दिक्षु क्षिपेद्दलीन् ॥  
 इन्द्रादिलोकपालानां तन्मन्त्रैर्मन्त्रविद्गुरुः ।  
 ततः प्रभाते विमले कुण्डं कृत्वा समेखलं ।  
 ग्रहयज्ञविधानेन सर्वं कर्म समाचरेत् ॥  
 सुवर्णलङ्कृतान् कृत्वा ब्राह्मणान् वेदपारगान् ।  
 चतुरोष्ट्रौ यथाशक्त्या वासोभिरभिपूजयेत् ॥  
 तिलाग्रेण च होमः स्यात्तुष्टिपुष्टिकरः सदा ।  
 मातरः स्थापयित्वाग्रे पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥  
 अपयित्वा चरुं सम्यक् पयसा च परिप्लुतैः ।  
 होमयेज्जातकर्मादि गोदानं यावदेव तु ॥  
 पादपं स्रपयित्वा तु समन्त्रैस्तीर्थवारिभिः ।  
 जातकं नामकरण-मन्त्रप्राशन-मेव च ।  
 सुवर्णसूच्या कुर्वीत कर्णवेधं विधानतः ॥  
 जातरूपक्षुरेणाथ चूडाकर्म यथाक्रमं ।  
 वध्नीयान्मेखलां मौञ्जीं-वासश्च परिधापयेत् ॥  
 कृत्वा वै तदशेषेण कुर्याद्गोदानमङ्गलं ।  
 विवाहं केचिदिच्छन्ति माधवीलतया तरोः ॥  
 मालत्या सह शङ्खक्या जम्बू-वा शास्त्रलिं विदुः ।  
 संस्कारैः संस्कृतस्यैव पादपस्य तथार्थवत् ।  
 एषा प्रतिष्ठा नामेति मन्त्रेणाशीः प्रयोजयेत् ॥  
 यजमानस्ततः स्नात्वा शुक्ताम्बरधरः शुचिः ।  
 पुष्पाञ्जलिं समादाय मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥

ये शाखिनः शिखरिणां शिरसां-विभूषा  
 ये नन्दनादिषु वनेषु कृतप्रतिष्ठाः ।  
 ये कामदाः सुरनरीरगकिन्नराणां  
 तेऽनेन तस्य दुरितार्तिहरा भवन्तु ॥  
 एते द्विजा विधिवदत्र हुता हुताशाः  
 पश्यत्यसावपि हिमदीर्घितरन्तरस्थः ।  
 त्वं वृक्ष पुत्रपरिकल्पनया धृतोऽसि  
 कार्यं सदैव भवता मम पुत्रकार्यं ॥  
 इत्येव मुक्त्वा तं वृक्षं स्पर्शयित्वा पुनः पुनः ।  
 धृतपात्रे स्ववदनं दृष्ट्वाशीः संप्रयोजयेत् ॥  
 अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधिजायसे ।  
 आत्मा वै पुत्रानामासि स जीव शरदः शतं ॥  
 ब्राह्मणानां ततो देया दक्षिणा हृष्टमानसैः ।  
 स्थापकाय शुभां धेनुं दत्त्वा कुर्यान्महोत्सवं ॥  
 दौनानाथजनानाञ्च भोजनञ्चानिवारितं ।  
 इतरेषान्तु दातव्यं सन्तुष्टेन सुरासवं ॥  
 ज्ञातिवन्धुजनैः सार्द्धं स्वयम्भोजीत कामतः ।  
 तथा कर्मकराः सर्व्वे भोजनीयाः स्वशक्तितः ॥  
 एतत्ते कथितं-पार्थ वृक्षाणां सुमहोत्सवं ।  
 सर्व्वान् कामानवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥  
 पुत्रैर्व्विना शुभफलं न भवेन्नराणां  
 दुष्पुत्रकैरपि तथोभयलोकनाशः ।  
 एतद्विचार्य्य सुधिया परिपाल्य वृक्षान्



यत्नेन वेदविधिना परिकल्पनीयाः ॥

इति तरुपुत्रविधिः ।

पर्यवसितञ्च दानं करणाधिपो विजयते हेमाद्रिः ।

आवारिनिधिचौणीमण्डलमण्डलित स्वयंशोराशिः\* ॥

चिन्तामणौ महाशास्त्रे तेन हेमाद्रिणा कृते ।

दानखण्डावखण्डं च जगाम परिपूर्णतां ॥

येषामगण्यत्वमवेक्ष्य कोपि

नान्यो मुनिभ्यः प्रभूतामुपैति ।

दानानि तान्याचरितुं प्रवन्धी

हेमाद्रिदेवस्य जगाम पारं† ॥

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवीय समस्त करणाधीश्वर

सकलविद्याविशारद श्रीहेमाद्रि विरचिते चतु-

र्वर्गचिन्तामणौ दानखण्डं सम्पूर्णं ।

\* पर्यवसितं चानन्तदाश्रीकरणाधिपो विजयते हेमाद्रिरथो विधिचौणीमण्डल  
मण्डलीकृतयाषा राशिः ॥ १ ॥

† यदगणनातिक्रमेति नान्योमुनिभ्यः प्रभूतामुपैति दानानि तान्याचरितुं प्रवन्तं  
हेमाद्रिदेवोष्टपार ॥ २ ॥

पुस्तकान्तरे यदगणयति क्रमेण तान्याचरेत्तमिति पाठः ।

आदर्शभूतग्रन्थद्वयस्थितं श्लोकद्वयमिवासंलग्नमिति बुद्ध्या खलु बुद्ध्या संलग्नपाठं  
कृत्वा आवापोद्वारेण विरचय्य मुद्रितं तत्र यदि पुस्तकान्तरे प्रसिद्धपाठो मिलिष्यति  
तददृष्टव्यं सुधीभिः श्लोकद्वयाभावे ग्रन्थहानिर्नास्तीति ।

## उपसंहारः ।

चिन्तामणौ दानमहाप्रबन्धा  
हेमाद्रिणाकारि सतां हिताय ।  
शङ्खाङ्गशैलेन्दुमिते सहस्रे  
मुद्राङ्कितोऽसौ शकभूपवर्षे ॥

१०३ राज्ञी जीव्यात् कृतयुगसमास्तोकसहिता  
१०४ साम्राज्यानि प्रचुरधनधान्यादिविभवैः ।  
१०५ तस्याः प्रकृतिनिचयाः सन्तु हृषिताः  
१०६ सत्पक्षाः प्रकृतिगुणतः सन्तु च वशाः ॥  
वेदादिशास्त्राखिलानि यानि  
पाथोविलुप्तानि धरातलेऽस्मिन् ।  
वैर्यत्नतस्तानि समुद्धृतानि  
जीव्यासुरेते कृतिनश्चिराय ॥

१०७ कामकिशोर आदिपुरुषस्तद्वत् सुतः शङ्करः  
१०८ प्रसीदामतनुर्व्वभूव मतिमान् तस्यात्मवंशोचितः ।  
१०९ सुभीभरतः सचेममतनोच्चिन्तामणिं मुद्रया  
११० हेमाद्रिविधून्किते शकनृपाब्देऽशोधयद्यत्नतः ॥

श्रीभरतचन्द्रशर्मा ।



1

90



2111/4  
7m

✓  
2111/4

37248

~~153-154~~ (156)

Chaturvargy-

Chetana

Date of Return \_\_\_\_\_

|      |         |         |
|------|---------|---------|
| 1000 | 21/3/74 | 22/3/74 |
|------|---------|---------|

*"A book that is shut is but a block"*

GOVT. OF INDIA  
Department of Archaeology  
NEW DELHI.

7